

जैन पूजा-पाठ

nikkyjain@gmail.com
Date : 03-Sep-2022

Index

अधिकार

प्रारम्भ	नित्य-पूजा	तीर्थकर	पर्व-पूजन
विसर्जन	पाठ	छहडाला	स्तोत्र
ग्रंथ	आरती		

प्रारम्भ



1) श्री मंगलाष्टक स्तोत्र	2) दर्शनं देव देवस्य
3) दर्शन पाठ -- पं. बुधजन	4) दर्शन पाठ
5) प्रतिमा प्रक्षाल विधि पाठ	6) अभिषेक पाठ भाषा -- पं. हरजसराय
7) अभिषेक पाठ लघु	8) मैने प्रभुजी के चरण
9) अमृत से गगरी भरो	10) महावीर की मूँगावरणी
11) विनय पाठ दोहावली	12) विनय पाठ लघु
13) मंगलपाठ	14) भजन मैं थाने पूजन आयो
15) पूजा विधि प्रारंभ	16) अर्घ
17) स्वस्ति मंगल विधान	18) स्वस्ति मंगल विधान हिंदी
19) चतुर्विंशति तीर्थकर स्वस्ति विधान	20) अथ परमर्षि स्वस्ति मंगल विधान
21) स्तुति -- पं. बुधजन	

नित्य-पूजा



1) देव शास्त्र गुरु -- पं. जुगल किशोर	2) देव शास्त्र गुरु -- पं. द्यानतराय
3) देव शास्त्र गुरु -- पं. हुकमचन्द भारिल्ल	4) देव शास्त्र गुरु -- पं. रवीन्द्रजी
5) देव शास्त्र गुरु -- पं. राजमल पवैया	6) समुच्च पूजा -- ब्रह्मचारी सरदारमल
7) पंचपरमेष्ठी -- पं. राजमल पवैया	8) नवदेवता पूजन -- पं. राजमल पवैया
9) नवदेवता पूजन -- आ. ज्ञानमती	10) सिद्धपूजा -- पं. राजमल पवैया
11) सिद्धपूजा -- पं. हुकमचन्द भारिल्ल	12) सिद्धपूजा -- पं. जुगल किशोर
13) सिद्धपूजा -- पं. हीराचंद	14) त्रिकाल चौबीसी पूजन -- पं. द्यानतराय
15) चौबीस तीर्थकर -- पं. वृन्दावनदास	16) चौबीस तीर्थकर -- पं. द्यानतराय
17) अनन्त तीर्थकर पूजन -- पं. राजमल पवैया	18) श्री वीतराग पूजन -- पं. रवीन्द्रजी
19) रत्नत्रय पूजन -- पं. द्यानतराय	20) सम्यकदर्शन -- पं. द्यानतराय
21) सम्यकज्ञान -- पं. द्यानतराय	22) सम्यकचारित्र -- पं. द्यानतराय
23) दशलक्षण धर्म -- पं. द्यानतराय	24) सोलहकारण भावना -- पं. द्यानतराय
25) सरस्वती पूजन -- पं. द्यानतराय	26) सीमन्धर भगवान -- पं. राजमल पवैया
27) सीमन्धर भगवान -- पं. हुकमचन्द भारिल्ल	28) विद्यमान बीस तीर्थकर -- पं. राजमल पवैया
29) विद्यमान बीस तीर्थकर -- पं. द्यानतराय	30) बाहुबली भगवान -- पं. राजमल पवैया
31) बाहुबली भगवान -- ब्रह्मचारी रवीन्द्र	32) पंचमेरु पूजन -- पं. द्यानतराय
33) नंदीश्वर द्वीप पूजन -- पं. द्यानतराय	34) निर्वाणक्षेत्र -- पं. द्यानतराय
35) कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजन -- पं. राजमल पवैया	36) अष्टापद कैलाश पूजन
37) आ कुंदकुंद पूजन	

तीर्थकर



1) श्रीआदिनाथ -- पं. राजमल पवैया	2) आदिनाथ भगवान -- पं. जिनेश्वरदास
3) श्रीआदिनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	4) श्रीअजितनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास
5) श्रीसंभवनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	6) श्रीअभिनन्दननाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास
7) श्रीसुमतिनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	8) श्रीपद्मप्रभ पूजन -- पं. राजमल पवैया
9) श्रीपद्मप्रभ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	10) श्रीसुपार्श्वनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास
11) श्रीचन्द्रप्रभनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	12) श्रीपुष्पदन्त पूजन -- पं. वृन्दावनदास
13) श्रीशीतलनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	14) श्रीश्रेयांसनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास
15) श्रीवासुपूज्य पूजन -- पं. राजमल पवैया	16) श्रीवासुपूज्य पूजन -- पं. वृन्दावनदास
17) श्रीविमलनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	18) श्रीअनन्तनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास
19) श्रीधर्मनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	20) श्रीशांतिनाथ पूजन -- पं. बख्तावर
21) श्रीशांतिनाथ पूजन -- पं. राजमल पवैया	22) श्रीशांतिनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास
23) श्रीकुंभुनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	24) श्रीअरहनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास
25) श्रीमल्लिनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	26) श्रीमुनिसुव्रतनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास
27) श्रीनमिनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	28) श्रीनेमिनाथ पूजन -- पं. राजमल पवैया
29) श्रीनेमिनाथ पूजन -- पं. वृन्दावनदास	30) श्रीपार्श्वनाथ पूजन -- पं. बख्तावर
31) श्रीपार्श्वनाथ पूजन -- पं. राजमल पवैया	32) श्रीपार्श्वनाथ पूजन पण्डित वृन्दावनदास
33) श्रीमहावीर पूजन -- पं. राजमल पवैया	34) श्रीमहावीर पूजन -- पं. वृन्दावनदास
35) श्रीमहावीर पूजन -- पं. हुकमचंद भारिल्ल	

पर्व-पूजन



1) क्षमावणी	2) अक्षय तृतीया -- पं. राजमल पवैया
3) दीपावली पूजन -- पं. राजमल पवैया	4) रक्षाबंधन -- पं. राजमल पवैया
5) वीरशासन जयन्ती -- पं. राजमल पवैया	6) श्रुतपंचमी -- पं. राजमल पवैया

विसर्जन



1) अर्ध	2) महाअर्ध
3) समुच्चय महाअर्ध	4) शांति पाठ
5) शांति पाठ भाषा	6) विसर्जन पाठ
7) भगवान आदिनाथ चालीसा	8) भगवान महावीर चालीसा

पाठ



1) देव स्तुति -- पं. भूधरदास	2) मेरी भावना -- पं. रतनलाल मुख्तार
3) बारह भावना -- पं. जयचंद छाबडा	4) बारह भावना -- पं. भूधरदास
5) बारह भावना -- पं.. मंगतराय	6) महावीर वंदना -- पं. हुकमचंद भारिल्ल
7) समाधिमरण -- पं. द्यानतराय	8) समाधि भावना -- पं. शिवराम
9) समाधिमरण भाषा -- पं. सूरचंद	10) दर्शन स्तुति -- पं. दौलतराम
11) जिनवाणी स्तुति	12) आराधना पाठ -- पं. द्यानतराय
13) आर्हत वंदना -- पं. जुगल किशोर	14) आलोचना पाठ -- पं. जौहरिलाल
15) दुखहरन विनती -- पं. वृन्दावनदास	16) अमूल्य तत्त्व विचार -- पं. जुगल किशोर
17) बाईस परीषह -- आ. ज्ञानमती	18) सामायिक पाठ -- आ. अमितगति
19) सामायिक पाठ -- पं. महाचंद्र	20) सामायिक पाठ -- पं. जुगल किशोर
21) निर्वाण कांड -- पं. भगवतीदास	22) देव शास्त्र गुरु वंदना
23) वैराग्य भावना -- पं. भूधरदास	24) भूधर शतक -- पं. भूधरदास
25) आत्मबोध शतक -- आ. पूर्णमति	26) चौबीस तीर्थकर स्तवन -- पं. अभ्यकुमार
27) लघु प्रतिक्रमण	28) मृत्युमहोत्सव
29) अपूर्व अवसर -- श्रीमद राजचंद्र	30) कुंदकुंद शतक -- पं. हुकमचंद भारिल्ल
31) सिद्ध श्रुत आचार्य भक्ति	32) ध्यान सूत्र शतक -- आ. माघनंदी
33) पखवाड़ा -- पं. द्यानतराय	34) श्री गोम्टेश्वर स्तुति
35) श्रीजिनेन्द्रगुणसंस्तुति -- श्रीपात्रकेसरिस्वामि	36) रत्नाकर पंचविंशतिका -- पं. रामचरित
37) भूपाल पंचविंशतिका -- पं. भूधरदास	38) सच्चा जैन -- रवीन्द्र जी आत्मन
39) सरस्वती वंदना	

छहढाला



1) छहढाला -- पं. द्यानतराय	2) छहढाला -- पं दौलतराम
3) छहढाला -- पं बुधजन	

स्तोत्र



1) स्वयंभू स्तोत्र भाषा -- आ. समंतभद्र	2) स्वयंभू स्तोत्र भाषा -- पं. द्यानतराय
3) स्वयंभू स्तोत्र -- आ. विद्यासागर	4) पार्श्वनाथ स्तोत्र -- पं. द्यनतराय
5) महावीराष्ट्र स्तोत्र -- पं. भागचन्द्र	6) वीतराग स्तोत्र -- मुनि क्षमासागर
7) कल्याणमन्दिरस्तोत्रम -- आ. कुमुदचंद्र	8) कल्याणमन्दिर स्तोत्र हिंदी -- आ. चंदानामती

9) भक्तामर -- आ. मानतुंग	10) भक्तामर -- पं. हेमराज
11) भक्तामर -- मुनि श्रीरसागर	12) एकीभाव स्तोत्र -- आ. वादीराज
13) विषापहारस्तोत्रम् -- कवि धनञ्जय	14) विषापहारस्तोत्र -- पं. शांतिदास
15) अकलंक स्तोत्र	16) गणधरवलय स्तोत्र
17) मंदालसा स्तोत्र	18) श्रीमज्जिनसहस्रनाम स्तोत्र

ग्रंथ

ॐ

1) तत्त्वार्थसूत्र -- आ. उमास्वामी

आरती

ॐ

1) पंच परमेष्ठी आरती -- पं. द्यानतराय	2) भगवान चंद्राप्रभु आरती
3) भगवान पार्वती आरती	4) भगवान महावीर आरती
5) भगवान बाहुबली आरती	

श्री-मंगलाष्टक-स्तोत्र



पञ्च परमेष्ठी हमारा मंगल करें

अर्हन्तो भगवंत इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्वं सिद्धीश्वरा,
आचार्याः जिनशासनोन्नतिकराः, पूज्या उपाध्यायकाः
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः, मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥१॥

अन्वयार्थ : इन्द्रों द्वारा जिनकी पूजा की गई ऐसे अरिहन्त भगवान, सिद्धि के स्वामी ऐसे सिद्ध भगवान, जिन शासन को प्रकाशित करने वाले ऐसे आचार्य, सिद्धांत को सुव्यवस्थित पढाने वाले ऐसे पूज्य उपाध्याय, रत्नत्रय के आराधक ऐसे साधु ये पाँचों परमेष्ठी प्रतिदिन हमारे पापों को नष्ट करें और हमें सुखी करें ।

पञ्च परमेष्ठी हमारा मंगल करें

श्रीमन्नम्र - सुरासुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत - रत्नप्रभा-
भास्वत्पादनखेन्दव प्रवचनाभ्योधीन्दवः स्थायिनः
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगीजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥२॥

अन्वयार्थ : शोभायुक्त और नमस्कार करते हुए देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की काँति से जिनके श्री चरणों के नखरूपी चन्द्रमा की ज्योति स्फुरायमान हो रही है । और जो प्रवचन रूप सागर की वृद्धि करने के लिए स्थायी चन्द्रमा हैं एवं योगिजन जिनकी सुति करते रहते हैं ऐसे अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पाँचों परमेष्ठी पापों को क्षालित करें और हमें सुखी करें ॥

सच्चा रत्न त्रय धर्म, जिनवाणी, जिन विम्ब और जिनालय हमारा मंगल करें

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं, रत्नत्रयं पावनं,
 मुक्ति श्रीनगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रिदः
 धर्म सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं, चैत्यालयं श्रयालयं,
 प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी, कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥३॥

अन्वयार्थ : निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यकचारित्र यह पवित्र रत्नत्रय है। श्री सम्पन्न मुक्तिनगर के स्वामी भगवान् जिनदेव ने इसे अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाला धर्म कहा है। इस प्रकार जो यह तीन प्रकार का धर्म कहा गया है वह तथा इसके साथ सूक्तिसुधा (जिनागम), समस्त जिन-प्रतिमा और लक्ष्मी का आकारभूत जिनालय मिलकर चार प्रकार का धरम कहा गया है वह हमारे पापों को नष्ट करें और हमें सुखी करें।

मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ शलाका पुरुष हमारा मंगल करें
नाभेयादिजिनाः प्रशस्त-वदनाः ख्याताश्वतुर्विशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वर-प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लांगलधराः सप्तोत्तराविंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्तिषष्टि-पुरुषाः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥४॥

अन्वयार्थ : तीनों लोकों में विख्यात और बाह्य तथा आभ्यन्तर लक्ष्मी सम्पन्न ऋषभनाथ भगवान् आदि 24 तीर्थकर, श्रीमान् भरतेश्वर आदि 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण और 9 बलभद्र ये 63 शलाका महापुरुष हमारे पापों को नष्ट करें और हमें सुखी करें।

ऋद्धि धारी ऋषि महाराज हम सब का मंगल करें
ये सर्वोषध-ऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगताः पञ्च ये,
ये चाष्टांग-महा निमित्त कुशलाः ये ऽष्टाविधाश्वारणाः ।
पञ्च ज्ञान धरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि ऋद्धिश्वराः,
सप्तौते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥५॥

अन्वयार्थ : सभी औषधि ऋद्धिधारी, उत्तम तप ऋद्धिधारी, अवधृत क्षेत्र से भी दूरवर्ती विषय के आस्वादन, दर्शन, स्पर्शन, ग्राण और श्रवण की समर्थता की ऋद्धि के धारी, अष्टांग महानिमित्त विज्ञता की ऋद्धि के धारी, आठ प्रकार की चारण ऋद्धि के धारी, पाँच प्रकार के ज्ञान की ऋद्धि के धारी, तीन प्रकार के बलों की ऋद्धि के धारी और बुद्धि-ऋद्धीश्वर, ये सातों जगत्पूज्य गणनायक तहमारे पापों को नष्ट करें और हमें सुखी करें। बुद्धि क्रिया, विक्रिया, तप, वश, औषध रस और क्षेत्र के भेद से ऋद्धयों के आठ भेद हैं।

तीनों लोक के अकृत्रिम चैत्यालय हमारा मंगल करें
ज्योतिर्व्यन्तर-भवनामरग्रहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बूशाल्मलि-चैत्य-शाखिषु तथा वक्षार-रुप्याद्रिषु ।
इक्ष्याकार-गिरौ च कुण्डलादि द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिन-ग्रहाः कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥६॥

अन्वयार्थ : ज्योतिषी, व्यन्तर भवनवासी और वैमानिकों के आवासों के, मेरुओं, कुलाचलों, जम्बू वृक्षों और शाल्मलि वृक्षों, वक्षारों, विजयार्थ पर्वतों, इक्ष्याकार पर्वतों, कुण्डलपर्वत, नन्दीश्वरद्वीप और मानुषोत्तर पर्वत (तथा रुचिकवर पर्वत), के सभी अकृत्रिम जिन चैत्यालय हमारे पापों को नष्ट करें और हमें सुखी करें।

निर्वाण क्षेत्र हम सब का मंगल करे
कैलासे वृषभस्य निर्वितिमहीं वीरस्य पावापुरे
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम् ।
शोषाणामपि चोर्जयन्त शिखरे नेमीश्वर स्यार्हतः,
निर्वाणावनयः प्रसिद्ध विभवाः कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥७॥

अन्वयार्थ : भगवान् ऋषणभद्रेव की निर्वाण भूमि कैलाश पर्वत पर है। महावीरस्वामी की पावापुर में है। वासुपूज्य स्वामी की चम्पापुरी में है। नेमिनाथ स्वामी की ऊर्जयन्त पर्वत के शिखर पर और शेष बीस तीर्थकरों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर है, जिनका अतिशय और वैभव विख्यात है। ऐसी ये सभी निर्वाण भूमियाँ हमें निष्पाप बना दें और हमें सुखी करें॥

तीर्थकरों के पञ्च कल्याणकों की महिमा हम सब का मंगल करे
यो गर्भावितरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक् ।
यः कैवल्यपुर-प्रवेश-महिमा सम्भावितः स्वर्गिभिः
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥८॥

अन्वयार्थ : तीर्थकरों के गर्भकल्याणक, जन्माभिषेक कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक और कैवल्यपुर प्रवेश (निर्वाण) कल्याणक के देवों द्वारा सम्भावित महोत्सव हमें सर्वदा मांगलिक रहें॥

धर्म के प्रभाव से सब कुछ संभव है
सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः
देवाः यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मदिव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥९॥

अन्वयार्थ : धर्म के प्रभाव से सर्प माला बन जाता है, तलवार फूलों के समान कोमल बन जाती है, विष अमृत बन जाता है, शत्रु प्रेम करने वाला मित्र बन जाता है और देवता प्रसन्न मन से धर्मात्मा के वश में हो जाते हैं। अधिक क्या कहें धर्म से ही आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती हैं वही धर्म हम सब का कल्याण करे॥

पाठ पढ़ने का फल
इत्यं श्रीजिन-मंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-सम्पल्करम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थकराणामुषः ।
ये श्रण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैः धर्मार्थ-कामाविन्ताः,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय-रहिता निर्वाण-लक्ष्मीरपि ॥१०॥

अन्वयार्थ : सौभाग्य सम्पत्ति को प्रदान करने वाले इस श्री जिनेन्द्र मंगलाष्टक को जो सुधी तीर्थकरों के पंचकल्याणक के महोत्सवों के अवसर पर तथा प्रभातकाल में भावपूर्वक सुनते और पढ़ते हैं वे सज्जन धर्म, अर्थ और काम से समन्वित लक्ष्मी के आश्रय बनते हैं और पश्चात् अविनश्वर मुक्तिलक्ष्मी को भी प्राप्त करते हैं॥



दर्शनं-देव-देवस्य
दर्शनं देव-देवस्य, दर्शनं पापनाशनं
दर्शनं स्वर्ग-सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनं ॥१॥

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।

दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है ॥१॥

अन्वयार्थ : देवों के देव(जिनेन्द्रदेव) का दर्शन पाप का नाश करने वाला, स्वर्ग जाने के लिए सीढ़ी के समान तथा मोक्ष का साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च,
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥२॥



श्री जिनेंद्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वंदन से ।

अधिक देर अघ नहीं रहै, जल छिद्र सहित कर में जैसे ॥२॥

अन्वयार्थ : श्री जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से और साधुओं की वन्दना करने से पाप बहुत दिनों तक नहीं ठहरते, जैसे छिद्र होने से हाथों में पानी नहीं ठहरता ।

वीतराग-मुखं दृष्टवा, पद्म-राग-समप्रभं ।
जन्म-जन्म-कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥३॥

वीतराग मुख के दर्शन की, पद्मराग सम शांत प्रभा ।

जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा ॥३॥

अन्वयार्थ : पद्मरागमणि के समान शोभनीक श्री वीतराग भगवान का मुख देखकर अनेक जन्मों के किये हुए पाप दर्शन से नष्ट हो जाते हैं ।

दर्शनं जिन-सूर्यस्य, संसार-ध्वांत-नाशनं ।
बोधनं चित्त-पद्मस्य, समस्तार्थ-प्रकाशनं ॥४॥

दर्शन श्री जिन देव सूर्य, संसार तिमिर का करता नाश ।

बोधि प्रदाता चित्त पद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश ॥४॥

अन्वयार्थ : सूर्य के समान श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने से सांसारिक अंधकार नष्ट होता है, चित्तरूपी कमल खिलता है और सर्व पदार्थ प्रकाश में आते (जाने जाते) हैं ।

दर्शनं जिन चन्द्रस्य सद्धर्मामृत-वर्षणं ।
जन्मदाह-विनाशाय, वर्धनं सुख-वारिधेः ॥५॥

दर्शन श्री जिनेंद्र चंद्र का, सदधर्मामृत बरसाता ।

जन्म दाह को करे शांत औ, सुख वारिधि को विकसाता ॥५॥

अन्वयार्थ : चन्द्रमा के समान श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन करने से समीचीन-धर्म रूपी अमृत की वर्षा होती है, बार-बार जन्म लेने का दाह मिटता है और सुख रूपी समुद्र की वृद्धि होती है ।

जीवादि-तत्त्व-प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणाश्रयाय ।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधि-देवाय नमो जिनाय ॥६॥

सकल तत्त्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदि गुण के सागर ।

शांत दिगंबर रूप नमूँ देवाधिदेव तुमको जिनवर ॥६॥

अन्वयार्थ : श्री देवाधिदेव जिनेन्द्र को नमस्कार हो, जो जीव आदि सात तत्त्वों के बताने वाले, सम्यक्त्व आदि गुणों के स्वामी, शान्त रूप तथा दिगम्बर हैं ।

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥७॥

चिदानन्दमय एक रूप, वंदन जिनेंद्र परमात्मा को ।

हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को ॥७॥

अन्वयार्थ : श्री सिद्धात्मा को जो चिदानन्द रूप हैं, अष्ट-कर्मों को जीतने वाले हैं, परमात्म-स्वरूप के प्रकाशित होने के लिए नित्य नमस्कार हो ।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्माल्कारुण्य-भावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर ॥८॥

अन्य शरण कोई न जगत में, तुम हीं शरण मुझको स्वामी ।

करुण भाव से रक्षा करिए, हे जिनेश अंतर्यामी ॥८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेश्वर! आप ही मुझे शरण में रखने वाले हो, आपके सिवा और कोई शरण नहीं है । इसलिए कृपापूर्वक संसार के दुःखों से मेरी रक्षा कीजिये । मैं आपकी शरण में हूँ ।

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्लये ।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥९॥

रक्षक नहीं शरण कोई नहिं, तीन जगत में दुख त्राता ।

वीतराग प्रभु-सा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता ॥९॥

अन्वयार्थ : तीन-लोक के बीच अपना कोई रक्षक नहीं है, यदि कोई है तो है वीतराग देव ! आप ही हैं क्योंकि आप के समान न तो कोई देव हुआ है और न आगे होगा ।

जिने भक्तिर्जिने भक्ति-जिने भक्तिर्दिने-दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे-भवे ॥१०॥

दिन दिन पाँऊँ जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति जिनवर भक्ति ।

सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति ॥१०॥

अन्वयार्थ : मैं यह आकांक्षा करता हूँ कि जिनेन्द्र भगवान में मेरी भक्ति दिन-दिन और प्रत्येक भव में बनी रहे ।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवेच्वक्र वर्त्यपि ।
स्याच्वेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥११॥

नहीं चाहता जैन धर्म के बिना, चक्रवर्ती होना ।

नहीं अखरता जैन धर्म से, सहित दरिद्री भी होना ॥११॥

अन्वयार्थ : जिन-धर्म-रहित चक्रवर्ती होना भी अच्छा नहीं, जिन-धर्म का धारी दास तथा दरिद्री हो तो भी अच्छा है ।

जन्म-जन्म-कृतं-पापं, जन्मकोटि-मुपार्जितं ।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ॥१२॥

जन्म जन्म के किये पाप औ, बंधन कोटि-कोटि भव के ।

जन्म-मृत्यु औ जरा रोग सब, कट जाते जिनदर्शन से ॥१२॥

अन्वयार्थ : जिनेन्द्र के दर्शन से करोड़ों जन्मों के किये हुए पाप तथा जन्म-जरा-मृत्यु रूपी तीव्र-रोग अवश्य-अवश्य नष्ट हो जाते हैं ।

अद्याभवत सफलता नयन-द्वयस्य् ।
देव! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन ॥
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभाषते मे ।
संसार-वारिधिरयं चुलुक-प्रमाणं ॥१३॥

आज 'युगल' हुग हुए सफल, तुम चरण कमल से हे प्रभुवर ।

हे त्रिलोक के तिलक! आज, लगता भवसागर चुल्लू भर ॥१३॥

अन्वयार्थ : हे देवाधिदेव! आपके कल्याणकारी चरण कमलों के दर्शन से मेरे दोनों नेत्र आज सफल हुए । हे तीनों लोकों के श्रृंगार रूप तेजस्वी लोकोत्तर पुरुषोत्तम! आपके प्रताप से, मेरा संसार रूपी समुद्र हाथ में लिये (चुल्लू भर) पानी के समान प्रतीत होता है, आपके प्रताप से मैं सहज ही संसार-समुद्र से पार हो जाऊँगा ।



दर्शन-पाठ



तुम निरखत मुझको मिली, मेरी सम्पत्ति आज
कहाँ चक्रवर्ति-संपदा, कहाँ स्वर्ग-साम्राज ॥१॥

तुम वंदत जिनदेवजी, नित-नव मंगल होय
विघ्नकोटि ततछिन टरैं, लहहिं सुजस सब लोय ॥२॥

तुम जाने बिन नाथजी, एक श्वास के माँहि
जन्म-मरण अठदस किये, साता पाई नाहिं ॥३॥

आप बिना पूजत लहे, दुःख नरक के बीच
भूख-प्यास पशुगति सही, कर्यो निरादर नीच ॥४॥

नाम उचारत सुख लहे, दर्शनिसों अघ जाय
पूजत पावे देव-पद, ऐसे हैं जिनराय ॥५॥

वंदत हूँ जिनराज मैं, धर उर समता भाव
तन धन-जन-जगजालतें, धर विरागता भाव ॥६॥

सुनो अरज हे नाथजी! त्रिभुवन के आधार
दुष्टकर्म का नाश कर, वेगि करो उद्धार ॥७॥

याचत हूँ मैं आपसों, मेरे जिय के माँहि
राग-द्वेष की कल्पना, कबहू उपजे नाहिं ॥८॥

अति अद्भुत प्रभुता लखी, वीतरागता माँहिं
विमुख होहिं ते दुःख लहें, सन्मुख सुखी लखाहिं ॥९॥

कल-मल कोटिक नहिं रहें, निरखत ही जिनदेव
ज्यों रवि ऊगत जगत में, हरे तिमिर स्वयमेव ॥१०॥

परमाणु – पुद्गलतणी, परमातम – संयोग
भई पूज्य सब लोक में, हरे जन्म का रोग ॥११॥

कोटि-जन्म में कर्म जो, बाँधे हुते अनंत
ते तुम छवि विलोकते, छिन में होवहिं अंत ॥१२॥

आन नृपति किरपा करे, तब कछु दे धन-धान
तुम प्रभु अपने भक्त को, करल्यो आप-समान ॥१३॥

यंत्र-मंत्र मणि-औषधि, विषहर राखत प्रान
त्यों जिनछवि सब भ्रम हरे, करे सर्व-परधान ॥१४॥

त्रिभुवनपति हो ताहि ते, छत्र विराजें तीन
सुरपति-नाग-नरेशपद, रहें चरन-आधीन ॥१५॥

भवि निरखत भव आपनो, तुव भामंडल बीच
भ्रम मेटे समता गहे, नाहिं सहे गति नीच ॥१६॥

दोई ओर ढोरत अमर, चौंसठ-चमर सफेद
निरखत भविजन का हरें, भव अनेक का खेद ॥१७॥

तरु-अशोक तुव हरत है, भवि-जीवन का शोक
आकुलता-कुल मेटिके, करैं निराकुल लोक ॥१८॥

अंतर-बाहिर-परिग्रहन, त्यागा सकल समाज
सिंहासन पर रहत है, अंतरीक्ष जिनराज ॥१९॥

जीत भई रिपु-मोह तें, यश सूचत है तास
देव-दुन्दुभिन के सदा, बाजे बजें अकाश ॥२०॥

बिन-अक्षर इच्छारहित, रुचिर दिव्यधनि होय
सुर-नर-पशु समझें सबै, संशय रहे न कोय ॥२१॥

बरसत सुरतरु के कुसुम, गुंजत अलि चहुँ ओर

फैलत सुजस सुवासना, हरषत भवि सब ठौर ॥२२॥

समुद्र बाघ अरु रोग अहि, अर्गल-बंध संग्राम
विघ्न-विषम सबही टरैं, सुमरत ही जिननाम ॥२३॥

श्रीपाल चंडाल पुनि, अञ्जन भीलकुमार
हाथी हरि अरि सब तरे, आज हमारी बार ॥२४॥

'बुधजन' यह विनती करे, हाथ जोड़ सिर नाय
जबलौं शिव नहिं होय तुव-भक्ति हृदय अधिकाय ॥२५॥



दर्शन-पाठ



अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने ॥१॥

पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर ॥२॥

भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर
निजपर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि सुधा नहिं पानकर ॥३॥

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी ॥४॥

रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा ॥५॥

प्रिय वचन की हो टेव, गुणीगण गान में ही चितपगै
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादन तैं भगै ॥६॥

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर ॥७॥

धरकर दिग्म्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ ॥८॥

तप तपूं द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ
अरु रोकि नूतन कर्मसंचित, कर्म रिपुकों निर्जरूँ ॥९॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ ॥१०॥

कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ ॥११॥

आनन्दकन्द जिनेन्द्रबन, उपदेश को नित उच्चरूँ
आवै ‘अमर’ कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरूँ ॥१२॥



प्रतिमा-प्रक्षाल-विधि-पाठ



दोहा

परिणामों की स्वच्छता, के निमित्त जिनबिम्ब
इसीलिए मैं निरखता, इनमें निज-प्रतिबिम्ब ॥
पंच-प्रभू के चरण में, वंदन करूँ त्रिकाल
निर्मल-जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल ॥

तीन लोक के कृत्रिम औ अकृत्रिम सारे
जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे ॥
श्रीजिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ
जिन में निज का, निज में जिन-प्रतिबिम्ब निहारूँ ॥

मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन-प्रतिमा प्रक्षाल का
यह भाव-सुमन अर्पण करूँ, फल चाहूँ गुणमाल का ॥

ॐ ह्रीं प्रक्षाल-प्रतिशाये पुष्पांजलि द्विपामि

प्रक्षाल की प्रतिशा हेतु पुष्प देपण करें

अंतरंग बहिरंग सुलक्ष्मी से जो शोभित
जिनकी मंगलवाणी पर है त्रिभुवन मोहित ॥
श्रीजिनवर सेवा से क्षय मोहादि-विपत्ति
हे जिन! 'श्री' लिख, पाऊँगा निज-गुण सम्पत्ति ॥

अभियेक-धाल की चौकी पर केशर से 'श्री' लिखें

अंतर्मुख मुद्रा सहित, शोभित श्री जिनराज
प्रतिमा प्रक्षालन करूँ, धरूँ पीठ यह आज ॥

ॐ ह्रीं श्री ऋपन-पीठ स्थापन करोमि

प्रक्षाल हेतु धाल स्थापित करें

भक्ति-रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन
भेद-ज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन ॥

स्वागत है जिनराज तुम्हारा सिंहासन पर
हे जिनदेव! पधारो श्रद्धा के आसन पर ॥

ॐ ह्री श्री धर्मतीर्थाधिनाथ भगवत्त्रिह सिंहासने तिष्ठः तिष्ठः

प्रदक्षिणा देकर अभिवेक-थाल में जिनविष्व विराजमान करें

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया
दृग-सुख वीरज ज्ञान स्वरूपी आतम पाया ॥
मंगल-कलश विराजित करता हूँ जिनराजा
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा ॥

ॐ ह्री अर्ह कलश-स्थापन करोमि

चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें, व स्पन-पीठ स्थित जिन-प्रतिमा को अर्घ्य चढ़ावें

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया
अष्ट-अंग-युत मानो सम्यग्दर्शन पाया ॥
श्रीजिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित
करूँ आज रागादि विकारी-भाव विसर्जित ॥

ॐ ह्रीं श्री स्पनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

चारों कोनों के इन्द्र विनय सहित दोनों हाथों में जल कलश ले प्रतिमाजी के शिर पर धारा करते हुए गर्वे

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर ॥
कैसे हो प्रक्षाल जगत के अघ-क्षालक का
क्या दरिद्र होगा पालक! त्रिभुवन-पालक का ॥
भक्ति-भाव के निर्मल जल से अघ-मल धोता
है किसका अभिषेक! भ्रान्त-चित खाता गोता ॥
नाथ! भक्तिवश जिन-बिम्बों का करूँ न्हवन मैं
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पृच्छन मैं ॥

क्षीरोदधि-सम नीर से करूँ बिम्ब प्रक्षाल
 श्री जिनवर की भक्ति से जानूँ निज-पर चाल ॥
 तीर्थकर का न्हवन शुभ सुरपति करें महान्
 पंचमेरु भी हो गए महातीर्थ सुखदान ॥
 करता हूँ शुभ-भाव से प्रतिमा का अभिषेक
 बचूँ शुभाशुभ भाव से यही कामना एक ॥

ॐ हीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशति-तीर्थकर-परमदेवम् आद्यानामाद्ये जम्बूलीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे <.....शुभे.....> नाश्विनगरे मासानामुत्तमे <.....शुभे.....> मासे <.....शुभे.....> पक्षे <.....शुभे.....> दिने मुन्यार्थिकाश्रावकश्राविकाणां सकलकर्म – क्षयार्थं पवित्रतर-जलेन जिनमधिषेदव्यारण करें

चारों कलशों से अभिषेक करें, वादित्र-नाद करावें एवं जय-जय शब्दोव्यारण करें

जिन-संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुणखान
 मस्तक पर धारूँ सदा, बनूँ स्वयं भगवान् ॥

गन्धोदक केवल मस्तक पर लगायें, अन्य किसी अंग में लगाना आल्पव का कारण होने से वर्जित है

जल-फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज
 हुआ बिम्ब-अभिषेक अब, पाऊँ निज-पद-राज ॥

ॐ हीं श्री अभिषेकांन्ते वृषभादिवीरात्तेभ्यो अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

श्री जिनवर का धवल-यश, त्रिभुवन में है व्याप्त
 शांति करें मम चित्त में, हे! परमेश्वर आप्त ॥

पुष्पाजलि लेपण करें

जिन-प्रतिमा पर अमृत सम जल-कण अतिशोभित

आत्म-गगन में गुण अनंत तारे भवि मोहित ॥
हो अभेद का लक्ष्य भेद का करता वर्जन
शुद्ध वस्त्र से जल कण का करता परिमार्जन ॥

प्रतिमा को शुद्ध-वस्त्र से पोछें

दोहा

श्रीजिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्य-कुमार ॥

वेदिका-स्थित सिंहासन पर नया स्वत्सिक बना प्रतिमाजी को विराजित करें व निष्ठ पद गाकर अर्घ्य चढ़ावें

जल गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज ॥

ॐ ह्रीं श्री वेदिका-पीठस्थितजिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा



अभिषेक-पाठ-भाषा



हरराजसराय कृत

जय-जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौ जोरि जुगपान ॥

श्रीजिन जगमें ऐसो को बुधवंत जू
जो तुम गुण वरननि करि पावै अंत जू ॥
इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवनधनी ॥

अनुपम अमित तुम गुणनि-वारिधि, ज्यों अलोकाकाश है
किमि धरै हम उर कोषमें सो अकथ-गुण-मणि-राश है

पै निज प्रयोजन सिद्धि की तुम नाम में ही शक्ति है
यह चित्त में सरधान यातैं नाम में ही भक्ति है ॥१॥

ज्ञानावरणी दर्शन, आवरणी भने
कर्म मोहनी अंतराय चारों हने ॥
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में
इंद्रादिक मुकुट नये सुरथान में ॥

तब इंद्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरन-युत बंदत भयो
तुम पुन्यको प्रेरयो हरी है मुदित धनपतिसौं चयो ॥
अब वेगि जाय रचौ समवसृती सफल सुरपदको करौ
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्पष हरौ ॥२॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती
चल आयो ततकाल मोद धारै अती ॥
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ
दे प्रदच्छिना बार बार वंदत भयौ ॥

अति भक्ति-भीनों नम्र-चित है समवशरण रच्यौ सही
ताकी अनूपम शुभ गतीको, कहन समरथ कोउ नहीं ॥
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं
नग-जड़ित गन्धकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं ॥३॥

सिंघासन तामध्य बन्यौ अदभूत दिपै
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै ॥
तीनछत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी
महा भक्ति ढोरत हैं तहां अमरजी ॥

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर अन्तरीक्ष विराजिया
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया ॥
मुनि आदि द्वादश सभाके भविजीव मस्तक नायकें

बहुभाँति बारंबार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं ॥४॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही
क्षुधा तृष्णा चिंता भय गद दूषण नहीं ॥
जन्म जरामृति अरति शोक विस्मय नसे
राग रोष निंद्रा मद मोह सबै खसे ॥

श्रमबिना श्रमजलरहित पावन अमल ज्योति-स्वरूपजी
शरणागतनिकी अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी ॥
ऐसे प्रभु की शान्तिमुद्रा को न्हवन जलतें करैं
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं हम भानु ढिग दीपक धरें ॥५॥

तुम तौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो ॥
मैं मलीन रागादिक मलतै है रह्यो
महा मलिन तनमें वसु-विधि-वश दुख सह्यो ॥

बीत्यो अनंतो काल यह मेरी अशुचिता ना गई
तिस अशुचिता-हर एक तुम ही, भरहु बांछा चित ठई ॥
अब अष्टकर्म विनाश सब मल रोष-रागादिक हरौ
तनरूप कारा-गेहतैं उद्धार शिव वासा करौ ॥६॥

मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये
आवागमन विमुक्त राग-वर्जित भये ॥
पर तथापि मेरो मनोरथ पुरत सही
नय-प्रमानतैं जानि महा साता लही ॥

पापाचरण तजि न्हन करता चित्त में ऐसे धरुं
साक्षात् श्री अरिहंतका मानों न्हन परसन करुं ॥
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंध तैं
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं है शर्म सब विधि तासतैं ॥७॥

पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं
पावन पानि भये तुम चरननि परसतैं ॥
पावन मन है गयो तिहारे ध्यानतैं
पावन रसना मानी, तुम गुण गानतैं ॥

पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरण-धनी
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी; पूर्णभक्ति नहीं बनी ॥
धन धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिव-घरकी धरी
वर क्षीरसागर आदि जल मणि-कुंभ भक्ती करी ॥८॥

विघ्न-सघन-वन-दाहन-दहन प्रचंड हो
मोह-महा-तम-दलन प्रबल मारतंड हो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो
जगविजयी जमराज नाश ताको करो ॥

आनन्द-कारण दुख-निवारण, परम मंगल-मय सही
मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित-तार सुन्यौ नहीं ॥
चिंतामणी पारस कल्पतरू, एक भव सुखकार ही
तुम भक्ति-नवका जे चढ़े, ते भये भवदधि-पार ही ॥९॥

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार
तारतम्य इस भक्तिको, हमैं उतारो पार ॥१०॥

इति श्री हरजसराय कृत अभिषेक पाठ



अभिषेक-पाठ-लघु



मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वंदन करूं
मन वचन काय त्रियोग पूर्वक, शीश चरणों में धरूं ॥

सर्वज्ञ केवल ज्ञान धारी की सु छवि उर में धरूं
निर्गन्थ पावन वीतराग महान की जय उच्चरूं ॥

उज्ज्वल दिगंबर वेश दर्शन कर हृदय आनन्द भरूं
अति विनयपूर्वक नमन करके सफ़ल यह नर भव करूं ॥

मैं शुद्ध जल के कलश प्रभु के पूज्य मस्तक पर करूं
जल धार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभुजी का करूं ॥

मैं न्हवन प्रभु का भाव से कर, सकल भव पातक हरूं
प्रभु चरण कमल पखार कर, सम्यक्त्व की सम्पत्ति वरूं ॥



मैंने-प्रभुजी-के-चरण
मैंने प्रभु जी के चरण पखारे ॥टेक ॥
जन्म जन्म के संचित पातक, तत्क्षण ही निरवारे ॥1॥



प्रासुक जल के कलश श्री जिन, प्रतिमा ऊपर ढारे ॥2॥

वीतराग अरिहंत देव के, गूंजे जय जयकारे ॥3॥

चरणाम्बुज स्पर्श करत ही, छाए हर्ष अपारे ॥4॥

पावन तन मन नयन भये सब, दूर भये अंधियारे ॥5॥





अमृत-से-गगरी-भरो

अमृत से गगरी भरो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे
खुशी-खुशी मिलके चलो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

सब साथी मिल कलश सजाओ, मंगलकारी गीत सुनाओ
मन में आनंद भरो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

इन्द्र-इन्द्राणी हर्ष मनावें, प्रभु चरणों में शीश झुकावें
प्रभुजी की छवि निरखो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

स्वर्ण कलश प्रभु उदक निधारा, अंग नहावे जिनवर प्यारा
स्वामी जगत को खरो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

है सुखकारी, सब दुखहारी, सेवा जिन की प्यारी-प्यारी
लेकर कलश को चलो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥



महावीर-की-मूँगावरणी

महावीर की मूँगावरणी मूरत मनहारी - २
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी

कुंडलपुर के वीर की हो रही जय-जयकारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥

न्हवन कराओ माता त्रिशला के लाल का,
त्रिशला के लाल का, सिद्धार्थ के गोपाल का
मां त्रिशला के लाल के देखो कैसे लगे हैं ठाठ
एक हजार आठ कलशों से न्हावें जग-सम्राट
ढारो रे, कलशा ढारो, कमा लो रे पुण्य भारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥



सरस दरस पा लो वीर जिनचंद्र का
ले लो आशीष पूज्य गुरुवरों का
स्वर्ण कलश, नवरत्न कलश, हर कलश का है कुछ मोल
पर जिसका अभिषेक करोगे, वो तो है अनमोल
ढारो रे, कलशा ढारो, कमा लो रे पुण्य भारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥



विनय-पाठ-दोहावली



इह विधि ठाड़ो होय के प्रथम पढ़ै जो पाठ
धन्य जिनेश्वर देव तुम नाशे कर्मजु आठ ॥१॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार से खड़े होकर पहिले मैं यह पाठ पढ़ता हूँ। जिनेन्द्र देव आप धन्य है क्योंकि आपने आठों कर्मों को नष्ट कर दिया है।

अनंत चतुष्टय के धनी, तुमही हो सिरताज
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज ॥२॥

अन्वयार्थ : आप अनंत चतुष्टय के स्वामी हैं, आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं, आप मोक्षलक्ष्मी रूपी पत्नी के पति हैं, आप तीन लोक के स्वामी हैं।

तिहुं जग की पीड़ा-हरन, भवदधि शोषणहार
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार ॥३॥

अन्वयार्थ : आप तीनों लोक के जीवों के दुखों को हरने वाले हो, संसार रूपी सागर के शोषक हैं। आप संसार के समस्त पदार्थों के ज्ञायक हैं और मोक्ष सुख प्राप्त करवाने वाले हैं।

हरता अघ अंधियार के, करता धर्म प्रकाश
थिरता पद दातार हो, धरता निजगुण रास ॥४॥

अन्वयार्थ : आप पाप रूपी अन्धकार के हरता हैं, धर्म रूप प्रकाश के करता हैं, मोक्षपद को देने वाले हो और आत्मा के गुणों को धारण करने वाले हो।

धर्मामृत उर जलधि सों ज्ञानभानु तुम रूप
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुं जग भूप ॥५॥

अन्वयार्थ : आपका हृदय धर्मरूपी अमृत के समुद्र के सामान है। आपका स्वरूप ज्ञान रूपी सूर्य के सामान है। निरंतर ज्ञान रूपी प्रकाश से प्रकाशित करने वाला है। आपके चरण-कमल को तीनों लोक के राजा (ऊर्ध्व लोक के राजा इंद्र, मध्य लोक के राजा-चक्रवर्ती और अधो लोक के राजा-धरणेन्द्र) नमस्कार करते हैं, निरंतर वंदना करते हैं।

मैं वंदौं जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव
कर्मबंध के छेदने, और न कछु उपाव ॥६॥

अन्वयार्थ : मैं जिनेन्द्र देव की अत्यंत निर्मल भाव (राग-द्वेष छोड़कर) से वंदना करता हूँ क्योंकि आत्मा के साथ लगे कर्म बंध को नष्ट करने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

**भविजन को भवकूप तैं, तुम ही काढ़नहार
दीनदयाल अनाथपति, आत्म गुण भंडार ॥७॥**

अन्वयार्थ : आप ही भव्य जीवों को संसार रुपी कुए से निकालने वाले हैं, दीनों पर दया करने वाले, अनाथों के स्वामी और आत्मा के गुणों के भण्डार हैं। आपने अपनी आत्मा पर लगे कर्ममल रुपी धूल को धोकर / पवित्र कर संसार के भव्य जीवों को मोक्षमार्ग बताकर सरल कर दिया है।

**चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल
सरल करी या जगत में भविजन को शिवगैल ॥८॥**

अन्वयार्थ : आपने अपनी आत्मा पर लगे कर्ममल रुपी धूल को धोकर / पवित्र कर संसार के भव्य जीवों को मोक्षमार्ग बताकर सरल कर दिया है।

**तुम पदपंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय
शत्रु मित्रता को धैरै, विष निरविषता थाय ॥९॥**

अन्वयार्थ : आपके चरण कमलों को पूजने से

- समस्त आपत्तियां और रोग दूर हो जाते हैं,
- शत्रु मित्र हो जाते हैं,
- विष विष रहित हो जाता है,
- चक्रवर्ती, विद्याधर और इंद्रपद अपने आप प्राप्त होते हैं और
- नियम से क्रम से सम्पूर्ण पापों को नष्ट करके मोक्ष पद भी प्राप्त होता है।

**चक्री खगधर इंद्रपद, मिलैं आपतैं आप
अनुक्रमकर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप ॥१०॥**

अन्वयार्थ : आपके चरण कमलों की पूजा करने वाले को चक्रवर्ती, विद्याधर और इंद्रपद अपने आप प्राप्त होते हैं और नियम से, क्रम से सम्पूर्ण पापों को नष्ट करके मोक्ष पद भी प्राप्त होता है।

**तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥११॥**

अन्वयार्थ : हे भगवान, आपके बिना मैं जल के बिना मछली के समान बड़ा व्याकुल हो रहा हूँ, मेरे जन्म-बुद्धियों को नष्ट कर मुझको स्वतंत्र कर दीजिये।

**पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव
अंजन से तारे प्रभु, जय जय जय जिनदेव ॥१२॥**

अन्वयार्थ : हे भगवान, आपने बहुत से पापियों को पवित्र कर दिया है उनकी गिनती कोई नहीं कर सकता है। अंजन चोर, सप्त व्यसन करने वाले, खोटी बुद्धि वाले को भी आपने पार करवा दिया (जिसने चोरी का त्याग कर दिगंबर मुद्रा धारण कर, मोक्ष प्राप्त किया) हे जिनेन्द्र भगवान् आपकी जय हो, आपकी जय हो, आपकी जय हो।

**थकी नाव भवदधिविषै, तुम प्रभु पार करेय
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव ॥१३॥**

अन्वयार्थ : हे भगवन, मेरी नाव संसार रुपी समुद्र में अटक गयी है आप ही इसे पार कर सकते हैं। आप ही मल्लाह हो, मुझे संसार सागर को पार लगाने वाले आप ही हो (अन्य देवी-देवता तो स्वयं संसार सागर में झूबे हुए हैं, वे नहीं पार लगा सकते) आपकी जय हो, जय हो, जय हो भगवन !

**रागसहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव
वीतराग भेंट्यो अबै, मेटो राग कुटेव ॥१४॥**

अन्वयार्थ : राग (अपने शरीर, घर, स्त्री, पुत्र आदि से) सहित होने के कारण मैं संसार में भटक रहा हूँ (क्योंकि मैंने अपनी आत्मा का वास्तविक ज्ञाता-द्रष्टा स्वरूप, इन से भिन्न नहीं समझा)। मुझे अभी तक रागी देव ही मिले, उनकी ही पूजा करने लगा अब मुझे वीतराग देव मिले है, आप मेरी खोटी आदत को मिटा दीजिये।

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यच अज्ञान आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥१५॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान मैने कितनी पर्याय निगोद की, कितनी पर्याय नारकी की, कितनी पर्याय तिर्यच की एवं कितनी पर्याय अज्ञानावस्था में व्यतीत की । आज यह मनुष्य पर्याय धन्य हो गई जो हे जिनेन्द्र आपकी शरण प्राप्त कर ली ॥

तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव ॥१६॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आपकी पूजा इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती आदि करते हैं । आपकी सेवा-पूजा करने से मेरा भाग्य भी धन्य हो गया है ॥

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार मैं झूबत भवसिंधु में, खेओ लगाओ पार ॥१७॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव अशरण को शरण देने वाले हो । जिनके जीवन का कोई आधार नहीं है उन्हे आधार देने वाले हो । हे भगवान मैं भव रूपी समुद्र में झूब रहा हूँ । आप मेरी नाव चलाकर पार ला दीजिए ।

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान अपनो विरद निहार के, कीजै आप समान ॥१८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान, आपकी स्तुति विनती करते-करते गणधर, और इन्द्र आदि भी थक गये हैं तब मैं कैसे आपकी विनती कर सकता हूँ । आप अपने यश को देखकर मुझे अपने समान बना लीजिए ।

तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उत्तरत है पार हा हा झूब्यो जात हौं, नेक निहार निकार ॥१९॥

अन्वयार्थ : हे नाथ आपकी एक अच्छी दृष्टि से ही जीव संसार समुद्र के पार हो जाता है । हाय, हाय मैं संसार समुद्र में झूब रहा हूँ एक बार सुदृष्टि से देखकर मुझे निकाल लीजिए ।

जो मैं कहहूँ और सों, तो न मिटे उर भार मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार ॥२०॥

अन्वयार्थ : हे भगवान यदि मैं अपने अन्तर्मन की वेदना किसी और से कहूँ तो वह वेदना मिटने वाली नहीं है, मेरी बिगड़ी तो आप ही बना सकते हो अतः मैं आप ही से अपने दुखों को मिटाने की पुकार कर रहा हूँ ।

वन्दौं पांचो परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश ॥२१॥

अन्वयार्थ : गणधर भी जिनकी वंदना करते हैं उन पांचों परमेष्ठी (पांच परमगुरु) की वदना करता हूँ । आप पूर्ण उक्तृष्ट आत्म ज्योति (ज्ञान ज्योति) से प्रकाशित हो, आप विद्म्भों का नाश करने वाले हो, और मंगल के करने वाले हो ।

चौबीसों जिनपद नमौं, नमौं शारदा माय शिवमग साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय ॥२२॥

अन्वयार्थ : चौबीसों तीर्थकरों को नमन करता हूँ जिनवाणी माता को नमन करता हूँ और मोक्ष मार्ग की साधना करने वाले सर्व साधु को नमन कर सुख को देने वाले इस पाठ की रचना करता हूँ ।



सफल जन्म मेरा हुआ, प्रभु दर्शन से आज
भव समुद्र नहीं दीखता, पूर्ण हुए सब काज ॥१॥

दुर्निवार सब कर्म अरु, मोहादिक परिणाम
स्वयं दूर मुझसे हुए, देखत तुम्हें ललाम ॥२॥

संवर कर्मों का हुआ, शांत हुए गृह जाल
हुआ सुखी सम्पन्न मैं, नहीं आये मम काल ॥३॥

भव कारण मिथ्यात्व का, नाशक ज्ञान सुभानु
उदित हुआ मुझमें प्रभु, दीखे आप समान ॥४॥

मेरा आत्म स्वरूप जो, ज्ञानादिक गुण खान
आज हुआ प्रत्यक्ष सम, दर्शन से भगवान ॥५॥

दीन भावना मिट गई, चिंता मिटी अशेष
निज प्रभुता पाई प्रभो, रहा न दुख का लेश ॥६॥

शरण रहा था खोजता, इस संसार मंझार
निज आत्म मुझको शरण, तुमसे सीखा आज ॥७॥

निज स्वरूप में मगन हो, पाऊँ शिव अभिराम
इसी हेतु मैं आपको, करता कोटि प्रणाम ॥८॥

मैं वन्दौं जिनराज को, धर उर समता भाव
तन-धन-जन जगजाल से, धरि विरागता भाव ॥९॥

यही भावना है प्रभो, मेरी परिणति माहिं
राग द्वेष की कल्पना, किंचित उपजै नाहिं ॥१०॥





मंगलपाठ

मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरौं नित ध्यान
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान् ॥१॥

अन्वयार्थ : परम पद को धारण करने वाले पंच परमेष्ठी मंगल स्वरूप हैं (मंगल की मूर्ति है) मैं इनका सदा ध्यान करता हूँ। हे मंगलमय भगवान् आप संसार के सभी अमंगलों का नाश कर दीजिए।

मंगल जिनवर पदनमौं, मंगल अर्हन्त देव
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दौं स्वयमेव ॥२॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान् आपके मंगलकारी चरणों को नमन करता हूँ। अर्हन्त भगवान् मंगलकारी हैं। सिद्ध भगवान् (सिद्धपद) मंगलकारी हैं अतः मैं इनकी अपने मगल के लिए वन्दना करता हूँ।

मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय
सर्व साधु मंगल करो, वन्दौं मन वच काय ॥३॥

अन्वयार्थ : दिग्म्बर आचार्य मंगल स्वरूप हैं, उपाध्याय गुरु मंगल स्वरूप हैं एवं सभी साधु मंगल के करने वाले हैं। मैं इनकी मन वचन काय से वन्दना करता हूँ।

मंगल सरस्वती मातका, मंगल जिनवर धर्म
मंगल मय मंगल करो, हरो असाता कर्म ॥४॥

अन्वयार्थ : जिनवाणी माता मंगल स्वरूप हैं जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा गया धर्म मंगलकारी है। हे मंगलमय जिनेन्द्र भगवान् मेरे असाता कर्म का क्षय करके मुझे मंगलमय कीजिए।

या विधि मंगल से सदा, जग में मंगल होत
मंगल नाथूराम यह, भव सागर दृढ़ पोत ॥५॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार मंगल करने से संसार में मंगल होता है। श्री नाथूराम जी कवि कहते हैं कि यह मंगल पाठ (विनयपाठ) भवरूपी समुद्र को पार करने के लिए मजबूत नाव के समान है।



भजन-मैं-थाने-पूजन-आयो
श्री जी मैं थाने पूजन आयो, मेरी अरज सुनो दीनानाथ ! ॥श्री जी॥

जल चन्दन अक्षत शुभ लेके ता में पुष्प मिलायो ॥श्री जी॥

चरु अरु दीप धूप फल लेकर, सुन्दर अर्घ बनायो ॥श्री जी॥

आठ पहर की साठ जु घड़ियां, शान्ति शरण तोरी आयो ॥श्री जी॥

अर्ध बनाय गाय गुणमाला, तेरे चरण शीश झुकायो ॥श्री जी॥

मुझ सेवक की अर्ज यही है, जामन मरण मिटावो,
मेरा आवागमन छुटावो, ॥श्री जी॥



पूजा-विधि-प्रारंभ

ॐ जय! जय!! जय!!!

नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!



एमो अरिहंताणं, एमो सिद्धाणं, एमो आइरियाणं,
एमो उवज्ञायाणं, एमो लोए सव्वसाहृणं ॥

अरहंतों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वन्दन
आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन ॥
और लोक के सर्वसाधुओं को है, विनय सहित वन्दन
पंच-परम-परमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वन्दन ॥

ॐ हीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः (पुष्पांजलि क्षेपण करें)

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णतो धम्मो मंगलं ॥

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमो ॥
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णतं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ॥

मंगल चार, चार हैं उत्तम, चार शरण को मैं पाऊँ
मन, वच, काय-त्रियोगपूर्वक, शुद्ध भावना मैं भाऊँ ॥

श्री अरहंत देव मंगल हैं, श्री सिद्धप्रभु ! हैं मंगल
श्री साधु मुनि मंगल हैं, है केवलि कथित धर्म मंगल ॥

श्री अरहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में हैं उत्तम
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम ॥

श्री अरहंत शरण में जाऊँ, सिद्ध शरण में मैं जाऊँ
साधु शरण में जाऊँ, केवलि कथित धर्म शरणा पाऊँ ॥

मंगल..उत्तम..शरण..लोक में श्री अरहंत सु सिद्ध महान
साधु सु केवलि कथित धर्म को भव-भव ध्या पाऊँ निर्वाण ॥

ॐ नमोऽहंते स्वाहा (पुष्पांजलि क्षेपण करें)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥

अपवित्र हो या पवित्र, जो णमोकार को ध्याता है ।
चाहे सुस्थित हो या दुस्थित, पाप-मुक्त हो जाता है ॥१॥

अन्वयार्थ : पंच नमस्कार मंत्र का ध्यान करने से पुरुष सब पापों से छूट जाता है चाहे ध्यान करते समय वह पवित्र हो अपवित्र हो या अच्छी जगह हो या बुरी जगह हो ।

**अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥२॥**

हो पवित्र-अपवित्र दशा, कैसी भी क्यों नहिं हो जन की ।
परमात्म का ध्यान किये, हो अन्तर-बाहर शुचि उनकी ॥२॥

अन्वयार्थ : शरीर चाहे सानादिक से पवित्र हो अथवा किसी अशुचिपदार्थ के स्पर्श से अपवित्र हो तथा सोती जागती उठती बैठती चलती आदि कोई भी दशा हो इन सभी दशाओं में जो पुरुष परमात्मा की (पंच परमेष्ठी) स्मरण करता है वह उस समय बाह्य और अभ्यतन्त्र से (शरीर और मन) पवित्र है ।

**अपराजित-मंत्रोऽयं, सर्व-विघ्न-विनाशनः
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥**

है अजेय विघ्नों का हर्ता, णमोकार यह मंत्र महा ।
सब मंगल में प्रथम सुमंगल, श्री जिनवर ने एम कहा ॥३॥

अन्वयार्थ : यह नमस्कार मंत्र किसी मंत्र से पराजित नहीं हो सकता इसलिए यह मंत्र अपराजित मंत्र है यह मंत्र सभी विघ्नों को नष्ट करने वाला है एवं सर्व मंगलों में यह प्रधान मंगल है ।

**एसो पंच-णमोयारो, सव्व-पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पद्मं हवइ मंगलम् ॥४॥**

सब पापों का है क्षयकारक, मंगल में सबसे पहला ।
नमस्कार या णमोकार यह, मन्त्र जिनागम में पहला ॥४॥

अन्वयार्थ : यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है यह सब कार्यों के लिए मंगल रूप है और सब मगलों में पहला मगल है ।

**अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः
सिद्धचक्रस्य सद् बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥**

अर्ह ऐसे परं ब्रह्म-वाचक, अक्षर का ध्यान करूँ ।
सिद्धचक्र का सद्बीजाक्षर, मन-वच-काय प्रणाम करूँ ॥५॥

अन्वयार्थ : अर्ह ये अक्षर परब्रह्म परमेष्ठी के वाचक हैं और सिद्ध समूह के सुन्दर बीजाक्षर हैं । मैं इनको मन वचन काय से नमस्कार करता हूँ ।

**कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥**

अष्टकर्म से रहित मुक्ति-लक्ष्मी के घर श्री सिद्ध नमूँ ।
सम्यक्त्वादि गुणों से संयुत, तिन्हें ध्यान धर कर्म वमूँ ॥६॥

अन्वयार्थ : आठ कर्मों से रहित तथा मोक्ष रूपी लक्ष्मी के मंदिर और सम्यक, दर्शन, ज्ञान, अगु रुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व अव्याबाध, वीर्यत्व इन आठ गुणों से सहित सिद्ध भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ।

**विघ्नौधाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी भूत पन्नगाः
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥**

जिनवर की भक्ति से होते, विघ्न समूह अन्त जानो ।

भूत शाकिनी सर्प शांत हों, विष निर्विष होता मानो ॥७॥

अन्वयार्थ : अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवान का स्तवन करने से विघ्नों के समूह नष्ट हो जाते हैं एवं शाकनि, डाकनी, भूत, पिशाच, सर्प, सिंह, अग्नि, आदि का भय नहीं रहता और बड़े हलाहल विष भी अपना असर त्याग देते हैं ।

(पुष्पांजलि क्षेपण करें)





अर्ध

पंच कल्याणक अर्ध

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्वरु-सुदीप-सुधूप-फलाध्यकैः

धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे कल्याणकमहं यजे ॥

अन्वयार्थ : जल, चन्दन, अक्षत्, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्ध से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में (भगवान के) कल्याणकों की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीभगवतो गर्भं जन्म तप ज्ञान निर्वाणं पंचकल्याणकेभ्योऽर्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंचपरमेष्ठी का अर्ध

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्वरु-सुदीप-सुधूप-फलाध्यकैः

धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥

अन्वयार्थ : जल, चन्दन, अक्षत्, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्ध से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में पाँचों परमेष्ठियों की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीअर्हत-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्योऽर्धं निर्वपामीति स्वाहा

श्री जिनसहस्रनाम - अर्ध

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्वरु-सुदीप-सुधूप-फलाध्यकैः

धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे जिननाममहं यजे ॥

अन्वयार्थ : जल, चन्दन, अक्षत्, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्ध से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में श्रीजिनेन्द्र देव के 1008 गुण-नामों की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिन अष्टाधिक सहस्रनामेभ्योऽर्धं निर्वपामीति स्वाहा



स्वस्ति-मंगल-विधान

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्लयेशम्

स्याद्वाद-नायक-मनंत-चतुष्ट्यार्हम् ॥

श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतुर्

जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥१॥

अन्वयार्थ : मैं तीन लोक के स्वामी स्याद्वाद विध्या के नायक पदार्थों के अनेकान्त (अनेक धर्मों) को प्रकट करने में अग्रसर अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्यादि, अनंत चतुष्ट्यादि अन्तरंग लक्ष्मी एवं अष्ट प्रातिहार्य समवशरणादि बहिरंग लक्ष्मी से युक्त जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके मूलसंघ (श्री कुन्द कुन्द स्वामी की परम्परा के अनुसार) सम्पर्क दृष्टि पुरुषों के लिए पुण्य बंध का प्रधान कारण ऐसी जिन पूजा की विधि को कहता हूँ।

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुंगवाय

स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय ॥

स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्जित दंगमयाय

स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय ॥२॥

अन्वयार्थ : तीन लोक के गुरु जिन प्रधान (कषायों को जीतने वाले मुनीश्वरों के स्वामी) के लिए कल्याण होवे। स्वाभाविक महिमा अर्थात् अनंत चतुष्ट्यादि में भले प्रकार ठहरे हुए भगवान के लिए मंगल होवे। स्वाभाविक प्रकाश अर्थात् केवल ज्ञान रूपी प्रकाश से बढ़े हुए केवल दर्शन से सहित जिनेन्द्र भगवान के लिए क्षम होवे।

। उज्जल सुन्दर एवं अद्भुत समवशरणादि वैभव के धारक जिनेन्द्र भगवान के लिए मगलकारी होवे ।

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध-सुधा-प्लवाय
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय ॥
स्वस्ति त्रिलोक-वितैक-चिदुद्गमाय
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय ॥३॥

अन्वयार्थ : उछलते हुए निर्मल केवल ज्ञान रूपी अमृत के प्रवाह वाले जिनेन्द्र भगवान के लिए कल्याण होवे । स्वभाव और परभाव के प्रकाशक जिनेन्द्र भगवान के लिए मंगल होवे । तीनों लोकों को जानने वाले केवल ज्ञान के स्वामी जिनेन्द्र भगवान के लिए क्षेम होवे । त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों में ज्ञान के द्वारा फैले हुए जिनेन्द्र भगवान के लिए कल्याणकारी होवे ।

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपम्
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः ॥
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्नान्
भूतार्थ यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥४॥

अन्वयार्थ : अपने भावों की परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं देशकाल के अनुरूप जल चन्दनादि की शुद्धता को पाकर जिन स्तवन, जिन बिम्ब दर्शन, ध्यान आदि अवलम्बनों का आश्रय लेकर सचे पूज्य पुरुष अरहंतादिक की पूजा करता हूँ ।

अर्हत्पुराण-पुरुषोत्तम-पावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ॥
अस्मिन् ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥५॥

अन्वयार्थ : हे अर्हन्! हे पुराण पुरुष! हे उत्तम पुरुष यह असहाय मैं, इन पवित्र समस्त जलादिक द्रव्यों का आलम्बन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीष्यमान निर्मल केवल ज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्र चित्त होकर हवन करता हूँ ।

ॐ ह्रीं विधियज्ञ प्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाये पुष्पांजलिं क्षिपामि



स्वस्ति-मंगल-विधान-हिंदी

स्याद्वाद वाणी के नायक, श्री जिन को मैं नमन कराय ।
चार अनंत चतुष्टयधारी, तीन जगत के ईश मनाय ॥
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि, उनके पुण्य कमावन काज ।
कर्सूं जिनेश्वर की यह पूजा, धन्य भाग्य है मेरा आज ॥१॥

तीन लोक के गुरु जिन-पुंगव, महिमा सुन्दर उदित हुई ।
सहज प्रकाशमयी द्वग्-ज्योति, जग-जन के हित मुदित हुई ॥
समवशरण का अद्भुत वैभव, ललित प्रसन्न करी शोभा ।
जग-जन का कल्याण करे अरु, क्षेम कुशल हो मन लोभा ॥२॥

निर्मल बोध सुधा-सम प्रकटा, स्व-पर विवेक करावनहार ।
 तीन लोक में प्रथित हुआ जो, वस्तु त्रिजग प्रकटावनहार ॥
 ऐसा केवलज्ञान करे, कल्याण सभी जगतीतल का ।
 उसकी पूजा रचूँ आज मैं, कर्म बोझ करने हलका ॥३॥

द्रव्य-शुद्धि अरु भाव-शुद्धि, दोनों विधि का अवलंबन कर ।
 करूँ यथार्थ पुरुष की पूजा, मन-वच-तन एकत्रित कर ॥
 पुरुष-पुराण जिनेश्वर अर्हन्, एकमात्र वस्तू का स्थान ।
 उसकी केवलज्ञान वहि मैं, करूँ समस्त पुण्य आह्वान ॥४॥



चतुर्विंशति-तीर्थकर-स्वस्ति-विधान



श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः
 श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनंदनः
 श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः
 श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः
 श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः
 श्रीश्रेयान्सः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः
 श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनंतः
 श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः
 श्रीकुंथुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरहनाथः
 श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः
 श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः
 श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः

ऋषभदेव कल्याणकराय, अजित जिनेश्वर निर्मल थाय ।
 स्वस्ति करें संभव जिनराय, अभिनंदन के पूजों पाय ॥१॥
 स्वस्ति करें श्री सुमति जिनेश, पद्मप्रभ पद-पद्म विशेष ।
 श्री सुपार्श्व स्वस्ति के हेतु, चन्द्रप्रभ जन तारन सेतु ॥२॥
 पुष्पदंत कल्याण सहाय, शीतल शीतलता प्रकटाय ।
 श्री श्रेयांस स्वस्ति के श्वेत, वासुपूज्य शिवसाधन हेत ॥३॥
 विमलनाथ पद विमल कराय, श्री अनंत आनंद बताय ।
 धर्मनाथ शिव शर्म कराय, शांति विश्व में शांति कराय ॥४॥
 कुंथु और अरजिन सुखरास, शिवमग में मंगलमय आश ।

मल्लि और मुनिसुव्रत देव, सकल कर्मक्षय कारण एव ॥५॥
 श्री नमि और नेमि जिनराज, करें सुमंगलमय सब काज ।
 पार्श्वनाथ तेवीसम ईश, महावीर वन्दों जगदीश ॥६॥
 ये सब चौबीसों महाराज, करें भव्यजन मंगल काज ।
 मैं आयो पूजन के काज, राखो श्री जिन मेरी लाज ॥७॥
 इति श्रीचतुर्विंशति तीर्थकर-स्वस्ति मंगल विधानं पुष्टांजलिं क्षिपामि



अथ-परमर्ष-स्वस्ति-मंगल-विधान

18 बुद्धि ऋद्धियाँ



तर्जः छुपा लो अँचल में प्यार

नित्याप्रकंपादभुत-केवलौधाः, स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः
 दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥

नित्य अद्भुत अचल केवलज्ञानधारी जे मुनी ।
 मनःपर्यय ज्ञानधारक, यती तपसी वा गुणी ॥
 दिव्य अवधिज्ञान धारक, श्री ऋषीश्वर को नमँ ।
 कल्याणकारी लोक में, कर पूज वसु विधि को वर्मै ॥१॥

अन्वयार्थ : अविनाशी अचल अद्भुत केवल ज्ञान के धारक मुनिराज, दैदीप्यमान मनः पर्यय ज्ञान रूप शुद्ध ज्ञान वाले मुनिराज और दिव्य अवधिज्ञान के बल से प्रबुद्ध महा ऋद्धि धारी ऋषि हमारा कल्याण करें ।

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं, संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि
 चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥

कोष्ठस्थ धान्योपम कही, अरु एक बीज कही प्रभो ।
 संभिन्न संश्रोतृ पदानुसारी, बुद्धि ऋद्धि कही विभो ॥
 ये चार ऋद्धीधर यतीश्वर, जगत जन मंगल करें ।

अज्ञान-तिमिर विनाश कर, कैवल्य में लाकर धरें ॥२॥

अन्वयार्थ : कोष्ठ-बुद्धि, एक-बीज, संभिन्न-संश्रोतृत्व और पादानुसारणी इन चार प्रकार की बुद्धि ऋद्धि को धारण करने वाले ऋषीराज हम सबका मंगल करें ।

4) [कोष्ठ-बुद्धि ऋद्धि] - जिस प्रकार भंडार में हीरा, पत्रा पुखराज चौंदी सोना धान्य आदि जहाँ रख दिए जावे बहुत समय बीत जाने पर यदि वे निकाले जावे तो जैसे के तैसे न कम न अधिक भिन्न भिन्न उसी स्थान पर रखे मिलते हैं तैसे ही सिद्धान्त न्याय व्याकरणादि के सूत्र गद्य पद्य ग्रन्थ जिस प्रकार पढ़े थे सुने थे पढ़ाये अथवा मनन किए थे बहुत समय बीत जाने पर भी यदि पूछा जाए तो न एक भी अक्षर घट कर, न बढ़कर, न पलट कर, न भिन्न-भिन्न ग्रन्थों को सुना दे ऐसी शक्ति ।

5) [एक बीज ऋद्धि] - ग्रन्थों के एक बीज अर्थात् मूल पद के द्वारा उसके अनेक प्रकार के अर्थों को जान लेना ।

6) [संभिन्नसंश्रोतृत्व ऋद्धि] - बारह योजन लम्बे नौ योजन चौड़े क्षेत्र में ठहरने वाली चक्रवर्ती की सेना के हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल, पक्षी, मनुष्य आदि सभी के अक्षर अनक्षर रूप नाना प्रकार के शब्दों को एक साथ अलग अलग सुनने की शक्ति ।

7) [पादानुसारणी ऋद्धि] - ग्रन्थ के आदि के, मध्य के या अन्त के एक पद को सुनकर सम्पूर्ण ग्रन्थ को कह देने की शक्ति ।

8) [दूर-स्पर्शन ऋद्धि] - मनुष्य यदि दूर से स्पर्शन करना चाहे तो अधिक से अधिक नौ योजन दूरी के पदार्थों का स्पर्शन जान सकता है । किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूरवर्ती पदार्थ का स्पर्शन कर लेते हैं ।

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि
 दिव्यान् मतिज्ञान-बलाद्वहंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥३॥

दिव्य मति के बल ग्रहण, करते स्पर्शन घ्राण को ।
 श्रवण आस्वादन करें, अवलोकते कर त्राण को ॥
 पंच इंद्री की विजय, धारण करें जो ऋषिवरा ।

स्व-पर का कल्याण कर, पायें शिवालय ते त्वरा ॥३॥

अन्वयार्थ : दिव्य मति ज्ञान के बल से दूर से ही स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, घ्राण और अवलोकन रूप पाँच इन्द्रियों के विषयों धारण करने वाले ऋषीराज हम लोगों का कल्याण करें ।

9) [दूर-श्रवण ऋद्धि] - मनुष्य यदि दूरवर्ती शब्द को सुनना चाहे तो बारह योजन तक के दूरवर्ती शब्द सुन सकता है अधिक नहीं, किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से

संख्यात योजन दूरवर्ती शब्द सुन लेते हैं ।

10) [दूर-आस्वादन ऋद्धि] - मनुष्य अधिक से अधिक नौ योजन दूर पदार्थों का रस जान सकता है किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूर स्थित पदार्थ का रस जान लेते हैं ।

11) [दूर-ध्राण ऋद्धि] - मनुष्य अधिक से अधिक नौ योजन दूर स्थित पदार्थ की गंध ले सकता है किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूर स्थित पदार्थों की गंध जान लेते हैं ।

12) [दूरावलोकन ऋद्धि] - मनुष्य अधिकतम सैतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन दूर स्थित पदार्थ को देख सकता है, किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से हजारों योजन दूर स्थित पदार्थों को देख लेते हैं ।

प्रज्ञा-प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येकबुद्धाः दशसर्वपूर्वैः प्रवादिनोऽष्टांग-निमित्त-विज्ञाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥४॥

प्रज्ञा प्रधाना श्रमण अरु प्रत्येक बुद्धि जो कही ।
अभिन्न दश पूर्वी चतुर्दश-पूर्व प्रकृष्ट वादी सही ॥
अष्टांग महा निमित्त विज्ञा, जगत का मंगल करें ।
उनके चरण में अहर्निश, यह दास अपना शिर धरे ॥४॥

अन्वयार्थ : प्रज्ञा, श्रमण, प्रत्येक-बुद्ध, अभिन्न-दशपूर्वी, चतुर्दश-पूर्वी, प्रवादित्व, अष्टांग-महानिमित्तज्ञ मुनिवर हमारा कल्याण करें ।

13) [प्रज्ञा-श्रमणत्व ऋद्धि] - जिस ऋद्धि के बल से पदार्थों के अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों को जिनको की केवली एवं श्रुत केवली ही बतला सकते हैं द्वादशांग चौदह पूर्व पढ़े बिना ही बतला देते हैं ।

14) [प्रत्येक-बुद्ध ऋद्धि] - अन्य किसी के उपदेश के बिना ही जिस शक्ति के द्वारा ज्ञान संयम व्रत का विधान निरूपण किया जाता है ।

15) [दशपूर्वित्व ऋद्धि] - दसवां पूर्व पढ़ने से अनेक महा-विद्याओं के प्रकट होने पर भी चारित्र से चलायमान नहीं होना ।

16) [चतुर्दश-पूर्वित्व ऋद्धि] - सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान प्राप्त हो जाना ।

17) [प्रवादित्व ऋद्धि] - जिस शक्ति के द्वारा क्षुद्रवादियों की तो क्या यदि इन्द्र भी शास्त्रार्थ करने आए तो उसे भी निरुत्तर कर दे ।

18) [अष्टांग-महानिमित्त ऋद्धि] - अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, स्वप्न इन आठ महा-निमित्तों का ज्ञान ।

नौ चारण ऋद्धियाँ

जंघा-वहि-श्रेणि-फलांबु-तंतु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वाः नभोऽगंण-स्वैर-विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥५॥

जंघावलि अरु श्रेणि तंतु, फलांबु बीजांकुर प्रसून ।
ऋद्धि चारण धार के मुनि, करत आकाशी गमन ॥
स्वच्छंद करत विहार नभ में, भव्यजन के पीर हर ।
कल्याण मेरा भी करें, मैं शरण आया हूँ प्रभुवर ॥५॥

अन्वयार्थ : जंघा, अग्नि शिखा, श्रेणी, फल, जल, तन्तु, पुष्प, बीज, और अंकुर पर चलने वाले चारण बुद्धि के धारक तथा आकाश में स्वच्छ विहार करने वाले मुनिराज हमारा कल्याण करें ।

1) [जंघा-चारण ऋद्धि] - पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर आकाश में जंघा को बिना उठाये सैकड़ों योजन गमन करने की शक्ति ।

2) [अग्नि-शिखा-चारण ऋद्धि] - अग्नि शिखा पर गमन करने से अग्नि शिखाओं में स्थित जीवों की विराधना नहीं होती ।

3) [श्रेणी-चारण ऋद्धि] - आकाश श्रेणी में गमन करते हुए सब जाति के जीव की रक्षा करना ।

4) [फल-चारण ऋद्धि] - आकाश में गमन करते हुए फलों पर भी चले तो भी किसी प्रकार जीवों की हानि नहीं होती ।

5) [जल-चारण ऋद्धि] - जल पर गमन करने से भी जीवों की हिंसा न हो ।

6) [तन्तु-चारण ऋद्धि] - तन्तु अर्थात् मकड़ी के जाले के समान तन्तुओं पर भी चले तो वे टूटते नहीं ।

7) [पुष्प-चारण ऋद्धि] - फूलों पर गमन करने से उनमें स्थित जीवों की विराधना नहीं होती ।

8) [बीजांकुर-चारण ऋद्धि] - बीजरूप पदार्थों एवं अंकुरों पर गमन करने से उन्हें किसी प्रकार हानि नहीं होती ।

9) [नभ-चारण ऋद्धि] - कायोत्सर्ग की मुद्रा में पद्मासन या खडगासन में गमन करना ।

तीन बल ऋद्धियाँ

अणिम्नि दक्षाः कुशलाः महिम्नि, लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६॥

अणिमा जु महिमा और गरिमा में कुशल श्री मुनिवरा ।

ऋद्धि लघिमा वे धरें, मन-वचन-तन से ऋषिवरा ॥

हैं यदपि ये ऋद्धिधारी, पर नहीं मद झलकता ।

उनके चरण के यजन हित, इस दास का मन ललकता ॥६॥

अन्वयार्थ : अणिमा, महिमा, लघिमा और गरिमा ऋद्धि में कुशल तथा मन, वचन, काय बल ऋद्धि के धारक मुनिराज हमारा कल्याण करें ।

1) [मनो-बल ऋद्धि] - अन्तर्मुहूर्त में ही समस्त द्वादशांग के पदार्थों को विचार लेना ।

2) [वचन-बल ऋद्धि] - सम्पूर्ण श्रुत का अन्तर्मुहूर्त में पाठ कर लेना फिर जिवा, कंठ आदि में शुष्कता एवं थकावट न होना ।

- 3) [काय-बल ऋद्धि] एक मास चातुर्मासिक आदि बहुत समय तक कायोत्सर्ग करने पर भी शरीर का बल कान्ति आदि थोड़ा भी कम न होना एवं तीनों लोकों को कनिष्ठ अंगुली पर उठाने की सामर्थ्य का होना ।
- 1) [अणिमा ऋद्धि] - परमाणु के समान अपने शरीर को छोटा बना लेना ।
 - 2) [महिमा ऋद्धि] - सुमेरु पर्वत सें भी बड़ा शरीर बना लेना ।
 - 3) [लघिमा ऋद्धि] - वायु से भी हल्का शरीर बना लेना ।
 - 4) [गरिमा ऋद्धि] - वज्र से भी भारी शरीर बना लेना ।

ग्यारह विक्रिया ऋद्धियाँ

सकामरुपित्व-वशित्वमैश्यं, प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथापिमाप्ताः तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥

ईशत्व और वशित्व, अन्तर्धान आप्ति जिन कही ।
कामरूपी और अप्रतीघात, ऋषि पुंगव लही ॥
इन ऋद्धि-धारक मुनिजनों को, सतत वंदन मैं करूँ ।
कल्याणकारी जो जगत में, सेय शिव-तिय को वरूँ ॥७॥

अन्वयार्थ : कामरुपित्व, वशित्व, ईशत्व, प्राकाम्य, अन्तर्धान, आप्ति तथा अप्रतीघात विक्रिया ऋद्धि से सम्पन्न मुनिराज हमारा कुशल करें ।

- 5) [कामरुपित्व ऋद्धि] - एक साथ अनेक आकार वाले अनेक शरीरों को बना लेना ।
- 6) [वशित्व ऋद्धि] - तप बल से सभी जीवों को अपने वश में कर लेना ।
- 7) [ईशत्व ऋद्धि] - तीन लोक की प्रभुता होना ।
- 8) [प्राकाम्य ऋद्धि] - जल में पृथ्वी की तरह और पृथ्वी में जल की तरह चलना
- 9) [अन्तर्धान ऋद्धि] - तुरन्त अदृश्य होने की शक्ति ।
- 10) [आप्ति ऋद्धि] - भूमि पर बैठे हुए ही अंगुली से सुमेरु पर्वत की चोटी सूर्य और चन्द्रमा को छू लेना ।
- 11) [अप्रतीघात ऋद्धि] - पर्वतों के मध्य से खुले मैदान के समान आना-जाना रुकावट न आना ।

सात तप ऋद्धियाँ

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोर पराक्रमस्थाः ब्रह्मापरं घोर गुणाश्वरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥

दीप्ति तप्ता महा घोरा, उग्र घोर पराक्रमा ।
ब्रह्मचारी ऋद्धिधारी, वनविहारी अघ वमा ॥
ये घोर तपधारी परम गुरु, सर्वदा मंगल करें ।
भव इूबते इस अज्ञजन को, तार तीरहि ले धरें ॥८॥

अन्वयार्थ : दीप्ति, तप्त, महाउग्र, घोर तप, और घोर पराक्रम, के तथा अघोर-ब्रह्मचर्य इन सात तप ऋद्धि के धारी मुनिराज हमारा कल्याण करें ।

- 1) [दीप्ति ऋद्धि] - बड़े-बड़े उपवास करते हुए भी मनोबल, वचन बल का यवल का बढ़ना शरीर में सुगंधि आना, सुगंधित निश्चास निकलना, तथा शरीर में म्लानता न होकर महा कान्ति का होना ।
- 2) [तप्त ऋद्धि] - भोजन से पलमूत्र रक्त मांस आदि का न बनना गरम कढ़ाही में पानी की तरह सूख जाना ।
- 3) [महाउग्र ऋद्धि] - एक दो चार छह पक्ष मास उपवास आदि में से किसी एक को धारण करके मरण पर्यन्त न छोड़ना ।
- 4) [घोर तप ऋद्धि] - भयानक रोगों से पीड़ित होने पर भी उपवास व काय क्लेश आदि से नहीं हटना ।
- 5) [घोर-पराक्रम ऋद्धि] - दुष्ट राक्षस पिशाच के निवास स्थान भयानक जानवरों से व्याप्त पर्वत, गुफा शमशान सूने गाँव में निवास करने वाले समुद्र के जल को सुखा देना एवं तीनों लोकों को उठा के फैंक देने की सामर्थ्य ।
- 6) [महाघोर ऋद्धि] - सिंह निकीडित आदि महा उपवासों को करते रहना ।
- 7) [अघोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि] - विरकाल तक तपश्चरण करने के कारण स्वप्न में भी ब्रह्मचर्य से न डिगना आदि विकार परिस्थिति मिलने पर भी ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहना ।

आठ औषधि ऋद्धियाँ

आमर्ष-सर्वैषधयस्तथाशीर्विषाविषाश्व स-खिल्ल-विड्ज्जल-मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥९॥

आमर्ष औषधि आषि विष, अरु दृष्टि विष सर्वैषधि ।
खिल्ल औषधि जल्ल औषधि, विडौषधि मल्लौषधि ॥
ये ऋद्धिधारी महा मुनिवर, सकल संघ मंगल करें ।
जिनके प्रभाव सभी सुखी हों, और भव-जलनिधि तरें ॥९॥

अन्वयार्थ : आमर्शोषधि, सर्वैषधि, आशीर्विष, दृष्टि विष, क्षेलौषधि, विडौषधि, जल्लौषधि, मल्लौषधि, आशीर्विष रस, दृष्टि विष रस के धारी परम ऋषि हमारा कल्याण करें ।

- 1) [आमर्शोषधि ऋद्धि] - जिनके हाथ पैर आदि को छूने से एवं समीप आने मात्र से ही सब रोग दूर हो जाए ।
- 2) [सर्वैषधि ऋद्धि] - जिनके समस्त शरीरके स्पर्श करने वाली वायु ही समस्त रोगों को दूर कर देती है ।

- 3) |आशीअविष ऋद्धि| - महाविष व्याप्त पुरुष भी जिनके आशीर्वाद रूप शब्द सुनने से निरोग या निर्विष हो जाता है ।
 - 4) |दृष्टि(दृष्टिनिर्विष) विष ऋद्धि| - महाविष व्याप्त पुरुष भी जिनकी दृष्टि से निर्विष हो जाए ।
 - 5) |क्षेलौषधि ऋद्धि| - जिनके थूक, कफ आदि से लगी हुई हवा के स्पर्श से ही रोग दूर हो जावे ।
 - 6) |विडौषधि ऋद्धि| - जिनके मल (विष्ठा) से स्पर्श की हुई वायु ही रोग नाशक होती है ।
 - 7) |जल्लौषधि ऋद्धि| - जिनके शरीर के पसीने में लगी हुई धूल महारोग नाशक होती है ।
 - 8) |मलौषधि ऋद्धि| - जिनके दांत, कान, नाक, नेत्र आदि का मैल सर्व रोग नाशक होता है ।
- 1) |आशीविष रस ऋद्धि| - जिन मुनि के कर्म उदय से क्रोधपूर्वक मर जाओ शब्द निकल जाय तो वह व्यक्ति तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।
 - 2) |दृष्टि विष रस ऋद्धि| - मुनि की क्रोध पूर्ण दृष्टि जिस व्यक्ति पर पड़ जाये वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

छह रस ऋद्धियाँ एवं दो अक्षीण ऋद्धियाँ

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतः, मधुं स्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः अक्षीणसंवास-महानसाश्र स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१०॥

क्षीरसावी मधुसावी घृतसावी मुनि यशी ।
अमृतसावी ऋद्धिवर, अक्षीण संवास महानसी ॥
ये ऋद्धिधारी सब मुनीश्वर, पाप-मल को परिहरै ।
पूजा-विधि के प्रथम अवसर, आ सफल पूजा करें ॥१०॥

अन्वयार्थ : क्षीरसावी, घृतसावी, मधुसावी, अमृतसावी तथा अक्षीण संवास और अक्षीण महानस ऋद्धि धारी मुनिवर हमारे लिए मंगल करें ।

- 3) |क्षीरसावी ऋद्धि| - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही दूध के समान गुणकारी हो जावे अथवा जिनके वचन सुनने से क्षीण पुरुष भी दूध के समान बल को प्राप्त करें ।

- 4) |घृतसावी ऋद्धि| - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही धी के समान बलवर्धक हो जाए एवं जिनके वचन घृत के समान तृप्ति करें ।
 - 5) |मधुसावि ऋद्धि| - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही मधुर हो जाए अथवा जिनके वचन सुनकर दुःखी प्राणी भी साता का अनुभव करें ।
 - 6) |अमृतसावि ऋद्धि| - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही अमृत के समान पुष्टि कारक हो जाए अथवा जिनके वचन अमृत के समान आरोग्य कारी हो ।
- 1) |अक्षीण संवास ऋद्धि| - जिनके निवास स्थान में इन्द्र, देव, चक्रवर्ती की सेना भी बिना किसी परस्पर विरोध के ठहर सके उसे अक्षीण संवास ऋद्धि कहते हैं ।
 - 2) |अक्षीण महानस ऋद्धि| - ऋद्धिधारी मुनिराज जिस पात्र आहार करें उस दिन उस पात्र में बचा हुआ आहार चक्रवर्ती की सेना भी कर जाये तब भी आहार कम नहीं पड़े ।



स्तुति

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी ॥१॥



तुम ना पिछान्या अन्य मान्या, देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥२॥

भव विकट वन में करम बैरी, ज्ञानधन मेरो हरयो ।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयो ॥३॥

धन्य घड़ी यो, धन्य दिवस यो ही, धन्य जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो ॥४॥

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरें ।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण युत, कोटि रवि छवि को हरें ॥५॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हर्ष ऐसो भयो, मनो रंक चिंतामणि लयो ॥६॥

मैं हाथ जोड़ नवाऊं मस्तक, वीनऊं तुव चरणजी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारण तरण जी ॥७॥

जाचूं नहीं सुर-वास पुनि, नर-राज परिजन साथ जी ।
'बुध' जाचहूं तुव भक्ति भव भव, दीजिए शिवनाथ जी ॥८॥



देव-शास्त्र-गुरु



युगलजी कृत

केवल-रवि किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अंतर ।
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुंदरतम दर्शन ॥
सद्वर्णन-बोध-चरण पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनि-गण ।
उन देव परम आगम गुरु को, शत-शत वंदन शत-शत वंदन ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आहाननं

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

इन्द्रिय के भोग मधुर-विष सम, लावण्यमयी कंचन काया ।
यह सब-कुछ जड़ की क्रीडा है, मैं अब तक जान नहीं पाया ॥
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ ।
अब निर्मल सम्यक् नीर लिए, मिथ्या-मल धोने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने में होती है ।

अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है ॥
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है ।
संतप्त हृदय प्रभु चंदन सम, शीतलता पाने आया है ॥

ॐ हीं देवशास्त्र गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

उज्ज्वल हूँ कुंद धवल हूँ प्रभु, पर से न लगा हूँ किंचित भी ।
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरंतर ही ॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खंडित काया ।
निज शाश्वत अक्षत निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं ।
निज अंतर का प्रभु भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं ॥
चिन्तन कुछ फिर संभाषण कुछ, किरिया कुछ की कुछ होती है ।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊं जो, अंतर-कालुश धोती है ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण-विधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु भूख न मेरी शांत हुई ।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही ॥
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु ! गोते खाता आया हूँ ।
पंचेन्द्रिय मन के षटरस तज, अनुपम रस पीने आया हूँ ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा ।
झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा ॥
अतएव प्रभो ! यह नश्वर-दीप, समर्पित करने आया हूँ ।
तेरी अंतर-लौ से निज अंतर, दीप जलाने आया हूँ ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

जड़-कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या-भ्रांति रही मेरी ।

मैं राग-द्वेष किया करता, जब परिणति होती जड़ केरी ॥
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ ।
निज अनुपम गंध अनल से प्रभु, पर-गंध जलाने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्ट कर्मविधंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है ।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है ॥
मैं शांत निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचर मेरी ।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु सार्थक फल पूजा तेरी ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

क्षण-भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है ।
काषायिक-भाव विनष्ट किये, निज आनन्द-अमृत पीता है ॥
अनुपम-सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है ।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है ॥
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निज-गुण का अर्घ्य बनाऊंगा ।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अर्हन्त अवस्था पाउंगा ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तर्ज : हूँ लेने दो नायुक होटों को

फिज़ा भी है जवाँ जवाँ

भव-वन में जी-भर घूम चुका, कण कण को जी भर-भर देखा ।
मृग सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा ॥

झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएं ।
तन जीवन यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पल में मुरझाए ॥

सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या ।
अशरण मृत काया में हर्षित, निज-जीवन डाल सकेगा क्या ?

संसार महा दुख-सागर के, प्रभु दुखमय सुख-आभासों में ।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन कामिनी प्रासादों में ॥

मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते ।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते ॥

मेरे न हुए ये मैं इनसे, अति भिन्न अखंड निराला हूँ ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीने वाला हूँ ॥

जिसके श्रंगारों में मेरा, यह महंगा जीवन घुल जाता ।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता ॥

दिन रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता ।
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता ॥

शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल ।
शीतल समकित किरणें फूटें, सँवर से जागे अन्तर्बल ॥

फिर तप की शोधक वहि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें ।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें ॥

हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा ।
निज-लोक हमारा वासा हो, शोकान्त बनें फिर हमको क्या ॥

जागे मम दुर्लभ बोधी प्रभो, दुर्न्यतम सत्वर टल जावे ।
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊं, मद-मत्सर-मोह विनश जावे ॥

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर-साथी ।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी ॥

चरणों में आया हूँ प्रभुवर, शीतलता मुझको मिल जावे
मुरझाई ज्ञानलता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे ॥

सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला ।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में धी डाला ॥

तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय-सुख की ही अभिलाषा ।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु, सच्चे-सुख की भी परिभाषा ॥

तुम तो अविकारी हो प्रभुवर, जग में रहते जग से न्यारे ।
अतएव झुकें तव-चरणों में, जग के माणिक मोती सारे ॥

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभ-नय के झरने झरते हैं ।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं ॥

हे गुरुवर शाश्वत-सुख दर्शक, यह नग्न-स्वरूप तुम्हारा है ।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन कराने वाला है ॥

जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो ।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कन्टक बोता हो ॥

हो अर्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों ।
तब शांत निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिन्तन करते हो ॥

करते तप शैल नदी तट पर, तरुतल वर्षा की झड़ियों में ।
समता रस पान किया करते, सुख-दुख दोनों की घड़ियों में ॥

अन्तर्ज्वाला हरती वाणी, मानों झरती हों फुलझड़ियाँ ।
भव-बंधन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अंतर की कलियाँ ॥

तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ ।

दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

हे निर्मल देव तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान-दीप आगम प्रणाम !
हे शांति त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर प्रणाम ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्टांजलिं क्षिपेत् ॥



देव-शास्त्र-गुरु



चान्तरायजी कृत

प्रथम देव अरहंत, सुश्रुत सिद्धांत जू
गुरु निर्गन्थ महन्त, मुक्तिपुर पन्थ जू ॥
तीन रतन जग मांहि सो ये भवि ध्याइये
तिनकी भक्ति प्रसाद परमपद पाइये ॥

पूजौं पद अरहंत के, पूजौं गुरुपद सार
पूजौं देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अन्वयार्थ : प्रथम देव अरिहंत भगवन्, जिनवाणी माता, और महान निस्पृही (अपरिग्रही) गुरु-साधु, मोक्ष-मार्ग (को बताने वाले) हैं। संसार के भव्य जीव जो इन तीन रत्नों को ध्याते (भक्ति से) हैं उन्हें इनकी भक्ति के प्रसाद से परम पद (मोक्ष) मिलता है। मैं अष्ट विधि से नित्य अरिहंत भगवन् के चरणों की पूजा करता हूँ, फिर सार-भूत गुरुओं के चरणों की पूजा करता हूँ और फिर जिनवाणी माता (सरस्वती देवी) को पूजता हूँ।

सुरपति उरग नरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपद-प्रभा ।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्र घट भरि अग्र तसु बहुविधि नचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धांत, गुरु-निर्गन्थ नित पूजा रचूं ॥

मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मल छीन जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ हीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान् ! इंद्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती आपके चरणों में मस्तक झूकाकर नमस्कार करते हैं इसलिए आपके चरण निर्मल स्वर्ण के समान शोभायमान प्रतीत होते हैं, इनकी छवि (कान्ति) देखकर समवशरण की सभाएं मोहित हो जाती हैं। क्षीर सागर के पवित्र जल का कलश भरकर आपके समक्ष नृत्य कर जल अर्पित करते हैं। मैं इस प्रकार अरिहंत भगवान्, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरुओं की नित्य पूजा करता हूँ। जल का स्वभाव सभी मलिन पदार्थों के मल को नष्ट करने का है; इसलिए देव, शास्त्र, गुरु के श्रेष्ठ पदों की पूजा के लिए जल अर्पित करता हूँ।

जे त्रिजग उदर मंझार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन सरस चंदन घिसि सचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

चंदन शीतलता करे, तपत वस्तु परवीन
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ हीं देवशास्त्र गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान् ! तीनों लोक के प्राणी दुखों के ताप से अत्यंत दुखी हैं, आपके प्रवचन इन दुखी प्राणियों के दुखों को हर कर शीतलता / शांति प्रदान करते हैं। इसलिए अत्यंत सुगम्भित चन्दन को घिस कर लाया हूँ, जिस की पवित्र सुगंध सूंघ कर भंवरे लोभित हो रहे हैं। उस चंदन से अरिहंत भगवान्, जिनवाणी और गुरु की पूजा करता हूँ। चन्दन तप्ती हुई वस्तु को शीतलता प्रदान करने में सामर्थ्यवान है; इसलिए देव, शास्त्र और गुरु की चन्दन से पूजा करता हूँ।

यह भवसमुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई
अति दृढ़ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही
उज्ज्वल अखंडित शालि तंदुल पुंज धरि त्रय गुण जचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

तंदुल शालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान् ! यह संसार रूपी समुद्र अपार है; इसको पार करने के लिए आपकी अत्यंत दृढ़, परम-पवित्र और सच्ची भक्ति रूपी नाव ही सामर्थ्यवान है। इसलिए मैं ताजे और स्वच्छ चमकते हुए अखंडित शालि-वन के चावलों के पुंजों को अर्पित कर सम्पर्दशन, सम्पज्ञान और सम्पवारित्र तीनों गुणों की याचना करता हूँ। इस प्रकार अरिहंत भगवान्, जिनवाणी और गुरु की की नित्य पूजा करता हूँ। मैं शालीधान के अत्यंत सुगम्भित, अखण्डित, श्रेष्ठ चावलों को एक-एक बीन कर, देव शास्त्र गुरु तीन परम पदों की पूजा करता हूँ।

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भान हैं
जे एक मुख चारित्र भाषत त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥
लहि कुंद कमलादिक पुहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

विविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण-विधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव ! आप भक्ति कर रहे भव्य जीवों के हृदय रूपी कमलों को प्रकाशित करने के लिए सूर्य के सामान है, जो प्रधानता से चारित्र का उपदेश देते हैं, वे तीनों लोकों में सर्व श्रेष्ठ हैं, इसलिए मैं कुंद, कमल आदि पुष्टों को लेकर अनेक जन्मों के खोटे वेदों (तीनों वेद पुरुष, स्त्री और नपुंसक) काम विकार के कष्टों से बचने के लिए मैं अरिहंत भगवान्, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरु की नित्य पूजा करता हूँ ।
मैं पास भिन्न भिन्न प्रकार के सुगच्छित पुष्ट से जिनकी सुगंध वश भवरे हो जाते हैं, मैं तीनों परम पदों; देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ ।

अति सबल मद-कंदर्प जाको क्षुधा-उरग अमान है
दुर्स्सह भयानक तासु नाशन को सु गरुड़ समान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अत्यंत बलवान् मद के वेग को धारण करने वाला महान् क्षुधारूपी सर्प का विष असहनीय और भयंकर है । उस का नाश करने के लिए आप गरुड़ के सामान हैं, इसलिए मैं उत्तम छः रसों युक्त, धी में पकाये नैवेद्य से अरिहंत भगवान्, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरु तीनों की नित्य पूजा करता हूँ ।
मैं नाना प्रकार के विभिन्न रसों से युक्त, ताजे नैवेद्य (पकवान) से देव, शास्त्र और गुरु, की पूजा करता हूँ ।

जे त्रिजगउद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली
तिंहि कर्मघाती ज्ञानदीप प्रकाश ज्योति प्रभावली ॥
इह भाँति दीप प्रजाल कंचन के सुभाजन में खचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

स्वपरप्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान् ! तीनों लोक के जीवों के पुरुषार्थ को नष्ट करने वाला मोह रूपी अन्धकार अत्यंत बलवान् है । उस मोहनीय कर्म को नाश करने के लिए आपके ज्ञान रूपी दीपक की ज्योति / प्रकाश सामर्थ्यवान है । इस प्रकार मैं दीपक को प्रज्जवलित कर सोने के पात्र में सजाकर, अरिहंत भगवान्, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरु की नित्य पूजा करता हूँ ।
इस (केवल) ज्ञान रूपी दीपक से मैं देव शास्त्र और गुरु तीनों परम पदों की पूजा करता हूँ, जिस की ज्योति अन्धकार रहित, स्व और पर पदार्थों की प्रकाशक है ।

जे कर्म-ईधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै
वर धूप तासु सुगन्धता करि, सकल परिमलता हंसै ॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव ज्वलनमाहिं नहीं पचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

अग्निमांहि परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्ट कर्मविधंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान् ! कर्मरुपी ईर्धन को जलाने के लिए आप अग्नि के सामान प्रकाशित हैं। अच्छी धूप की सुगंध से सभी सुगंधिया मंद हो जाती हैं। इसी तरह देव ! प्रतिदिन धूप अर्पित करता हूँ जिससे मैं संसार रूपी अग्नि से दूर रह सकूँ; इस प्रकार नित्य तीनों, देव, जिनवाणी और अपरिग्रही गुरु की पूजा करता हूँ। चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों सहित धूप को अग्नि में जला कर देव, शास्त्र और गुरु, तीनों परम पदों की पूजा करता हूँ।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रस लीन ।
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : भगवन मैं, नेत्रों, जीवा, नासिका और मन को उत्साहित करने वाले अनुपम और समस्त श्रेष्ठ गुणों वाले फलों को अर्पित कर हर्षित होता हुआ श्रेष्ठ मोक्ष-रस को प्राप्त करने की भावना से नित्य अरिहंत भगवान्, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरु की पूजा करता हूँ। जो फलों में प्रधान है, जिन के रस में पाँचों इन्द्रिय लीन हो रही है, ऐसे फलों से तीनों परम पद, देव शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ।

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरुं
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनम के पातक हरुं ॥
इहि भांति अर्ध चढ़ाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

वसुविधि अर्ध संजोय के, अति उछाह मन कीन
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : भगवन ! मैंने श्रेष्ठ उज्ज्वल जल, चन्दन से सुगंधित जल, अक्षत, पुष्प, नैवद्य, दीपक, श्रेष्ठ धूप और विविध प्रकार के निर्मल फलों को मिलाकर, अनेक जन्मों के पापों को नष्ट करने के लिए अर्ध बना कर लाया हूँ। इस प्रकार नित्य अर्ध अर्पित कर मैं मोक्ष की पंक्ति में लगता हूँ। मैं तीनों अरिहंत भगवान्, जिनवाणी और अपरिग्रही गुरु की नित्य पूजा करता हूँ। आठ प्रकार के अर्ध से, मन से अत्यंत उत्साहपूर्वक तीनों परम-पद देव शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥१॥

अन्वयार्थ : सच्चे देव से सम्यक्त्व को, सच्चे शास्त्र सम्यग्ज्ञान को, और सच्चे निर्ग्रन्थ गुरु से सम्यक चारित्र को देने वाले हैं। मैं अल्प बुद्धि वाला हूँ किन्तु संक्षेप में उनकी बहुत गुण वाली आरती कहता हूँ।

**कर्मन की त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छयालिस गुणगंभीर ॥२॥**

अन्वयार्थ : जिन्होंने कर्मों की ६३ प्रकृतियों (चार घातिया कर्मों की ४७ और आयुकर्म-३, नामकर्म की-१३) का क्षय कर लिया है, अठारह दोषों के समूह को जीत लिया है। जो अनंत श्रेष्ठ गुणों को धारण करते हैं, यद्यपि कहने में छयालिस (जन्म-१०, केवलज्ञान-१०, देवकृत-१४, अनंत चतुष्षाय-४ और प्रतिहार्य-८) गुण आते हैं।

**शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इंद्र नमत कर सीस धार
देवाधिदेव अरहंत देव, वंदौ मन-वच-तन करि सुसेव ॥३॥**

अन्वयार्थ : आपके शुभ समवशरण की शोभा अपरम्पार है। सौ इंद्र (भवनवासी-४०, व्यंतर देव-३२, वैमानिक देव-२४, ज्योतिष्क-२ चन्द्र और सूर्य, तिर्यच-१ सिंह, मनुष्य-१ चक्रवर्ती) अपने मस्तक पर हाथ रख कर आपको नमस्कार करते हैं।

**जिनकी ध्वनि है ओंकाररूप, निर-अक्षर मय महिमा अनूप
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥४॥**

अन्वयार्थ : जिनेन्द्र भगवान् की ओंकार रूप, अक्षर रहित, अनुपम महिमा वाली दिव्यध्वनि, जो १८ महा-भाषा और ७०० लघु (स्थानिय) भाषा सहित है।

**सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गृथे बारह सुअंग
रवि शशि न हरें सो तम हराय, सो शास्त्र नमौं बहु प्रीति ल्याय ॥५॥**

अन्वयार्थ : जिनवाणी स्याद्वादमयी और सप्त भंगी (अस्ति-नास्ति आदि) है। इसको गणधर देवों ने १२ अंगों में गृथा है। सूर्य और चन्द्र भी जिस अन्धकार को नहीं हर सकते किन्तु ये सच्चे शास्त्र हर लेते हैं, इसीलिए मैं उन सच्चे शास्त्रों को बड़ी प्रीती / भक्ति भाव से नमस्कार करता हूँ।

**गुरु आचारज उवझाय साधु, तन नगन रतनत्रय-निधि अगाध
संसारदेह वैराग्य धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥६॥**

अन्वयार्थ : सच्चे गुरु -- आचार्य, उपाध्याय और साधु नग्न होते हैं, किन्तु रत्नत्रय रूपी खज्जाना भरा हुआ होता है। संसार और शरीर से वैराग्य धारण करके वांछा रहित होकर मोक्ष पद की ओर लक्ष्य रखते हुए तप तपते हैं।

**गुण छत्तिस पच्चिस आठबीस, भवतारन तरन जिहाज ईस
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरु-नाम जपौं मन-वचन-काय ॥७॥**

अन्वयार्थ : आचार्य परमेष्ठी के ३६, उपाध्याय परमेष्ठी के २५, और साधु परमेष्ठी के २८ मूल गुण होते हैं। ये तीनों संसार से स्वयं तथा अन्यों को पार लगाने के लिए जहाज के समान हैं। सच्चे गुरु की महिम का वर्णन नहीं किया जा सकता, मैं उन सच्चे गुरुओं के नाम को मन-वचन-काय से जपता हूँ।

सोरठा

**कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरे
द्यानत सरधावान, अजर अमरपद भोगवे ॥**

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः जयमाला पूर्णर्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : शक्ति के अनुसार व्रत धारण करना चाहिए और शक्ति नहीं होने पर श्रद्धा ही रखनी चाहिए क्योंकि ध्यायनतराय जी कहते हैं कि श्रद्धावान भी बुढ़ापे, मरण रहित पद (मोक्ष) को भोगने वाले होते हैं।

**श्रीजिन के परसाद तें, सुखी रहें सब जीव
या तें तन मन वचन तें, सेवो भव्य सदीव ॥**





देव-शास्त्र-गुरु

पंडित हुकमचन्द भारिलत कृत

दोहा

शुद्ध ब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणी ।
शुद्धात्म साधक दशा, नमो जोड़ जुग पाणि ।

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आहाननं

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

आशा की प्यास बुझाने को, अब तक मृग तृष्णा में भटका ।
जल समझ विषय-विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका ॥
लख सौम्यदृष्टि तेरी प्रभुवर, समता रस पीने आया हुँ ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इस को लौटाने लाया हुँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया ।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया ।
संसार ताप से तप्त हृदय, संताप मिटाने आया हुँ ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हुँ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा

अभिमान किया अब तक जड़ पर, अक्षय निधि को ना पहचाना ।
'मैं जड़ का हुँ' 'जड़ मेरा है' यह, सोच बना था मस्ताना ॥
क्षत में विश्वास किया अब तक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना ।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षय निधि तुमको पहचाना ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

दिन-रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना ।

पुरुषत्व गंवाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहचाना ॥
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया ।
उसका प्रमाण यह पुष्प-बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योः काम-बाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटाना चाही थी ।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी॥
मिष्ठान अनेक बनाये थे, दिन-रात भखे न मिटी प्रभुवर ।
अब संयम-भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योः क्षुधा-रोग विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा

पहिले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला ।
उससे न हुआ कुछ तो युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला ॥
प्रभु भेद-ज्ञान की आंख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला?
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ-कर्म कमाऊँ सुख होगा, अब तक मैंने यह माना था ।
पाप-कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था॥
किन्तु समझकर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

भोगों को अमृत फल जाना, विषयों में निश-दिन मस्त रहा ।
उनके संग्रह में है प्रभुवर ! मैं व्यस्त-त्रस्त-अभ्यस्त रहा॥
शुद्धात्म प्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़ फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः मोक्ष-फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता ।

अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता ?
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्थ मेरी माया ।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्थ लिये, अर्पण के हेतु चला आया ॥

ॐ ह्ं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्थ पदप्राप्तये अर्थम् निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहा

समयसार जिनदेव हैं, जिन-प्रवचन जिनवाणी ।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि ।

वीरछन्द

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना ।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुकर, चौरासी के चक्कर खाना ॥
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा ।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा ॥
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना ।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहचाना ॥
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्व दिखाया है ।
जो होना है वह निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है ॥

उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया ।
बनकर पर का कर्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया ॥

भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्व दिखाया है ।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है ॥

उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गंवाया है ।
शुद्धात्म रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है ॥
मैं समझ न पाया था अब तक, जिनवाणी किसको कहते हैं ।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्व निकलते हैं ॥

राग धर्ममय धर्म रागमय, अब तक ऐसा जाना था ।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अब तक ऐसा माना था ॥

पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा ।

राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा ॥
 वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है ।
 यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हमको जो दिखलाती है ॥
 उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है ।
 उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है ॥
 दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु-सम्भाषण में वही कथन ।
 निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रगट हो रहा अन्तर्मन ॥
 निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो ।
 ज्ञानी ध्यानी समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो ॥
 चलते फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों में शीश झुकाते हैं ।
 हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं ॥
 हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी ।
 हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्थपदप्राप्तये जयमाला महाअर्थम् निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान ।
 गुरु चारित्र की खानि हैं, मैं वंदों धरि ध्यान ॥

पुष्टाङ्गस्त्रिं क्षिपामि



देव-शास्त्र-गुरु



दात ब्रह्मचारी रवीन्द्र जी आत्मन कृत

देव-शास्त्र-गुरुवर अहो! मम स्वरूप दर्शाय ।
 किया परम उपकार मैं, नमन करूँ हर्षाय ॥
 जब मैं आता आप ढिंग, निज स्मरण सु आय ।
 निज प्रभुता मुझमें प्रभो! प्रत्यक्ष देय दिखाय ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शंभू छन्द

जब से स्व-सन्मुख दृष्टि हुई, अविनाशी ज्ञायक रूप लखा ।
शाश्वत अस्तित्व स्वयं का लखकर, जन्म-मरणभय दूर हुआ ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

निज परमतत्त्व जब से देखा, अद्भुत शीतलता पाई है ।
आकुलतामय संतप्त परिणति, सहज नहीं उपजाई है ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

निज अक्षयप्रभु के दर्शन से ही, अक्षयसुख विकसाया है ।
क्षत् भावों में एकत्वपने का, सर्व विमोह पलाया है ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

निष्काम परम ज्ञायक प्रभुवर, जब से दृष्टि में आया है ।
विभु ब्रह्मचर्य रस प्रकट हुआ, दुर्दन्त काम विनशाया है ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मैं हुआ निमग्न तृप्ति सागर में, तृष्णा ज्वाल बुझाई है ।
क्षुधा आदि सब दोष नशे, वह सहज तृप्ति उपजाई है ॥

श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञान-भानु का उदय हुआ, आलोक सहज ही छाया है ।
चिरमोह महातम हे स्वामी, इस क्षण ही सहज विलाया है ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

द्रव्य-भाव-नोकर्म शून्य, चैतन्य प्रभु जब से देखा ।
शुद्ध परिणति प्रकट हुई, मिट्ठी परभावों की रेखा ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूं पं निर्वपामीति स्वाहा

अहो पूर्ण निज वैभव लख, नहीं कामना शोष रही ।
हो गया सहज मैं निर्वाचिक, निज में ही अब मुक्ति दिखी ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

निज से उत्तम दिखे न कुछ भी, पाई निज अनर्घ माया ।
निज में ही अब हुआ समर्पण, ज्ञानानन्द प्रकट पाया ॥
श्री देव- शास्त्र -गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञान मात्र परमात्मा, परम प्रसिद्ध कराय ।
धन्य आज मैं हो गया, निज स्वरूप को पाय ॥

चैतन्य में ही मग्न हो, चैतन्य दरशाते अहो ।
निर्दोष श्री सर्वज्ञ प्रभुवर, जगत्साक्षी हो विभो ॥

सच्चे प्रणेता धर्म के, शिवमार्ग प्रकटाया प्रभो ।
कल्याण वाँछक भविजनों, के आप ही आदर्श हो ॥

शिवमार्ग पाया आप से, भवि पा रहे अरु पायेंगे ।
स्वाराधना से आप सम ही, हुए, हो रहे, होयेंगे ॥

तव दिव्यध्वनि में दिव्य-आत्मिक, भाव उद्घोषित हुए ।
गणधर गुरु आम्नाय में, शुभ शास्त्र तब निर्मित हुए ॥

निर्ग्रीथ गुरु के ग्रन्थ ये, नित प्रेरणाएं दे रहे ।
निजभाव अरु परभाव का, शुभ भेदज्ञान जगा रहे ॥

इस दुष्म भीषण काल में, जिनदेव का जब हो विरह ।
तब मात सम उपकार करते, शास्त्र ही आधार हैं ॥

जग से उदास रहें स्वयं में, वास जो नित ही करें ।
स्वानुभव मय सहज जीवन, मूल गुण परिपूर्ण हैं ॥

नाम लेते ही जिन्हों का, हर्षमय रोमाँच हो ।
संसार-भोगों की व्यथा, मिटती परम आनन्द हो ॥

परभाव सब निस्सार दिखते, मात्र दर्शन ही किए ।

निजभाव की महिमा जगे, जिनके सहज उपदेश से ॥

उन देव-शास्त्र-गुरु प्रति, आता सहज बहुमान है ।
आराध्य यद्यपि एक, ज्ञायकभाव निश्चय ज्ञान है ॥

अर्चना के काल में भी, भावना ये ही रहे ।
धन्य होगी वह घड़ी, जब परिणति निज में रहे ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्थपदप्राप्तये जयमाला अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

अहो कहाँ तक मैं कहूँ, महिमा अपरम्पार ।
निज महिमा में मगन हो, पाऊं पद अविकार ॥
॥पुष्पाजलिं क्षिपामि ॥



देव-शास्त्र-गुरु



पण्डित राजमल पवैया कृत

वीतराग अरिहंत देव के पावन चरणों में वन्दन ।
द्वादशांग श्रुत श्री जिनवाणी जग कल्याणी का अर्चन ॥
द्रव्य भाव संयममय मुनिवर श्री गुरु को मैं करूँ नमन ।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वानं

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

आवरण ज्ञान पर मेरे है, हूँ जन्म-मरण से सदा दुखी ।
जबतक मिथ्यात्व हृदय में है, यह चेतन होगा नहीं सुखी ॥
ज्ञानावरणी के नाश हेतु चरणों में जल करता अर्पण ।

देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

दर्शन पर जब तक छाया है, संसार ताप तब तक ही है ।
जब तक तत्वों का ज्ञान नहीं, मिथ्यात्व पाप तब तक ही है ॥
सम्यकश्रद्धा के चंदन से मिट जायेगा दर्शनावरण ।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

निज स्वभाव चैतन्य प्राप्ति हित, जागे उर में अन्तरबल ।
अव्याबाधित सुख का घाता वेदनीय है कर्म प्रबल ॥
अक्षत चरण चढ़ाकर प्रभुवर वेदनीय का करूँ दमन ।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मोहनीय के कारण यह चेतन अनादि से भटक रहा ।
निज स्वभाव तज पर-द्रव्यों की ममता में ही अटक रहा ॥
भेदज्ञान की खड़ग उठाकर मोहनीय का करूँ हनन ।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

आयु-कर्म के बंध उदय में सदा उलझता आया हूँ ।
चारों गतियों में डोला हूँ, निज को जान न पाया हूँ ॥
अजर-अमर अविनाशी पदहित आयु कर्म का करूँ शमन ।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

नाम कर्म के कारण मैंने, जैसा भी शरीर पाया ।
उस शरीर को अपना समझा, निज चेतन को विसराया ॥
ज्ञानदीप के चिर प्रकाश से, नामकर्म का करूँ दमन ।

देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

उच्च-नीच कुल मिला बहुत पर निज कुल जान नहीं पाया ।
शुद्ध-बुद्ध चैतन्य निरंजन सिद्ध स्वरूप न उर भाया ॥
गोत्र-कर्म का धूम्र उड़ाऊँ निज परिणति में करूँ नमन ।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्ट कर्मविधंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

दान-लाभ भोगोपभोग बल मिलने में जो बाधक है ।
अन्तराय के सर्वनाश का, आत्मज्ञान ही साधक है ॥
दर्शन ज्ञान अनन्त वीर्य सुख, पाऊँ निज आराधक बन ।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मदिय में मोह रोष से, करता है शुभ-अशुभ विभाव ।
पर में इष्ट-अनिष्ट कल्पना, राग-द्वेष विकारी भाव ॥
भाव-कर्म करता जाता है, जीव भूल निज आत्मस्वभाव ।
द्रव्य-कर्म बंधते हैं तत्क्षण, शाश्वत सुख का करे अभाव ॥
चार-घातिया चउ अघातिया अष्ट-कर्म का करूँ हनन ।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन ॥

ॐ हीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

हे जगबन्धु जिनेश्वर तुमको अब तक कभी नहीं ध्याया ।
श्री जिनवाणी बहुत सुनी पर कभी नहीं श्रद्धा लाया ॥

परम वीतरागी सन्तों का भी उपदेश न मन भाया ।
नरक तिर्यक्ष देव नरगति में भ्रमण किया बहु दुख पाया ॥

पाप-पुण्य में लीन हुआ निज शुद्ध-भाव को बिसराया ।
इसीलिये प्रभुकर अनादि से, भव अटवी में भरमाया ॥

आज तुम्हारे दर्शन कर, प्रभु मैंने निज दर्शन पाया ।
परम शुद्ध चैतन्य ज्ञानघन, का बहुमान हृदय आया ॥

दो आशीष मुझे हे जिनवर, जिनवाणी गुरुदेव महान ।
मोह महात्म शीघ्र नष्ट हो, जाये करूँ आत्म कल्याण ॥

स्वपर विवेक जगे अन्तर में, दो सम्यक् श्रद्धा का दान ।
क्षायक हो उपशम हो हे प्रभु, क्षयोपशम सद्वर्ण ज्ञान ॥

सात तत्व पर श्रद्धा करके देव शास्त्र गुरु को मानूँ ।
निज-पर भेद जानकर केवल निज में ही प्रतीत ठानूँ ॥

पर-द्रव्यों से मैं ममत्व तज आत्म-द्रव्य को पहिचानूँ ।
आत्म-द्रव्य को इस शरीर से पृथक भिन्न निर्मल जानूँ ॥

समकित रवि की किरणें, मेरे उर अन्तर में करें प्रकाश ।
सम्यक्ज्ञान प्राप्त कर स्वामी, पर-भावों का करूँ विनाश ॥

सम्यक्चारित को धारण कर, निज स्वरूप का करूँ विकास ।
रत्नत्रय के अवलम्बन से, मिले मुक्ति निर्वाण निवास ॥

जय जय जय अरहन्त देव, जय जिनवाणी जग कल्याणी ।
जय निर्गन्ध महान सुगुरु, जय जय शाश्वत शिवसुखदानी ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः पूर्णार्थं निर्वापामीति स्वाहा

दोहा

देव शास्त्र गुरु के वचन भाव सहित उरधार ।

मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशिर्वदः ॥ पुष्ट्यांजलि क्षिपेत् ॥



समुच्च-पूजा



ब्र. सरदारमलजी कृत

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थकर ध्याय
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय ॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशतितीर्थकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशतितीर्थकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशतितीर्थकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अनादिकाल से जग में स्वामिन, जल से शुचिता को माना
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहीं पहचाना ॥
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भव-आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है
अनजाने में अबतक मैंने, पर में की झूठी ममता है ॥
चन्दन-सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षय पद बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनी में
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं ॥
अक्षयनिधि निज की पाने अब, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है
मन्मथ बाणों से विंच करके, चहुँगति दुःख उपजाया है ॥
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तान्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

षटरस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई ॥
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु भ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जड़दीप विनश्वर को अबतक, समझा था मैंने उजियारा
निज गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अँधियारा ॥
ये दीप समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग-द्वेष नशायेगी ॥
उस शक्ति दहन प्रकटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

पिस्ता बदाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया
आतमरस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये ॥
ये अर्ध्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु भगवान
अब वरण्ँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान ॥

नशे घातिया कर्म अरहन्त देवा ।
करें सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा ॥
दरशज्ञान सुखबल अनन्त के स्वामी ।
छियालीस गुणयुत महाईशनामी ॥

तेरी दिव्यवाणी सदा भव्य मानी ।
महामोह विध्वंसिनी मोक्ष-दानी ॥
अनेकांतमय द्वादशांगी बखानी ।
नमो लोक माता श्री जैनवाणी ॥

विरागी अचारज उवज्ज्ञाय साधू ।
दरश-ज्ञान भण्डार समता अराधू ॥
नगन वेशधारी सु एका विहारी ।
निजानन्द मंडित मुक्ति पथ प्रचारी ॥

विदेह क्षेत्र में तीर्थकर बीस राजें ।
विरहमान वंदूँ सभी पाप भाजें ॥
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी ।
अनाकुल समाधान सहजाभिरामी ॥

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे ॥

पुष्पाजलि क्षिणेत्



पंचपरमेष्ठी



पर्वताजी कृत

अरहन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन ॥
मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आहानन
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन ॥
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आहाननं

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधि करणं

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ ॥
मैं जन्म-जरा-मृतु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

संसार-ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाये हैं ॥
शीतल चंदन है भेंट तुम्हें, संसार-ताप नाशो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

दुःखमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही
 शुभ-अशुभ भाव की भँवरों में चैतन्य शक्ति निज अटक रही ॥
 तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी
 हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मैं काम-व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया
 चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुमको पाकर मन हर्षाया ॥
 मैं काम-भाव विधंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी
 हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मैं क्षुधा-रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ
 जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ ॥
 नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा-रोग मेटो स्वामी
 हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्ता माना
 मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना ॥
 मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी
 हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल
 संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल ॥
 यह धूप चढ़ाकर अब आठों कर्मों का हनन करूँ स्वामी
 हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का ॥
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ
अबतक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्थ समर्पित करता हूँ, अविकल अनर्थ पद दो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अरहन्त देव को नमस्कार ॥१॥
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कार ॥२॥

छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रक्तत्रय हृदय धार
हे मुक्तिवधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार ॥३॥
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार ॥४॥

व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार ॥५॥
बहु पुण्यसंयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरण दर्शन
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन ॥६॥

निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ
अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ ॥७॥

निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ ॥८॥

जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा
तब चार घातिया क्षय करके, अरहन्त महापद पाऊँगा ॥९॥
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु! कब इसको पाऊँगा
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव में आऊँगा ॥१०॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु! मैंने की है पूजन
तबतक चरणों में ध्यान रहे, जबतक न प्राप्त हो मुक्ति सदन ॥११॥

ॐ हीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अनर्धपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ ॥१२॥

पुष्पाङ्गलि क्षिपेत्



नवदेवता-पूजन



श्री अरहंत सिद्ध, आचार्योपाध्याय, मुनि साधु महान् ।
जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्मदेव नव जान ॥

ये नवदेव परम हितकारी रत्नत्रय के दाता हैं ।

विघ्न विनाशक संकटहर्ता तीन लोक विख्याता हैं ॥

जल फलादि वसु द्रव्य सजाकर हे प्रभु नित्य करूँ पूजन ।

मंगलोत्तम शरण प्राप्त कर मैं पाऊँ सम्यकदर्शन ॥

आत्मतत्त्व का अवलम्बन ले पूर्ण अतीन्द्रिय सुख पाऊँ ।

नवदेवों की पूजन करके फिर न लौट भव में आऊँ ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनर्थम्-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र अवतर अवतर संवैषट् आहाननं

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनर्थम्-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः स्थापनं

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

परम भाव जल की धारा से जन्म मरण का नाश करूँ ।
मिथ्यातम का गर्व चूर कर रवि सम्यक्त्व प्रकाश करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-भ्योजनम्-जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

परमभाव चंदन के बल से भव आतप का नाश करूँ ।
अन्धकार अज्ञान मिटाऊँ सम्यक्ज्ञान प्रकाश करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-भ्योसंसार-ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

परम भाव अक्षत के द्वारा अक्षय पद को प्राप्त करूँ ।
मोह-क्षोभ से रहित बनूँ मैं सम्यक्चारित प्राप्त करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-भ्योअक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

परम भाव पुष्पों से दुर्धर काम-भाव को नाश करूँ ।
तप-संयम की महाशक्ति से निर्मल आत्म प्रकाश करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-भ्योकाम-बाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

परम भाव नैवेद्य प्राप्तकर क्षुधा व्याधि का हास करूँ ।
पंचाचार आचरण करके परम तृप्त शिववास करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योक्षुधा-रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

परम भाव मय दिव्य ज्योति से पूर्ण मोह का नाश करूँ ।
पाप-पुण्य आस्रव विनाशकर केवलज्ञान प्रकाश करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो मोह-अन्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

परम भाव मय शुक्लध्यान से अष्टकर्म का नाश करूँ ।
नित्य-निरंजन शिवपदपाऊँ सिद्धस्वरूप विकास करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अष्ट-कर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

परम भाव संपत्ति प्राप्त कर मोक्ष भवन में वास करूँ ।
रत्नत्रय की मुक्ति शिला पर सादि अनंत निवास करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योमहा-मोक्ष-फल प्राप्ताये निर्वपामीति स्वाहा

परम भाव के अर्ध चढ़ाऊँ उर अनर्ध पद व्याप्त करूँ ।
भेदज्ञान रवि हृदय जगाकर शाश्वत जीवन प्राप्त करूँ ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा, जिनधर्म ।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अनर्ध पद प्राप्ताये अर्ध निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

नवदेवों को नमन कर, करूँ आत्म कल्याण ।
शाश्वत सुख की प्राप्ति हित, करूँ भेद विज्ञान ॥

जय जय पंच परम परमेष्ठी, जिनवाणी जिन धर्म महान ।
जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, नवदेवों को, नित वन्दूं धर ध्यान ॥

श्री अरहंत देव मंगलमय, मोक्ष मार्ग के नेता हैं ।
सकल ज्ञेय के ज्ञाता दृष्टि कर्म शिखर के भेत्ता हैं ॥

हैं लोकाग्र शिखर पर सुस्थित सिद्धशिला पर सिद्धअनंत ।
अष्टकर्म रज से विहीन प्रभु सकल सिद्धदाता भगवंत ॥

हैं छत्तीस गुणों से शोभित श्री आचार्य देव भगवान ।
चार संघ के नायक ऋषिवर करते सबको शान्ति प्रदान ॥

ग्यारह अंग पूर्व चौदह के ज्ञाता उपाध्याय गुणवन्त ।
जिन आगम का पठन और पाठन करते हैं महिमावन्त ॥

अट्टाईस मूलगूण पालक, ऋषिमुनि साधु परम गुणवान ।
मोक्षमार्ग के पथिक श्रमण, करते जीवों को करुणादान ॥

स्याद्वादमय द्वादशांग, जिनवाणी है जग कल्याणी ।
जो भी शरण प्राप्त करता है, हो जाता केवलज्ञानी ॥

जिनमंदिर जिन समवशरणसम, इसकी महिमा अपरम्पार ।
गंध कुटी में नाथ विराजे, हैं अरहंत देव साकार ॥

जिन प्रतिमा अरहंतों की, नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी ।
जिन दर्शन से निज दर्शन, हो जाता तत्क्षण ज्ञानमयी ॥

श्री जिनधर्म महा मंगलमय, जीव मात्र को सुख दाता ।
इसकी छाया में जो आता, हो जाता दृष्टि ज्ञाता ॥

ये नवदेव परम उपकारी, वीतरागता के सागर ।

सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित से, भर देते सबकी गागर ॥

मुझको भी रक्त्रयनिधि दो, मैं कर्मों का भार हरूँ ।
क्षीणमोह जितराग जितेन्द्रिय, हो भव सागर पार करूँ ॥

सदा-सदा नवदेव शरण पा, मैं अपना कल्याण करूँ ।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ, हे प्रभु पूजन ध्यान करूँ ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेऽयोजयमाला पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

मंगलोत्तम शरण हैं नव देवता महान ।
भाव-पूर्ण जिन भक्ति से होता दुख अवसान ॥

इत्याशिर्वाद ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥



नवदेवता-पूजन



आर्यिका ज्ञानमती कृत

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु त्रिभुवनवन्द्य हैं
जिनधर्म जिनागम जिनेश्वर मूर्ति जिनग्रह वन्द्य हैं ॥
नवदेवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें
आहवन कर थापें यहाँ, मन में अतुल श्रद्धा धरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आहाननं

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगानदी का नीर निर्मल बाह्य मल धोवे सदा
अंतर मलों के क्षालने को नीर से पूजूँ मुदा ॥
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योजन्म-जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर मिश्रित गंध चन्दन, देह ताप निवारता
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरन्त ही वारता
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योसंसार-ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

क्षीरोदधि के फेन सम, सित तन्दुलों को लायके
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सुचढाय के
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योअक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

चंपा चमेली केवडा, नाना सुगम्भित ले लिए
भव के विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योकाम-बाण विनाशनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में
निज आत्म अमृत सौख्य हेतु, पूजहूँ नत भाल मैं
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योक्षुधा-रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर ज्योति जगमगे दीपक, लिया निज हाथ में
तुअ आरती तम वारती, पाऊं सुज्ञान प्रकाश मैं
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

दश गंध धूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊं सदा
निज आत्मगुण सौरभ उठे, हो कर्म सब मुझसे विदा
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योअष्ट-कर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अंगूर अमरख आम अमृत, फल भराऊँ थाल में
उत्तम अनुपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूं आज मैं
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योमहा-मोक्ष-फल प्राप्ताये निर्वपामीति स्वाहा

जल गंध अक्षत पुष्प चरू, दीपक सुधूप फलार्घ ले
वर रत्नत्रय निधि लाभ यह बस अर्घ से पूजत मिले
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ हीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योअनर्घ पद प्राप्ताये अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

जलधारा से नित्य मैं, जग में शांति हेत
नव देवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत ॥

शान्तये शतिधारा

नानाविधि के सुमन ले, मन में बहु हर्षाय
मैं पूजूं नव देवता पुष्पांजलि चढ़ाय ॥

दिव्य पुष्पांजलि

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योनमः

जयमाला

चिच्छिन्तामणी रत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो
गाऊं गुण मणिमाल, जयवन्ते वंदो सदा ॥१॥

जय जय श्री अरिहंत देव देव हमारे
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे ॥
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूं
जय अष्ट कर्म मुक्ति की मैं अर्चना करूं ॥२॥

आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं
दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं ॥
जैवन्त उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी
सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करे घनी ॥३॥

जय साधु अठाईस गुणों को धरें सदा
निज आत्मा की साधना से च्युत न हो कदा ॥
ये पञ्च परम देव सदा वन्द्य हमारे
संसार विषम सिन्धु से हमको भी उबारें ॥४॥

जिन धर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा ॥
इसकी ध्वनि पियूष का जो पान करेंगे
भव रोग दूर कर वो मुक्ति कान्त बनेंगे ॥५॥

जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं
वे चित्स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं ॥
कृत्रिम व अकृत्रिम जिनालयों को जो भजे

वे कर्म-शत्रु जीत शिवालय में जा बसे ॥६॥

नव-देवताओं की जो नित आराधना करे
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करे ॥
मैं कर्म-शत्रु जीतने के हेतु ही जजूं
सम्पूर्ण 'ज्ञानमती' सिद्धि हेतु ही भजूं ॥७॥

दोहा

नव देवों को भक्तिवश, कोटि-कोटि प्रणाम ।
भक्ति का फल मैं चहुँ, निज पद में विश्राम ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योजयमाला पूर्णार्थ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो भव्य श्रद्धा भक्ति से नव देवताओं की भक्ति करे
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें ॥
नवनिधि अतुल भण्डार ले, फिर मोक्ष सुख भी पावते
सुख सिन्धु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते ॥

इत्याशिर्वद ॥पुष्टांजलि क्षिपेत् ॥



सिद्धपूजा



हे सिद्ध तुम्हारे वंदन से उर में निर्मलता आती है ।
भव-भव के पातक कटते हैं पुण्यावलि शीश झुकाती है ॥
तुम गुण चिन्तन से सहज देव होता स्वभाव का भान मुझे ।
है सिद्ध समान स्वपद मेरा हो जाता निर्मल ज्ञान मुझे ॥
इसलिये नाथ पूजन करता, कब तुम समान मैं बन जाऊँ ।
जिसपथ पर चल तुम सिद्ध हुए, मैं भी चल सिद्ध स्वपद पाऊँ ॥
ज्ञानावणादिक अष्टकर्म को नष्ट करूँ ऐसा बल दो ।
निज अष्ट स्वगुण प्रगटें मुझमें, सम्यक् पूजन का यह फल हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

कर्म मलिन हूँ जन्म जरा मृतु को कैसे कर पाऊँ क्षय ।
निर्मल आत्म ज्ञान जल दो प्रभु जन्म-मृत्यु पर पाऊँ जय ॥
अजर, अमर, अविकल अविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम ।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा

शीतल चंदन ताप मिटाता, किन्तु नहीं मिटता भव ताप ।
निज स्वभाव का चंदन दो, प्रभु मिटे राग का सब संताप ॥
अजर, अमर, अविकल अविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम ।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा

उलझा हूँ संसार चक्र में कैसे इससे हो उद्धार ।
अक्षय तन्दुल रत्नत्रय दो हो जाऊँ भव सागर पार ॥
अजर, अमर, अविकल अविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम ।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

काम व्यथा से मैं घायल हूँ कैसे करूँ काम मद नाश ।
विमलदृष्टि दो ज्ञानपुष्ट दो, कामभाव हो पूर्ण विनाश ॥
अजर, अमर, अविकल अविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम ।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविधंसनाय पुष्टम् निर्वपामीति स्वाहा

क्षुधा रोग के कारण मेरा तृप्त नहीं हो पाया मन ।
शुद्धभाव नैवेद्य मुझे दो सफल करूँ प्रभु यह जीवन ॥
अजर, अमर, अविकल अविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम ।

नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा

मोहरूप मिथ्यात्व महातम अन्तर में छाया घनघोर ।
ज्ञानद्वीप प्रज्वलित करो प्रभु प्रकटे समकित रवि का भोर ॥
अजर, अमर, अविकल अविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम ।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा

कर्म शत्रु निज सुख के घाता इनको कैसे नष्ट करूँ ।
शुद्ध धूप दो ध्यान अग्नि में इन्हें जला भव कष्ट हरू ॥
अजर, अमर, अविकल अविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम ।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा

निज चैतन्य स्वरूप न जाना, कैसे निज में आऊँगा ।
भेदज्ञान फल दो हे स्वामी स्वयं मोक्ष फल पाऊँगा ॥
अजर, अमर, अविकल अविकारी अविनाशी अनंत गुणधाम ।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट द्रव्य का अर्ध्य चढ़ाऊँ, अष्टकर्म का हो संहार ।
निजअनर्ध पद पाऊँ भगवन्, सादि अनंत परम सुखकार ।
अजर, अमर, अविकल अविकारी, अविनाशी अनंत गुणधाम ।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन, ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्धपदप्राप्तये अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

मुक्तिकन्त भगवन्त सिद्ध को मनवच काया सहित प्रणाम ।
अर्ध चन्द्र सम सिद्ध शिला पर आप विराजे आठों याम ॥

ज्ञानावरण दर्शनावरणी, मोहनीय अन्तराय मिटा ।
चार घातिया नष्ट हुए तो फिर अरहन्त रूप प्रगटा ॥

वेदनीय अरु आयु नाम अर गोत्र कर्म का नाश किया ।
चऊ अघातिया नाश किये तो स्वयं स्वरूप प्रकाश किया ॥

अष्टकर्म पर विजय प्राप्त कर अष्ट स्वगुण तुमने प्राये ।
जन्म-मृत्यु का नाश किया निज सिद्ध स्वरूप स्वगुण भाये ॥

निज स्वभाव में लीन विमल चैतन्य स्वरूप अरूपी हो ।
पूर्ण ज्ञान हो पूर्ण सुखी हो पूर्ण बली चिद्रूपी हो ॥

वीतराग हो सर्व हितैषी राग-द्वेष का नाम नहीं ।
चिदानन्द चैतन्य स्वभावी कृतकृत्य कुछ काम नहीं ॥

स्वयं सिद्ध हो, स्वयं बुद्ध हो, स्वयं श्रेष्ठ समकित आगार ।
गुण अनन्त दर्शन के स्वामी तुम अनन्त गुण के भण्डार ॥

तुम अनन्त-बल के हो धारी ज्ञान अनन्तानन्त अपार ।
बाधा रहित सूक्ष्म हो भगवन् अगुरुलघु अवगाह उदार ॥

सिद्ध स्वगुण के वर्णन तक की मुझ में प्रभुवर शक्ति नहीं ।
चलूँ तुम्हारे पथ पर स्वामी ऐसी भी तो भक्ति नहीं ॥

देव तुम्हारी पूजन करके हृदय कमल मुस्काया है ।
भक्ति भाव उर में जागा है मेरा मन हर्षाया है ॥

तुम गुण का चिन्तवन करे जो स्वयं सिद्ध बन जाता है ।
हो निजात्म में लीन दुखों से छुटकारा पा जाता है ॥

अविनश्वर अविकारी सुखमय सिद्ध स्वरूप विमल मेरा ।
मुझमें है मुझसे ही प्रगटेगा स्वरूप अविकल मेरा ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्थपदप्राप्तये महार्थं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वभावी आत्मा निश्चय सिद्ध स्वरूप ।
गुण अनन्तयुत ज्ञानमय है त्रिकाल शिवभूप ॥

पुष्पाङ्गलि क्षिपेत्



सिद्धपूजा

दोहा

चिदानंद स्वातम रसी, सत शिव सुंदर जान ।
ज्ञाता दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानं

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

वीर छंद

ज्यों-ज्यों प्रभुवर जलपान किया, त्यों त्यों तृष्णा की आग जली ।
थी आस कि प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली ॥
आशा तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणों में आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

तन का उपचार किया अब तक, उस पर चंदन का लेप किया ।
मलमल कर खूब नहा कर के, तन के मल का विक्षेप किया ॥
अब आत्म के उपचार हेतु, तुमको चंदन सम है पाया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा



सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखंड अविनाशी हो ।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल सन्यासी हो ॥
ले शालिकणों का अवलंबन, अक्षयपद तुमको अपनाया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता ।
हो हार जगत के बैरी की, क्यों नहीं आनंद बढ़े सब का ॥
प्रमुदित मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने कामबाण विघ्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है ।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भरपेट मनुज क्यों मरता है?
तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हूं आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम निर्वपामीति स्वाहा

आलोक ज्ञान का कारण है, इंद्रिय से ज्ञान उपजता है ।
यह मान रहा था पर क्यों कर, जड़ चेतन सर्जन करता है ॥
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेदज्ञान पा हर्षया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं ।
मैं हूँ अखंड चिदपिण्ड चंड, पर से कुछ भी संबंध नहीं ॥
यह धूप नहीं जड़ कर्मों की रज, आज उड़ाने मैं आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ कर्मों का फल विषय भोग, भोगों में मानस रमा रहा ।
नित नई लालसाएं जागी, तन्मय हो उनमें समा रहा ॥
रागादि विभाव किये जितने, आकुलता उनका फल पाया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल पिया और चंदन चर्चा, मालाएं सुरभित सुमनों की ।
पहनी तंदुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की ॥
सुरभि धूपायन की फैली, शुभ कर्मों का सब फल पाया ॥
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया ॥
जब दृष्टि पड़ी प्रभु जी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ ॥
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूं आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥९ ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अनर्थ पद प्राप्ताय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहा

आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्म प्रकाश ।
आनंदामृत पान कर, मिटे सभी की प्यास ॥

पद्मरि

जय ज्ञानमात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनंत चैतन्य भूप ।
तुम हो अखंड आनंद पिंड मोहारि दलन को तुम प्रचंड ॥
राग आदि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार ।
निर्द्वंद निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार ॥

नित करत रहत आनंद रास, स्वाभाविक परिणति में विलास ।
प्रभु शिव रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार ॥

प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार ।
निज परिणति का सत्यार्थ भान, शिव पद दाता जो तत्वज्ञान ॥

पाया नहीं मैं उसको पिछान, उल्टा ही मैंने लिया मान ।
चेतन को जड़-मय लिया जान, पर मैं अपनापा लिया मान ॥
शुभ-अशुभ राग जो दुःखखान, उसमें माना आनंद महान ।
प्रभु अशुभ कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय ॥

जो धर्म ध्यान आनंद रूप, उसको माना मैं दुख स्वरूप ।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोज्ञ ॥
इच्छा निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव विषय दाह ।
आकुलतामय संसार सुख, जो निश्चय से है महा दुख ॥

उसकी ही निशदिन करी आस, कैसे कटता संसार पास ।
भव दुख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान ॥
मैं दान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहीं दिया ध्यान ।
पूजा कीनी वरदान मांग, कैसे मिटता संसार स्वांग?

तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गए सफल संपूर्ण काज ।
मो उर प्रगत्यो प्रभु भेद ज्ञान, मैंने तुमको लीना पिछान ॥
तुम पर के कर्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सबके एक साथ ।
तुम भक्तों को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत ॥

यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुमको बस पिछान ।
वह पाता है कैवल्य ज्ञान, होता परिपूर्ण कला निधान ॥
विपदामय पर-पद है निकाम, निज पद ही है आनंद धाम ।
मेरे मन में बस यही चाह, निज पद को पाऊं हे जिनाह ॥

ॐ हीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अनर्थ पद प्राप्ताय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पर का कुछ नहीं चाहता, चाहूं अपना भाव ।
निज स्वभाव में थिर रहूं, मेटो सकल विभाव ॥

पुष्पांजलिम् क्षिपामि



सिद्धपूजा



श्री युगलजी कृत

निज वज्र पौरुष से प्रभो! अन्तर-कलुष सब हर लिये
प्रांजल प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये ॥
सर्वोच्च हो अत एव बसते, लोक के उस शिखर रे!
तुमको हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्नानं

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शुद्धातम-सा परिशुद्ध प्रभो! यह निर्मल नीर चरण लाया
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अंतिम दिन आया ॥
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु! धू-धू क्रोधानल जलता है
अज्ञान-अमा के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है ॥
प्रभु! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में
मैं इसीलिए मलयज लाया, क्रोधासुर भागे पलकों में ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा

अधिपति प्रभु! धवल भवन के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल
अंतर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल ॥

मैं महामान से क्षत-विक्षत, हूँ खंड-खंड लोकांत-विभो
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु! अक्षत की गरिमा भर दो ॥

ॐ हौं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

चैतन्य-सुरभि की पुष्पवाटिका, मैं विहार नित करते हो
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो ॥
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल-मधु मधुशाला से

ॐ हौं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविधंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो! इसकी पहिचान कभी न हुई
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत-तृष्णा अविरल पीन हुई ॥
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये
सत्वर तृष्णा को तोड़ प्रभो! लो, हम आनंद-भवन पहुँचे ॥

ॐ हौं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा

विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय
कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव ॥
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ ॥

ॐ हौं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी धूपों से
अतएव निकट नहिं आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे ॥
यह धूप सुरभि-निझरणी, मेरा पर्यावरण विशुद्ध हुआ
छक गया योग-निद्रा में प्रभु! सर्वांग अमी है बरस रहा ॥

ॐ हौं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में
प्रति पल बरसात गगन से हो, रसपान करो शिव-गगरी में ॥

ये सुरतरुओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण
प्रभु! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा

तेरे विकीर्ण गुण सारे प्रभु! मुक्ता-मोदक से सघन हुए
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूति अनुभूति लिये ॥
हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर-वैभव की मस्ती
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश
शोध-प्रबंध चिदात्म के, सृष्टा तुम ही एक ॥

जगाया तुमने कितनी बार! हुआ नहिं चिर-निद्रा का अन्त
मदिर सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त ॥
घोर-तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान ॥

ज्ञान की प्रतिपल उठे तरंग, झाँकता उसमें आत्मराम
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम ॥
किन्तु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी गहल अनन्त
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैनें कभी बसंत ॥

नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति ॥
अतः जड़-कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश
और फिर नरक-निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश ॥

घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा मेरे शीश

नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच ॥
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव!
अंत में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव!

दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान् ॥
अरे! मिट्ठी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय ॥

अहो चित् परम अकर्त्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष, सभी ज्ञानी का यह परिवेश ॥
बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ ॥

किया तुमने जीवन का शिल्प, खिरे सब मोहकर्म और गात
तुम्हारा पौरुष झँझावात, झड़ गये पीले-पीले पात ॥
नहीं प्रज्ञा-आवर्त्तन शेष, हुए सब आवागमन अशेष
अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक ॥

तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग ॥
योग-चांचल्य हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप
अरे! ओ योगरहित योगीश! रहो यों काल अनंतानंत ॥

जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्त्व अखंड
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलंब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध ॥
अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल पुनीत
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम ध्वलमहल के बीच ॥

उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ!
अरे! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात ॥

प्रभो! बीती विभावरी आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव
झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव ॥

ॐ ह्ं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्थपदप्राप्तये महार्थं निर्वपामीति स्वाहा

चिर-विलास चिद्धृत्म में, चिर-निमग्न भगवंत
द्रव्य-भाव स्तुति से प्रभो!, वंदन तुम्हें अनंत ॥

पुष्पाङ्गलि क्षिणेत्



सिद्धपूजा



कविश्री हीराचंद कृत

अडिल्ल छन्द

अष्ट-करम करि नष्ट अष्ट-गुण पाय के,
अष्टम-वसुधा माँहिं विराजे जाय के
ऐसे सिद्ध अनंत महंत मनाय के,
संवौषट् आह्वान करूँ हरषाय के ॥

ॐ ह्ं णमो सिद्धाण्ं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर! अवतर! अवतर! संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्ं णमो सिद्धाण्ं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्पापनं

ॐ ह्ं णमो सिद्धाण्ं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

छन्द विभगी

हिमवन-गत गंगा आदि अभंगा, तीर्थ उतंगा सरवंगा
आनिय सुरसंगा सलिल सुरंगा, करि मन चंगा भरि भृंगा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्ं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचंदन लायो कपूर मिलायो, बहु महकायो मन भायो
जल संग घिसायो रंग सुहायो, चरन चढायो हरषायो ॥

त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल उजियारे शशि-दुति टारे, कोमल प्यारे अनियारे
तुष-खंड निकारे जल सु-पखारे, पुंज तुम्हारे ढिंग धारे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुरतरु की बारी प्रीति-विहारी, किरिया प्यारी गुलजारी
भरि कंचनथारी माल संवारी, तुम पद धारी अतिसारी ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण-विधंसनाय पुण्यं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान निवाजे स्वाद विराजे, अमृत लाजे क्षुध भाजे
बहु मोदक छाजे घेवर खाजे, पूजन काजे करि ताजे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

आपा-पर भासे ज्ञान प्रकाशे, चित्त विकासे तम नासे
ऐसे विध खासे दीप उजासे, धरि तुम पासे उल्लासे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

चुंबत अलिमाला गंधविशाला, चंदन काला गरुवाला
तस चूर्ण रसाला करि तत्काला, अग्नि-ज्वाला में डाला ॥

त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ हौं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्ट-कर्म-विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल अतिभारा, पिस्ता प्यारा, दाख छुहारा सहकारा
रितु-रितु का न्यारा सत्फल सारा, अपरंपारा ले धारा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ हौं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल-फल वसुवृंदा अरघ अमंदा, जजत अनंदा के कंदा
मेटो भवफंदा सब दुःखदंदा, 'हीराचंदा' तुम वंदा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ हौं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपट-प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहा

ध्यान-दहन विधि-दारु दहि, पायो पद-निरवान
पंचभाव-जुत थिर थये, नमूं सिद्ध भगवान् ॥१॥

त्रोटक छन्द

सुख सम्यक्-दर्शन-ज्ञान लहा, अगुरु-लघु सूक्ष्म वीर्य महा
अवगाह अबाध अघायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२॥
असुरेन्द्र सुरेन्द्र नरेन्द्र जजें, भुवनेन्द्र खगेन्द्र गणेन्द्र भजें
जर-जामन-मर्ण मिटायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥३॥

अमलं अचलं अकलं अकुलं, अछलं असलं अरलं अतुलं
अबलं सरलं शिवनायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥४॥

अजरं अमरं अघरं सुधरं, अडरं अहरं अमरं अधरं
अपरं असरं सब लायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥५॥

वृषवृंद अमंद न निंद लहें, निरदंद अफंद सुछंद रहें
नित आनंदवृंद बधायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥६॥
भगवंत सुसंत अनंत गुणी, जयवंत महंत नमंत मुनी
जगजंतु तणे अघ घायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥७॥

अकलंक अटंक शुभंकर हो, निरडंक निशंक शिवंकर हो
अभयंकर शंकर क्षायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥८॥
अतरंग अरंग असंग सदा, भवभंग अभंग उतंग सदा
सरवंग अनंग नसायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥९॥

ब्रह्मंड जु मंडल मंडन हो, तिहुँ-दंड प्रचंड विहंडन हो
चिद्पिंड अखंड अकायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१०॥
निरभोग सुभोग वियोग हरे, निरजोग अरोग अशोक धरे
भ्रमभंजन तीक्षण सायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥११॥

जय लक्ष अलक्ष सुलक्षक हो, जय दक्षक पक्षक रक्षक हो
पण अक्ष प्रतक्ष खपायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१२॥
अप्रमाद अनाद सुस्वाद-रता, उनमाद विवाद विषाद-हता
समता रमता अकषायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१३॥

निरभेद अखेद अछेद सही, निरवेद अवेदन वेद नहीं
सब लोक-अलोक के ज्ञायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१४॥
अमलीन अदीन अरीन हने, निजलीन अधीन अछीन बने
जम को घनघात बचायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१५॥

न अहार निहार विहार कबै, अविकार अपार उदार सबै
जगजीवन के मनभायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१६॥
असमंध अधंद अरंध भये, निरबंध अखंद अगंध ठये

अमनं अतनं निरवायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१७॥

निरवर्ण अकर्ण उधर्ण बली, दुःख हर्ण अशर्ण सुशर्ण भली
बलिमोह की फौज भगायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१८॥

अविरुद्ध अक्रुद्ध अजुद्ध प्रभू अति-शुद्ध प्रबुद्ध समृद्ध विभू
परमात्म पूरन पायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१९॥

विरूप चिद्रूप स्वरूप दयुती, जसकूप अनूपम भूप भुती
कृतकृत्य जगत्त्वय-नायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२०॥

सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू, उल्कृष्ट वरिष्ट गरिष्ट मितू
शिव तिष्ठत सर्व-सहायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२१॥

जय श्रीधर श्रीकर श्रीवर हो, जय श्रीकर श्रीभर श्रीझर हो
जय रिद्धि सुसिद्धि-बढ़ायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२२॥

दोहा

सिद्ध-सुगुण को कहि सके, ज्यों विलसत नभमान
'हीराचंद' ता ते जजे, करहु सकल कल्यान ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहतपराक्रमाय सकलकर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परिमेष्टिने जयमाला-पूर्णार्थ्य निर्वपामीति स्वाहा

अडिल्ल छन्द

सिद्ध जजैं तिनको नहिं आवे आपदा
पुत्र-पौत्र धन-धान्य लहे सुख-संपदा ॥
इंद्र चंद्र धरणेद्र नरेन्द्र जु होय के
जावें मुकति मँझार करम सब खोय के ॥२४॥

इत्याशीर्वादः - पुष्टांजलि क्षिपेत्



त्रिकाल-चौबीसी-पूजन



श्री निर्वाण आदि तीर्थकर भूतकाल के तुम्हें नमन ।
श्री वृषभादिक वीर जिनेश्वर वर्तमान के तुम्हें नमन ॥
महापद्म अनंतवीर्य तीर्थकर भावी तुम्हें नमन ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को करूँ नमन ॥

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकर समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आहानन्

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकर समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकर समूह ! अत्र मम सभिहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सात तत्त्व श्रद्धा के जल से मिथ्या मल को दूर करूँ ।
जन्म जरा भय मरण नाश हित पर विभाव चक्कूर करूँ ॥
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

नव पदार्थ को ज्यों का त्यों लख वस्तु तत्त्व पहचान करूँ ।
भव आताप नशाऊँ मैं निज गुण चंदन बहुमान करूँ ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

षट् द्रव्यों से पूर्ण विश्व मैं आत्म द्रव्य का ज्ञान करूँ ।
अक्षय पद पाने को अक्षत गुण से निज कल्याण करूँ ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

जानूँ मैं पंचास्ति काया को पंच महाव्रत शील धरूँ ।
काम-व्याधि का नाश करूँ निज आत्म पृष्ठ की सुरभि वरूँ ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

ॐ हीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव नैवेद्य ग्रहण कर क्षुधा रोग को विजय करूँ ।
तीन लोक चौदह राजु ऊँचे में मोहित अब न फिरूँ ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

ॐ हीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो ३ शुद्धारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञान दीप की विमल ज्योति से मोह तिमिर क्षय कर मानूँ ।
त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्य गुण पर्यायें युगपत जानूँ ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

ॐ हीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

निज समान सब जीव जानकर षट कायक रक्षा पालूँ ।
शुक्ल ध्यान की शुद्ध धूप से अष्ट कर्म क्षय कर डालूँ ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

ॐ हीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

पंच समिति त्रय गुप्ति पंच इन्द्रिय निरोध व्रत पंचाचार ।
अट्टाईस मूल गुण पालूँ पंच लिङ्गि फल मोक्ष अपार ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

ॐ हीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, भविष्य, वर्तमान जिनतीर्थकरेभ्यो महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

छियालीस गुण सहित दोष अष्टादश रहित बनूँ अरहन्त ।
गुण अनन्त सिद्धों के पाकर लूँ अनर्घ पद हे भगवन्त ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की चौबीसी को नमन करूँ ।
क्रोध लोभ मद माया हर कर मोह क्षोभ को शमन करूँ ॥

श्री भूतकाल चौबीसी

जय निर्वण, जयति सागर, जय महासाधु, जय विमल, प्रभो ।
 जय शुद्धाभ, देव जय श्रीधर, श्रीदत्त सिद्धाभ, विभो ॥
 जयति अमल प्रभु, जय उद्धार, देव जय अग्नि देव संयम ।
 जय शिवगण, पुष्पांजलि, जय उत्साह, जयति परमेश्वर नम ॥
 जय ज्ञानेश्वर, जय विमलेश्वर, जयति यशोधर, प्रभु जय जय
 जयति कृष्णमति, जयति ज्ञानमति, जयति शुद्धमति जय जय जय ॥
 जय श्रीभद्र, अनंतवीर्य जय भूतकाल चौबीसी जय ।
 जंबूद्धीप सुभरत क्षेत्र के जिन तीर्थकर की जय जय ॥

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधी भूतकाल चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

श्री वर्तमान काल चौबीसी

ऋषभदेव, जय अजितनाथ, प्रभु संभव स्वामी, अभिनन्दन ।
 सुमतिनाथ, जय जयति पद्मप्रभु, जय सुपार्श्व, चंदा प्रभु जिन ॥
 पुष्पदंत, शीतल, जिन स्वामी जय श्रेयांस नाथ भगवान ।
 वासुपूज्य, प्रभु विमल, अनंत, सु धर्मनाथ, जिन शांति महान ॥
 कुनथुनाथ, अरनाथ, मल्लि, प्रभु मुनिसुव्रत, नमिनाथ जिनेश ।
 नेमिनाथ, प्रभु पार्श्वनाथ, प्रभु महावीर, प्रभु महा महेश ॥
 पूज्य पंच कल्याण विभूषित वर्तमान चौबीसी जय ।
 जंबूद्धीप सुभरत क्षेत्र के तीर्थकरेभ्यो प्रभु की जय जय ॥

ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र संबंधी वर्तमान काल चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

श्री भविष्य काल चौबीसी

जय प्रभु महापद्म सुरप्रभ, जय सुप्रभ, जयति स्वयंप्रभु, नाथ ।
 सर्वायुध, जयदेव, उदयप्रभ, प्रभादेव, जय उदंक नाथ ॥
 प्रश्नकीर्ति, जयकीर्ति जयति जय पूर्ण बुद्धि, निःकषाय जिनेश ।
 जयति विमल प्रभु जयति बहुल प्रभु, निर्मल, चित्र गुप्ति, परमेश ॥
 जयति समाधि गुप्ति, जय स्वयंप्रभु, जय कंदर्प, देव जयनाथ ।

जयति विमल, जय दिव्यवाद, जय जयति अनंतवीर्य, जगन्नाथ ॥
जंबूद्धीप सुभरत क्षेत्र के तीर्थकरेभ्यो प्रभु की जय जय ।
भूत, भविष्यत् वर्तमान त्रय चौबीसी की जय जय जय ॥

ॐ हीं भरत क्षेत्र संबंधी भविष्यकाल चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तीनकाल त्रय चौबीसी के नमूँ बहतर तीर्थकर ।
विनयभक्ति से श्रद्धापूर्वक पाऊँ निज पद प्रभु सत्वर ॥
मैंने काल अनादि गंवाया पर-पदार्थ में रच पचकर ।
पर-भावों में मग्न रहा मैं निज भावों से बच बचकर ॥

इसीलिये चारों गतियों के कष्ट अनंत सहे मैंने ।
धर्म मार्ग पर द्वष्टि न डाली कर्म कुपंथ गहे मैंने ॥
आज पुण्य संयोग मिला प्रभु शरण आपकी मैं आया ।
भव-भव के अघ नष्ट हो गये मानों चितांमणि पाया ॥

हे प्रभु मुझको विमल ज्ञान दो सम्यक् पथ पर आ जाऊँ ।
रत्नत्रय की धर्म-नाव चढ़ भव सागर से तर जाऊँ ॥
सम्यक् दर्शन अष्ट अंग सह अष्टभेद सह सम्यक् ज्ञान ।
तेरह विध चारित्र धार लूँ द्वादश तप भावना प्रधान ॥

हे जिनवर ! आशीर्वाद दो निज स्वरूप में रम जाऊँ ।
निज स्वभाव अवलम्बन द्वारा शाश्वत निज-पद प्रगटाऊँ ॥

ॐ हीं भरत क्षेत्र संबंधी भूत, वर्तमान, भविष्य काल चतुर्विंशति पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

तीनकाल की त्रय चौबीसी की महिमा है अपरम्पार ।
मन-वच-तन जो ध्यान लगाते वे हो जाते भव से पार ॥

इत्याशीर्वादः ॥ पुष्टांजलि क्षिपेत ॥





चौबीस-तीर्थकर

कविवर वृन्दावनदास कृत

वृषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय
 चन्द्र पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय ॥
 विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय
 मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विशतिजिनसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विशतिजिनसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विशतिजिनसमूह अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा
 भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा ॥
 चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
 पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी
 जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी ॥
 चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
 पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तन्दुल सित सोम -समान सुन्दर अनियारे
 मुक्ता फल की उनमान पुञ्ज धरों प्यारे ॥
 चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
 पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

वर-कंज कदम्ब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे

जिन-अग्र धरों गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

मन-मोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै
सब तिमिर मोहक्षय जाय, ज्ञान-कला जागै ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशगन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु! खेवत हों
मिस-धूम करम जर जाहिं, तुम पद सेवत हों ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अष्टकमंदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि पक्ष सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो
देखत दग-मनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों

तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ हीं श्रीवृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥

जय भव-तम भंजन, जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मनि, स्वच्छ करा
शिव-मग-परकाशक, अरिगण-नाशक, चौबीसों जिनराज वरा ॥

जय ऋषभदेव रिषि-गन नमन्त,
जय अजित जीत वसु-अरि तुरन्त ।
जय सम्भव भव-भय करत चूर,
जय अभिनन्दन आनन्द-पूर ॥१॥

जय सुमति सुमति-दायक दयाल,
जय पद्म पद्म दयुति तनरसाल ।
जय जय सुपार्श्व भव-पास नाश,
जय चन्द चन्द-तनदयुति प्रकाश ॥२॥

जय पुष्पदन्त दयुति-दन्त-सेत,
जय शीतल शीतल-गुननिकेत ।
जय श्रेयनाथ नुत-सहस्रभुज्ज,
जय वासव-पूजित वासुपुज्ज ॥३॥

जय विमल विमल-पद देनहार,
जय जय अनन्त गुन-गण अपार ।
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत,

जय शान्ति शान्ति पुष्टी करेत ॥४॥

जय कुन्थु कुन्थुवादिक रखेय,
जय अरजिन वसु-अरि छय करेय ।
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल,
जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल ॥५॥

जय नमि नित वासव-नुत सपेम,
जय नेमिनाथ वृष-चक्र नेम ।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ,
जय वर्द्धमान शिव-नगर साथ ॥६॥

धर्मा

चौबीस जिनन्दा, आनन्द-कन्दा, पाप-निकन्दा, सुखकारी
तिन पद-जुग-चन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा, हितकारी ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर
तिन-पद मन-वच-धार, जो पूजै सो शिव लहै ॥

पुष्पाङ्गांि क्षिपेत्



चौबीस-तीर्थकर

भरत क्षेत्र की वर्तमान जिन चौबीसी को करूँ नमन ।
वृषभादिक श्री वीर जिनेश्वर के पद पंकज में वन्दन ॥
भक्ति भाव से नमस्कार कर विनय सहित करता पूजन ।
भव सागर से पार करो प्रभु यही प्रार्थना है भगवन ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवैषष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं



ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र मम सभिहितो भव भव वषट् सन्त्रिधि करणं

आत्मज्ञान वैभव के जल से यह भव तृषा बुझाऊँगा ।
जन्मजरा हर चिदानन्द चिन्मयकी ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्ञान वैभव के चन्दन से भवताप नशाऊँगा ।
भवबाधा हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्ञान वैभव के अक्षत से अक्षय पद पाऊँगा।
भवसमुद्र तिर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्ञान वैभव के पुष्पों से मैं काम नशाऊँगा।
शीलोदधि पा चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्ञान वैभव के चरु ले क्षुधा व्याधि हर पाऊँगा ।
पूर्ण तृप्ति पा चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्ञान वैभव दीपक से भेद ज्ञान प्रगटाऊँगा ।
मोहतिमिर हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्ञान वैभव को निज में शुचिमय धूप चढ़ाऊँगा ।
अष्टकर्म हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्ञान वैभव के फल से शुद्ध मोक्ष फल पाऊँगा ।
राग-द्वेष हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्ञान वैभव का निर्मल अर्ध अपूर्व बनाऊँगा ।
पा अनर्घ्य पद चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारुंगा ।
पर-द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारुंगा ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

भव्य दिगम्बर जिन प्रतिमा नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी ।
जिन दर्शन पूजन अघ-नाशक भव-भव में कल्याणमयी ॥
वृषभदेव के चरण पखारूं मिथ्या तिमिर विनाश करूँ ।

अजितनाथ पद वन्दन करके पंच पाप मल नाश करूँ ॥

सम्भव जिन का दर्शन करके सम्यकदर्शन प्राप्त करूँ ।
अभिनन्दन प्रभु पद अर्चन कर सम्यकज्ञान प्रकाश करूँ ॥
सुमतिनाथ का सुमिरण करके सम्यकचारित हृदय धरूँ ।
श्री पदम प्रभु का पूजन कर रत्नत्रय का वरण करूँ ॥

श्री सुपार्श्व की स्तुति करके मैं मोह ममत्व अभाव करूँ ।
चन्दाप्रभु के चरण चित्त धर चार कषाय अभाव करूँ ॥
पुष्पदंत के पद कमलों में बारम्बार प्रणाम करूँ ।
शीतल जिनका सुयशगान कर शाश्वत शीतल धाम वरूँ ॥

प्रभु श्रेयांसनाथ को बन्दू श्रेयस पद की प्राप्ति करूँ ।
वासुपूज्य के चरण पूज कर मैं अनादि की भ्रांति हरूँ ॥
विमल जिनेश मोक्षपद दाता पंच महाव्रत ग्रहण करूँ ।
श्री अनन्तप्रभु के पद बन्दू पर परणति का हरण करूँ ॥

धर्मनाथ पद मस्तक धर कर निज स्वरूप का ध्यान करूँ ।
शांतिनाथ की शांत मूर्ति लख परमशांत रस पान करूँ ॥
कुंथनाथ को नमस्कार कर शुद्ध स्वरूप प्रकाश करूँ ।
अरहनाथ प्रभु सर्वदोष हर अष्टकर्म अरि नाश करूँ ॥

मल्लिनाथ की महिमा गाऊँ मोह मल्ल को चूर करूँ ।
मुनिसुव्रत को नित प्रति ध्याऊँ दोष अठारह दूर करूँ ॥
नमि जिनेश को नमन करूँ मैं निजपरिणति मैं रमण करूँ ।
नेमिनाथ का नित्य ध्यान धर भाव शुभा-शुभ शमन करूँ ॥

पार्श्वनाथ प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर भव भार हरूँ ।
महावीर के पथ पर चलकर मैं भव सागर पार करूँ ॥
चौबीसों तीर्थकर प्रभु का भाव सहित गुणगान करूँ ।
तुम समान निज पद पाने को शुद्धात्म का ध्यान करूँ ॥

श्री चौबीस जिनेश के चरण कमल उर धार ।
मन, वच, तन, जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशिवार्ददः ॥ पुष्टाजलि क्षिपेत् ॥



अनन्त-तीर्थकर-पूजन

ढाई द्वीप के भूतकाल में हुए अनंतों तीर्थकर ।
वर्तमान में भी होते हैं ढाई द्वीप में तीर्थकर ॥
अरु भविष्य में भी अनंत तीर्थकर होंगे मंगलकर ।
इन सबको वन्दन करता हूँ विनयभाव उर में धर कर ॥
भक्तिभाव से अनन्त तीर्थकर की करता हूँ पूजन ।
सकल तीर्थकर वन्दन कर पाऊँ प्रभु सम्यक् दर्शन ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अष्टक ... वीरलंद

रत्नत्रय रूपी सम्यक् जल की धारा उर लाऊँ आज ।
जन्म जरा मरणादि रोग हर मैं भी पाऊँ निज पदराज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय रूपी सम्यक् चंदन का तिलक लगाऊँ आज ।
भवातापज्वर पूर्ण नाश कर मैं भी पाऊँ निज-पद राज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय रूपी सम्यक् अक्षत् प्रभु चरण चढ़ाऊँ आज ।
अक्षयपद की प्राप्ति करूँ प्रभु मैं भी पाऊँ निज पदराज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय रूपी गुण पुष्पों से निज हृदय सजाऊँ आज ।
कामबाण की व्यथा विनाशू मैं भी पाऊँ निज पदराज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय रूपी अनुभव रसमय चरू चरण चढ़ाऊँ आज ।
अनाहार सुख प्राप्त करूँ प्रभु मैं भी पाऊँ निज पदराज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय रूपी दीपक की जग मग ज्योति जगाऊँ आज ।
मोह तिमिर मिथ्यात्व नष्ट कर मैं भी पाऊँ निज पदराज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय रूपी स्वध्यानमय धूप हृदय मैं लाऊँ आज ।
अष्टकर्म सम्पूर्ण नष्ट कर मैं भी पाऊँ निज पदराज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ हीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय रूपी तरु के फल ज्ञान शक्ति से लाऊँ आज ।
पूर्ण मोक्षफल प्राप्त करूँ प्रभु मैं भी पाऊँ निज पदराज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ हीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय रूपी गुण अर्ध बनाऊँ प्रभु निज हित के काज ।
पद अनर्ध प्रगटाऊँ शाश्वत मैं भी पाऊँ निज पदराज ॥
भूत विद्य भावी कालों के तीर्थकर भगवन्त अनन्त ।
विनय भक्ति से वन्दन करता दुखदायी भव का हो अन्त ॥

ॐ हीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्ध निर्वपामीति स्वाहा

महाअर्थ

वीरचंद

तीन लोक में मध्य लोक है मध्य लोक में जम्बू द्वीप ।
द्वितीय धातकीखंड द्वीप है जो भव्यों के सदा समीप ॥
तीजे पुष्कर का है आधा पुष्करार्ध नाम विख्यात ।
ये ही ढाई द्वीप कहाते पंचमेरू इनमें प्रख्यात ॥

मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मंदर, विधुन्माली क्रमक्रम ।
इनके दक्षिण भरत तथा उत्तर में ऐरावत अनुपम ॥
इन पाँचों के पूरब पश्चिम नाम विदेह क्षेत्र विख्यात ।
इन सबमें तीर्थकर होते कर्म भूमि हैं ये प्रख्यात ॥

इन सब में पाँचों कल्याणक वाले तीर्थकर होते ।
गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष कल्याण ये पाँचों होते ॥
पर विदेह में तीन कल्याणक वाले भी प्रभु होते हैं ।
तप अरु ज्ञान, मोक्ष कल्याणक वाले जिनवर होते हैं ॥

दो कल्याणक वाले तीर्थकर भी इनमें होते हैं ।
ज्ञान और मोक्ष कल्याणक पवित्र इनके होते हैं ॥
अरु भविष्य में भी अनंत तीर्थकर होंगे इसी प्रकार ।
स्वयं तिरेंगे अन्यों को भी तारेंगे ले जा भव पार ॥

त्रिकालवर्ती अनंत तीर्थकर प्रभुओं को है विनय प्रणाम ।
नाम अनंतानंत आपके कैसे जपूँ आपके नाम ॥
तीन लोक के सकल तीर्थकर पूजन का जागा भाव ।
पूजन का फ़ल यही चाहता मैं भी दुख का करूँ अभाव ॥

दोहा

महा अर्ध्य अर्पण करूँ तीर्थकर जिनराज ।
नमूँ अनंतानंत प्रभु त्रिकालवर्ती आज ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

छंद-दिग्बधू

रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ।
अतएव अनंते दुख सहते आये हो तुम ॥

मिथ्या भ्रम मद पीकर चहुँगति में भ्रमण किया ।
भव-पीड़ा हरने को निज ज्ञान न हृदय लिया ॥
भवदुख धारा में ही बहते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

सुख पाना चाहो तो सत्यथ पर आ जाओ ।
तत्त्वाभ्यास करके निज निर्णय उर लाओ ॥
भव-ज्वाला के भीतर जलते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

पहिले समकित धन लो उर भेद ज्ञान करके ।
मिथ्यात्व मोह नाशो अज्ञान सर्व हर के ॥
शुभ अशुभ जाल में ही जलते आए हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

फिर अविरति जय करके अणुव्रत धारण करना ।
फिर तीन चौकड़ी हर संयम निज उर धरना ॥
बिन व्रत खोटी गति में जाते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

अब दुष्ट प्रमाद नहीं आयेगा जीवन भर ।
मिल जायेगा तुमको अनुभव रस का सागर ॥
निज अनुभव बिन जग में थमते आए हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

झट धर्म-ध्यान उर धर आगे बढ़ते जाना ।
उर शुक्ल-ध्यान लेकर श्रेणी पर चढ़ जाना ॥
कर भाव मरण प्रतिपल मरते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

फिर यथाख्यात लेकर घातिया नाश करना ।
कैवल्य ज्ञान रवि पा सर्वज्ञ स्वपद वरना ॥
निज ज्ञान बिना सुध-बुध खोते आए हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

फिर अघातिया क्षय हित योगों को विनशाना ।
कर शेष कर्म सब क्षय सिद्धत्व स्वगुण पाना ॥
ध्रुवध्यान बिना भव में भ्रमते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

इस विधि से ही चेतन निज शिव सुख पाओगे ।

शिव पथ खुलते ही झट शिवपुर में जाओगे ॥
पर घर में रह बहुदुख पाते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

निज मुक्ति-वधु के संग परिणय होगा पावन ।
पाओगे सौख्य अतुल तुम मोक्ष मध्य प्रतिक्षण ॥
शिवसुख भी भव जल में धोते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ।

लौटोगे फ़िर न कभी ध्रुव सिद्ध-शिला पाकर ।
ध्रुवधाम राज्य पाकर हो जाओगे शिवकर ॥
अपने अनंत गुण बिन रोते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

आनन्द अतीन्द्रिय की धारा है महामनोज्ञ ।
सिद्धों समान सब ही प्राणी हैं पूरे योग्य ॥
अपना स्वरूप भूले क्यों बौराये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

निजज्ञान क्रिया से ही मिलता है सिद्ध स्वपद ।
तब ही त्रिकालवर्ती जिन तजते सकल अपद ॥
निज पद तज पर पद ही भजते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

जितने तीर्थश हुए सबने पर पद त्यागे ।
अपने स्वभाव में ही प्रतिपल प्रतिक्षण लागे ॥
अब तक आस्रव को ही ध्याते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

अवसर अपूर्व पाया निज का चिन्तन करलो ।
तीर्थकर दर्शन कर सारे बन्धन हरलो ॥

जब भी अवसर आया खोते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

मैं बार-बार कन्दूँ तीर्षेश अनंतानंत ।
चहुँगति दुख हर पाऊँ पंचमगति सुख भगवंत ।
पर के ही गीत सदा गाते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

सद्गुरु की सीख सुनो फिर कभी न उलझोगे ।
बोलो कब चेतोगे कब तक तुम सुलझोगे ॥
कब से कल कल कल कल कहते आये हो तुम ।
रागों की हवेली में रहते आये हो तुम ॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती अनन्त तीर्थकर जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

आशीर्वद -- वीरछन्द

ढाईद्वीप के मध्य हुए हो रहे तथा होंगे जिनराज ।
भूत विद्य भावी अनंत तीर्थकर मैंने पूजे आज ॥
तीर्थकर प्रभु के चरणों में प्रभु पाऊँ सम्यक् दर्शन ।
रत्नत्रय को धारण करके नाश करूँ भव के बंधन ॥

पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्



श्री-वीतराग-पूजन



द्र. श्री रवीन्द्रजी 'आसन' कृत

दोहा

शुद्धात्म में मग्न हो, परमात्म पद पाय ।
भविजन को शुद्धात्मा, उपादेय दरशाय ॥
जाय बसे शिवलोक में, अहो अहो जिनराज ।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, आयो पूजन काज ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट् आह्नानं

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

ज्ञानानुभूति ही परमामृत है, ज्ञानमयी मेरी काया ।
है परम पारिणामिक निष्क्रिय, जिसमें कुछ स्वांग न दिखलाया ॥
मैं देख स्वयं के वैभव को, प्रभुकर अति ही हर्षया हूँ ।
अपनी स्वाभाविक निर्मलता, अपने अन्तर में पाया हूँ ॥
थिर रह न सका उपयोग प्रभो, बहुमान आपका आया है ।
समतामय निर्मल जल ही प्रभु, पूजन के योग्य सुहाया है ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

है सहज अकर्ता ज्ञायक प्रभु, ध्रुव रूप सदा ही रहता है ।
सागर की लहरों सम जिसमें, परिणमन निरन्तर होता है ॥
हे शान्ति सिन्धु ! अवबोधमयी, अद्भुत तृप्ति उपजाई है ।
अब चाह दाह प्रभु शमित हुई, शीतलता निज में पाई है ॥
विभु अशरण जग में शरण मिले, बहुमान आपका आया है ।
चैतन्य सुरभिमय चन्दन ही, पूजन के योग्य सुहाया है ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अब भान हुआ अक्षय पद का, क्षत् का अभिमान पलाया है ।
प्रभु निष्कलंक निर्मल ज्ञायक, अविचल अखण्ड दिखलाया है ॥
जहाँ क्षायिक भाव भी भिन्न दिखे, फिर अन्यभाव की कौन कथा ।
अक्षुण्ण आनन्द निज में विलसे, निःशेष हुई अब सर्व व्यथा ॥
अक्षय स्वरूप दातार नाथ, बहुमान आपका आया है ।
निरपेक्ष भावमय अक्षत ही, पूजन के योग्य सुहाया है ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

चैतन्य ब्रह्म की अनुभूतिमय, ब्रह्मचर्य रस प्रगटाया ।
भोगों की अब मिटी वासना, दुर्विकल्प भी नहीं आया ॥

भोगों के तो नाम मात्र से भी, कम्पित मन हो जाता ।
मानों आयुध से लगते हैं, तब त्राण स्वयं में ही पाता ॥
हे कामजयी निज में रम जाऊँ, यही भावना मन आनी।
श्रद्धा सुमन समर्पित जिनवर, कामबुद्धि सब विसरानी ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! कामबाणविक्षंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

निज आत्म अतीन्द्रियरस पीकर, तुम तृप्त हुए त्रिभुवनस्वामी ।
निज में ही सम्यक दृष्टि की, विधि तुम से सीखी ज़गनामी ॥
अब कर्ता भोक्ता बुद्धि छोड, ज्ञाता रह निज रस पान करूँ ।
इन्द्रिय विषयों की चाह मिटी, सर्वांग सहज आनन्दित हूँ ॥
निज में ही ज्ञानानन्द मिला, बहुमान आपका आया है ।
परम तृप्तिमय अकृतबोध ही, पूजन के योग्य सुहाया है ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोहान्धकार में भटका था, सम्यक प्रकाश निज में पाया ।
प्रतिभासित होता हुआ स्वज्ञायक, सहज स्वानुभव में आया ॥
इन्द्रिय बिन सहज निरालम्बी प्रभु, सम्यकज्ञान ज्योति प्रगटी ।
चिरमोह अंधेरी हे जिनवर, अब तुम समीप क्षण में विघटी ॥
अस्थिर परिणति में हे भगवन ! बहुमान आपका आया है ।
अविनाशी केवलज्ञान जगे, प्रभु ज्ञानप्रदीप जलाया है ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

निष्क्रिय निष्कर्ष परम ज्ञायक, ध्रुव ध्येय स्वरूप अहो पाया ।
तब ध्यान अग्नि प्रज्जवलित हुई, विघटी परपरिणति की माया ॥
जागी प्रतीति अब स्वयं सिद्ध, भव भ्रमण भ्रान्ति सब दूर हुई ।
असंयुक्त निर्बन्ध सुनिर्मल, धर्म परिणति प्रकट हुई ॥
अस्थिरताजन्य विकार मिटे, मैं शरण आपकी हूँ आया ।
बहुमानभावमय धूप धरूँ, निष्कर्म तत्त्व मैने पाया ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

है परिपूर्ण सहज ही आतम, कमी नहीं कुछ दिखलावे ।
 गुण अनन्त संपन्न प्रभु, जिसकी दृष्टि में आ जावे ॥
 होय अयाची लक्ष्मीपति, फिर वांछा ही नहीं उपजावे ।
 स्वात्मोपलब्धिमय मुक्तिदशा का, सत्पुरषार्थ सु प्रगटावै ॥
 अफलदृष्टि प्रगटी प्रभुवर, बहुमान आपका आया है ।
 निष्काम भावमय पूजन का, विभु परमभाव फल पाया है ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव! मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

निज अविचल अनर्थ पद पाया, सहज प्रमोद हुआ भारी ।
 ले भावर्घ्य अर्चना करता, निज अनर्थ वैभव धारी ।
 चक्री इंद्रादिक के पद भी, नहीं आकर्षित कर सकते ।
 अखिल विश्व के रम्य भोग भी, मोह नहीं उपजा सकते ॥
 निजानन्द में तृप्तिमय ही, होवे काल अनन्त प्रभो! ।
 ध्रुव अनुपम शिव पदवी प्रगटे, निश्चय ही भगवंत अहो ! ॥

ॐ ह्रीं वीतराग देव! अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला --छन्द-चामर

प्रभो आपने एक ज्ञायक बताया,
 तिहुँ लोक में नाथ अनुपम जताया ॥

यही रूप मेरा मुझे आज भाया,
 महानंद मैंने स्वयं में ही पाया ॥
 भव-भव भटकते बहुत काल बीता,
 रहा आज तक मोह-मदिरा ही पीता ॥
 फिरा ढूँढता सुख विषयों के माहीं,
 मिली किन्तु उनमें असह्य वेदना ही ॥
 महाभाग्य से आपको देव पाया,
 तिहुँ लोक में नाथ अनुपम जताया ॥

कहाँ तक कहुँनाथ महिमा तुम्हारी,

निधि आत्मा की सु दिखलाई भारी ॥
निधि प्राप्ति की प्रभु सहज विधि बताई,
अनादि की पामरता बुद्धि पलाई ॥
परमभाव मुझको सहज ही दिखाया,
तिहुँ लोक में नाथ अनुपम जताया ॥

विस्मय से प्रभुवर भी तुमको निरखता,
महामूढ दुखिया स्वयं को समझता ॥
स्वयं ही प्रभु हूँ दिखे आज मुझको,
महा हर्ष मानों मिला मोक्ष ही हो ॥
मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ अनुभव में आया,
तिहुँ लोक में नाथ अनुपम जताया ॥

अस्थिरता जन्य प्रभो दोष भारी,
खटकती है रागादि परिणति विकारी ॥
विश्वास है शीघ्र ये भी मिटेगी,
स्वभाव के सन्मुख यह कैसे टिकेगी ॥
नित्य-निरंजन का अवलम्ब पाया,
तिहुँ लोक में नाथ अनुपम जताया ॥

दृष्टि हुई आप सम ही प्रभो जब,
परिणति भी होगी तुम्हारे ही सम तब ॥
नहीं मुझको चिंता मैं निर्दोष ज्ञायक,
नहीं पर से सम्बन्ध मैं ही ज्ञेय ज्ञायक ॥
हुआ दुर्विकल्पों का जिनवर सफाया,
तिहुँ लोक में नाथ अनुपम जताया ॥

सर्वांग सुखमय स्वयं सिद्ध निर्मल,
शक्ति अनन्तमयी एक अविचल ॥
बिन्मूर्ति चिन्मूर्ति भगवान आत्मा,
तिहुँ जग में नमनीय शाश्वत चिदात्मा ॥

हो अद्वैत वन्दन प्रभो हर्ष छाया,
तिहुँ लोक में नाथ अनुपम जताया ॥

ॐ हीं श्री वीतराग देव! अनर्थपदप्राप्तये पूर्णार्थ्यं निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

आपही ज्ञायक देव हैं, आप आपका ज्ञेय ।
अखिल विश्व में आपही, ध्येय ज्ञेय श्रद्धेय ॥

पुष्टाङ्गलिं श्विषेत्



रत्नत्रय-पूजन



पं द्यानतरायसी कृत

चहुंगति-फनि-विष-हरन-मणि, दुख-पावक-जल-धार
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-त्रयी निहार ॥

ॐ हीं सम्यक् रत्नत्रय धर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ हीं सम्यक् रत्नत्रय धर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ हीं सम्यक् रत्नत्रय धर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अष्टक - सोरठा छन्द

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ हीं सम्यक् रत्नत्रयाय जन्म जरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदन-केशर गारि, परिमल-महा-सुगंध-मय
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ हीं सम्यक् रत्नत्रयाय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल अमल चितार, वासमती-सुखदास के
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ हीं सम्यक् रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

महके फूल अपार, अलि गुंजै ज्यों थुति करैं
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय कामबाणविधंसानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूर की
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

फल शोभा अधिकाय, लौंग छुहारे जायफल
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूं ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सम्यक् दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग तीनों मयी
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजौं व्रत सहित ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा





सम्यकदर्शन

सिद्ध अष्ट-गुणमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान
ज्ञान चरित जिंह बिन अफल, सम्यक् दर्श प्रधान ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगंध अपार, तृष्णा हरे मल छय करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तमहार, घट पट परकाशे महा
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप ध्रान-सुखकार, रोग विघ्न जड़ता हरे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विथार, निहचे सुर-शिव-फल करै
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अर्चं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आप आप निहचै लखे, तत्त्व-प्रीति व्योहार
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार ॥
सम्यक् दरशन-रत्न गहीजै, जिन-वच में संदेह न कीजै
इह भव विभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहे मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये
पर-दोष ढकिये, धरम डिगते को सुथिर कर, हरखिये ॥
चहुं संघ को वात्सल्य कीजै, धरमकी परभावना
गुन आठ सों गुन आठ लहिके, इहां फेर न आवना ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसहित पंचविंशति दोषरहित सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्चं निर्वपामीति स्वाहा

इत्याशीर्वदः - पुष्पांजलि क्षिपेत्





सम्यकज्ञान

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान
मोह-तपन हर चंद्रमा सोई सम्यक् ज्ञान ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्नानन्

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगंध अपार, तृष्णा हरे मल छय करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशे महा
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ हीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप घ्रान-सुखकार रोग विघ्न जड़ता हरे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ हीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विथार निहचे सुर-शिव फल करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ हीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥

ॐ हीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आप आप जाने नियत, ग्रन्थ पठन व्यौहार
संशय विभ्रम मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार ॥

सम्यक् ज्ञान-रत्न मन भाया, आगम तीजा नैन बताया
अक्षर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अरथ उभय संग जानो ॥
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये
तप रीति गहि बहु मौन देके, विनय गुण चित लाइये ॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना
इस ज्ञान ही सों भरत सीझे, और सब पटपेखना ॥

ॐ हीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

इत्याशीर्वादः पुष्टं जले क्षिपेत्





सम्यकचारित्र

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय जल-धार
तीर्थकर जाको धरे सम्यक् चारित्र सार ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्र! अत्र अवतर अवतर संवौष्टि आह्वाननं

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ख्यापनं

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगन्ध अपार, तृष्णा हरे मल छय करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय चदनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय पुष्णं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशे महा
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप घ्रान-सुखकार रोग विघ्न जड़ता हरे
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विथार निहचे सुर-शिव फल करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु
सम्यक् चारित सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्यौहार
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविधि दुखहार ॥

चौपाई मिश्रित गीता छन्द -

सम्यक् चारित रतन संभालो, पांच पाप तजिके व्रत पालो
पंचसमिति त्रय गुपति गहिजे, नरभव सफल करहु तन छीजे
छीजे सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिये
बहु रुल्यो नरक-निगोद माहीं, विषय-कषायनि टालिये ॥
शुभ करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय पूर्णार्धं निर्वपामीति स्वाहा

समुच्चय-जयमाला
सम्यक् दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुकति न होय

अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ॥

चौपाई 16 मात्रा

जापै ध्यान सुथिर बन आवे, ताके करम-बंध कट जावें
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥१॥

ताको चहुं गति के दुख नाहीं, सो न परे भव-सागर माहीं
जनम-जरा-मृतु दोष मिटावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥२॥

सोई दश लक्षनको साधे, सो सोलह कारण आराधे
सो परमात्म पद उपजावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥३॥

सो शक्र-चक्रिपद लेई, तीन लोक के सुख विलसेई
सो रागादिक भाव बहावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥४॥

सोई लोकालोक निहारे, परमानंद दशा विस्तारे
आप तिरै औरन तिरवावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥५॥

ॐ हीं सम्यग्दर्शन सम्पद्ज्ञान सम्यक् चारित्रेभ्यः महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

एक स्वरूप-प्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय ॥

इत्याशीर्वादः पुष्टांजलिं क्षिपेत्



दशलक्षण-धर्म



द्यानतरायज्ञी कृत

उत्तम क्षमा मारदव आरजव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं ॥

ॐ हीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अन्वयार्थ : उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव ये जीव के भाव हैं, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग ये मोक्ष प्राप्ति के उपाय हैं, उत्तम आकिंचन, उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म में सार है अर्वात् उक्तृष्ट हैं । ये दश धर्म चारों गतियों के दुःखों से निकालकर मोक्ष सुख को करने वाले हैं ।

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्माय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हिमवन पर्वत से निकलने वाली धारा के जल (गंगा नदी का जल) मुनिराजों के मन के समान निर्मल शीतल और सुगंधित जल से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की सदा पूजा करता हूँ ।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : दशों दिशाओं को सुगंधित करने वाले चन्दन और केशर को घिसकर संसार की ताप को नष्ट करने के लिए दश लक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : मलरहित अखण्ड, (जो टूटे हुए न हो) उक्तृष्ट चन्द्रमा के समान श्वेत उज्ज्वल चावलों से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की हमेशा पूजा करता हूँ ।

फूल अनेक प्रकार, महके ऊरध-लोकलों भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविनाशनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अनेक प्रकार के पुष्टों से जिनकी सुगंधी ऊर्ध्व लोक तक फैल रही है । भव की ताप को नष्ट करने के लिए 'दश लक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ ।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस-संजुगत भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अनेक प्रकार के उक्तृष्ट छहों रसों से युक्त नैवेद्य से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : कपूर की बत्ती बनाकर सुन्दर लगने वाले दीपक को धारण कर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ हीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अगर आदि से धूप को तैयार कर उसकी सुगंधि को सर्व दिशाओं में फैलाकर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ हीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अनेक प्रकार के नासिका को, नेत्रों को और मन को मोहित करने वाले आर्थात् अच्छे लगने वाले फलों से भव की ताप नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

आठों दरब सँवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसौं भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ हीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : जल चन्दन आदि आठों द्रव्यों को सजाकर अत्यन्त उत्साह पूर्वक भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

उत्तम क्षमा पीड़ैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा ॥

अन्वयार्थ : बहुत दुर्जन लोग दुख देवें, बांधकर अनेक प्रकार से मारपीट करे। यातनायें दे वहाँ हे पवित्र आत्मा क्रोध को न करके विवेक पूर्वक उत्तम क्षमा को धारण कीजिए।

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस, पर-भव सुखदाई गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो ॥ कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै घर तैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै ॥ ते करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा अति क्रोध-अग्नि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा ॥

ॐ हीं श्री उत्तमक्षमाधर्मज्ञाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भाई उत्तमक्षमा को ग्रहण करो यह क्षमा इस भव में यश और अगले भव में सुख को देने वाली है, कोई अज्ञानी गुणों को अवगुण रूप भी कहता है गालियाँ (अपशब्द) भी देता है तो भी मन में खेद (दुःख) नहीं करना चाहिए। ऐसा वह अज्ञानी अपशब्द कहता हुआ हमारी कोई वस्तु छीन लेवे, बांध देवे, अनेक प्रकार से मारें, घर में निकाल देवे, शरीर का छेदन करें (विदारण करें) तब भी वहाँ उससे बैर भाव धारण नहीं करना चाहिए। किन्तु चिन्तन करना चाहिए कि पूर्व भवों में मैंने जो पाप कर्मों का संचय किया था जो पाप कर्म किये हैं जीव अब उन्हें क्यों नहीं सहन करेगे (भोगोगे)। अत्यन्त भीषण क्रोध रूपी अग्नि को हे जीव समता रूपी अत्यन्त शीतल जल से बुझाओ। अर्थात् क्रोध के समय समता धारण करो।

उत्तम मार्दव मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥

अन्वयार्थ : मान महा विष के समान है यह मान (नीच गति) संसार में नरक गति को करने वाला है। कोमलता (मृदुता) रूपी अनुपम अमृत को ग्रहण करने

वाले जीव हमेशा सुख प्राप्त करते हैं।

मान करने से नीच गोत्र का आस्रव करते हैं और संसार में नीच जातियों में जन्म लेते हैं।

उत्तम मार्दव गुन मन-माना, मान करन को कौन ठिकाना
 बस्यो निगोद माहिं तैं आया, दमरी रुँकन भाग बिकाया ॥
 रुँकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया
 उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया ॥
 जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल-बुद्बुदा
 करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तममार्दवधर्मज्ञाय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम मार्दव गुण मन को अच्छा लगने वाला है, मान करने का क्या आधार है क्योंकि अनंतः काल से निगोद में रहता था वहाँ से आकर स्थावर में वनस्थिति काय का जीव हुआ कभी दमरी (सबसे छोटी मुद्रा) के भाव बिक गया कभी रुकन अर्थात् बिना मूल्य के ही बिक गया भाग्य उदय से यह जीव देव हुआ और देव पर्याय से आकर एकेन्द्री हो गया, उत्तम पर्याय से चाण्डाल हुआ, राजा भी, कीड़ों में जाकर उत्पन्न हो गया है आत्मा, क्या जीवन, युवावस्था और धन का घमंड करता है । ये सब जल के बुलबुले के समान क्षणभर में नष्ट होने वाले हैं । जिनमें बहुत गुण हैं अर्थात् गुणवान हैं जिनकी बड़ी आयु है ऐसे माता-पिता आदि की विनय करना चाहिए जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

उत्तम आर्जव
 कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै
 सरल सुभावी होय, ताके घर बहु-सम्पदा ॥

अन्वयार्थ : छल कपट नहीं करना चाहिए धन सम्पत्ति चोरों के यहाँ नहीं होती वे हमेशा निर्धन ही होते हैं (इसीलिये चोरों के शहर नहीं बसते हैं) किन्तु जिनका स्वभाव सरल होता है उनके यहाँ बहुत धन सम्पदा होती है ।

उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी
 मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये ॥
 करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी
 मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगार-सी ॥
 नहिं लहै लक्ष्मी अधिक छल करि, करम-बन्ध विशेषता
 भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम-आर्जवधर्मज्ञाय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम आर्जव सरल स्वभाव को कहते हैं । रंचमात्र भी दगा दुख को देने वाला है, जो विचार मन में हो वही वचन में रहना और जो वचन से कहा जाय वही काय से किया जाना चाहिए । इस प्रकार से तीनों योगों को सरल करना चाहिए जैसे निर्मल स्वच्छ दर्पण में जैसा अपना मुँह करोगे वैसा ही दिखेगा । छल कपट की प्रीति अंगारों से प्रीति करने के समान है (जैसे अंगारों में ऊपर राख दिखती है और अन्दर अप्रिय दहकती रहती है) । अधिक छल करके कोई भी धन सम्पदा प्राप्त नहीं कर सकता बल्कि अधिक कर्म बंध करता है उस कर्मबंध का ध्यान नहीं करता और छल करता रहता है जैसे - बिल्ली आख बंद करके दूध पीते समय भय का त्याग करती है और पीछे मार पड़ेगी ध्यान नहीं रखती उसी प्रकार छल करने वाला कर्म बंध का ध्यान नहीं करते हुए छल करता रहता है ।

उत्तम शौच
 धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों
 शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसार में ॥

अन्वयार्थ : हृदय में संतोष धारण कर शरीर से तपस्या करना चाहिए । दोष रहित शौच धर्म ही संसार में सबसे बड़ा धर्म है ।

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना
 आशा-फांस महा दुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी ॥

प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष सुभावतैं ॥
ऊपर अमल मल भर्यो भीतर, कौन-विधि घट शुचि कहै
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्मज्ञाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम शौच धर्म सर्व जगत में विख्यात है, यह लोभ कषाय के अभाव में होता है। लोभ सर्व पापों को (उत्पन्न) करने वाला है। आशा-इच्छा रूपी पाश भयानक दुःखों को देने वाली है अतः संतोष को धारण करने वाले जीव सुख को प्राप्त करते हैं। इस जीव की शुचिता (पवित्रता) शील, जप, तप, ज्ञान, ध्यान के प्रभाव से होती है हमेशा गंगा, यमुना आदि नदियों में एवं समुद्र में भी सान करने से शुचिता अर्थात् पवित्रता नहीं होती क्योंकि इस शरीर का स्वभाव ही अपवित्र है। यह ऊपर तो अत्यन्त निर्मल दिखता है परन्तु इसके अन्दर मल भरा हुआ है। ऐसे शरीर को किस प्रकार पवित्र कहा जा सकता है। जिनका शरीर तो मलिन है पर जो गुणों के भड़ार है ऐसे महाव्रती साधू ही इस शौच गुण को प्राप्त करते हैं।

उत्तम सत्य

कठिन वचन मति बोल, पर-निन्दा अरु झूठ तज
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी ॥

अन्वयार्थ : कठोर वचन, पर निन्दा, और झूठ वचनों का त्याग करना सत्य धर्म है। सत्य रूपी जवाहर रत्न का उपयोग करना चाहिए क्योंकि सत्यवादी प्राणी संसार में सुखी रहते हैं।

उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा, साँच गुण लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसत्यधर्मज्ञाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम सत्य धर्म पालन करना चाहिए, दूसरों का विश्वासघात नहीं करना चाहिए। सत्यवादी और झूठे मनुष्यों को देखो, झूठ बोलने वाले पुत्र पर भी विश्वास नहीं किया जाता अर्थात् झूठे व्यक्तियों पर कोई विश्वास नहीं करता। (हमने अभी तक सचे और झूठे मनुष्य ही देखे हैं लोकन अपने आत्मा के पवित्र स्वभाव के पास जाकर नहीं देखा यह निश्चय सत्य धर्म का लक्षण है। साचे झूठे मनुष्यों को तो देखता है किन्तु अपने अन्तर में स्थित शुद्ध आत्म स्वरूप को नहीं देखता जो आत्मा का सत् स्वरूप है।)

निस्वार्थ सत्यवादी का सभी विश्वास करते हैं और अमानत स्वरूप धन भी देते हैं। मुनिराजों की और श्रावकों की प्रतिष्ठा (इज्जत) सत्य गुण से (सत्य धर्म से) ही है। राजा बसु ऊँचे सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था झूठ बोलने के कारण से नरक में गया और सत्य को बोलने वाला नारद स्वर्ग गया।

उत्तम संयम

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो
संजम-रतन संभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं ॥

अन्वयार्थ : छह काय के जीवों की रक्षा करना और पांच इन्द्रियों और मन को वश में करना उत्तम संयम धर्म है। संयम रूपी रत्न को संभाल कर रखना चाहिए क्योंकि विषय वासना रूपी बहुत चोर धूम रहे हैं।

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाँहीं ॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो

सपरसन रसना ध्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीच में
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम-मुख बीच में ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसंयमधर्मङ्गय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम संयम धर्म को हे मन धारण करो इसे धारण करने से अनेक भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं । यह संयम स्वर्ग, नरक और पशु (तिर्यच) गति में नहीं है । यह संयम आलस का हरण करने वाला और सुख को करने वाला है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये स्थावर और त्रस इन छह काय के जीवों पर दयाभाव धारण कर स्पर्शन, रसना, धान, वक्षु कान और मन को वश करना संयम धर्म है । इस संयम के बिना तीर्थकर भी मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए और जिसके नहीं धारण करने से ही यह आत्मा संसार रूपी कीचड़ में फंसा रहता है । हमें इस संयम को एक क्षण को भी नहीं भूलना चाहिए हम जम अर्थात् मृत्यु के मुँह में आ रहे हैं ।

उत्तम तप

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकतिसम ॥

अन्वयार्थ : उत्तम तप को देवों के राजा इन्द्र भी चाहते हैं । यह तप कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए वज्र के समान है । यह सुख देने वाला तप बारह प्रकार का है । इन तपों को अपनी शक्ति अनुसार क्यों धारण नहीं करते हो ?

उत्तम तप सब माहिं बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा ॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता ॥
अति महा दुरलभ त्याग विषय-कषाय जो तप आदरैं
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमतपोधर्मङ्गय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम तप धर्म का सब ग्रन्थों में वर्णन मिलता है । कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए यह वज्र के समान है । अनादिकाल से यह जीव निगोद मे रह रहा है । वहाँ से निकलकर पृथ्वी आदि स्थावर हुआ स्थावर के बाद त्रस पयाय में विकलेन्द्री हुआ और फिर पशुओं के शरीर को धारण किया अब दुर्लभ यह मनुष्य पर्याय प्राप्त कीया है । उसमे भी उच्चकुल, पूर्ण आयु, निरोग शरीर, जिनवाणी का संयोग, तत्त्व ज्ञान, आत्म चिन्तन मे उपयोग अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त किया है जो व्यक्ति अत्यन्त महा दुर्लभ विषय और कषाय का त्याग करते हैं वे मनुष्यभव रूपी स्वर्ण गृह पर रक्तमयी कलशा चढ़ाते हैं अर्थात् नर जन्म धन्य करते हैं ।

उत्तम त्याग

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए ॥

अन्वयार्थ : दान चार प्रकार के होते हैं । चारों दान चार संघ अर्थात् मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका को देना चाहिए । धन, सम्पत्ति, वैभव बिजली की चमक की तरह है अतः मनुष्य भव का लाभ लेना चाहिए ।

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै ॥
दोनों सँभारै कूप-जल सम, दरब घर में परिनया
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया ॥

धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमत्यागधर्मज्ञाय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम त्याग समस्त संसार में श्रेष्ठ है। ये दान औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और आहारदान के भेद से चार प्रकार का है। यह तो व्यवहार त्याग है। निश्चय त्याग, राग द्वेष के त्याग को कहते हैं। ज्ञानीजन दोनों दान (निश्चय और व्यवहार) करते हैं। कुएं का पानी यदि खर्च न हो तो खराब हो जाता है और यदि खर्च होता रहे तो खराब नहीं होता। उसी प्रकार घर में धन सम्पत्ति वैभव हो तो दान करना चाहिए जो श्रेष्ठ है नहीं तो नष्ट हो जायेगा लेकिन रहने वाला नहीं है। धन्य है वे साधु जो शास्त्र दान, अभय दान के देने वाले हैं और राग द्वेष का त्याग करने वाले हैं। बिना दान के श्रावक और साधु दोनों ही सम्यक् ज्ञान को प्राप्त नहीं होते।

उत्तम आकिंचन्य परिग्रह चौबिस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए ॥

अन्वयार्थ : परिग्रह चौबीस भेद, यह व्यवहार आकिंचन्य धर्म है और तिसना भाव उछेद, यह निश्चय आकिंचन्य धर्म है।

परिग्रह के २४ भेद (अंतरंग १४ और बाह्य १०)

अंतरंग - मिथ्यात्व + चार कषाय + नौ कषाय = १४

बाह्य - खेत + मकान + रुपया + सोना + गोधन आदि + अनाज + दासी + दास + कपड़े + बर्तन व मसाले आदि = १०

परिग्रह के चौबीस भेद है उनका त्याग (व्यवहार आकिंचन्य) मुनिराज करते हैं और तृष्णा भाव को नष्ट करते हैं (निश्चय आकिंचन्य)। श्रावक को भी धीरे-धीरे दोनों प्रकार के परिग्रहों को घटाना चाहिए।

उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लँगोटी की दुख भालै ॥ भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरैं धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परैं ॥ घर माहिं तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सौं बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगार सौं ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमाकिंचन्यधर्मज्ञाय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम आकिंचन्य श्रेष्ठ गुण है। परिग्रह चिन्ता-दुख के ही पर्याय है। छोटी सी फ़ांस भी पूरे शरीर को दुखी कर देती है उसी प्रकार लंगोटी का आवरण या लंगोटी की चाह दुख को देने वाली होती है। यह मनुष्य, महाव्रत अर्थात् निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की मुद्रा को धारण किये बिना समता और सुख को प्राप्त नहीं कर सकता। वे मुनिराज धन्य हैं जो पर्वतों पर नग्न खड़े रहकर तप करते हैं उनके चरणों की पूजा सुर-असुर आदि सभी करते हैं। घर में रहते हुए भी जो तृष्णा को घटाते हैं, तथा जिनको संसार में रूचि नहीं है, ऐसे जीवों का धन, यद्यपि धन बुरा ही होता है, परोपकार में लगाने के कारण फिर भी अच्छा कहा गया है।

उत्तम ब्रह्मचर्य शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा ॥

अन्वयार्थ : धन्य है वे मुनिराज जो अन्तर से नग्न हैं (अंतरंग परिग्रह से रहित) शरीर से भी नग्न (बाह्य परिग्रह से रहित) खड़े रहते हैं।

शील की रक्षक नौ बाढ़े - १ स्त्री-राग वर्धक कथा न सुनना, २ स्त्रियों के मनोहर अगों को न देखना, ३ पहले भोगे हुए भोगों को याद न करना, ४ गरिष्ठ व स्वादिष्ठ भोजन न करना, ५ अपने शरीर को श्रंगारित न करना, ६ स्त्रियों की शैया-आसन पर न बैठना, ७ स्त्रियों से घुल-मिल कर बातें न करना, ८ भर-पेट भोजन न करना, ९ कामोत्तेचक नृत्य, फिल्म, टीवी न देखना।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे ॥ कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचैं भरैं ॥

संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा 'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़ि कै, शिव-महल में पग धरा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्मज्ञाय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : शील को नौ बाड़ें लगाकर सुरक्षित रखना चाहिए (व्यवहार ब्रह्मचर्य) और अन्तर में ब्रह्म अर्थात् आत्म चिन्तन करना चाहिए (निश्च ब्रह्मचर्य)
शील की नौ बाड़ों की एवं आत्म चिन्तन उन दोनों की प्राप्ति के अभिलाषी बनके मनुष्य जन्म सफल करना चाहिए।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन में धारण का स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री के रूप में देखना चाहिये। यह जीव रणभूमि में शूरवीरों द्वारा की जाने वाली बाणों की वर्षा को सहन कर लेता है। परन्तु स्त्रीयों के कूर नेत्र रूपी बाण को सहन नहीं कर पाता ऐसा काम रोग से पीड़ित स्त्री के अपवित्र शरीर में रति (प्रेम) करता है जिस प्रकार श्मशान में मरे हुए सड़े हुए शरीर में कौआ प्रेम करके चौंचों से मृत शरीर को खाता है। संसार में स्त्री विष बेल के समान है। इसलिए सभी मुनिराजों ने स्त्रियों का त्याग कर दिया।
श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि ये दस धर्म रूपी सीढ़ियां चढ़कर मोक्ष रूपी महल में प्रवेश हो जाता है।

जयमाला
**दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय ॥**

अन्वयार्थ : दशलक्षण धर्म की सदा वदना करता हूँ। इससे मन के अनुकूल फल की प्राप्ति होती है दशलक्षण धर्म की आगमानुकूल आरती कहता हूँ है भगवान मेरी सहायता कीजिए।

**उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई
उत्तम मार्दव विनय प्रकासे, नाना भेद ज्ञान सब भासे॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी ॥
उत्तम सत्य-वचन मुख बोले, सो प्रानी संसार न डोले
उत्तम संजम पाले ज्ञाता, नर-भव सफल करै, ले साता ॥
उत्तम तप निरवांछित पाले, सो नर करम-शत्रु को टाले
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई ॥
उत्तम आकिंचन व्रत धारे, परम समाधि दशा विसतारे
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावे, नर-सुर सहित मुक्ति-फल पावे ॥**

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्माय जयमाला पूर्णार्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम क्षमा जिनके मन में होती है उनके मन में राग द्वेष आदि विकारभाव अंतर और बाह्य में भी कोई शत्रु नहीं रहता। उत्तम मार्दव धर्म, विनयगुण का प्रकाशन करके अनेक प्रकार से भेद-विज्ञान करवाता है। उत्तम आर्जव धर्म छलकपट को नाश करता है एवं खोटी गतियों से छुड़ाकर श्रेष्ठ गतियों में उत्पन्न करवाता है। जो उत्तम सत्य वचन मुख से बोलते हैं वे जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करते। उत्तम शौच धर्म लोभ कषाय का नाश करता है, जिनके संतोष है वे गुणों के भंडार होते हैं। उत्तम संयम धर्म को जो ज्ञानी जन धारण करते हैं वे साता को प्राप्त करके मनुष्य भव को सफल करते हैं। इच्छा रहित उत्तम तप धर्म का पालन करने से मनुष्यों के कर्म रूपी शत्रुओं का नाश हो जाता है। जो व्यक्ति उत्तम त्याग करते हैं वे भोग भूमि और स्वर्ग के सुख भोग कर मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं। जो उत्तम आकिंचन धर्म को धारण करते हैं वे परम समाधि को प्राप्त होते हैं। उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म को जो मन में धारण करते हैं वे मनुष्य देव गति को प्राप्त कर मोक्षफल प्राप्त करते हैं।
द्यानत राय जी - यह दस लक्षण धर्म कर्म की निर्जरा कर भव रूपी पिंजरा को नष्ट कर अजर-अमर पद को प्राप्त कर सुख की राशि अर्थात् अनंत सुख की प्राप्ति कराते हैं।

**करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि
अजर अमर पद को लहैं, 'द्यानत' सुख की राशि ॥**



सोलहकारण-भावना

द्यानतरायजी कृत

सोलह कारण भाय तीर्थकर जे भये
हरषे इन्द्र अपार मेरुपै ले गये ॥
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसौं
हमहू षोडश कारन भावै भावसौं ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणानि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आहानं

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणानि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणानि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कंचन-झारी निरमल नीर पूजों जिनवर गुन-गंभीर
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतीचार, अभीक्षणज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद् भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति,

प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्य इतिषोडशकारणेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदन घसौं कपूर मिलाय पूजौं श्रीजिनवरके पाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल धवल सुंगध अनूप पूजौं जिनवर तिहुं जग-भूप
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ हीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार पूजौं-जिनवर जग-आधार
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह, तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ हीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

सद नेवज बहुविधि पकवान पूजौं श्रीजिनवर गुणखान
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ हीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार पूजूं श्रीजिन केवलधार
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ हीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर कपूर गंध शुभ खेय श्रीजिनवर आगे महकेय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ हीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजौं जिन वांछित-दातार
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

जल फल आठों दरव चढ़ाय 'ज्ञानत' वरत करौं मन लाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ हीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

प्रत्येक भावना के अर्थ... सबैया तेईसा

दर्शन शुद्ध न होवत जो लग, तो लग जीव मिथ्याती कहावे
काल अनंत फिरे भव में, महादुःखनको कहुं पार न पावे ॥
दोष पचीस रहित गुण-अम्बुधि, सम्यग्दरशन शुद्ध ठरावे
'ज्ञान' कहे नर सोहि बड़ो, मिथ्यात्व तजे जिन-मारग ध्यावे ॥

ॐ हीं दर्शन विशुद्धि भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

देव तथा गुरुराय तथा, तप संयम शील व्रतादिक-धारी
पापके हारक कामके छारक, शल्य-निवारक कर्म-निवारी ॥
धर्म के धीर कषाय के भेदक, पंच प्रकार संसार के तारी
'ज्ञान' कहे विनयो सुखकारक, भाव धरो मन राखो विचारी ॥

ॐ हीं विनयसम्पन्नता भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

शील सदा सुखकारक है, अतिचार-विवर्जित निर्मल कीजे
दानव देव करें तसु सेव, विषानल भूत पिशाच पतीजे ॥
शील बड़ो जग में हथियार, जू शीलको उपमा काहे की दीजे
'ज्ञान' कहे नहिं शील बराबर, तातें सदा दृढ़ शील धरीजे ॥

ॐ हीं निरतिचार शीलव्रत भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञान सदा जिनराज को भाषित, आलस छोड़ पढ़े जो पढ़ावे
द्वादश दोउ अनेकहुँ भेद, सुनाम मती श्रुति पंचम पावे ॥
चारहुँ भेद निरन्तर भाषित, ज्ञान अभीक्षण शुद्ध कहावे

'ज्ञान' कहे श्रुत भेद अनेक जु, लोकालोक हि प्रगट दिखावे ॥

ॐ ह्रीं अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावनयै नमः अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

भ्रात न तात न पुत्र कलत्र न, संगम दुर्जन ये सब खोटे
मन्दिर सुन्दर, काय सखा सबको, हमको इमि अंतर मोटो ॥

भाउ के भाव धरी मन भेदन, नाहिं संवेग पदारथ छोटो
'ज्ञान' कहे शिव-साधन को जैसो, साह को काम करे जु बणोटो ॥

ॐ ह्रीं संवेग भावनयै नमः अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

पात्र चतुर्विध देख अनूपम, दान चतुर्विध भावसुं दीजे
शक्ति-समान अभ्यागत को, अति आदर से प्रणिपत्य करीजे ॥

देवत जे नर दान सुपात्रहिं, तास अनेकहिं कारण सीझें
बोलत 'ज्ञान' देहि शुभ दान जु, भोग सुभूमि महासुख लीजे ॥

ॐ ह्रीं शक्तितस्त्याग भावनयै नमः अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म कठोर गिरावन को निज, शक्ति-समान उपोषण कीजे
बारह भेद तपे तप सुन्दर, पाप जलांजलि काहे न दीजे ॥
भाव धरी तप घोर करी, नर जन्म सदा फल काहे न लीजे
'ज्ञान' कहे तप जे नर भावत, ताके अनेकहिं पातक छीजे ॥

ॐ ह्रीं शक्तितस्तप भावनयै नमः अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

साधुसमाधि करो नर भावक, पुण्य बड़ो उपजे अघ छीजे
साधु की संगति धर्मको कारण, भक्ति करे परमारथ सीजे ॥

साधुसमाधि करे भव छूटत, कीर्ति-छटा त्रैलोक में गाजे
'ज्ञान' कहे यह साधु बड़ो, गिरिश्रृंग गुफा बिच जाय विराजे ॥

ॐ ह्रीं साधुसमाधि भावनायै नमः अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म के योग व्यथा उदये, मुनि पुंगव कुन्त सुभेषज कीजे
पित्त-कफानिल वात साँस, भग्नदर, ताप को शूल महागद छीजे ॥
भोजन साथ बनाय के औषध, पथ्य कुपथ्य विचार के दीजे

'ज्ञान' कहे नित वैयावृत्य करे तस देव पतीजे ॥

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरण भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

देव सदा अरिहन्त भजो जई, दोष अठारा किये अति दूरा
पाप पखाल भये अति निर्मल, कर्म कठोर किए चकचूरा ॥
दिव्य-अनन्त-चतुष्टय शोभित, घोर मिथ्यान्ध-निवारण सूरा
'ज्ञान' कहे जिनराज अराधो, निरन्तर जे गुण-मन्दिर पूरा ॥

ॐ ह्रीं अर्हद् भक्ति भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

देवत ही उपदेश अनेक सु, आप सदा परमारथ-धारी
देश विदेश विहार करें, दश धर्म धरें भव-पार- उतारी ॥
ऐसे अचारज भाव धरी भज, सो शिव चाहत कर्म निवारी
'ज्ञान' कहे गुरु-भक्ति करो नर, देखत ही मनमांहि विचारी ॥

ॐ ह्रीं आचार्य भक्ति भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

आगम छन्द पुराण पढ़ावत, साहित तर्क वितर्क बखाने
काव्य कथा नव नाटक पूजन, ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने ॥
ऐसे बहुश्रुत साधु मुनीश्वर, जो मन में दोउ भाव न आने
बोलत 'ज्ञान' धरी मन सान जु, भाग्य विशेष तें ज्ञानहि साने ॥

ॐ ह्रीं बहुश्रुतिभक्ति भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

द्वादश अंग उपांग सदागम, ताकी निरंतर भक्ति करावे
वेद अनूपम चार कहे तस, अर्थ भले मन मांहि ठरावे ॥
पढ़ बहुभाव लिखो निज अक्षर, भक्ति करी बड़ि पूज रचावे
'ज्ञान' कहे जिन आगम-भक्ति, करे सद्-बुद्धि बहुश्रुत पावे ॥

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्ति भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

भाव धरे समता सब जीवसु, स्तोत्र पढ़े मुख से मनहारी
कायोत्सर्ग करे मन प्रीतसु, वंदन देव-तणों भव तारी ॥
ध्यान धरी मद दूर करी, दोउ बेर करे पड़कम्मन भारी

'ज्ञान' कहे मुनि सो धनवन्त जु, दर्शन ज्ञान चरित्र उघारी ॥

ॐ हीं आवश्यकापरिहाणि भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जिन-पूजा रचे परमारथसूं जिन आगे नृत्य महोत्सव ठाणे
गावत गीत बजावत ढोल, मृदंगके नाद सुधांग बखाणे ॥
संग प्रतिष्ठा रचे जल-जातरा, सद् गुरु को साहमो कर आणे
'ज्ञान' कहे जिन मार्ग-प्रभावन, भाग्य-विशेषसु जानहिं जाणे ॥

ॐ हीं मार्गप्रभावना भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

गौरव भाव धरो मन से मुनि-पुंगव को नित वत्सल कीजे
शीलके धारक भव्य के तारक, तासु निरंतर स्नेह धरीजे ॥
धेनु यथा निजबालक को, अपने जिय छोड़ि न और पतीजे
'ज्ञान' कहे भवि लोक सुनो, जिन वत्सल भाव धरे अघ छीजे ॥

ॐ हीं प्रवचन-वात्सल्य भावनायै नमः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जाप्य मंत्र :-

ॐ हीं दर्शनविशुद्धयै नमः,
ॐ हीं विनयसम्पन्नतायै नमः,
ॐ हीं शीलव्रताय नमः,
ॐ हीं अभीक्षणज्ञानोपयोगाय नमः,
ॐ हीं संवेगाय नमः,
ॐ हीं शक्तितस्त्यागाय नमः,
ॐ हीं शक्तितस्तपसे नमः,
ॐ हीं साधुसमाध्यै नमः,
ॐ हीं वैयाकृत्यकरणाय नमः,
ॐ हीं अर्हद् भक्त्यै नमः,
ॐ हीं आचार्यभक्त्यै नमः,
ॐ हीं बहुश्रुतभक्त्यै नमः,
ॐ हीं प्रवचनभक्त्यै नमः,
ॐ हीं आवश्यकापरिहाण्यै नमः,

ॐ हीं मार्गप्रभावनायै नमः,
ॐ हीं प्रवचनवात्सल्यै नमः

जयमाला

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास
पाप पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश ॥

दरश विशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई
विनय महाधारे जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी ॥
शील सदा दृढ़ जो नर पाले, सो औरनकी आपद टाले
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं ॥

जो संवेग-भाव विस्तारे, सुरग-मुकति-पद आप निहारे
दान देय मन हरष विशेषे, इह भव जस परभव सुख पेखे ॥
जो तप तपे खुपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा
साधु-समाधि सदा मन लावे, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावे ॥

निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया
जो अरहंत-भगति मन आने, सो जन विषय कषाय न जाने ॥
जो आचारज-भगति करै है, सो निर्मल आचार धरै है
बहुश्रुतवंत-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥

प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहे ज्ञान परमानंद-दाता
षट् आवश्य काल सों साधे, सोही रत्न-त्रय आराधे ॥
धरम-प्रभाव करे जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थकर पदवी पावै ॥

एही सोलह भावना, सहित धरे व्रत जोय
देव-इन्द्र-नर-वंद्य पद, 'द्यानत' शिव-पद होय ॥

सुन्दर षोडशकारण भावना निर्मल चित्त सुधारक धारे
कर्म अनेक हने अति दुर्द्वर जन्म जरा भय मृत्यु निवारे ॥
दुःख दरिद्र विपत्ति हरे भव-सागर को पार उतारे
'ज्ञान' कहे यही षोडशकारण, कर्म निवारण, सिद्ध सु धारें ॥

इत्याशीर्वाद - पुष्टांजलि क्षिपेत्



सरस्वती-पूजन



कविश्री द्यानतराय कृत

दोहा

जनम-जरा-मृतु क्षय करे, हरे कुनय जड़-रीति
भवसागर सों ले तिरे, पूजे जिनवच-प्रीति ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्दव-सरस्वतीदेव्ये पुष्टांजलिं क्षिपामि ।

थाती में विराजमान शारस्तीजी के समक्ष पुष्टांजलि धरें

त्रिभगी

क्षीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुख संगा
भरि कंचनझारी, धार निकारी, तृष्णा निवारी हित चंगा ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्दव-सरस्वतीदेव्ये जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी
शारदपद वंदू, मन अभिनंदू, पाप निकंदू दाह हरी ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्दव-सरस्वतीदेव्ये संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

सुखदास कमोदं, धारक मोदं, अति अनुमोदं चंद समं
बहु भक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं ॥
तीर्थकर की धनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्द्व-सरस्वतीदेव्ये अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

बहु फूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनंदरासं लाय धरे
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे ॥
तीर्थकर की धनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्द्व-सरस्वतीदेव्ये कामबाण-विधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया मिष्टमहा
पूजूँ थुति गाऊँ, प्रीति बढ़ाऊँ, क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा ॥
तीर्थकर की धनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्द्व-सरस्वतीदेव्ये क्षुधरोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कर दीपक जोतं, तमक्षय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढे
तुम हो परकाशक भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढे ॥
तीर्थकर की धनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्द्व-सरस्वतीदेव्ये मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभगांध दशों कर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं
सब पाप जलावें, पुण्य कमावें, दास कहावें सेवत हैं ॥
तीर्थकर की धनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्द्व-सरस्वतीदेव्ये अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बादाम छुहारे, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं
मनवाँछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता ध्यावत हैं ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

नयनन सुखकारी, मृदु गुनधारी, उज्ज्वल भारी मोलधरें
शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करें ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञान-प्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन अक्षत, फूल चरु अरु, दीप धूप अति फल लावे
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुखपावे ॥
तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

सोरठा छन्द

ओंकार धनिसार, द्वादशांग वाणी विमल
नमूं भक्ति उर धार, ज्ञान करे जड़ता हरे ॥

चौपाई

पहलो 'आचारांग' बखानो, पद अष्टादश-सहस्र प्रमानो
दूजो 'सूत्रकृतं' अभिलाषं, पद छत्तीस सहस्र गुरुभाषं ॥
तीजो 'ठाना अंग' सुजानं, सहस्र बयालिस पद सरधानं
चौथो 'समवायांग' निहारं, चौंसठ सहस्र लाख-इक धारं ॥

पंचम 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' दरसं, दोय लाख अट्टाइस सहसं
छठो 'ज्ञातृकथा' विस्तारं, पाँच लाख छप्पन हजारं ॥
सप्तम 'उपासकाध्ययनांगं', सत्तर सहस ग्यारलख भंगं
अष्टम 'अंतकृतं' दस ईसं, सहस अठाइस लाख तेईसं ॥

नवम 'अनुत्तरदश' सुविशालं, लाख बानवे सहस चवालं
दशम 'प्रश्नव्याकरण' विचारं, लाख तिरानवे सोल हजारं ॥
ग्यारम 'सूत्रविपाक' सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं ॥

द्वादश 'दृष्टिवाद' पन भेदं, इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्याहन हैं ॥
इक सौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने ॥

कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं
साढ़े इकीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये ॥

ॐ ह्ं श्रीजिनमुखोद्द्व-सरस्वतीदेव्यै जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

जा बानी के ज्ञान तें, सूझे लोकालोक
'द्यानत' जग-जयवंत हो, सदा देत हुँ धोक ॥

इत्याशीर्वाद - पुष्पांजलि क्षिपेत्



सीमन्धर-भगवान

जय जयति जय श्रेयांस नृप सुत सत्यदेवी नन्दनम् ।
चऊ घाति कर्म विनष्ट कर्ता ज्ञान सूर्य निरन्जनम् ॥
जय जय विदेहीनाथ जय जय धन्य प्रभु सीमन्धरम् ।
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी जयति जिन तीर्थकरम् ॥



ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौष्ट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः ख्यापनं

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

यह जन्म मरण का रोग, हे प्रभु नाश करूँ ।
दो समरस निर्मल नीर, आत्म प्रकाश करूँ ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

चन्दन हरता तन ताप, तुम भव ताप हरो ।
निज समशीतल हे नाथ मुझको आप करो ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

इस भव समुद्र से नाथ, मुझको पार करो ।
अक्षय पद दे जिनराज, अब उद्धार करो ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कन्दर्प दर्प हो चूर, शील स्वभाव जगे ।
भव सागर के उस पार मेरी नाव लगे ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

यह क्षुधा ज्वाल विकराल, हे प्रभु शांत करूँ ।
वर चरण चढ़ाऊँ देव मिथ्या भ्रांति हरूँ ॥

शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मद मोह कुटिल विष रूप, छाया अंधियारा ।
दो सम्यक्ज्ञान प्रकाश, फैले उजियारा ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मों की शक्ति विनष्ट, अब प्रभुवर कर दो ।
मैं धूप चढ़ाऊँ नाथ, भव बाधा हर दो ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

फल चरण चढ़ाऊँ नाथ, फल निर्वाण मिले ।
अन्तर में केवलज्ञान, सूर्य महान खिले ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जब तक अनर्घ पद प्राप्त हो न मुझे सत्वर ।
मैं अर्घ चढ़ाऊँ नित्य चरणों में प्रभुवर ॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी ।
सर्वज्ञ देव अरहंत, प्रभु अन्तरयामी ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

देश पुष्कलावती राजधानी है पुण्डरीकिणी गेह ॥
रानी सत्यवती माता के उर में स्वर्ग त्याग आये ।
सोलह स्वप्न लखे माता ने रत्न सुरों ने वर्षये ॥

ॐ ह्रीं गर्भमंगलमण्डिताय श्रीसीमंधर जिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

नृप श्रेयांसराय के गृह में तुमने स्वामी जन्म लिया ।
इन्द्रसुरों ने जन्म-महोत्सव कर निज जीवन धन्य किया ॥
गिरि सुमेरु पर पांडुक वन में रत्नशिला सुविराजित कर ।
क्षीरोदधि से न्हवन किया प्रभु दशों दिशा अनुरंजित कर ॥

ॐ ह्रीं जन्ममंगलमण्डिताय श्रीसीमंधर जिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

एक दिवस नभ में देखे बादल क्षणभर में हुए विलीन ।
बस अनित्य संसार जान वैराग्य भाव में हुए सुलीन ॥
लौकान्तिक देवर्षि सुरों ने आकर जय-जयकार किया ।
अतुलित वैभव त्याग आपने वन में जा तप धार लिया ॥

ॐ ह्रीं तपमंगलमण्डिताय श्रीसीमंधर जिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

आत्म ध्यानमय शुक्ल-ध्यान धर कर्मघातिया नाश किया ।
त्रेसठ कर्म प्रकृतियाँ नाशी केवलज्ञान प्रकाश लिया ॥
समवसरण में गंध-कुटि में अंतरीक्ष प्रभु रहे विराज ।
मोक्षमार्ग सन्देश दे रहे भव्य प्राणियों को जिनराज ॥

ॐ ह्रीं केवलज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीसीमंधर जिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

शाश्वत विधमान तीर्थकर सीमन्धर प्रभु दया निधान ।
दे उपदेश भव्य जीवों को करते सदा आप कल्याण ॥
कोटि पूर्व की आयु पाँच सौ धनुष स्वर्ण सम काया है ।
सकल ज्ञेय ज्ञाता होकर भी निज स्वरूप ही भाया है ॥

देव तुम्हारे दर्शन पाकर जागा है उर में उल्लास ।

चरण-कमल में नाथ शरण दो सुनो प्रभो मेरा इतिहास ॥
मैं अनादि से था निगोद में प्रतिपल जन्म मरण पाया ।
अग्नि, भूमि, जल, वायु, वनस्पति कायक थावर तन पाया ॥

दो इंद्रिय त्रस हुआ भाग्य से पार न कष्टों का पाया ।
जन्म तीन इंद्रिय भी धारा दुख का अन्त नहीं आया ॥
चौ इंद्रियधारी बनकर मै विकलत्रय में भरमाया ।
पंचेद्रिय पशु सैनी और असैनी हो बहु दुख पाया ॥

बड़े भाग्य से प्रबल पुण्य से फ़िर मानव पर्याय मिली ।
मोह महामद के कारण ही नहीं ज्ञान की कली खिली ॥
अशुभ पाप आस्रव के द्वारा नर्क आयु का बन्ध गहा ।
नारकीय बन नरकों में रह उष्ण शीत दुख द्वन्द सहा ॥

शुभ पुण्यास्रव के कारण मैं स्वर्गलोक तक हो आया ।
ग्रैवेयक तक गया किन्तु शाश्वत सुख चैन नहीं पाया ॥
देख दूसरों के वैभव को आर्त रौद्र परिणाम किया ।
देव आयु क्षय होने पर एकेन्द्रिय तक मैं जन्म लिया ॥

इसप्रकार धर-धर अनन्त भव चारों गतियों में भटका ।
तीव्र-मोह मिथ्यात्व पाप के कारण इस जग में अटका ॥
महापुण्य के शुभ संयोग से फ़िर यह तन मन पाया है ।
देव आपके चरणों को पाकर यह मन हर्षया है ॥

जनम जनम तक भक्ति तुम्हारी रहे हृदय में हे जिनदेव ।
वीतराग सम्यक् पथ पर चल पाऊँ सिद्ध स्वपद स्वयमेव ॥
भरतक्षेत्र के कुन्द-कुन्द मुनि ने विदेह को किया प्रयाण ।
प्रभु तुम्हारे समवसरण में दर्शन कर हो गये महान ॥

आठ दिवस चरणों में रह कर ऊँकार ध्वनि सुनी प्रधान ।
भरत क्षेत्र में लौटे मुनिवर बनकर वीतराग विज्ञान ॥

करुणा जागी जीवों के प्रति रचा शास्त्र श्री प्रवचनसार ।
समयसार पंचास्तिकाय श्रुत नियमसार प्राभृत सुखकार ॥

रचे देव चौरासी पाहुड़ प्रभु वाणी का ले आधार ।
निश्चयनय भूतार्थ बताया अभूतार्थ सारा व्यवहार ॥
पाप पुण्य दोनों बन्धन हैं जग में भ्रमण कराते हैं ।
राग मात्र को हेय जान ज्ञानी निज ध्यान लगाते हैं ॥

निज का ध्यान लगाया जिसने उसको प्रगटा केवलज्ञान ।
परम समाधि महासुखकारी निश्चय पाता पद निर्वाण ॥
इस प्रकार इस भरत क्षेत्र के जीवों पर अनन्त उपकार ।
हे सीमन्धरनाथ आपके, करो देव मेरा उद्धार ॥
समकित ज्योति जगे अन्तर में हो जाऊँ मैं आप समान ।
पूर्ण करो मेरी अभिलाषा हे प्रभु सीमन्धर भगवान ॥

ॐ हीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमाला पूर्णर्थं निर्वपामीति स्वाहा
सीमन्धर प्रभु के चरण भाव सहित उर धार ।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशिवार्दः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥



सीमन्धर-भगवान



भव-समुद्र सीमित कियो, सीमन्धर भगवान ।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रगट्यो पूरण ज्ञान ॥
प्रकट्यो पूरण ज्ञान-वीर्य-दर्शन सुखधारी,
समयसार अविकार विमल चैतन्य-विहारी ।
अंतर्बल से किया प्रबल रिपु-मोह पराभव,
अरे भवान्तक ! करो अभय हर लो मेरा भव ॥

ॐ हीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वाननं

ॐ हीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः स्थापनं

प्रभुवर ! तुम जल-से शीतल हो, जल-से निर्मल अविकारी हो ।
 मिथ्यामल धोने को जिनवर, तुम ही तो मल-परिहारी हो ॥
 तुम सम्यग्ज्ञान जलोदधि हो, जलधर अमृत बरसाते हो ।
 भविजन-मन-मीन प्राणदायक, भविजन मन-जलज खिलाते हो ॥
 हे ज्ञानपयोनिधि सीमन्धर ! यह ज्ञान प्रतीक समर्पित है ।
 हो शान्त ज्ञेयनिष्ठा मेरी, जल से चरणाम्बुज चर्चित है ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदन-सम चन्द्रवदन जिनवर, तुम चन्द्रकिरण से सुखकर हो ।
 भव-ताप निकंदन हे प्रभुवर ! सचमुच तुम ही भव-दुख-हर हो ॥
 जल रहा हमारा अन्तःस्तल, प्रभु इच्छाओं की ज्वाला से ।
 यह शान्त न होगा हे जिनवर रे ! विषयों की मधुशाला से ॥
 चिर-अंतर्दहि मिटाने को, तुम ही मलयागिरि चन्दन हो ।
 चंदन से चरचूँ चरणांबुज, भव-तप-हर ! शत-शत वन्दन हो ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

प्रभु ! अक्षतपुर के वासी हो, मैं भी तेरा विश्वासी हूँ ।
 क्षत-विक्षत में विश्वास नहीं, तेरे पद का प्रत्याशी हूँ ॥
 अक्षत का अक्षत-संबल ले, अक्षत-साम्राज्य लिया तुमने ।
 अक्षत-विज्ञान दिया जग को, अक्षत-ब्रह्माण्ड किया तुमने ॥
 मैं केवल अक्षत-अभिलाषी, अक्षत अतएव चरण लाया ।
 निर्वाण-शिला के संगम-सा, धवलाक्षत मेरे मन भाया ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

तुम सुरभित ज्ञान-सुमन हो प्रभु, नहिं राग-द्वेष दुर्गम्य कहीं ।
 सर्वांग सुकोमल चिन्मय तन, जग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ॥
 निज अंतर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से ।
 चैतन्य-विपिन के चितरंजन, हो दूर जगत की छाया से ॥

सुमनों से मन को राह मिली, प्रभु कल्पबेलि से यह लाया ।
इनको पा चहक उठा मन-खग, भर चोंच चरण में ले आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

आनंद-रसामृत के द्रह हो, नीरस जड़ता का दान नहीं ।
तुम मुक्त-क्षुधा के वेदन से, षट्-रस का नाम-निशान नहीं ॥
विध-विध व्यंजन के विग्रह से, प्रभु भूख न शान्त हुई मेरी ।
आनंद-सुधारस-निर्झर तुम, अतएव शरण ली प्रभु तेरी ॥
चिर-तृप्ति-प्रदायी व्यंजन से, हो दूर क्षुधा के अंजन ये ।
क्षुत्पीड़ा कैसे रह लेगी ? जब पाये नाथ निरंजन ये ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

चिन्मय-विज्ञान-भवन अधिपति, तुम लोकालोक-प्रकाशक हो ।
कैवल्य किरण से ज्योतित प्रभु ! तुम महामोहतम नाशक हो ॥
तुम हो प्रकाश के पुंज नाथ ! आवरणों की परछाँह नहीं ।
प्रतिबिंबित पूरी ज्ञेयावलि, पर चिन्मयता को आँच नहीं ॥
ले आया दीपक चरणों में, रे ! अन्तर आलोकित कर दो ।
प्रभु तेरे मेरे अन्तर को, अविलंब निरन्तर से भर दो ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धू-धू जलती दुःख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगतीतल है ।
बेचेत पड़े सब देही हैं, चलता फिर राग प्रभंजन है ॥
यह धूम धूमरी खा-खाकर, उड़ रहा गगन की गलियों में ।
अज्ञान-तमावृत चेतन ज्यों, चौरासी की रंग-रलियों में ॥
सन्देश धूप का तात्किक प्रभु, तुम हुए ऊर्ध्वगामी जग से ।
प्रकटे दशांग प्रभुवर ! तुम को, अन्तःदशांग की सौरभ से ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ-अशुभ वृत्ति एकान्त दुःख अत्यन्त मलिन संयोगी है ।
अज्ञान विधाता है इसका, निश्चित चैतन्य विरोधी है ॥

काँटों सी पैदा हो जाती, चैतन्य-सदन के आँगन में ।
चंचल छाया की माया-सी, घटती क्षण में बढ़ती क्षण में ॥
तेरी फल-पूजा का फल प्रभु ! हों शान्त शुभाशुभ ज्वालायें ।
मधुकल्प फलों-सी जीवन में, प्रभु ! शान्ति-लतायें छा जायें ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए ।
भव-ताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिये ॥
अभिराम भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति प्रसून लगे खिलने ।
क्षुत् तृष्णा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने ॥
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए ।
फल हुआ प्रभो ! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयगाता

वैदही हो देह में, अतः विदेही नाथ ।
सीमन्धर निज सीम में, शाश्वत करो निवास ॥
श्री जिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहन्त ।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, सीमन्धर भगवन्त ॥
हे ज्ञानस्वभावी सीमन्धर ! तुम हो असीम आनन्दरूप ।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप ॥
मोहान्धकार के नाश हेतु, तुम ही हो दिनकर अति प्रचण्ड ।
हो स्वयं अखंडित कर्म शत्रु को, किया आपने खंड-खंड ॥
गृहवास राग की आग त्याग, धारा तुमने मुनिपद महान ।
आत्मस्वभाव साधन द्वारा, पाया तुमने परिपूर्ण ज्ञान ॥
तुम दर्शन ज्ञान दिवाकर हो, वीरज मंडित आनन्दकन्द ।
तुम हुए स्वयं में स्वयं पूर्ण, तुम ही हो सच्चे पूर्णचन्द ॥
पूरब विदेह में हे जिनवर ! हो आप आज भी विद्यमान ।
हो रहा दिव्य उपदेश, भव्य पा रहे नित्य अध्यात्म ज्ञान ॥
श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव को, मिला आपसे दिव्य ज्ञान ।

आत्मानुभूति से कर प्रमाण, पाया उनने आनन्द महान ॥
 पाया था उनने समयसार, अपनाया उनने समयसार ।
 समझाया उनने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार ॥
 दे गये हमें वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार ।
 है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार ॥
 मैं हूँ स्वभाव से समयसार, परिणति हो जाये समयसार ।
 है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जाये समयसार ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं ।
 महिमा अपरम्पार, समयसारमय आपकी ॥

पुष्पाजलि क्षिपेत्



विद्यमान-बीस-तीर्थकर

सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, सुजात स्वयंप्रभु देव ।
 ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सौरीप्रभु, विशालकीर्ति, सुदेव ॥
 श्री वज्रधर, चन्द्रानन प्रभु चन्द्रबाहु, भुजंगम ईश ।
 जयति ईश्वर जयतिनेम प्रभु वीरसेन महाभद्र महीश ॥
 पूज्य देवयश अजितवीर्य जिन बीस जिनेश्वर परम महान ।
 विचरण करते हैं विदेह में शाश्वत तीर्थकर भगवान ॥
 नहीं शक्ति जाने की स्वामी यहीं वन्दना करूँ प्रभो ।
 स्तुति पूजन अर्चन करके शुद्ध भाव उर भरूँ प्रभो ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकराः! अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थकराः अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् सन्निधि करणं

निर्मल सरिता का प्रासुक जल लेकर चरणों में आऊँ ।
 जन्म जरादिक क्षय करने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥
 सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।

विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूर्यप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-श्रीभुजंग-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-यशोधर-अजितवीर्येति

विंशति विद्यमान तीर्थकरेभ्य भवातापविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल चंदन दाह निकन्दन लेकर चरणों में आऊँ ।
भव सन्ताप दाह हरने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ ।
सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

स्वच्छ अखण्डित उज्ज्वल तंदुल लेकर चरणों में आऊँ ।
अनुपम अक्षय पद पाने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥
सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुभ्र शील के पुष्प मनोहर लेकर चरणों में आऊँ ।
काम शत्रु का दर्प नशाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥
सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

परम शुद्ध नैवेद्य भाव उर लेकर चरणों में आऊँ ।
क्षुधा रोग का मूल मिटाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥
सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जगमग अंतर दीप प्रज्ज्वलित लेकर चरणों में आऊँ ।
मोह तिमिर अज्ञान हटाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥

सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म प्रकृतियों का ईंधन अब लेकर चरणों में आऊँ ।
ध्यान अग्नि में इसे जलाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥
सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

निर्मल सरस विशुद्ध भाव फल लेकर चरणों में आऊँ ।
परम मोक्ष फल शिव सुख पाने श्रीजिनवर के गुण गाऊँ ॥
सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अर्ध पुंज वैराग्य भाव का लेकर चरणों में आऊँ ।
निज अनर्ध पदवी पाने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ ॥
सीमंधर, युगमंधर, आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ ।
विद्यमान बीसों तीर्थकर की पूजन कर हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

मध्यलोक में असंख्यात सागर, अरु असंख्यात हैं द्वीप ।
जम्बूद्वीप धातकीखण्ड अरु, पुष्करार्ध यह ढाई द्वीप ॥
ढाई द्वीप में पंचमेरु हैं, तीनों लोकों में अति ख्यात् ।
मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मंदर विद्युन्माली विख्यात ॥

एक एक में है बत्तीस, विदेह क्षेत्र अतिशय सुन्दर ।
एक शतक अर साठ क्षेत्र हैं, चौथा काल जहाँ सुखकर ॥

पाँच भरत अरु पंच ऐरावत कर्म भूमियाँ दस गिनकर ।
एक साथ हो सकते हैं तीर्थकर एक शतक सत्तर ॥

किन्तु न्यूनतम बीस, तीर्थकर विदेह में होते हैं ।
सदा शाश्वत विद्यमान, सर्वत्र जिनेश्वर होते हैं ॥
एक मेरु के चार विदेहों, में रहते तीर्थकर चार ।
बीस विदेहों में तीर्थकर, बीस सदा ही मंगलकार ॥

कोटि पूर्व की आयु पूर्ण कर, होते पूर्ण सिद्ध भगवान ।
तभी दूसरे इसी नाम के, होते हैं अरहन्त महान ॥
श्री जिनदेव महा मंगलमय, वीतराग सर्वज्ञ प्रधान ।
भक्ति भाव से पूजन करके, मैं चाहूँ अपना कल्याण ॥

विरहमान श्री बीस जिनेश्वर, भाव सहित गुणगान करूँ ।
जो विदेह में विद्यमान हैं, उनका जय जय गान करूँ ॥
सीमन्धर को वन्दन करके, मैं अनादि मिथ्यात्व हरूँ ।
जुगमन्दर की पूजन करके, समकित अंगीकार करूँ ॥

श्री बाहु का सुमिरण करके, अविरत हर व्रत ग्रहण करूँ ।
श्री सुबाहु पद अर्चन करके, तेरह विधि चारित्र धरूँ ॥
प्रभु सुजात के चरण पूजकर, पंच प्रमाद अभाव करूँ ।
देव स्वयंप्रभ को प्रणाम कर, दुखमय सर्व विभाव हरूँ ॥

ऋषभानन की स्तुति करके, योग कषाय निवृत्ति करूँ ।
पूज्य अनन्तवीर्य पद वन्दूँ, पथ निर्ग्रन्थ प्रवृत्ति करूँ ॥
देव सौरप्रभ चरणाम्बुज, दर्शन कर पाँचों बन्ध हरूँ ।
परम विशालकीर्ति की जय हो, निज को पूर्ण अबन्ध करूँ ॥

श्री वज्रधर सर्व दोष हर, सब संकल्प विकल्प हरूँ ।
चन्द्रानन के चरण चित्त धर, निर्विकल्पता प्राप्त करूँ ॥
चन्द्रबाहु को नमस्कार कर, पाप-पुण्य सब नाश करूँ ।

श्री भुजंग पद मस्तक धर कर, निज चिद्रूप प्रकाश करूँ ॥

ईश्वर प्रभु की महिमा गाऊँ, आत्म द्रव्य का भान करूँ ।

श्री नेमिप्रभु के चरणों में, चिदानन्द का ध्यान धरूँ ॥

वीरसेन के पद कमलों में, उर चंचलता दूर करूँ ।

महाभद्र की भव्य सुछवि लख, कर्मघातिया चूर करूँ ॥

श्री देवयश सुयश गान कर, शुद्ध भावना हृदय धरूँ ।

अजितवीर्य का ध्यान लगाकर, गुण अनन्त निज प्रगट करूँ ॥

बीस जिनेश्वरः समवसरण लख, मोहमयी संसार हरूँ ।

निज स्वभाव साधन के द्वारा, शीघ्र भवार्णव पार करूँ ॥

स्वगुण अनन्त चतुष्टयधारी, वीतराग को नमन करूँ ।

सकल सिद्ध मंगल के दाता, पूर्ण अर्ध के सुमन धरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमधर-युगमधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूर्यप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-श्रीभुजंग-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-यशोधर-अजितवीर्येति

विंशति विद्यमान तीर्थकरेभ्य अनर्घपदप्राप्तये महार्थं निर्वपामीति स्वाहा

जो विदेह के बीस जिनेश्वर, की महिमा उर में धरते ।
भाव सहित प्रभु पूजन करते, मोक्ष लक्ष्मी को वरते ॥

इत्याशीवादः -- पुण्यांजलिं शिखेत्



विद्यमान-बीस-तीर्थकर



पं. द्यानतरायजी कृत

द्वीप अढाई मेरु पन, अरु तीर्थकर बीस
तिन सबकी पूजा करूँ, मन-वच-तन धरि सीस ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकराः! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थकरा: अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् सन्निधि करणं

इन्द्र-फणीन्द्र-नरेन्द्र-वंद्य पद निर्मल धारी
शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि-सम नीर सों हो पूजों तृष्णा निवार
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूर्यप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-श्रीभुजंग-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-यशोधर-अजितवीर्येति
विंशति विद्यमान तीर्थकरेभ्य भवातापविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

तीन लोक के जीव पाप-आताप सताये
तिनकों साता दाता शीतल वचन सुहाये ॥
बावन चंदन सों जज्जूं ह्रीं भ्रमन-तपत निरवार ॥
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी ॥
तंदुल अमल सुगंध सों ह्रीं पूजों तुम गुणसार ॥
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

भविक-सरोज-विकाश निंद्य-तम हर रवि-से हो
जति-श्रावक आचार कथन को तुमही बड़े हो ॥
फूल सुवास अनेक सों ह्रीं पूजों मदन-प्रहार ॥
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

काम-नाग विषधाम नाश को गरुड़ कहे हो
छुधा महा दव-ज्वाल तास को मेघ लहे हो ॥
नेवज बहुघृत मिष्ठ सों ^{ले} पूजों भूखविडार ॥
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

उद्यम होन न देत सर्व जगमांहि भर्यो है
मोह-महातम घोर नाश परकाश कर्यो है ॥
पूजों दीप प्रकाश सों ^{हो} ज्ञान-ज्योति करतार ॥
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म आठ सब काठ भार विस्तार निहारा
ध्यान अगनि कर प्रकट सर्व कीनो निरवारा ॥
धूप अनूपम खेवतें ^{हो} दुःख जलैं निरधार ॥
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

मिथ्यावादी दुष्ट लोभहंकार भरे हैं
सबको छिन में जीत जैन के मेरु खड़े हैं ॥
फल अति उत्तम सों जजों ^{हों} वांछित फल-दातार ॥
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल-फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है
गणधर-इन्द्रनि हू तैं थुति पूरी न करी है ॥
'द्यानत' सेवक जानके हो जग तैं लेहु निकार ॥
सीमंधर जिन आदि दे स्वामी बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविशतितीर्थकरेभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

ज्ञान-सुधाकर चन्द, भविक-खेत हित मेघ हो
भ्रम-तम भान अमन्द, तीर्थकर बीसों नमों ॥

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी
बाहु बाहु जिन जग-जन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥
जात सुजातं केवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं, अनन्तवीरज वीरज कोषं ॥

सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं ॥
भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं ॥

वीरसेन वीरं जग जानैं, महाभद्र महाभद्र बखानै ॥
नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजित वीरज बलधारी ॥
धनुष पाँचसै काय विराजै, आयु कोटि पूर्व सब छाजै
समवशरण शोभित जिनराजा, भवजल-तारन-तरन जिहाजा ॥

सम्यक् रत्नत्रय-निधि दानी, लोकालोक-प्रकाशक ज्ञानी
शत-इन्द्रनि करि वंदित सोहैं, सुर-नर-पशु सबके मन मोहैं ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूर्यप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-श्रीभुजंग-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-यशोधर-अजितवीर्येति

तुमको पूजें वंदना, करैं धन्य नर सोय
'द्यानत' सरधा मन धरैं, सो भी धर्मी होय ॥

पुष्पाजलि द्विगेत्



बाहुबली-भगवान



पर्वताली कृत

जयति बाहुबलि स्वामी, जय जय करूँ वंदना बारम्बार
निज स्वरूप का आश्रय लेकर, आप हुए भवसागर पार ॥
हे त्रैलोक्यनाथ त्रिभुवन में, छाई महिमा अपरम्पार
सिद्धस्वपद की प्राप्ति हो गई, हुआ जगत में जय-जयकार ॥
पूजन करने मैं आया हूँ, अष्ट द्रव्य का ले आधार
यही विनय है चारों गति के, दुःख से मेरा हो उद्धार ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्नानं

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल निर्मल जल प्रभु पद-पंकज में आज चढ़ाता हूँ
जन्म-मरण का नाश करूँ, आनन्दकन्द गुण गाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल मलय सुगन्धित पावन, चन्दन भेंट चढ़ाता हूँ
भव आताप नाश हो मेरा, ध्यान आपका ध्याता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

उत्तम शुभ्र अखण्डित तन्दुल, हर्षित चरण चढ़ाता हूँ
अक्षयपद की सहज प्राप्ति हो, यही भावना भाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

काम शत्रु के कारण अपना, शील स्वभाव न पाता हूँ
काम भाव का नाश करूँ मैं, सुन्दर पुष्ट चढ़ाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

तृष्णा की भीषण ज्वाला में, प्रतिपल जलता जाता हूँ
क्षुधा-रोग से रहित बनूँ मैं, शुभ नैवेद्य चढ़ाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोह ममत्व आदि के कारण, सम्यक् मार्ग न पाता हूँ
यह मिथ्यात्व तिमिर मिट जाये, प्रभुवर दीप चढ़ाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

है अनादि से कर्म बन्ध दुःखमय, न पृथक् कर पाता हूँ
अष्टकर्म विधंस करूँ, अत एव सु-धूप चढ़ाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

सहज भाव सम्पदा युक्त होकर, भी भव दुःख पाता हूँ
 परम मोक्षफल शीघ्र मिले, उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ ॥
 श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
 अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्य भाव से स्वर्गादिक पद, बार-बार पा जाता हूँ
 निज अनर्थ पद मिला न अब तक, इससे अर्थ चढ़ाता हूँ ॥
 श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर चरणों में शीश झुकाता हूँ
 अविनश्वर शिव सुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आदिनाथ सुत बाहुबलि प्रभु, मात सुनन्दा के नन्दन
 चरम शरीरी कामदेव तुम, पोदनपुर पति अभिनन्दन ॥
 छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर, भरत चढ़े वृषभाचल पर
 अगणित चक्री हुए नाम लिखने को मिला न थल तिल भर ॥

मैं ही चक्री हुआ, अहं का मान धूल हो गया तभी
 एक प्रशस्ति मिटाकर अपनी, लिखी प्रशस्ति स्व हस्त जभी ॥
 चले अयोध्या किन्तु नगर में, चक्र प्रवेश न कर पाया
 ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा में न अभी आया ॥

भरत चक्रवर्ती ने चाहा, बाहुबलि आधीन रहे
 ठुकराया आदेश भरत का, तुम स्वतंत्र स्वाधीन रहे ॥
 भीषण युद्ध छिड़ा दोनों भाई के मन संताप हुए
 दृष्टि-मल्ल-जल युद्ध भरत से करके विजयी आप हुए ॥

क्रोधित होकर भरत चक्रवर्ती, ने चक्र चलाया है
तीन प्रदक्षिणा देकर कर में, चक्र आपके आया है ॥
विजय चक्रवर्ती पर पाकर, उर वैराग्य जगा तत्क्षण
राज्यपाट तज ऋषभदेव के, समवशरण को किया गमन ॥

धिक्-धिक् यह संसार और, इसकी असारता को धिक्कार
तृष्णा की अनन्त ज्वाला में, जलता आया है संसार ॥
जग की नश्वरता का तुमने, किया चिंतवन बारम्बार
देह भोग संसार आदि से, हुई विरक्ति पूर्ण साकार ॥

आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले, व्रत संयम को किया ग्रहण
चले तपस्या करने वन में, रत्नत्रय को कर धारण ॥
एक वर्ष तक किया कठिन तप, कायोत्सर्ग मौन पावन
किन्तु शल्य थी एक हृदय में, भरत-भूमि पर है आसन ॥

केवलज्ञान नहीं हो पाया, एक शल्य ही के कारण
परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक, जय करके भी अटका मन ॥
भरत चक्रवर्ती ने आकर, श्री चरणों में किया नमन
कहा कि वसुधा नहीं किसी की, मान त्याग दो है भगवन् ॥

तत्क्षण शल्य विलीन हुई, तुम शुक्ल ध्यान में लीन हुए
फिर अन्तर्मुहूर्त में स्वामी, मोह क्षीण स्वाधीन हुए ॥
चार घातिया कर्म नष्ट कर, आप हुए केवलज्ञानी
जय जयकार विश्व में गूँजा, सारी जगती मुसकानी ॥

झलका लोकालोक ज्ञान में, सर्व द्रव्य गुण पर्याये
एक समय में भूत भविष्यत्, वर्तमान सब दर्शये ॥
फिर अघातिया कर्म विनाशो, सिद्ध लोक में गमन किया
अष्टापद से मुक्ति हुई, तीनों लोकों ने नमन किया ॥

महा मोक्ष फल पाया तुमने, ले स्वभाव का अवलंबन

हे भगवान बाहुबलि स्वामी, कोटि-कोटि शत-शत वंदन ॥
आज आपका दर्शन करने, चरण-शरण में आया हूँ
शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको, यही भाव भर लाया हूँ ॥

भाव शुभाशुभ भव निर्माता, शुद्ध भाव का दो प्रभु दान
निज परिणति में रमण करूँ प्रभु, हो जाऊँ मैं आप समान ॥
समकित दीप जले अन्तर में, तो अनादि मिथ्यात्व गले
राग-द्वेष परिणति हट जाये, पुण्य पाप सन्ताप टले ॥

त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का, आश्रय लेकर बढ़ जाऊँ
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा, मुक्ति शिखर पर चढ़ जाऊँ ॥
मोक्ष-लक्ष्मी को पाकर भी, निजानन्द रस लीन रहूँ
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ, सदा सुखी स्वाधीन रहूँ ॥

आज आपका रूप निरख कर, निज स्वरूप का भान हुआ
तुम-सम बने भविष्यत् मेरा, यह दृढ़ निश्चय ज्ञान हुआ
हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित, होकर की है यह पूजन
प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो, कर्ते हमारे भव बंधन ॥

चक्रवर्ति इन्द्रादिक पद की नहीं कामना है स्वामी
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद पायें हे! अन्तर्यामी ॥

ॐ हीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

घर-घर मंगल छाये जग में वस्तु स्वभाव धर्म जानें
वीतराग विज्ञान ज्ञान से, शुद्धात्म को पहिचानें ॥

पुष्पाङ्गलि क्षिपेत्



बाहुबली-भगवान



हे बाहुबली! अद्भुत अलौकिक, ज्ञान मुद्रा राजती ।
 प्रत्यक्ष दिखता आत्मप्रभुता, शील महिमा जागती ॥
 तुम भक्तिवश वाचाल हो गुणगान प्रभुवर मैं करूँ ।
 निरपेक्ष हो पर से सहज पूजूँ स्वपद दृष्टि धरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

स्वयंसिद्ध सुख निधान आत्मदृष्टि लायके,
 जन्म-मरण नाशि हों मोह को नशायिके ।
 बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
 तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

कल्पना, अनिष्ट-इष्ट की तजूँ अज्ञानमय,
 परिणति प्रवाहरूप होय शान्त ज्ञानमय ॥
 बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
 तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

पराभिमान त्याग के, सु भेदज्ञान भायके,
 लहूँ विभव सु अक्षयं, निजात्म में रमाय के ॥
 बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
 तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

छोड़ भोग रोग सम सु ब्रह्मरूप ध्याउँगा,
 काम हो समूल नष्ट सुख-अनंत पाऊँगा ॥
 बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,

तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

तोषसुधा पान करूँ आशा तृष्णा त्याग के,
मग्न स्वयं में ही रहूँ चित्स्वरूप भाय के ॥
बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

चेतना प्रकाश में चित् स्वरूप अनुभवूँ
पाऊँगा कैवल्यज्योति कर्म घातिया दलूँ ॥
बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

आत्म ध्यान अग्नि में विभाव सर्व जारीहों,
देव आपके समान सिद्ध रूप धारि हों ॥
बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

इन्द्र चक्रवर्ति के भी पद अपद नहीं चहूँ,
त्रिकाल मुक्त पद अराध मुक्तपद लहूँ लहूँ ॥
बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अनर्थ प्रभुता आपकी सु आप में निहारिके,
नाथ भाव माँहिं में, अनर्थ अर्थ धारिके ॥
बाहुबली जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,

तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

मोहजयी इन्द्रियजयी, कर्मजयी जिनराज ।
भावसहित गुण गावहुँ, भाव विशुद्धि काज ॥

जोगीरासा

अहो बाहुबलि स्वामी पाऊँ, सहज आत्मबल ऐसा ।
निर्मम होकर साधूँ निजपद, नाथ आप ही जैसा ॥
धन्य सुनन्दा के नन्दन प्रभु, स्वाभिमान उर धारा ।
चक्री को नहिं शीस झुकाया, यद्यपि अग्रज प्यारा ॥

कर्मदय की अद्भुत लीला, युद्ध प्रसंग पसारा ।
युद्ध क्षेत्र में ही विरक्त हो, तुम वैराग्य विचारा ॥
कामदेव होकर भी प्रभु, निष्काम तत्त्व आराधा ।
प्रचुर विभव, रमणीय भोग भी, कर न सके कुछ बाधा ॥

विस्मय से सब रहे देखते, क्षमा भाव उर धारे ।
जिनदीक्षा ले शिवपद पाने, वन में आप पधारे ॥
वस्त्राभूषण त्यागे लख निस्सार, हुए अविकारी ।
केशलौंच कर आत्म -मग्न हो, सहज साधुव्रत धारी ॥

हुए आत्म-योगीश्वर अद्भुत, आसन अचल लगाया ।
नहिं आहार-विहार सम्बन्धी, कुछ विकल्प उपजाया ॥
चरणों में बन गई वाँमि, चढ़ गई सु तन पर बेलें ।
तदपि मुनीश्वर आनन्दित हो, मुक्तिमार्ग में खेलें ॥

नित्यमुक्त निर्गन्ध ज्ञान-आनन्दमयी शुद्धात्म ।
अखिल विश्व में ध्येय एक ही, निज शाश्वत परमात्म ॥

निजानन्द ही भोग नित्य, अविनाशी वैभव अपना ।
सारभूत है, व्यर्थ ही मोही, देखे झूठा सपना ॥

यों ही चिंतन चले हृदय में, आप वर्तते ज्ञाता ।
क्षण-क्षण बढ़ती भाव-विशुद्धि, उपशमरस छलकाता ॥
एक वर्ष छद्मस्थ रहे प्रभु, हुआ न श्रेणी रोहण ।
चक्री शीश नवाया तत्क्षण, हुआ सहज आरोहण ॥

नष्ट हुआ अवशेष राग भी, केवल-लक्ष्मी पाई ।
अहो अलौकिक प्रभुता निज की, सब जग को दरशाई ॥
हुए अयोगी अल्प समय में, शेष कर्म विनशाए ।
ऋषभदेव से पहले ही प्रभु, सिद्ध शिला तिष्ठाए ॥

आप समान आत्मदृष्टि धर, हम अपना पद पावें ।
भाव नमन कर प्रभु चरणों में, आवागमन मिटावें ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलीजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

सोरठा

बाहुबली भगवान, दर्शया जग स्वार्थमय ।
जागे आत्मज्ञान, शिवानन्द मैं भी लहूँ ॥

पुष्पाङ्गिं क्षिपेत्



पंचमेरु-पूजन



पं द्यानतरायजी कृत

गीता छन्द

तीर्थकरोंके न्हवन - जलतें भये तीरथ शर्मदा,
तातें प्रदच्छन देत सुर - गन पंच मेरुन की सदा
दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत-मूल विराजहीं,

पूजौं असी जिनधाम - प्रतिमा होहि सुख दुख भाजहीं ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आहाननं

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जल सों पूजौं श्रीजिनराय

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दर-विद्युन्मालि-पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर करपूर मिलाय, गंध सों पूजौं श्रीजिनराय

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छत सों पूजौं जिनराय

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

वरन अनेक रहे महकाय, फूल सों पूजौं श्रीजिनराय

महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय ॥

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः पुष्ण निर्वपामीति स्वाहा

मन वांछित बहु तुरत बनाय, चरू सों पूजौं श्रीजिनराय

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम-हर उज्जवल ज्योति जगाय, दीप सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा

खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्री जिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मंदर कहा
विद्युन्माली नामि, पंच मेरु जग में प्रगट ॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजे, भद्रशाल वन भू पर छाजे
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥१॥
ऊपर पंच-शतकपर सोहे, नंदन-वन देखत मन मोहे
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥२॥

साढ़े बांसठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभे अधिकाई
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥३॥
ऊँचा जोजन सहस-छतीसं, पाण्डुक-वन सोहे गिरि-सीसं
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥४॥

चारों मेरु समान बखाने, भू पर भद्रशाल चहुं जाने
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥५॥
ऊँचे पांच शतक पर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥६॥

साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सोमनस चार बहुरंगा
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥७॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥८॥

सुर नर चारन वंदन आवें, सो शोभा हम किंह मुख गावें
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥९॥

दोहा

पंचमेरु की आरती, पढ़े सुनें जो कोय
'द्यानत' फल जाने प्रभू, तुरत महासुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्य जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा



नन्दीश्वर-द्वीप-पूजन



द्यानतरायजी कृत

सरव परव में बड़ो अठाई परव है
 नन्दीश्वर सुर जाहिं लेय वसु दरब है
 हमैं सकति सो नाहिं इहां करि थापना
 पूजैं जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अन्वयार्थ : सब पर्वों में सबसे बड़ा पर्व अष्टाहिका पर्व है इस पर्व में चतुर्णिकाय (चारों निकाय के) के देव अष्ट द्रव्य को लेकर अकृत्रिम चैत्यालय में जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने नन्दीश्वर द्वीप जाते हैं। हमारी शक्ति नन्दीश्वर द्वीप तक जाने की नहीं है। अतः हम यहां पर नन्दीश्वर द्वीप के जिनालयों की स्थापना कर जिनालय और जिनालयों में स्थित जिन बिम्बों की अपने हित के लिए पूजा करते हैं।

कंचन-मणि मय-भृंगार, तीरथ-नीर भरा
 तिहुं धार दई निरवार, जामन मरन जरा
 नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
 वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
 नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
 बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे पूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिण दिक्षु द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाश नाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान स्वर्ण के रत्न जडित मूँग (कलश) में तीर्थ का जल भरकर जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने को आपके चरणों के समक्ष तीन धार देता हूँ। नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की प्रतिमाओं की आठ दिन तक आनंदित होता हुआ उत्साह को धारण कर पूजा करता हूँ। नन्दीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन मंदिर हैं जो देवों और मनुष्यों के मन मोहित करने वाले हैं।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चंदन नाहीं
 प्रभु यह गुन कीजै सांच, आयो तुम ठाहीं
 नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
 वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
 नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
 बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो संसार ताप विनाश नाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान भव की ताप को नष्ट करने के लिए शीतल सुगंधित चन्दन समर्थ नहीं है यह गुण तो आप में ही है, अर्थात् (भव की ताप नष्ट करने में आप ही समर्थ हो)। इसलिए चंदन लेकर आपके समीप आया हूँ। नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की, आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै
 सब जीते अक्ष-समाज, तुम सम अरु को है
 नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
 वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
 नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
 बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्ञिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव श्रेष्ठ अक्षतों का पुंज आपके समक्ष रखा हुआ बड़ा सुशोभित हो रहा है। आपने सभी इन्द्रिय समूह को जीत लिया है। आपके समान और कोई नहीं है। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं
 लहुं शील लच्छमी एव, छूटों सूलनसों
 नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
 वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
 नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
 बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्ञिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आप काम को नष्ट करने वाले हो, पुष्टों से आपकी पूजा करता हूँ। शील रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर संसार के दुःखों से छूटना चाहता हूँ। नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ।

नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा
 चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा
 नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
 वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
 नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
 बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्ञिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : इन्द्रियों को बलवान बनाने वाला नैवेद्य है, हे भगवान उन इन्द्रियों को आपने समाप्त कर दिया है (अब आप अहार नहीं लेते) जो अत्यन्त आश्वर्य की बात है इसीलिए श्रेष्ठ नैवेद्य आपके निकट सुशोभित हो रहा है।

दीपक की ज्योति प्रकाश, तुम तन मांहि लसै
 टूटे करमन की राश, ज्ञान कणी दरशे
 नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
 वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
 नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें

बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान! दीपक की ज्योति का प्रकाश आपके शरीर में सुशोभित हो रहा है। आपकी दीपक से पूजा करने से कर्म नष्ट हो जाते हैं और केवल-ज्ञान की किरण फूट पड़ती है।

कृष्णा गरु धूप सुवास, दश दिशि नारि वरैं
अति हरष भाव परकाश, मानों नृत्य करैं
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अष्ट कर्म दह नाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : कृष्ण अगर आदि सुगंधित धूप की सुगंधि दशों दिशाओं को इस प्रकार सुगंधित कर रही है मानो दश दिशा रूपी स्त्रियों का वरण ही कर रही हो और अत्यन्त हर्षित होकर हर्ष को प्रकाशित करने को नृत्य ही कर रही हो।

बहु विधि फल ले तिहुं काल, आनंद राचत हैं
तुम शिव फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : बहुत प्रकार के तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले अर्थात् छहों ऋतुओं के, आनंद को देने वाले फलों से आपकी पूजा करता हूँ। हे दीनदयाल प्रभु! आप मुझे मोक्ष रूपी फल प्रदान करें ऐसी हम आपसे याचना करते हैं।

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों
'द्यानत' कीज्यो शिव खेत, भूमि समरपतु हों
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अनर्ध पद प्राप्तये अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : यह अष्ट द्रव्यमय अर्द्ध मैने अपने कल्याण के लिए किया है जिसे आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ। श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि हे नाथ मैने मोक्ष की खेती की है। उसकी भूमि में बीज स्वरूप यह अर्द्ध समर्पित कर रहा हूँ।

कार्तिक फाल्गुन साढ़के, अंत आठ दिन माहिं नंदीश्वर सुर जात हैं, हम पूजै इह ठाहि

अन्वयार्थ : कार्तिक, फाल्गुन, और आषाढ़ माह के अंतिम आठ दिनों में देव गण नंदीश्वर द्वीप पूजा करने जाते हैं। हम असमर्थ होने के कारण (इसी स्थान पर) यहाँ ही पूजा करते हैं।

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा,
लाख चौरासिया इक दिश में लहा
आठमों द्वीप नंदीश्वरं भास्वरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

चार दिशि चार अंजन गिरी राजहीं,
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं
ढोल सम गोल ऊपर तले सुन्दरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी,
एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी
चहु दिशा चार वन लाख जोजन वरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

सोल वापीन मधि सोल गिरि दधि-मुखं,
सहस दश महा-जोजन लखत ही सुखं
बावरी कौन दो माहि दो रति करं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे,
चार सोलै मिले सर्व बावन लहे
एक इक सीस पर एक जिन मन्दिरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

बिंब अठ एक सौ रतन-मयि सोहहीं,
देव देवी सरव नयन मन मोहहीं

पांच सै धनुष तन पद्म आसन परम,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

लाल नख-मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं,
स्याम-रंग भौंह सिर केश छबि देत हैं
बचन बोलत मनों हंसत कालुष हरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

कोटि शशि भानु दुति तेज छिप जात है,
महा-वैराग परिणाम ठहरात है
वयन नहिं कहै लखि होत सम्यक धरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

ॐ हीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : नन्दीश्वर द्वीप की एक दिशा का विस्तार चौड़ाई एक सौ ट्रेसठ करोड़ चौरासी लाख महा योजन है। आगम में नन्दीश्वर द्वीप आठवां द्वीप कहा गया है सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सर्व प्रतिमाओं को नमस्कार करता हूँ।

नन्दीश्वर जिन धाम, प्रतिमा महिमा को कहै
'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव सुख करै

अन्वयार्थ : नन्दीश्वर द्वीप के जिन मंदिरों, एवं प्रतिमाओं की महिमा को कौन कह सकता है द्यानतराय जी कहते हैं कि इनका नाम लेना मात्र ही भक्ति है जो मोक्ष सुख को करने वाली है।



निर्वाणक्षेत्र



परिषिद्ध द्यानतरायजी कृत

परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये
सिद्धभूमि निश-दीस, मन-वच-तन पूजा करैं ॥

ॐ हीं चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् आह्नानं

ॐ हीं चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः स्थापनं

ॐ हीं चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्त्रिहितानि भवत् भवत् वषट् सन्त्रिधि करणं

शुचि क्षीर-दधि-समनीर निरमल, कनक-झारी में भरैं

संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं
भव-ताप कौ सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मोती-समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनन्द धरि तरौं
औगुन-हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन के हरौं
दुःख-धाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज अनेक प्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौं
यह भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं

संशय-विमोह-विभरम-तम-हर, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भाव पावन आचरौं
सब करम पुञ्ज जलाय दीज्यो, जोर-कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौं
निहचैं मुकति-फल-देहु मोको, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गन्ध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रीचौबीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमों
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं ॥

नमों ऋषभ कैलासपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौं, सन्मति पावापुर अभिनन्दौं ॥
वन्दौं अजित अजित-पद-दाता, वन्दौं सम्भव भव-दुःख घाता

वन्दौं अभिनन्दन गण-नायक, वन्दौं सुमति सुमति के दायक ॥

वन्दौं पद्म मुक्ति-पद्माकर, वन्दौं सुपास आश-पासहर
वन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा, वन्दौं सुविधि सुविधि-निधि-कन्दा ॥
वन्दौं शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दौं श्रेयांस श्रेयांस महीतल
वन्दौं विमल-विमल उपयोगी, वन्दौं अनन्त-अनन्त सुखभोगी ॥

वन्दौं धर्म-धर्म विस्तारा, वन्दौं शान्ति, शान्ति मनधारा
वन्दौं कुन्यु, कुन्यु रखवालं, वन्दौं अर अरि हर गुणमालं ॥
वन्दौं मल्लि काम मल चूरन, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत पूरन
वन्दौं नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दौं पार्श्व-पास भ्रमजगहर ॥

बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भू पर
एक बार वन्दै जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥
नरपति नृप सुर शक्र कहावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै
विघ्न विनाशन मंगलकारी, गुण-विलास वन्दौं भवतारी ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विशतिर्थकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये जयमाला पूर्णर्थं निर्वपामीति स्वाहा

धता

जो तीरथ जावै, पाप मिटावै, ध्यावै गावै, भगति करै
ताको जस कहिये, संपति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै ॥

पुष्पाङ्गिं क्षिपेत्



कृत्रिमाकृत्रिम-चैत्यालय-पूजन

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय को वन्दन ।
उर्ध्व मध्य पाताल लोक के जिन भवनों को करूँ नमन ॥
हैं अकृत्रिम आठ कोटि अरु छप्पन लाख परम पावन ।
संतानवे सहस्र चार सौ इक्यासी गृह मन भावन ॥
कृत्रिम अकृत्रिम जो असंख्य चैत्यालय हैं उनको वन्दन ।
विनय भाव से भक्ति पूर्वक नित्य करूँ मैं जिन पूजन ॥



ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्ब समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्ब समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्ब समूह! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

सम्यक् जल की निर्मल उज्ज्वलता से जन्म जरा हर लूँ ।

मूल धर्म का सम्यक् दर्शन हे प्रभु हृदयंगम कर लूँ ॥

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन कर लूँ ।

ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुख हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

सम्यक् चन्दन पावन की शीतलता से भव-भय हर लूँ ।

वस्तु स्वभाव धर्म है सम्यक् ज्ञान आत्मा में भर लूँ ॥

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन कर लूँ ।

ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुख हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सम्यक्चारित की अखंडता से अक्षयपद आदर लूँ ।

साम्यभाव चारित्र धर्म पा वीतरागता को वर लूँ ॥

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन कर लूँ ।

ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुख हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शील स्वभावी पुष्ट प्राप्त कर कामशत्रु को क्षय करलूँ ।

अणुव्रत शिक्षाव्रत गुणव्रत धर पंच महाव्रत आचरलूँ ॥

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन कर लूँ ।

ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुख हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

संतोषामृत के चरु लेकर क्षुधा व्याधि को जय कर लूँ ।

सत्य शौच तप त्याग क्षमा से भाव शुभाशुभ सब हर लूँ ॥

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन कर लूँ ।
ज्ञान-सूर्य की परम-ज्योति पा भव-सागर के दुख हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानदीप के चिर प्रकाश से मोह ममत्व तिमिर हर लूँ ।
रत्नत्रय का साधन लेकर यह संसार पार कर लूँ ॥
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन कर लूँ ।
ज्ञान-सूर्य की परम-ज्योति पा भव-सागर के दुख हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

ध्यान-अग्नि में कर्म धूप धर अष्टकर्म अघ को हरलूँ ।
धर्म श्रेष्ठ मंगल को पा शिवमय सिद्धत्व प्राप्त करलूँ ॥
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन करलूँ ।
ज्ञान-सूर्य की परम-ज्योति पा भव-सागर के दुख हरलूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

भेद-ज्ञान विज्ञान ज्ञान से केवलज्ञान प्राप्त करलूँ ।
परमभाव सम्पदा सहजशिव महामोक्षफल को वरलूँ ॥
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन कर लूँ ।
ज्ञान-सूर्य की परम-ज्योति पा भव-सागर के दुख हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

द्वादश विधितप अर्ध संजोकर जिनवर पद अनर्ध वरलूँ ।
मिथ्या अविरति पंच प्रमाद कषाय योग बन्धन हरलूँ ॥
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वन्दन कर लूँ ।
ज्ञान-सूर्य की परम-ज्योति पा भव-सागर के दुख हर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

तीनों वातवलय से वेष्टित, सिंधु बीच ज्यों बिन्दु प्रसार ॥
उर्ध्व सात हैं, अधों सात हैं, मध्य एक राजु विस्तार ।
चौदह राजु उतंग लोक हैं, त्रस नाड़ी त्रस का आधार ॥

तीनलोक में भवन अकृत्रिम आठ कोटि अरुछप्पन लाख ।
संतानवे सहस्र चार सौ इक्यासी जिन आगम साख ॥
उर्ध्व लोक में कल्पवासियों के जिनगृह चौरासी लक्ष ।
संतानवे सहस्र तेर्झस जिनालय हैं शाश्वत प्रत्यक्ष ॥

अधोलोक में भवनवासि के लाख बहत्तर, करोड़ सात ।
मध्यलोक के चार शतक अट्ठावन चैत्यालय विख्यात ॥
जम्बूधातकी पुष्करार्ध में पंचमेरु के जिनगृह ख्यात ।
जम्बूवृक्ष शाल्मलितरु अरु विजयारथ के अति विख्यात ॥

वक्षारों गजदंतों ईष्वाकारों के पावन जिनगेह ।
सर्व कुलाचल मानुषोत्तर पर्वत के वन्दू धर नेह ॥
नन्दीश्वर कुण्डलवर द्वीप रुचकवर के जिन चैत्यालय ।
ज्योतिष व्यंतर स्वर्गलोक अरु भवनवासि के जिनआलय ॥

एक-एक में एक शतक अरु आठ-आठ जिन मूर्ति प्रधान ।
अष्ट प्रातिहार्यों वसु मंगल द्रव्यों से अति शोभावान ॥
कुल प्रतिमा नौ सौ पच्चीस करोड़ तिरेपन लाख महान ।
सत्ताइस सहस्र अरु नौ सौ अड़तालिस अकृत्रिम जान ॥

उत्रत धनुष पांच सौ पद्मासन है रत्नमयी प्रतिमा ।
वीतराग अर्हन्त मूर्ति की है पावन अचिन्त्य महिमा ॥
असंख्यात संख्यात जिन-भवन तीन-लोक में शोभित हैं ।
इंद्रादिक सुर नर विद्याधर मुनि वन्दन कर मोहित हैं ॥

देव रचित या मनुज रचित, हैं भव्यजनों द्वारा वंदित ।
कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय को पूजन कर मैं हूँ हर्षित ॥

ढाईद्वीप में भूत भविष्यत वर्तमान के तीर्थकर ।
पंचवर्ण के मुझे शक्ति दें मैं निज पद पाऊँ जिनवर ॥

जिनगुण सम्पत्ति मुझे प्राप्त दो परम समाधिमरण हो नाथ ।
सकलकर्म क्षय हो प्रभु मेरे बोधिलाभ हो हे जिननाथ ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक संबंधी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेब्यो अनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्थ्यं निर्वपामीति स्वाहा



अष्टापद-कैलाश-पूजन

अष्टापद कैलाश शिखर पर्वत को बन्दु बारम्बार ।
ऋषभदेव निर्वाण धरा की गूंज रही है जय-जयकार ॥
बाली महाबालि मुनि आदिक मोक्ष गये श्री नागकुमार ।
इस पर्वत की भाव वंदना कर सुख पाऊँ अपरम्पार ॥
वर्तमान के प्रथम तीर्थकर को सविनय नमन करूँ ।
श्री कैलाश शिखर पूजन कर सम्यकदर्शन ग्रहण करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाश तीर्थक्षेत्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्नानं

ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाश तीर्थक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाश तीर्थक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा सम्यक जल से है परिपूर्ण ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली आश्रय से हो जन्म-मरण सब चूर्ण ।
ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥1॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापदकैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा में है चित्वमल्कार की गंध ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से होता कभी न बंध ।
ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥2॥



ॐ ह्रीं श्री अष्टापदकैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो संसारताप विनाशनाय चदनं निर्वपामीति स्वाहा

सहजानंद स्वरूप आत्मा में अक्षय गुण का भंडार ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से मिट जाता संसार ॥
ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापदकैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्रापताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

सहजानंद स्वरूप आत्मा मे हैं शिव-सुख सुरभि अपार ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से जाती काम विकार
ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापदकैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो कामवाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

पूर्णनिन्द स्वरूप आत्मा में है परम भाव नैवेद्य ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से हो जाता निर्वेद ॥
ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापदकैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

पूर्णनिन्द स्वरूप आत्मा पूर्ण ज्ञान का सिंधु महान ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से होते कर्म विनाश ॥
ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापदकैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

नित्यानंद स्वरूप आत्मा में है ध्यान धूप की वास ।
ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से होते कर्म विनाश ।
ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥७॥

सिद्धानंद स्वरूप आत्मा में तो शिव फल भरे अनन्त ।
 ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से होता मोक्ष तुरन्त ॥
 ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
 नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥8॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापदकैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्धानन्द स्वरूप आत्मा है अनर्थ पद का स्वामी ।
 ध्रुव चैतन्य त्रिकाली के आश्रय से हो त्रिभुवन नामी ॥
 ऋषभदेव चरणाम्बुज पूजूं वन्दूं अष्टापद कैलाश ।
 नागकुमार बालि आदिक ने पाया चिन्मय मोक्ष प्रकाश ॥9॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टापद कैलाशतीर्थक्षेत्रेभ्यो अनर्थपद प्राप्ताय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

अष्टापद कैलाश से आदिनाथ भगवान् ।
 मुक्त हुए निज ध्यानधर हुआ मोक्ष कल्याण ॥1॥

श्री कैलाश शिखर अष्टापद तीन लोक में है विख्यात ।
 प्रथम तीर्थकर स्वामी ने पाया अनुपम मुक्ति प्रभात ॥2॥
 इसी धरा पर ऋषभदेव को प्रगट हुआ था केवलज्ञान ।
 समवशरण में आदिनाथ की खिरी दिव्यध्वनि महामहान ॥3॥

राग मात्र को हेय जान जो द्रव्य दृष्टि बन जायेगा ।
 सिद्ध स्वपद की प्राप्ति करेगा शुद्ध मोक्ष पद पायेगा ॥4॥
 सम्यक्दर्शन की महिमा को जो अंतर में लायेगा ।
 रत्नत्रय की नाव बैठकर भव-सागर तर जायेगा ॥5॥

गुणस्थान चौदहवाँ पाकर तीजा शुक्ल-ध्यान ध्याया ।
 प्रकृति बहतर द्विचरम समय में क्षयकर अनुपमपद पाया ॥6॥

अंतिम समय ध्यान चौथा ध्या देह-नाश कर मुक्त हुए ।
जा पहुँचे लोकाग्र शीश पर मुक्ति-वधू से युक्त हुए ॥7॥

तन परमाणु खिरे कपूरवत शेष रहे नख केश प्रधान ।
मायामय तन रच देवों ने किया अग्नि संस्कार महान ॥8॥
बालि महाबालि मुनियों ने तप कर यहाँ स्वपद पाया ।
नागकुमार आदि मुनियों ने सिद्ध स्वपद को प्रगटाया ॥9॥

यह निर्वाण भूमि अति पावन अति पवित्र अतिसुखदायी ।
जिसने द्रव्य दृष्टि पाई उसको ही निज महिमा आयी ॥10॥
भरत चक्रवर्ती के द्वारा बने बहत्तर जिन मन्दिर ॥
भूत भविष्यत् वर्तमान भारत की चौबीसी सुन्दर ॥11॥

प्रतिनारायण रावण की दुष्टेच्छा हुई न किंचित पूर्ण ।
बाली मुनि के एक अंगूठे से हो गया गर्व सब चूर्ण ॥12॥
मंदोदरी सहित रावण ने क्षमा प्रार्थना की तत्क्षण ।
जिन मुनियों के क्षमा भाव से हुआ प्रभावित अंतर मन ॥१३॥

मैं अब प्रभु चरणों की पूजन करके निज स्वभाव ध्याऊँ ।
आत्मज्ञान की प्रचुर शक्ति पा निज-स्वभाव में मुस्काऊँ ॥14॥
राग-मात्र को हेय जानकर शद्ध भावना ही पाऊँ।
एक दिवस ऐसा आए प्रभु तुम समान मैं बन जाऊँ ॥15॥

अष्टापद कैलाश शिखर को बार-बार मेरा वंदन ।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर नाश करूँ भव दुख क्रन्दन ॥16॥
आत्म-तत्त्व का निर्णय करके प्राप्त करूँ सम्यकदर्शन ।
रत्नत्रय की महिमा पाऊँ धन्य-धन्य हो यह जीवन ॥17॥

ॐ हं हं श्री अष्टापद कैलाशतीर्थ क्षेत्रेभ्यो पूर्णाय निर्वपामीति स्वाहा

अष्टापद कैलाश की महिमा अगम अपार ।

निज स्वरूप जो साधते हो जाते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद



जाप्यमंत्र - ॐ ह्रीं श्री अष्टपद कैलाश तीर्थक्षेत्रेभ्यो नमः

आ-कुंदकुंद-पूजन



कवियत्री अरुणा जैन 'भारती'

मूलसंघ को दृढ़तापूर्वक, किया जिन्होंने रक्षित है ।
कुंदकुंद आचार्य गुरु वे, जिनशासन में वन्दित हैं ॥
काल-चतुर्थ के अंतिम-मंगल, महावीर-गौतम गणधर ।
पंचम में प्रथम महामंगल, श्री कुंदकुंद स्वामी गुरुवर ॥
उन महागुरु के चरणों में, अपना शीश झुकाता हूँ ।
आह्वानन करके त्रियोग से, निज-मन में पधराता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिन् ! अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

भूलकर निजभाव को, भव-भव किया मैंने भ्रमण ।
है समर्पित जल चरण में, मिटे अब जामन-मरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

संतप्त हूँ भव-ताप से, तन-मन सहे दुःसह जलन ।
मिले शीतलता प्रभो! अब, दुःख हों सारे शमन ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

ले अखंडित शुभ्र-तंदुल, पूजता हूँ तुम चरण ।

मिले मेरा पद मुझे अब, इसलिए आया शरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मिले शील-स्वभाव मेरा, नष्ट हो शत्रु-मदन ।
मिटें मन की वासनायें, पुष्ट हैं अर्पित चरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे, भी इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने कामबाण-विधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

यह भूख की ज्वाला प्रभो! बढ़ती रही हर एक क्षण ।
नैवेद्य अर्पित कर रहा, हो क्षुधा-व्याधि का हरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोह-ममता से सदा, मिथ्यात्व में होता रमण ।
मार्ग सम्यक् अब मिले, यह दीप है अर्पण चरण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट कर्म-प्रकृतियों में, ही उलझता है ये मन ।
ऐसा हो पुरुषार्थ अब, हो जाए कर्मादि-दहन ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

मोक्षफल पाने को हो, रत्नत्रय की अब लगन ।

आत्मा बलवान हो, फल से अतः करता यजन ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अर्थ मनहारी बना, अष्टांग से करता नमन ।
पद-अनर्थ की प्राप्ति को अब, हो सदा स्वातम-रमण ॥
पाद-पद्मों में गुरु के, हों मेरे शत-शत-नमन ।
मुक्ति मिल जाए मुझे भी, इसलिए करता यतन ॥

ॐ ह्रीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने अनर्थपद-प्राप्तये अर्थम् निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

जोगीरासा छन्द

साक्षात् सीमन्धर-वाणी, सुनी जिन्होंने क्षेत्र-विदेह ।
योगिराज सम्राट् स्वयं वे, ऋद्धिधारी गए सदेह ॥1॥

सरस्वती के वरदपुत्र वे, उनकी प्रतिभा अद्भुत थी ।
सीमन्धर-दर्शन में उनकी, आत्मशक्ति ही सक्षम थी ॥2॥

चौरासी पाहुड़ लिखकर के, जिन-श्रुत का भंडार भरा ।
ऐसे ज्ञानी-ध्यानी मुनि ने, इस जग का अज्ञान हरा ॥3॥

श्री कुंदकुंद आचार्य यदि, हमको सुज्ञान नहीं देते ।
कैसे होता ज्ञान निजातम, हम भी अज्ञानी रहते ॥4॥

बहुत बड़ा उपकार किया जो, परम्परा-श्रुत रही अचल ।
वर्ना घोर-तिमिर मोह में ही, रहते जग में जीव सकल ॥5॥

'समयसार' में परमात्म, बनने का साधन-सार भरा ।
'पंचास्तिकाय' में श्री गुरुवर ने, द्रव्यों का निर्देश करा ॥6॥

'प्रवचनसार' रचा स्वामी ने, भेदज्ञान बतलाने को ।
'मूलाचार' लिखा मुनि-हित, आचार-मार्ग दर्शने को ॥7॥

'नियमसार' अरु 'रयणसार' में, आत्मज्ञान के रत्न महान् ।
सिंह-गर्जना से गुरुवर की, हुआ प्राणियों का कल्याण ॥8॥

हैं उपलब्ध अष्टपाहुड़ ही, लेकिन वे भी हैं अनमोल ।
ताड़पत्र पर हस्तलिखित हैं, कौन चुका सकता है मोल ॥9॥

भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवलि, क्रमशः उनके शिष्य हुए ।
शास्त्रदान और माँ की लोरी, से ही स्वाश्रित मुनि हुए ॥10॥

वीर समान ही पाँच नाम हैं, इन महिमाशाली गुरु के ।
कुंदकुंद वक्रग्रीव गृद्धपिच्छ, एलाचार्य पद्मनन्दि ये ॥11॥

ऐसे देव-स्वरूपी साधु, यदा कदा ही होते हैं ।
जिनके पथ पर चलकर, लाखों जीव मुक्त हो जाते हैं ॥12॥

उन महान् गुरु के चरणों में, श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं ।
गुरु-आज्ञा से पूजा रचकर, 'अरुणा' मन में हर्षित है ॥13॥

ॐ हीं श्री कुंदकुंदाचार्यस्वामिने जयमाला-पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

आचार्य कुंदकुंद गुरुवर का, जीवन सार महान् ।
जो भी यह पूजा पढ़ें उनका हो कल्याण ॥
॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥



श्रीआदिनाथ



जय आदिनाथ जिनेन्द्र जय जय प्रथम जिन तीर्थकरम् ।
जय नाभि सुत मरुदेवी नन्दन ऋषभप्रभु जगदीश्वरम् ॥
जय जयति त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि वृषभ विश्वेश्वरम् ।
देवाधि देव जिनेश जय जय, महाप्रभु परमेश्वरम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आहाननं

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सभिहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

समकित जल दो प्रभु आदि निर्मल भाव धर्स्तु ।
दुख जन्म मरण मिट जाय जल से धार कर्स्तु ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

समकित चंदन दो नाथ भव संताप हर्स्तु ।
चरणों में मलय सुगन्ध है प्रभु भेंट कर्स्तु ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

समकित तंदुल की चाह मन में मोद भरे ।
अक्षत से पूजूँ देव अक्षय पद संवरे ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

समकित के पुष्प सुरम्य दे दो हे स्वामी ।
यह काम भाव मिट जाय हे अन्तर्यामी ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

ॐ हीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

समकित चरु करो प्रदान मेरी भूख मिटे ।
भव भव की तृष्णा ज्वाल उर से दूर हटे ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

ॐ हीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

समकित दीपक की ज्योति मिथ्यातम भागे ।
देखूं निज सहज स्वरूप निज परिणति जागे ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

ॐ हीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

समकित की धूप अनूप कर्म विनाश करे ।
निज ध्यान अग्नि के बीच आठों कर्म जरे ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

ॐ हीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

समकित फल मोक्ष महान पाऊँ आदि प्रभो ।
हो जाऊँ सिद्ध समान सुखमय ऋषभ विभो ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

ॐ हीं श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

वसु द्रव्य अर्ध जिनदेव चरणों में अर्पित ।
पाऊँ अनर्घपद नाथ अविकल सुख गर्भित ॥
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता ।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता ॥

पंच कल्याणक

शुभ आषाढ़ कृष्ण द्वितीया को मरुदेवी उर में आये ।
देवों ने छह मास पूर्व से रत्न अयोध्या बरसाये ॥
कर्म भूमि के प्रथम जिनेश्वर तज सर्वार्थसिद्ध आये ।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थकर तीन लोक ने सुख पाये ॥

ॐ ह्रीं श्री आषढ़कृष्णद्वीतिया दिने गर्भमंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

चैत्र कृष्ण नवमी को राजा नाभिराय गृह जन्म लिया ।
इन्द्रादिक ने गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेक किया ॥
नरक तिर्यञ्च सभी जीवों ने सुख अन्तर्मुहुर्त पाया ।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थकर जग में पूर्ण हर्ष छाया ॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवमीदिने जन्ममंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

चैत्र कृष्ण नवमी को ही वैराग्य भाव उर छाया था ।
लौकान्तिक सुर इन्द्रादिक ने तप कल्याण मनाया था ॥
पंच महाव्रत धारण करके पंच मुष्टि कच लोच किया ।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थकर तुमने मुनि पद धार लिया ॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवमीदिने तपमंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

एकादशी कृष्ण फागुन को कर्म घातिया नष्ट हुए ।
केवलज्ञान आप कर स्वामी वीतराग भगवन्त हुए ॥
दर्शन, ज्ञान, अनन्तवीर्य, सुख पूर्ण चतुष्य को पाया ।
जय प्रभु ऋषभदेव जगती ने समवशरण लख सुख पाया ॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनवदी एकादशीदिने ज्ञानमंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

माघ वदी की चतुर्दशी को गिरि कैलाश हुआ पावन ।
आठों कर्म विनाशे पया परम सिद्ध पद मन भावन ॥
मोक्ष लक्ष्मी पाई गिरि कैलाश शिखर निर्वाण हुआ ।

जय जय ऋषभनाथ तीर्थकर भव्य मोक्ष कल्याण हुआ ॥

ॐ ह्रीं श्री माघवदी चतुर्दश्याम् महामोक्षमंगल प्राप्ताय ऋषभदेवाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

जम्बूद्वीप सु भरतक्षेत्र में नगर अयोध्यापुरी विशाल ।
नाभिराय चौदहवें कुलकर के सुत मरुदेवी के लाल ॥
सोलह स्वप्न हुए माता को पंद्रह मास रत्न बरसे ।
तुम आये सर्वार्थसिद्धि से माता उर मंगल सरसे ॥

मतिश्रुत अवधिज्ञान के धारी जन्मे हुए जन्म कल्याण ।
इंद्र सुरों ने हर्षित हो पाण्डुक शिला किया अभिषेक महान ॥
राज्य अवस्था में तुमने जन जन के कष्ट मिटाये थे ।
असि, मसि कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या षट्कर्म सिखाये थे ॥

एक दिवस जब नृत्यलीन सुरि नीलांजना विलीन हुई ।
है पर्याय अनित्य आयु उसकी पल भर में क्षीण हुई ॥
तुमने वस्तु स्वरूप विचारा जागा उर वैराग्य अपार ।
कर चिंतवन भावना द्वादश त्यागा राज्य और परिवार ॥

लौकान्तिक देवों ने आकर किया आपका जय जयकार ।
आस्रव हेय जानकर तुमने लिया हृदय में संवर धार ॥
वन सिद्धार्थ गये वट तरु नीचे वस्त्रों को त्याग दिया ।
'ऊँ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर मौन हुए तप ग्रहण किया ॥

स्वयं बुद्ध बन कर्मभूमि में प्रथम सुजिन दीक्षा धारी ।
ज्ञान मनःपर्यय पाया धर पंच महाव्रत सुख कारी ॥
धन्य हस्तिनापुर के राजा श्रैयांस ने दान दिया ।
एक वर्ष पश्चात् इक्षुरस से तुमने पारणा किया ॥

एक सहस्र वर्ष तप कर प्रभु शुक्ल-ध्यान में हो तल्लीन ।

पाप-पुण्य आसन्न विनाश कर हुए आत्मरस में लवलीन ॥
चार-घातिया कर्म विनाशो पाया अनुपम केवलज्ञान ।
दिव्य-ध्वनि के द्वारा तुमने किया सकलजग का कल्याण ।

चौरासी गरणधर थे प्रभु के पहले वृषभसेन गणधर ।
मुख्य आर्यिका श्री ब्राह्मी श्रोता मुख्य भरत नृपवर ॥
भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में नाथ आपका हुआ विहार ।
धर्मचक्र का हुआ प्रवर्तन सुखी हुआ सारा संसार ॥

अष्टापद कैलाश धन्य हो गया तुम्हारा कर गुणगान ।
बने अयोगी कर्म अघातिया नाश किये पाया निर्वाण ॥
आज तुम्हारे दर्शन करके मेरे मन आनन्द हुआ ।
जीवन सफल हुआ है स्वामी नष्ट पाप दुख द्वंद्व हुआ ॥

यही प्रार्थना करता हूँ प्रभु उर में ज्ञान प्रकाश भरो ।
चारों गतियों के भव संकट का, हे जिनवर नाश करो ॥
तुम सम पद पा जाऊँ मैं भी यही भावना भाता हूँ ।
इसीलिए यह पूर्ण अर्घ चरणों में नाथ चढ़ाता हूँ ॥

ॐ ह्ली श्रीऋषभदेव जिनेन्द्राय महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

वृषभ चिन्ह शोभित चरण ऋषभदेव उर धार ।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद



आदिनाथ-भगवान



नाभिराय मरुदेवि के नंदन, आदिनाथ स्वामी महाराज
सर्वार्थ सिद्धितैं आप पधारे, मध्यलोक माहि जिनराज

इंद्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज आहानन सबविधि मिल करके, अपने कर पूजें प्रभुपाय

अन्वयार्थ : आदिनाथ स्वामी महाराज नाभिराय और मरु देवि के (नंदन) पुत्र हैं, आप सर्वार्थ सिद्धि से इस मध्य लोक में पधारे हैं, इंद्र आदि देव जन्मोत्सव मानाने के लिए आये! हम सब मिलकर विधि पूर्वक आवाहन, स्थापना करके, मन में विराजमान, सत्रिधिकरण पूर्वक भगवान् के चरणों की पूजा करते हैं

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आहाननं

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

क्षीरोदधि को उज्जवल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय
जन्म जरा दुःख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मैं क्षीरसागर के स्वच्छ जल को लेकर श्री जिनेन्द्र भगवान् के चरणों को पूजने के लिए जाता हूँ। जन्म और बुद्धापे के कष्टों के निवारण हेतु प्रभु जी के कमल चरणों पर जल अर्पित करता हूँ। मैं श्री आदिनाथ के चरणों में मन वचन काय से (बलि बलि) सर्वस्व अर्पण करता हूँ। हे करुणानिधि, आप मेरे सांसारिक दुखों का निवारण कर दीजिये, इसलिए मैं प्रभु आप के चरणों की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिरी चंदन दाह निकंदन, कंचन झारी में भर ल्याय !!
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, भव आताप तुरत मिट जाय !
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय!
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय !!

अन्वयार्थ : मलयागिरि का सर्वश्रेष्ठ, जलन का निवारक चंदन स्वर्ण की झारी में भरकर लाया हूँ। हे भव्य जीवों! इसको श्रीजी के चरणों में अर्पित करो, इससे संसार के दुखों का तुरंत निवारण हो जाता है। श्री आदिनाथ के कमल चरणों पर मैं मन वचन काय से सर्वस्व अर्पण करता हूँ। हे करुणानिधि, आप मेरे सांसारिक दुखों का निवारण कर दीजिये, इसलिए मैं प्रभु आप के चरणों की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शुभशालि अखंडित सौरभ मंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, अक्षय पद को तुरत उपाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : (शुभ) अच्छे शाली वन के (अखंडित) साबुत, सुगच्छित अक्षतों को प्रासुक जल से धोकर लाया हूँ। हे भव्य जीवों! अक्षतों को श्रीजी के चरणों में अर्पित करना ही (अक्षय-पद) मोक्ष-पद की प्राप्ति का तुरंत उपाय है। श्री आदिनाथ के कमल चरणों पर मैं मन वचन काय से सर्वस्व अर्पण करता हूँ। हे करुणानिधि, आप मेरे सांसारिक दुखों का निवारण कर दीजिये, इसलिए मैं प्रभु आप के चरणों की पूजा करता हूँ।

कमल केतकी बेल चमेली, श्री गुलाब के पुष्प मंगाय
 श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, कामबाण तुरत नसि जाय
 श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
 हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : हे भव्य जीवों ! कमल, केतकी, बेल, चमेली और गुलाब के पुष्प मंगाकर भगवान् के चरणों में अर्पित करने से कामवासनाओं का तुरंत नाश होता है ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज लीना षट्-रस भीना, श्री जिनवर आगे धरवाय
 थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, जिन गुण गावत मन हरषाय
 श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
 हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मैं षट्-रसों से [भीना] परिपूर्ण नैवेद्य से भरा थाल, क्षुधा रोग को नष्ट करने के लिए भगवान् के समक्ष रख/अर्पित कर रहा हूँ जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का गान करते हुए मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हो रहा है ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा

जगमग जगमग होत दशोंदिश, ज्योति रही मंदिर में छाय
 श्रीजी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुखदाय
 श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
 हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मैं दीपक लेकर आया हूँ जिसकी ज्योति मंदिर जी को जगमगा कर दसों दिशओं में फैलकर प्रकाशित कर रही है । ऐसे दीपक से भगवान् के समक्ष आरती करने से अत्यंत दुखदायी मोहरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय मोहास्थकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर कपूर सुगंध मनोहर, चंदन कूट सुगंध मिलाय
 श्री जी के सन्मुख खेय धूपायन, कर्मजरे चहुँगति मिटि जाय
 श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
 हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मैंने अगर, कपूर और मनोहर सुगन्धित चंदन और अन्य सुगन्धित पदार्थों को कूट कर धूप बनायी है । भगवान् के सन्मुख धूपायन में इनको मैं खे रहा हूँ जिस से मेरे कर्म नष्ट हो जाए और मेरा चतुर गति रूप संसार समाप्त हो जाए ।

**श्रीफल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय
महा मोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय**

अन्वयार्थ : मैं श्री फल, बादाम, सुपारी, केला, छुहारा आदि सभी प्रकार के फल लेकर आया हूँ, उन्हें महा मोक्षफल प्राप्त करने के लिए, प्रभु आपके चरणों में अर्पित करता हूँ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

**शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय
दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय**

अन्वयार्थ : पवित्र शुद्ध, स्वच्छ जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य लेकर प्रसन्न चित मन से दीप, धूप और फलों के अर्घ को हाथ में लेकर नाचते हुए, ताली बजाते हुए और ढोल बजते हुए भगवान् की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

पञ्च कल्याणक के अर्थ

**सर्वारथ सिद्धितैं चये, मरुदेवी उर आय
दोज असित आषाढ़ की, जज्ञूँ तिहारे पाय ॥**

अन्वयार्थ : सर्वारथ सिद्धि से चय कर (वहाँ आयु पूर्ण कर) आप मरुदेवी माता के उदर / गर्भ में आषाढ़ बढ़ी / कृष्ण पक्ष के द्वितीया को आये थे! मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ!

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्ण द्वितीयायं गर्भ कल्याणक प्राप्ताये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

**चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान्
सुरपति उत्सव अति करा, मैं पूजौं धरी ध्यान ॥**

अन्वयार्थ : चैत वदी/ कृष्ण के नवमी को भगवान् आदिनाथ का जन्म हुआ था, उस समय (सुरपति) इंद्र ने अति उत्साह पूर्वक उत्सव मनाया था ! मैं आपकी ध्यान पूर्वक पूजा करता हूँ !

ॐ ह्रीं चैतकृष्ण नवम्यां जन्मकल्याणक प्राप्ताये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

तृणवत् ऋद्धि सब छांडि के, तप धार्यो वन जाय
नौमी चैत असेत की, जजूँ तिहारे पाय ॥

अन्वयार्थ : भगवन आपने समस्त वैभव को तृण के सामान छोड़कर वन में जाकर चैत वदी नवमी को तप धारण कर लिया !हम आपके चरणों की पूजा करते है

ॐ ह्रीं चैत कृष्ण नवम्यां तप कल्याणक प्राप्ताये श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

फाल्गुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान
इंद्र आय पूजा करी, मैं पूजो यह थान ॥

अन्वयार्थ : फाल्गुन कृष्ण एकादशी को आपको केवल ज्ञान उत्पान होने के कारण इंद्र ने यहाँ आकर आपकी पूजा करी थी, मैं भी इस(थान) स्थान पर आकर आपके ज्ञान कल्याणक की पूजा करता हूँ

ॐ ह्रीं फाल्गुन कृष्ण एकादशम्यां ज्ञान कल्याणक प्राप्ताये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

माघ चतुर्दशी कृष्ण को, मोक्ष गए भगवान्
भवि जीवों को बोधिके, पहुँचे शिवपुर थान ॥

अन्वयार्थ : माघ कृष्ण (वदि) चतुर्दशी को भगवान् आदिनाथ भव्य जीवों को उपदेश देकर मोक्ष (शिवपुर थान), सिद्धालय पधारे थे

ॐ ह्रीं माघ कृष्णचतुर्दश्यां मोक्ष कल्याणक प्राप्ताये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आदीश्वर महाराज, मैं विनती तुम से करूँ
चारों गति के माहिं, मैं दुःख पायो सो सुनो ॥

लावनी छन्द

कर्म अष्ट मैं हूँ एकलो, ये दुष्ट महादुःख देत हो
कबहूँ इतर-निगोद में, मोक्ष पटकत करत अचेत हो
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥1॥

प्रभु! कबहूँक पटक्यो नरक में, जठे जीव महादुःख पाय हो
निष्ठुर निरदई नारकी, जठै करत परस्पर घात हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥2॥

प्रभु नरक तणा दुःख अब कहूँ, जठै जीव महादुख पाय हो

कोइयक बांधे खंभ सों पापी दे मुग्दर की मार हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥3॥

कोइयक काटे करौत सों पापी अंगतणी देय फाड़ हो
प्रभु! इहविधि दुःख भुगत्या घणां, फिर गति पाई तिरियंच हो
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥4॥

हिरणा बकरा बाछला पशु दीन गरीब अनाथ हो
पकड़ कसाई जाल में पापी काट-काट तन खांय हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥5॥

प्रभु! मैं ऊँट बलद भैंसा भयो, जा पे लाद्यो भार अपार हो
नहीं चाल्यो जब गिर पड़यो, पापी दें सोंटन की मार हो
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥6॥

प्रभु! कोइयक पुण्य-संयोग सूं, मैं तो पायो स्वर्ग-निवास हो
देवांगना संग रमि रह्यो, जठै भोगनि को परिताप हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥7॥

प्रभु! संग अप्सरा रमि रह्यो, कर कर अति-अनुराग हो
कबहुँक नंदन-वन विषै, प्रभु कबहुँक वनगृह-माँहिं हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥8॥

प्रभु! यहि विधिकाल गमायकैं, फिर माला गई मुरझाय हो
देव-थिति सब घट गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो
सोच करत तन खिर पड़यो, फिर उपज्यो गरभ में जाय हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥9॥

प्रभु! गर्भतणा दुःख अब कहूँ, जठै सकुड़ाई की ठौर हो
हलन चलन नहिं कर सक्यो, जठै सघन-कीच घनघोर हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥10॥

प्रभु! माता खावे चरपरो, फिर लागे तन संताप हो
प्रभु! जो जननी तातो भखे, फिर उपजे तन संताप हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥11॥

प्रभु! औंधे-मुख झूल्यो रह्यो, फेर निकसन कौन उपाय हो
कठिन-कठिन कर नीसर्यो, जैसे निसरे जंत्री में तार हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥12॥

प्रभु! निकसत ही धरत्यां पड्यो, फिर लागी भूख अपार हो
रोय-रोय बिलख्यो घनो, दुःख-वेदन को नहिं पार हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥13॥

प्रभु! दुःख-मेटन समरथ धनी, यातें लागूँ तिहारे पांय हो
सेवक अर्ज करे प्रभु मोक्ष, भवदधि-पार उतार हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती ॥14॥

दोहा

श्री जी की महिमा अगम है, कोई न पावे पार
मैं मति-अल्प अज्ञान हूँ, कौन करे विस्तार ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमाला-पूर्णार्थ्य निर्वपामीति स्वाहा

विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मन ल्याय
सुरगों में संशय नहीं, निश्चय शिवपुर जाय ॥

॥इत्याशीर्वादः - पुष्टांजलि क्षिपेत् - ॥



श्रीआदिनाथ-पूजन
परमपूज्य वृषभेष स्वयंभू देवजू
पिता नाभि मरुदेवि करें सुर सेवजू ॥
कनक वरण तन-तुंग धनुष पनशत तनो



कृपासिंधु इत आइ तिष्ठ मम दुख हनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

हिमवनोद् भव वारि सु धारिके, जजत हौं गुनबोध उचारिके
परमभाव सुखोदधि दीजिये, जन्ममृत्यु जरा क्षय कीजिये ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलय चन्दन दाहनिकन्दनं, घसि उभै कर में करि वन्दनं
जजत हौं प्रशमाश्रय दीजिये, तपत ताप तृषा छय कीजिये ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अमल तन्दुल खंडविवर्जितं, सित निशेष महिमामियतर्जितं
जजत हौं तसु पुंज धरायजी, अखय संपति द्यो जिनरायजी ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल चंपक केतकि लीजिये, मदनभंजन भेंट धरीजिये
परमशील महा सुखदाय हैं, समरसूल निमूल नशाय हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

सरस मोदनमोदक लीजिये, हरनभूख जिनेश जजीजिये
सकल आकुल अंतकहेतु हैं, अतुल शांत सुधारस देतु हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय क्षुधादिरोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

निविड़ मोह महातम छाइयो, स्वपर भेद न मोहि लखाइयो
हरनकारण दीपक तासके, जजत हौं पद केवल भासके ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर चन्दन आदिक लेय के, परम पावन गंध सु खेय के

अग्निसंग जरें मिस धूम के, सकल कर्म उड़े यह धूम के ॥

ॐ ह्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस पक्ष मनोहर पावने, विविध ले फल पूज रचावने
त्रिजगनाथ कृपा अब कीजिये, हमहि मोक्ष महाफल दीजिये ॥

ॐ ह्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलफलादि समस्त मिलायके, जजत हैं पद मंगल गायके
भगत वत्सल दीन दयालजी, करहु मोहि सुखी लखि हालजी ॥

ॐ ह्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्पाणक अर्धावली

असित दोज आषाढ़ सुहावनो, गरभ मंगल को दिन पावनो हरि सची पितुमातहिं सेवही, जजत हैं हम श्री जिनदेव ही ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णा द्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्री वृषभदेवाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

असित चैत सु नौमि सुहाइयो, जनम मंगल ता दिन पाइयो
हरि महागिरिपे जजियो तबै, हम जजें पद पंकज को अबै ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णा नवमीदिने जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

असित नौमि सु चैत धरे सही, तप विशुद्ध सबै समता गही निज सुधारस सों भर लाइके, हम जजें पद अर्ध चढ़ाइके ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णा नवमीदिने दीक्षामंगलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

असित फागुन ग्यारसि सोहनों, परम केवलज्ञान जग्यो भनौं
हरि समूह जजें तहँ आइके, हम जजें इत मंगल गाइके ॥

ॐ ह्रीं फालुनकृष्णोकादश्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

असित चौदसि माघ विराजई, परम मोक्ष सुमंगल साजई हरि समूह जजें कैलाशजी, हम जजें अति धार हुलास जी ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णा चतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

जय जय जिनचन्दा आदि जिनन्दा, हनि भवफन्दा कन्दा जू
वासव शतवंदा धरि आनन्दा, ज्ञान अमंदा नन्दा जू

त्रिलोक हितंकर पूरन पर्म, प्रजापति विष्णु चिदात्म धर्म
जतीसुर ब्रह्मविदांबर बुद्ध, वृषंक अशंक क्रियाम्बुधि शुद्ध
जबै गर्भागम मंगल जान, तबै हरि हर्ष हिये अति आन
पिता जननी पद सेव करेय, अनेक प्रकार उमंग भरेय ॥

जन्मे जब ही तब ही हरि आय, गिरेन्द्र विषैं किय न्हौन सुजाय
नियोग समस्त किये तित सार, सु लाय प्रभू पुनि राज अगार
पिता कर सौंपि कियो तित नाट, अमंद अनंद समेत विराट
सुथान पयान कियो फिर इंद, इहां सुर सेव करें जिनचन्द

कियौ चिरकाल सुखाश्रित राज, प्रजा सब आनंद को तित साज
सुलिप्त सुभोगिनि में लखि जोग, कियो हरि ने यह उत्तम योग
निलंजन नाच रच्यो तुम पास, नवों रस पूरित भाव विलास
बजै मिरदंग द्वम द्वम जोर, चले पग झारि झनांझन जोर

घना घन घंट करे धुनि मिष्ट, बजै मुहचंग सुरान्वित पुष्ट
खड़ी छिनपास छिनहि आकाश, लघु छिन दीरघ आदि विलास
ततच्छन ताहि विलै अविलोय, भये भवतै भवभीत बहोय
सुभावत भावन बारह भाय, तहां दिव ब्रह्म रिषीश्वर आय

प्रबोध प्रभू सु गये निज धाम, तबे हरि आय रची शिवकाम
कियो कचलौंच प्रयाग अरण्य, चतुर्थम ज्ञान लह्यो जग धन्य
धर्यो तब योग छमास प्रमान, दियो श्रेयांस तिन्हें इखु दान
भयो जब केवलज्ञान जिनेंद्र, समोसृत ठाठ रच्यो सु धनेंद्र

तहां वृष तत्त्व प्रकाशि अशेष, कियो फिर निर्भय थान प्रवेश
अनन्त गुनात्म श्री सुखराश, तुम्हें नित भव्य नमें शिव आश

यह अरज हमारी सुन त्रिपुरारी, जन्म जरा मृतु दूर करो
शिवसंपति दीजे ढील न कीजे, निज लख लीजे कृपा धरो

ॐ ह्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो ऋषभेश्वर पूजे, मनवचतन भाव शुद्ध कर प्रानी
सो पावै निश्चै सों, भुक्ति औ मुक्ति सार सुख थानी

इत्याशिर्वादः ॥ पृष्ठांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीअजितनाथ-पूजन

त्याग वैजयन्ति सार सार-धर्म के अधार,
जन्मधार धीर नम्र सुष्टु कौशलापुरी
अष्ट दुष्ट नष्टकार मातु वैजयाकुमार,
आयु लक्षपूर्व दक्ष है बहत्तरैपुरी ॥
ते जिनेश श्री महेश शत्रु के निकन्दनेश,
अत्र हेरिये सुदृष्टि भक्त पै कृपा पुरी
आय तिष्ठ इष्टदेव मैं करौं पदाब्जसेव,
परम शर्मदाय पाय आय शर्न आपुरी ॥

ॐ ह्रीश्रीअजितनाथ जिन ! अत्रावतरावतर संवैषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीश्रीअजितनाथ जिन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीश्रीअजितनाथ जिन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाहृदपानी निर्मल आनी, सौरभ सानी सीतानी
तसु धारत धारा तृष्णा निवारा, शांतागारा सुखदानी ॥
श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जग्गेशं ॥

ॐ ह्रीश्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि चंदन बावन ताप मिटावन, सौरभ पावन घसि ल्यायो
तुम भवतमभंजन हो शिवरंजन, पूजन रंजन मैं आयो ॥

श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सितखंड विवर्जित निशिपति तर्जित, पुंज विधर्जित तंदुल को
भवभाव निखर्जित शिवपदसर्जित, आनंदभर्जित दंदल को ॥

श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मनमथ-मद-मंथन धीरज-ग्रंथन, ग्रंथ-निग्रंथन ग्रंथपति
तुअ पाद कुसेसे आधि कुशेसे, धारि अशेसे अर्चयती ॥

श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विधंसनाय पुष्ण निर्वपामीति स्वाहा

आकुल कुलवारन थिरताकारन, क्षुधाविदारन चरु लायो
षट् रस कर भीने अन्न नवीने, पूजन कीने सुख पायो ॥

श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक-मनि-माला जोत उजाला, भरि कनथाला हाथ लिया
तुम भ्रमतम हारी शिवसुख कारी, केवलधारी पूज किया

श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगरादिक चूरन परिमल पूरन, खेवत कूरन कर्म जरें
दशहूं दिश धावत हर्ष बढ़ावत, अलि गुण गावत नृत्य करें ॥

श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बादाम नारंगी श्रीफल पुंगी आदि अभंगी सों अरचौं
सब विघनविनाशे सुख प्रकाशै, आतम भासै भौ विरचौं ॥

श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलफल सब सज्जे, बाजत बज्जै, गुनगनरज्जे मनमज्जे
तुअ पदजुगमज्जै सज्जन जज्जै, ते भवभज्जै निजकज्जै ॥

श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खगेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जगेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पंच कल्याणक अर्धावली

जेठ असेत अमावशि सोहे, गर्भदिना नँद सो मन मोहे
इंद फनिंद जजे मनलाई, हम पद पूजत अर्घा चढ़ाई ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णा-अमावस्या गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

माघ सुदी दशमी दिन जाये, त्रिभुवन में अति हरष बढ़ाये
इन्द फनिंद जजैं तित आई, हम इत सेवत हैं हुलशाई ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्ला दशमीदिने जन्मगलप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

माघ सुदी दशमी तप धारा, भव तन भोग अनित्य विचारा
इन्द फनिंद जजैं तित आई, हम इत सेवत हैं सिरनाई ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्ला दशमीदिने दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पौषसुदी तिथि ग्यारस सुहायो, त्रिभुवनभानु सु केवल जायो
इन्द फनिंद जजैं आई, हम पद पूजत प्रीति लगाई ॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लाएकादशीदिनेज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचमि चैतसुदी निरवाना, निजगुनराज लियो भगवाना
इन्द फनिंद जजैं तित आई, हम पद पूजत हैं गुनगाई ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ला पंचमीदिने निर्वाणमंगलप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहा

अष्ट दुष्टको नष्ट करि इष्टमिष्ट निज पाय
शिष्ट धर्म भाख्यो हमें पुष्ट करो जिनराय

जय अजित देव तुअ गुन अपार, पै कहूँ कछुक लघु बुद्धि धार
दश जनमत अतिशय बल अनन्त, शुभ लच्छन मधुबचन भनंत
संहनन प्रथम मलरहित देह, तन सौरभ शोणित स्वेत जेह
वपु स्वेदबिना महरूप धार, समचतुर धरें संठान चार

दश केवल, गमन अकाशदेव, सुरभिच्छ रहै योजन सतेव
उपसर्गरहित जिनतन सु होय, सब जीव रहित बाधा सुजोय
मुख चारि सरबविद्या अधीश, कवलाअहार सुवर्जित गरीश
छायाबिनु नख कच बढ़ै नाहिं, उन्मेश टमक नहिं भ्रकुटि माहिं

सुरकृत दशचार करों बखान, सब जीवमित्रता भाव जान
कंटक विन दर्पणवत सुभूम, सब धान वृच्छ फल रहै झूम
षटरितु के फूल फले निहार, दिशि निर्मल जिय आनन्द धार
जंह शीतल मंद सुगंध वाय, पद पंकज तल पंकज रचाय

मलरहित गगन सुर जय उचार, वरषा गन्धोदक होत सार
वर धर्मचक्र आगे चलाय, वसु मंगलजुत यह सुर रचाय
सिंहासन छत्र चमर सुहात, भामंडल छवि वरनी न जात
तरु उच्च अशोक रु सुमनवृष्टि, धुनि दिव्य और दुन्दुभि सुमिष्ट

दृग ज्ञान चर्ण वीरज अनन्त, गुण छियालीस इम तुम लहन्त
इन आदि अनन्ते सुगुनधार, वरनत गनपति नहिं लहत पार
तब समवशरणमँह इन्द्र आय, पद पूजन बसुविधि दरब लाय
अति भगति सहित नाटक रचाय, ताथेर्ई थेर्ई थेर्ई धुनि रही छाय

पग नूपुर झननन झनननाय, तननननन तननन तान गाय
घननन नन नन घण्टा घनाय, छम छम छम धुंघरु बजाय
द्रम द्रम द्रम द्रम मुरज धान, संसाग्रदि सरंगी सुर भरत तान
झट झट झट अटपट नटत नाट, इत्यादि रच्यो अद्भुत सुठाट

पुनि वन्दि इन्द्र सुनुति करन्त, तुम हो जगमें जयवन्त सन्त
फिर तुम विहार करि धर्मवृष्टि, सब जोग निरोध्यो परम इष्ट
सम्मेदथकी तिय मुकति थान, जय सिद्धशिरोमन गुननिधान
'वृन्दावन' वन्दत बारबार, भवसागरते मोहि तार तार

धन्ता

जय अजित कृपाला गुणमणिमाला, संजमशाला बोधपति
वर सुजस उजाला हीरहिमाला, ते अधिकाला स्वच्छ अती

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

जो जन अजित जिनेश जजें हैं, मनवचकाई
ताकों होय अनन्द ज्ञान सम्पति सुखदाई ॥
पुत्र मित्र धनधान्य, सुजस त्रिभुवनमहँ छावे
सकल शत्रु छय जाय अनुक्रमसों शिव पावे

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्टांजलि क्षिपेत ॥



श्रीसंभवनाथ-पूजन

जय संभव जिनचन्द्र सदा हरिगनचकोरनुत
जयसेना जसु मातु जैति राजा जितारिसुत ॥
तजि ग्रीवक लिय जन्म नगर श्रावस्ती आई



सो भव भंजन हेत भगत पर होहु सहाई

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट् आहाननं

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

मुनि मन सम उज्ज्वल जल लेकर, कनक कटोरी में धार
जनम जरा मृतु नाश करन कों, तुम पदतर ढारों धारा ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

तपत दाह को कन्दन चंदन मलयागिरि को घसि लायो
जगवंदन भौफंदन खंदन समरथ लखि शरनै आयो ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास कमलवासित, सित सुन्दर अनियारे
पुंज धरौं जिन चरनन आगे, लहौं अखयपद कों प्यारे ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेल चमेली, चंपा जूही सुमन वरा
ता सों पूजत श्रीपति तुम पद, मदन बान विध्वंस करा ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विधंसनाय पुष्ण निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर मोदन मोदक, खाजा ताजा सरस बना

ता सों पद श्रीपति को पूजत, क्षुधा रोग ततकाल हना ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

घटपट परकाशक भ्रमतम नाशक, तुमदिग ऐसो दीप धरौं
केवल जोत उदोत होहु मोहि, यही सदा अरदास करौं ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय मोहाम्बकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागर श्रीखण्डादिक चूर हुतासन में
खेवत हौं तुम चरन जलज ढिग, कर्म छार जरिहै छन में ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल लौंग बदाम छुहारा, एला पिस्ता दाख रमैं
लै फल प्रासुक पूजौं तुम पद देहु अखयपद नाथ हमैं ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ किया
तुमको अरपौं भाव भगतिधर, जै जै जै शिव रमनि पिया ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन सुख पावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

माता गर्भ विषै जिन आय, फागुन सित आठें सुखदाय
सेयो सुर-तिय छप्न वृन्द, नाना विधि मैं जजौं जिनन्द ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुन शुक्लाष्टम्यां गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक सित पूनम तिथि जान, तीन ज्ञान जुत जनम प्रमाण
धरि गिरि राज जजे सुरराज, तिन्हें जजौं मैं निज हित काज ॥

ॐ ह्रीं कार्तिक शुक्ला पूर्णिमायां जन्मकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मंगसिर सित पून्यों तप धार, सकल संग तजि जिन अनगार
ध्यानादिक बल जीते कर्म, चर्चों चरन देहु शिवशर्म ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षपूर्णिमायां तपकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक कलि तिथि चौथ महान, धाति धात लिय केवल ज्ञान
समवशरनमंह तिष्ठे देव, तुरिय चिह्न चर्चों वसुभेव ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाचतुर्थी ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैतशुक्ल तिथि षष्ठी चोख, गिरिसम्मेदते लीनों मोख
चार शतक धनु अवगाहना, जजौं तास पद थुति कर घना ॥

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ला षष्ठीदिने मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्री संभव के गुन अगम, कहि न सकत सुरराज
मैं वश भक्ति सु धीठ है, विनवौं निजहित काज ॥

जिनेश महेश गुणेश गरिष्ट, सुरासुर सेवित इष्ट वरिष्ट
धरे वृषचक्र करे अघ चूर, अतत्त्व छपातम मर्द्दन सूर ॥
सुतत्त्व प्रकाशन शासन शुद्ध, विवेक विराग बढ़ावन बुद्ध
दया तरु तर्पन मेघ महान, कुनय गिरि गंजन वज्र समान ॥

सुगर्भरु जन्म महोत्सव मांहि, जगज्जन आनन्दकन्द लहाहिं
सुपूरब साठहि लच्छ जु आय, कुमार चतुर्थम अंश रमाय ॥
चवालिस लाख सुपूरब एव, निकंटक राज कियो जिनदेव
तजे कछु कारन पाय सु राज, धरे व्रत संजम आतम काज ॥

सुरेन्द्र नरेन्द्र दियो पयदान, धरे वन में निज आतम ध्यान
किया चव घातिय कर्म विनाश, लयो तब केवलज्ञान प्रकाश ॥
भई समवसृति ठाट अपार, खिरै धुनि झेलहिं श्री गणधार
भने षट्-द्रव्य तने विसतार, चहुँ अनुयोग अनेक प्रकार ॥

कहें पुनि त्रेपन भाव विशेष, उभै विधि हैं उपशम्य जुभेष
सुसम्यकचारित्र भेद-स्वरूप, भये इमि छायक नौ सु अनूप ॥
दगौ बुधि सम्यक चारितदान, सुलाभ रु भोगुपभोगप्रमाण
सुवीरज संजुत ए नव जान, अठार छयोपशम इम प्रमान ॥

मति श्रुत औधि उभै विधि जान, मनःपरजै चखु और प्रमान
अचक्खु तथा विधि दान रु लाभ, सुभोगुपभोग रु वीरजसाभ ॥
व्रताव्रत संजम और सु धार, धरे गुन सम्यक चारित भार
भए वसु एक समापत येह, इककीस उदीक सुनो अब जेह ॥

चहुँ गति चारि कषाय तिवेद, छह लेश्या और अज्ञान विभेद
असंजम भाव लखो इस माहिं, असिद्धित और अतत्त कहाहिं ॥
भये इकबीस सुनो अब और, सुभेदत्रियं पारिनामिक ठौर
सुजीवित भव्यत और अभव, तरेपन एम भने जिन सब्ब ॥

तिन्हो मँह केतक त्यागन जोग, कितेक गहे तें मिटे भव रोग
कह्यो इन आदि लह्यो फिर मोख, अनन्त गुनातम मंडित चोख ॥
जजौं तुम पाय जपौं गुनसार, प्रभु हमको भवसागर तार
गही शरनागत दीनदयाल, विलम्ब करो मति हे गुनमाल ॥

धर्ता

जै जै भव भंजन जन मन रंजन, दया धुरंधर कुमतिहरा
वृन्दावन वंदत मन आनन्दित, दीजै आतम ज्ञान वरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय महार्थं निर्वपामीति स्वाहा

जो बांचे यह पाठ सरस संभव तनो

सो पावे धनधान्य सरस सम्पति घनो ॥
सकल पाप छय जाय सुजस जग में बढ़े
पूजत सुर पद होय अनुक्रम शिव चढ़े

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्ट्यांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीअभिनन्दननाथ-पूजन
अभिनन्दन आनन्दकंद, सिद्धारथनन्दन
संवर पिता दिनन्द चन्द, जिहिं आवत वन्दन ॥
नगर अयोध्या जनम इन्द, नागिंद जु ध्यावे
तिन्हें जजन के हेत थापि, हम मंगल गावे ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापन

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र मम सभिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

पदमद्रहगत गंगचंग, अंभग-धार सु धार है
कनकमणि नगजड़ित झारी, द्वार धार निकार है ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल चन्दन कदलि नन्दन, जल सु संग घसाय के
होय सुगंध दशों दिशा में, भ्रमे मधुकर आय के ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

हीर हिम शशि फेन मुक्ता सरिस तंदुल सेत हैं
तास को ढिग पुञ्ज धारौं अक्षयपद के हेत हैं ॥



कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

समर सुभट निघटन कारन सुमन सु मन समान
सुरभि तें जा पे करें झँकार मधुकर आन हैं ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

सरस ताजे नव्य गव्य मनोज्ञ चितहर लेय जी
छुधाछेदन छिमा छितिपति के चरन चरचेय जी ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अतत तम-मर्दन किरनवर, बोधभानु-विकाश है
तुम चरनढिग दीपक धरौं, मो कों स्वपर प्रकाश है ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

भुर अगर कपूर चुर सुगंध, अगिनि जराय है
सब करमकाष्ठ सु काटने मिस, धूम धूम उड़ाय है ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

आम निंबु सदा फलादिक, पक्ष पावन आन जी
मोक्षफल के हेत पूजौं, जोरि के जुग पान जी ॥

कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट द्रव्य संवारि सुन्दर सुजस गाय रसाल ही
नचत रजत जजौं चरन जुग, नाय नाय सुभाल ही ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्पाणक अर्घ्यविली

शुकल छट्ठ वैशाख विषे तजि, आये श्री जिनदेव
सिद्धारथा माता के उर में, करे सची शुचि सेव ॥
रतन वृष्टि आदिक वर मंगल, होत अनेक प्रकार
ऐसे गुननिधि को मैं पूजौं, ध्यावौं बारम्बार ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ला षष्ठीदिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

माघ शुकल तिथि द्वादशि के दिन, तीन लोक हितकार
अभिनन्दन आनन्दकंद तुम, लिनो जग अवतार ॥
एक महूरत नरकमांहि हू, पायो सब जिय चैन
कनकवरन कपि-चिह्न-धरन पद जजौं तुम्हें दिन रैन ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्ला द्वादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

साढ़े छत्तिस लाख सुपूरब, राज भोग वर भोग
कछु कारन लखि माघ शुकल, द्वादशि को धार्यो जोग ॥
षष्ठम नियम समाप्त करि, लिय इंद्रदत्त घर छीर
जय धुनि पुष्प रतन गंधोदक, वृष्टि सुगंध समीर ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्ला द्वादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

पौष शुक्ल चौदशि को घाते, घाति करम दुखदाय
उपजायो वर बोध जास को, केवल नाम कहाय ॥
समवसरन लहि बोधि धरम कहि, भव्य जीव सुखकन्द
मो कों भवसागर तें तारो, जय जय जय अभिनन्द ॥

ॐ हीं पौषशुक्ला चतुर्दश्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

जोग निरोग अघातिघाति लहि, गिर समेद तें मोख
मास सकल सुखरास कहे, बैशाख शुकल छठ चोख ॥
चतुरनिकाय आय तित कीनी, भगति भाव उमगाय
हम पूजत इत अरघ लेय जिमि, विघ्न सघन मिट जाय ॥

ॐ हीं वैशाखशुक्ला षष्ठीदिने मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

तुंग सु तन धनु तीन सौ, औ पचास सुख धाम
कनक वरन अवलौकि के, पुनि पुनि करुं प्रणाम

जयमाला

सच्चिदानन्द सद्ज्ञान सद्वर्णनी, सत्स्वरूपा लई सत्सुधा सर्सनी
सर्वाआनन्दाकंदा महादेवा, जास पादाब्ज सेवैं सबै देवता
गर्भ औ जन्म निःकर्म कल्यान में, सत्त्व को शर्म पूरे सबै थान में
वंश इक्ष्वाकु में आप ऐसे भये, ज्यों निशा शर्द में इन्दु स्वेच्छै ठये

होत वैराग लौकांतुर बोधियो, फेरि शिविकासु चढ़ि गहन निज सोधियो
घाति चौघातिया ज्ञान केवल भयो, समवसरनादि धनदेव तब निरमयो
एक है इन्द्र नीली शिला रत्न की, गोल साढेदशै जोजने रत्न की
चारदिश पैड़िका बीस हज्जार है, रत्न के चूर का कोट निरधार है

कोट चहुं ओर चहुंद्वार तोरन खँचे, तास आगे चहूं मानथंभा रचे
मान मानी तजैं जास ढिग जाय के, नम्रता धार सेवैं तुम्हें आय के
बिंब सिंहासनों पै जहां सोहहीं, इन्द्रनागेन्द्र केते मने मोहहीं
वापिका वारिसों जत्र सोहे भरी, जास में न्हात ही पाप जावै टरी

तास आगे भरी खातिका वारि सों, हंस सूआदि पंखी रमैं प्यार सों
पुष्य की वाटिका बाग वृक्षें जहां, फूल औ श्री फले सर्व ही हैं तहां
कोट सौवर्ण का तास आगे खड़ा, चार दर्वाज चौ ओर रत्नों जड़ा
चार उद्यान चारों दिशा में गना, है धुजापंक्ति और नाट्यशाला बना

तासु आगें त्रिती कोट रूपामयी, तूप नौ जास चारों दिशा में ठयी
धाम सिद्धान्त धारीनके हैं जहां, औ सभाभूमि है भव्य तिष्ठें तहां
तास आगे रची गन्धकूटी महा, तीन है कट्टिनी चारु शोभा लहा
एक पै तौ निधैं ही धरी ख्यात हैं, भव्य प्रानी तहां लो सबै जात हैं

दूसरी पीठ पै चक्रधारी गमै, तीसरे प्रातिहारज लशै भाग में
तास पै वेदिका चार थंभान की, है बनी सर्व कल्यान के खान की
तासु पै हैं सुसिंघासनं भासनं, जासु पै पद्म प्राफुल्ल है आसनं
तासु पै अन्तरीक्षं विराजै सही, तीन छत्रे फिरें शीस रत्ने यही

वृक्ष शोकापहारी अशोकं लसै, दुन्दुभी नाद औ पुष्य खंते खसै
देह की ज्योतिसों मण्डलाकार है, सात सौ भव्य ता में लखेंसार है
दिव्य वानी खिरे सर्व शंका हरे, श्री गनाधीश झेलें सु शक्ति धरे
धर्मचक्री तुही कर्मचक्री हने, सर्वशक्री नमें मोद धारे घने

भव्य को बोधि सम्मेदतें शिव गये, तत्र इन्द्रादि पूजै सु भक्तिमये
हे कृपासिंधु मो पै कृपा धारिये, घोर संसार सों शीघ्र मो तारिये

धर्मा

जय जय अभिनन्दा आनंदकंदा, भव समुन्द्र वर पोत इवा
भ्रम तम शतखंडा, भानुप्रचंडा, तारि तारि जग रैन दिवा

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय पूर्णिर्ध्वं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीअभिनन्दन पाप निकन्दन तिन पद जो भवि जजै सु धहर
ता के पुन्य भानु वर उग्गे दुरित तिमिर फाटै दुखकार ॥
पुत्र मित्र धन धान्य कमल यह विकसै सुखद जगतहित प्यार
कछुक काल में सो शिव पावै, पढ़ै सुने जिन जजै निहार ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्पांजलि क्षेपेत ॥





श्रीसुमतिनाथ-पूजन

संजम रतन विभूषन भूषित, दूषन वर्जित श्री जिनचन्द
सुमति रमा रंजन भवभंजन, संजययंत तजि मेरु नरिंद ॥

मातु मंगला सकल मंगला, नगर विनीता जये अमंद
सो प्रभु दया सुधा रस गर्भित आय तिष्ठ इत हरो दुःख दंद

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्लानं

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ख्यापनं

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पंचम उदधितनों सम उजज्वल, जल लीनों वरगांध मिलाय
कनक कटोरी माहिं धारि करि, धार देहु सुचि मन वच काय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागर घनसार घसौं वर, केशर अर करपूर मिलाय
भवतपहरन चरन पर वारौं, जनम जरा मृतु ताप पलाय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शशिसम उज्ज्वल सहित गंधतल, दोनों अनी शुद्ध सुखदास
सौ लै अखय संपदा कारन, पुञ्ज धरौं तुम चरनन पास
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेल चमेली, करना अरु गुलाब महकाय
सो ले समरशूल छयकारन, जजौं चरन अति प्रीति लगाय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय

तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य गव्य पकवान बनाऊँ, सुरस देखि दृग मन ललचाय
सौ लै छुधारोग, धरौं चरण ढिग मन हरषाय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

रतन जडित अथवा घृतपूरित, वा कपूरमय जोति जगाय
दीप धरौं तुम चरनन आगे जाते केवलज्ञान लहाय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागरु चंदन, चूरि अगनि में देत जराय
अष्टकरम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम धूम यह तासु उड़ाय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल मातुलिंग वर दाङिम, आम निंबु फल प्रासुक लाय
मोक्ष महाफल चाखन कारन, पूजत हौं तुमरे जुग पाय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु दीप धूप फल सकल मिलाय
नाचि राचि शिरनाय समरचौं, जय जय जय 2 जिनराय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय

तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

पंचल्याणक अर्ध्यविली

संजयंत तजि गरभ पधारे, सावनसेत द्वृतिय सुखकारे
रहे अलिप्त मुकुर जिमि छाया, जजौं चरन जय जय जिनराया ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्ला द्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

चैत सुकल ग्यारस कहँ जानो, जनमे सुमति त्रयज्ञानों
मानों धर्यो धरम अवतारा, जजौं चरनजुग अष्ट प्रकासा ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

बैशाख सुकल नौमि भाखा, ता दिन तप धरि निज रस चाखा
पारन पद्म सद्म पय कीनों, जजत चरन हम समता भीनों ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ला नवम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

सुकल चैत एकादश हाने, धाति सकल जे जुगपति जाने
समवसरनमँह कहि वृष सारं, जजहुं अनंत चतुष्यधारं ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां ज्ञान कल्याणकप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

चैत सुकल ग्यारस निरवानं, गिरि समेद तें त्रिभुवन मानं
गुन अनन्त निज निरमल धारी, जजौं देव सुधि लेहु हमारी ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

सुमति तीन सौ छत्तीसौं, सुमति भेद दरसाय
सुमति देहु विनती करौं, सु मति विलम्ब कराय
दयाबेलि तहँ सुगुननिधि, भविक मोद-गण-चन्द
सुमतिसतीपति सुमति कों, ध्यावौं धरि आनन्द
पंच परावरतन हरन, पंच सुमति सिर देन
पंच लब्धि दातार के, गुन गाऊँ दिन रैन

पिता मेघराजा सबै सिद्ध काजा, जपें नाम ता को सबै दुःखभाजा
महासुर इक्ष्वाकुवंशी विराजे, गुणग्राम जाकौ सबै ठौर छाजै ॥

तिन्हों के महापुण्य सों आप जाये, तिहुँलोक में जीव आनन्द पाये
सुनासीर ताही धरी मेरु धायो, क्रिया जन्म की सर्व कीनी यथा यों ॥

बहुरि तातकों सौंपि संगीत कीनों, नमें हाथ जोरी भलीभक्ति भीनों
बिताई दशै लाख ही पूर्व बालै, प्रजा उन्तीस ही पूर्व पालै ॥
कछु हेतु तें भावना बारा भाये, तहाँ ब्रह्मलोकान्त देव आये
गये बोधि ताही समै इन्द्र आयो, धरे पालकी में सु उद्यान ल्यायो ॥

नमः सिद्ध कहि केशलोंचे सबै ही, धर्यो ध्यान शुद्धं जु घाती हने ही
लह्यो केवलं औ समोसर्न साजं, गणाधीश जु एक सौ सोल राजं ॥
खिरै शब्द ता में छहाँ द्रव्य धारे, गुनौपर्ज उत्पाद व्यय धौव्य सारे
तथा कर्म आठों तनी थिति गाजं, मिले जासु के नाश तें मोच्छराजं ॥

धरें मोहिनी सत्तरं कोड़कोड़ी, सरित्पत्रमाणं थिति दीर्घ जोड़ी
अवर्जनि दग्वेदिनी अन्तरायं, धरें तीस कोड़ाकुड़ि सिन्धुकायं ॥
तथा नाम गोतं कुड़ाकोड़ि बीसं, समुद्र प्रमाणं धरें सत्तईसं
सु तैतीस अब्धि धरें आयु अब्धिं, कहें सर्व कर्मों तनी वृद्धलब्धिं ॥

जघन्यं प्रकारे धरे भेद ये ही, मुहूर्तं वसू नामं-गोतं गने ही
तथा ज्ञान दग्मोह प्रत्यूह आयं, सुअन्तर्मुहूर्तं धरें थिति गायं ॥
तथा वेदनी बारहें ही मुहूर्तं, धरें थिति ऐसे भन्यो न्यायजुत्तं
इन्हें आदि तत्वार्थ भाख्यो अशोसा, लह्यो फेरि निर्वाण मांहीं प्रवेसा ॥

अनन्तं महन्तं सुरंतं सुतंतं, अमन्दं अफन्दं अनन्तं अभन्तं
अलक्षं विलक्षं सुलक्षं सुदक्षं, अनक्षं अवक्षं अभक्षं अतक्षं ॥
अवर्णं सुवर्णं अमर्णं अकर्णं, अभर्णं अतर्णं अशर्णं सुशर्णं
अनेकं सदेकं चिदेकं विवेकं, अखण्डं सुमण्डं प्रचण्डं सदेकं ॥

सुपर्मं सुधर्मं सुशर्मं अकर्मं, अनन्तं गुनाराम जयवन्त धर्मं
नमें दास वृन्दावनं शर्न आई, सबै दुःख तें मोहि लीजे छुड़ाई ॥

तुम सुगुन अनन्ता ध्यावत सन्ता, भ्रमतम भंजन मार्ट्टडा
सतमत करचंडा भवि कज मंडा, कुमति-कुबल-भन गन हंडा ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

सुमति चरन जो जजै भविक जन मनवचकाई
तासु सकल दुख दंद फंद ततछिन छय जाई ॥
पुत्र मित्र धन धान्य शर्म अनुपम सो पावै
'वृन्दावन' निर्वाण लहे निहचै जो ध्यावै ॥

इत्याशिवादः ॥ पुष्टाजलि क्षिपेत ॥



श्रीपद्मप्रभ-पूजन

जय जय पद्म जिनेश पद्मप्रभ पावन पद्माकर परमेश ।
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर पद्मनाथ प्रभु पूज्य महेश ॥
भवदुख हर्ता मंगलकर्ता षष्ठम तीर्थकर पद्मेश ।
हरो अमंगल प्रभु अनादि का पूजन का है यह उद्देश्य ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्रावतर अवतर संवौषट् आह्नानं

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

शुद्ध भाव का धवल नीर लेकर जिन चरणों में आऊँ ।
जन्म मरण की व्याधि मिटाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृतुविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव का शीतल चंदन ले प्रभु चरणों में आऊँ ।
भव आताप व्याधि को नाशूँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।



परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव के उज्ज्वल अक्षत ले, जिन चरणों में आऊँ ।
अक्षय पद अखंड मैं पाऊँ, नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव के पुष्प सुरभिमय ले, प्रभु चरणों में आऊँ ।
कामबाण की व्याधि नशाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव के पावन चरु लेकर, प्रभु चरणों में आऊँ ।
क्षुधा व्याधि का बीज मिटाऊँ, नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव की ज्ञान ज्योति लेकर प्रभु चरणों में आऊँ ।
मोहनीय भ्रम तिमिर नशाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव की धूप सुगन्धित, ले प्रभु चरणों में आऊँ ।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ मैं, नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ।

परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ हीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव सम्यक्त्व सुफल पाने, प्रभु चरणों में आऊँ ।
शिवमय महामोक्ष फल पाऊँ, नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ हीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध भाव का अर्थ अष्टविध, ले प्रभु चरणों में आऊँ ।
शाश्वत निज अनर्घपद पाऊँ, नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक संताप क्लेश हर मंगलमय शिव पद पाऊँ ॥

ॐ हीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंच कत्याणक

शुभदिन माघ कृष्ण षष्ठी को मात सुसीमा हर्षाएं ।
उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रीतिंकर तज उर में आए ॥
नव बारह योजन नगरी रच रत्न इन्द्र ने बरसाये ।
जय श्री पद्मनाथ तीर्थकर जगती ने मंगल गाए ॥

ॐ हीं माघकृष्ण षष्ठीदिने गर्भ मंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को कोशाम्बी में जन्म लिया ।
गिरि सुमेरु पर इन्द्रादिक ने क्षीरोदधि से नहन किया ॥
राजा धरणराज आंगन में सुर सुरपति से नृत्य किया ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर जग ने जय जय नाद किया ॥

ॐ हीं कार्तिककृष्णा त्रयोदशीं जन्ममंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को तुमको जाति स्मरण हुआ ।

जागा उर वैराग्य तभी लौकान्तिक सुर आगमन हुआ ॥
तरु प्रियंगु मन हर वन में दीक्षा धारी तप ग्रहण हुआ ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर अनुपम तप कल्याण हुआ ॥

ॐ हौं कार्तिककृष्णा त्रयोदश्यां तपो मंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मनोहर कर्म धाति अवसान किया ।
कौशाम्बी वन शुक्ल ध्यान धर निर्मल केवलज्ञान लिया ॥
समवसरण में द्वादश सभा जुड़ी अनुपम उपदेश दिया ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर जग को शिव संदेश दिया ॥

ॐ हौं चैत्रशुक्ला पूर्णिमायां केवलज्ञान प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोहन कूट शिखर सम्मेदाचल से योग विनाश किया ।
फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को प्रभु भव-बंधन का नाश किया ॥
अष्टकर्म हर ऊर्ध्व गमन कर सिद्ध-लोक आवास लिया ।
जयति पद्मप्रभु जिनतीर्थकर शाश्वत आत्मविकास किया ॥

ॐ हौं फाल्गुनकृष्णा चतुर्थीदिने मोक्षमंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाता

परम श्रेष्ठ पावन परमेष्ठी पुरुषोत्तम प्रभु परमानन्द
परमध्यानरत परमब्रह्ममय प्रशान्तात्मा पद्मानन्द ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर जय जय जय कल्याणमयी ।
नित्य निरंजन जनमन रंजन प्रभु अनंत गुण ज्ञानमयी ॥

राजपाट अतुलित वैभव को तुमने क्षण में ठुकराया ।
निज स्वभाव का अवलम्बन ले परम शुद्ध-पद को पाया ॥
भव्य जनों को समवसरण में वस्तु-तत्त्व विज्ञान दिया ।
चिदानन्द चैतन्य आत्मा परमात्मा का ज्ञान दिया ॥

गणधर एक शतक ग्यारह थे मुख्य वज्रचामर ऋषिवर ।

प्रमुख रात्रिषेण सुआर्या श्रोता पशु नर सुर मुनिवर ॥
सात तत्व छह द्रव्य बताए मोक्ष मार्ग सन्देश दिया ।
तीन लोक के भूले भटके जीवों को उपदेश दिया ॥

निःशंकादिक अष्ट अंग सम्यक्दर्शन के बतलाये ।
अष्ट प्रकार ज्ञान सम्यक् बिन मोक्ष मार्ग ना मिल पाये ॥
तेरह विधि सम्यक् चारित का सत्स्वरूप है दिखलाया ।
रत्नत्रय ही पावन शिवपथ सिद्ध स्वपद को दर्शया ॥

हे प्रभु यह उपदेश ग्रहण कर मैं निज का कल्याण करूँ ।
निजस्वरूप की सहज प्राप्ति कर पद निर्ग्रन्थ महान वरूँ ॥
इष्ट अनिष्ट संयोगों में भी कभी न हर्ष विषाद करूँ ।
साम्यभाव धर उर अन्तर में भव का वाद विवाद हरू ॥

तीन लोक में सार स्वयं के आत्म द्रव्य का भान करूँ ।
पर पदार्थ की महिमा त्यागूँ सुखमय भेद विज्ञान करूँ ॥
द्रव्य भाव पूजन करके मैं आत्म चिंतवन मनन करूँ ।
नित्य भावना द्वादश भाऊँ राग द्वेष का हनन करूँ ॥

तुम पूजन से पुण्यसातिशय हो भव-भव तुमको पाऊँ ।
जब तक मुक्ति स्वपद ना पाऊँ तब तक चरणों में आऊँ ॥
संवर और निर्जरा द्वारा पाप पुण्य सब नाश करूँ ।
प्रभु नव केवल लब्धि रमा पा आठों कर्म विनाश करूँ ॥

तुम प्रसाद से मोक्ष लक्ष्मी पाऊँ निज कल्याण करूँ ।
सादि अनन्त सिद्ध-पद पाऊँ परम-शुद्ध निर्वाण वरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपदप्रभजेन्द्राय गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष पञ्चकल्याण प्राप्ताय महार्थं निर्वपामीति स्वाहा।

कमल चिन्ह शोभित चरण, पद्मनाथ उर धार ।

मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशिर्वदः ॥ पुष्ट्यांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीपद्मप्रभ-पूजन

पदम-राग-मनि-वरन-धरन, तनतुंग अढाई
शतक दंड अघखंड, सकल सुर सेवत आई ॥
धरनि तात विख्यात सु सीमाजू के नंदन
पदम चरन धरि राग सुथापूँ इत करि वंदन ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्रावतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद सार, पूजूँ भाव सों
गंगाजल अतिप्रासुक लीनो, सौरभ सकल मिलाय
मन-वच-तन त्रयधार देत ही, जनम-जरा-मृतु जाय
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिर कपूर चंदन घसि, केशर रंग मिलाय
भव-तप-हरन चरन पर वारूं, मिथ्याताप मिटाय ॥
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल उज्ज्वल गंध अनी जुत, कनक-थार भर लाय
पुंज धरूं तुव चरनन आगे, मोहि अखयपद दाय ॥
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मंदार कलपतरु, जनित सुमन शुचि लाय
समरशूल निरमूल-करन को, तुम पद-पद्म चढ़ाय ॥
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

घेर बावर आदि मनोहर, सद्य सजे शुचि लाय
क्षुधारोग निर्वारन कारन, जज्जूँ हरष उर लाय ॥
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक ज्योति जगाय ललित वर, धूम रहित अभिराम
तिमिर मोह नाशन के कारन, जज्जूँ चरन गुनधाम ॥
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागर मलयागिर चंदन, चूर सुगंध बनाय
अगनि मांहि जारौं तुम आगे, अष्टकर्म जरि जाय ॥
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस-वरन रसना मनभावन, पावन फल अधिकार
ता सों पूजौं जुगम-चरन यह, विघ्न करम निरवार ॥
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि मिलाय गाय गुन, भगति भाव उमगाय
जजौं तुमहिं शिवतिय वर जिनवर, आवागमन मिटाय ॥
पूजूँ भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजूँ भाव सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

छंद द्रुतविलंबिता तथा सुन्दरी -- मात्रा 16

असित माघ सु छटृ बखानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये
ऊरध ग्रीवक सों चये राज जी, जजत इन्द्र जजै हम आज भी ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णा षष्ठीदिने गर्भ मंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

आसित कार्तिक तेरस को जये, त्रिजग जीव सुआनंद को लये
नगर स्वर्ग समान कुसंबिका, जजतु हैं हरिसंजुत अंबिका ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णा त्रयोदश्यां जन्ममंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

असित तेरस कार्तिक भावनी, तप धर्यो वन षष्ठम पावनी
करत आत्मध्यान धुरंधरो, जजत हैं हम पाप सबै हरो ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णा त्रयोदश्यां तपो मंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

शुकल-पूनम चैत सुहावनी, परम केवल सो दिन पावनी
सुर-सुरेश नरेश जजें तहां, हम जजें पद पंकज को इहां ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ला पूर्णिमायां केवलज्ञान प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

असित फागुन चौथ सुजानियो, सकलकर्म महारिपु हानियो
गिरसमेद थकी शिव को गये, हम जजें पद ध्यानविषे लये ॥

ॐ ह्रीं फालुनकृष्णा चतुर्थीदिने मोक्षमंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

धर्ता

जय पद्मजिनेशा शिवसद्मेशा, पाद पद्म जजि पद्मेशा
जय भव तम भंजन, मुनिमन कंजन, रंजन को दिव साधेसा

जय-जय जिन भविजन हितकारी, जय जय जिन भव सागर तारी
जय जय समवसरन धन धारी, जय जय वीतराग हितकारी

जय तुम सात तत्त्व विधि भाख्यौ, जय जय नवपदार्थ लखिआख्यो
जय षट्द्रव्यं पंचजुतकाय, जय सब भेद सहित दरशाया

जय गुनथान जीव परमानो, पहिले महिं अनंत-जिव जानो
जय दूजे सासादन माहीं, तेरह कोड़ि जीव थित आहीं
जय तीजे मिश्रित गुणथाने, जीव सु बावन कोड़ि प्रमाने
जय चौथे अविरतिगुन जीवा, चार अधिक शत कोड़ि सदीवा

जय जिय देशावरत में शेषा, कोड़ि सात सा है थित वेशा
जय प्रमत्त षट्शून्य दोय वसु, नव तीन नव पांच जीवलसु
जय जय अपरमत्त दुइ कोरं, लक्ष छानवै सहस बहोरं
निन्यानवे एकशत तीना, ऐते मुनि तित रहहिं प्रवीना

जय जय अष्टम में दुइ धारा, आठ शतक सत्तानों सारा
उपशम में दुइ सौ निन्यानों, छपक माहिं तसु दूने जानों
जय इतने इतने हितकारी, नवें दशें जुगश्रेणी धारी
जय ग्यारें उपशम मगगामी, दुइ सौ निन्यानौं अधगामी

जयजय छीनमोह गुनथानो, मुनि शत पांच अधिक अद्वानों
जय जय तेरह में अरिहंता, जुग नभपन वसु नव वसु तंता
ऐते राजतु हैं चतुरानन, हम वंदें पद थुतिकरि आनन
हैं अजोग गुन में जे देवा, मन सों ठानों करों सुसेवा

तित तिथि अ इ उ ऋ लृ भाषत, करिथित फिर शिव आनंद चाखत
ऐ उतकृष्ट सकल गुनथानी, तथा जघन मध्यम जे प्रानी
तीनों लोक सदन के वासी, निजगुन परज भेदमय राशी
तथा और द्रव्यन के जेते, गुन परजाय भेद हैं तेते

तीनों कालतने जु अनंता, सो तुम जानत जुगपत संता
सोई दिव्य वचन के द्वारे, दे उपदेश भविक उद्धारे
फेरी अचल थल बासा कीनो, गुन अनंत निजआनंद भीनो

चरम देह तें किंचित ऊनो, नर आकृति तित है नित गूनो

जय जय सिद्धदेव हितकारी, बार बार यह अरज हमारी
मोकों दुखसागर तें काढ़ो, 'वृन्दावन' जांचतु है ठाड़ो

धत्ता

जय जय जिनचंदा पद्मानंदा, परम सुमति पद्माधारी
जय जनहितकारी दयाविचारी, जय जय जिनवर अविकारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय महार्थं निर्वपामीति स्वाहा

जजत पद्म पद पद्म सद्म ताके सुपद्म अत
होत वृद्धि सुत मित्र सकल आनंदकंद शत ॥
लहत स्वर्गपदराज, तहाँ तें चय इत आई
चक्री को सुख भोगि, अंत शिवराज कराई ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥



श्रीसुपार्श्वनाथ-पूजन

जय जय जिनिंद गनिंद इन्द, नरिंद गुन चिंतन करें
तन हरीहर मनसम हरत मन, लखत उर आनन्द भरें ॥
नृप सुपरतिष्ठ वरिष्ठ इष्ट, महिष्ठ शिष्ट पृथी प्रिया
तिन नन्दके पद वन्द वृन्द, अमंद थापत जुतक्रिया ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल जल शुचि गंध मिलाय, कंचनझारी भरकर लाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौ मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥



ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिर चंदन घसि सार, लीनो भवतप भंजनहार
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौ मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास अखंड, उज्ज्वल जलछालित सित मंड^३
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौ मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

प्रासुक सुमन सुगंधित सार, गुंजत अलि मकरध्वजहार
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौ मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

छुधाहरण नेवज वर लाय, हरौं वेदनी तुम्हें चढ़ाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौ मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्वलित दीप भरकरि नवनीत, तुम ढिग धारतु हौं जगमीत
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौ मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ हीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहाम्बकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविधि गन्ध हुताशन माहिं, खेवत कूर करम जरि जाहिं
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौं मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ हीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल केला आदि अनूप, ले तुम अग्र धरौं शिवभूप
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौं मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ हीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब साजि गुनगाय, नाचत राचत भगति बढ़ाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौं मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥

ॐ हीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्थात्

सुकल भादव छटु सु जानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये
करत सेव शाची रचि मात की, अरघ लेय जजौं वसु भांत की ॥

ॐ हीं भाद्रपदशुक्लाष्टीदिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

सुकल जेठ दुवादशि जन्मये, सकल जीव सु आनन्द तन्मये
त्रिदशराज जजें गिरिराजजी, हम जजें पद मंगल साजजी ॥

ॐ हीं ज्येष्ठशुक्लाद्वादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जनम के तिथि पे श्रीधर ने धरी, तप समस्त प्रमादन को हरी
नृप महेन्द्र दियो पय भाव सौं, हम जजें इत श्रीपद चाव सों ॥

ॐ हीं ज्येष्ठशुक्लाद्वादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

भ्रमर फागुन छटु सुहावनो, परम केवलज्ञान लहावनो
समवसर्न विषैं वृष भाखियो, हम जजे पद आनन्द चाखनो ॥

ॐ ह्रीं फाल्युनकृष्णा षष्ठीदिने केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

असित फागुन सातय पावनो, सकल कर्म कियो छय भावनो
गिरि समेदथकी शिव जातु हैं, जजत ही सब विम्ब विलातु हैं ॥

ॐ ह्रीं फाल्युनकृष्णा सप्तमीदिने मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तुंग अंग धनु दोय सौ, शोभा सागरचन्द
मिथ्यातपहर सुगुनकर, जय सुपास सुखकंद

जयति जिनराज शिवराज हितहेत हो,
परम वैराग आनन्द भरि देत हो ॥
गर्भ के पूर्व षट्मास धनदेव ने,
नगर निरमापि वाराणसी सेव में ॥

गगन सों रतन की धार बहु वरषहीं,
कोड़ि त्रैअर्द्ध त्रैवार सब हरषहीं ॥
तात के सदन गुनवदन रचना रची,
मातु की सर्वविधि करत सेवा शची ॥

भयो जब जनम तब इन्द्र-आसन चल्यो,
होय चकित तब तुरित अवधितैं लखि भल्यो ॥
सप्त पग जाय शिर नाय वन्दन करी,
चलन उमग्यो तबै मानि धनि धनि घरी ॥

सात विधि सैन गज वृषभ रथ बाज ले,
गन्धरव नृत्यकारी सबै साज ले ॥
गलित मद गण्ड ऐरावती साजियो,
लच्छ जोजन सुतन वदन सत राजियो ॥

वदन वसुदन्त प्रतिदन्त सरवर भरे,
ता सु मधि शतक पनबीस कमलिनि खरे ॥
कमलिनी मध्य पनवीस फूले कमल,
कमल-प्रति-कमल मँह एक सौ आठ दल ॥

सर्वदल कोड़ शतबीस परमान जू,
ता सु पर अपछरा नचहिं जुतमान जू ॥
तततता तततता विततता ताथई,
धृगतता धृगतता धृगतता में लई ॥

धरत पग सनन नन सनन नन गगन में,
नूपुरे झनन नन झनन नन पगन में ॥
नचत इत्यादि कई भाँति सों मगन में,
कई तित बजत बाजे मधुर पगन में ॥

कई दम दम दुदम दम मृदंगनि धुनै,
कई झल्लरि झनन झंझनन झंझनै ॥
कई संसाग्रते सारंगि संसाग्र सुर,
कई बीना पटह बंसि बाजें मधुर ॥

कई तनतन तनन तनन ताने पुरैं,
शुद्ध उच्चारि सुर कई पाठैं फुरैं ॥
केइ झुकि झुकि फिरे चक्र सी भामिनी,
धृगगतां धृगगतां पर्म शोभा बनी ॥

कई छिन निकट छिन दूर छिन थूल-लघु,
धरत वैक्रियक परभाव सों तन सुभगु ॥
कई करताल-करताल तल में धुनैं,
तत वितत घन सुषिरि जात बाजें मुनै ॥

इन्द्र आदिक सकल साज संग धारिके,
आय पुर तीन फेरी करी प्यार तें ॥
सचिय तब जाय परसूतथल मोद में,
मातु करि नींद लीनों तुम्हें गोद में ॥

आन-गिरवान नाथहिं दियो हाथ में,
छत्र अर चमर वर हरि करत माथ में ॥
चढ़े गजराज जिनराज गुन जापियो,
जाय गिरिराज पांडुक शिला थापियो ॥

लेय पंचम उदधि-उदक कर कर सुरनि,
सुरन कलशनि भरे सहित चर्चित पुरनि ॥
सहस अरु आठ शिर कलश ढारें जबै,
अघघ घघ घघघ घघ भभभ भभ भौ तबै ॥

धधध धध धधध धध धुनि मधुर होत है,
भव्य जन हंस के हरस उद्योत है ॥
भयो इमि न्हौन तब सकल गुन रंग में,
पोछि श्रृंगार कीनों शची अंग में ॥

आनि पितुसदन शिशु सौंपि हरि थल गयो,
बाल वय तरुन लहि राज सुख भोगियो ॥
भोग तज जोग गहि, चार अरि कों हने,
धारि केवल परम धरम दुइ विध भने ॥

नाशि अरि शेष शिवथान वासी भये,
ज्ञानदृग अरि शेष शिवथान वासी भये
दीन जन की करुण वानि सुन लीजिये,
धरम के नन्द को पार अब कीजिये ॥

जय करुनाधारी, शिवहितकारी, तारन तरन जिहाजा हो सेवत नित वन्दे, मनआंनदे, भवभय मेटनकाजा हो

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री सुपार्श्व पदजुगल जो जजें पढ़े यह पाठ
अनुमोदें सो चतुर नर पावें आनन्द ठाठ ॥

इत्याशिर्दिः ॥ पृष्ठांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीचन्द्रप्रभनाथ-पूजन

छप्य

चारुचरन आचरन, चरन चितहरन चिह्नचर
चंद-चंद-तनचरित, चंदथल चहत चतुर नर ॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिद्चक्र गुनाकर
चंचल चलित सुरेश, चूलनुत चक्र-धनुरधर ॥

अन्वयार्थ : [चारु] सुन्दर चरणों और आचरण वाले, चित्त को हरने वाले चंद्रमा के चिह्न से सुशोभित चरण, परम पवित्र चंद्रमा के सामान स्वच्छ [तनचरित] शरीर और चारित्र के धारक चन्द्रप्रभ भगवान, उन [चंदथल] चन्द्रप्रभ की शरण भक्त / धर्मात्मा चाहते हैं, जिन्होने चार [चंड] निर्दयी (घातिया कर्म) कर्म को नष्ट कर दिया है, [चिद्चक्र] चैतन्य समूह के चार गुणों (अनंत चतुष्टय) के भंडार / धारक हैं, जिन्हे निरंतर इंद्र, चक्रवर्ती, धनुषधारी [चूलनता] सभी नमस्कार करते हैं, ऐसे भगवान आप हैं।

चर अचर हितू तारन तरन, सुनत चहकि चिर नंद शुचि
जिनचंद चरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रच्चि रुचि ॥

अन्वयार्थ : आप [चरा] त्रस व [अचरा] स्थावर जीवों के [हितू] हितकारी हैं (क्योंकि उनकी अहिंसा का निरंतर आप उपदेश देते हैं) आप संसार को [तारन] स्वयं पार करने तथा [तरन] अन्यों को पार कराने वाले हैं। आपके [शुचि] पवित्र [चिरनंद] अनंतसुख की चर्चा सुनकर भव्य जीव प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान् के चरणों की [चरच्यो] पूजा करने को [चहत] इच्छा रखता हुआ मेरा चित रूपी चकोर नाच / (प्रसन्न हो) रहा है। अर्थात ऐसे चन्द्र प्रभु भगवान् की मैं हृदय से पूजा कर रहा हूँ।

धनुष डेढ़ सौ तुङ्गं तनु, महासेन नृपनंद ।
मातु लछमना उर जये, थापौ चंद जिनंद ॥

अन्वयार्थ : शरीर डेढ़सौ धनुष [तुङ्ग] ऊंचा, महासेन [नृप] राजा के [नंद] पुत्र, माता लछमना के उर से उत्पन्न चन्द्रप्रभ भगवान् की मैं यहाँ स्थापना करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाहृद निरमल नीर, हाटक भृंग भरा
तुम चरन जजौं वरवीर, मेटो जनम जरा ॥
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : हे [वर] श्रेष्ठ वीर ! [गंगाहृदा] गंगा नदी का स्वच्छ [नीर] जल, [हाटक] स्वर्ण के [भृंग] घड़े में भरकर, मैं आपके चरणों की [जजौं] पूजा करता हूँ । आप मेरे जन्म और बुढ़ापे को नष्ट कर दीजिये । श्री चन्द्रप्रभ भगवान की [दुति] कांति [चंद] चंद्रमा समान है, उनके चरणों में [चंद] चंद्रमा का चिन्ह है, मैं मनवचनकाय और [अमंद] अच्छे/शुद्ध भावों से अपनी आत्मा का प्रकाश जागृत करने के लिये / आत्मा के भान के लिए उनकी [जजत] पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीखण्ड कपूर सुचंग, केशर रंग भरी
घसि प्रासुक जल के संग, भवाताप हरी
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : मैं [श्रीखण्ड] चंदन और [सुचंग] श्रेष्ठ कपूर लेकर केशर के रंग से परिपूर्ण, प्रासुक जल में धिस कर आपको, अपने संसार के दुखों के निवारण हेतु, अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल सित सोम समान, सम लय अनियारे
दिये पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : [सोमा] चंद्रमा के समान [सित] सफेद शालीवन के [अनियारे] साबुत [तंदुल] चावलों के मनोहर पुंज लेकर आपके [पदतर] पूजनीय चरणों में अक्षय पद की प्राप्ति के लिए रख रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुर द्रुम के सुमन सुरंग, गंधित अलि आवे
ता सों पद पूजत चंग, कामविधा जावे
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : मैं [सुरा] देवताओं के [द्रुमा] वृक्षों अर्थात् कल्पवृक्ष से [सुरंग] अच्छे रंगों के सुगच्छित, [अलि] भंवरों से मंडराते [सुमन] फूलों को [तासों] आपके चरणों में [चंग] उत्साहपूर्वक [काम विधा] कामवासना को नष्ट करने के लिए रखता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज नाना परकार, इंद्रिय बलकारी
सो ले पद पूजौं सार, आकुलता-हारी
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : विभिन्न प्रकार के इंद्रियों को |बलकारी| शक्ति प्रदान करने वाले नेवज से अपनी |आकुलता हारी| क्षुधा की वेदना को नष्ट करने के लिए आपके |सार| श्रेष्ठ चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम भंजन दीप संवार, तुम ढिग धारतु हौं
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुण याचतु हौं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : मोह रूपी |तम| अन्धकार को |भंजन| नष्ट करने के लिए, |दीप संवार| दीप को प्रज्वलित करके, आपके |ढिग| समक्ष, रखता हूँ क्योंकि आपमें यह गुण है इसलिए मेरा |तिमिरमोह| मोह-अन्धकार दूर कर दीजिये ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दसगंध हुतासन माहिं, हे प्रभु खेवतु हौं
मम करम दुष्ट जरि जाहिं, या तें सेवतु हौं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : मैं |दशगंध| दस प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से धूप बना कर, दुष्ट कर्म को |जरि| जलाने के लिए, |हुताशन| अग्नि में |खेवतु| खेकर आप की प्रभु सेवा/पूजा कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अति उत्तम फल सु मंगाय, तुम गुण गावतु हौं
पूजौं तनमन हरषाय, विघ्न नशावतु हौं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : मैं सर्वोत्तम फलों को मंगाकर आपके गुणों को गाता हूँ, तन मन से हर्षित होकर आपकी मैं पूजा करता हूँ क्योंकि आप विश्वों को नष्ट करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमौं
पूजौं अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमौं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : आठों [पुनीत] पवित्र द्रव्यों को [सजि] सजाकर, [आठों अंग नमौं] आठों अंगों को झुक कर नमस्कार करता हुआ । आठवें हितकारी जिनेन्द्र भगवान चन्द्रप्रभू की बारम्बार, [अष्टम अवनी] आठवीं पृथ्वी - सिद्धशिला, पर [गमौं] जाने के लिए पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्पाणक अर्द्धावली

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भली
हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्मसिता ॥

अन्वयार्थ : चैत्र की [कलि] वदी पंचमी [अली] बहुत [सुहात] अच्छी लगती है क्योंकि इस दिन आप [गरभागम] गर्भ में पधारे थे और आपने जीवों को मंगल एवं [मोद भरी] प्रसन्नता प्रदान करी थी [हरि] इंद्र ने हर्षित होकर माता पिता की पूजा करी थी । हम आपका ध्यान करके [शर्मसिता] पवित्र सुख को प्राप्त करते हैं ।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णा पंचम्यांगर्भमंगलंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

कलि पौष एकादशि जन्म लयो, तब लोकविषै सुख थोक भयो
सुरईशा जजैं गिरिशीश तबै, हम पूजत हैं नुत शीश अबै ॥

अन्वयार्थ : भगवान् आपने पौष [कलि] वदी एकादशी को जन्म लिया था उस समय समस्त लोक [सुखथोक] पूर्णतया सुखी हो गया था । [सुरईशा] तब इंद्र ने आपकी [गिरिशीश] समेरू पर्वत पर ले जाकर [जजैं] पूजा करी थी । हम यहाँ [अबै] अब आपकी मस्तक झुका कर नित्य पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि पौष इग्यारसि पर्व वरा
निज ध्यान विषै लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विष्म गये ॥

अन्वयार्थ : आपने पौष [कलि] कृष्ण एकादशी [पर्व वरा] श्रेष्ठ पर्व के दिन अल्यंत [दुद्धर] दुर्लभ और महान तप को धारण किया (आपका तप कल्पाणक हुआ), आप अपनी आत्मा के ध्यान में लवलीन हो गए जो धन्य जीव इस दिन कि पूजा करते हैं उनके विष्म नष्ट हो जाते हैं ।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगल मंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

वर केवल भानु उद्योत कियो, तिहुंलोकतणों भ्रम मेट दियो
कलि फाल्गुन सप्तमि इंद्र जजैं, हम पूजहिं सर्व कलंक भजें ॥

अन्वयार्थ : हे [वर] भगवन् [तणों] आपने केवलज्ञान रूपी [भानु] सूर्य को [उद्योत] प्रकट किया था । [तिहुं] तीनों लोक के जीवों का [भ्रम] मिथ्यात्व मेट दिया था फाल्गुन [कलि] कृष्ण सप्तमि के दिन इंद्र ने आपकी पूजा करी थी । हम भी आपकी पूजा करते हैं जिससे सभी कर्म कलंक नष्ट हो जाए ।

**सित फाल्वुन सप्तमि मुक्ति गये, गुणवंत् अनंतं अबाधं भये
हरि आय जजे तित मोदं धरे, हम पूजत ही सब पाप हरे ॥**

अन्वयार्थ : भगवन् आप फाल्वुन [सित] शुक्ल सप्तमि को मोक्ष पधारे, आप [गुणवंत् अनंत] अनंतगुणों सहित, [अबाध] बाधा रहित हो गए। [हरि] इंद्र ने आकर अत्यंत [मोद] प्रसन्नता पूर्वक [तित] आपकी [जजे] पूजा करी थी। हम भी समस्त पापों को [हरे] हरने हेतु आपकी पूजा करते हैं।

ॐ हीं फाल्वुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहा

**हे मृगांकं अंकितं चरणं, तुम् गुणं अगमं अपारं ।
गणधरं से नहिं पारं लहिं, तौं को वरनंतं सारं ॥**

अन्वयार्थ : हे चन्द्रप्रभ भगवान्! आपके चरणों में [मृगांक] चंद्रमा का चिन्ह अंकित है आपके अनन्तगुण [अगम] अवर्णीय [अपार] अथाह है, गणधर देव भी उनकी [पार] थाह नहीं प्राप्त कर सकते [तौं] तो [को] कौन उनकी [सार] श्रेष्ठता का [वरनंत] वर्णन कर सकता है।

**पैं तुम् भगति मम हिये, प्रेरे अति उमगाय ।
तातैं गाऊं सुगुणं तुम्, तुम् ही होउ सहाय ॥**

अन्वयार्थ : [पै] फिर भी मेरे [हिये] हृदय में आपकी भक्ति मुझे [प्रेरे] प्रेरित करके अत्यंत [उमगाय] उत्साहित कर रही है इसलिए आपके गुणों का गान करता हूँ, इसमें आप ही मेरी सहायता कीजिये।

छंद पद्धरी

**जयं चंद्रं जिनेंद्रं दयानिधानं, भवकाननं हाननं दवं प्रमानं ।
जयं गरभं जनमं मंगलं दिनंदं, भवि-जीवं विकाशनं शर्मं कन्द ॥१॥**

अन्वयार्थ : हे चंद्रप्रभ भगवान् आपकी जय हो। आप दया के [निधान] भण्डार हैं, संसार रूपी [कानन] जंगल को नष्ट करने के लिए दावानल के समान हैं, आपका गर्भ और जन्म कल्याणक हुआ था, आपकी जय हो, [भवि] भव्यजीव रूपी कमलों के हृदय को [विकाशन] विकसित करने के लिए आप सूर्य के समान हैं और [शर्मकन्द] सुख को उत्पन्न करने वाले हो।

**दशलक्षं पूर्वं की आयुं पाय, मनवांछितं सुखं भोगे जिनाय ।
लखि कारणं हौं जगतैं उदास, चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुखं निवास ॥२॥**

अन्वयार्थ : भगवन् आपने दस लाख पूर्व की आयु प्राप्त करी जिस के गृहस्थ अवस्था में मन वांछित सुखों को भोगो था। कुछ कारणवश आप संसार से उदासीन होकर, सुख के स्थानों, बारह भावनाओं का चिंतवन करने लगे।

**तितं लोकान्तिकं बोध्यो नियोगं, हरि शिविका सजि धरियो अभोगं ।
तापैं तुम् चढिं जिनचंद्राय, ताछिनं कीं शोभा को कहाय ॥३॥**

अन्वयार्थ : लौकान्तिक देव अपने नियोगानुसार उनके [बोध्यो नियोग] वैराग्य की अनुमोदना के लिए [तित] वहां आये। इंद्र ने [शिविका] पालकी सजा कर रखी। चन्द्रप्रभ भगवान् [तापै] उस पर चढ़ कर आप, तप धारण करने के लिए जंगल की ओर बढ़े, [ताछिन] उस समय की शोभा का वर्णन करने में कौन समर्थ है।

**जिनं अंगं सेतं सितं चमरं ढार, सितं छत्रं शीसं गलं गुलकं हार ।
सितं रतनं जडितं भूषणं विचित्रं, सितं चन्द्रं चरणं चरचें पवित्रं ॥४॥**

अन्वयार्थ : जिनेन्द्र भगवान् का [अंग सेत] शरीर [सित] श्वेत चंद्रमा के समान था, उन के ऊपर सफेद चॅर ढोरे जा रहे थे, सिर के ऊपर भी सफेद छत्र थे, गले में [गुलक] सुंदर, श्वेत रत्नों से जड़ित हार था, भिन्न-भिन्न आभूषण भी पहने हुए थे ऐसे श्वेत पवित्र चरणों वाले चन्द्रप्रभ भगवान् की हम अर्चना / पूजा करते हैं।

**सित तनद्युति नाकाधीश आप, सित शिविका कांधे धरि सुचाप ।
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चित्त में चिंतत जात पर्व ॥५॥**

अन्वयार्थ : आपके शरीर की कांति सफेद है आप [नाकाधीश] देवताओं के स्वामी है, आपकी श्वेत [सुचाप] धनुषाकार [शिविका] पालकी को इंद्र और देव कंधे पर रख कर ले जाते हैं। उस जलूस में सभी सुरेश नरेश आपके यश (गुणों) का चिंतवन करते हुए जाते हैं।

**सित चंद्र नगर तें निकसि नाथ, सित वन में पहुचे सकल साथ ।
सित शिला शिरोमणि स्वच्छ छाँह, सित तप तित धार्यो तुम जिनाह ॥६॥**

अन्वयार्थ : भगवन आप चन्द्रनगर से निकलकर वन में [सकल] सब के साथ पहुंचे। वहाँ श्वेत, स्वच्छ और [शिरोमणि] श्रेष्ठ शिला पर आप ने तप धारण किया अर्थात् सारे वस्त्र, आभूषण त्याग कर आपने निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा धारण करी।

सित पय को पारण परम सार, सित चंद्रदत्त दीनों उदार ।

सित कर में सो पय धार देत, मानो बांधत भवसिंधु सेत ॥७॥

अन्वयार्थ : आपकी [सित पय] श्वेत दूध की श्रेष्ठम रसीली [पारण] पारणा उदार सेठ चन्द्रदत्त द्वारा हुई। आपके श्वेत हाथों में वे दूध की धार देते थे, ऐसा लग रहा था जैसे संसार सागर पर [सेत] पुल ही बांध रहे हो।

**मानो सुपुण्य धारा प्रतच्छ, तित अचरज पन सुर किय ततच्छ ।
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवल ज्योति जग्यो अनन्त ॥८॥**

अन्वयार्थ : आपके हाथ में दूध की धारा प्रत्यक्ष पुण्य की धारा बहती हुई लग रही थी। वहाँ पर देवताओं ने [ततच्छ] उसी क्षण [अचरज] पञ्चाशचर्य (रत्नवर्षा, पृष्ठवर्षा, मंदसुंध, ब्याय, भिन्न-भिन्न बाजे बजाना, अबोध आनंद का उच्चारण) किए। फिर आप गहन तप करने के लिए चले गए जिसके द्वारा आपने अनंत केवलज्ञान रूपी ज्योति को [जग्यो] प्राप्त किया।

**लहि समवसरन रचना महान, जा के दरसन सब पाप हान ।
जहाँ तरु अशोक शोभै उतंग, सब शोक तनो चूरै प्रसंग ॥९॥**

अन्वयार्थ : केवलज्ञान प्राप्त करते ही आपने समवशरण विभूति प्राप्त करी अर्थात् इंद्र ने कुबेर को भेजकर महान समवशरण की रचना करवाई। जिसको देखते ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ [उतंग] ऊँचा अशोक [तरु] वृक्ष शोभित हो रहा था जो कि समस्त शोक के प्रसंगों को [चूरै] नष्ट कर रहा था।

**सुर सुमन वृष्टि नभ तें सुहात, मनु मन्मथ तजि हथियार जात ।
बानी जिनमुख सों खिरत सार, मनु तत्त्व प्रकाशन मुकुर धार ॥१०॥**

अन्वयार्थ : वहाँ, देवता [नभ] आकाश से सुगम्भित सुहावने पुष्पों की [वर्षा] वृष्टि करते हैं, ऐसा लगता है मानो [मन्मथ] कामदेव अपने हथियारों को छोड़ कर भाग रहा हो। भगवन के मुख से वहाँ श्रेष्ठ वाणी, दिव्यधनि, खिरती है जो कि मानो तत्वों के प्रकाशन के लिए साक्षत् [मुकुर धार] दर्पणमय है।

**जहाँ चौसठ चमर अमर दुरंत, मनु सुजस मेघ झारि लगिय तंत ।
सिंहासन है जहाँ कमल जुक्त, मनु शिव सरवर को कमल शुक्ल ॥११॥**

अन्वयार्थ : जहाँ चौसठ चॅर [अमर] देव निरंतर ढोरते हैं, ऐसा लगता है मानो आपके यश की [झारि] वर्षा मेघों द्वारा हो रही हो, गंध-कुटी के ऊपर सिंहासन है, जिस पर कमल है। यह कमल, मोक्षरूपी सरोवर का ही श्वेतकमल लग रहा है।

**दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करमजीत को है नगार ।
शिर छत्र फिरै त्रय श्वेत वर्ण, मनु रतन तीन त्रय ताप हर्ण ॥१२॥**

अन्वयार्थ : [जित] जहाँ मधुर सुरों में दुंदुभि बज रही है, ऐसा लगा मानो कर्मों पर विजय का नगाड़ा बज रहा हो। आपके सिर के ऊपर तीन छत्र, श्वेत वर्ण के फिर रहे हैं, मानो ये तीन रत्न (रत्नत्रय) के देने वाले और तीन प्रकार के ताप अर्थात् जन्म जरा मृत्यु को हरने वाले हैं।

तन प्रभा तनो मंडल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात ।
मनु दर्पण दयुति यह जगमगाय, भविजन भव मुख देखत सु आय ॥१३॥

अन्वयार्थ : आपके शरीर की प्रभा का जो सुहावना मंडल है उसमे भव्य जीव अपने-अपने सात-सात (तीन भूत, तीन भविष्य के और १ वर्तमान) भव देखते हैं । जैसे वे दर्पण में अपना मुख स्पष्ट देख कर आते हैं ।

इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान ।
ता को वरणत नहिं लहत पार, तो अंतरंग को कहै सार ॥१४॥

अन्वयार्थ : इन अनेक विभूतियों को देखकर आपकी बाह्य महिमा का वर्णन करना कठिन है फिर अंतरंग महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ।

अनअंत गुणनिजुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार ।
फिर जोग निरोध अघातिहान, सम्मेदथकी लिय मुक्तिथान ॥१५॥

अन्वयार्थ : भगवान् आपने अपने अनंतगुणों सहित विहार किया है और भव्य जीवों को संसार से पार लगने का उपदेश दिया । फिर योग-निरोध अर्थात् मन-वचन-काय तीनों योगों का निरोध करके, चार अघातिया कर्मों को नष्ट करके सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्ष प्राप्त कर लिया ।

'वृन्दावन' वंदत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय ।
ता तें का कहौं सु बार बार, मनवांछित कारज सार सार ॥१६॥

अन्वयार्थ : वृन्दावन कवि शीश नवकार बारम्बार प्रभु की वंदना करते हैं - प्रभु ! आप सब जानते हो कि मेरे हृदय में क्या है, उसे मैं बार बार क्या कहूँ, मेरे मन की इच्छा, [सार सार] श्रेष्ठ मोक्ष की प्राप्ति [कारज] करवा दीजिये ।

धत्ता

जय चंद जिनंदा, आनंदकंदा, भवभयभंजन राजैं हैं ।
रागादिक द्वंदा, हरि सब फंदा, मुकति मांहि थिति साजैं हैं ॥१७॥

अन्वयार्थ : अर्थ - जिनेद्र चन्द्र प्रभ आपकी जय हो । आप आनंद के समूह हैं, संसार के भय को नष्ट करने वाले हैं, रागादि द्वंदों के फंदों को हरने वाले हैं, आप मोक्ष में भली प्रकार विराजमान हैं ।

छन्द चौबोता

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजें ।
ता के भव-भव के अघ भाजें, मुक्तिसार सुख ताहि सजें ॥
जम के त्रास मिटें सब ताके, सकल अमंगल दूर भजें ।
'वृन्दावन' ऐसो लखि पूजत, जा तें शिवपुरि राज रजें ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - जो भव्य जीव आठों द्रव्यों को लेकर चन्द्र प्रभ भगवान् की पूजा करते हैं उनके भव-भव के [अघ] पाप नष्ट हो जाते हैं और मुक्ति-सुख की प्राप्ति होती है । जन्म के [त्रास] दुःख मिट जाते हैं, समस्त अमंगल दूर हो जाते हैं । वृन्दावन कवि ये देखकर, पूजा करते हैं जिस से मोक्ष सुख की प्राप्ति हो सके ।



श्रीपुष्पदन्त-पूजन



छन्द

पुष्पदन्त भगवन्त सन्त सु जपंत तंत गुन

महिमावन्त महन्त कन्त शिवतिय रमन्त मुन ॥
काकन्दीपुर जन्म पिता सुग्रीव रमा सुत
श्वेत वरन मनहरन तुम्हैं थापौं त्रिवार नुत ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

चाल- होरी, ताल- जन्त

हिमवन गिरिगत गंगाजल भर, कंचन भृंग भराय
करम कलंक निवारनकारन, जजौं, तुम्हारे पाय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावन चन्दन कदलीनंदन, कुंकुम संग घसाय
चरचौं चरन हरन मिथ्यातम, वीतराग गुण गाय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शालि अखंडित सौरभमंडित, शशिसम दयुति दमकाय
ता को पुञ्ज धरौं चरननंदिग, देहु अखय पद राय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुमन सुमनसम परिमलमंडित, गुंजत अलिगन आय
ब्रह्म-पुत्र मद भंजन कारन, जजौं तुम्हारे पाय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर फेनी गोंजा, मोदन मोदक लाय
छुधा वेदनि रोग हरन कों, भेट धरौं गुण गाय ॥

मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

वाति कपूर दीप कंचनमय, उज्ज्वल ज्योति जगाय
तिमिर मोह नाशक तुमको लखि, धरौं निकट उमगाय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशवर गंध धनंजय के संग, खेवत हौं गुन गाय
अष्टकर्म ये दुष्ट जरें सो, धूम सु धूम उड़ाय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल मातुलिंग शुचि चिरभट, दाढ़िम आम मंगाय
ता सों तुम पद पद्म जजत हौं, विघ्न सघन मिट जाय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल सकल मिलाय मनोहर, मनवचतन हुलसाय
तुम पद पूजौं प्रीति लाय के, जय जय त्रिभुवनराय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंचल्पाणक अर्धावली

नवमी तिथि कारी फागुन धारी, गरभ मांहिं थिति देवा जी
तजि आरण थानं कृपानिधानं, करत शची तित सेवा जी ॥
रतनन की धारा परम उदारा, परी व्योम तें सारा जी
मैं पूजौं ध्यावौं भगति बढ़ावौं, करो मोहि भव पारा जी ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णानवम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

मंगसिर सितपच्छं परिवा स्वच्छं, जनमे तीरथनाथा जी

तब ही चवभेवा निरजर येवा, आय नये निज माथा जी ॥
सुरगिर नहवाये, मंगल गाये, पूजे प्रीति लगाई जी
मैं पूजौं ध्यावौं भगत बढ़ावौं, निजनिधि हेतु सहाई जी ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपदायां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपुष्टदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित मंगसिर मासा तिथि सुखरासा, एकम के दिन धारा जी
तप आत्मज्ञानी आकुलहानी, मौन सहित अविकारा जी ॥
सुरमित्र सुदानी के घर आनी, गो-पय पारन कीना जी
तिन को मैं वन्दौं पाप निकंदौं, जो समता रस भीना जी ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपदायां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्टदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित कार्तिक गाये दोइज घाये, घातिकरम परचंडा जी
केवल परकाशे भ्रम तम नाशे, सकल सार सुख मंडा जी ॥
गनराज अठासी आनंदभासी, समवसरण वृषदाता जी
हरि पूजन आयो शीश नमायो, हम पूजें जगत्राता जी ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्ला द्वितीयायां ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्टदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भाद्रव सित सारा आठें धारा, गिरिसमेद निरवाना जी
गुन अष्ट प्रकारा अनुपम धारा, जय जय कृपा निधाना जी ॥
तित इन्द्र सु आयौ, पूज रचायौ, चिह्न तहां करि दीना जी
मैं पूजत हौं गुन ध्यान मणी सों, तुमरे रस में भीना जी ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपद शुक्लाऽष्टम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्टदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

लच्छन मगर सुश्वेत तन तुड्गं धनुष शत एक
सुरनर वंदित मुकतिपति, नमौं तुम्हें शिर टेक ॥
पुहुपदन्त गुनवदन है, सागर तोय समान
क्यों करि कर-अंजुलिनि कर, करिये तासु प्रमान ॥

छन्द तामरस, नमन मालिनी तथा चण्डी - 16 मात्रा

पुष्टदन्त जयवन्त नमस्ते, पुण्य तीर्थकर सन्त नमस्ते ।
ज्ञान ध्यान अमलान नमस्ते, चिद्विलास सुख ज्ञान नमस्ते ॥
भवभयभंजन देव नमस्ते, मुनिगणकृत पद-सेव नमस्ते ।
मिथ्या-निशि दिन-इन्द्र नमस्ते, ज्ञानपयोदधि चन्द्र नमस्ते ॥

भवदुःख तरु निःकन्द नमस्ते, राग दोष मद हनन नमस्ते ।
 विश्वेश्वर गुनभूर नमस्ते, धर्म सुधारस पूर नमस्ते ॥
 केवल ब्रह्म प्रकाश नमस्ते, सकल चराचरभास नमस्ते ।
 विघ्नमहीधर विज्जु नमस्ते, जय ऊरधगति रिज्जु नमस्ते ॥

जय मकराकृत पाद नमस्ते, मकरध्वज-मदवाद नमस्ते ।
 कर्मधर्म परिहार नमस्ते, जय जय अधम-उद्धार नमस्ते ॥
 दयाधुरंधर धीर नमस्ते, जय जय गुन गम्भीर नमस्ते ।
 मुक्ति रमनि पति वीर नमस्ते, हर्ता भवभय पीर नमस्ते ॥

व्यय उत्पति थितिधार नमस्ते, निजअधार अविकार नमस्ते ।
 भव्य भवोदधितार नमस्ते, 'वृन्दावन' निस्तार नमस्ते ॥

धर्म

जय जय जिनदेवं हरिकृतसेवं, परम धरमधन धारी जी ।
 मैं पूजौं ध्यावौं गुनगन गावौं, मेटो विथा हमारी जी ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

पुहुपदंत पद सन्त, जजे जो मनवचकाई
 नाचें गावें भगति करें, शुभ परनति लाई ॥
 सो पावें सुख सर्व, इन्द्र अहिमिंद तनों वर
 अनुक्रम तें निरवान, लहें निहचै प्रमोद धर ॥

इत्याशिवर्दः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥



श्रीशीतलनाथ-पूजन

शीतलनाथ नमौं धरि हाथ, सु माथ जिन्हों भव गाथ मिटाये
 अच्युत तें च्युत मात सुनन्द के, नन्द भये पुर बद्दल आये ॥
 वंश इक्ष्वाकु कियो जिन भूषित, भव्यन को भव पार लगाये
 ऐसे कृपानिधि के पद पंकज, थापतु हौं हिय हर्ष बढ़ाये ॥



ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वानं

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

देवापगा सु वर वारि विशुद्ध लायो,
भूंगार हेम भरि भक्ति हिये बढ़ायो
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीखंड सार वर कुंकुम गारि लीनों,
कं संग स्वच्छ घिसि भक्ति हिये धरीनों ॥
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ता-समान सित तंदुल सार राजे,
धारंत पुंज कलिकंज समस्त भाजें ॥
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

श्री केतकी प्रमुख पुष्प अदोष लायो,
नौरंग जंग करि भूंग सु रंग पायो ॥
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नैवेद्य सार चरु चारु संवारि लायो,
जांबूनद-प्रभृति भाजन शीश नायो ॥

रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

स्नेह प्रपूरित सुदीपक जोति राजे,
स्नेह प्रपूरित हिये जजतेऽघ भाजे ॥
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागरू प्रमुख गंध हुताश माहीं,
खेवौं तवाग्र वसुकर्म जरंत जाही ॥
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

निम्बाम्र कर्कटि सु दाढ़िम आदि धारा,
सौवर्ण-गंध फल सार सुपक्ष प्यारा ॥
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ श्री-फलादि वसु प्रासुक द्रव्य साजे,
नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज बाजे ॥
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

आठैं वदी चैत सुगर्भ मांही, आये प्रभू मंगलरूप थाहीं
सेवै शची मातु अनेक भेवा, चर्चौं सदा शीतलनाथ देवा ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाऽष्टम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

श्री माघ की द्वादशि श्याम जायो, भूलोक में मंगल सार आयो
शैलेन्द्र पै इन्द्र फनिन्द्र जज्जे, मैं ध्यान धारौं भवदुःख भज्जे ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णा द्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

श्री माघ की द्वादशि श्याम जानो, वैराग्य पायो भवभाव हानो
ध्यायो चिदानन्द निवार मोहा, चर्चौं सदा चर्न निवारि कोहा ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णा द्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

चतुर्दशी पौष वदी सुहायो, ताही दिना केवल लब्धि पायो
शोभै समोसृत्य बखानि धर्म, चर्चौं सदा शीतल पर्म शर्म ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णाचतुर्दश्यां केवल ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

कुवार की आठैं शुद्ध बुद्धा, भये महा मोक्ष सरुप शुद्धा
सम्मेद तें शीतलनाथ स्वामी, गुनाकरं ता सु पदं नमामी ॥

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाऽष्टम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आप अनंत गुनाकर राजे, वस्तुविकाशन भानु समाजे
मैं यह जानि गही शरना है, मोह महारिपु को हरना है

दोहा

हेम वरन तन तुंग धनु-नव्वै अति अभिराम
सुर तरु अंक निहारि पद, पुनि पुनि करौं प्रणाम
जय शीतलनाथ जिनन्द वरं, भव दाह दवानल मेघझरं
दुख-भुभृत-भंजन वज्र समं, भव सागर नागर-पोत-पर्म ॥

कुह-मान-मयागद-लोभ हरं, अरि विघ्न गयंद मृगिंद वरं
वृष-वारिधवृष्टन सृष्टिहितूं परदृष्टि विनाशन सुष्टु पितू ॥
समवस्त संजुत राजतु हो, उपमा अभिराम विराजतु हो
वर बारह भेद सभा थित को, तित धर्म बखानि कियो हित को ॥

पहले महि श्री गणराज रजैं, दुतिये महि कल्पसुरी जु सजैं
त्रितिये गणनी गुन भूरि धरैं, चवथे तिय जोतिष जोति भरैं ॥
तिय-विंतरनी पन में गनिये, छह में भुवनेसुर तिय भनिये
भुवनेश दशों थित सत्तम हैं, वसु-विंतर विंतर उत्तम हैं ॥

नव में नभजोतिष पंच भरे, दश में दिविदेव समस्त खरे
नरवृन्द इकादश में निवसें, अरु बारह में पशु सर्व लसें ॥
तजि वैर, प्रमोद धरें सब ही, समता रस मग्न लसें तब ही
धुनि दिव्य सुनें तजि मोहमलं, गनराज असी धरि ज्ञानबलं ॥

सबके हित तत्त्व बखान करें, करुना-मन-रंजित शर्म भरें
वरने षटद्रव्य तनें जितने, वर भेद विराजतु हैं तितने ॥
पुनि ध्यान उभै शिवहेत मुना, इक धर्म दुती सुकलं अधुना
तित धर्म सुध्यान तणों गुनियो, दशभेद लखे भ्रम को हनियो ॥

पहलोरि नाश अपाय सही, दुतियो जिन बैन उपाया गही
त्रिति जीवविषैं निजध्यावन है, चवथो सु अजीव रमावन है ॥
पनमों सु उदै बलटारन है, छहमों अरि-राग-निवारन है
भव त्यागन चिंतन सप्तम है, वसुमों जितलोभ न आतम है ॥

नवमों जिन की धुनि सीस धरे, दशमों जिनभाषित हेत करे
इमि धर्म तणों दश भेद भन्यो, पुनि शुक्लतणो चदु येम गन्यो ॥
सुपृथक्त-वितर्क-विचार सही, सुइकत्व-वितर्क-विचार गही
पुनि सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपात कही, विपरीत-क्रिया-निरवृत्त लही ॥

इन आदिक सर्व प्रकाश कियो, भवि जीवनको शिव स्वर्ग दियो
पुनि मोक्षविहार कियो जिनजी, सुखसागर मग्न चिरं गुनजी ॥
अब मैं शरना पकरी तुमरी, सुधि लेहु दयानिधि जी हमरी
भव व्याधि निवार करो अब ही, मति ढील करो सुख द्यो सब ही

शीतल जिन ध्याऊं भगति बढ़ाऊं, ज्यों रतनत्रय निधि पाऊं
भवदंद नशाऊं शिवथल जाऊं, फेर न भव-वन में आऊं

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

दिद्रथ सुत श्रीमान् पंचकल्याणक धारी,
तिन पद जुगपद्म जो जजै भक्तिधारी
सहजसुख धन धान्य, दीर्घ सौभाग्य पावे,
अनुक्रम अरि दाहै, मोक्ष को सो सिधावै ॥

इत्याशिवादः ॥ पुष्टाजलि क्षिपेत ॥



श्रीश्रेयांसनाथ-पूजन

छंद रूपमाला तथा गीता

विमल नृप विमला सुअन, श्रेयांसनाथ जिनन्द
सिंहपुर जन्मे सकल हरि, पूजि धरि आनन्द ॥
भव बंध ध्वंसनिहेत लखि मैं शरन आयो येव
थापौं चरन जुग उरकमल में, जजनकारन देव

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आहाननं

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कलधौत वरन उतंग हिमगिरि पदम द्रह तें आवई
सुरसरित प्रासुक उदक सों भरि भूंग धार चढ़ावई ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

गोशीर वर करपूर कुंकुम नीर संग घसौं सही



भवताप भंजन हेत भवदधि सेत चरन जजौं सही ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सित शालि शशि दुति शुक्ति सुन्दर मुक्तकी उनहार हैं
भरि थार पुंज धरंत पदतर अखयपद करतार हैं ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सद सुमन सु मन समान पावन, मलय तें मधु झंकरें
पद कमलतर धरतैं तुरित सो मदन को मद खंकरें ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

यह परम मोदक आदि सरस सँवारि सुन्दर चरु लियो
तुव वेदनी मदहरन लखि, चरचौं चरन शुचिकर हियो ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्य निर्वपामीति स्वाहा

संशय विमोह विभरम तम भंजन दिनन्द समान हो
तातैं चरनढिग दीप जोऊँ देहु अविचल ज्ञान हो ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

वर अगर तगर कपूर चूर सुगन्ध भूर बनाइया

दहि अमर जिह्वाविषैं चरनदिग करम भरम जराइया ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरलोक अरु नरलोक के फल पक मधुर सुहावने
ले भगति सहित जजौं चरन शिव परम पावन पावने ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलमलय तंदुल सुमनचरु अरु दीप धूप फलावली
करि अरघ चरचौं चरन जुग प्रभु मोहि तार उतावली ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्धपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्पाणक अर्धावली

छंद आर्या

पुष्पोत्तर तजि आये, विमलाउर जेठकृष्ण छट्टम को
सुरनर मंगल गाये, पूजौं मैं नासि कर्म काठनि को ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्द्धनिर्वपामीति स्वाहा

जनमे फागुनकारी, एकादशि तीन ग्यान द्वगधारी
इक्ष्वाकु वंशतारी, मैं पूजौं घोर विघ्न दुख टारी ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्द्धनिर्वपामीति स्वाहा

भव तन भोग असारा, लख त्याग्यो धीर शुद्ध तप धारा
फागुन वदि इग्यारा, मैं पूजौं पाद अष्ट परकारा ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोस्वमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्द्धनिर्वपामीति स्वाहा

केवलज्ञान सुजानन, माघ बदी पूर्णतित्थ को देवा
चतुरानन भवभानन, वंदौं ध्यावौं करौं सुपद सेवा ॥

ॐ हीं माघकृष्णामावस्यायां केवलज्ञानमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्धनिर्वपामीति स्वाहा

गिरि समेद तें पायो, शिवथल तिथि पूर्णमासि सावन को
कुलिशायुध गुनगायो, मैं पूजौं आप निकट आवन को ॥

ॐ हीं श्रावणशुक्लापूर्णिमायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्धनिर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

शोभित तुंग शरीर सुजानो, चाप असी शुभ लक्षण मानो
कंचन वर्ण अनूपम सोहे, देखत रुप सुरासुर मोहे

पद्मरी छंद -- 15 मात्रा

जय जय श्रेयांस जिन गुणगरिष्ठ, तुम पदजुग दायक इष्टमिष्ठ
जय शिष्ट शिरोमणि जगतपाल, जय भव सरोजगन प्रातःकाल
जय पंच महाव्रत गज सवार, लै त्याग भाव दलबल सु लार
जय धीरज को दलपति बनाय, सत्ता छितिमहँ रन को मचाय

धरि रतन तीन तिहुँशक्ति हाथ, दश धरम कवच तपटोप माथ
जय शुक्लध्यान कर खड़ग धार, ललकारे आठों अरि प्रचार
ता में सबको पति मोह चण्ड, ता को तत छिन करि सहस खण्ड
फिर ज्ञान दरस प्रत्यूह हान, निजगुन गढ़ लीनों अचल थान

शुचि ज्ञान दरस सुख वीर्य सार, हुई समवशरण रचना अपार
तित भाषे तत्त्व अनेक धार, जा को सुनि भव्य हिये विचार
निजरूप लह्यो आनन्दकार, भ्रम दूर करन को अति उदार
पुनि नयप्रमान निच्छेप सार, दरसायो करि संशय प्रहार

ता में प्रमान जुगभेद एव, परतच्छ परोछ रजै स्वमेव
ता में पतच्छ के भेद दोय, पहिलो है संविवहार सोय
ता के जुग भेद विराजमान, मति श्रुति सोहें सुन्दर महान
है परमारथ दुतियो प्रतच्छ, हैं भेद जुगम ता माहिं दच्छ

इक एकदेश इक सर्वदेश, इकदेश उभैविधि सहित वेश
वर अवधि सु मनपरजय विचार, है सकलदेश केवल अपार
चर अचर लखत जुगपत प्रतच्छ, निरद्वन्द रहित परपंच पच्छ
पुनि है परोच्छमहँ पंच भेद, समिरति अरु प्रतिभिज्ञान वेद

पुनि तरक और अनुमान मान, आगमजुत पन अब नय बखान
नैगम संग्रह व्यौहार गूढ़, ऋजुसूत्र शब्द अरु समभिरुढ़
पुनि एवंभूत सु सप्त एम, नय कहे जिनेसुर गुन जु तेम
पुनि दरव क्षेत्र अर काल भाव, निच्छेप चार विधि इमि जनाव

इनको समस्त भाष्यौ विशेष, जा समुझत भ्रम नहिं रहत लेश
निज ज्ञानहेत ये मूलमन्त्र, तुम भाषे श्री जिनवर सु तन्त्र
इत्यादि तत्त्व उपदेश देय, हनि शेषकरम निरवान लेय
गिरवान जजत वसु दरब ईस, 'वृन्दावन' नितप्रति नमत शीश

धन्ता

श्रेयांस महेशा सुगुन जिनेशा, वज्रधरेशा ध्यावतु हैं
हम निशदिन वन्दें पापनिकंदें, ज्यों सहजानंद पावतु हैं ॥

ॐ हीं श्रीश्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो पूजें मन लाय श्रेयनाथ पद पद्म को
पावें इष्ट अघाय, अनुक्रम सों शिवतिय वरैं ॥

इत्याशिवार्दः ॥ पुष्टांजलि क्षिपेत ॥



श्रीवासुपूज्य-पूजन

जय श्री वासुपूज्य तीर्थकर सुर नर मुनि पूजित जिनदेव ।
ध्रुव स्वभाव निज का अवलंबन लेकर सिद्ध हुए स्वयमेव ॥
घाति अघाति कर्म सब नाशे तीर्थकर द्वादशम् सुदेव ।
पूजन करता हूँ अनादि की मेटो प्रभु मिथ्यात्व कुटेव ॥

ॐ हीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आहाननं



ॐ ह्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जल से तन बार-बार धोया पर शुचिता कभी नहीं आई ।
इस हाड़-मांस मय चर्म-देह का जन्म मरण अति दुखदाई ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव-बाधा हरलो ।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

गुण शीतलता पाने को मैं चन्दन चर्चित करता आया ।
भव चक्र एक भी घटा नहीं संताप न कुछ कम हो पाया ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो ।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ता सम उज्ज्वल तंदुल से नित देह पुष्ट करता आया ।
तन की जर्जरता रुकी नहीं भव-कष्ट व्यर्थ भरता आया ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो ।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुष्पों की सुरभि सुहाई प्रभु पर निज की सुरभि नहीं भाई ।
कंदर्प दर्प की चिरपीड़ा अबतक न शमन प्रभु हो पाई ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो ।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घट रस मय विविध विविध व्यंजन जी भर-भर कर मैंने खाये ।
पर भूख तृप्त न हो पाई दुख क्षुधा-रोग के नित पाये ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो ।

चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक निज ही प्रज्ज्वलित किये अन्तरतम अब तक मिटा नहीं ।
मोहान्धकार भी गया नहीं अज्ञान तिमिर भी हटा नहीं ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो ।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ अशुभ कर्म बन्धन भाया संवर का तत्त्व कभी न मिला ।
निर्जरित कर्म कैसे हो जब दुखमय आस्रव का द्वार खुला ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो ।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

भौतिक-सुख की इच्छाओं का मैनें अब तक सम्मान किया ।
निर्वाण मुक्ति फलपाने को मैंने न कभी निज-ध्यान किया ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो ।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जब तक अनर्ध पद मिले नहीं तब तक मैं अर्ध चढ़ाऊँगा ।
निजपद मिलते ही हे स्वामी फिर कभी नहीं मैं आऊँगा ॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हरलो ।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम करलो ॥

ॐ ह्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अध्यावली

त्यागा महा शुक्र का वैभव, माँ विजया उर में आये ।
शुभ अषाढ़ कृष्ण षष्ठी को देवों ने मंगल गाये ॥

चम्पापुर नगरी की कर रचना, नव बारह योजन विस्तृत ।
वासुपूज्य के गर्भेत्सव पर हुए नगरवासी हर्षित ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाषष्टयां गर्भमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

फागुन कृष्णा चतुर्दशी को नाथ आपने जन्म लिया ।
नृप वसुपूज्य पिता हर्षये भरतक्षेत्र को धन्य किया ॥
गिरि सुमेरु पर पाण्डुक वन में हुआ जन्म कल्याण महान् ।
वासुपूज्य का क्षीरोदधि से हुआ दिव्य अभिषेक प्रधान ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

फागुन कृष्णा चतुर्दशी को वन की ओर प्रयाण किया ।
लौकान्तिक देवर्षि सुरों ने आकर तप कल्याण किया ॥
तब नमः सिद्धेभ्यः कहकर प्रभु ने इच्छाओं का दमन किया ।
वासुपूज्य ने ध्यान लीन हो इच्छाओं का दमन किया ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्या तपोमंगल प्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

माघ शुक्ल की दोज मनोरम प्रभु को केवलज्ञान हुआ ।
समवसरण में खिरी दिव्यध्वनि जीवों का कल्याण हुआ ॥
नाश किये घन घाति-कर्म सब केवलज्ञान प्रकाश हुआ ।
भव्यजनों के हृदय कमल का प्रभु से पूर्ण विकाश हुआ ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लाद्वितीयायां केवलज्ञान मंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

अंतिम शुक्ल ध्यानधर प्रभु ने कर्म अधाति किये चकचूर ।
मुक्ति वधु के कंत हो गये योग मात्र कर निज से दूर ॥
भाद्रव शुक्ला चतुर्दशी के दिन चम्पापुर से निर्वाण हुआ ।
मोक्ष लक्ष्मी वासुपूज्य ने पाई जय जय गान हुआ ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

विश्वविजेता विश्वज्योति विज्ञानी विश्वदेव विविधेश ॥
चम्पापुर के महाराज वसुपूज्य पिता विजया माता ।
तुमको पाकर धन्य हुए हैं वासुपूज्य मंगल दाता ॥

अष्ट वर्ष की अल्प आयु में तुमने अणुव्रत धार लिया ।
यौवन वय में ब्रह्मचर्य आजीवन अंगीकार किया ॥
पंच मुष्टि कचलोंच किया सब वस्त्राभूषण त्याग दिये ।
विमल भावना द्वादश भाई पंच महाव्रत ग्रहण किये ॥

स्वयं बुद्ध हो नमः सिद्ध कह पावन संयम अपनाया ।
मति, श्रुति, अवधि जन्म से था अब ज्ञान मनः पर्यय पाया ॥
एक वर्ष छद्मस्थ मौन रह आत्म साधना की तुमने ।
उग्र तपश्चया के द्वारा ही कर्म निर्जरा की तुमने ॥

श्रेणीक्षपक चढ़े तुम स्वामी मोहनीय का नाश किया ।
पूर्ण अनन्त चतुष्टय पाया पद अरहंत महान लिया ॥
विचरण करके देश-देश में मोक्ष-मार्ग उपदेश दिया ।
जो स्वभाव का साधन साधे, सिद्ध बने, संदेश दिया ॥

प्रभु के छ्यासठ गणधर जिनमें प्रमुख श्रीमंदिर ऋषिवर ।
मुख्य आर्यिका वरसेना थीं नृपति स्वयंभू श्रोतावर ॥
प्रायश्चित्त व्युत्सर्ग विनय, वैयावृत स्वाध्याय अरुध्यान ।
अन्तरंग तप छह प्रकार का तुमने बतलाया भगवान ॥

कहा बाह्य तप छह प्रकार उनोदर कायकलेश अनशन ।
रस परित्याग-सुव्रत परिसंख्या, विविक्त शैय्यासन पावन ॥
ये द्वादश तप जिन मुनियों को पालन करना बतलाया ।
अणुव्रत शिक्षाव्रत गुणव्रत द्वादशव्रत श्रावक का गाया ॥

चम्पापुर में हुए पंचकल्याण आपके मंगलमय ।
गर्भ, जन्य, तप ज्ञान, मोक्ष, कल्याण भव्यजन को सुखमय ।

परमपूज्य चम्पापुर की पावन भू को शत्-शत् वन्दन ।
वर्तमान चौबीसी के द्वादशम् जिनेश्वर नित्य नमन ॥

मैं अनादि से दुखी, मुझे भी निज-बल दो भववास हरू ।
निज-स्वरूप का अवलम्बन ले अष्टकर्म अरि नाश करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पूर्णार्थी निर्वपामीति स्वाहा

महिष चिंह शोभित चरण, वासुपूज्य उर धार ।
मन-वच-तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशिवार्ददः ॥ पुष्ट्यजलि क्षिपेत ॥



श्रीवासुपूज्य-पूजन

श्रीमत् वासुपूज्य जिनवर पद, पूजन हेत हिये उमगाय
थापौं मन वच तन शुचि करके, जिनकी पाटलदेव्या माय ॥
महिष चिह्न पद लसे मनोहर, लाल वरन तन समतादाय
सो करुनानिधि कृपादृष्टि करि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठ इहं आय ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आहाननं

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाजल भरि कनक कुंभ में, प्रासुक गंध मिलाई
करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागरु मलयागिर चंदन, केशरसंग घिसाई
भवआताप विनाशन-कारन, पूजौं पद चित लाई ॥



वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास शुद्ध वर सुवरन थार भराई
पुंज धरत तुम चरनन आगे, तुरित अखय पद पाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात संतान कल्पतरु-जनित सुमन बहु लाई
मीन केतु मद भंजनकारन, तुम पदपद्म चढ़ाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य-गव्य आदिक रसपूरित, नेवज तुरत उपाई
छुधारोग निरवारन कारन, तुम्हें जजौं शिरनाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक जोत उदोत होत वर, दश-दिश में छवि छाई
मोह तिमिर नाशक तुमको लखि, जजौं चरन हरषाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविध गंध मनोहर लेकर, वात होत्र में डाई
अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूप सु धूम उड़ाई ॥

वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस सुपक्क सुपावन फल ले कंचन थार भराई
मोक्ष महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरौं गुन गाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल दरव मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई
शिवपदराज हेत हे श्रीपति ! निकट धरौं यह लाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्द्धपदप्राप्तये अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्पाणक अध्यावली

कलि छटु आसाढ़ सुहायो, गरभागम मंगल पायो
दशमें दिवि तें इत आये, शतइन्द्र जजें सिर नाये ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाष्टयां गर्भमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

कलि चौदस फगुन जानो, जनमो जगदीश महानो
हरि मेरु जजे तब जाई, हम पूजत हैं चित लाई ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्यां जनमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

तिथि चौदस फागुन श्यामा, धरियो तप श्री अभिरामा
नृप सुन्दर के पय पायो, हम पूजत अति सुख थायो ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्या तपोमंगल प्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

सुदि माघ दोइज सोहे, लहि केवल आतम जोहे
अनअंत गुनाकर स्वामी, नित वंदौ त्रिभुवन नामी ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लाद्वितीयां केवलज्ञान मंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

सित भाद्र चौदस लीनो, निरवान सुथान प्रवीनो

पुर चंपा थानक सेती, हम पूजत निज हित हेती ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

चंपापुर में पंच वर-कल्याणक तुम पाय
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय

महासुखसागर आगर ज्ञान, अनंत सुखामृत मुक्त महान
महाबलमंडित खंडितकाम, रमाशिवसंग सदा विसराम
सुरिंद फनिंद खगिंद नरिंद, मुनिंद जजें नित पादारविंद
प्रभू तुम अंतरभाव विराग, सु बालहि तें व्रतशील सों राग

कियो नहिं राज उदास सरुप, सु भावन भावत आतम रूप
'अनित्य' शरीर प्रपंच समस्त, चिदात्म नित्य सुखाश्रित वस्त
'अशर्न' नहीं कोउ शर्न सहाय, जहां जिय भोगत कर्म विपाय
निजात्म को परमेसुर शर्न, नहीं इनके बिन आपद हर्न

'जगत्त' जथा जल बुदबुद येव, सदा जिय एक लहै फलमेव
अनेक प्रकार धरी यह देह, भ्रमे भवकानन आन न गेह
'अपावन' सात कुधात भरीय, चिदात्म शुद्ध सुभाव धरीय
धरे तन सों जब नेह तबेव, सु 'आवत कर्म' तबै वसुभेव

जबै तन-भोग-जगत्त-उदास, धरे तब 'संवर' 'निर्जर' आस
करे जब कर्मकलंक विनाश, लहे तब 'मोक्ष' महासुखराश
तथा यह 'लोक' नराकृत नित्त, विलोकियते षट्द्रव्य विचित्त
सु आतमजानन 'बोध' विहिन, धरे किन तत्त्व प्रतीत प्रवीन

'जिनागम ज्ञानरु' संजम भाव, सबै निजज्ञान विना विरसाव
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल, सुभाव सबै जिस तें शिव हाल
लयो सब जोग सु पुन्य वशाय, कहो किमि दीजिय ताहि गँवाय

विचारत यों लौकान्तिक आय, नमे पदपंकज पुष्प चढ़ाय

कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार, प्रबोधि सुयेम कियो जु विहार
तबै सौधर्मतनों हरि आय, रच्यो शिविका चढ़िआय जिनाय
धरे तप पाय सु केवलबोध, दियो उपदेश सुभव्य संबोध
लियो फिर मोक्ष महासुखराश, नमें नित भक्त सोई सुख आश

धत्ता

नित वासव वंदत, पापनिकंदत, वासुपूज्य व्रत ब्रह्मपती
भवसंकलखंडित, आनंदमंडित, जै जै जै जैवंत जती

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पूर्णर्धि निर्वपामीति स्वाहा

वासुपूजपद सार, जजौं दरबविधि भाव सों
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्ति को जो परम ॥

इत्याशिर्वदः ॥ पुष्ट्यांजलि क्षिपेत ॥



श्रीविमलनाथ-पूजन

सहस्रार दिवि ल्यागि, नगर कम्पिला जनम लिय
कृतधर्मानृपनन्द, मातु जयसेना धर्मप्रिय ॥
तीन लोक वर नन्द, विमल जिन विमल विमलकर
थापौं चरन सरोज, जजन के हेतु भाव धर ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

कंचन झारी धारि, पदमद्रह को नीर ले
तृषा रोग निरवारि, विमल विमलगुन पूजिये ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा



मलयागर करपूर देववल्लभा संग घसि
हरि मिथ्यातमभूर, विमल विमलगुन जजतु हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

वासमती सुखदास, स्वेत निशपति को हँसै
पूरे वाँछित आस, विमल विमलगुन जजत ही ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मंदार, संतानक सुरतरु जनित
जजौं सुमन भरि थार, विमल विमलगुन मदनहर ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य गव्य रसपूर, सुवरण थाल भरायके
छुधावेदनी चूर, जजौं विमल विमलगुन ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

माणिक दीप अखण्ड, गो छाई वर गो दशों
हरो मोहतम चंड, विमल विमलमति के धनी ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगरु तगर घनसार, देवदारु कर चूर वर
खेवौं वसु अरि जार, विमल विमल पद पद्म ढिंग ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल सेव अनार, मधुर रसीले पावने
जजौं विमलपद सार, विघ्न हरें शिवफल करें ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब संवार, मनसुखदायक पावने
जजौं अरघ भर थार, विमल विमल शिवतिय रमण ॥

पंचकल्पाणक अर्थावती

गरभ जेठ बदी दशमी भनो, परम पावन सो दिन शोभनो
करत सेव सची जननीतणी, हम जजें पदपद्म शिरौमणी ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णादशम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्लमाघ तुरी तिथि जानिये, जनम मंगल तादिन मानिये
हरि तबै गिरिराज विषै जजे, हम समर्चत आनन्द को सजे ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लाचतुर्थ्या जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

तप धरे सित माघ तुरी भली, निज सुधातम ध्यावत हैं रली
हरि फनेश नरेश जजें तहां, हम जजें नित आनन्द सों इहां ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लाचतुर्थ्या तपोमंगल प्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

विमल माघरसी हनि धातिया, विमलबोध लयो सब भासिया
विमल अर्घ चढ़ाय जजौं अबै, विमल आनन्द देहु हमें सबै ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लाषष्ट्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

भ्रमरसाढ़ छटी अति पावनो विमल सिद्ध भये मन भावनो
गिरसमेद हरी तित पूजिया, हम जजें इत हर्ष धरैं हिया ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाषष्ट्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

गहन चहत उड़गन गगन, छिति तिथि के छहँ जेम
तुम गुन-वरनन वरननि, माँहि होय तब केम
साठ धुनष तन तुंग है, हेम वरन अभिराम
वर वराह पद अंक लखि, पुनि पुनि करौं प्रनाम

जय केवलब्रह्म अनन्तगुनी, तुम ध्यावत शेष महेश मुनी
परमात्म पूरन पाप हनी, चितचिंततदायक इष्ट धनी
भव आतपध्वंसन इन्दुकरं, वर सार रसायन शर्मभरं
सब जन्म जरा मृतु दाहहरं, शरनागत पालन नाथ वरं

नित सन्त तुम्हें इन नामनि तें, चित चिन्तन हैं गुनगाम नितैं
अमलं अचलं अटलं अतुलं, अरलं अछलं अथलं अकुलं
अजरं अमरं अहरं अडरं, अपरं अभरं अशरं अनरं
अमलीन अछीन अरीन हने, अमतं अगतं अरतं अघने

अछुधा अतृषा अभयातम हो, अमदा अगदा अवदातम हो
अविरुद्ध अक्रुद्ध अमानधुना, अतलं असलं अनअन्त गुना
अरसं सरसं अकलं सकलं, अवचं सवचं अमचं सबलं
इन आदि अनेक प्रकार सही, तुमको जिन सन्त जपें नित ही

अब मैं तुमरी शरना पकरी, दुख दूर करो प्रभुजी हमरी
हम कष्ट सहे भवकानन में, कुनिगोद तथा थल आनन में
तित जामन मर्न सहे जितने, कहि केम सकें तुम सों तितने
सुमुहूरत अन्तरमाहिं धरे, छह त्रै त्रय छः छहकाय खरे

छिति वहि वयारिक साधरनं, लघु थूल विभेदनि सों भरनं
परतेक वनस्पति ग्यार भये, छ हजार दुवादश भेद लये
सब द्वै त्रय भूषट छः सु भया, इक इन्द्रिय की परजाय लया
जुग इन्द्रिय काय असी गहियो, तिय इन्द्रिय साठनि में रहियो

चतुरिंद्रिय चालिस देह धरा, पनइन्द्रिय के चवबीस वरा
सब ये तन धार तहाँ सहियो, दुखघोर चितारित जात हियो
अब मो अरदास हिये धरिये, दुखदंद सबै अब ही हरिये
मनवांछित कारज सिद्ध करो, सुखसार सबै घर रिद्ध भरो

धर्ता

जय विमलजिनेशा नुतनाकेशा, नागेशा नरईश सदा
भवताप अशेषा, हरन निशेशा, दाता चिन्तित शर्म सदा

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीमत विमल जिनेशपद, जो पूजें मनलाय

पूरें वांछित आश तसु, मैं पूजौं गुनगाय ॥

इत्याशिर्वदः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीअनन्तनाथ-पूजन

पुष्पोत्तर तजि नगर अजुध्या जनम लियो सूर्या-उर आय,
सिंधसेन नृप के नन्दन, आनन्द अशेष भरे जगराय
गुन अंनत भगवंत धरे, भवदंद हरे तुम हे जिनराय,
थापतु हौं त्रय-बार उचरिके, कृपासिन्धु तिष्ठु हु इत आय ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आहाननं

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शुचि नीर निरमल गंग को ले, कनक भृंग भराइया
मल करम धोवन हेत, मन-वच-काय धार ढराइया ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचन्द कदलीनंद कुंकुम, दंद ताप-निकंद है
सब पाप-रुज-संताप भंजन, आपको लखि चंद है ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

कनशाल दुति उजियाल हीर, हिमाल गुलकनि-तें घनी
तसु पुंज तुम पदतर धरत, पद लहत स्वच्छ सुहावनी ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुष्कर अमरतर जनित वर, अथवा अवर कर लाइया
तुम चरन-पुष्करतर धरत, सर-शूर-सकल नशाइया ॥

जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान नैना ग्रान रसना, को प्रमोद सुदाय हैं
सो ल्याय चरन चढ़ाय रोग, छुधाय नाश कराय हैं ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तमगोह भानन जानि आनन्द, आनि सरन गही अबै
वर-दीप धारौं वारि तुम ढिंग, स्व-पर-ज्ञान जु घो सबै ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

यह गंध चूरि दशांग सुन्दर, धूम्रध्वज में खेय हैं
वसु-कर्म-भर्म जराय तुम ढिंग, निज सुधातम वेय हैं ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

रसथक पक्ष सुभक्ष चक्ष, सुहावने मृदु पावने
फलासार वृन्द अमंद ऐसो, ल्याय पूज रचावने ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

शुचि नीर चन्दन शालिशंदन, सुमन चरु दीवा धरौं
अरु धूप फल-जुत अरघ करि, कर-जोर-जुग विनति करौं ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पंचल्याणक अधर्विली

असित कार्तिक एकम भावनो, गरभ को दिन सो गिन पावनो
किय सची तित चर्चन चाव सों, हम जजें इत आनंद भाव सों ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाप्रतिपदायां गर्भमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जनम जेठवदी तिथि द्वादशी, सकल मंगल लोकविषै लशी
हरि जजे गिरिराज समाज तें, हम जजैं इत आतम काज तें ॥

ॐ ह्रीं जेष्ठकृष्णाद्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

भव शरीर विनस्वर भाइयो, असित जेठ दुवादशि गाइयो
सकल इंद्र जजें तित आइके, हम जजैं इत मंगल गाइके ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाद्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

असित चैत अमावस को सही, परम केवलज्ञान जग्यो कही
लही समोसृत धर्म धुरंधरो, हम समर्चत विघ्न सबै हरो ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाअमावस्यायां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

असित चैत अमावस गाइयो, अघत घाति हने शिव पाइयो
गिरि समेद जजें हरि आय के, हम जजें पद प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाअमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तुम गुण वरनन येम जिम, खंविहाय करमान
तथा मेदिनी पदनिकरि, कीनों चहत प्रमान ॥
जय अनन्त रवि भव्यमन, जलज वृन्द विहँसाय

सुमति कोकतिय थोक सुख, वृद्ध कियो जिनराय ॥

जै अनन्त गुनवंत नमस्ते, शुद्ध ध्येय नित सन्त नमस्ते
लोकालोक विलोक नमस्ते, चिन्मूरत गुनथोक नमस्ते
रत्नत्रयधर धीर नमस्ते, करमशत्रुकरि कीर नमस्ते
चार अनंत महन्त नमस्ते, जय जय शिवतियकंत नमस्ते

पंचाचार विचार नमस्ते, पंच करण मदहार नमस्ते
पंच पराव्रत-चूर नमस्ते, पंचमगति सुखपूर नमस्ते
पंचलब्धि-धरनेश नमस्ते, पंच-भाव-सिद्धेश नमस्ते
छहों दरब गुनजान नमस्ते, छहों कालपहिचान नमस्ते

छहों काय रच्छेश नमस्ते, छह सम्यक उपदेश नमस्ते
सप्तव्यसनवनवहि नमस्ते, जय केवल अपरहि नमस्ते
सप्ततत्त्व गुनभनन नमस्ते, सप्त श्वभ्रगति हनन नमस्ते
सप्तभंग के ईश नमस्ते, सातों नय कथनीश नमस्ते

अष्टकरम मलदल्ल नमस्ते, अष्टजोग निरशल्ल नमस्ते
अष्टम धराधिराज नमस्ते, अष्ट गुननि सिरताज नमस्ते
जय नवकेवल प्राप्त-नमस्ते, नव पदार्थथिति आप्त नमस्ते
दशों धरम धरतार नमस्ते, दशों बंधपरिहार नमस्ते

विघ्न महीधर विज्जु नमस्ते, जय ऊरधगति रिज्जु नमस्ते
तन कनकंदुति पूर नमस्ते, इक्ष्वाकु वंश कज सूर नमस्ते
धनु पचासतन उच्च नमस्ते, कृपासिंधु मृग शुच्च नमस्ते
सेही अंक निशंक नमस्ते, चितचकोर मृग अंक नमस्ते

राग दोषमदटार नमस्ते, निजविचार दुखहार नमस्ते
सुर-सुरेश-गन-वृन्द नमस्ते, 'वृन्द' करो सुखकंद नमस्ते

जय जय जिनदेवं सुरकृतसेवं, नित कृतचित्त हुल्लासधरं
आपद उद्धारं समतागारं, वीतराग विज्ञान भरं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो जन मन वच काय लाय, जिन जजे नेह धर,
वा अनुमोदन करे करावे पढ़े पाठ वर
ताके नित नव होय सुमंगल आनन्द दाई,
अनुक्रम तें निरवान लहे सामग्री पाई ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥



श्रीधर्मनाथ-पूजन

तजि के सरवारथसिद्धि विमान, सुभान के आनि आनन्द बढ़ाये
जगमात सुव्रति के नन्दन होय, भवोदधि झूबत जंतु कढ़ाये ॥
जिनके गुन नामहिं मांहि प्रकाश है, दासनि को शिवस्वर्ग मँढ़ाये
तिनके पद पूजन हेत त्रिबार, सुथापतु हौं इहं पूल चढ़ाये ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

मुनि मन सम शुचि शीर नीर अति, मलय मेलि भरि झारी
जनम-जरा-मृतु ताप हरन को, चरचौं चरन तुम्हारी ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

केशर चन्दन कदली नन्दन, दाह-निकन्दन लीनो
जल-संग घस लसि शसि-सम-शमकर, भव-आताप हरीनो ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी



पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

जलज जीर सुखदास हीर हिम, नीर किरन-सम लायो
पुंज धरत आनन्द भरत भव, दंद हरत हरषायो ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुमन सुमन सम सुमणि-थाल भर, सुमन-वृन्द विहंसाई
सु मन्मथ-मद-मंथन के कारन, अरचौं चरन चढ़ाई ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर अर्द्ध-चन्द्र सम, छिद्र-सहज विराजे
सुरस मधुर ता सों पद पूजत, रोग-असाता भाजै ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुन्दर नेह सहित वर-दीपक, तिमिर-हरन धरि आगे
नेह सहित गाऊँ गुन श्रीधर, ज्यों सुबोध उर जागे ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोहास्थकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागर तव दिव हरिचन्दन करपूरं
चूर खेय जलज-वन मांहि जिमि, करम जरें वसु कूरं ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी

पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अष्टकमंदहनाय धूं पर्वपामीति स्वाहा

आम्र काम्रक अनार सारफल, भार मिष्ट सुखदाई
सो ले तुम ढिग धरहुँ कृपानिधि, देहु मोच्छ ठकुराई ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब साज शुचि चितहर, हरषि हरषि गुनगाई
बाजत द्वम-द्वम-द्वम मृदंग गत, नाचत ता थई थाई ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन-शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥

ॐ ह्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यविली

पूजौं हो अबार, धरम जिनेसुर पूजौं ॥टेक
आठैं सित बैशाख की हो, गरभ दिवस अधिकार
जगजन वांछित पूर को, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ला अष्टम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्ल माघ तेरसि लयो हो, धरम धरम अवतार
सुरपति सुरगिर पूजियो, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं माघशुक्ला त्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

माघशुक्ल तेरस लयो हो, दुर्द्वर तप अविकार
सुरऋषि सुमनन तें पूजे, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं माघशुक्ला त्रयोदश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पौषशुक्ल पूनम हने अरि, केवल लहि भवितार
गण-सुर-नरपति पूजिया, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ ह्रीं पौषशुक्ला पूर्णिमायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जेरशुक्ल तिथि चौथ की हो, शिव समेद तें पाय

जगतपूज्यपद पूजहूँ, पूजौं हो अबार ॥धरम

ॐ हीं ज्येष्ठशुक्ला चतुर्थ्या मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

घनाकार करि लोक पट, सकल उदधि मसि तंत
लिखै शारदा कलम गहि, तदपि न तुव गुन अंत

जय धरमनाथ जिन गुनमहान, तुम पद को मैं नित धरौं ध्यान
जय गरभ जनम तप ज्ञानयुक्त, वर मोच्छ सुमंगल शर्म-भुक्त
जय चिदानन्द आनन्दकंद, गुनवृन्द सु ध्यावत मुनि अमन्द
तुम जीवनि के बिनु हेतु मित्त, तुम ही हो जग में जिन पवित्त

तुम समवसरण में तत्वसार, उपदेश दियो है अति उदार
ता को जे भवि निजहेत चित्त, धरें ते पावें मोच्छवित्त
मैं तुम मुख देखत आज पर्म, पायो निज आत्मरूप धर्म
मो कों अब भवदधि तें निकार, निरभयपद दीजे परमसार

तुम सम मेरो जग में न कोय, तुमहीं ते सब विधि काज होय
तुम दया धुरन्धर धीर वीर, मेटो जगजन की सकल पीर
तुम नीतिनिपुन विन रागरोष, शिवमग दरसावतु हो अदोष
तुम्हरे ही नामतने प्रभाव, जगजीव लहें शिव-दिव-सुराव

ता तें मैं तुमरी शरण आय, यह अरज करतु हौं शीश नाय
भवबाधा मेरी मेट मेट, शिवराधा सों करौं भेंट भेंट
जंजाल जगत को चूर चूर, आनन्द अनूपम पूर पूर
मति देर करो सुनि अरज एव, हे दीनदयाल जिनेश देव

मो कों शरना नहिं और ठौर, यह निहचै जानो सुगुन मौर
'वृन्दावन' वंदत प्रीति लाय, सब विघ्न मेट हे धरम-राय

धर्म

जय श्रीजिनधर्म, शिवहितपर्म, श्रीजिनधर्म उपदेशा
तुम दयाधुरंधर विनतपुरन्दर, कर उरमन्दर परवेशा

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्थ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो श्रीपतिपद जुगल, उगल मिथ्यात जजे भव
ता के दुख सब मिटहिं, लहे आनन्द समाज सब ॥
सुर-नर-पति-पद भोग, अनुक्रम तें शिव जावे
ता तें 'वृन्दावन' यह जानि, धरम-जिन के गुन ध्यावे ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥



श्रीशांतिनाथ-पूजन

श्री बख्तावर सिंह कृत



सर्वार्थ सुविमान त्याग गजपुर में आये
विश्वसेन भूपाल तासु के नन्द कहाये ॥
पंचम चक्री भय मदन द्वादश में राजे
मैं सेवूं तुम चारण तिष्ठाये ज्यों दुःख भाजे ॥

अन्वयार्थ : आप सर्वार्थसिद्धि विमान को छोड़कर [गजपुर] हस्तिनापुर में पथारे थे, विश्वसेन [भूपाल] राजा के [नन्द] पुत्र कहलाये थे। आप पांचवें चक्रवर्ती हुए और [द्वादश] बारहवें [मदन] कामदेव हुए। मैं आपके चरणों की सेवा करता हूँ, आप मेरे हृदय में पधारिये जिससे मेरे समस्त सांसारिक [भाजे] दुःख दूर हो जाए।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आहाननं

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पंचम उदधि तनो जल निर्मल कंचन कलश भरे हरषाय
धार देत ही श्री जिन सन्मुख जन्मजरामृत दूर भगाय ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : [पंचम उदधि] क्षीर सागर के निर्मल जल को सोने के कलश में लेकर, अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक श्री जी के सम्मुख धार देने [तनो] से जन्म, जरा और मृत्यु नष्ट हो जाते हैं। शांतिनाथ भगवान्, आपने पांचवें चक्रवर्ती, बारहवें [मदन] कामदेव का पद पाया। आपके चरण कमलों की पूजा करने से रोग, शोक, दुःख और दारिद्रता नष्ट हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलियागिरि चंदन कदलीनंदन कुंकुम जल के संग घसाय
भव आताप विनाशन कारण चरचूं चरण सबै सुखदाय ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : मैं मलियागिरि का उल्कष चंदन, [कदली नंदन] कपूर, कुंकुम को जल के साथ धिसकर, भव भव के समस्त दुखों को नष्ट करने के लिए लेकर आपके चरणों की पूजा करता हूँ जो कि सब सुख देने वाली है शांतिनाथ भगवान् जी आप पांचवें चक्रवर्ती, बारहवें कामदेव का पद पाया था । आप के चरण कमलों की पूजा करने से रोग, शोक, दुःख और दारिद्रता नष्ट हो जाते हैं ।

ॐ ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यराशि सम उज्जवल अक्षत शशिमारीचि तसु देख लजाय
पुंज किये तुम चरणन आगे अक्षय पद के हेतु बनाये ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : मैं, पुण्यराशि के समान स्वच्छ अक्षत के पुंजों को जिन्हे देख कर [शशिमारीचि] चंद्रमा की किरणे भी लजित हो जाती है, मोक्ष पद की प्राप्ति के लिए, आपके चरणों के समक्ष अर्पित कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुर पुनीत अथवा अवनी के कुसुम मनोहर लिए मंगाय
भेंट धरत तुम चरणन के ढिंग ततक्षिन कामबाण नस जाय ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : मैं [सुर] देवों द्वारा लाये गये [पुनीत] पवित्र (कल्पवृक्ष के) अथवा [अवनी] पृथ्वी/मध्यलोक के मनोहर [कुसुम] पुष्ट को मंगाकर, आप के चरणों के समक्ष अर्पित कर रहा हूँ जिससे तुरंत काम-वासना नष्ट हो जाए ।

ॐ ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

भाँति भाँति के सद्य मनोहर कीने मैं पकवान संवार
भर थारी तुम सम्मुख लायो क्षुधा वेदनी वेग निवार ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : मैं क्षुधा की वेदना को [वेग] शीघ्रता से निवारण के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के, [सद्य] ताजे मनोहर पकवान संवारकर, थाली में रखकर आपके सम्मुख अर्पित करने के लिए लाया हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा

घृत सनेह करपूर लाय कर दीपक ताके धरे परजार
जगमग जोत होत मंदिर में मोह अंध को देत सुटार ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : [सनेह] विकने पी और कपूर से [परजार] प्रज्वलित करके दीपक आपके समुख [धरे] अर्पित करता हूँ जिससे मंदिर जी में जग मग ज्योति होती है और मोहरुपी अन्धकार [सुटार] पूर्णतया दूर हो जाता है ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

देवदारु कृष्णागरु चंदन , तगर कपूर सुगंध अपार
खेऊँ अष्ट करम जारन को धूप धनंजय माहिं सुडार ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : [देवदारु] देवदार की लकड़ी, चंदन और कपूर मिलाकर अत्यंत सुगंधित धुप बनाकर, अष्टकर्मों के [जारन] नष्ट के लिए खेता हूँ । मेरे कर्मों को नष्ट करने की कृपा करे ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

नारंगी बादाम सुकेला एला दाढ़िम फल सहकार
कंचन थाल माहिं धर लायो अरचत ही पाऊँ शिवनार ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : [माहिं] मैं नारंगी, बादाम, केला, [एला] इलाइची, [दाढ़िम] अनार, [सहकार] आम आदि फलों को सोने के थाल में भरकर आपकी पूजा करने के लिए लाया हूँ जिससे [शिवनार] मोक्ष लक्ष्मी प्राप्ति हो ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि वसु द्रव्य संवारे अर्घ चढाये मंगल गाये
'बखत रतन' के तुम ही साहिब दीजे शिवपुर राज कराय ॥
शांतिनाथ पंचम-चक्रेश्वर द्वादश-मदन तनो पद पाय
तिन के चरण-कमल के पूजे रोग-शोक-दुःख-दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : जल फल आदि आठों द्रव्य को [संवार] मिलाकर मंगल गान करते हुए आपको अर्घ अर्पित करता हूँ । बख्तावर कवि कहते हैं कि आप ही हमारे [साहिब] स्वामी हो हमे [अनर्घ] मोक्ष [राज्य] दिलवा दीजिये ।

**भादव सप्तमि श्यामा, सर्वार्थ त्याग नागपुर आये
माता ऐरा नाम, मैं पूजूं ध्याऊँ अर्धं शुभ लाये ॥**

अन्वयार्थ : आप सर्वार्थसिद्धि त्यागकर भादव [श्यामा] वदी सप्तमी को माता ऐरा के उदर में, [नागपुर] हस्तिनापुर में पधरे मैं आपकी पूजा और ध्यान कर, शुभ अर्ध आपके समक्ष समर्पित करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय भाद्र पद कृष्णा सप्तम्यां गर्भकल्पाणक प्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

**जन्मे तिरथ नाथं, वर जेठ असित चतुर्दशि सो है
हरि गण नावें माथं, मैं पूजूं शांति चरण युग जो है ॥**

अन्वयार्थ : तीर्थकर नाथ का जन्म [वर] ब्रैष, ज्येष्ठ [असित] कृष्णा चतुर्दशी को हुआ। [हरि-गण] देव और इंद्र ने भगवान् को [नावें माथं] नमस्कार किया। मैं भी शांति नाथ भगवान् के दोनों चरणों की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां जन्म कल्पाणक प्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

**चौदस जेठ अँधियारी, कानन में जाय योग प्रभु लीन्हा
नवनिधि रत्न सुछारी, मैं बंदू आत्मसार जिन चीन्हा ॥**

अन्वयार्थ : भगवान् ने ज्येष्ठ वदी चतुर्दशी को [कानन] जंगल में जाकर [योग] दीक्षा धारण करी। उन्होंने नवनिधियों, रत्नों चक्रवर्ती पद को भी [सुछारी] त्याग दिया। मैं ऐसे शांतिनाथ भगवान् की वंदना करता हूँ [चीन्हा] जिन्होंने [आत्मसार] आत्मा की श्रेष्ठता को पहचान लिया है।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां तपकल्पाणक प्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

**पौष दसे उजियारा, अरि घाति ज्ञान भानु जिन पाया
प्रातिहार्य वसुधारा, मैं सेऊँ सुर नर जासु यश गाया ॥**

अन्वयार्थ : पौष [उजियारा] शुक्ल दशमी को भगवान् ने [अरि] कर्मसन्तु का घात कर/चार घातिया कर्मों को नष्ट कर अपने, ज्ञान रूपी सूर्य का उदय किया अर्थात् उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। केवल ज्ञान प्राप्त होते ही उनको अष्ट प्रातिहार्य प्राप्त हुए, देवों और मनुष्यों ने भी उनके यशगान किया है; ऐसे भगवान् शांतिनाथ भगवान् की मैं सेवा/पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय पौष शुक्लादशम्यां ज्ञानकल्पाणक प्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

**सम्मेद शैल भारी, हनकर अघाति मोक्ष जिन पाई
जेठ चतुर्दिशकार, मैं पूजूं सिद्धथान सुखदाई ॥**

अन्वयार्थ : सम्मेदशिखर पर्वत पर अघाती-कर्मों को [हंकार] नष्ट कर जिन्होंने जेठ चतुर्दशी [कारी] वदी को मोक्ष प्राप्त किया, मैं भगवान् के सुखदायी निर्वाण-क्षेत्र की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां मोक्ष कल्पाणक प्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

**भये आप जिनदेव जगत में सुख विस्तारे
तारे भव्य अनेक तिन्हों के संकट टारे ॥**

टारे आठों कर्म मोक्ष सुख तिनको भारी भारी विरद निहार लही मैं शरण तिहारी ॥

अन्वयार्थ : आप जिनेन्द्र भगवान् हो गए हैं, आपने जगत में सुख का विस्तार किया है, अनेक भव्य जीवों को संसार से पार लगाकर उनके संकट दूर किये हैं। आपने आठों कर्मों को नष्ट कर उनको भी मोक्ष सुख प्राप्त कराया है आप के [विरद] यश को [निहार] देखकर मैं आपकी शरण में आया हूँ।

तिहारे चरणन को नमूं दुःख दारिद संताप हर हर सकल कर्म छिन एक में शान्ति जिनेश्वर शांति कर ॥

अन्वयार्थ : मैं आपके चरणों को नमन करता हूँ मेरे दुःख, दरिद्रता और संताप को हर लीजिये। एक क्षण [छिन] में मेरे [सकल] समस्त कर्मों को हर लीजिये। शांतिनाथ भगवन आप शांति प्रदान करें।

सारंग लक्षण चरण में, उन्नत धनु चालीस हाटक वर्ण शरीर द्युति, नमूं शांति जग ईश ॥

अन्वयार्थ : आपके चरण में [सारंग] हिरन का [लक्षण] चिन्ह है, ऊँचाई ४० धनुष, [हाटक] स्वर्णमयी शरीर की काँति थी, हे जगत के स्वामी शांति नाथ भगवान् मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

प्रभो आपने सर्व के फंद तोड़े, गिनाऊँ कछू मैं तिनों नाम थोड़े पड़ो अम्बु के बीच श्रीपाल राई, जपों नाम तेरो भए थे सहाई ॥

अन्वयार्थ : प्रभु आपने बहुत लोगों के फंदे तोड़े हैं, अर्थात उन्हें मुक्ति दिलाई है उनमे से कुछ के नाम मैं गिनाता हूँ। जब श्रीपाल [राई] राजा [अम्बु] समुद्र के बीच में गिर गया था तब उसने आप का नाम जपा था तब आपने उन की सहायता करी थी। कथा - मैना-सुंदरी कथा में, मैना सुंदरी के पति श्रीपाल, को धवल सेठ ने मायाचारी से धक्का देकर समुद्र में फिकवा दिया था तब श्रीपाल, भगवान के नाम की माला जपते जपते समुद्र से पार लग गए थे।

धरो राय ने सेठ को सूलिका पै, जपी आपके नाम की सार जापै भये थे सहाई तबै देव आये, करी फूल वर्षा सिंहासन बनाये ॥

अन्वयार्थ : राय राजा ने सेठ सुदर्शन को सूलि पर चढ़ा दिया था, उन्होंने आपके नाम की [सार] श्रेष्ठ जाप जपी थी तब देवों ने आकर उनकी फूलों की वर्षा कर तथा सिंहासन बनाकर, उस पर उन्हें बैठा कर, सम्मान कर (सहाई) सहायता करी थी।

जबै लाख के धाम वहि प्रजारी, भयो पांडवों पै महा कष्ट भारी जबै नाम तेरे तनी टेर कीनी, करी थी विदुर ने वही राह दीनी ॥

अन्वयार्थ : पांडवों के लाख के [धाम] घर में [वहि] आग [प्रजारी] लगाने से, उन पर महान कष्ट आया था जब उन्होंने आपका नाम लेकर आपको [टेर] पुकारा था तब विदुर ने उन्हें रास्ता बता दिया था।

हरी द्रोपदी घातकी खंड माहीं, तुम्हीं वहाँ सही भला ओर नाहीं लियो नाम तेरो भलो शील पालो, बचाई तहाँ ते सबै दुःख टालो ॥

अन्वयार्थ : द्रोपदी को घातकी खंड में हर लिया गया था वहाँ अन्य कोई नहीं था, आप ही तो सहारा थे उसने। आपका नाम लेकर शील का पालन किया, आपने उसकी वहाँ रक्षा कर उसके सभी दुःख को दूर किया। कथा - एक बार द्रोपदी के महल में नारद के आन पर उसने उनको देख कर नाक मुँह सिकोड़ा था, जिससे नारद ने अपने को अपमानित महसूस किया। तब नारद ने घातकी खंड के राजा पद्मनाभ को जाके द्रोपदी का वित्र दिखाया पद्मनाभ ने अपनी विद्या को भेजकर द्रोपदी को अपने पास घातकी खंड में बुलावा लिया जिससे यहाँ तो हाहाकार मच गया और वहाँ द्रोपदी ने विचार किया मैं यहाँ कैसे आ गयी, तब उसने आपका नाम लिया जिससे उस का सारा संकट दूर हो गया, अर्जुन वहाँ पहुंचकर द्रोपदी को वापिस ले आये।

जबै जानकी राम ने जो निकारी, धरे गर्भ को भार उद्यान डारी रटो नाम तेरो सबै सौख्यदाई, करी दूर पीड़ा सु क्षण न लगाई ॥

अन्वयार्थ : जब राम जी ने गर्भविश्वा में, (जानकी) सीता को निकाल कर (उद्यान) जंगल में छुड़वा दिया था तब उसने आपका नाम लिया था जिससे आपने उनकी पीड़ा को दूर करने में देर नहीं लगाई, उनकी पीड़ा क्षण भर में समाप्त हो गयी।

व्यसन सात सेवें करें तस्कराई, सुअंजन से तारे घड़ी न लगाई सहे अंजना चंदना दुःख जेते, गये भाग सारे जरा नाम लेते ॥

अन्वयार्थ : अंजन चौर सप्त व्यसन का सेवन करता था, |**तस्कराई**| चोरी करता था, किन्तु जब उसने इन सब का त्याग कर आपको चित्त में धारण किया तब आपको उसे संसार से पार लगाने में एक घड़ी भी नहीं लगी । अंजना और चंदना भी कितने कितने दुःख भोगे, वे आपका नाम लेते ही दूर हो गये । नोट - अंजना जी हनुमान जी की माता जी थी, चंदना जी भगवान् महावीर (की मौसी) ने उन्हें आहार दिया था ।

घड़े बीच में सास ने नाग डारो, भलो नाम तेरो जु सोम संभारो गई काढ़ने को भई फूलमाला, भई है विख्यातं सबै दुःख टाला ॥

अन्वयार्थ : सास ने एक घड़े में सांप डाल गिया था, सोमसती ने आपका नाम भली प्रकार लिया था । घड़े में से उसे निकालने के लिए जब गई तो वह फूल माला बन गया, जिससे उसके शील की सब जगह प्रशंसा हुई । भगवन आपने उसके सारे दुखों को दूर कर दिया । नोट - सोम नाम की सती थी जिसके चरित्र पर दोष लगाया गया था ।

इन्हे आदि देके कहाँ लो बखानें, सुनों विरद भारी तिहूं लोक जानें अजी नाथ मेरी जरा और हेरो, बड़ी नाव तेरी रती बोझ मेरो ॥

अन्वयार्थ : इनका मैं बखान कहाँ तक करूँ, आपका यश तो बड़ा भारी है । तीनों लोक में हर जीव जानता है । हे नाथ भगवन ! मेरी ओर जरा [हेरो] देख लीजिये, आपकी नाव बहुत बड़ी है मेरा तो भार [रती] थोड़ा सा ही है, (मैं भी उस में बैठ कर पार हो जाऊँ) ।

गहो हाथ स्वामी करो वेग पारा, कहूँ क्या अबै आपनी मैं पुकारा सबै ज्ञान के बीच भासी तुम्हारे, करो देर नाहीं मेरे शांति प्यारे ॥

अन्वयार्थ : भक्त भगवान् से विनती करते हुए कह रहा है, भगवन आप मेरा हाथ [गहो] पकड़ कर [वेग] जल्दी से पार लगा दीजिये अब आपसे और क्या कहूँ, मैं तो अपनी (पुकारा) विनती आपके सामने कर रहा हूँ आपके ज्ञान के बीच में सब [भासी] प्रकाशमान है, (आपसे मैं अपने भूत और वर्तमान के दुखों के विषय में क्या कहूँ आपको सब पता है) केवल ज्ञानी हैं, मेरे शांति नाथ प्रभु अब और देर मत कीजिये, अनंत काल से मैं भटकता रहा, अन्य देवीं भगवानों के चक्कर में भटकता रहा जो कि गलत था, अब मैं सही जगह आ गया हूँ, जल्दी से संसार से मुझे निकाल लीजिये ।

धत्ता

श्री शान्ति तुम्हारी, कीरत भारी, सुर नरनारी गुणमाला बख्तावर ध्यावे, रतन सुगावे, मम दुःख दारिद सब टाला ॥

अन्वयार्थ : शांतिनाथ भगवान् आपका यश तीनों लोक में बहुत फैला हुआ है । देवता हो, मनुष्य, स्त्री आदि सभी आपके गुणों की माला को धारण करते हैं अर्थात निरंतर आपका गुणगान करते हैं । बख्तावर कवि कहते हैं कि जो आपका ध्यान करता है और आपके गुणों का गान करता है वे सब पार होते हैं । मैंने भी आपके गुणों का गान किया है मेरे भी दुःख और दरिद्रता को दूर कीजिये ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्ध पद प्राप्तये महार्घ निर्वपामीति स्वाहा

अजी एरा नन्दन छबि लखत ही आप अरणं धरै लज्जा भारी करत श्रुति सो लाग चरणं ॥ करै सेवा सोई लहत सुख सो सार क्षण में घने दीना तारे हम चहत हैं बास तिन में ॥

इत्याशिर्वदः ॥ पुष्ट्यांजलि क्षिपेत ॥

अन्वयार्थ : मैंने [श्रुति] सुना है कि एरा देवी के पुत्र, आपकी छवि देखते ही [अरणं] सूर्य भी अत्यंत लज्जित हो जाता है, सूर्य समझता था कि सर्वाधिक प्रकाशमान आभा उसके पास ही है किन्तु भगवान की आभा तो करोड़ों सूर्य के प्रकाश से भी अधिक है इसलिए मैं आपकी शरण में आ गया हूँ । भगवान् जी, जो आपकी सेवा/भक्ति में लगते हैं वे श्रेष्ठ सुखों को क्षण में प्राप्त कर लेते हैं आपने तो बहुतों को पार लगा दिया है हम चाहते हैं कि हमारा भी वास उनमें हो जाए ।





श्रीशांतिनाथ-पूजन

शांति जिनेश्वर हे परमेश्वर परमशान्त मुद्रा अभिराम ।
 पंचम चक्री शान्ति सिन्धु सोलहवें तीर्थकर सुखधाम ॥
 निजानन्द में लीन शांति नायक जग गुरु निश्चल निष्काम ।
 श्री जिन दर्शन पूजन अर्चन वंदन नित प्रति करुं प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वानं

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्पापनं

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जल स्वभाव शीतल मलहारी आत्म स्वभाव शुद्ध निर्मल ।
 जन्म मरण मिट जाये प्रभु जब जागे निजस्वभाव का बल ॥
 परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
 शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल चंदन गुण सुगन्धमय निज स्वभाव हो अति ही शीतल ।
 पर विभाव का ताप मिटाता निज स्वरूप का अंतर्बल ॥
 परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
 शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

भव अटवी से निकल न पाया पर पदार्थ में अटका मन ।
 यह संसार पार करने का निज स्वभाव ही है साधन ॥
 परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
 शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कोमल पृष्ठ मनोरम जिनमें राग आग की दाह प्रबल ।
 निज स्वरूप की महाशक्ति से काम व्यथा होती निर्बल ॥

परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

उर की क्षुधा मिटाने वाला यह चरु तो दुखदायक है ।
इच्छाओं की भूख मिटाता निज स्वभाव सुखदायक है ॥
परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्धकार में भ्रमते-भ्रमते भव-भव में दुख पाया है ।
निजस्वरूप के ज्ञानभानु का उदय न अब तक आया है ॥
परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

इष्ट-अनिष्ट संयोगों में ही अब तक सुख-दुख माना है ।
पूर्णत्रिकाली ध्रुवस्वभाव का बल न कभी पहचाना है ॥
परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूं पूर्णपामीति स्वाहा

शुद्धभाव पीयूष त्यागकर पर को अपना मान लिया ।
पुण्य फलों में रूचि करके अब तक मैनें विषपान किया ॥
परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अविनश्वर अनुपम अनर्घपद सिद्ध स्वरूप महा सुखकार ।
मोक्ष भवन निर्माता निज चैतन्य राग नाशक अघहार ॥

परम शांति सुखदायक शांतिविधायक शांतिनाथ भगवान ।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान ॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्पाणक अष्टाविंशी

भादव कृष्ण सप्तमी के दिन तज सर्वार्थ सिद्धि आये ।
माता ऐरा धन्य हो गयी विश्वसेन नृप हरषाये ॥
छप्पन दिक्कुमारियों ने नित नवल गीत मंगल गाये ।
शांतिनाथ के गर्भोत्सव पर रत्न इन्द्र ने बरसाये ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णा सप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

नगर हस्तिनापुर में जन्मे त्रिभुवन में आनन्द हुआ ।
ज्येष्ठ कृष्ण की चतुर्दशी को सुरगिरि पर अभिषेक हुआ ॥
मंगल वाद्य नृत्य गीतों से गूंज उठा था पाण्डुक वन ।
हुआ जन्म कल्याण महोत्सव शांतिनाथ प्रभु का शुभ दिन ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

मेघ विलय लख इस जग की अनित्यता का प्रभुभान लिया ।
लौकांतिक देवों ने आकर धन्य-धन्य जयगान किया ॥
कृष्ण चतुर्दशी ज्येष्ठ मास की अतुलित वैभव त्याग दिया ।
शांतिनाथ ने मुनिव्रत धारा शुद्धात्म अनुराग किया ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पौष शुक्ल दशमी को चारों घातिकर्म चकचूर किये ।
पाया केवलज्ञान जगत के सारे संकट दूर किये ॥
समवशरण रचकर देवों ने किया ज्ञान कल्याण महान ।
शांतिनाथ प्रभु की महिमा का गूंजा जग में जय-जयगान ॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लादशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

ज्येष्ठ कृष्ण की चतुर्दशी को प्राप्त किया सिद्धत्व महान ।

कूट कुन्दप्रभु गिरि सम्मेद शिखर से पाया पद निर्वाण ॥
सादि अनन्त सिद्ध पद को प्रगटाया प्रभु ने धर निज-ध्यान ।
जय-जयशांतिनाथ जगदीश्वर अनुपम हुआ मोक्ष-कल्याण ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

शान्तिनाथ शिवनायक शांति विधायक शुचिमय शुद्धात्मा ।
शुभ्र-मूर्ति शरणागत वत्सल शील स्वभावी शांतात्मा ॥
नगर हस्तिनापुर के अधिपति विश्वसेन नृप के नन्दन ।
माँ ऐरा के राज दुलारे सुर नर मुनि करते वन्दन ॥

कामदेव बारहवें पंचम चक्री तीन ज्ञान धारी ।
बचपन में अणुव्रत धर यौवन में पाया वैभव भारी ॥
भरतक्षेत्र के षट-खण्डों को जयकर हुए चक्रवर्ती ।
नव निधि चौदह रत्न प्राप्त कर शासक हुए न्यायवर्ती ॥

इस जग के उत्कृष्ट भोग भोगते बहुत जीवन बीता ।
एक दिवस नभ में घन का परिवर्तन लख निज मन रीता ॥
यह संसार असार जानकर तप धारण का किया विचार ।
लौकांतिक देवर्षि सुरों ने किया हर्ष से जय जयकार ॥

वन में जाकर दीक्षा धारी पंच-मुष्टि कचलोंच किया ।
चक्रवर्ती की अतुल सम्पदा क्षण में त्याग विराग लिया ॥
मन्दिरपुर के नृप सुमित्र ने भक्ति-पूर्वक दान दिया ।
प्रभुकर में पय धारा दे भव सिंधु सेतु निर्माण किया ॥

उग्र तपश्या से तुमने कर्मों की कर निर्जरा महान ।
सोलह वर्ष मौन तप करके ध्याया शुद्धात्म का ध्यान ॥
श्रेणी क्षपक चढ़े स्वामी केवलज्ञानी सर्वज्ञ हुए ।
दिव्यध्वनि से जीवों को उपदेश दिया विश्वज्ञ हुए ॥

गणधर थे छत्तीस आपके चक्रायुद्ध पहले गणधर ।
 मुख्य आर्थिका हरिषेणा थी श्रोता पशु नर सुर मुनिवर ॥
 कर विहार जग में जगती के जीवों का कल्याण किया ।
 उपादेय है शुद्ध आत्मा यह सन्देश महान दिया ॥

पाप-पुण्य शुभ-अशुभ आम्रव जग में भ्रमण कराते हैं ।
 जो संवर धारण करते हैं परम मोक्ष-पद पाते हैं ॥
 सात-तत्त्व की श्रद्धा करके जो भी समकित धरते हैं ।
 रत्नत्रय का अवलम्बन ले मुक्तिवधु को वरते हैं ॥

सम्मेदाचल के पावन पर्वत पर आप हुए आसीन ।
 कूट कुन्दप्रभ से अधातिया कर्मों से भी हुए विहीन ॥
 महामोक्ष निर्वाण प्राप्तकर गुण अनन्त से युक्त हुए ।
 शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध सिद्धपद पाया भव से मुक्त हुए ॥

हे प्रभु शांतिनाथ मंगलमय मुझको भी ऐसा वर दो ।
 शुद्ध आत्मा की प्रतीति मेरे उर में जाग्रत कर दो ॥
 पाप ताप संताप नष्ट हो जाये सिद्ध स्वपद पाऊँ ।
 पूर्ण शांतिमय शिव-सुख पाकर फिर न लौट भव में आऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चरणों में मृग चिन्ह सुशोभित शांति जिनेश्वर का पूजन ।
 भक्ति भाव से जो करते हैं वे पाते हैं मुक्ति गगन ॥

इत्याशिवार्दः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥



श्रीशांतिनाथ-पूजन

श्री वृद्धावनदाससजी कृत



या भव कानन में चतुरानन, पाप पनानन घेरी हमेरी
 आतम जानन मानन ठानन, बान न होन दई सठ मेरी ॥
 तामद भानन आपहि हो, यह छान न आन न आनन टेरी
 आन गही शरनागत को, अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥

अन्वयार्थ : हे [चतुरानन] चार मुख भगवन ! इस संसार रूपी जंगल में [पनानन] पाँच मुख वाले पाप रूपी सिंह ने हमे घेर लिया है इसलिए [जानन] मैं आमा को नहीं जान (सम्पज्ञान) पाया, [मानन] नहीं मान (सम्पदर्शन) पाया और [ठानन] नहीं उसमे (सम्पक चारित्र) स्थित हो पाया (पाँच पापों के कारण रक्षत्रय धारण नहीं कर सका) । इस दुष्ट ने मेरी कोई भी बात होने नहीं दी; उसके घमंड को नष्ट करने वाले मात्र आप ही है, यह मैंने भली प्रकार जान लिया कि अन्य कोई है नहीं इसलिए मैं आपकी शरण में आकर पुकार लगा रहा हूँ । मैंने आपकी शरण प्राप्त कर ली है, हे भगवान् अब मेरी लाज रखना ।

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

छन्द विभंगी

हिमगिरि गतगंगा, धार अभंगा, प्रासुक संगा, भरि भृंगा
 जर-जनम-मृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदु हिंगा ॥
 श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
 हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥

अन्वयार्थ : हिमवन् पर्वत से निकली हुई गंगा नदी की निरंतर धारा के बीच से जल लेकर, वस्त्र से छान कर, प्रासुक कर ज्ञारी में भरकर; बुढ़ापे, जन्म और मृत्यु और पापों को नष्ट करने के लिए आपके कोमल चरणों की पूजा करता हूँ । हे शान्तिनाथ भगवान ! आप तीर्थकर जिनेन्द्र हैं, [नक्रेश] इन्द्रो द्वारा [नुत] वदित हैं, धर्म चक्र के स्वामी हैं, [चक्रेश] चक्रवर्ती हैं, अष्टकर्म शत्रुओं के समूह को आपने नष्ट कर लिया है, [गुणधेश] गुणों के स्वामी है, [दया ऽमृतेशं] दया रूपी अमृत के स्वामी, [मक्रेश] कामदेव हैं ।

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

वर बावन चन्दन, कदली नन्दन, घन आनन्दन सहित घसौं
 भवताप निकन्दन, ऐरानन्दन, वंदि अमंदन, चरन बसौं ॥
 श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
 हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥

अन्वयार्थ : श्रेष्ठ उल्कृष्ट चंदन और कपूर को अत्यंत आनद पूर्वक संसार के ताप (दुखों) को नष्ट करने के लिए घिसा है, हे ऐरा माता के पुत्र ! मैं तीव्र भक्तिपूर्वक आपके चरणों में ठहरा (बसूँ) रहूँ ।

ॐ ह्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

हिमकर करि लज्जत, मलय सुसज्जत अच्छत जज्जत, भरि थारी
 दुखदारिद गज्जत, सदपद सज्जत, भवभय भज्जत, अतिभारी ॥

**श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥**

अन्वयार्थ : आपकी पूजा के लिए भगवान् मैं चन्द्रमा को लज्जित करने वाले चंदन से सुर्गाधित अक्षत से थाली भरकर, दुःख और दरिद्रता को नाश करने के लिए लाया हूँ। आप ब्रेष्टपद को सुशोभित करने वाले, संसार के भय को नष्ट करने वाले सर्व ब्रेष्ट हैं।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

**मंदार, सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलयभरं
भरि कंचनथारी, तुमढिग धारी, मदनविदारी, धीरधरं ॥**

**श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥**

अन्वयार्थ : मंदार, कमल और केले के फूलों के पुंजों को चन्दन से भरकर सोने की थाली में, काम को नष्ट करने वाले, अत्यंत धीरज धारक, आपके समक्ष चढ़ाता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

**पकवान नवीने, पावन कीने षटरस भीने, सुखदाई
मनमोदन हारे, छुधा विदारे, आगे धारे गुनगाई ॥**
**श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥**

अन्वयार्थ : ताजे पकवान, पवित्रता से बनाये हुए, षटरस से ढूबे हुए सुखदायक, मनमोदन- चित्त को प्रसन्न करने वाले, भूख का नाश करने वाले (विदारे) हैं, इनको आपके आगे आपके गुणों को गाते हुए रख रहा हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

**तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेय विकासे सुखरासे
दीपक उजियारा, यातें धारा, मोह निवारा, निज भासे ॥**
**श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥**

अन्वयार्थ : भगवान्! आप ज्ञान प्रकाशक, (भ्रमतम) मिथ्यात्व रूपी अन्धकार नाशक, ज्ञेय पदार्थों के विकासक, सुख के समूह हैं। मैंने उजियारे दीपक को यहाँ मोहकर्म के नाश और (निज) अपनी आत्मा के (भासे) दर्शन के लिए रखा है।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

**चन्दन करपूरं करि वर चूरं, पावक भूरं माहि जुरं
तसु धूम उड़ावे, नाचत जावे, अलि गुंजावे मधुर सुरं ॥**

**श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥**

अन्वयार्थ : चंदन और कपूर का चूर्ण बनाकर बहुत सारी (पावक) अग्नि में (माहिं) मैं (जुरं) जलाता हूँ। उसका धुंआ उड़ रहा है ऐसा लग रहा है जैसे नृत्य कर रहा हो और इसकी खुशबू से भंवर गुञ्जनकर मधुर स्वर कर रहे हो, ऐसे धूप से आपकी मैं पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

**बादाम खजूरं, दाढ़िम पूरं, निंबुक भूरं ले आयो
ता सों पद जज्जौं, शिवफल सज्जौं, निजरस रज्जौं उमगायो ॥**

**श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥**

अन्वयार्थ : बादाम, खजूर, अनार और नींबू भरे हुए लाया हूँ; उनसे आपके चरणों की पूजा के लिए उत्साहपूर्वक मोक्षफल और आत्म सुख की प्राप्ति के लिए करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

**वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी, दृग-प्यारी
तुम हो भव तारी, करुनाधारी, या तें थारी शरनारी ॥**

**श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥**

अन्वयार्थ : आनन्दकारी और नेत्रों को अच्छे लगने वाले, आठों द्रव्यों को संवार कर आपके समक्ष अर्पित करता हूँ। आप संसार से पार करने वाले हैं, करुणाधारक हो, इसलिए आपकी शरण में आया हूँ। हे शांतिनाथ भगवान ! आप तीर्थकर जिनेन्द्र हैं, [नक्रेश] इन्द्रों द्वारा [नुत्र] वंदित हैं, धर्म चक्र के स्वामी हैं, [चक्रेश] चक्रवर्ती हैं, अष्टकर्म शत्रुओं के समूह को आपने नष्ट कर लिया है, [गुणधेश] गुणों के स्वामी है, [दयाऽमृतेश] दया रूपी अमृत के स्वामी, [मक्रेश] कामदेव हैं।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यविली

**असित सातँय भादव जानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये
सचि कियो जननी पद चर्चनं, हम करें इत ये पद अर्चनं ॥**

अन्वयार्थ : भादो (असित) वर्दी सप्तमी को भगवान् गर्भ में पधारे थे, आपका गर्भ कल्याणक मनाया था। (सचि) इंद्राणी ने माता के चरणों की पूजा करी थी, हम आपके चरणों की यहाँ पर पूजा करते हैं।

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णा सप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

**जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है, सकल इन्द्र सु आगत धाम है
गजपुरै गज-साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजिहों अबै ॥**

अन्वयार्थ : आपका जन्म जेठ कृष्ण चतुर्दशी को हुआ था। सभी इन्द्र आपके घर पर आये थे। हस्तिनापुर (गजपुर) में ऐरावत हाथी को सजा कर तब सभी ने आपको (समेरु) पर्वत के पांडुकवन में ले जा कर आपकी पूजा करी थी; मैं यहाँ आपकी पूजा करता हूँ।

ॐ हीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

**भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं
भ्रमर चौदशि जेठ सुहावनी, धरम हेत जजौं गुन पावनी ॥**

अन्वयार्थ : संसार, शरीर और भोग असार हैं ऐसा विचारकर आपने (भ्रमर) कृष्ण जेठ चतुर्दशी को तप धारण किया था। (धर्म) उस रक्त्रय गुणों की प्राप्ति के लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ।

ॐ हीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
**शुकलपौष दशैं सुखरास है, परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है
भवसमुद्र उधारन देव की, हम करें नित मंगल सेवकी ॥**

अन्वयार्थ : पौष शुक्ल दशमी सुखदायक है क्योंकि इस दिन आपको केवलज्ञान का श्रेष्ठ प्रकाश प्राप्त हुआ था। संसार पार करने वाले आप देव की हम नित्य मंगल सेवा करते हैं।

ॐ हीं पौषशुक्लादशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
**असित चौदशि जेठ हने अरी, गिरि समेदथकी शिव-तिय वरी
सकल इन्द्र जजैं तित आय के, हम जजैं इत मस्तक नाय के ॥**

अन्वयार्थ : जेठ वदी चतुर्दशी को आपने शेष अघातिया कर्मों को नष्ट कर समेद शिखर जी पर मोक्ष लक्ष्मी का वरन किया था। सब इन्द्रों ने वहाँ आकर आपकी पूजा करी थी। हम मस्तक नवा कर आपकी यहाँ पूजा करते हैं।

ॐ हीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

छन्द-रथोद्धता, चंद्रवत्स तथा चंद्रवर्म

**शान्ति शान्तिगुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा
मैं तिन्हें भगत मंडिते सदा, पूजिहौं कलुष हंडिते सदा ॥
मोच्छ हेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुन रत्न माल हो
मैं अबै सुगुन-दाम ही धरौं, ध्यावते तुरत मुक्ति-तिय वरौं ॥**

अन्वयार्थ : शांति नाथ भगवान्! आप शांति देने वाले गुण से मंडित हैं, आपको बड़े-बड़े पंडित निरंतर ध्याते हैं। मैं उन शांतिनाथ भगवान् को सदा भक्ति पूर्वक पूजता हूँ, जो कि सदा पापों का नाश करने वाले हैं। मोक्ष के कारण मैं आप ही दयाल हूँ, (आपकी कृपा से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है)। हे जिनेन्द्र भगवान्! आप गुण रूपी रत्नों की माला हैं; मैं अब आपके अच्छे गुणों की माला को कहता हूँ जिनके ध्याने से ही तुरंत मोक्ष रूपी स्त्री प्राप्त होती है।

पद्मरि

**जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज
तुम तजि सरवारथसिद्धि थान, सरवारथजुत गजपुर महान ॥
तित जनम लियो आनन्द धार, हरि ततछिन आयो राजद्वार
इन्द्रानी जाय प्रसूति थान, तुम को कर मैं ले हरष मान ॥**

हरि गोद देय सो मोदधार, सिर चमर अमर ढारत अपार

गिरिराज जाय तित शिला पांडु, ता पे थाप्यो अभिषेक माँड ॥
 तित पंचम उदधि तनों सुवार, सुर कर कर करि ल्याये उदार
 तब इन्द्र सहसकर करि अनन्द, तुम सिर धारा ढारयो समुन्द ॥

अघघघ घघघघ धुनि होत घोर, भभभभ भभ धध धध कलश शोर
 द्वमद्वम द्वमद्वम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग ॥
 तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान
 ताथई थई थई थई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल ॥

चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट थट विराट
 इमि नाचत राचत भगति रंग, सुर लेत जहाँ आनन्द संग ॥
 इत्यादि अतुल मंगल सु ठाठ, तित बन्यो जहाँ सुर गिरि विराट
 पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौप्यो तुम तित वृद्ध थाय ॥

पुनि राजमाहिं लहि चक्ररत्न, भोग्यो छहखण्ड करि धरम जत्न
 पुनि तप धरि केवल रिद्धि पाय, भवि जीवनि को शिवमग बताय ॥
 शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश, गुण-मंडित अतुल अनन्त भेष
 मैं ध्यावतु हौं नित शीश नाय, हमरी भवबाधा हर जिनाय ॥

**सेवक अपनो निज जान जान, करुणा करि भौभय भान भान
 यह विघ्न मूल तरु खंड खंड, चितचिन्ति आनन्द मंड मंड ॥**

अन्वयार्थ : शांति नाथ भगवान् ! आपने आत्मा के चिद्रूप (सिद्ध स्वरूप) को प्राप्त कर लिया है आप की जय हो । आप संसार को पार करने वाले अद्भुत जहाज हैं । आप सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर, जहाँ सारे कार्यों की सिद्धि होती है, ऐसे महान हस्तिनापुर में आप पथरे / जन्म हुआ था ।

वहाँ आपने आनंद पूर्वक जन्म लिया था उसी क्षण इंद्र आपके राज्य के द्वारा पर आये थे । इंद्राणी प्रसूति स्थान पर गई थी और उसने आपको अपने हाथों में हर्ष पूर्वक उठाया था ।

उसने आपको इंद्र की गोद में दिया; वह आपके सिर पर चंवर ढारने लगे । उन्होंने आपको समेरुपर्वत पर पांडुकशिला पर लेजाकर विराजमान किया और अभिषेक सम्पन्न किया ।

वहाँ पंचम समुद्र, क्षीरसागर तक देवो ने पंक्ति लगाकर, वहाँ से हाथों में जल लाये, इंद्र ने अपने एक हजार हाथ बनाकर आपके सिर पर क्षीर सागर के जल की धारा दे कर आनंद मनाया ।

वहाँ पंचम समुद्र (क्षीरसागर) तक देवो ने पंक्ति लगाकर, वहाँ से हाथों में जल लाये, इंद्र ने अपने एक हजार हाथ बनाकर आपके सिर पर क्षीर सागर के जल की धारा दे कर आनंद मनाया ।

कलशों को ढोते हुए सभी इंद्र / देवों के नृत्य करने से अघ घघ की ध्वनि से घोर शोर हो रहा था, कलशों को उठाने रखने से भभभभ भभ धध धध का शोर हो रहा था । मृदंग (ढोल) के बजने से द्वमद्वम द्वमद्वम और नूपुर के बजने से झन नन नन नन की आवाज़ आ रही थी । अर्थात् सारा वातावरण मंगलमय हो रहा था ।

कोई तानपुरा बजा रहा था उससे तन नन नन और कोई घंटा बजा रहा था उससे घन नन आवाज़ आ रही थी । कोई तबले की थाप पर ताथई थई थई थई आवाज़ कर रहे थे । सभी नृत्य करते हुए अपना मस्तक आपके समक्ष झुका रहे थे ।

जो नांच रहे थे उनकी तरह तरह की आवाज़ चट चट अटपट, झट झट झट हट नट थट आ रही थी सभी सुन्दर देवी देवता इधर उधर भागने दौड़ने, भक्ति रंग में रचे नृत्य आदि करने में लगे हुए थे और देवता लोग आप के अभिषेक स्पल, (समेरुपर्वत के पांडुकवन में) खूब आनंद ले रहे थे ।

इत्यादि मंगल अतुल्य ठाठ के साथ आप वहाँ देवताओं से भी अधिक सुन्दर, पर्वत के समान विराट हुए । फिर आपके पिता के घर आकर, नियोग कर इंद्र आपको उनके सुपर्द कर अपने घर चले गये ।

फिर आपने राज्य में लीन रहते हुए चक्ररत्न की प्राप्ति कर छह खण्डों के सुख भोगते हुए भी धर्म का यत्न किया फिर तप धारण कर के आपने केवलज्ञान ऋद्धि प्राप्त कर भव्य जीवों को मोक्षमार्ग बताया ।

आप जिनेन्द्र देव, अनंत गुणों से मंडित और अतुल्य अनंतस्वरूप सहित मोक्ष पथारे। मैं आपको नित्य शीश झुका कर ध्याता हूँ; हे जिनेन्द्र भगवान्! हमारी भव बाधा को दूर कीजिये। हे भगवन्! मुझे अपना सेवक जानकार, करुणा कर, संसार के भय को दूर कर दीजिये। विज्ञों का इस वृक्ष को खंडित कर दीजिये। भगवान् मैं आपको हृदय में अनंदपूर्वक धारण करता हूँ और आप से प्रार्थना करता हूँ।

धन्ता

श्रीशान्ति महंता, शिवतियकंता, सुगुन अनंता, भगवंता भव भ्रमन हनन्ता, सौख्य अनन्ता, दातारं, तारनवन्ता ॥

अन्वयार्थ : हे श्री शांतिनाथ! आप महान, मोक्षरूपी स्त्री के पति, अनंत सुगुणों युक्त, भगवान्। भव भ्रमन। संसार के भ्रमण को [हनन्ता] नष्ट कर, [सौख्य अनन्ता] अनंतसुख धारक है और संसार से [तारनवन्ता] पार करने वाली शक्ति को [दातारं] प्रदान करने वाले हैं।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

शान्तिनाथ जिन के पदपंकज, जो भवि पूजे मन वच काय
जनम जनम के पातक ता के, तत्छिन तजि के जायं पलाय ॥
मनवांछित सुख पावे सो नर, बांचे भगतिभाव अति लाय
ता तें 'वृदावन' नित वंदे, जा तें शिवपुरराज कराय ॥

इत्याशिर्षादः ॥ पृष्ठांजलि क्षिपेत ॥

अन्वयार्थ : शांतिनाथ जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों की जो भव्य जीव मन-वचन-काय से पूजा करते हैं, उनके जन्म-जन्म के पाप उसी क्षण छोड़ कर भाग जाते हैं; वे मनुष्य मन वांछित सुख पाते हैं जो भक्ति भाव से इस पूजा को पढ़ते हैं। वृदावन कवि कहते हैं कि यदि मोक्ष लक्ष्मी पर राज करना है तब भगवान् शांतिनाथ जी की नित्य वंदना करनी चाहिए।



श्रीकुंथुनाथ-पूजन

अज अंक अजै पद राजै निशंक, हरे भवशंक निशंकित दाता
मदमत्त मतंग के माथे गँथे, मतवाले तिन्हें हने ज्यों अरिहाता ॥
गजनागपुरै लियो जन्म जिन्हौं, रवि के प्रभु नंदन श्रीमति-माता
सो कुंथु सुकुंथुनि के प्रतिपालक, थापौं तिन्हें जुतभक्ति विख्याता ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर संवैषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सुरसरिता को उज्ज्वल जल भरि, कनकभृंग भेरी ।
मिथ्यातृष्णा निवारन कारन, धरौं धार नेरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी



भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥
प्रभु सुन अरज दासकेरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
जगजाल पर्यो हौं वेगि निकारो बांह पकर मेरी ।

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावन चंदन कदलीनंदन, घसिकर गुन टेरी
तपत मोह नाशन के कारन, धरौं चरन नेरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ताफलसम उज्ज्वल अक्षत, सहित मलय लेरी
पुंज धरौं तुम चरनन आगे अखय सुपद देरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेला दौना, सुमन सुमनसेरी
समरशूल निरमूल हेत प्रभु, भेंट करौं तेरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर मोदन मोदक, मृदु उत्तम पेरी
ता सों चरन जजौं करुनानिधि, हरो छुधा मेरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कंचन दीपमई वर दीपक, ललित जोति घेरी

सो ले चरन जजौं भ्रम तम रवि, निज सुबोध देरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

देवदारु हरि अगर तगर करि चूर अगनि खेरी
अष्ट करम ततकाल जरे ज्यों, धूम धनंजेरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

लोंग लायची पिस्ता केला, कमरख शुचि लेरी
मोक्ष महाफल चाखन कारन, जजौं सुकरि ढेरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप लेरी
फलजुत जनन करौं मन सुख धरि, हरो जगत फेरी ॥
कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्थावली

सुसावन की दशमी कलि जान, तज्यो सरवारथसिद्ध विमान
भयो गरभागम मंगल सार, जजें हम श्री पद अष्ट प्रकार ॥

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णादशम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

महा बैशाख सु एकम शुद्ध, भयो तब जनम तिज्ञान समृद्ध
कियो हरि मंगल मंदिर शीस, जजें हम अत्र तुम्हें नुतशीश ॥

ॐ ह्रीं वैशाकशुक्लाप्रतिपदायां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

तज्यो षटखंड विभौ जिनचंद, विमोहित चित्त चितार सुछंद
धरे तप एकम शुद्ध विशाख, सुमग्न भये निज आनंद चाख ॥

ॐ ह्रीं वैशाकशुक्लाप्रतिपदायां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा

सुदी तिय चैत सु चेतन शक्त, चहूं अरि छयकरि तादिन व्यक्त
भई समवसृत भाखि सुधर्म, जजौं पद ज्यों पद पाइय पर्म ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लातृतीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा

सुदी वैशाख सु एकम नाम, लियो तिहि द्यौस अभय शिवधाम
जजे हरि हर्षित मंगल गाय, समर्चतु हौं तुहि मन-वच-काय ॥

ॐ ह्रीं वैशाकशुक्लाप्रतिपदायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

षट खंडन के शत्रु राजपद में हने,
धरि दीक्षा षटखंडन पाप तिन्हें दने ॥
त्यागि सुदरशन चक्र धरम चक्री भये,
करमचक्र चकचूर सिद्ध दिढ़ गढ़ लये ॥
ऐसे कुंथु जिनेश तने पद पद्म को,
गुन अनंत भंडार महा सुख सद्म को ॥
पूजूं अरघ चढ़ाय पूरणानंद हो,
चिदानंद अभिनंद इन्द्रगन-वंद हो ॥

जय जय जय श्रीकुंथुदेव, तुम ही ब्रह्मा हरि त्रिंबुकेव
जय बुद्धि विदाँवर विष्णु ईश, जय रमाकांत शिवलोक शीश ॥
जय दया धुरंधर सृष्टिपाल, जय जय जगबंधु सुगुनमाल
सरवारथसिद्धि विमान छार, उपजे गजपुर में गुन अपार ॥

सुरराज कियो गिर न्हैन जाय, आंनद-सहित जुत-भगति भाय
पुनि पिता सौंपि कर मुदितअंग, हरि तांडव-निरत कियो अभंग ॥
पुनि स्वर्ग गयो तुम इत दयाल, वय पाय मनोहर प्रजापाल
षटखंड विभौ भोग्यो समस्त, फिर त्याग जोग धार्यो निरस्त ॥

तब घाति घात केवल उपाय, उपदेश दियो सब हित जिनाय
जा के जानत भ्रम-तम विलाय, सम्यक् दर्शन निर्मल लहाय ॥
तुम धन्य देव किरपा-निधान, अज्ञान-क्षमा-तमहरन भान
जय स्वच्छ गुनाकर शुक्त सुक्त, जयस्वच्छ सुखामृत भुक्तिमुक्त ॥

जय भौभयभंजन कृत्यकृत्य, मैं तुमरो हौं निज भृत्य भृत्य
प्रभु असरन शरन अधार धार, मम विघ्न-तूलगिरि जारजार ॥
जय कुनय यामिनी सूर सूर, जय मन वाँछित सुख पूर पूर
मम करमबंध दिढ़ चूर चूर, निजसम आनंद दे भूर भूर ॥

अथवा जब लों शिव लहौं नाहिं, तब लों ये तो नित ही लहाहिं
भव भव श्रावक-कुल जनमसार, भवभव सतमति सतसंग धार ॥
भव भव निजआतम-तत्त्वज्ञान, भव-भव तपसंयमशील दान
भव-भव अनुभव नित चिदानंद, भव-भव तुमआगम हे जिनंद ॥

भव-भव समाधिजुत मरन सार, भव-भव व्रत चाहौं अनागार
यह मो कों हे करुणा निधान, सब जोग मिले आगम प्रमान ॥
जब लों शिव सम्पति लहौं नाहिं, तबलों मैं इनको नित लहाहिं
यह अरज हिये अवधारि नाथ, भवसंकट हरि कीजे सनाथ ॥

धर्मा

जय दीनदयाला, वरगुनमाला, विरदविशाला सुख आला
मैं पूजौं ध्यावौं शीश नमावौं, देहु अचल पद की चाला

ॐ हीं श्रीकुंथुनाथ जिनेन्द्राय पूर्णर्थं निर्वपामीति स्वाहा

कुंथु जिनेसुर पाद पदम जो प्रानी ध्यावें
अलिसम कर अनुराग, सहज सो निज निधि पावें ॥
जो बांचे सरधहें, करें अनुमोदन पूजा
'वृन्दावन' तिंह पुरुष सद्श, सुखिया नहिं दूजा ॥

इत्याशिवार्दः ॥ पुष्टांजलि क्षिपेत ॥





श्रीअरहनाथ-पूजन

छण्य छंद वीर रस, रूपकालकार

तप तुरंग असवार धार, तारन विवेक कर
 ध्यान शुकल असिधार शुद्ध सुविचार सुबखतर ॥
 भावन सेना, धर्म दशों सेनापति थापे
 रतन तीन धरि सकति, मंत्रि अनुभो निरमापे ॥
 सत्तातल सोहं सुभटि धुनि, त्याग केतु शत अग्र धरि
 इहविध समाज सज राज को, अर जिन जीते कर्म अरि ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

छंद विभंगी अनुप्रासक-मात्रा 32-जगणवर्जित

कनमनिमय ज्ञारी, दृग सुखकारी, सुर सरितारी नीर भरी
 मुनिमन सम उज्ज्वल, जनम जरादल, सो ले पदतल धार करी ॥
 प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
 हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भवताप नशावन, विरद सुपावन, सुनि मन भावन, मोद भयो
 तातैं घसि बावन, चंदनपावन, तुमहिं चढ़ावन, उमगि अयो ॥
 प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
 हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल अनियारे, श्वेत सँवारे, शशिदुति टारे, थार भरे
 पद अखय सुदाता, जगविख्याता, लखि भवत्राता पुंजधरे ॥
 प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
 हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

सुरतरु के शोभित, सुरन मनोभित, सुमन अछोभित ले आयो
मनमथ के छेदन, आप अवेदन, लखि निरवेदन गुन गायो ॥
प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज सज भक्षक प्रासुक अक्षक, पक्षक रक्षक स्वक्ष धरी
तुम करम निकक्षक, भस्म कलक्षक, दक्षक पक्षक रक्ष करी ॥
प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तुम भ्रमतम भंजन मुनिमन कंजन, रंजन गंजन मोह निशा
रवि केवलस्वामी दीप जगामी, तुम ढिग आमी पुण्य दशा ॥
प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशधूप सुरंगी गंध अभंगी वहि वरंगी माहिं हवे
वसुकर्म जरावें धूम उड़ावें, ताँडव भावें नृत्य पवें ॥
प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

रितुफल अतिपावन, नयन सुहावन, रसना भावन, कर लीने
तुम विघ्न विदारक, शिवफलकारक, भवदधि तारक चरचीने ॥
प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

सुचि स्वच्छ पटीरं, गंधगहीरं, तंदुलशीरं, पुष्प-चरुं
 वर दीपं धूपं, आनंदरूपं, ले फल भूपं, अर्घ करुं ॥
 प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
 हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

पंचल्याणक अर्घविली

फागुन सुदी तीज सुखदाई, गरभ सुमंगल ता दिन पाई
 मित्रादेवी उदर सु आये, जजे इन्द्र हम पूजन आये ॥

ॐ ह्रीं फाल्युनशुक्ला तृतीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

मँगसिर शुक्ल चतुर्दशि सोहे, गजपुर जनम भयो जग मोहे
 सुर गुरु जजे मेरु पर जाई, हम इत पूजें मनवचकाई ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला चतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

मंगसिर सित दसमी दिन राजे, ता दिन संजम धरे विराजै
 अपराजित घर भोजन पाई, हम पूजें इत चित हरषाई ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला दशम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक सित द्वादशि अरि चूरे, केवलज्ञान भयो गुन पूरे
 समवसरन तिथि धरम बखाने, जजत चरन हम पातक भाने ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्ला द्वादश्यां ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

चैत कृष्ण अमावसी सब कर्म, नाशि वास किय शिव-थल पर्म
 निहचल गुन अनंत भंडारी, जजौं देव सुधि लेहु हमारी ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाअमावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहा छंद - जमकपद तथा लाटानुबंधन

बाहर भीतर के जिते, जाहर अर दुखदाय
 ता हर कर अर जिन भये, साहर शिवपुर राय

राय सुदरशन जासु पितु, मित्रादेवी माय
हेमवरन तन वरष वर, नवै सहस सुआय

छंद लोटक -- वर्ण 12

जय श्रीधर श्रीकर श्रीपति जी, जय श्रीवर श्रीभर श्रीमति जी
भवभीम भवोदधि तारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
गरभादिक मंगल सार धरे, जग जीवनि के दुखदंद हरे
कुरुवंश शिखामनि तारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं

करि राज छखंड विभूति मई, तप धारत केवलबोध ठई
गण तीस जहाँ भ्रमवारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
भविजीवन को उपदेश दियौ, शिवहेत सबै जन धारि लियौ
जग के सब संकट टारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं

कहि बीस प्ररूपन सार तहाँ, निजशर्म सुधारस धार जहाँ
गति चार हषीपन धारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
षट काय तिजोग तिवेद मथा, पनवीस कषा वसु ज्ञान तथा
सुर संजम भेद पसारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं

रस दर्शन लेश्या भव्य जुगं, षट सम्यक् सैनिय भेद युगं
जुग हारा तथा सु अहारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
गुनथान चतुर्दस मारगना, उपयोग दुवादश भेद भना
इमि बीस विभेद उचारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं

इन आदि समस्त बखान कियो, भवि जीवनि ने उर धार लियौ
कितने शिववादिन धारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
फिर आप अघाति विनाश सबै, शिवधाम विषें थित कीन तबै
कृतकृत्य प्रभू जगतारन हैं अरनाथ नमौं सुखकारन हैं

अब दीनदयाल दया धरिये, मम कर्म कलंक सबै हरिये

तुमरे गुन को कछु पार न है, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं

धत्ता

जय श्रीअरदेवं, सुरकृतसेवं समताभेवं, दातारं
अरिकर्म विदारन, शिवसुखकारन, जयजिनवर जग त्रातारं ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

अर जिन के पदसारं, जो पूजै द्रव्य भाव सों प्राणी
सो पावै भवपारं, अजरामर मोक्षथान सुखखानी ॥

इत्याशिर्वदः ॥ पुष्ट्यंजलि क्षिपेत् ॥



श्रीमल्लिनाथ-पूजन

अपराजित तें आय नाथ मिथलापुर जाये
कुंभराय के नन्द, प्रभावति मात बताये ॥
कनक वरन तन तुंग, धनुष पच्चीस विराजे
सो प्रभु तिष्ठु आय निकट मम ज्यों भ्रम भाजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वष्ट सत्रिधि करणं

सुर-सरिता-जल उज्ज्वल ले कर, मनिभृंगार भराई
जनम जरामृतु नाशन कारन, जजहूं चरन जिनराई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावनचंदन कदली नंदन, कुंकुमसंग घिसायो
लेकर पूजौं चरनकमल प्रभु, भवआताप नसायो ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा

यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल शशिसम उज्ज्वल लीने, दीने पुंज सुहाई
नाचत गावत भगति करत ही, तुरित अखैपद पाई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मंदार सुमन, संतान जनित महकाई
मार सुभट मद भंजनकारन, जजहुं तुम्हें शिरनाई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

फेनी गोझा मोदन मोदक, आदिक सद्य उपाई
सो लै छुधा निवारन कारन जजहुं चरन लवलाई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तिमिरमोह उरमंदिर मेरे, छाय रह्यो दुखदाई
तासु नाश कारन को दीपक, अद्भुत जोति जगाई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागर चंदन चूरि सुगंध बनाई
अष्टकरम जारन को तुम ढिग, खेवत हौं जिनराई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा

यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल लौंग बदाम छुहारा, एला केला लाई
मोक्ष महाफल दाय जानिके, पूजै मन हरखाई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल अरघ मिलाय गाय गुन, पूजौं भगति बढ़ाई
शिवपदराज हेत हे श्रीधर, शरन गहो मैं आई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घावली

चैत की शुद्ध एकैं भली राजई, गर्भकल्यान कल्यान को छाजई
कुंभराजा प्रभावति माता तने, देवदेवी जजे शीश नाये घने ॥

ॐ ह्रीं चैतशुक्लाप्रतिपदायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

मार्गशीर्ष सुदी ग्यारसी राजई, जन्मकल्यान को द्यौस सो छाजई
इन्द्र नागेंद्र पूजें गिरिंद जिन्हें, मैं जजौं ध्याय के शीश नावौं तिन्हें ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष-शुक्लकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

मार्गशीर्ष सुदीग्यारसीके दिना, राजको त्याग दीच्छा धरी है जिना
दान गोछीरको नन्दसेने दयो, मैं जजौं जासु के पंच अचरज भयो ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष-शुक्लकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

पौष की श्याम दूजी हने घातिया, केवलज्ञानसाम्राज्यलक्ष्मी लिया
धर्मचक्री भये सेव शक्री करें, मैं जजौं चर्न ज्यों कर्म वक्री टरें ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णाद्वितीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

फाल्गुनी सेत पांचैं अघाती हते, सिद्ध आलै बसै जाय सम्मेदतें
इन्द्रनागेंद्र कीन्ही क्रिया आयके, मैं जजौं शिव मही ध्यायके गायके ॥

जयमाला

धत्ता

तुअ नमित सुरेशा, नर नागेशा, रजत नगेशा भगति भरा
भवभयहरनेशा, सुखभरनेशा, जै जै जै शिवरमनिवरा ॥

जय शुद्ध चिदात्म देव एव, निरदोष सुगुन यह सहज टेव
जय भ्रमतम भंजन मारतंड, भवि भवदधि तारन को तरंड ॥
जय गरभ जनम मंडित जिनेश, जय छायक समकित बुद्धभेस
चौथे किय सातों प्रकृतिछीन, चौ अनंतानु मिथ्यात तीन ॥

सातंय किय तीनों आयु नास, फिर नवें अंश नवमें विलास
तिन माहिं प्रकृति छत्तीस चूर, या भाँति कियो तुम ज्ञानपूर ॥
पहिले महं सोलह कहँ प्रजाल, निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचाल
हनि थानगृद्धि को सकल कुब्ब, नर तिर्यग्गति गत्यानुपुब्ब ॥

इक बे ते चौ इन्द्रीय जात, थावर आतप उद्योत घात ॥
सूच्छम साधारन एक चूर, पुनि दुतिय अंश वसु कर्यो दूर
चौ प्रत्याप्रत्याख्यान चार, तीजे सु नपुंसक वेद टार ॥
चौथे तियवेद विनाशकीन, पांचें हास्यादिक छहों छीन

नर वेद छठें छय नियत धीर, सातयें संज्वलन क्रोध चीर ॥
आठवें संज्वलन मान भान, नवमें माया संज्वलन हान
इमि घात नवें दशमें पधार, संज्वलन लोभ तित हू विदार ॥
पुनि द्वादशके द्वय अंश माहिं, सोलह चकचूर कियो जिनाहिं

निद्रा प्रचला इक भाग माहिं, दुति अंश चतुर्दश नाश जाहिं ॥
ज्ञानावरनी पन दरश चार, अरि अंतराय पांचो प्रहार ॥
इमि छय त्रेशठ केवल उपाय, धरमोपदेश दीन्हों जिनाय

नव केवललब्धि विराजमान, जय तेरमगुन तिथि गुनअमान ॥

गत चौदहमें द्वै भाग तत्र, क्षय कीन बहत्तर तेरहत्र
वेदनी असाता को विनाश, औदारि विक्रियाहार नाश ॥
तैजस्य कारमानों मिलाय, तन पंच पंच बंधन विलाय
संघात पंच घाते महंत, त्रय अंगोपांग सहित भनंत ॥

संठान संहनन छह छहेव, रसवरन पंच वसु फरस भेव
जुग गंध देवगति सहित पुव्व, पुनि अगुरुलघु उस्वास दुव्व ॥
परउपधातक सुविहाय नाम, जुत असुभगमन प्रत्येक खाम
अपरज थिर अथिर अशुभ सुभेव, दुरभाग सुसुर दुस्सुर अभेव ॥

अन आदर और अजस्य कित्त, निरमान नीचे गोतौ विचित्त
ये प्रथम बहत्तर दिय खपाय, तब दूजे में तेरह नशाय ॥
पहले सातावेदनी जाय, नर आयु मनुषगति को नशाय
मानुष गत्यानु सु पूरवीय, पंचेंद्रिय जात प्रकृति विधिय ॥

त्रसवादर पर्जपति सुभाग, आदरजुत उत्तम गोत पाग
जसकीरती तीरथप्रकृति जुक्त, ए तेरह छ्यकरि भये मुक्त ॥
जय गुनअनंत अविकार धार, वरनत गनधर नहिं लहत पार
ताकों मैं वंदौं बार बार, मेरी आपत उद्धार धार ॥

सम्मेदशैल सुरपति नमंत, तब मुकतथान अनुपम लसंत
'वृन्दावन' वंदत प्रीति-लाय, मम उर में तिष्ठु हे जिनाय ॥

धर्ता

जय जय जिनस्वामी, त्रिभुवननामी, मल्लि विमल कल्यानकरा
भवदंदविदारन आनंद कारन, भविकुमोद निशीईश वरा

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथ जिनेन्द्राय महार्थ निर्वपामीति स्वाहा

जजें हैं जो प्रानी दरब अरु भावादि विधि सों,

करै नाना भाँति भगति थुति औ नौति सुधि सों
लहै शक्री चक्री सकल सुख सौभाग्य तिनको,
तथा मोक्ष जावे जजत जन जो मल्लिजिन को ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्ट्यांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीमुनिसुव्रतनाथ-पूजन

प्रानत स्वर्ग विहाय लियो जिन, जन्म सु राजगृहीमहँ आई
श्री सुहमित्त पिता जिनके, गुनवान महापदमा जसु माई ॥
बीस धनू तनु श्याम छवी, कछु अंक हरी वर वंश बताई
सो मुनिसुव्रतनाथ प्रभू कहँ थापतु हौं इत प्रीत लगाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल सुजल जिमि जस तिहांरो, कनक झारीमें भरौं
जरमरन जामन हरन कारन, धार तुम पदतर करौं ॥
शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भवतापघायक शान्तिदायक, मलय हरि घसि ढिग धरौं
गुनगाय शीस नमाय पूजत, विघनताप सबैं हरौं ॥
शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल अखण्डित दमक शशिसम, गमक जुत थारी भरौं
पद अखयदायक मुकति नायक, जानि पद पूजा करौं ॥

शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान निर्वपामीति स्वाहा

बेला चमेली रायबेली, केतकी करना सरौं
जगजीत मनमथहरन लखि प्रभु, तुम निकट ढेरी करौं ॥
शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान विविध मनोज्ज पावन, सरस मृदुगुन विस्तरौं
सो लेय तुम पदतर धरत ही छुधा डाइन को हरौं ॥
शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक अमोलिक रतन मणिमय, तथा पावन घृत भरौं
सो तिमिर मोहविनाश आतम भास कारण ज्वै धरौं ॥
शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर चन्दन चूर भूर, सुगन्ध पावक में धरौं
तसु जरत जरत समस्त पातक, सार निज सुख को भरौं ॥
शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल अनार सु आम आदिक पक्फल अति विस्तरौं
सो मोक्ष फल के हेत लेकर, तुम चरण आगे धरौं ॥

शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलगंध आदि मिलाय आठों दरब अरघ सजौं वरौं
पूजौं चरन रज भगतिजुत, जातें जगत सागर तरैं ॥
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन तरन, विरद विशाल हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंचल्याणक अध्यावली

तिथि दोयज सावन श्याम भयो, गरभागम मंगल मोद थयो
हरिवृन्द सची पितु मातु जजें, हम पूजत ज्यौं अघ ओघ भजें ॥

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णा द्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

बैसाख बदी दशमी वरनी, जनमे तिहिं द्योस त्रिलोकधनी
सुरमन्दिर ध्याय पुरन्दर ने, मुनिसुव्रतनाथ हमैं सरनै ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णा दशम्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर ने गहियो, वैशाख बदी दशमी कहियो
निरुपाधि समाधि सुध्यावत हैं, हम पूजत भक्ति बढ़ावत हैं ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णा दशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

वर केवलज्ञान उद्योत किया, नवमी वैसाख बदी सुखिया
धनि मोहनिशाभनि मोखमगा, हम पूजि चहैं भवसिन्धु थगा ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णानवम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

वदि बारसि फागुन मोच्छ गये, तिहुं लोक शिरोमणी सिद्ध भये
सु अनन्त गुनाकर विघ्न हरी, हम पूजत हैं मनमोद भरी ॥

ॐ ह्रीं फालुनकृष्णा द्वादश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

मुनिगण नायक मुक्तिपति, सूक्त व्रताकर युक्त
भुक्ति मुक्ति दातार लखि, वन्दौं तन-मन युक्त

जय केवल भान अमान धरं, मुनि स्वच्छ सरोज विकास करं
भव संकट भंजन लायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥

घनधात वनं दवदीप्त भनं, भविबोध तृष्णातुर मेघधनं
नित मंगलवृन्द वधायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥

गरभादिक मंगलसार धरे, जगजीवन के दुखदंद हरे
सब तत्त्व प्रकाशन नायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥
शिवमारग मण्डन तत्त्व कह्यो, गुनसार जगत्रय शर्म लह्यो
रुज रागरू दोष मिटायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥

समवस्त्र में सुरनार सही, गुनगावत नावत भाल मही
अरु नाचत भक्ति बढ़ायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥
पग नूपुर की धुनि होत भनं, झननं झननं झननं झननं
सुरलेत अनेक रमायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥

घननं घननं घन घंट बजें, तननं तननं तनतान सजें
द्वमद्वम मिरदंग बजायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥
छिन में लघु औ छिन थूल बनें, जुत हावविभाव विलासपने
मुखतें पुनि यों गुनगायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥

धृगतां धृगतां पग पावत हैं, सननं सननं सु नचावत हैं
अति आनन्द को पुनि पायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥
अपने भव को फल लेत सही, शुभ भावनि तें सब पाप दही
तित तैं सुख को सब पायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥

इन आदि समाज अनेक तहाँ, कहि कौन सके जु विभेद यहाँ
धनि श्री जिनचन्द सुधायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥
पुनि देश विहार कियो जिन ने, वृष अमृतवृष्टि कियो तुमने
हमको तुमरी शरनायक है, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥

हम पै करुनाकरि देव अबै, शिवराज समाज सु देहु सबै
जिमि होहुं सुखाश्रम नायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥
भवि वृन्दतनी विनती जु यही, मुझ देहु अभयपद राज सही
हम आनि गही शरनायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं ॥

धता

जय गुनगनधारी, शिवहितकारी, शुद्धबुद्ध चिद्रूप पती
परमानंददायक, दास सहायक, मुनिसुव्रत जयवंत जती ॥

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीमुनिसुव्रत के चरन, जो पूजें अभिनन्द
सो सुरनर सुख भोगि के, पावें सहजानन्द ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीनमिनाथ-पूजन
श्री नमिनाथ जिनेन्द्र नमौं विजयारथ नन्दन
विख्यादेवी मातु सहज सब पाप निकन्दन ॥
अपराजित तजि जये मिथिलापुर वर आनन्दन
तिन्हें सु थापौं यहाँ त्रिधा करि के पदवन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं



सुरनदी जल उज्ज्वल पावनं, कनक भृंग भरौं मन भावनं

जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीनमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिमलय मिलि केशर सों घसौं, जगतनाथ भवातप को नसौं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीनमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

गुलक के सम सुन्दर तंदुलं, धरत पुञ्जसु भुंजत संकुलं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतुकी बेलि सुहावनी, समरसूल समस्त नशावनी
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीनमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्णं निर्वपामीति स्वाहा

शशि सुधासम मोदक मोदनं, प्रबल दुष्ट छुधामद खोदनं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीनमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि घृताश्रित दीपक जोइया, असम मोह महातम खोइया
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोहाम्बकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अमरजिह्व विषें दशगंध को, दहत दाहत कर्म के बंधको
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूंपं निर्वपामीति स्वाहा

फलसुपक्ष मनोहर पावने, सकल विघ्न समुह नशावने
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फलादि मिलाय मनोहरं, अरघ धारत ही भवभय हरं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पंच कल्याणक अर्थावली

गरभागम मंगलचारा, जुग आश्विन श्याम उदारा
हरि हर्षि जजे पितुमाता, हम पूजें त्रिभुवन-त्राता ॥

ॐ ह्रीं आश्विनकृष्णा द्वितीयां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जनमोत्सव श्याम असाढ़ा, दशमी दिन आनन्द बाढ़ा
हरि मन्दर पूजे जाई, हम पूजें मन वच काई ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णा दशम्यां जनमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर धारा, दशमी कलि षाढ़ उदारा
निज आतम रस झर लायो, हम पूजत आनन्द पायो ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णा दशम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

सित मंगसिर ग्यारस चूरे, चव घाति भये गुण पूरे
समवस्त केवलधारी, तुमको नित नौति हमारी ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

वैसाख चतुर्दशि श्यामा, हनि शेष वरी शिव वामा
सम्मेद थकी भगवन्ता, हम पूजें सुगुन अनन्ता ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णा चतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाता

आयु सहस दश वर्ष की, हेम वरन तनसार
धनुष पंचदश तुंग तनु, महिमा अपरम्पार

जय जय जय नमिनाथ कृपाला, अरिकुल गहन दहन दवज्वाला
जय जय धरम पयोधर धीरा, जय भव भंजन गुन गम्भीरा
जय जय परमानन्द गुनधारी, विश्व विलोकन जनहितकारी
अशरन शरन उदार जिनेशा, जय जय समवशरन आवेशा

जय जय केवल ज्ञान प्रकाशी, जय चतुरानन हनि भवफांसी
जय त्रिभुवनहित उद्यम वंता, जय जय जय जय नमि भगवंता
जै तुम सप्त तत्त्व दरशायो, तास सुनत भवि निज रस पायो
एक शुद्ध अनुभव निज भाखे, दो विधि राग दोष छै आखे

दो श्रेणी दो नय दो धर्म, दो प्रमाण आगमगुन शर्म
तीनलोक त्रयजोग तिकालं, सल्ल पल्ल त्रय वात वलायं
चार बन्ध संज्ञागति ध्यानं, आराधन निछेप चउ दानं
पंचलब्धि आचार प्रमादं, बंध हेतु पैताले सादं

गोलक पंचभाव शिव भौनें, छहों दरब सम्यक अनुकौने
हानिवृद्धि तप समय समेता, सप्तभंग वानी के नेता
संयम समुद्घात भय सारा, आठ करम मद सिध-गुन धारा
नवों लबधि नवतत्त्व प्रकाशे, नोकषाय हरि तूप हुलाशे

दशों बन्ध के मूल नशाये, यों इन आदि सकल दरशाये
फेर विहरि जगजन उद्धारे, जय जय ज्ञान दरश अविकारे
जय वीरज जय सूक्ष्मवन्ता, जय अवगाहन गुण वरनंता
जय जय अगुरुलघू निरबाधा, इन गुनजुत तुम शिवसुख साधा

ता कों कहत थके गनधारी, तौ को समरथ कहे प्रचारी
ता तैं मैं अब शरने आया, भवदुख मेटि देहु शिवराया
बार-बार यह अरज हमारी, हे त्रिपुरारी हे शिवकारी ॥
पर-परणति को वेगि मिटावो, सहजानन्द स्वरूप भिटावो

'वृन्दावन' जांचत शिरनाई, तुम मम उर निवसो जिनराई
जब लों शिव नहिं पावौं सारा, तब लों यही मनोरथ म्हारा

धरा

जय जय नमिनाथं हो शिवसाथं, औ अनाथ के नाथ सदम

ता तें शिर नायौ, भगति बढ़ायो, चीहू चिह्न शत पत्र पदम

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

श्री नमिनाथ तने जुगल, चरन जजें जो जीव
सो सुर नर सुख भोगकर, होवें शिवतिय पीव ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीनमिनाथ-पूजन

जय श्री नमीनाथ तीर्थकर बाल ब्रह्मचारी भगवान ।
हे जिनराज परम उपकारी करुणा सागर दया निधान ॥
दिव्यध्वनि के द्वारा हे प्रभु तुमने किया जगत कल्याण ।
श्री गिरनार शिखर से पाया तुमने सिद्ध स्वरूप निर्वाण ॥
आज तुम्हारे दर्शन करके निज स्वरूप का आया ध्यान ।
मेरा सिद्ध समान सदा पद यह दृढ़ निश्चय हुआ महान ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्नानं

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

समकित जल की धारा से तो मिथ्याभ्रम धुल जाता है ।
तत्त्वों का श्रद्धान स्वयं को शाश्वत मंगल दाता है ॥
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

सम्यक् श्रद्धा का पावन चन्दन भव-ताप मिटाता है ।
क्रोध-कषाय नष्ट होती है निज की अरुचि हटाता है ॥
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

भाव शुभाशुभ का अभिमानी मान कषाय बढ़ाता है ।
वस्तु स्वभाव जान जाता तो मान-कषाय मिटाता है ॥
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

चेतन छल से पर भावों का माया जाल बिछाता है ।
भव-भव की माया-कषाय को समकित पुष्प मिटाता है ॥
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

तृष्णा की ज्वाला से लोभी कभी नहीं सुख पाता है ।
सम्यक् चरु से लोभ नाशकर यह शुचिमय हो जाता है ॥
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्धकार अज्ञान जगत में भव-भव भ्रमण कराता है।
समकित दीप प्रकाशित हो तो ज्ञान-नेत्र खुल जाता है ॥
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीर्घं निर्वपामीति स्वाहा

पर विभाव परिणति में फंसकर निज का धुआँ उड़ाता है ।
निज स्वरूप की गन्ध मिले तो पर की गन्ध जलाता है ॥
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

निज स्वभाव फल पाकर चेतन महामोक्ष फल पाता है।
 चहुँगति के बंधन कटते हैं सिद्ध स्वरूप पा जाता है ॥
 नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
 वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फलादि वसु द्रव्य अर्थ से लाभ न कुछ हो पाता है ।
 जब तक निज स्वभाव में चेतन मग्न नहीं हो जाता है ॥
 नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन ।
 वीतराग तीर्थकर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्पाणक अध्यावली

कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन शिव देवी उर धन्य हुआ ।
 अपराजित विमान से चयकर आये मोद अनन्य हुआ ॥
 स्वप्न फलों को जान सभी के मन में अति आनन्द हुआ ।
 नेमिनाथ स्वामी का गर्भोत्सव मंगल सम्पन्न हुआ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लाष्ट्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन शौर्यपुरी में जन्म हुआ ।
 नृपति समुद्रविजय आँगन में सुर सुरपति का नृत्य हुआ ॥
 मेरु सुदर्शन पर क्षीरोदधि जल से शुभ अभिषेक हुआ ।
 जन्म महोत्सव नेमिनाथ का परम हर्ष अतिरेक हुआ ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाष्ट्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

श्रावण शुक्ल षष्ठी को प्रभु पशुओं पर करुणा आई ।
 राजमती तज सहस्राम्र वन में जा जिन दीक्षा पाई ॥
 इंद्रादिक ने उठा पालकी हर्षित मंगलाचार किया ।
 नेमिनाथ प्रभु के तपकत्याणक पर जय जयकार किया ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाष्ट्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

आश्विन शुक्ला एकम को प्रभु हुआ ज्ञान कल्याण महान ।
उर्जयंत पर समवशरण में दिया भव्य उपदेश प्रधान ॥
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी, मोहनीय का नाश किया ।
नेमिनाथ ने अन्तराय क्षयकर कैवल्य प्रकाश लिया ॥

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाप्रतिपदात्माय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

श्री गिरनार क्षेत्र पर्वत से महामोक्ष पद को पाया ।
जगती ने आषाढ़ शुक्ल सप्तमी दिवस मंगल गाया ॥
वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म अवसान किया ।
अष्टकर्म हर नेमिनाथ ने परम पूर्ण निर्वाण लिया ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाता

जय नेमिनाथ नित्योदित जिन, जय नित्यानन्द नित्य चिन्मय ।
जय निर्विकल्प निश्चल निर्मल, जय निर्विकार नीरज निर्भय ॥
नृपराज समुद्रविजय के सुत माता शिवा देवी के नन्दन ।
आनन्द शौर्यपुरी में छाया जय जय से गूँजा पाण्डुक वन ॥

बालकपन में क्रीड़ा करते तुमने धारे अणुव्रत सुखमय ।
द्वारिकापुरी में रहे अवस्था पाई सुन्दर यौवन वय ॥
आमोद-प्रमोद तुम्हारे लख पूरा यादवकुल हर्षता ।
तब श्रीकृष्ण नारायण ने जूनागढ़ से जोड़ा नाता ॥

राजुल से परिणय करने को जूनागढ़ पहुँचे वर बनकर ।
जीवों की करुण पुकार सुनी जागा उर में वैराग्य प्रखर ॥
पशुओं को बन्धन मुक्त किया कंगन विवाह का तोड़ दिया ।
राजुल के द्वारे आकर भी स्वर्णिम रथ पीछे मोड़ लिया ॥

रथत्याग चढ़े गिरनारी पर जा पहुँचे सहस्राम्र वन में ।
वस्त्राभूषण सब त्याग दिये जिन दीक्षाधारी तनमन में ॥
फिर उग्र तपश्या के द्वारा निश्चय स्वरूप मर्मज्ञ हुए ।

घातिया कर्म चारों नाशे छप्पन दिन में सर्वज्ञ हुए ॥

तीर्थकर प्रकृति उदय आई सुरहर्षित समवशरण रचकर ।
प्रभु गंधकुटि में अंतरीक्ष आसीन हुए पद्मासन धर ॥
ग्यारह गणधर में थे पहले गणधर वरदत्त महाऋर्षिवर ।
श्री मुख्य आर्यिका राजमती श्रोता थे अगणित भव्यप्रवर ॥

दिव्यधनि खिरने लगी शाश्वत ओंकार घन गर्जन सी ।
शुभ बारहसभा बनी अनुपम सौंदर्यप्रभा मणि कंचनसी ॥
जगजीवों का उपकार किया भव्यों को शिवपथ बतलाया ।
निश्चय रत्नत्रय की महिमा का परम मोक्षफल दर्शया ॥

कर प्राप्त चतुर्दश गुणस्थान योगों का पूर्ण अभाव किया ।
कर उर्ध्वगमन सिद्धत्व प्राप्तकर सिद्धलोक आवास लिया ॥
गिरनार शैल से मुक्त हुए तन के परमाणु उड़े सारे ।
पावन मंगल निर्वाण हुआ सुरगण के गूंजे जयकारे ॥

नखकेश शेष थे देवों ने माया मय तन निर्माण किया ।
फिर अग्निकुमार सुरों ने आकर मुकुटानल से तन भस्म किया ॥
पावन भस्मि का निज-निज के मस्तक पर सब ने तिलक किया ।
मंगल वाद्यों की धनि गूंजी निर्वाण महोत्सव पूर्ण किया ॥

कर्मों के बन्धन टूट गये पूर्णत्व प्राप्त कर सुखी हुए ।
हम तो अनादि से हे स्वामी भव दुख बंधन से दुखी हुए ॥
ऐसा अन्तरबल दो स्वामी हम भी सिद्धत्व प्राप्त करलें ।
तुम पद-चिह्नों पर चल प्रभुवर शुभ-अशुभ विभावों को हर लें ॥

ध्रुव भाव शुद्ध का अर्चनकर हम अन्तर्धर्णी बन जावें ।
घातिया चार कर्मों को हर हम केवलज्ञानी बन जावें ॥
शाश्वत शिवपद पाने स्वामी हम पास तुम्हारे आ जायें ।
अपने स्वभाव के साधन से हम तीन लोक पर जय पायें ॥

निज सिद्ध स्वपद पाने को प्रभु हर्षित चरणों में आया हूँ ।
वसु द्रव्य सजाकर नेमीश्वर प्रभु पूर्ण अर्ध मैं लाया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

शंख चिन्ह चरणों में शोभित जयजय नेमि जिनेश महान ।
मन वच तन जो ध्यान लगाते वे हो जाते सिद्ध समान ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्टाजलिं क्षिपेत ॥



श्रीनेमिनाथ-पूजन

जैतिजै जैतिजै जैतिजै नेमकी, धर्म औतार दातार श्यौचैनकी
श्री शिवानंद भौफंद निकन्द, ध्यावें जिन्हें इन्द्र नागेन्द्र ओ मैनकी ॥
परमकल्यान के देनहारे तुम्हीं, देव हो एव तातें करौं एनकी
थापि हौं वार त्रै शुद्ध उच्चार के, शुद्धताधार भवपार कूं लेन की ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्नानं

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥टेक ॥
गंग नदी कुश प्राशुक लीनो, कंचन भूंग भराय
मन वच तन तें धार देत ही, सकल कलंक नशाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचन्दनजुत कदलीनन्दन, कुंकुम संग घिसाय
विघ्न ताप नाशन के कारन, जजौं तिहारे पाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यराशि तुमजस सम उज्ज्वल, तंदुल शुद्ध मंगाय
अखय सौख्य भोगन के कारन, पुंज धरौं गुन गाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुण्डरीक सुरद्रुम करनादिक, सुगम सुगंधित लाय
दर्पक मनमथ भंजनकारन, जजहुं चरन लवलाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर खाजे साजे, ताजे तुरत मँगाय
क्षुधा-वेदनी नाश करन को, जजहुं चरन उमगाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कनक दीप नवनीत पूरकर, उज्ज्वल जोति जगाय
तिमिर मोह नाशक तुम को लखि, जजहुं चरन हुलसाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोहास्थकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविध गंध मँगाय मनोहर, गुंजत अलिगन आय
दशों बंध जारन के कारन, खेवौं तुम ढिंग लाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस वरन रसना मन भावन, पावन फल सु मंगाय
मोक्ष महाफल कारन पूजौं, हे जिनवर तुम पाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय
अष्टम छिति के राज कारन को, जजौं अंग वसु नाय
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्पाणक अध्यावली

सित कातिक छटु अमंदा, गरभागम आनन्दकन्दा
शचि सेय शिवापद आई, हम पूजत मनवचकाई ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लाष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित सावन छटु अमन्दा, जनमे त्रिभुवन के चन्दा
पितु समुन्द्र महासुख पायो, हम पूजत विघ्न नशायो ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाष्ठ्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तजि राजमती व्रत लीनो, सित सावन छटु प्रवीनो
शिवनारि तबै हरषाई, हम पूजैं पद शिर नाई ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाष्ठ्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित आश्विन एकम चूरे, चारों घाती अति कूरे
लहि केवल महिमा सारा, हम पूजैं अष्ट प्रकारा ॥

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाप्रतिपदायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सितषाढ़ सप्तमी चूरे, चारों अघातिया कूरे
शिव ऊर्जयन्त तें पाई, हम पूजैं ध्यान लगाई ॥

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्याम छवी तनु चाप दश, उन्नत गुननिधिधाम
शंख चिह्न पद में निखरि, पुनि-पुनि करौं प्रनाम ॥

जै जै जै नेमि जिनिंद चन्द, पितु समुद देन आनन्दकन्द
 शिवमात कुमुदमन मोददाय, भविवृन्द चकोर सुखी कराय ॥
 जयदेव अपूरव मारतंड, तुम कीन ब्रह्मसुत सहस खंड
 शिवतिय मुखजलज विकाशनेश, नहिं रह्यो सृष्टि में तम अशेष ॥

भवभीत कोक कीनों अशोक, शिवमग दरशायो शर्म थोक
 जै जै जै जै तुम गुनगँभीर, तुम आगम निपुन पुनीत धीर ॥
 तुम केवल जोति विराजमान, जै जै जै करुना निधान
 तुम समवसरन में तत्वभेद, दरशायो जातें नशत खेद ॥

तित तुमको हरि आनंदधार, पूजत भगतीजुत बहु प्रकार
 पुनि गद्यपद्यमय सुजस गाय, जै बल अनंत गुनवंतराय ॥
 जय शिवशंकर ब्रह्मा महेश, जय बुद्ध विधाता विष्णुवेष
 जय कुमतिमतंगन को मृगेंद्र, जय मदनध्वांत को रवि जिनेंद्र ॥

जय कृपासिंधु अविरुद्ध बुद्ध, जय रिद्धिसिद्धि दाता प्रबुद्ध
 जय जगजन मनरंजन महान, जय भवसागरमंह सुष्टुयान ॥
 तुव भगति करें ते धन्य जीव, ते पावैं दिव शिवपद सदीव
 तुमरो गुनदेव विविध प्रकार, गावत नित किन्नर की जु नार ॥

वर भगति माहिं लवलीन होय, नाचें ताथई थई थई बहोय
 तुम करुणासागर सृष्टिपाल, अब मोको वेगि करो निहाल ॥
 मैं दुख अनंत वसुकरमजोग, भोगे सदीव नहिं और रोग
 तुम को जगमें जान्यो दयाल, हो वीतराग गुन रतन माल ॥

तातें शरना अब गही आय, प्रभु करो वेगि मेरी सहाय
 यह विघ्नकरम मम खंड खंड, मनवांछित कारज मंडमंड ॥
 संसार कष्ट चकचूर चूर, सहजानन्द मम उर पूर पूर
 निजपर प्रकाशबुधि दई दई, तजि के विलंब सुधि लई लई ॥

हम याचतु हैं यह बार बार, भवसागर तें मो तार तार
नहिं सह्यो जात यह जगत दुःख, तातैं विनवौं हे सुगुनमुक्ख ॥

धर्मा

श्रीनेमिकुमारं जितमदमारं, शीलागारं सुखकारं
भवभयहरतारं, शिवकरतारं, दातारं धर्माधारं

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मालिनी – १४ वर्ष

सुख धन जस सिद्धि पुत्र पौत्रादि वृद्धी
सकल मनसि सिद्धि होतु है ताहि रिद्धि ॥
जजत हरषधारी नेमि को जो अगारी
अनुक्रम अरिजारी सो वरे मोक्षनारी ॥

इत्याशिवादः ॥ पुष्टांजलि क्षिपेत् ॥



श्रीपार्वनाथ-पूजन



गीता छन्द

वर स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा सुत भये
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये ॥
नव हाथ उन्नत तन विराजै, उरग लच्छन पद लसैं
थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठो करम मेरे सब नसैं ॥

अन्वयार्थ : पार्वनाथ जिनेश्वर (भगवान्) [वर] श्रेष्ठ प्राणत स्वर्ग को [विहाय] छोड़कर माता वामा देवी और अश्वसेन के [स्तूप] पुत्र हुए । जिनके चरणों की वंदना [सुर] देवताओं ने करी थी । उनका [तन] शरीर नौ हाथ [उन्नत] ऊँचा [विराजै] सुशोभित था । उनके [पद] पैर में [उरग] सर्प का [लच्छन] चिह्न [लसैं] सुशोभित था । हे जिनेन्द्र भगवान् में आपकी यहाँ स्थापना करता हूँ आप यहाँ आकर [तिष्ठो] विराजमान होइये (जिससे मैं आपकी पूजा करूँ और) मेरे सब कर्म नष्ट हो जायें ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीपार्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीपार्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

चामर छन्द

क्षीरसोम के समान अम्बुसार लाइये,
हेमपात्र धारि के सु आपको चढ़ाइये ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : [क्षीर] दूध के अथवा [सोम] चंद्रमा के समान सफेद [सार] श्रेष्ठ [अम्बु] जल को [हेम] स्वर्ण [पात्र] कलश में [धारि] लेकर आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये,
आप चरण चर्च मोह-ताप को हनीजिये ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : मैं चंदन, केशर आदि सुगंधित वस्तुएँ लेकर आपके चरणों की पूजा करता हूँ, आप मोह (राग द्वेष) की [ताप] अग्नि को [हनीजिये] नष्ट कर दीजिए ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

फेन, चंद्र के समान अक्षतान् लाइके,
चर्न के समीप सार पुंज को रचाइके ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : दूध के [फेन] झाग या चंद्रमा के समान श्वेत स्वच्छ चावलों के श्रेष्ठ पुंजों को बनाकर । आपके [चर्न] चरणों के समीप हे पार्श्वनाथ भगवान्, मैं आपकी सदा सेवा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइके,
धार चर्न के समीप काम को नशाइके ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : केवड़ा, गुलाब और केतकी के फूलों को चुन-चुन कर लाकर आपके चरणों के समीप, मेरे काम बाण को नष्ट करने के लिए रख रहा हूँ, आप उसे नष्ट कर दीजिये ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

घेरादि बावरादि मिष्ट सद्य में सने,

आप चर्न चर्चते क्षुधादि रोग को हने ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : धेवर, बावर/ईमरती (मिठाई) आदि [सद्य] धी में [सने] बना कर [मिष्ट] चाशनी में डालकर आपके चरणों की पूजा करने से क्षुधा आदि रोग नष्ट हो जायेगे ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

लाय रत्न दीप को सनेह पूर के भरुं,
वातिका कपूर बारि मोह ध्वांत को हरुं ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : मोह रुपी [ध्वान्त] अन्धकार को क्षय करने के लिए, रत्न के दीपक को [सनेह पूर] धी से पूरा भरकर, कपूर की बत्ती से जला कर, आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप गंध लेय के सुअग्निसंग जारिये,
तास धूप के सुसंग अष्टकर्म बारिये ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : सुगन्धित धूप लेकर अग्नि के साथ जलाता हूँ [तासु] उस धूप के संग अष्ट कर्मों को [बारिये] नष्ट करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

खारिकादि चिरभटादि रत्न थाल में भरुं,
हर्ष धारिके जजूं सुमोक्ष सौख्य को वरुं ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : [खारिका] छुआरा आदि, [चिरभटा] ककड़ी आदि को रत्न के थाल में भरकर लाया हूँ । आपकी पूजा प्रफुल्लित होकर हर्षो-उल्लास पूर्वक मोक्ष सुख के वरण (प्राप्ति) के लिए करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

नीर गंध अक्षतान पुष्प चारु लीजिये
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तैं जजीजिये ॥

पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा, दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धुप और फल आदि का अर्घ बनाकर मैं आपकी [जजीजिये] पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यविली

शुभप्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये वैशाख तनी दुतकारी, हम पूजें विघ्न निवारी ॥

अन्वयार्थ : आप शुभ प्राणत स्वर्ग को [विहाय] छोड़कर वामा माता के [उर] पेट में वैशाख [कारी] कृष्ण [दुति] द्वितिया को आये थे। हम विघ्नों के निवारण के लिए आप (भगवान् पार्श्वनाथ जी) की पूजा करते हैं।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णाद्वितीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता श्यामा तन अद्भुत राजै, रवि कोटिक तेज सु लाजै ॥

अन्वयार्थ : तीनों लोक के सुख-दाता, त्रिलोक-नाथ का जन्म प्रसिद्ध पौष कृष्ण एकादशि को हुआ था। आपका काले वर्ण का शरीर अत्यंत सुशोभित हो रहा था, उसका प्रकाश करोड़ों सूर्य के प्रकाश को भी लज्जित कर रहा था।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णा एकादश्यांजन्मगंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कलि पौष एकादशि आई, तब बारह भावन भाई अपने कर लौंच सु कीना, हम पूजैं चरन जजीना ॥

अन्वयार्थ : पौष कृष्ण एकादशि को आपने १२ भावनाओं को भाया। अपने हाथों से केश-लौंच कर दिक्षा धारण करी, हम आपके पूज्य चरणों की [जजीना] अर्चना करते हैं।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णा एकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवल ज्ञान उपाई तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना ॥

अन्वयार्थ : चैत कृष्ण चतुर्थी को भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तब भगवान् ने उपदेश दिया जिससे भव्य जीवों को सुख की प्राप्ति हुई।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्था केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित सातैं सावन आई, शिवनारि वरी जिनराई सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजैं मोक्ष कल्याना ॥

अन्वयार्थ : श्रावण [सिता] शुक्ल सप्तमी को मोक्ष रूपी लक्ष्मी/स्त्री का वरण किया अर्थात् मोक्ष प्राप्त किया। [हरि] इंद्र ने सम्मेद शिखर जी पर आकर आपके मोक्ष स्थल पर वज्र की [सूची] कलम से [माना] आपके चरण अंकित किये। हम आपके मोक्ष कल्याणक की पूजा करते हैं।

ॐ हीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

छन्द मत्तगयन्द

पारसनाथ जिनेंद्रतने वच, पौन भखी जरते सुन पाये
कर्यो सरधान लह्यो पद आन भये पद्मावति शोष कहाये
नाम प्रताप टरैं संताप, सुभव्यन को शिवशर्म दिखाये
हे अश्वसेन के नंद भले, गुण गावत हैं तुमरे हर्षये ॥

अन्वयार्थ : [जरते] जलते हुए [पौनभखी] (हवा खाने वाले) सर्प/सर्पिणी ने पारसनाथ जिनेंद्र [तने] के, वचन सुनकर उन पर श्रद्धां करने से पद्मावती और धरणेन्द्र में जन्म लिया । उनके नाम के प्रताप से दुःख दूर हो जाते हैं, भव्य जीवों को [शर्म] मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है । हे अश्वसेन के पुत्र हम आपके गुणों का गान हर्षपूर्वक करते हैं ।

दोहा

केकी-कंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ
लक्षण उरग निहार पग, वंदौं पारसनाथ

अन्वयार्थ : पार्श्वनाथ भगवान् की छवि अर्थात वर्ण [केकी] मोर के [कंठ] गले के समान नीला/काला, [वपु] शरीर की [तंग] ऊंचाई [नव] नौ हाथ थी, मैं उनके चरणों में [उरग] सर्प का चिन्ह देखकर उनकी पूजा करता हूँ ।

मोतियादाम छन्द

रची नगरी छह मास अगार, बने चहुं गोपुर शोभ अपार
सु कोट तनी रचना छबि देत, कंगूरन पें लहकें बहुकेत

अन्वयार्थ : भगवान के गर्भ में आने से छह माह [अगार] पूर्व नगरी बनाई जो कि चारों दिशाओं में [गोपुर] मुख्य द्वारों से अत्यंत सुशोभित थी । उसके चारों ओर बहुत सुंदर [कोट] बाउंड्री बनायी थी । ऊपर [कंगूरन पें लहकें बहुकेत] बहुत सारी झुमरिया [लहकें] लहरा रही थी ।

बनारस की रचना जु अपार, करी बहु भाँति धनेश तैयार
तहां अश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार

अन्वयार्थ : विविध प्रकार से कुबेर ने अत्यंत सुंदर बनारस नगरी बनाई थी । वहाँ अत्यंत उदार राजा अश्वसेन अपनी पटरानी वामा देवी के साथ सुखों से भरपूर जीवन आनंद पूर्वक व्यतीत कर रहे थे ।

तज्यो तुम प्रानत नाम विमान, भये तिनके वर नंदन आन
तबै सुर इंद्र नियोगनि आय, गिरिंद करी विधि न्हौन सुजाय

अन्वयार्थ : हे भगवान् आप प्राणत स्वर्ग को [तज्यो] त्याग कर उनके (माता वामा देवी और अश्वसेन राजा) [वर नंदन] श्रेष्ठ पुत्र हुए । तभी देव और इंद्र [नियोगनि] नियोग पूजा करने के लिए आये और उनको (जिनेन्द्र भगवान् बालक) [गिरिंद] समेरु पर्वत पर ले जाकर नहलाया / उनका जन्माभिषेक किया ।

पिता-घर सौंपि गये निजधाम, कुबेर करै वसु जाम सुकाम
बढ़े जिन दोज-मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन

अन्वयार्थ : [निर्जर] बालक तीर्थकर को उनके पिता के घर छोड़कर वे अपने घर चले गए । कुबेर उनकी [वसु] आठों [जाम] पहर सेवा करते थे । वे दूज के [मयंक] चंद्रमा के समान बढ़ने लगे । बहुत से देवों ने बालक बनकर बालक तीर्थकर के साथ क्रीड़ा कर उनके साथ रमे रहे ।

**भए जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो ममआस**

अन्वयार्थ : जब पार्श्वनाथ कुमार आठ वर्ष के हुए तब उन्होंने महान सुखदायक अणुव्रतों को धारण किया। पिताजी ने अपनी आशा की पूर्ती करने के लिए उनसे विवाह का [अरदास] निवेदन किया।

**करी तब नाहिं रहे जग चंद, किये तुम काम कषाय जुमंद
चढ़े गजराज कुमारन संग, सुदेखत गंगतनी सुतरंग**

अन्वयार्थ : पिता के निवेदन पर पार्श्वनाथ ने विवाह के लिए मना कर संसार में चंद्रमा के समान सुशोभित रहते हुए काम और कषायों को अधिक मंद किया। हाथी पर चढ़कर अन्य कुमारों के साथ जाते हुए गंगा नदी की तरंगों को देख कर आनंदित हो रहे थे।

**लख्यो इक रंक कहै तप घोर, चहूंदिशि अगनि बलै अति जोर
कहै जिननाथ अरे सुन भ्रात, करै बहु जीवन की मत घात**

अन्वयार्थ : उन्होंने एक [रंक] सन्यासी को चारों तरफ लकड़ी [बलै] जलाकर घोर तप करते हुए [लख्यो] देखा। जिनेन्द्र भगवान् ने कहा कि हे भाई सुनो इन्हे जलाकर तुम जीवों का घात मत करो। (तुम्हारे लकड़ी जलाने से सर्प और सर्पिणी का युगल जिन्दा जल रहा है, यह उन्होंने अवधि ज्ञान से जान लिया था)

**भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव ब्रह्मरिषीसुर आय**

अन्वयार्थ : तब वह सन्यासी [कोप] क्रोधित होकर कहने लगा जीव कहाँ है। तब उन्होंने उसे जलते हुए जीवित सर्प को दिखाया। यह देखकर वे १२ भावनाओं को भाने लगे और उन्हें वैराग्य वृद्धि हुई, [ब्रह्मरिषीसुर] लौकांतिक देव ने आकर उन्हें नमस्कार कर के वैराग्य की अनुमोदना करी।

**तबहिं सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज कंध मनोग
कियो वन माहिं निवास जिनंद, धरे व्रत चारित आनन्दकंद**

अन्वयार्थ : तभी चारों प्रकार के देवों ने अपने नियोग के अनुसार [मनोग] सुंदर [शिविका] पालकी को अपने कंधों पर रख कर ले गए। वन में जिनेन्द्र भगवान् ने रह कर आनंद के समूह को प्रदान करने वाले व्रत और चरित्र अर्थात् निर्ग्रथ मुनि दीक्षा धारण करी।

**गहे तहँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तने जु अवास
दियो पयदान महासुखकार, भई पन वृष्टि तहाँ तिहिं बार**

अन्वयार्थ : उपवास के बाद धनदत्त सेठ के घर गये जहाँ उन्होंने भगवान् को महा सुखकारी पयदान / आहार दान दिया जिस के फलस्वरूप उनके आंगन में तीन बार देवों ने रत्नों की वृष्टि करी।

**गये तब कानन माहिं दयाल, धर्यो तुम योग सबहिं अघ टाल
तबै वह धूम सुकेतु अयान, भयो कमठाचर को सुर आन**

अन्वयार्थ : आपने [कानन] वन में जाकर समस्त [अघ] पापों को दूर कर योग धारण किया। तब वह सन्यासी कमठ का जीव अचानक आया।

**करै नभ गौन लखे तुम धीर, जु पूरब बैर विचार गहीर
कियो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्ष्ण पवन झकोर**

अन्वयार्थ : वह आकाश में गमन कर रहा था उसने आपको देखा और पूर्व बैर को विचार करके भयानक उपसर्ग कर, घोर आंधी चलायी, तीक्ष्ण हवा चलायी।

**रह्यो दशहूं दिश में तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़ै जल मूसलधार अथाय**

अन्वयार्थ : जिससे दसों दिशाओं में अन्धकार हो गया, चारों ओर उसने अग्नि लगाई, [सुरुण्डन] धड़ के बिना [मुण्ड] सिर दिखाए और मूसलधार जल की वर्षा करी।

**तबै पद्मावति-कंत धनिंद, नये जुग आय जहां जिनचंद
भग्यो तब रंक सुदेखत हाल, लह्यो तब केवलज्ञान विशाल**

अन्वयार्थ : तब पद्मावति और उनके [कन्ठ] पति धरणेन्द्र दोनों ने आकर [नये] नमस्कार किया, तब वह रंक-कमठ का जीव वहाँ से भाग गया और भगवान् को केवल ज्ञान हुआ ।

**दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोध समेद पधार
सुवर्णभद्र जहाँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसुरिद्ध**

अन्वयार्थ : भगवान् ने दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को बोध कर सम्मेद शिखर जी पहुंच कर वहाँ की प्रसिद्ध सुवर्ण-भद्र कूट से मोक्ष-लक्ष्मी का वरण किया अर्थात मोक्ष पथरे ।

**जजूं तुम चरन दोउ कर जोर, प्रभू लखिये अबही मम ओर
कहै 'बखतावर' रत्न बनाय, जिनेश हमें भव पार लगाय**

अन्वयार्थ : मैं आपके दोनों चरणों की हाथ जोड़कर वंदना करता हूँ प्रभु अब मेरी ओर देखिये । बखतावर कवि कहते हैं जिनेन्द्र भगवान् हमको पार लगा दीजिये ।

धन्ता

**जय पारस देवं, सुरकृत सेवं, वंदत चर्न सुनागपती
करुणा के धारी पर उपकारी, शिवसुखकारी कर्महती ॥**

अन्वयार्थ : पार्वतीनाथ भगवान् की जय हो । देवों के द्वारा जिनकी वंदना करी जाती है, हम उन चरणों की वंदना करते हैं, वे करुणा धारी हैं, अन्य जीवों का उपकार करने वाले हैं, मोक्ष सुख को प्रदान करने वाले और कर्मों को नष्ट करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्वतीनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

**जो पूजै मन लाय भव्य पारस प्रभु नितही
ताके दुख सब जाय भीति व्यापै नहि कित ही ॥
सुख संपति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे
अनुक्रमसों शिव लहै, 'रत्न' इमि कहै पुकारे ॥**

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्टांजलि क्षिपेत ॥

अन्वयार्थ : जो भव्य नित्य मन लगाकर पार्वतीनाथ भगवान् को पूजते हैं उसके सब दुःख नष्ट हो जाते हैं और उसे किसी भी प्रकार का डर नहीं सताता । उसके सुख, सम्पत्ति, पुत्र, मित्र खूब होते हैं । और क्रम से वह मोक्ष को प्राप्त करता है ।



श्रीपार्वतीनाथ-पूजन
तीर्थकर श्री पार्वतीनाथ प्रभु के चरणों में कर्सूं नमन ।
अश्वसेन के राजदुलारे वामादेवी के नन्दन ॥
बाल ब्रह्मचारी भवतारी योगीश्वर जिनवर वन्दन ।
श्रद्धा भाव विनय से करता श्री चरणों का मैं अर्चन ॥



ॐ हीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौष्ट् आह्वाननं

ॐ हीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ हीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

समकित जल से तो अनादि की मिथ्याभ्रांति हटाऊँ मैं ।
निज अनुभव से जन्ममरण का अन्त सहज पा जाऊँ मैं ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ हीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

तन की तपन मिटाने वाला चन्दन भेंट चढ़ाऊँ मैं ।
भव आताप मिटाने वाला समकित चन्दन पाऊँ मैं ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ हीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षत चरण समर्पित करके निज स्वभाव में आऊँ मैं ।
अनुपम शान्त निराकुल अक्षय अविनश्वर पद पाऊँ मैं ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ हीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट अंगयुत सम्यक्दर्शन पाऊँ पुष्प चढ़ाऊँ मैं ।
कामबाण विध्वंस करूँ निजशील स्वभाव सजाऊँ मैं ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ हीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

इच्छाओं की भूख मिटानें सम्यक्पथ पर आऊँ मैं ।
समकित का नैवेद्य मिले जो क्षुधारोग हर पाऊँ मैं ॥

चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मिथ्यातम के नाश हेतु यह दीपक तुम्हें चढ़ाऊँ मैं ।
समकित दीप जले अन्तर में ज्ञानज्योति प्रगटाऊँ मैं ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

समकित धूप मिले तो भगवन् शुद्ध भाव में आऊँ मैं ।
भाव शुभाशुभ धूम्र बने उड़ जायें धूप चढ़ाऊँ मैं ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

उत्तमफल चरणों में अर्पित कर आत्मध्यान ही ध्याऊँ मैं ।
समकित का फल महा-मोक्ष-फल प्रभु अवश्य पा जाऊँ मैं ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट कर्म क्षय हेतु अष्ट द्रव्यों का अर्ध बनाऊँ मैं ।
अविनाशी अविकारी अष्टम वसुधापति बन जाऊँ मैं ॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं ।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुणगाऊँ मैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्धपदप्राप्तये अर्धं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्ण दूज वैशाख सलोनी सोलह स्वप्न दिखे छविमान ॥
पन्द्रह मास रतन बरसे नित मंगलमयी गर्भ कल्याण ।
जय जय पार्श्वजिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दया निधान ॥

ॐ हीं वैशाखकृष्णाद्वितीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

पौष कृष्ण एकादशमी को जन्मे, हुआ जन्म कल्याण ।
ऐरावत गजेन्द्र पर आये तब सौधर्म इन्द्र ईशान ॥
गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि से किया दिव्य अभिषेक महान ।
जय जय पार्श्वजिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दया निधान ॥

ॐ हीं पौषकृष्णा एकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

बाल ब्रह्मचारी श्रुतधारी उर छाया वैराग्य प्रधान ।
लौकान्तिक देवों ने आकर किया आपका जय-जय गान ॥
पौष कृष्ण एकादशी को हुआ आपका तप कल्याण ।
जय-जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय-जय दया निधान ॥

ॐ हीं पौषकृष्णा एकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

कमठ जीव ने अहिक्षेत्र पर किया घोर उपसर्ग महान ।
हुए न विचलित शुक्ल ध्यानधर श्रेणी चढ़े हुए भगवान ॥
चैत्र कृष्ण की चौथ हो गई पावन प्रगटा केवलज्ञान ।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय-जय दया निधान ॥

ॐ हीं चैत्रकृष्णाचतुर्थी केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन बने अयोगी हे भगवान ।
अन्तिम शुक्ल ध्यानधर सम्मेदाचल से पाया निर्वाण ॥
कूट सुवर्णभद्र पर इन्द्रादिक ने किया मोक्ष कल्याण ।
जय-जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय-जय दया निधान ॥

ॐ हीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा

तेईसवें तीर्थकर प्रभु परम ब्रह्ममय परम प्रधान ।
प्राप्त महा-कल्याण पंचक पार्श्वनाथ प्रणतेश्वर प्राण ॥
वाराणसी नगर अति सुन्दर अश्वसेन नृप परम उदार ।
ब्राह्मी देवी के घर जन्में जग में छाया हर्ष अपार ॥

मति श्रुति अवधि ज्ञान के धारी बाल ब्रह्मचारी त्रिभुवान ।
अल्प आयु में दीक्षा धरकर पंच महाव्रत धरे महान ॥
चार मास छद्मस्थ मौन रह वीतराग अर्हन्त हुए ।
आत्मध्यान के द्वारा प्रभु सर्वज्ञ देव भगवन्त हुए ॥

बैरी कमठ जीव ने तुमको नौ भव तक दुख पहुँचाया ।
इस भव में भी संवर सुर हो महा विध्व करने आया ॥
किया अग्निमय घोर उपद्रव भीषण इंझावात चला ।
जल प्लावित हो गई धरा पर ध्यान आपका नहीं हिला ॥

यक्षी पद्मावती यक्ष धरणेद्र विधा हरने आये ।
पूर्व जन्य के उपकारों से हो कृतन्त्र तत्क्षण आये ॥
प्रभु उपसर्ग निवारण के हित शुभ परिणाम हृदय छाये ।
फण मण्डप अरु सिंहासन रच जय-जय-जय प्रभु गुण गाये ॥

देव आपने साम्य भाव धर निज स्वरूप को प्रगटाया ।
उपसर्गों पर जय पाकर प्रभु निज कैवल्य स्वपद पाया ॥
कमठ जीव की माया विनशी वह भी चरणों में आया ।
समक्षरण रचकर देवों ने प्रभु का गौरव प्रगटाया ॥

जगत जनों को ऊँकार ध्वनि मय प्रभु ने उपदेश दिया ।
शुद्ध बुद्ध भगवान आत्मा सबकी है संदेश दिया ॥
दश गणधर थे जिनमें पहले मुख्य स्वयंभू गणधर थे ।
मुख्य आर्यिका सुलोचना थी श्रोता महासेन वर थे ॥

जीव, अजीव, आस्रव, संवर बन्ध निर्जरा मोक्ष महान ।

ज्यों का त्यों श्रद्धान् तत्त्व का सम्यक् दर्शन श्रेष्ठ प्रधान ॥
जीव तत्त्व तो उपादेय है, अरु अजीव तो है सब ज्ञेय ।
आस्रव बन्ध हेय हैं साधन संवर निर्जर मोक्ष उपेय ॥

सात तत्त्व ही पाप पुण्य मिल नव पदार्थ हो जाते हैं ।
तत्त्व-ज्ञान बिन जग के प्राणी भव-भव में दुख पाते हैं ॥
वस्तु-तत्त्व को जान स्वयं के आश्रय में जो आते हैं ।
आत्म चिंतवन करके वे ही श्रेष्ठ मोक्ष पद पाते हैं ॥

हे प्रभु! यह उपदेश आपका मैं निज अन्तर में लाऊँ ।
आत्म-बोध की महा-शक्ति से मैं निर्वाण स्वपद पाऊँ ॥
अष्ट-कर्म को नष्ट करूँ मैं तुम समान प्रभु बन जाऊँ ।
सिद्ध-शिला पर सदा विराजूँ निज स्वभाव में मुस्काऊँ ॥

इसी भावना से प्रेरित हो हे प्रभु की है यह पूजन ।
तुव प्रसाद से एक दिवस मैं पा जाऊँगा मुक्ति सदन ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णर्धि निर्वपामीति स्वाहा

सर्प चिन्ह शोभित चरण पार्श्वनाथ उर धार ।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशिवर्दः ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥



श्रीपार्श्वनाथ-पूजन-पण्डित-वृन्दावनदास
प्रानतदेवलोकते आये, वामादेवी उर जगदाधार ।
अश्वसेन सुतनुत हरिहर हरि, अंक हरिततन सुखदातार ॥
जरतनाग जुगबोधि दियो जिहि, भुवनेसुरपद परमउदार ।
ऐसे पारस को तजि आरस, थापि सुधारस हेत विचार ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं



ॐ ह्रीं श्रीपार्ष्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सुरदीरधि सों जल-कुम्भ भरों, तुव पादपद्मतर धार करों ।
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं जन्ममृत्युविनाशनाय श्रीपार्ष्वनाथजिनेन्द्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिगंध कुकुम कर्पूर घसौं, हरिचिह्नहेरि अरचों सुरसौं ।
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं भवतापविनाशनाय श्रीपार्ष्वनाथ जिनेन्द्रेभ्यश्वन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

हिमहीरनीरजसमानशुचं, वरपुंज तंदुल तवाग्र मुचं
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं अक्षयपदप्राप्तये श्रीपार्ष्वनाथजिनेन्द्रेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमलादिपुष्य धनुपुष्य धरी, मदभंजन हेत ढिग पुंज करी
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं कामबाणविधंसनाय श्रीपार्ष्वनाथजिनेन्द्रेभ्यः पुष्यं निर्वपामीति स्वाहा

चरु नव्यगव्य रससार करों, धरि पादपद्मतर मोद भरों ।
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं क्षुधारोगनिवारणाय श्रीपार्ष्वनाथजिनेन्द्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मणिदीपजोत जगमगग मई, ढिगधारतें स्वपरबोध ठई ।
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं मोहान्धकारविनाशनाय श्रीपार्ष्वनाथजिनेन्द्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशगंध खेय मनमाचत है, वह धूम धूम-मिसि नाचत है ।
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं अष्टकर्मदहनाय श्रीपार्ष्वनाथजिनेन्द्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

फलपक्ष शुद्ध रसजुक्त लिया, पदकंज पूजत हौं खोलि हिया ।
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं मोक्षफलप्राप्तये श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलआदि साजिसब द्रव्य लिया, कनथार धार नुतनृत्य किया ।
सुखदाय पाय यह सेवत हौं, प्रभुपार्श्व पार्श्वगुन सेवत हौं ॥

ॐ ह्रीं अनर्घपदप्राप्तये श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

पञ्चल्याणक

पक्ष वैशाख की श्याम दूजी भनों, गर्भकल्यान को द्यौस सोही गनों ।
देवदेवेन्द्र श्रीमातु सेवें सदा, मैं जजों नित्य ज्यों विघ्न होवै विदा ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भगममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

पौष की श्याम एकादशी को स्वजी, जन्म लीनों जगन्नाथ धर्म ध्वजी ।
नाग नागेन्द्र नागेन्द्र पै पूजिया, मैं जजों ध्याय के भक्त धारों हिया ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णएकादशी पौष की पावनी, राज कों त्याग वैराग धार्यो वनी ।
ध्यानचिद्रूप को ध्याय साता मई, आपको मैं जजों भक्ति भावे लई ॥

ॐ ह्रीं पौष कृष्णकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

चैत की चौथि श्यामामहाभावनी, तादिना घातिया घातिशोभावनी ।
बाह्य आभ्यन्तरे छन्द लक्ष्मीधरा, जैति सर्वज्ञ मैं पादसेवा करा ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्या केवलज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

सप्तमी शुद्ध शोभै महासावनी, तादिना मोच्छपायो महापावनी ।
शैलसम्मेदतें सिद्धराजा भये, आपकों पूजते सिद्धकाजा ठये ॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमङ्गलपण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

पाशपर्म गुनराश है, पाश कर्म हरतार ।
 पाश शर्म निजवास द्यो, पाश धर्म धरतार ॥
 नगर बनारसि जन्मलिय, वंश इक्ष्वाकु महान ।
 आयु वरष शततुंग तन, हस्त सुनौ परमान ॥

जय श्रीधर श्रीकर श्रीजिनेश, तुव गुन गन फणिगावत अशेश ।
 जय जय जय आनंदकंद चंद, जय जय भविपंकजको दिनंद ॥

जय जय शिवतियवल्लभ महेश, जय ब्रह्मा शिवशंकर गनेश ।
 जय स्वच्छचिदंग अनंगजीत, तुव ध्यावत मुनिगन सुहृदमीत ॥

जय गरभागममंडित महंत, जगजनमनमोदन परम संत ।
 जय जनममहोच्छव सुखदधार, भविसारंग को जलधर उदार ॥

हरिगिरिवर पर अभिषेक कीन, झट तांडव निरत अरंभदीन ।
 बाजन बाजत अनहद अपार, को पार लहत वरनत अवार ॥

द्वमद्वम द्वमद्वम द्वमद्वम मृदंग, घनन नननन धंटा अभंग ।
 छमछम छमछम छम छुद्र धंट, टमटम टमटम टंकोर तंट ॥

झननन झननन नूपुर झंकोर, तननन तननन नन तानशोर ।
 सनननन नननन गगन माहिं, फिरि फिरि फिरि फिरिकी लहांहिं ॥

ताथेइ थेइ थेइ धरत पाव, चटपट अटपट झट त्रिदशराव ।
 करिके सहस्र करको पसार, बहुभाँति दिखावत भाव प्यार ॥

निजभगति प्रगट जित करत इंद्र, ताको क्या कहिं सकि हैं कविंद्र ।
 जहँ रंगभूमि गिरिराज पर्म, अरु सभा ईश तुम देव शर्म ॥

अरु नाचत मधवा भगतिरूप, बाजे किन्नर बज्जत अनूप ।
सो देखत ही छवि बनत वृन्द, मुखसों कैसे वरनै अमंद ॥

धनघड़ी सोय धन देव आप, धन तीर्थकर प्रकृती प्रताप ।
हम तुमको देखत नयनद्वार, मनु आज भये भवसिंधु पार ॥

पुनिपिता सौंपि हरि स्वर्गजाय, तुम सुखसमाज भोग्यौ जिनाय ।
फिर तपधरि केवलज्ञान पाय, धरमोपदेश दे शिवसिधाय ॥

हम सरनागत आये अबार, हे कृपासिंधु गुन अमलधार ।
मो मन में तिष्ठु सदाकाल, जबलों न लहों शिवपुर रसाल ॥

निरवान थान सम्मेद जाय, 'वृदावन' वंदत शीसनाय ।
तुम ही हो सब दुखदंद हर्न, ताते पकरी यह चर्नशर्न ॥

धर्मा

जयजय सुखसागर, त्रिभुवन आगर, सुजस उजागर, पार्श्वपती ।
वृन्दावन ध्यावत, पूजरचावत, शिवथलपावत, शर्म अति ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्टांजलि क्षिपेत ॥



श्रीमहावीर-पूजन

वर्धमान सुवीर वैशालिक श्री जिनवीर को ।
वीतरागी तीर्थकर हितंकर अतिवीर को ॥
इंद्र सुर नर देव वंदित वीर सन्मति धीर को ।
अर्चना पूजा करूँ मैं नमन कर महावीर को ॥
नष्ट हो मिथ्यात्व प्रगटाऊँ स्वगुण गम्भीर को ।
नीरक्षीर विवेक पूर्वक हरूँ भव की पीर को ॥



ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जल से प्रभु प्यास बुझाने का झूठा अभिमान किया अबतक ।
पर आश पिपासा नहीं बुझी मिथ्या भ्रममान किया अबतक ॥
भावों का निर्मल जल लेकर चिर तृष्णा मिटाने आया हूँ ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतलता हित चंदन चर्चित निज करता आया था अबतक ।
निज शील स्वभाव नहीं समझा पर भाव सुहाया था अबतक ॥
निज भावों का चंदन लेकर भवताप हटाने आया हूँ ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

भौतिक वैभव की छाया में निज द्रव्य भुलाया था अबतक ।
निजपद विस्मृत कर परपद का ही राग बढ़ाया था अबतक ॥
भावों के अक्षत लेकर मैं अक्षय पद पाने आया हूँ ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदग्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुष्पों की कोमल मादकता में पड़कर भरमाया अबतक ।
पीड़ा न काम की मिटी कभी निष्काम न बन पाया अबतक ॥
भावों के पुष्प समर्पित कर मैं काम नशाने आया हूँ ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नैवेध विविध खाकर भी तो यह भूख न मिट पाई अबतक ।
तृष्णा का उदर न भरपाया, पर की महिमा गाई अबतक ॥
भावों के चरु लेकर अब मैं तृष्णाग्नि बुझाने आया हूँ ।

हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मिथ्याभ्रम अन्धकार छाया सन्मार्ग न मिल पाया अबतक ।
अज्ञान अमावस के कारण निज ज्ञान न लख पाया अबतक ॥
भावों का दीप जला अन्तर आलोक जगाने आया हूँ ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मों की लीला में पड़कर भव भार बढ़ाया है अबतक ।
संसार द्वंद्व के फंदे से निज धूम्र उड़ाया है अबतक ॥
भावों की धूप चढ़ाकर मैं वसु कर्म जलाने आया हूँ ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

संयोगी भावों की भव-ज्वाला में जलता आया अबतक ।
शुभ के फल में अनुकूल संयोगों को पा इतराया अबतक ॥
भावों का फल ले निज-स्वभाव का शिवफल पाने आया हूँ ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अपने स्वभाव के साधन का विश्वास नहीं आया अबतक ।
सिद्धत्व स्वयं से आता है आभास नहीं आया अबतक ॥
भावों का अर्थ चढ़ाकार मैं अनुपम पद पाने आया हूँ ।
हे महावीर स्वामी! निज हित में पूजन करने आया हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्थावली

धन्य तुम महावीर भगवान् धन्य तुम वर्द्धमान भगवान् ।
शुभ आषाढ़ शुक्ला षष्ठी को हुआ गर्भ कल्याण ॥

माँ त्रिशला के उर में आये भव्य जनों के प्राण ।
धन्य तुम महावीर भगवान्, धन्य तुम वर्द्धमान भगवान् ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लाष्ट्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

चैत्र शुक्ल शुभ त्रयोदशी का दिवस पवित्र महान् ।
हुए अवतरित भारत भू पर जग को दुखमय जान ।
धन्य तुम महावीर भगवान्, धन्य तुम वर्द्धमान भगवान् ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जग को अथिर जान छाया मन में वैराग्य महान् ।
मगसिर कृष्ण दशमी के दिन तप हित किया प्रयाण ।
धन्य तुम महावीर भगवान्, धन्य तुम वर्द्धमान भगवान् ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णादशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्ल ध्यान के द्वारा करके कर्म घाति अवसान ।
शुभ वैशाख शुक्ल दशमी को पाया केवलज्ञान ।
धन्य तुम महावीर भगवान्, धन्य तुम वर्द्धमान भगवान् ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लादशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

श्रावण कृष्ण एकम के दिन दे उपदेश महान् ।
दिव्यध्वनि से समवशरण में किया विश्व कल्याण ।
धन्य तुम महावीर भगवान्, धन्य तुम वर्द्धमान भगवान् ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाअमावस्यां दिव्य-ध्वनिप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को पाया पद निर्वण ।
पूर्ण परम पद सिद्ध निरन्जन सादि अनन्त महान् ।
धन्य तुम महावीर भगवान्, धन्य तुम वर्द्धमान भगवान् ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाअमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जय महावीर त्रिशला नन्दन जय सन्मति वीर सुवीर नमन ।
जय वर्द्धमान सिद्धार्थ तनय जय वैशालिक अतिवीर नमन ॥
तुमने अनादि से नित निगोद के भीषण दुख को सहन किया ।
त्रस हुए कई भव के पीछे पर्याय मनुज में जन्म लिया ॥

पुरुवा भील के जीवन से प्रारम्भ कहानी होती है ।
अनगिनती भव धारे जैसी मति हो वैसी गति होती है ॥
पुरुषार्थ किया पुण्योदय से तुम भरत पुत्र मारीच हुए ।
मुनि बने फिर भ्रमित हुए शुभ अशुभभाव के बीच हुए ॥

फिर तुम त्रिपृष्ठ नारायण बन, हो गये अर्धचक्री प्रधान ।
फिर भी परिणाम नहीं सुधरे भव-भ्रमण किया तुमने अजान ॥
फिर देव नरक तिर्यन्च मनुज चारों गतियों में भरमाये ।
पर्याय सिंह की पुनः मिली पाँचों समवाय निकट आये ॥

अजितंजय और अमितगुण चारणमुनि नभ से भूपरआये ।
उपदेश मिला उनका तुमको नयनों में आंसू भर आये ॥
सम्यक्त्व हो गया प्राप्त तुम्हें, मिथ्यात्व गया, व्रत ग्रहण किया ।
फिर देव हुए तुम सिंहकेतु सौधर्म स्वर्ग में रमण किया ॥

फिर कनकोज्ज्वल विद्याधर हो मुनिव्रत से लांतव स्वर्ग मिला ।
फिर हुए अयोध्या के राजा हरिषेण साधु-पद हृदय खिला ॥
फिर महाशुक्र सुरलोक मिला चयकर चक्री प्रियमित्र हुए ।
फिर मुनिपद धारण करके प्रभु तुम सहस्त्रार में देव हुए ॥

फिर हुए नन्दराजा मुनि बन तीर्थकर नाम प्रकृति बाँधी ।
पुष्पोत्तर में हो अच्युतेन्द्र भावना आत्मा की साधी ॥
तुम स्वर्गयान पुष्पोत्तर तज माँ त्रिशला के उर में आये ।
छह मास पूर्व से जन्म दिवस तक रत्न इन्द्र ने बरसाये ॥

वैशाली के कुण्डलपुर में है स्वामी तुमने जन्म लिया ।

सुरपति ने हर्षित गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेक किया ॥
शुभनाम तुम्हारा वर्द्धमान रख प्रमुदित हुआ इन्द्रभारी ।
बालकपन में क्रीड़ा करते तुम मति-श्रुति-अवधि ज्ञानधारी ॥

संजय अरु विजय महामुनियों को दर्शन का विचार आया ।
शिशु वर्द्धमान के दर्शन से शंका का समाधान पाया ॥
मुनिवर ने सन्मति नाम रखा वे वन-विहार कर चले गये ।
तुम आठ वर्ष की अल्पआयु में ही अणुव्रत में ढ़ले गये ॥

संगम नामक एक देव परीक्षा हेतु नाग बनकर आया ।
तुमने निशंक उसके फणपर चढ़ नृत्य किया वह हर्षया ॥
तत्क्षण हो प्रगट झुका मस्तक बोला स्वामी शत-शत वंदन ।
अति वीरवीर हे महावीर अपराध क्षमा कर दो भगवन् ॥

गजराज एक ने पागल हो आतंकित सबको कर डाला ।
निर्भय उस पर आरुढ़ हुए पलभर में शान्त बना डाला ॥
भव भोगों से होकर विरक्त तुमने विवाह से मुख मोड़ा ।
बस बाल-ब्रह्मचारी रहकर कंदर्प शत्रु का मद तोड़ा ॥

जब तीस वर्ष के युवा हुए वैराग्य भाव जगा मन में ।
लौकान्तिक आये धन्य-धन्य दीक्षा ली ज्ञातखण्ड वन में ॥
नृपराज बकुल के गृह जाकर पारणा किया गौ दुग्ध लिया ।
देवों ने पंचाश्र्य किये जन-जन ने जय जयकार किया ॥

उज्जयनी की शमशान भूमि में जाकर तुमने ध्यान किया ।
सात्यिकी तनय भव रुद्र कुपित हो गया महा-व्यवधान किया ॥
उपसर्ग रुद्र ने बहुत किया तुम आत्मध्यान में रहे अटल ।
नतमस्तक रुद्र हुआ तब ही उपसर्ग जयी तुम हुए सफल ॥

कौशाम्बी में उस सती चन्दना दासी का उद्धार किया ।
हो गया अभिग्रह पूर्ण चन्दना के कर से आहार लिया ॥

नभ से पुष्पों की वर्षा लख नृप शतानीक पुलकित आये ।
वैशाली नृप चेतक बिछुड़ी चन्दना सुता पा हषये ॥

संगमक देव तुमसे हारा जिसने भीषण उपसर्ग किए ।
तुम आत्म-ध्यान में रहे अटल अन्तर में समता भाव लिए ॥
जितनी भी बाधायें आई, उन सब पर तुमने जय पाई ।
द्वादश वर्षों की मौन तपस्या और साधना फल लाई ॥

मोहारि जयी श्रेणी चढ़कर तुम शुक्ल-ध्यान में लीन हुए ।
ऋजुकूला के तट पर पाया कैवल्यपूर्ण स्वाधीन हुए ॥
अपने स्वरूप में मग्न हुए, लेकर स्वभाव का अवलम्बन ।
घातिया कर्म चारों नाशे प्रगटाया केवलज्ञान स्वधन ॥

अन्तर्यामी सर्वज्ञ हुए तुम वीतराग अर्हन्त हुए ।
सुर-नर-मुनि इन्द्रादिक वन्दित त्रैलोक्यनाथ भगवन्त हुए ॥
विपुलाचल पर दिव्य-ध्वनि के द्वारा जग को उपदेश दिया ।
जग की असारता बतलाकर फिर मोक्षमार्ग संदेश दिया ॥

ग्यारह गणधर में हे स्वामी! श्रीगौतम गणधर प्रमुख हुए ।
आर्यिका मुख्य चंदना सती श्रोता श्रेणिक नृप प्रमुख हुए ॥
सोई मानवता जाग उठी सुर नर पशु सबका हृदय खिला ।
उपदेशामृत के प्यासों को प्रभु निर्मल सम्यक्ज्ञान मिला ॥

निज आत्मतत्त्व के आश्रय से निज सिद्ध-स्वपद मिल जाता है ।
तत्त्वों के सम्यक् निर्णय से निज आत्म-बोध हो जाता है ॥
यह अनंतानुबंधी कषाय निज पर विवेक से जाती है ।
बस भेद-ज्ञान के द्वारा ही रत्नत्रय निधि मिल जाती है ॥

इस भरतक्षेत्र में विचरण कर जगजीवों का कल्याण किया ।
दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी रत्नत्रय पथ अभियान किया ॥
तुम तीस वर्ष तक कर विहार पावापुर उपवन में आये ।

फिर योग-निरोध किया तुमने निर्वाण गीत सबने गाये ॥

चारों अघातिया नष्ट हुए परिपूर्ण शुद्धता प्राप्त हुई ।
जा पहुँचे सिद्धशिला पर तुम दीपावली जग विख्यात हुई ॥
हे महावीर स्वामी! अब तो मेरा दुख से उद्धार करो ।
भवसागर में झूबा हूँ मैं हे प्रभु! इस भव का भार हरो ॥

हे देव! तुम्हारे दर्शन कर निजरूप आज पहिचाना है ।
कल्याण स्वयं से ही होगा यह वस्तुतत्त्व भी जाना है ॥
निज पर विवेक जागा उर में समकित की महिमा आई है ।
यह परम वीतरागी मुद्रा प्रभु मन में आज सुहाई है ॥

तुमने जो सम्यक् पथ सबको बतलाया उसको आचरलूँ ।
आत्मानुभूति के द्वारा मैं शाश्वत सिद्धत्व प्राप्त करलूँ ॥
मैं इसी भावना से प्रेरित होकर चरणों में आया हूँ ।
श्रद्धायुत विनयभाव से मैं यह भक्ति सुमन प्रभु लाया हूँ ॥

तुमको है कोटि कोटि सादर वन्दन स्वामी स्वीकार करो ।
हे मंगलमूर्ति तरण तारण अब मेरा बेड़ा पार करो ॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्राय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

सिंह चिन्ह शोभित चरण महावीर उर धार ।
मन-वच-तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशिर्वादः ॥ पुष्टांजलि क्षिपेत ॥



श्रीमहावीर-पूजन

श्रीमत वीर हरें भवपीर, भरें सुखसीर अनाकुलताई
केहरि अंक अरीकरदंक, नमे हरि पंकति मौलि सुआई ॥
मैं तुमको इत थापत हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरषाई
हे करुणा-धन-धारक देव, इहां अब तिष्ठु शीघ्रहि आई ॥



अन्वयार्थ : [श्रीमत] श्रीमान (अंतरंग बहिरंग विभूतियों से युक्त) भगवान् महावीर [भव] संसार के [पीरा] दुखों को [हरे] हरने वाले हैं, निराकुल सुख के [सीरा] स्रोत हैं। उनका [केहरि-अंक] सिंह विह बताता है कि उन्होने [अरि] शत्रुओं (कर्मी) को [करदंक] नष्ट कर दिया है। [हरि पंकति] इन्द्रों की कतार अपने [मौलि] मुकटों को आप के [सुआई] चरणों में झुका कर [नमे] नमस्कार करते हैं। हे करुणा रूपी धन के धारक भगवन्। मैं आप की भक्ति पूर्वक [हिये] चित्त में हर्षित होकर यहाँ स्थापना करता हूँ। आप यहाँ शीघ्र आइये, आइये, [तिष्ठ] विराजमान होइये।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवैष्ट आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

**क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचन भृंग भरौं
प्रभु वेगि हरो भवपीर, यातें धार करौं ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥**

अन्वयार्थ : [क्षीरोदधि] क्षीरसागर का [शुचि] पवित्र [नीर] जल के [सम] समान जल [कंचन] सोने की [भृंग] झारी में [भरौं] भरकर लाया हूँ। हे प्रभु मेरी [भवपीर] सांसारिक दुखों के [वेग] शीघ्र निवारण [यातें] के लिए, यह जल [धार] धारा आपके समक्ष [करौं] प्रवाहित कर रहा हूँ। आप श्री वीर, महावीर, [सन्मति] सुबुद्धि के नायक हैं, वर्धमान! आप की जय हो! आप अत्यंत गुणवान्, धैर्यवान् और [सन्मतिदायक] अच्छी बुद्धि के दाता हो।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

**मलयागिर चन्दनसार, केसर संग घसौं
प्रभु भवआताप निवार, पूजत हिय हुलसौं ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥**

अन्वयार्थ : मैं मलयागिर का [सार] श्रेष्ठ चन्दन केसर के साथ घिसकर लाया हूँ। प्रभु [भव] संसार के [आताप] दुखों को [निवार] नष्ट कर दीजिये। आपकी पूजा करते हुए मेरा हृदय [हुलसौं] प्रसन्न/आनंदित हो रहा है।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

**तंदुल सित-शशिसम शुद्ध, लीनो थार भरी
तसु पुंज धरौं अविरुद्ध, पावौं शिवनगरी ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥**

अन्वयार्थ : [शशिसम] चंद्रमा के समान [सित] सफेद [तंदुल] चावल थाली में भरकर लाया हूँ। मोक्ष नगरी की प्राप्ति के लिए उनके पुँज आपके समक्ष अर्पित करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुरतरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे

सो मनमथ भंजन हेत, पूजौं पद थारे ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

अन्वयार्थ : [सुरतरु] कल्पवृक्षों के [सुमन] पुष्टों सहित [सुमन] भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्टों से मन से प्रफुल्लित हो कर [मनमथ] कामदेव को [भंजन] नष्ट करने के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

अन्वयार्थ : रस से [रज्जत] भरे/झूबे हुए, [सद्य] ताजे [सज्जत] बनाये हुए नैवेद्य [मज्जत] मंजे हुए [थार] थाल में भरकर लाया हूँ । [अद्य] आज उन नैवेद्य से [रज्जत] आनंदित होकर आपके चरणों में अर्पित करता हूँ जिसके [भज्जत] सेवन से भूख रुपी [अरी] शत्रु दूर हो जाए ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तमखंडित मंडित नेह, दीपक जोवत हौं
तुम पदतर हे सुखगोह, भ्रमतम खोवत हौं ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

अन्वयार्थ : आप [सुखगोह] सुख के भण्डार हैं । मैं [तम] अंधकार को [खंडित] नष्ट करने वाले, [नेह] धी / चिकनाई से [मंडित] भरे / सुशोभित दीपक को [जोवत] जलाकर कर [भ्रमतम] मोह रुपी अन्धकार को [खोवत] नष्ट करने के लिए उसे आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहास्थकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगंध करा
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

अन्वयार्थ : मैं हरिचंदन / श्रेष्ठ चंदन, अगर, कपूर का सुगन्धित चूर्ण आठों कर्म नष्ट करने के लिए आपके चरणों के समक्ष भली प्रकार खेता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

ऋतु-फल कल-वर्जित लाय, कंचन थाल भरौं
शिव फलहित हे जिनराय, तुम ढिग भेंट धरौं ॥

श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान् ! [रितुफल] ऋतू के, [कल] शरीर/जीव [वर्जित] रहित, फल [कंचन] स्वर्ण के थाल में भरकर मोक्षफल की प्राप्ति के लिए आपके [द्विग] समक्ष अर्पित कर रहा हूँ ।

ॐ ह्लौं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरौं
गुण गाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरौं ॥
श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

अन्वयार्थ : जल से फल तक [वसु] अष्ट द्रव्यों को [हिम] सोने के थाल में [सजि] सजाकर, शरीर और मन में अत्यन्त [मोद] प्रसन्नता धारण कर के आपके गुणों को गा रहा हूँ, मुझे संसार सागर से पार लगा दीजिये, आपकी पूजा करने से पापों का नाश हो जाय (ऐसा वरदान दीजिये) ।

ॐ ह्लौं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्द्धविली
मोहि राखो हो शरणा, श्री वर्द्धमान जिनरायजी ॥टेक॥
गरभ साढ़ सित छटु लियो थित, त्रिशला उर अघ-हरना
सुर सुरपति तित सेव करी नित, मैं पूजूं भवतरना ॥
मोहि राखो हो शरणा, श्री वर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो हो शरणा

अन्वयार्थ : आप [साढ़] आषाढ़ [सित] शुक्ला छठ तिथि को गर्भ में आये थे, त्रिशला माता के उदर में पथरे थे, आपका गर्भकल्याणक [अघ] पापों को हरने वाला था ! [सुर] देवता, [सुरपति] इंद्र [तित] आपकी [नित] नित्य [सेव] सेवा करते थे ! मैं आपको [भवतरना] संसार को पार करने के लिए पूजता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ ह्लौं आषाढ़शुक्लाषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन वरना
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजौं भवहरना ॥मोहि॥

अन्वयार्थ : आपका जन्म चैत [सित] शुक्ल तेरस को कुण्डलपुर में [कन वरना] स्वर्ण शरीर के वर्ण सहित हुआ था । [सुरगिरि] समेरु पर्वत पर [सुरगुरु] वृहस्पति इंद्र आदि ने आपकी पूजा रचाई थी । मैं भी आपके जन्म-कल्याणक की पूजा, संसार के जन्म मरण के संकट को नष्ट करने के लिए करता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ ह्लौं चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

मंगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना
नृपति कूल घर पारन कीनों, मैं पूजौं तुम चरना ॥मोहि॥

अन्वयार्थ : मंगसिर [असित] कृष्णा की मनोहर दशमी को निर्गच्छ दीक्षा धारण करी थी । कूल नामक राजा के घर आपने [पारन] पारणा करी । (देवों ने तो पञ्चाशर्चर्य कर वंदना कर ली थी) मैं (आपके आहार को समरण करके) आपके चरणों की पूजा करता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में रख लीजिये । हे भगवन

वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ हीं मार्गशीर्षकृष्णादशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्ल दशैं वैशाख दिवस अरि, घाति चतुक क्षय करना केवल लहि भवि भवसर तारे, जजौं चरन सुख भरना ॥मोहि॥

अन्वयार्थ : वैसाख शुक्ल दशमी को आपने चार घातिया कर्मों का क्षय कर के केवल ज्ञान प्राप्त करके [भवि] भव्य जीवों को [भवसर] संसार सागर से [तारे] पार किया । मैं आपके सुख [भरना] प्रदान करने वाले चरणों की पूजा करता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में रख लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ हीं वैशाखशुक्लादशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक श्याम अमावस शिव तिय, पावापुर तैं वरना गणफनिवृन्द जजें तित बहुविध, मैं पूजौं भयहरना ॥मोहि॥

अन्वयार्थ : कार्तिक [श्याम] वदि / कृष्ण अमावस्या को पावापुर से मोक्ष मोक्ष [वरना] प्राप्त किया । [गन] गणधर, [फनि] धरणेन्द्र आदि देवों के [वृन्द] समूह ने [तित] वहाँ [बहुविध] अनेक प्रकार से [जजे] पूजा करी, मैं भी भगवन संसार का भय नष्ट करने के लिए आपकी पूजा करता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में रख लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ हीं कार्तिककृष्णाअमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

गणधर, अशनिधर, चक्रधर, हलधर, गदाधर, वरवदा अरु चापधर, विद्यासुधर तिरशूलधर सेवहिं सदा ॥ दुखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं सुकुमाल गुण मनिमाल उन्नत भालकी जयमाल हैं ॥

अन्वयार्थ : गणधर, [असनिधर] वज्रधारक/इंद्र, [चक्रधर] चक्रवर्ती, [हलधर] हलधारक/बलदेव/बलभद्र, गदाधारक, [वदा] वक्ताओं में [वर] श्रेष्ठ, [चापधर] धनुष धारक, [विद्यासुधर] विद्याधारी, [तिरशूलधर] त्रिशूलधारी सैदव आपकी सेवा/करते हैं । आप दुखों को हरने वाले हैं आनंद प्रदान करने वाले हैं, आप [तारन] स्वयं तरने और [तरन] अन्यों को तारने वाले हैं, आपके चरण बहुत [रसाल] सुंदर हैं । ऐसे सुकुमाल भगवान् वर्धमान जिनका [भाल] मस्तक गुण रूपी [मनिमाल] मणियों की माला से [उन्नत] ऊँचा हो रहा है, के गुणानुवाद की जयमाला कहीं जा रही है ।

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन चंदवरं भवतापनिकंदन, तनमननंदन, रहित सपंदन नयन धरं ॥

अन्वयार्थ : हे माता [त्रिशलानंदन] त्रिशला के पुत्र ! [हरिकृतवंदन] इन्द्रों द्वारा वंदित [जगदानंदन] जगत को आनंद प्रदान करने के लिए [चंदवर] श्रेष्ठ चंद्रमा के समान है (चंद्रमा की चांदनी अत्यंत शीतलता प्रदान करती है), संसार के [ताप] दुखों को [निकंदन] नष्ट करने वाले हैं, [तनमन] शरीर और मन को [नन्दन] आनंद प्रदान करने वाले हैं, नेत्रों की पलके [सपंदन] स्पंदन रहित है अर्थात झपकती नहीं है, स्थिर नेत्रों के [धरं] धारक हैं ।

जय केवलभानु-कला-सदनं, भवि-कोक-विकाशन कंदवनं जगजीत महारिपु मोहहरं, रजज्ञान-द्वगांवर चूर करं

अन्वयार्थ : आपकी जय हो ! आप [केवल] केवल-ज्ञान रूपी [भानु] सूर्य की [कला] किरणों के [सदनं] स्थान है, [भवि] भव्य जीव रूपी [कोक] चक्रवों, (रात्रि होते ही चक्रवे चक्रवी का वियोग हो जाता है सूर्य निकलते ही प्रातः उनका संयोग हो जाता है) और [कंदवनं] कमलों के वन को [विकाशन] प्रफुलित करने के लिए सूर्य के समान हो, [जगजीत] संसार को जीतने वाले, [महारिपु] महान क्षत्रु [मोहहरं] मोहनीय कर्म को हरने वाले हैं, [रज] धूल के समान ज्ञानावरण, [द्वगांवर] दर्शनावरण और अंतराय कर्म को [चूर] नष्ट करने वाले हैं ।

**गर्भादिक मंगल मंडित हो, दुखदारिद को नित खंडित हो
जग माहिं तुम्हीं सतपंडित हो, तुम ही भवभाव-विहंडित हो**

अन्वयार्थ : गर्भादिक पांच [मंगल] कल्याणकों से आप [मंडिता] सुशोभित है, दुखों और दरिद्रता को [निता] सदा [खंडित] नाशक है, जगत् [माहि] में आप ही [सतपंडित] सच्चे विद्वान् हैं, आप ही संसारी भावों (राग, द्वेष, मिथ्यात्व आदि) के [विहंडित] नाशक हैं।

**हरिवंश सरोजन को रवि हो, बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो
लहि केवलधर्म प्रकाश कियो, अबलों सोई मारग राजतियो**

अन्वयार्थ : [हरिवंश] इन्द्रों के समूह रूपी [सरोजन] कमलों को प्रकाशित करने के लिए आप [रवि] सूर्य के समान हैं (आपको देखकर इन्द्रों का समूह प्रसन्न हो जाता है)। आप ही [बलवंत] बलवान्, [महंत] महान् और [कवि] सर्वज्ञ हैं! केवलज्ञान [लहि] प्राप्त कर आपने धर्म का प्रकाश किया था। [अबलो] आज तक वही मार्ग [राजतियो] सुशोभित हो रहा है।

**पुनि आप तने गुण माहिं सही, सुरमग्न रहें जितने सबही
तिनकी वनिता गुनगावत हैं, लय-ताननिसों मनभावत हैं**

अन्वयार्थ : [पुनि] और आपके गुणों में अच्छी प्रकार सभी [सुर मग्न] देवता भक्ति भाव से मग्न रहते हैं। उनकी [वनिता] देवियाँ तरह तरह से आपके गुणों का गान करती हैं। भिन्न भिन्न लयों से [ताननिसों] और तानों से [मनभावत] मन को प्रसन्न करती हैं।

**पुनि नाचत रंग उमंग-भरी, तुअ भक्ति विषै पग एम धरी
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहां तननं तननं**

अन्वयार्थ : और वे देवांगानाएँ रंग और उमग से भरी हुई आपकी भक्ति में नाचती हैं, वे अपने झुमरूओं से बंधे पैरों को स्थान स्थान पर चुन चुन कर रखती हैं जिससे झनन-झनन-झनन-झनन आवाज़ आती है और देवता भिन्न-भिन्न वाद्य यंत्रों को बजते हैं।

**घननं घननं घनधंट बजै, द्वमदं द्वमदं मिरदंग सजै
गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता**

अन्वयार्थ : कहीं धंटे के बजने की घननं घननं शब्द की आवाज़ आ रही है, कोई मृदंग बजा रहा है तो द्वमदं द्वमदं द्वमदं की आवाज़ आ रही है, [गगनांगन] आकाश के आंगन के [गर्भगता] गर्भ में [सुगता] सारंगी बज रही है जिससे उसमें से [ततता ततता] तरह तरह के शब्द [अतता] उसमें से [वितता] निकल रहे हैं।

**धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसालजु छाजत है
सननं सननं सननं नभ में, इकरुप अनेक जु धारि भ्रमें**

अन्वयार्थ : [गति] तबले के बजने से धृगतां-धृगतां ध्वनि आ रही है, [सुरताल] देवों की तालिया [रसाला] सुंदर लग रही है। उनके, आकाश में इधर से उधर दौड़ते हुए, छाने से सननं सननं सननं की आवाज़ आ रही है। वे हैं तो एक रूप किन्तु भिन्न-भिन्न रूप धारण कर कार्य करते रहते हैं।

**किन्नर सुर बीन बजावत हैं, तुमरो जस उज्जवल गावत हैं
करताल विषै करताल धरैं, सुरताल विशाल जु नाद करैं**

अन्वयार्थ : किन्नर जाती के देव बीन बजा कर आपके उज्जवल यश को गा रहे हैं। हाथ की ताली बजने से कोई हाथ की ताली की आवाज़ कर रहा है, देवों के हाथ की तालियाँ विशाल शब्द कर रही हैं।

**इन आदि अनेक उछाह भरी, सुरभक्ति करें प्रभुजी तुमरी
तुमहीं जग जीवन के पितु हो, तुमहीं बिनकारनतें हितु हो**

अन्वयार्थ : इस प्रकार अनेक उत्साह से भरे हुए देवता भगवन आपकी भक्ति कर रहे हैं। हे भगवन आप ही संसार के प्राणियों के पिता हैं, आप ही [बिनकारन] निस्वार्थ संसारी जीवों का कल्याण चाहने वाले हैं।

**तुमहीं सब विघ्न विनाशन हो, तुमहीं निज आनंदभासन हो
तुमहीं चितचिंतितदायक हो, जगमाहिं तुम्हीं सब लायक हो**

अन्वयार्थ : आप ही समस्त विद्मों का विनाश करने वाले हैं, आप ही [निज आनंदभासन] आत्मा के आनंद लेने वाले हैं आप ही [चित्तचिंतितदायक] चित्त में विंतन करने योग्य है। संसार में आप ही सब के लायक हो। आप से आगे कोई नहीं है।

तुमरे पन मंगल माहिं सही, जिय उत्तम पुन्य लियो सबही हमतो तुमरी शरणागत हैं, तुमरे गुन में मन पागत है

अन्वयार्थ : आपके [पन] पांच कल्याणकों से असंख्य जीवों ने उत्तम पुण्य का संचय किया था, हम उनमें शामिल नहीं हो पाये, किन्तु आपकी शरण में आये है तथा हमारा मन आपके गुणों में [पागत] उत्साहित/लीन है।

प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसु कर्म नहीं नसिये तबलों तुम ध्यान हिये वरतों, तबलों श्रुतचिंतन चित्त रतो

अन्वयार्थ : भक्त भगवान् से प्रार्थना कर रहा कि आप मेरे हृदय में सदा बसिये, जब तक अष्टकर्मों का नाश नहीं हो जाए, तब तक मैं आपका ध्यान अपने हृदय में धारण रखूँ। तब तक शास्त्रों के चिंतवन में मेरा चित्त लगा रहे।

तबलों व्रत चारित चाहतु हों, तबलों शुभभाव सुगाहतु हों तबलों सतसंगति नित्त रहो, तबलों मम संजम चित्त गहो

अन्वयार्थ : मैं जब तक संसार में हूँ, तब तक व्रत और चारित्र की भावना चाहता रहूँ, तब तक मैं शुभ भावों को ही ग्रहण करूँ, (अशुभ भावों से बचा रहूँ) तब तक मेरी नित्य सतसंगति रहे, तब तक मेरे चित्त संयम को धारण करने में लगा रहे।

जबलों नहिं नाश करौं अरिको, शिव नारि वरौं समता धरिको यह द्यो तबलों हमको जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुनजी

अन्वयार्थ : जब तक मैं कर्म शत्रु का नाश न कर लूँ और जब तक समता धारण करके मोक्ष स्त्री का वरण न कर लूँ तब तक भगवन हमे ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि हमे यह सब (सत्संगति, संयम, व्रत, चारित्र, जिनवाणी की सेवा) आपकी सेवा करने का अवसर आदि दीजिये, हमारी इतनी सुन लीजिये।

धत्ता

श्रीवीर जिनेशा नमित सुरेशा, नाग नरेशा भगति भरा 'वृन्दावन' ध्यावै विघ्न नशावै, वाँछित पावै शर्म वरा ॥

अन्वयार्थ : महावीर जिनेन्द्र भगवान्, आपको (सुरेशा) इन्द्र, (नाग) धरणेन्द्र, (नरेशा) मध्य लोक के राजा भक्ति भाव से नमस्कार करते हैं। वृदावन कवि कहते हैं कि जो आपका ध्यान करते हैं उनके विद्म नष्ट हो जाते हैं और श्रेष्ठ वाँछित (शर्म वरा) मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्राय पूर्णार्द्ध निर्वपामीति स्वाहा

श्री सन्मति के जुगल पद, जो पूजैं धरि प्रीत वृन्दावन सो चतुर नर, लहैं मुक्ति नवनीत ॥

इत्याशीर्वादः ॥ पुष्पाजलि द्विपेत ॥

अन्वयार्थ : भगवान् महावीर के दोनों चरणों को प्रीती/भक्ति पूर्वक पूजता है वह चतुर नर मुक्ति रूपी नवनीत को प्राप्त करता है। अर्थात् उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।



श्रीमहावीर-पूजन



जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन-वीर हैं ।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान-धारण-धीर हैं॥
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं ।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थकर स्वयं महावीर हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्ननं

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है ।
मल हरन निर्मल करन भागीरथी नीर-समान है॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर-जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

लिपटे रहें विषधर तदपि चन्दन विटप निर्विष रहे ।
त्यों शान्त शीतल ही रहो रिपु विघ्न कितने ही करें ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर-जिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सुख-ज्ञान-दर्शन वीर जिन अक्षत समान अखंड हैं ।
हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड हैं॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर-जिनेन्द्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमशर-सुभट मारन सूर हैं ।
पर-गन्ध से विरहित तदपि निज-गन्ध से भरपूर हैं॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ हीं श्री महावीर-जिनेन्द्राय कामबाण-विधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

यदि भूख हो तो विविध व्यंजन मिष्ट इष्ट प्रतीत हों ।
तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन! क्यों तुम्हें उनसे प्रीति हो ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ हीं श्री महावीर-जिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

युगपद्-विशद्-सकलार्थ झलके नित्य केवलज्ञान में ।
त्रैलोक्य-दीपक वीर-जिन दीपक चढ़ाऊँ क्या तुम्हें ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ हीं श्री महावीर-जिनेन्द्राय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

जो कर्म-ईधन दहन पावक पुंज पवन समान हैं ।
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान हैं ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ हीं श्री महावीर-जिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सारा जगत फल भोगता नित पुण्य एवं पाप का ।
सब त्याग समरस-निरत जिनवर सफल जीवन आपका ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ हीं श्री महावीर-जिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

इस अर्घ्य का क्या मूल्य! अनर्घ्य पद के सामने ।
उस परम-पद को पा लिया हे! पतितपावन आपने ॥
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

सित छटवीं आषाढ़, माँ त्रिशला के गर्भ में ।
अन्तिम गर्भावास, यही जान प्रणमूँ प्रभो ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्ल षष्ठ्यां गम्भीरमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जन्म लियो प्रभू ।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ल त्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

दशमी मंगसिर कृष्ण, वर्द्धमान दीक्षा धरी ।
कर्म कालिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष-कृष्ण-दशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

सित दशमी वैसाख, पायो केवलज्ञान जिन ।
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य, प्रभुपद पूजा करें हम ॥

ॐ ह्रीं वैशाख-शुक्ल-दशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक मावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम ।
पावा तीरथधाम, दीपावली मनायं हम ॥

ॐ ह्रीं कार्तिक-कृष्ण-अमावस्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखे असि-तीर ।

परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर ॥

पद्मरि छन्द

हे! मोह-महादल-दलन-वीर, दुर्द्वर तप-संयम-धरण धीर ।
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दंद-फंद ॥

अघहरण-करन मन-हरनहार, सुख-करन हरण-भवदुख अपार ।
सिद्धार्थ तनय तन रहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव ॥

मतिज्ञान रहित सन्मति जिनेश, तुम राग-द्रेष जीते अशेष ।
शुभ-अशुभ राग की आग त्याग, हो गये स्वयं तुम वीतराग ॥

षट्क्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुकर अशेष ।
सर्वज्ञ वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहिचानें विशेष ॥

वे पहिचानें अपना स्वभाव, वे करें मोह-रिपु का अभाव ।
वे प्रगट करें निज-पर-विवेक, वे ध्यावें निज शुद्धात्म एक ॥

निज आत्म में ही रहें लीन, चारित्र-मोह को करें क्षीण ।
उनका हो जाये क्षीण राग, वे भी हो जायें वीतराग ॥

जो हुए आज तक अरीहन्त, सबने अपनाया यही पंथ ।
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार ॥

जो तुमको नहिं जाने जिनेश, वे पायें भव-भव-भ्रमण क्लेश ।
वे माँगें तुमसे धन समाज, वैभव पुत्रादिक राज-काज ॥

जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान ।
उनमें ही निशदिन रहें लीन, वे पुण्य-पाप में ही प्रवीन ॥

प्रभु पुण्य-पाप से पार आप, बिन पहिचाने पायें संताप ।
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार ॥

तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार ।
जो पहिचानें अपना स्वरूप, वे हों जावें परमात्मरूप ॥

उनको ना कोई रहे चाह, वे अपना लेवें मोक्ष राह ।
वे करें आत्मा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होयं सिद्ध ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्थपद-ग्राप्तये जयमाला-पूर्णार्थ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दोहा

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान ।
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान ॥

॥ पुष्टांजलि श्वेत ॥



क्षमावणी

वर्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थकर नामी ॥
श्री अरिहंतदेव मंगलमय स्व-पर प्रकाशक गुणधामी



छन्द- तार्क

महाभक्ति से पूजा करता, क्षमामयी परमात्म की ।
अन्तर्मुख हो कर भावना, क्षमा स्वभावी आत्म की ॥
शुद्धात्म- अनुभूति होते, ऐसी तृप्ति प्रगटाती ।
क्रोधादिक दुर्भावों की सब, सन्तति तत्क्षण विनशाती ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्म अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्म अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जिनवर का स्मरणमयी जल, मिथ्या मैल नशाता है ।
 सम्यकभाव प्रगट होते ही, मुक्तिद्वार खुल जाता है ॥
 उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
 मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भाव स्तवनमय चन्दन ही, भवाताप विनशाता है ।
 शीतल होती सहज परिणति, चित्त न फिर भटकाता है ॥
 उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
 मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षय वैभव अक्षय प्रभुता, अंतर माँहि दिखाती है ।
 जिनवर सम ही क्षत् भावों से, सहज विभक्ति आती है ॥
 उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
 मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

समयसारमय सहज परिणति, नियमसार हो जाती है ।
 कामवासना उस आनन्द से, सहजपने विनशाती है ॥
 उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
 मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माय कामबाणविधंसनाय पुष्णं निर्वपामीति स्वाहा

प्रभो आपके सन्मुख होते, ऐसी तृप्ति होती ।
 नहीं भोगों की भूख सताती, अद्भुत तृप्ति होती है ॥
 उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
 मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

सम्प्यग्ज्ञान प्रगट होते ही, सिद्ध समान स्वभाव दिखे ।
अनेकान्तमय तत्त्व दिखाता, मोह महातम सहज नशे ॥
उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

भेदज्ञान की चिनगारी, वैराग्य भाव से सुलगाती ।
ध्यान अग्नि से सहजपने ही, कर्म कालिमा जल जाती ॥
उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमाधर्माय अष्टकर्म विधंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मलाभ से विषय सुखों का, लोभ सहज मिट जाता है ।
आत्मलीनता से बिन चाहे, मोक्ष महाफल आता है ॥
उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ, निज अनर्घ पद पाने को ।
पूजा करते भाव उमगता, निज में ही रम जाने को ॥
उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी ।
मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहा

जयमाला गाते हुए, यही भाव सुखकार ।

सम्प्रगदर्शन ज्ञान सहित, चारित्र हो रागादि रहित ।
 यही भावना हे जिनवर, सफल होय मेरी सत्वर ॥

द्रव्य भाव से स्तुति कर, मैं भी अन्तर्मुख होकर ।
 अहो आत्म में निज पर की, कर्सूँ भावना सिद्धों की ॥

द्रव्य दृष्टि से सिद्ध समान, देखूँ सबको ही भगवान ।
 भिन्न लखूँ औपाधिक भाव, सहज निहार ज्ञायक भाव ॥

होय मंगलाचरण तभी, परिणति ज्ञानानन्दमयी ।
 भासे जिनशासन का मर्म, सहज प्रगट हो आत्मधर्म ॥

परम साध्य का हो पुरुषार्थ, समय समय भाऊँ परमार्थ ।
 दिखे न पर में इष्ट-अनिष्ट, नशें सहज क्रोधादिक दुष्ट ॥

सहज अहेतुक अरु स्वाधीन, नहीं परिणमन पर-आधीन ।
 कोई किसी का कर्ता नाहिं, कहा जिनेश्वर आगम माहिं ॥

ज्ञानदृष्टि से सहज दिखाय, परमानन्द अहो उपजाय ।
 होय निःशक्त अरु निरपेक्ष, ग्लानि मन में रहे न शेष ॥

हो निर्मूढ़ लगें निज माँहि, पर का दोष दिखे कुछ नाहिं ।
 निज परिणति निज माँहि लगाय, परमप्रीति धर धर्म दिपाय ॥

संशय विभ्रम और विमोह, दोष ज्ञान में रहे न कोय ।
 शुद्ध ज्ञान वर्ते निज माहिं, अष्ट अंग सहजहिं विलसाहिं ॥

पर से हो विरक्ति सुखदाय, संयम का पुरुषार्थ बढ़ाय ।
 विषयारंभ परिग्रह टार, व्रत समिति गुप्ति उर धार ॥

हो निर्ग्रन्थ रमें निज माहिं, बाहर की किंचित् सुधि नाहिं ।
 शुक्ल ध्यान से कर्म नशाय, अविनाशी शिव पद प्रगटाय ॥

यही भावना मन में धार, करके उत्तम तत्व विचार ।
 क्षमा भाव सबके प्रति लाय, सब जीवों से क्षमा कराय ॥

अन्तर बाहर हो निर्ग्रन्थ, अपनाऊँ जिनवर का पंथ ।
 जिनशासन वर्ते जयवंत, रत्नत्रय वर्ते जयवन्त ॥

क्षमा भाव अन्तर न समाय, वचनों में भी प्रगटे आय ।
 सहज सदा वर्ते वात्सल्य, परिणति होवे सहज निःशल्य ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मय अनर्थ पद प्राप्तये जयमालापूर्णर्धम् निर्वपामीति स्वाहा

दोहा

दोष दृष्टि को छोड़कर, गुण ग्रहण का भाव ।
रहे सदा ही चित्त में, ध्याऊँ सहज स्वभाव ॥

पुष्टांजलि क्षिपामि



अक्षय-तृतीया



श्री राजमलजी पवेया कृत

अक्षय-तृतीया पर्व दान का, ऋषभदेव ने दान लिया
नृप श्रेयांस दान-दाता थे, जगती ने यशगान किया ॥
अहो दान की महिमा, तीर्थकर भी लेते हाथ पसार
होते पंचाश्वर्य पुण्य का, भरता है अपूर्व भण्डार ॥
मोक्षमार्ग के महाव्रती को, भावसहित जो देते दान
निजस्वरूप जप वह पाते हैं, निश्चित शाश्वत पदनिर्वाण ॥
दान तीर्थ के कर्ता नृप श्रेयांस हुए प्रभु के गणधर
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक में, पाया शिवपद अविनश्वर ॥
प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु! तुम्हें नमन हो बारम्बार
गिरि कैलाश शिखर से तुमने, लिया सिद्धपद मंगलकार ॥
नाथ आपके चरणाम्बुज में, श्रद्धा सहित प्रणाम करूँ
त्यागधर्म की महिमा पाऊँ, मैं सिद्धों का धाम वरूँ
शुभ वैशाख शुक्ल तृतीया का, दिवस पवित्र महान हुआ
दान धर्म की जय-जय गूँजी, अक्षय पर्व प्रधान हुआ ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कर्मोदय से प्रेरित होकर, विषयों का व्यापार किया
उपादेय को भूल हेय तत्त्वों, से मैंने प्यार किया ॥
जन्म-मरण दुख नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥टेक ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मन-वच-काया की चंचलता, कर्म आस्रव करती है
चार कषायों की छलना ही, भवसागर दुःख भरती है ॥
भवाताप के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

इन्द्रिय विषयों के सुख क्षणभंगुर, विद्युत-सम चमक अथिर
पुण्य-क्षीण होते ही आते, महा असाता के दिन फिर ॥
पद अखण्ड की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शील विनय व्रत तप धारण, करके भी यदि परमार्थ नहीं
बाह्य क्रियाओं में उलझे तो, वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं ॥
कामबाण के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविधंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

विषय लोलुपी भोगों की, ज्वाला में जल-जल दुख पाता
मृग-तृष्णा के पीछे पागल, नर्क-निगोदादिक जाता ॥
क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानस्वरूप आत्मा का, जिसको श्रद्धान नहीं होता
भव-वन में ही भटका करता, है निर्वाण नहीं होता ॥

मोह-तिमिर के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म फलों का वेदन करके, सुखी दुखी जो होता है
अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन, सदा उसी को होता है ॥
कर्म शत्रु के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविधंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

जो बन्धन से विरक्त होकर, बन्धन का अभाव करता
प्रज्ञाछैनी ले बन्धन को, पृथक् शीघ्र निज से करता ॥
महामोक्ष-फल प्राप्ति हेतु, मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

पर मेरा क्या कर सकता है, मैं पर का क्या कर सकता
यह निश्चय करनेवाला ही, भव-अटवी के दुख हरता ॥
पद अनर्थ की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

चार दान दो जगत में, जो चाहो कल्याण
औषधि भोजन अभय अरु, सद् शास्त्रों का ज्ञान ॥

पुण्य पर्व अक्षय तृतीया का, हमें दे रहा है यह ज्ञान
दान धर्म की महिमा अनुपम, श्रेष्ठ दान दे बनो महान ॥
दान धर्म की गौरव गाथा, का प्रतीक है यह त्यौहार
दान धर्म का शुभ प्रेरक है, सदा दान की जय-जयकार ॥
आदिनाथ ने अर्ध वर्ष तक, किये तपस्या-मय उपवास
मिली न विधि फिर अन्तराय, होते-होते बीते छह मास ॥

मुनि आहारदान देने की, विधि थी नहीं किसी को ज्ञात
 मौन साधना में तन्मय हो, प्रभु विहार करते प्रख्यात ॥
 नगर हस्तिनापुर के अधिपति, सोम और श्रेयांस सुभ्रात
 ऋषभदेव के दर्शन कर, कृतकृत्य हुए पुलकित अभिजात ॥
 श्रेयांस को पूर्वजन्म का, स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार
 विधिपूर्वक पड़गाहा प्रभु को, दिया इक्षुरस का आहार ॥
 पंचाश्वर्य हुए प्रांगण में, हुआ गगन में जय-जयकार
 धन्य-धन्य श्रेयांस दान का, तीर्थ चलाया मंगलकार ॥
 दान-पुण्य की यह परम्परा, हुई जगत में शुभ प्रारम्भ
 हो निष्काम भावना सुन्दर, मन में लेश न हो कुछ दम्भ ॥
 चार भेद हैं दान धर्म के, औषधि-शास्त्र-अभ्य-आहार
 हम सुपात्र को योग्य दान दे, बनें जगत में परम उदार ॥
 धन वैभव तो नाशवान हैं, अतः करें जी भर कर दान
 इस जीवन में दान कार्य कर, करें स्वयं अपना कल्याण ॥
 अक्षय तृतीया के महत्त्व को, यदि निज में प्रकटायेंगे
 निश्चित ऐसा दिन आयेगा, हम अक्षय-फल पायेंगे ॥
 हे प्रभु आदिनाथ! मंगलमय, हम को भी ऐसा वर दो
 सम्यग्ज्ञान महान सूर्य का, अन्तर में प्रकाश कर दो ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमालापूर्णर्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षय तृतीया पर्व की, महिमा अपरम्पार
 त्याग धर्म जो साधते, हो जाते भव पार ॥

पुष्पाङ्गलि क्षिपेत्



दीपावली-पूजन

महावीर निर्वाण दिवस पर, महावीर पूजन कर लूँ
 वर्धमान अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ ॥
 पावापुर से मोक्ष गये प्रभु, जिनवर पद अर्चन कर लूँ



जगमग जगमग दिव्यज्योति से, धन्य मनुजजीवन कर लूँ ॥

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, शुद्धभाव मन में भर लूँ
दीपमालिका पर्व मनाऊँ, भव-भव के बन्धन हर लूँ ॥
ज्ञान-सूर्य का चिर-प्रकाश ले, रत्नत्रय पथ पर बढ़ लूँ
परभावों का राग तोड़कर, निजस्वभाव में मैं अड़ लूँ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संबौष्ट आह्वानं

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल, निजस्वभाव मय जल भर लूँ
जन्म-मरण का चक्र मिटाऊँ, भव-भव की पीड़ा हर लूँ ॥

दीपावलि के पुण्य दिवस पर, वर्धमान पूजन कर लूँ
महावीर अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, निज चन्दन उर में धर लूँ
चारों गति का ताप मिटाऊँ, निज पंचमगति आदर लूँ ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अजर अमर अक्षय अविकल, अनुपम अक्षतपद उर धर लूँ
भवसागर तर मुक्ति वधू से, मैं पावन परिणय कर लूँ ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श रहित निज शुद्ध पुष्प मन में भर लूँ
काम-बाण की व्यथा नाश कर मैं निष्काम रूप धर लूँ ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुण्यं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मशक्ति परिपूर्ण शुद्ध नैवेद्य भाव उर में धर लूँ
चिर-अतृप्ति का रोग नाशकर, सहज तृप्त निज पद वर लूँ ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित, ज्ञानदीप ज्योतित कर लूँ
मिथ्या-भ्र-तम-मोह नाशकर, निज सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ ॥दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यभाव की धूप जलाकर, घाति-अघाति कर्म हर लूँ
क्रोध-मान-माया-लोभादि, मोह-द्रोह सब क्षय कर लूँ ॥दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर, श्रेष्ठ मोक्षपद उर धर लूँ
अष्ट स्वगुण से युक्त सिद्धगति, पा सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ ॥दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

गुण अनन्त प्रकटाऊँ अपने, निज अनर्थ पद को वर लूँ
शुद्धस्वभावी ज्ञान-प्रभावी, निज सौन्दर्य प्रकट कर लूँ ॥दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को, पुष्पोत्तर तज प्रभु आये
माता त्रिशला धन्य हो गई, सोलह सपने दरशाये ॥
पन्द्रह मास रत्न बरसे, कुण्डलपुर में आनन्द हुआ
वर्धमान के गर्भोत्सव पर, दूर शोक-दुख-द्वंद्व हुआ ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भगलप्राप्ताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, सारी जगती धन्य हुई
नृप सिद्धार्थराज हष्याये, कुण्डलपुरी अनन्य हुई ॥
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन में, सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक
नृत्य वाद्य मंगल गीतों के, द्वारा किया हर्ष अतिरेक ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

मगसिर कृष्णा दशमी को, उर में छाया वैराग्य अपार

लौकान्तिक देवों के द्वारा धन्य-धन्य प्रभु जय-जय कार ॥
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी, वीर प्रभु ने किया प्रयाण
वन में जाकर दीक्षा धारी, निज में लीन हुए भगवान ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

द्वादश वर्ष तपस्या करके, पाया तुमने केवलज्ञान
कर बैसाख शुक्ल दशमी को, त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान ॥
सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को, युगपत् एक समय में जान
वर्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु, वीतराग अरिहन्त महान ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, वर्धमान प्रभु मुक्त हुए
सादि-अनन्त समाधि प्राप्त कर, मुक्ति-रमा से युक्त हुए ॥
अन्तिम शुक्लध्यान के द्वारा, कर अघातिया का अवसान
शेष प्रकृति पच्चासी को भी, क्षय करके पाया निर्वाण ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

महावीर ने पावापुर से, मोक्षलक्ष्मी पाई थी
इन्द्र-सुरों ने हर्षित होकर, दीपावली मनाई थी ॥
केवलज्ञान प्राप्त होने पर, तीस वर्ष तक किया विहार
कोटि-कोटि जीवों का प्रभु ने, दे उपदेश किया उपकार ॥

पावापुर उद्यान पधारे, योगनिरोध किया साकार
गुणस्थान चौदह को तजकर, पहुँचे भवसमुद्र के पार ॥
सिद्धशिला पर हुए विराजित, मिली मोक्षलक्ष्मी सुखकार
जल-थल-नभ में देवों द्वारा गूँज उठी प्रभु की जयकार ॥

इन्द्रादिक सुर हर्षित आये, मन में धारे मोद अपार
महामोक्ष कल्याण मनाया, अखिल विश्व को मंगलकार ॥
अष्टादश गणराज्यों के, राजाओं ने जयगान किया
नत-मस्तक होकर जन-जन ने, महावीर गुणगान किया ॥

तन कपूरवत् उड़ा शेष नख, केश रहे इस भूतल पर
मायामयी शरीर रचा, देवों ने क्षण भर के भीतर ॥

अग्निकुमार सुरों ने झुक, मुकुटानल से तन भस्म किया
सर्व उपस्थित जनसमूह, सुरगण ने पुण्य अपार लिया ॥

कार्तिक कृष्ण अमावस्या का, दिवस मनोहर सुखकर था
उषाकाल का उजियारा कुछ, तम-मिश्रित अति मनहर था ॥

रत्न-ज्योतियों का प्रकाश कर, देवों ने मंगल गाये
रत्न-दीप की आवलियों से, पर्व दीपमाला लाये ॥

सब ने शीश चढ़ाई भस्मी, पद्म सरोवर बना वहाँ
वही भूमि है अनुपम सुन्दर, जल मन्दिर है बना वहाँ ॥

प्रभु के ग्यारह गणधर में थे, प्रमुख श्री गौतम स्वामी
क्षपकश्रेणि चढ़ शुक्लध्यान से हुए देव अन्तर्यामी ॥

इसी दिवस गौतम स्वामी को, सन्ध्या केवलज्ञान हुआ
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई, पद सर्वज्ञ महान हुआ ॥

देवों ने अति हर्षित होकर, रत्न-ज्योति का किया प्रकाश
हुई दीपमाला द्विगुणित, आनन्द हुआ छाया उल्लास ॥

प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर, हो जाता मन अति पावन
परम पूज्य निर्वाणभूमि शुभ, पावापुर है मन-भावन ॥

अखिल जगत में दीपावली, त्यौहार मनाया जाता है
महावीर निर्वाण महोत्सव, धू मचाता आता है ॥

हे प्रभु! महावीर जिन स्वामी, गुण अनन्त के हो धामी
भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थकर, जिनराज विश्वनामी ॥

मेरी केवल एक विनय है, मोक्ष-लक्ष्मी मुझे मिले
भौतिक लक्ष्मी के चक्कर में, मेरी श्रद्धा नहीं हिले ॥

भव-भव जन्म-मरण के चक्कर, मैंने पाये हैं इतने
जितने रजकण इस भूतल पर, पाये हैं प्रभु दुख उतने ॥

अवसर आज अपूर्व मिला है, शरण आपकी पाई है
भेदज्ञान की बात सुनी है, तो निज की सुधि आई है ॥

अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा, जब तक मोक्ष नहीं पाऊँ
दो आशीर्वाद हे स्वामी! नित्य नये मंगल गाऊँ ॥

दीपमालिका पर्व पर, महावीर उर धार
भावसहित जो पूजते, पाते सौख्य अपार ॥

पुष्पाङ्गलि क्षिणेत्



रक्षाबंधन

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रत धारी
बलि ने कर नरमेघ यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी ॥
जय जय विष्णुकुमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणाधारी ॥
रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों का जय-जयकार हुआ
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर-घर मंगलाचार हुआ ॥
श्री मुनि चरणकमल में वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यग्दर्शन
भक्ति भाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन ॥

ॐ हीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ हीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ हीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जन्म-मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता हूँ अर्पण
राग-द्वेष परिणति अभाव कर निज परिणति में करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन ॥

ॐ हीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा

भव सन्ताप मिटाने को मैं चन्दन करता हूँ अर्पण
देह भोग भव से विरक्त हो निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षयपद अखंड पाने को अक्षत ध्वल करूँ अर्पण
हिंसादिक पापों को क्षय कर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्ट करता अर्पण
क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परिणति में करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण
विषयभोग की आकांक्षा हर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीपज्योति करता अर्पण
सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट कर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण
सम्यग्ज्ञान हृदय प्रकटाऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ति प्राप्ति हित उत्तम फल चरणों में करता हूँ अर्पण
मैं सम्यक्चारित्र प्राप्त कर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा

शाश्वत पद अनर्घ्य पाने को उत्तम अर्घ्य करूँ अर्पण
रत्नत्रय की तरणी खेऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥

जयमाला

वात्सल्य के अंग की, महिमा अपरम्पार
विष्णुकुमार मुनीन्द्र की, गूँजी जय-जयकार ॥

उज्जयनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मंत्री थे चार
बलि, प्रहलाद, नमुचि वृहस्पति चारों अभिमानी सविकार ॥
जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी में आया
सात शतक मुनि के दर्शन कर नृप श्रीवर्मा हर्षया ॥
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निंदा की
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की ॥
किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये
वाद-विवाद किया श्री मुनि से, हारे, जीत नहीं पाये ॥
अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये
खड़ग उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये ॥
प्रातः होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन
देश-निकाला दिया मंत्रियों को तब राजा ने तत्क्षण ॥
चारों मंत्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर ॥
मुँह-माँगा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर ॥
फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये
बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उदय आये ॥
कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया
भीषण अग्नि जलाई चारों ओर द्वेष से कार्य किया ॥
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान में लीन हुए
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए ॥
यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने किया दान का ढोंग विचित्र

दान किमिछक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र ॥

पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महा मुनिवर
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट का सुनकर ॥

किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये

ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये ॥

बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला

जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बड़ा भोला ॥

हँसकर मुनि ने एक पाँव में ही सारी पृथ्वी नापी

पग द्वितीय में मानुषोत्तर पर्वत की सीमा नापी ॥

ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रक्खा
क्षमा-क्षमा कह कर बलि ने, मुनिचरणों में मस्तक रक्खा ॥

शीतल ज्वाला हुई अग्नि की श्री मुनियों की रक्षा की
जय-जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी ॥

नवधा भक्तिपूर्वक सबने मुनियों को आहार दिया
बलि आदिक का हुआ हृदय परिवर्तन जय-जयकार किया ॥

रक्षासूत्र बाँधकर तब जन-जन ने मंगलाचार किये

साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये ॥

समकित के वात्सल्य अंग की महिमा प्रकटी इस जग में
रक्षा-बन्धन पर्व इसी दिन से प्रारम्भ हुआ जग में ॥

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा दिन था रक्षासूत्र बँधा कर में

वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर-घर में ॥

प्रायश्चित्त ले विष्णुकुमार ने पुनः व्रत ले तप ग्रहण किया
अष्ट कर्म बन्धन को हरकर इस भव से ही मोक्ष लिया ॥

सब मुनियों ने भी अपने-अपने परिणामों के अनुसार
स्वर्ग-मोक्ष पद पाया जग में हुई धर्म की जय-जयकार ॥

धर्म भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ

रहे शुद्ध आचरण सदा ही धर्म-मार्ग अनुकूल चलूँ ॥

आत्मज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज-पर को मैं पहिचानूँ
समकित के आठों अंगों की, पावन महिमा को जानूँ ॥

तभी सार्थक जीवन होगा सार्थक होगी यह नर देह
अन्तर घट में जब बरसेगा पावन परम ज्ञान रस मेह ॥

पर से मोह नहीं होगा, होगा निज आत्म से अति नेह
 तब पायेंगे अखंड अविनाशी निजसुखमय शिवगेह ॥

रक्षा-बंधन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान
 रक्षा-बंधन पर्व ज्ञान का रक्षा का त्यौहार प्रधान ॥

रक्षा-बंधन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान
 रक्षा-बंधन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान ॥

श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सात शतक को करूँ नमन
 मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन ॥

ॐ ह्लीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जयमालापूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

रक्षा बन्धन पर्व पर, श्री मुनि पद उर धार
 मन-वच-तन जो पूजते, पाते सौख्य अपार ॥

पुष्पाङ्गलिं क्षिपेत्



वीरशासन-जयन्ती

वर्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी
 वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थकर नामी ॥

श्री अरिहंतदेव मंगलमय स्व-पर प्रकाशक गुणधामी
 सकल लोक के ज्ञाता-दृष्टा महापूज्य अन्तर्यामी ॥

महावीर शासन का पहला दिन श्रावण कृष्णा एकम
 शासन वीर जयन्ती आती है प्रतिवर्ष सुपावनतम ॥

विपुलाचल पर्वत पर प्रभु के समवशरण में मंगलकार
 खिरी दिव्यध्वनि शासन-वीर जयन्ती-पर्व हुआ साकार ॥

प्रभु चरणाम्बुज पूजन करने का आया उर में शुभ भाव
 सम्यग्ज्ञान प्रकाश मुझे दो, राग-द्वेष का करूँ अभाव ॥

ॐ ह्लीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं

ॐ ह्लीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं



ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्त्रिहितो भव भव वषट् सन्त्रिधि करणं

भाग्यहीन नर रत्न स्वर्ण को जैसे प्राप्त नहीं करता
ध्यानहीन मुनि निज आत्म का त्यों अनुभवन नहीं करता ॥
शासन वीर जयन्ती पर जल चढ़ा वीर का ध्यान करूँ
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

विविध कल्पना उठती मन में, वे विकल्प कहलाते हैं
बाह्य पदार्थों में ममत्व मन के संकल्प रुलाते हैं ॥
शासन वीर जयन्ती पर चंदन अर्पित कर ध्यान करूँ ॥ खिरी ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अंतरंग बहिरंग परिग्रह त्यागूँ मैं निर्गन्ध बनूँ
जीवन मरण, मित्र अरि सुख दुख लाभ हानि में साम्य बनूँ ॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर अक्षत भेट स्वध्यान करूँ ॥ खिरी ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध सिद्ध ज्ञानादि गुणों से मैं समृद्ध हूँ देह प्रमाण
नित्य असंख्यप्रदेशी निर्मल हूँ अमूर्तिक महिमावान ॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर भेट पुष्प निज ध्यान करूँ
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्टं निर्वपामीति स्वाहा

परम तेज हूँ परम ज्ञान हूँ परम पूर्ण हूँ ब्रह्म स्वरूप
निरालम्ब हूँ निर्विकार हूँ निश्चय से मैं परम अनूप ॥
शासन वीर जयन्ती पर नैवेद्य चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥ खिरी ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

स्व-पर प्रकाशक केवलज्ञानमयी, निजमूर्ति अमूर्ति महान

चिदानन्द टंकोल्कीर्ण हूँ ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता भगवान् ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं दीप चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक देहादिक नोकर्म विहीन
भाव कर्म रागादिक से मैं पृथक् आत्मा ज्ञान प्रवीण ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं धूप चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अष्टकमविधंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मल रहित शुद्ध ज्ञानमय, परममोक्ष है मेरा धाम
भेदज्ञान की महाशक्ति से पाऊँगा अनन्त विश्राम ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं सुफल चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

मात्र वासनाजन्य कल्पना है परद्रव्यों में सुखबुद्धि
इन्द्रियजन्य सुखों के पीछे पाई किंचित् नहीं विशुद्धि ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं अर्घ्य चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

विपुलाचल के गगन को, वन्दूँ बारम्बार
सन्मति प्रभु की दिव्यध्वनि, जहाँ हुई साकार ॥१॥

महावीर प्रभु दीक्षा लेकर मौन हुए तप संयम धार
परिषह उपसर्गों को जय कर देश-देश में किया विहार ॥
द्वादश वर्ष तपस्या करके ऋजुकूला सरितट आये
क्षपकश्रेणी चढ़ शुक्ल ध्यान से कर्म घातिया विनसाये ॥

स्व-पर प्रकाशक परम ज्योतिमय प्रभु को केवलज्ञान हुआ
इन्द्रादिक को समवशरण रच मन में हर्ष महान हुआ ॥

बारह सभा जुड़ीं अति सुन्दर, सबके मन का कमल खिला
जनमानस को प्रभु की दिव्यध्वनि का, किन्तु न लाभ मिला ॥

छ्यासठ दिन तक रहे, मौन प्रभु दिव्यध्वनि का मिला न योग
अपने आप स्वयं मिलता है, निमित्त-नैमित्तिक संयोग ॥
राजगृही के विपुलाचल पर प्रभु का समवशरण आया
अवधिज्ञान से जान इन्द्र ने गणधर का अभाव पाया ॥

बड़ी युक्ति से इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण को वह लाया
गौतम ने दीक्षा लेते ही ऋषि गणधर का पद पाया ॥
तत्क्षण खिरी दिव्यध्वनि प्रभु की द्वादशांगमय कल्याणी
रच डाली अन्तर्मुहूर्त में, गौतम ने श्री जिनवाणी ॥

सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादश विविध प्रकार
सब जीवों ने सुनी दिव्यध्वनि अपने उपादान अनुसार ॥
विपुलाचल पर समवशरण का हुआ आज के दिन विस्तार
प्रभु की पावन वाणी सुनकर गूँजा नभ में जय-जयकार ॥

जन-जन में नव जागृति जागी मिटा जगत का हाहाकार
जियो और जीने दो का जीवन संदेश हुआ साकार ॥
धर्म अहिंसा सत्य और अस्तेय मनुज जीवन का सार
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से ही होगा जीव मात्र से प्यार ॥

घृणा पाप से करो सदा ही किन्तु नहीं पापी से द्वेष
जीव मात्र को निज-सम समझो यही वीर का था उपदेश ॥
इन्द्रभूति गौतम ने गणधर बनकर गूँथी जिनवाणी
इसके द्वारा परमात्मा बन सकता कोई भी प्राणी ॥

मेघ गर्जना करती श्री जिनवाणी का वह चला प्रवाह
पाप ताप संताप नष्ट हो गये मोक्ष की जागी चाह ॥
प्रथमं, करणं, चरणं, द्रव्यं ये अनुयोग बताये चार

निश्चय नय सत्यार्थ बताया, असत्यार्थ सारा व्यवहार ॥

तीन लोक षट् द्रव्यमयी हैं सात तत्त्व की श्रद्धा सार
नव पदार्थ छह लेश्या जानो, पंच महाव्रत उत्तम धार ॥
समिति गुप्ति चारित्र पालकर तप संयम धारो अविकार
परम शुद्ध निज आत्मतत्त्व, आश्रय से हो जाओ भव पार ॥

उस वाणी को मेरा वंदन उसकी महिमा अपरम्पार
सदा वीर शासन की पावन, परम जयन्ती जय-जयकार ॥
वर्धमान अतिवीर वीर की पूजन का है हर्ष अपार
काललब्धि प्रभु मेरी आई, शेष रहा थोड़ा संसार ॥

ॐ ह्रीं श्रीं सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्थपद प्राप्तये जयमालापूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा

दिव्यध्वनि प्रभु वीर की देती सौख्य अपार
आत्मज्ञान की शक्ति से, खुले मोक्ष का द्वार ॥

पुष्पाङ्गलिं क्षिपेत्



श्रुतपंचमी

स्याद्वादमय द्वादशांगयुत माँ जिनवाणी कल्याणी
जो भी शरण हृदय से लेता हो जाता केवलज्ञानी ॥
जय जय जय हितकारी शिवसुखकारी माता जय जय जय
कृपा तुम्हारी से ही होता भेदज्ञान का सूर्य उदय ॥
श्री धरसेनाचार्य कृपा से मिला परम जिनश्रुत का ज्ञान
भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने षट् खण्डागम रचा महान ॥
अंकलेश्वर में ग्रंथराज यह पूर्ण हुआ था आज के दिन
जिनवाणी लिपिबद्ध हुई थी पावन परम आज के दिन ॥
ज्येष्ठशुक्ल पंचमी दिवस जिनश्रुत का जय-जयकार हुआ
श्रुतपंचमी पर्व पर श्री जिनवाणी का अवतार हुआ ॥



ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्वानं

ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं

ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र मम सत्रिहितो भव भव वषट् सत्रिधि करणं

शुद्ध स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र कर लूँ
साम्यभाव पीयूष पान कर जन्म-जरामय दुख हर लूँ ॥
श्रुतपंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ
षट्खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ ॥

ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित कर लूँ
भव दावानल के ज्वालामय अघसंताप ताप हर लूँ ॥ श्रुत ॥

ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षत शुद्ध हृदय धर लूँ
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षय पद वर लूँ ॥ श्रुत ॥

ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के पुष्पों से निज अन्तर सुरभित कर लूँ
महाशील गुण के प्रताप से मैं कंदर्प-दर्प हर लूँ ॥

ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय कामबाणविधंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के अति उत्तम प्रभु नैवेद्य प्राप्त कर लूँ
अमल अतीन्द्रिय निजस्वभाव से दुखमय क्षुधाव्याधि हर लूँ ॥ श्रुत ॥

ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्धस्वानुभव के प्रकाशमय दीप प्रज्वलित मैं कर लूँ
मोहतिमिर अज्ञान नाश कर निज कैवल्य ज्योति वर लूँ ॥ श्रुत ॥

ॐ हीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अज्ञानांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव गन्ध सुरभिमय ध्यान धूप उर में भर लूँ
संवर सहित निर्जरा द्वारा मैं वसु कर्म नष्ट कर लूँ ॥श्रुत ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव का फल पाऊँ मैं लोकाग्र शिखर वर लूँ
अजर अमर अविकल अविनाशी पदनिर्वाण प्राप्त कर लूँ ॥श्रुत ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय महा मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव दिव्य अर्घ्य ले रत्नत्रय सुपूर्ण कर लूँ
भव-समुद्र को पार करूँ प्रभु निज अनर्घ्य पद मैं वर लूँ
श्रुत पंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ
षट्खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का
गूँजा जय-जयकार जगत में जिनश्रुत के अवतार का ॥टेक ॥
ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का लाभ पूर्ण मिलता रहा
महावीर तक जिनवाणी का विमल वृक्ष खिलता रहा ॥
हुए केवली अरु श्रुतकेवलि ज्ञान अमर फलता रहा
फिर आचार्यों के द्वारा यह ज्ञानदीप जलता रहा ॥
भव्यों में अनुराग जगाता मुक्तिवधू के प्यार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥१॥
गुरु-परम्परा से जिनवाणी निर्झर-सी झरती रही
मुमुक्षुओं को परम मोक्ष का पथ प्रशस्त करती रही ॥
किन्तु काल की घड़ी मनुज की स्मरणशक्ति हरती रही
श्री धरसेनाचार्य हृदय में करुण टीस भरती रही ॥
द्वादशांग का लोप हुआ तो क्या होगा संसार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥२॥

शिष्य भूतबलि पुष्पदन्त की हुई परीक्षा ज्ञान की
जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु श्रुत-विद्या विमल प्रदान की ॥

ताड़ पत्र पर हुई अवतरित वाणी जनकल्याण की
षट्खण्डागम महाग्रन्थ करणानुयोग जय ज्ञान की ॥
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस था सुर-नर मंगलाचार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥३॥

धन्य भूतबली पुष्पदन्त जय श्री धरसेनाचार्य की
लिपि परम्परा स्थापित करके नई क्रांति साकार की ॥

देवों ने पुष्पों की वर्षा नभ से अगणित बार की
धन्य-धन्य जिनवाणी माता निज-पर भेद विचार की ॥

ऋणी रहेगा विश्व तुम्हारे निश्चय का व्यवहार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥४॥

धवला टीका वीरसेन कृत बहत्तर हजार श्लोक
जय धवला जिनसेन वीरकृत उत्तम साठ हजार श्लोक ॥

महाधवल है देवसेन कृत है चालीस हजार श्लोक
विजयधवल अरु अतिशय धवल नहीं उपलब्ध एक श्लोक ॥

षट्खण्डागम टीकाएँ पढ़ मन होता भव पार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥५॥

फिर तो ग्रन्थ हजारों लिक्खे ऋषि-मुनियों ने ज्ञानप्रधान
चारों ही अनुयोग रचे जीवों पर करके करुणा दान ॥

पुण्य कथा प्रथमानुयोग द्रव्यानुयोग है तत्त्व प्रधान
एकसरे करणानुयोग चरणानुयोग कैमरा महान ॥

यह परिणाम नापता है वह बाह्य चरित्र विचार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥६॥

जिनवाणी की भक्ति करें हम जिनश्रुत की महिमा गायें
सम्यग्दर्शन का वैभव ले भेद-ज्ञान निधि को पायें ॥

रत्नत्रय का अवलम्बन लें निज स्वरूप में रम जायें
मोक्षमार्ग पर चलें निरन्तर फिर न जगत में भरमायें ॥

धन्य-धन्य अवसर आया है अब निज के उद्धार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥७॥
गूँजा जय-जय नाद जगत में जिनश्रुत जय-जयकार का

श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय जयमालापूर्णार्थ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रुतपंचमी सुपर्व पर, करो तत्त्व का ज्ञान
आत्मतत्त्व का ध्यान कर, पाओ पद निर्वाण ॥

पुस्तकालिं क्षिपेत्



अर्घ्य



देव-शास्त्र-गुरु

क्षण-भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है ।
काषायिक-भाव विनष्ट किये, निज आनन्द-अमृत पीता है ॥
अनुपम-सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है ।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है ॥
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निज-गुण का अर्घ्य बनाऊंगा ।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अर्हन्त अवस्था पाउंगा ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचपरमेष्ठी

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ
अबतक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

नवदेवता

जल गंध अक्षत पुष्प चरू, दीपक सुधूप फलार्घ ले
वर रत्नत्रय निधि लाभ यह बस अर्घ से पूजत मिले
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं पद प्राप्ताये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सिद्ध-भगवान्

जल-फल वसुवृद्दा अरघ अमंदा, जजत अनंदा के कंदा
मेटो भवफंदा सब दुःखदंदा, 'हीराचंदा' तुम वंदा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्थपद-प्राप्तये अर्थ निर्वपामीति स्वाहा

रत्नत्रय

सम्यक् दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग तीनों मयी
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजौं व्रत सहित ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय पूर्णर्थी निर्वपामीति स्वाहा

चौबीस-तीर्थकर

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अनर्थपदप्राप्तये अर्थ निर्वपामीति स्वाहा

समुच्च-पूजा

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये ॥
ये अर्थ समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविशतिर्थकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्थपदप्राप्तये अर्थ निर्वपामीति स्वाहा

बाहुबली-भगवान्

पुण्य भाव से स्वर्गादिक पद, बार-बार पा जाता हूँ
निज अनर्थ पद मिला न अब तक, इससे अर्थ चढ़ाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिव सुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्थपदप्राप्तये अर्थ निर्वपामीति स्वाहा

सीमन्धर-भगवान्

निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए ।
भव-ताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिये ॥

अभिराम भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति प्रसून लगे खिलने ।
 क्षुत् तृष्णा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने ॥
 मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईर्धन ध्वस्त हुए ।
 फल हुआ प्रभो ! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

दशलक्षण-धर्म
 आठों दरब सँवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसौं
 भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पंचमेरु
 आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय
 महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
 पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम
 महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

सोलहकारण-भावना
 जल फल आठों दरव चढ़ाय 'द्यानत' वरत करौं मन लाय
 परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
 दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थकर-पद-दाय
 परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

नन्दीश्वर-द्वीप
 यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों
 'द्यानत' कीज्यो शिव खेत, भूमि समरपतु हों
 नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करौं
 वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
 नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
 बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश जिनालयस्थ जिन प्रतिमायो अनर्थ पद प्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

निर्वाणक्षेत्र

जल गन्ध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं
'धानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं ॥

सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥

सरस्वती

जल चंदन अक्षत, फूल चरु अरु, दीप धूप अति फल लावे
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर 'धानत' सुखपावे ॥

तीर्थकर की धनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोन्द्रव-सरस्वतीदेव्ये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

आदिनाथ-भगवान

शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय
दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय

श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्थं पद प्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

चन्द्रप्रभ-भगवान

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमौं
पूजौं अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमौं

श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्थं पदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

पार्वतीनाथ-भगवान

नीर गंध अक्षतान पुष्प चारु लीजिये
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तैं जजीजिये ॥

पार्वतीनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्वतीनाथ जिनेन्द्राय अनर्थं पदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा

महावीर-भगवान

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरौं
गुण गाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरौं ॥

श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा



महाअर्थ

मैं देव श्री अरहंत पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों ।
आचार्य श्री उवज्ञाय पूजूँ साधु पूजूँ भाव सों ॥
अरहन्त भाषित बैन पूजूँ द्वादशांग रची गनी ।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी ॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा ।
जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा ॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजूँ ।
पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ ॥
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजूँ सदा ।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा ॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ बीस क्षेत्र विदेह के ।
नामावली इक सहस वसु जय, होय पति शिव गेह के ॥

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय ।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं भावपूजा भाववंदना त्रिकालपूजा, त्रिकालवन्दना करे करावे भावना भावे श्री अरिहन्त जी, सिद्धजी, आचार्य जी, उपाध्याय जी, सर्वसाधुजी, पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः। प्रथमानुयोग-

करणानुयोग-चरणानुयोग-द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शनविशुद्धयादि-षोडशकारणेभ्यो नमः उत्तमक्षमादि दशधर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शन-सम्यग्यज्ञान-सम्यग्चारित्रेभ्यो नमः। जल के विषें, थल के विषें, आकाश के विषें, गुफा के विषें, पहाड़ के विषें, नगर-नगरी के विषें, ऊर्ध्वलोक-मध्यलोक-पाताललोक विषें, विराजमान कृत्रिम-अकृत्रिम-जिनचैत्यालय-जिनबिम्बेभ्यो नमः। विदेह-क्षेत्र विद्यमान बीस तीर्थकरेभ्यो नमः। पांच भरत पांच ऐरावत दस क्षेत्र सम्बंधी तीस चैबीसी के सात सौ बीस जिनराजेभ्योः नमः। नन्दीश्वर द्वीप सम्बंधी बावन जिन चैत्यालयेभ्यो नमः। पंचमेरु सम्बंधी अस्सी, जिनचैत्यालयेभ्यो नमः। सम्मेदाशिखर, कैलाश चम्पापुर, पावापुर, गिरनार, सोनागिर, मथुरा आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः। जैनबद्री मूडबद्री, देवगढ़, चन्द्ररी, पपौरा, हस्तिनापुर, अयोध्या, राजगृही, तारंगा, चमल्कार जी, श्री महावीर जी, पदमपुरी, तिजारा आदि अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः। श्री चारक्रद्विधारी सप्तपरमर्षिभ्यो नमः। ऊँ ह्रीं श्रीमंतं भगवन्तं कृपावन्तं श्री वृषभादि



समुच्चय-महाअर्थ

पूजूँ मैं श्री पंच परमगुरु, उनमें प्रथम श्री अरहन्त ।
अविनाशी अविकारी सुखमय, दूजे पूजूँ सिद्ध महंत ॥
तीजे श्री आचार्य तपस्वी, सर्व साधु नायक सुखधाम ।
उपाध्याय अरु सर्व साधु प्रति, करता हूँ मैं कोटि प्रणाम ॥
कर्सुँ अर्चना जिनवाणी की, वीतराग विज्ञान स्वरूप ।
कृतिमाकृतिम् सभी जिनालय, वन्दूँ अनुपम जिनका रूप ॥
पंचमेरु नन्दीश्वर वन्दूँ, जहाँ मनोहर हैं जिनबिम्ब ।
जिसमें झलक रहा है प्रतिपल, निज ज्ञायक का ही प्रतिबिम्ब ॥
भूत भविष्यत् वर्तमान की, मैं पूजूँ चौबीसी तीस ।
विदेह क्षेत्र के सर्व जिनेन्द्रों, के चरणों में धरता शीश ॥
तीर्थकर कल्याणक वन्दूँ, कल्याणक अरु अतिशय क्षेत्र ।
कल्याणक तिथियाँ मैं चाहूँ, और धार्मिक पर्व विशेष ॥
सोलहकारण दशलक्षण अरु, रत्नत्रय वन्दूँ धर चाव ।
दानमयी जिनधर्म अनूपम, अथवा वीतरागता भाव ॥
परमेष्ठी का वाचक है जो, ऊँकार वन्दूँ मैं आज ।
सहस्रनाम की कर्सुँ अर्चना, जिनके वाच्य मात्र जिनराज ॥
जिसके आश्रय से ही प्रगटें, सभी पूज्यपद दिव्य ललाम ।
ऐसे निज ज्ञायक स्वभाव की, कर्सुँ अर्चना मैं अभिराम ॥

दोहा

भक्तिमयी परिणाम का, अद्भुत अर्थ बनाय ।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, ज्ञायक दृष्टि लाय ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनवाणीभ्यो उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय, दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो, सम्प्रदर्शन ज्ञान चारित्रेभ्यः त्रिलोकसम्बन्धी

कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो पंचमेरु अशीतिचैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वर द्वीपस्थितिपंचाशज्जिनालयेभ्यो, श्री सम्मेदशिखर, गिरनारगिरि, कैलाशगिरि, चम्पापुर, पावापुर-आदिसिद्धक्षेत्रेभ्यो,



शांति-पाठ

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी, शीलगुणव्रत संयमधारी
लखन एक सौ आठ विराजे, निरखत नयन कमल दल लाजै ॥

पंचम चक्रवर्ती पदधारी, सोलम तीर्थकर सुखकारी
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिननायक, नमो शांतिहित शांति विधायक ॥

दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुंदुभि आसन वाणी सरसा
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥

शांति जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजों सिरनाई
परम शांति दीजे हम सबको, पढ़ैं जिन्हें पुनि चार संघ को ॥

पूजें जिन्हें मुकुटहार किरीट लाके,
इन्द्रादिदेव अरु पूज्यपदाब्ज जाके
सो शांतिनाथ वर वंश-जगत्प्रदीप,
मेरे लिए करहु शांति सदा अनूप ॥

संपूजकों को प्रतिपालकों को,
यतीनकों को यतिनायकों को
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले,
कीजे सुखी हे जिन शांति को दे ॥

होवे सारी प्रजा को सुख,
बलयुत हो धर्मधारी नरेशा
होवे वरषा समय पे,



तिलभर न रहे व्याधियों का अन्देशा ॥

होवे चोरी न जारी, सुसमय वरतै,
हो न दुष्काल मारी
सारे ही देश धारैं, जिनवर वृषको
जो सदा सौख्यकारी ॥

घाति कर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज
शांति करो ते जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥

तीन बार शांति धारा देवं

शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ तत्संगति का
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाँकूँ सभी का ॥

बोलूँ प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊँ
तौलौ सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौलौं न पाऊँ ॥

तब पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में
तबलौं लीन रहौ प्रभु, जबलौ पाया न मुक्ति पद मैंने ॥

अक्षर पद मात्रा से दूषित,
जो कछु कहा गया मुझसे
क्षमा करो प्रभु सो सब,
करुणा करिपुनि छुड़ाहु भवदुःख से ॥

हे जगबन्धु जिनेश्वर,
पाऊँ तब चरण शरण बलिहारी
मरणसमाधि सुदुर्लभ,
कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी ॥

यहाँ नौ बार ज्ञानोकार मंत्र का जाप करें

अन्वयार्थ : शांतिनाथ का मुख चंद्रमा के समान है, वे शील, गुणों, व्रतों और संयमधारी हैं। आपका शरीर १०८ लक्षणों से सुशोभित हैं, आपके नयनों को देखते ही कमलों का दल भी लजित होता है अर्थात् आपके नेत्र कमल से भी अधिक सुंदर हैं।

नोट:- भगवन के शरीर में १०८ लक्षण कहे हैं, यहाँ १०८ कहने का कारण है कि ९०० छोटे चिह्न तिल आदि होते हैं और बड़े १०८ ही होते हैं अतः यहाँ १०८ चिह्नों का वर्णन किया गया है।

पंचम चक्रवर्ती पद के धारक एवं सोलहवे तीर्थकर के सुख करने वाले थे, जिन के नायक इंद्र और राजा आपकी पूजा शान्तिके लिए करते थे, शांतिनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

दिव्य (अशोक) वृक्ष के (भगवान् समवशरण में उपस्थित समस्त जीवों को शोक रहित होने का प्रतीक, अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान होते हैं)

पुष्पों की वर्षा (देवों द्वारा होती है)

दुंदुभि/बाजे (देवों द्वारा बाजे बजाये जाते हैं),

आसन - सिंहासन का होना (भगवान् समवशरण में सिंहासन के ऊपर रखे कमल से चार अंगुल ऊपर अंतरिक्ष में विराजमान होते हैं),

वाणी - (आत्मा को दिव्य ज्ञान द्वारा आनंदित करने वाली दिव्य ध्वनि का खिरना),

तीन छत्रों का होना (भगवान् के त्रिलोक के स्वामी के उद्घोषक, उनके सिर के ऊपर तीन छत्र होते हैं, सबसे ऊपर छोटा, सबसे नीचे सबसे बड़ा और बीच में मंझला),

चमर - (देवताओं/इन्द्रों द्वारा ६४ चमर भगवन के ऊपर डोरे जाते हैं !)

भामंडल - (यह आभा मंडल विशेष होता है, (भगवान का औरा होता है), जिसमें समवशरण में उपस्थित प्रत्येक भव्यजीव को अपने अपने सात भव; - ३ भूत, १ वर्तमान और ३ भविष्यत स्पष्ट दिखते हैं) ये आपके प्रतिहार्य मनोहर / मन को हरने वाले हैं !,

विशेष :- इन पंक्तियों में बताया है कि समवशरण में जब आप विराजमान होते हैं तो वहाँ उपस्थित प्रत्येक जीव को अष्टप्रातिहार्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रातिहार्य-सामाय लोगों में नहीं पाये जाने वाली विशेषताओं को प्रातिहार्य कहते हैं ! ये देवों द्वारा बनाये जाते हैं। चक्रवर्ती मात्र मध्यलोक के स्वामी होने के कारण उनके सिर के ऊपर एक छत्र लगाया जाता है !

जगतूज्य - तीनों लोकों में पूज्य, पूजौ-मैं पूजा करता हूँ, नाई-नवाकर / द्वृका कर

हे शांतिनाथ जिनेश! आप शांति और सुख प्रदान करने वाले हैं, तीनोंलोकों में पूज्य हैं, मैं मस्तक द्वृका कर आपकी पूजा करता हूँ। भगवन हम सब को जो ये शांति पाठ पढ़ रहे हैं और चतुरसंघ, मुनि, आर्यिका श्रावक, श्राविका को परम शान्ति प्रदान कीजिये !

मुकुट, हार, रत्नों आदि के धारक इन्द्रादि देव, जिनके कमल चरणों की पूजा करते हैं, ऐसे शांतिनाथ भगवान् जो श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुए, संसार को दीपक के समान प्रकाशित करने वाले दीपक के समान, मेरे को अनुपम शांति सदा प्रदान करे !

हे शांतिनाथ जिनेन्द्र भगवन आप सभी पूजा करने वाले, हमारे रक्षकों, मुनियों और आचार्यों को, राजा, प्रजा और राष्ट्र, देश को शांति प्रदान कर सुखी कीजिये !

हे भगवन समस्त प्रजा सुखी, राजा धर्मधारी और बलवान् समुचित वर्षा समय पर हीनाधिक नहीं, रंचमात्र भी रोगों का अंदेशा नहीं, चोरी नहीं हो और आग नहीं लगे, सारे में अच्छा समय वरते (रहे), अकाल कभी नहीं पड़े, हैजा आदि भी नहीं फैले, सारे देश अर्थात् विश्व सदा सुखकारी जैन धर्म को धारण करे !

ऋषभादि भगवान्, जिन्होंने धातिया कर्मों का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया है वे समस्त जगत को शांति प्रदान करे !

भक्त भगवान् से प्रार्थना कर रहा है कि, शास्त्रों को पढ़ कर लोग सुखी हों! सत्संगती का सब को लाभ हो, अच्छे आचरणों वालों की प्रशंसा करे, सभी के दोषों को ढकूँ, जब भी बोलूँ हितकारी प्यारे वचन बोलूँ, अपकी वीतराग मुद्रा का निरंतर चिंतवन करूँ। मैं तब तक आपके चरणों की सेवा करता रहूँ जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाए !!

प्रभु, आपके चरण मेरे हृदय में और मेरा हृदय आपके पवित्र चरणों में तब तक लीन रहे जब तक मुझे मुक्ति प्राप्त न हो जाए ।

प्रभु, मैंने अभिषेक पूजन और शांति पाठ किया है, इनमें मेरे से जो अक्षर, पद और मात्रा में दूषित कहा गया हो उन सब दोषों के लिए मुझे क्षमा कीजिये तथा करुणा कर संसार के दुखों से छुड़वा दीजिये । हे संसार के बंधु जिनेश्वर मैं आपके चरणों की शरण में अपना सब कुछ न्यौछावर, समर्पित करता हूँ, आपके चरणों की शरण के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए! भगवन मेरी अत्यंत कठिन समाधि मरण हो मेरे कर्मों का क्षय हो, सुखकारी रत्न त्रय की प्राप्ति हो ।



शांति-पाठ-भाषा

पं. जुगल किशोर

**शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपति चक्री करें
 हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा करें ॥
 धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जाने, रीत पूजन नाथजी
 हम भक्तिवश तुम चरण आगै, जोड़ लीने हाथजी ॥१॥**

दुःख-हरन मंगलकरन, आशा-भरन जिन पूजा सही



यह चित्त में श्रद्धान मेरे, शक्ति है स्वयमेव ही ॥
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचूँ कहा
मुझ आप-सम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा ॥२॥

संसार भीषण विपिन में, वसु कर्म मिल आतापियो
तिस दाहतैं आकुलित चिरतैं, शान्तिथल कहुँ ना लियो ॥
तुम मिले शान्तिस्वरूप, शान्ति सुकरन समरथ जगपती
वसु कर्म मेरे शान्त कर दो, शान्तिमय पंचमगती ॥३॥

जबलौं नहीं शिव लहूँ, तबलौं देह यह नर पावना
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत अभ्यास आतम भावना ॥
तुम बिन अनंतानंत काल गयो रुलत जगजाल में
अब शरण आयो नाथ युग कर, जोर नावत भाल मैं ॥४॥

कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपै किहि भंत
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावे नहिं अंत ॥५॥



विसर्जन-पाठ

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय
तुम प्रसाद तें परम गुरु, सो सब पूरन होय ॥

पूजन विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करो भगवान ॥

मंत्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव ॥

तुम चरणण ढिग आयके, मैं पूजूं अतिचाव

आवागमन रहित करो, रमूं सदा निज भाव ॥



भगवान-आदिनाथ-चालीसा



शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करूं प्रणाम
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम ॥१॥

सर्व साधु और सरस्वती जिन मन्दिर सुखकार
आदिनाथ भगवान को मन मन्दिर में धार ॥२॥

जै जै आदिनाथ जिन स्वामी, तीनकाल तिहूं जग में नामी
वेष दिगम्बर धार रहे हो, कर्मों को तुम मार रहे हो ॥३॥

हो सर्वज्ञ बात सब जानो सारी दुनियां को पहचानो
नगर अयोध्या जो कहलाये, राजा नाभिराज बतलाये ॥४॥

मरुदेवी माता के उदर से, चैत वदी नवमी को जन्मे
तुमने जग को ज्ञान सिखाया, कर्मभूमी का बीज उपाया ॥५॥

कल्पवृक्ष जब लगे बिछरने, जनता आई दुखड़ा कहने
सब का संशय तभी भगाया, सूर्य चन्द्र का ज्ञान कराया ॥६॥

खेती करना भी सिखलाया, न्याय दण्ड आदिक समझाया
तुमने राज किया नीति का, सबक आपसे जग ने सीखा ॥७॥

पुत्र आपका भरत बताया, चक्रवर्ती जग में कहलाया
बाहुबली जो पुत्र तुम्हारे, सब से पहले मोक्ष सिधारे ॥८॥

सुता आपकी दो बतलाई, ब्राह्मी और सुन्दरी कहलाई

उनको भी विद्या सिखलाई, अक्षर और गिनती बतलाई ॥९॥

एक दिन राजसभा के अन्दर, एक अप्सरा नाच रही थी
आयु उसकी बहुत अल्प थी, इसीलिए आगे नहीं नाच रही थी ॥१०॥

विलय हो गया उसका सत्वर, झट आया वैराग्य उमड़कर
बेटों को झट पास बुलाया, राज पाट सब में बंटवाया ॥११॥

छोड सभी झंझट संसारी, वन जाने की करी तैयारी
राव राजा हजारों साथ सिधाए, राजपाट तज वन को धाये ॥१२॥

लेकिन जब तुमने तप किना, सबने अपना रस्ता लीना
वेष दिगम्बर तजकर सबने, छाल आदि के कपड़े पहने ॥१३॥

भूख प्यास से जब घबराये, फल आदिक खा भूख मिटाये
तीन सौ त्रेसठ धर्म फैलाये, जो अब दुनियां में दिखलाये ॥१४॥

छैः महीने तक ध्यान लगाये, फिर भोजन करने को धाये
भोजन विधि जाने नहिं कोय, कैसे प्रभु का भोजन होय ॥१५॥

इसी तरह बस चलते चलते, छैः महीने भोजन बिन बीते
नगर हस्तिनापुर में आये, राजा सोम श्रेयांस बताए ॥१६॥

याद तभी पिछला भव आया, तुमको फौरन ही पड़धाया
रस गन्ने का तुमने पाया, दुनिया को उपदेश सुनाया ॥१७॥

तप कर केवल ज्ञान उपाया, मोक्ष गए सब जग हर्षाया
अतिशय युक्त तुम्हारा मन्दिर, चांदखेड़ी भंवरे के अन्दर ॥१८॥

उसका यह अतिशय बतलाया, कष्ट क्लेश का होय सफाया

मानतुंग पर दया दिखाई, जंजीरें सब काट गिराई ॥१९॥

राजसभा में मान बढ़ाया, जैन धर्म जग में फैलाया
मुझ पर भी महिमा दिखलाओ, कष्ट भक्त का दूर भगाओ ॥२०॥

सोरठा

नित चालीस ही बार, पाठ करे चालीस दिन
खेवे धूप अपार, चांदखेड़ी में आय के ॥

होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो
जिनके नहीं सन्तान, नाम वंश जग में चले ॥



भगवान-महावीर-चालीसा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करू प्रणाम
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम ॥१॥



सर्व साधू और सरस्वती, जिनमन्दिर सुखकार
महावीर भगवान् को मन मंदिर में धार ॥२॥

जय महावीर दयालु स्वामी, वीर प्रभु तुम जग में नामी
वर्धमान हैं नाम तुम्हारा, लगे हृदय को प्यारा प्यारा ॥३॥

शांत छवि मन मोहिनी मूरत, शांत हंसिली सोहिनी सूरत
तुमने वेश दिगंबर धारा, करम शत्रु भी तुमसे हारा ॥४॥

क्रोध मान वा लोभ भगाया माया ने तुमसे डर खाया
तू सर्वज्ञ सर्व का ज्ञाता, तुझको दुनिया से क्या नाता ॥५॥

तुझमे नहीं राग वा द्वेष, वीतराग तू हित उपदेश

तेरा नाम जगत में सच्चा, जिसको जाने बच्चा बच्चा ॥६॥

भुत प्रेत तुमसे भय खावे, व्यंतर राक्षस सब भाग जावे
महा व्याधि मारी न सतावे, अतिविकराल काल डर खावे ॥७॥

काला नाग होय फन धारी, या हो शेर भयंकर भारी
ना ही कोई बचाने वाला, स्वामी तुम ही करो प्रतिपाला ॥८॥

अग्नि दावानल सुलग रही हो, तेज हवा से भड़क रही हो
नाम तुम्हारा सब दुख खोवे, आग एकदम ठंडी होवे ॥९॥

हिंसामय था भारत सारा, तब तुमने लीना अवतारा
जन्म लिया कुंडलपुर नगरी, हुई सुखी तब जनता सगरी ॥१०॥

सिद्धार्थ जी पिता तुम्हारे, त्रिशाला की आँखों के तारे
छोड़ के सब झँझट संसारी, स्वामी हुए बाल ब्रह्माचारी ॥११॥

पंचम काल महा दुखदायी, चांदनपुर महिमा दिखलाई
टीले में अतिशय दिखलाया, एक गाय का दुध झराया ॥१२॥

सोच हुआ मन में ग्वाले के, पंहुचा एक फावड़ा लेके
सारा टीला खोद गिराया, तब तुमने दर्शन दिखलाया ॥१३॥

जोधराज को दुख ने घेरा, उसने नाम जपा जब तेरा
ठंडा हुआ तोप का गोला, तब सब ने जयकारा बोला ॥१४॥

मंत्री ने मंदिर बनवाया, राजा ने भी दरब लगाया
बड़ी धर्मशाला बनवाई, तुमको लाने की ठहराई ॥१५॥

तुमने तोड़ी बीसों गाड़ी, पहिया खिसका नहीं अगाड़ी
ग्वाले ने जब हाथ लगाया, फिर तो रथ चलता ही पाया ॥१६॥

पहले दिन बैसाख वदी के, रथ जाता है तीर नदी के
मीना गुजर सब ही आते, नाच कूद सब चित उमगाते ॥१७॥

स्वामी तुमने प्रेम निभाया, ग्वाले का तुम मान बढ़ाया
हाथ लगे ग्वाले का तब ही, स्वामी रथ चलता हैं तब ही ॥१८॥

मेरी हैं टूटी सी नैया, तुम बिन स्वामी कोई ना खिवैया
मुझ पर स्वामी ज़रा कृपा कर, मैं हु प्रभु तुम्हारा चाकर ॥१९॥

तुमसे मैं प्रभु कुछ नहीं चाहू, जनम जनम तव दर्शन चाहू
चालिसे को चन्द्र बनावे, वीर प्रभु को शीश नमावे ॥२०॥

नित ही चालीस बार, पाठ करे चालीस
खेय धुप अपार, वर्धमान जिन सामने ॥

होय कुबेर समान, जन्म दरिद्र होय जो
जिसके नहीं संतान, नाम वंश जग में चले ॥



देव-स्तुति



पं. भृष्टरदासजी कृत

अहो जगत गुरु देव, सुनिये अरज हमारी
तुम प्रभु दीन दयाल, मैं दुखिया संसारी ॥१॥

इस भव-वन के माहिं, काल अनादि गमायो
भ्रम्यो चहूँ गति माहिं, सुख नहिं दुख बहु पायो ॥२॥

कर्म महारिपु जोर, एक न कान करै जी
मन माने दुख देहिं, काहूसों नाहिं डरै जी ॥३॥

कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावै
सुर-नर-पशु-गति माहिं, बहुविध नाच नचावै ॥४॥

प्रभु! इनको परसंग, भव-भव माहिं बुरोजी
जो दुख देखे देव, तुमसों नाहिं दुरोजी ॥५॥

एक जन्म की बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी
तुम अनंत परजाय, जानत अंतरजामी ॥६॥

मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे
कियो बहुत बेहाल, सुनिये साहिब मेरे ॥७॥

ज्ञान महानिधि लूट, रंक निबल करि डारो
इनहीं तुम मुझ माहिं, हे जिन! अंतर डारो ॥८॥

पाप-पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी
तन कारागृह माहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥९॥

इनको नेक बिगाड़, मैं कछु नाहिं कियो जी
बिन कारन जगवंद्य! बहुविध बैर लियो जी ॥१०॥

अब आयो तुम पास, सुनि जिन! सुजस तिहारौ
नीति निपुन महाराज, कीजै च्याय हमारौ ॥११॥

दुष्टन देहु निकार, साधुन कौं रखि लीजै
विनवै, 'भूधरदास', हे प्रभु! ढील न कीजै ॥१२॥

अन्वयार्थ : हे जगतुरु ! हमारी एक अरज सुनिए ।

आप तो दीन-दुखियों पर दया करनेवाले हो। (आप मुक्त हो अतः सुखी हो) और मैं दुखिया हूँ, संसारी हूँ। मैंने इस संसाररूपी वन में चारों गाड़ियों में भ्रमण करते-करते अनादि काल अर्थ बिना दिया, फिर भी सुख नहीं पाया बल्कि दुःख हीं बहुत पाया। कर्मरूपी शत्रु अत्यन्त बलशाली है, वह किसी की नहीं सुनता, मनचाहे दुःख देता है, वह किसी से नहीं डरता।

वह कभी तो इतर निगोद में ले जाता है, कभी नरक दिखाता है, कभी देव, मनुष्य और तिर्यचगति में अनेक प्रकार के नाच नचाता है। हे प्रभु! इनका प्रसंग हर भव में बुरा है। इसने जो-जो दुःख दिखलाए हैं वे आपसे छुपे हुए नहीं हैं।

मैं तो आपको एक जन्म की बात भी कह नहीं सकता, (क्योंकि वह भी कहने में असमर्थ हूँ) पर आप तो घट घट की जानेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, अनन्त पर्यायों को जानते हैं; मैं अकेला हूँ, अनाथ हूँ और ये सब कर्म मिलकर बहुत घने हो गए हैं।

हे स्वामी सुनिए, इन्होंने मुझे बेहाल कर दिया है। मेरे ज्ञान-धन को, ज्ञानरूपी महान निधि को इन्होंने लूट लिया है और मुझे निर्बल व दरिंद्र बना डाला है। इस ही कारण आपके और मेरे बीच इतना अंतर/दरार पड़ गई है। इन कर्मों ने पावों में पाप और पुण्य को बेड़ी डाल दी है और मुझे देहरूपी कारागृह में डालकर बहुत दुःख दिए हैं। मैंने इन कर्मों का किंचित् भी, कुछ भी नहीं बिगाड़ा। हे जगत्तंद्य ! ये बिना कारण ही मुझ से अनेक प्रकार की दुश्मनी निकाल रहे हैं, वैर साध रहे हैं। हे प्रभु, हे जिन! मैं आपका सुयश सुनकर अब आपके पास आया हूँ। हे नीति-निपुण (न्याय करने में कुशल), आप ही मेरा न्याय कीजिए। इन दुष्ट कर्मों को निकालकर बाहर कीजिए और सदवृत्तियों को सदगुणों को रख लीजिए। भूरदरास विनती करते हैं - हे प्रभु! अब इसमें विलम्ब मत कीजिए। ढील मत कीजिए।



मेरी-भावना

चुगलकिशोर जी 'मुख्तार'

जिसने राग-द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया,
बुद्ध, वीर जिन, हरि, हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥1॥

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं
निज-पर के हित साधन में जो निशादिन तत्पर रहते हैं,
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुख-समूह को हरते हैं ॥2॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे,
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं
पर-धन-वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ॥3॥

अहंकार का भाव न रखूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या-भाव धरूं,
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूं
बने जहां तक इस जीवन में औरों का उपकार करूं ॥4॥

मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उरसे करुणा स्रोत बहे,
दुर्जन-क्रूर-कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे

साम्यभाव रखूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे ॥5॥

गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे,
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित वृष्टि न दोषों पर जावे ॥6॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे
तो भी न्याय मार्ग से मेरे कभी न पद डिगने पावे ॥7॥

होकर सुख में मग्न न फूलें दुख में कभी न घबरावें
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक-अटवी से नहिं भय खावें,
रहे अडोल-अकंप निरंतर, यह मन, वृद्धतर बन जावे
इष्टवियोग अनिष्टयोग में सहनशीलता दिखलावे ॥8॥

सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग नित्य नए मंगल गावें,
घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्म फल सब पावें ॥9॥

ईति-भीति व्यापे नहीं जगमें वृष्टि समय पर हुआ करे
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे,
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शांति से जिया करे
परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे ॥10॥

फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करे,
बनकर सब युगवीर हृदय से देशोन्नति-रत रहा करे



बारह-भावना



पं. जयचन्द्रजी छावडा कृत

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नय करि गैन ॥१॥

शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय
मोह-उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय ॥२॥

पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध
ताको फल गति चार मैं, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥३॥

परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासे शिव होय ॥४॥

अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय
ऐसें चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय ॥५॥

निर्मल अपनी आत्मा, देह अपावन गेह
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह ॥६॥

आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार
सब विभाव परिणाममय, आस्रवभाव विडार ॥७॥

निजस्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि
समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पाप की हानि ॥८॥

संवरमय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाँय
निजस्वरूप को पाय कर, लोक शिखर जब थाय ॥९॥

लोक स्वरूप विचारिके, आत्म रूप निहारि
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि ॥१०॥

बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥११॥

दर्श-ज्ञानमय चेतना, आत्म धर्म बखानि
दया-क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि ॥१२॥



बारह-भावना



गजा गणा छत्रपति, हथियन के असवार
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार

मं भृष्टरदासस्ती कृत

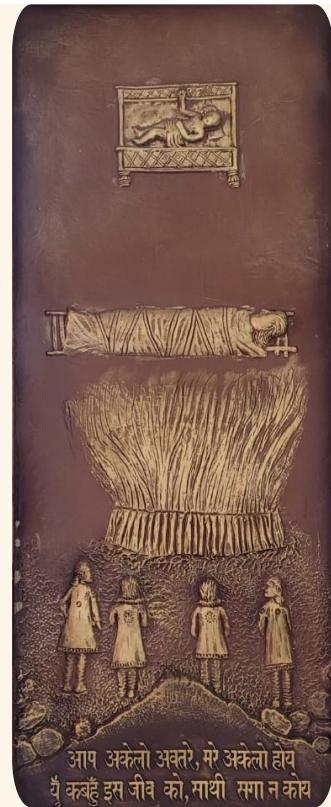
राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार ॥१॥



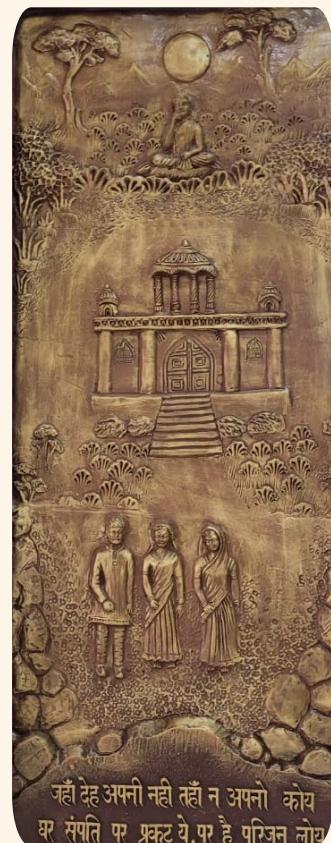
ਦਲ ਬਲ ਦੇਵੀ ਦੇਵਤਾ, ਮਾਤ-ਪਿਤਾ ਪਰਿਵਾਰ
ਮਰਤੀ ਬਿਰਿਧਿਆਂ ਜੀਵ ਕੋ, ਕੋਈ ਨ ਰਾਖਨਹਾਰ ॥੨॥



ਦਾਮ ਬਿਨਾ ਨਿਰਧਨ ਦੁਖੀ, ਤ੃ਣਾ ਵਸ਼ ਧਨਵਾਨ
ਕਹੁਂ ਨ ਸੁਖ ਸੰਸਾਰ ਮੌ, ਸਥ ਜਗ ਦੇਖ੍ਯੋ ਛਾਨ ॥੩॥



आप अकेला अवतरे, मेरे अकेला होय
युँ कबहुँ इस जीव को, मामी सान कोय ॥४॥



जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय
घर सम्पति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥



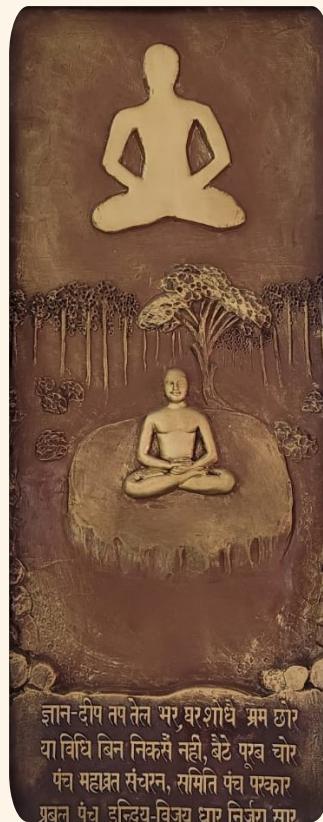
ਦੀਪੈ ਚਾਮ ਚਾਦਰ ਮਢੀ, ਹਾਡ ਪਿੰਜਰਾ ਦੇਹ
ਭੀਤਰ ਧਾ ਸਮ ਜਗਤ ਮੌਂ, ਔਰ ਨਹੀਂ ਘਿਨ ਗੇਹ ॥੬॥



ਮੋਹ ਨੀਂਦ ਕੇ ਜੋਰ ਜਗ ਵਾਸੀ ਘੁੰਸਦਾ
ਕਰਮ ਚੋਰ ਚਹੁੱਂ ਓਰ, ਸਰਵਸ ਲੂਟੇ ਸੁਧ ਨਹੀਂ ॥੭॥



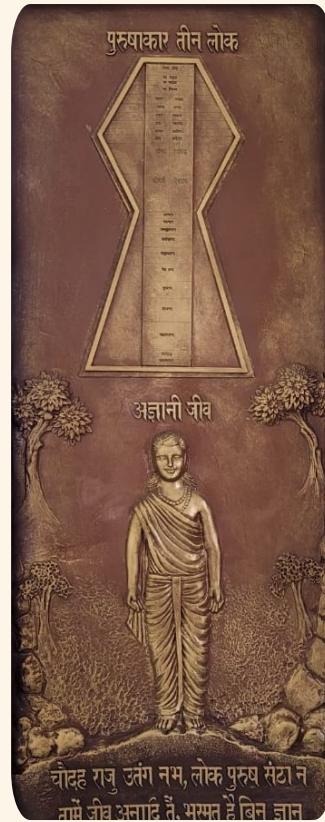
सद्गुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमे
तब कुछ बने उपाय, कर्म-चोर आवत रुके ॥८॥



ज्ञान-दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर
पंच महाव्रत संवरन, समिति पंच फकार
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय शार निर्जिग मार

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर

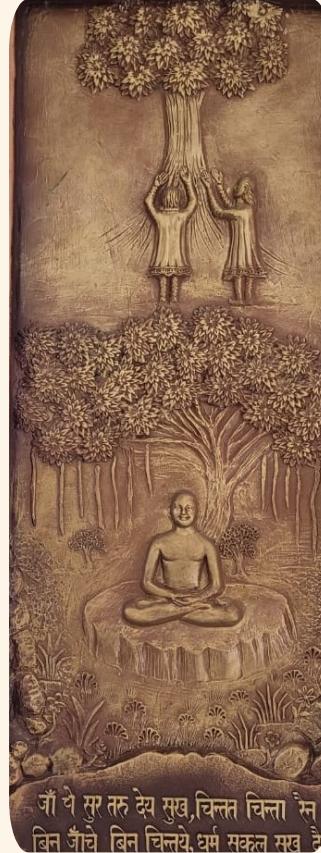
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥९॥



चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान
तामे जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान ॥१०॥



धन कन कंचन राज सुख सबहि सुलभकर जान
दुर्लभ है संसार मे एक जथारथ ज्ञान ॥११॥



जाँचे सुर तरु देय सुख चिंतत चिंता रैन
बिन जाँचे बिन चिंतये धर्म सकल सुख देन ॥१२॥



बारह-भावना



वंदुं श्री अरहंत पद, वीतराग विज्ञान
वरनुं बारह भावना, जग जीवन-हित जान ॥१॥

कहां गये चक्री जिन जीता, भरत खंड सारा
कहां गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा
कहां कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु संपति सगरी
कहां गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी ॥२॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूँझ मरे रण में

गये राज तज पांडव वन को, अग्नि लगी तन में
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को
हो दयाल उपदेश करैं गुरु बारह भावन को ॥३॥

१. अधिर भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै ऋतु फिर फिर कर आवै
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावै
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल, बहकर नहीं हटता
स्वास चलत यों घटे काठ ज्यों, आरे सों कटता ॥४॥
ओस-बूँद ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि पानी
छिन छिन यौवन छीन होत है क्या समझै प्रानी
इंद्रजाल आकाश नगर सम जग-संपति सारी
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी ॥५॥

२. अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को, घेरा भव वन में
नहीं बचावन-हारा कोई यों समझो मन में
मंत्र यंत्र सेना धन सम्पति, राज पाट छूटे
वश नहीं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लुटे ॥६॥
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँहीं उमर खोई ॥७॥

३ संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा -रोग से, सदा दुखी रहता
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता
छेदन भेदन नरक पशु गति, बध बंधन सहना
राग-उदय से दुख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना ॥८॥
भोगि पुण्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली

कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली
मानुष-जन्म अनेक विपत्तिमय, कहीं न सुख देखा
पंचमगति सुख मिलै शुभाशुभ को मेटो लेखा ॥९॥

४ एकत्र भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी
और किसी का क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी
कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक परिवारा
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा ॥१०॥
ज्यों मेले में पंथीजन मिल नेह फिरैं धरते
ज्यों तरकर पैरैन बसेरा पंछी आ करते
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक थक हारै
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै ॥११॥

५ भिन्न भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में मिथ्या जल चमकै
मृग-चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौड़े थक थक कै
जल नहीं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता ॥१२॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी
मिले-अनादि यतनतैं बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना
जौलों पौरुष थकै न तौलों उद्यम सों चरना ॥१३॥

६. अशुद्धि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली
निश दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली
मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी ॥१४॥
काना पौंडा पडा हाथ यह चूसै तो रोवै

फ़्रलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषे बोवै
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी ॥१५॥

७ आस्र भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्र वर्कन को
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को
भावित आस्र भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को ॥१६॥
पन मिथ्यात योग पन्द्रह, द्वादश अविरत जानो
पंचरु बीस कषाय मिले सब सत्तावन मानो
मोहभाव की ममता टारै, पर परनत खोते
करै मोक्ष का यतन निरास्र ज्ञानी जन होते ॥१७॥

८ सर्वर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता
त्यों आस्र को रोकै संवर, क्यों नहीं मन लाता
पञ्च महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को
दश विध धर्म परीषह बाइस, बारह भावन को ॥१८॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्र वर्को खोते
सुपन दशा से जागो चेतन, कहां पड़े सोते
भाव शुभाशुभ रहित, शुद्ध भावन संवर पावै
डांट लगत यह नाव पड़ी, मझधार पार जावै ॥१९॥

९ निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पडे भारी
संवर रोकै कर्म निर्जरा, क्वै सोखनहारी
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली
दूजी है अविपाक पकावै, पाल विषे माली ॥२०॥
पहली सबके होय नहीं, कुछ सरै काम तेरा

दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुक्त रानी
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥२१॥

१० लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो
पुरुषरूप कर कटी भये षट द्रव्यनसों मानों
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है
जीवरू पुद्गल नाचै यामें, कर्म उपाधी है ॥२२॥
पाप पुन्यसों जीव जगत में, नित सुख दुःख भरता
अपनी करनी आप भरै शिर, औरन के धरता
मोहकर्म को नाश मेटकर, सब जग की आशा
निज पद में थिर होय, लोक के, शीश करो वासा ॥२३॥

११ बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रसगति पानी
नरकाया को सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्रानी
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना ॥२४॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै ॥२५॥

१२ धर्म भावना

धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः', ही सच्चा जानो
जो पर को दुःख दे सुख माने, उसे पतित मानो
राग-द्वेष-मद-मोह घटा, आतम-रुचि प्रकटावे
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे ॥२६॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी

सप्त तत्त्व का वर्णन जामें, सबको सुखदानी
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना
'मंगत' इसी जतनतै इकदिन, भावसागर तरना ॥२७॥



महावीर-वंदना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं
जो विपुल विद्मों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं ॥

जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थकर स्वयं महावीर हैं ॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आत्म ध्यान में
जिनके विराट विशाल निर्मल, अचल केवल ज्ञान में ॥

युगपद विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में ॥

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावैं पार है ॥

बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है
उन सर्वदर्शी सन्मति को, वंदना शत बार है ॥

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है ॥

जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है
कर्ता न धर्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है ॥

आत्म बने परमात्मा, हो शांति सारे देश में
है देशना-सर्वोदयी, महावीर के संदेश में ॥



समाधिमरण



पं द्यानतरायपी कृत

गौतम स्वामी बन्दों नामी मरण समाधि भला है
मैं कब पाऊँ निश दिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है ॥
देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने
त्याग बाइस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने ॥१॥

चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधै
बनिज करै पर द्रव्य हरै नहिं छहों कर्म इमि साधै ॥
पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा संयम तप चहुं दानी
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी ॥२॥

जाप जपै तिहुँ योग धरै दृढ़ तनकी ममता टारै
अन्त समय वैराग्य सम्हारै ध्यान समाधि विचारै ॥
आग लगै अरु नाव डुबै जब धर्म विघ्न तब आवै
चार प्रकार आहार त्यागिके मंत्र सु-मन में ध्यावे ॥३॥

रोग असाध्य जरा बहु देखे कारण और निहारै
बात बड़ी है जो बनि आवे भार भवन को टारै ॥
जो न बने तो घर में रहकरि सबसों होय निराला
मात पिता सुत तियको सौंपे निज परिग्रह इति काला ॥४॥

कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देर्इ
क्षमा क्षमा सब ही सों कहिके मनकी शल्य हनर्इ ॥
शत्रुनसों मिल निज कर जौरै मैं बहु कीनी बुराई

तुमसे प्रीतम को दुख दीने क्षमा करो सो भाई ॥५॥

धन धरती जो मुखसों मांगै सो सब दे संतोषै
छहों कायके प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषै ॥
ऊँच नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पै लै
दूधाधारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार पहेलै ॥६॥

छाछ त्यागिके पानी राखै पानी तजि संथारा
भूमि मांहि थिर आसन मांडै साधर्मी ढिग प्यारा ॥
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िये
यों कहि मौन लियो संन्यासी पंच परम पद गहिये ॥७॥

चार अराधन मनमें ध्यावै बारह भावन भावै
दशलक्षण मुनि-धर्म विचारै रत्नत्रय मन ल्यावै ॥
पैतीस सोलह षट पन चारों दुइ इक वरन विचारै
काया तेरी दुख की ढेरी ज्ञानमयी तू सारै ॥८॥

अजर अमर निज गुणसों पूरै परमानंद सुभावै
आनंदकंद चिदानंद साहब तीन जगतपति ध्यावै ॥
क्षुधा तृषादिक होय परीषह सहै भाव सम राखै
अतीचार पाँचों सब त्यागै ज्ञान सुधारस चाखै ॥९॥

हाड़ माँस सब सूख जाय जब धर्मलीन तन त्यागै
अद्भुत पुण्य उपाय स्वर्ग-में सेज उठै ज्यों जागै ॥
तहाँ तैं आवै शिवपद पावै विलसै सुक्ख अनन्तो
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धर्म जयवन्तो ॥१०॥



दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ,
देहांत के समय में, तुमको न भूल जाऊँ ॥टेक॥

शत्रु अगर कोई हो, संतुष्ट उनको कर द्दूँ,
समता का भाव धर कर, सबसे क्षमा कराऊँ ॥१॥

त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर,
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ ॥२॥

जागें नहीं कषाएँ, नहीं वेदना सतावे,
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्वनि को भगाऊँ ॥३॥

आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ,
अरहंत सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ ॥४॥

धरमात्मा निकट हों, चर्चा धरम सुनावें,
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ ॥५॥

जीने की हो न वाँछा, मरने की हो न इच्छा,
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को हटाऊँ ॥६॥

भोगे जो भोग पहिले, उनका न होवे सुमिरन,
मैं राज्य संपदा या, पद इंद्र का न चाहूँ ॥७॥

रत्नत्रय का पालन, हो अंत में समाधि,
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ ॥८॥



बन्दौं श्री अरिहंत परम गुरु, जो सबको सुखदाई
 इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥
 अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माँहीं
 अन्त समय में यह वर मागूँ सो दीजै जगराई ॥१॥

भव-भव में तनधार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो
 भव-भव में नृपरिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो ॥
 भव-भव में तन पुरुष तनों धर, नारी हूँ तन लीनों
 भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतम गुण नहिं चीनों ॥२॥

भव-भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे
 भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पायो विधि योगे ॥
 भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी
 भव-भव में साधर्मीजन को, संग मिल्यो हितकारी ॥३॥

भव-भव में जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो
 भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो ॥
 एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक् गुण नहिं पायो
 ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥४॥

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो
 एक बार हूँ सम्यक् युत मैं, निज आतम नहिं चीनो ॥
 जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काई
 देह विनाशी मैं निजभासी, ज्योति स्वरूप सदाई ॥५॥

विषय कषायनि के वश होकर, देह आपनो जान्यो
 कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो ॥
 यो कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो
 सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो ॥६॥

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों
रोग जनित पीड़ा मत हूवो, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजै ॥७॥

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही धिन आवै
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्ट पावै ॥
अतिदुर्गन्ध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै
देह विनाशी, यह अविनाशी नित्य स्वरूप कहावै ॥८॥

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम! यातैं प्रीति न कीजै
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजै ॥
मृत्यु भये से हानि कौन है, याको भय मत लावो
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ॥९॥

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माँहीं
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै ॥१०॥

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥
राग द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई
अन्त समय में समता धारो, परभव पंथ सहाई ॥११॥

कर्म महादुठ बैरी मेरो, ता सेती दुख पावै
तन पिंजरे में बंद कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै ॥
भूख तृष्णा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजर सों काढ़े ॥१२॥

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहिराये

गन्ध-सुगन्धित अतर लगाये, षट्-रस अशन कराये ॥
रात दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥१३॥

मृत्युराज को शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ
जामें सम्यक्-रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाँहीं
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥१४॥

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पत्ति तेती ॥१५॥

चौ-आराधन सहित प्राण तज, तो ये पदवी पावो
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थश्वर, स्वर्ग मुकति में जावो ॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥१६॥

इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है
तेज कान्ति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै
तापर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावे ॥१७॥

मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्यो पर्यो बिललावै ॥
पुद्गल के परमाणु मिलकैं, पिण्डरूप तन भासी
या है मूरत मैं अमूरती, ज्ञान जोति गुण खासी ॥१८॥

रोग शोक आदि जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे ॥

या तन सों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है
खानपान दे याको पोष्यो, अब समभाव ठन्यो है ॥१९॥

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो ॥
तन विनाश तें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई
कुटुम आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई ॥२०॥

अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी ॥
इष्टनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल लागे
मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागे ॥२१॥

बिन समता तन अनंत धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो
शस्त्र घाततैं नन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥
बार अनन्त ही अग्नि माँहिं जर, मूँवो सुमति न लायो
सिंह व्याघ्र अहि नन्तबार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥२२॥

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई
मृत्युराज को भय नहिं मानों, देवै तन सुखदाई ॥
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै
जप-तप बिन इस जग के माँहीं, कोई भी ना सीजै ॥२३॥

स्वर्ग सम्पदा तप सों पावै, तप सों कर्म नसावै
तप ही सों शिवकामिनि पति है, यासों तप चित लावै ॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई
मात-पिता सुत बाँधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥२४॥

मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है
आरत तैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है ॥
और परिग्रह जेते जग में तिनसों प्रीत न कीजै

परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजै ॥२५॥

जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो ॥
परभव में जो संग चलै तुझ, तिन सों प्रीत सु कीजै
पञ्च पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै ॥२६॥

दशलक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो
षोडशकारण को नित चिन्तो, द्वादश भावन भावो ॥
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो ॥२७॥

अन्त समय में यह शुभ भावहिं, होवैं आनि सहाई
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई ॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाके
जा सेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके ॥२८॥

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ-आराधन भाई
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं ॥
आगैं बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥२९॥

तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै
भाव सहित वन्दौं मैं तासों, दुर्गति होय न ताकै ॥
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यानहिये विच लावै ॥३०॥

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत पाँव भर्खो दुखकारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३१॥

धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३२॥

देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगनि बहु बारी
शीश जले जिम लकड़ी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३३॥

सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ठ वेदना व्यापी
छिन्न-भिन्न तन तासों हूँवो, तब चिंतो गुण आपी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३४॥

श्रेणिक सुत गंगा में झूबो, तब जिननाम चितारो
धर सल्लेखना परिग्रह छाँड़ो, शुद्ध भाव उर धारो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३५॥

समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
ता दुख में मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यो निजगुण भाई
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३६॥

ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशाम्बी तट जानो
नद्दी में मुनि बहकर मूँवे, सो दुख उन नहिं मानो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३७॥

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो
एक मास की कर मर्यादा, तृष्णा दुःख सह गाढो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३८॥

श्रीदत्त मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्यो साधु मन लाके
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३९॥

वृषभसेन मुनि उष्णशिला पर, ध्यान धरो मन लाई
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४०॥

अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई
शत्रु चण्ड ने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४१॥

विद्युच्चर ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी
शुभ भावन सों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४२॥

पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घातो
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४३॥

दण्डक नामा मुनि की देही बाणन कर अरि भेदी

तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४४॥

अभिनन्दन मुनि आदि पाँचसौ, घानी पेलि जु मारे
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरब कर्म विचारे
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४५॥

चाणक मुनि गोगृह के माँहीं, मूँद अगिनि परजालो
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हालो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४६॥

सात शतक मुनिवर दुख पायो, हस्तिनापुर में जानो
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४७॥

लोहमयी आभूषण गढ़ के, ताते कर पहराये
पाँचों पाण्डव मुनि के तन में, तौ भी नाहिं चिगाये
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४८॥

और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी
वे ही हमको हों सुखदाता, हर हैं टेक प्रमादी ॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये आराधन चारों
ये ही मोंको सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥४९॥

यों समाधि उर माँहीं लावो, अपनो हित जो चाहो
तज ममता अरु आठों मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो ॥

जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजै
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै ॥५०॥

मात-पितादिक सर्व कुटुम मिल, नीके शकुन बनावै
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै ॥
एक ग्राम जाने के कारण, करै शुभाशुभ सारे
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे ॥५१॥

सर्वकुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावैं सारे
ये अपशकुन करैं सुन तोकौं, तू यों क्यों न विचारे ॥
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्म ध्यान उर आनो
चारों आराधन आराधो मोह तनो दुख हानो ॥५२॥

है निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो
जब परगति को करहु पयानो, परमतत्त्व उर लावो ॥
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥५३॥

दोहा

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिमान
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द्र शिवथान ॥
पञ्च उभय नव एक नभ, संवत् सो सुखदाय
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ॥



दर्शन-स्तुति

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन ॥

अन्वयार्थ : सम्पूर्ण पदार्थों के जानने वाले होने पर भी जो अपनी आत्मा के आनन्द रूपी रस में लीन रहते हैं तथा जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मों से रहित हैं, वे जिनेन्द्र भगवान हमेशा जयवंत हों।



**जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर
जय ज्ञान अनंतानंत धार, द्वग-सुख-वीरजमण्डित अपार ॥१॥**

अन्वयार्थ : जो रागद्वेष से रहित हैं, विशिष्ट ज्ञान से पूर्ण हैं, मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य के समान हैं, जो अनन्तानन्त ज्ञान को धारण किये हैं और अनंतदर्शन, अनंतसुख व अनंतवीर्य से सुशोभित हैं। उन प्रभु की जय हो।

**जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत
भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय ॥२॥**

अन्वयार्थ : जो अत्यन्त शांत मुद्रा से सहित हैं, उनकी जय हो। भव्य जीवों को अपनी आत्मा का ज्ञान कराने में कारण हैं। भव्य जीवों के भाग्य से और वचन योग के निमित्त से जिनकी दिव्य ध्वनि होती है। जिसको सुनकर जीवों का मोह (मिथ्यात्व) नष्ट हो जाता है।

**तुम गुण चिंतत निज-पर विवेक, -प्रकटै विघटै आपद अनेक
तुम जगभूषण दूषण-विमुक्त, सब महिमा-युक्त विकल्प-मुक्त ॥३॥**

अन्वयार्थ : आपके गुणों का चिन्तवन करने से स्व-पर का ज्ञान प्रकट होता है और अनेक प्रकार की आपत्तियाँ नष्ट होती हैं। आप संसार के आभूषण खरूप हैं, दोषों से रहित हैं और सभी प्रकार की महिमा से युक्त, रागादिक परिणामों से रहित हैं।

**अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप
शुभ-अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणिमय अक्षीण ॥४॥**

अन्वयार्थ : हे भगवान् ! आप विरोध से रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं, अत्यन्त पावन परमात्म रूप हैं, अनुपम हैं, शुभ-अशुभ विभावों का अभाव करने वाले हैं। स्वाभाविक परिणाम से सहित हैं और क्षय से रहित हैं।

**अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवल-लब्धिरमा धरंत ॥५॥**

अन्वयार्थ : हे भगवान् ! आप अठारह दोषों से रहित हैं, अटल हैं, अपने स्वचतुष्टय से सुशोभित हैं, समुद्र के समान गम्भीर हैं। मुनि और गणधर आदि भी आपकी सेवा करते हैं, आप केवलज्ञान आदि नव क्षायिक लब्धिरूपी लक्ष्मी को धारण किये हुये हैं।

**तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि ॥६॥**

अन्वयार्थ : हे भगवान् ! आपके मोक्षमार्ग रूपी शासन की सेवा करके अनन्तों जीव मोक्ष को प्राप्त हुये हैं, वर्तमान में जा रहे हैं और हमेशा जावेंगे। संसार रूपी समुद्र में खारे पानी के समान दुख से निकालने के लिये आपको छोड़कर कोई दूसरा नहीं है।

**यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज ।
जाने तातै मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥७॥**

अन्वयार्थ : इस प्रकार देखकर, कि अपने दुःख रूपी रोग को नष्ट करने के लिये आपका निमित्त ही इलाज स्वरूप है। अतः ऐसा जानकर मैं आपकी शरण में आया हूँ एवं जो मैंने अनादिकाल से दुःख प्राप्त किये हैं, उनको कहता हूँ।

**मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप
निज को पर का करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥८॥**

अन्वयार्थ : मैं अपनी ज्ञानस्वभावी आत्मा को भूलकर अपने आप ही संसार में भ्रमण कर रहा हूँ और मैंने कर्मों के फल पुण्य और पाप को अपना लिया है। अपने को पर का कर्ता मान लिया है, और अपना कर्ता पर को मान लिया है और पर-पदार्थों में से ही कुछ को इष्ट मान लिया है और कुछ को अनिष्ट मान लिया है।

**आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि
तन परिणति में आपो चितार, कबहुँ न अनुभवो स्वपदसार ॥९॥**

अन्वयार्थ : परिणामस्वरूप प्रज्ञान को धारण करके स्वयं ही आकुलित हुआ हूँ, जिस प्रकार कि हरिण मृगतृष्णावश बालू को पानी समझकर अपने अज्ञान से ही दुःखी होता है। शरीर की दशा को ही अपनी दशा मानकर अपने पद (आत्म-स्वभाव) का अनुभव नहीं किया।

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश
पशु नारक नर सुरगति मँझार, भव धर-धर मर्यो अनंत बार ॥१०॥

अन्वयार्थ : हे जिनेश! आपको पहिचाने बिना जो दुःख मैंने पाये हैं, उन्हें आप जानते ही हैं। तिर्यच गति, नरक गति, मनुष्य गति और देव गति में उत्पन्न होकर अनन्त बार मरण किया है।

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व, चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद ॥११॥

अन्वयार्थ : अब काललब्धि के आने पर आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, इससे मुझे बहुत ही प्रसन्नता है। मेरा अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो गया है और मेरा मन शान्त हो गया है और मैंने दुःखों को नाश करने वाली आत्मानुभूति को प्राप्त कर लिया है।

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव ॥१२॥

अन्वयार्थ : अतः हे नाथ! अब ऐसा करो जिससे आपके चरणों के साथ का वियोग न हो (तात्पर्य यह है कि जिस मार्ग (आचरण) द्वारा आप पूर्ण सुखी हुए हैं, मैं भी वही प्राप्त करूँ)। हे देव! आपके गुणों का तो कोई अन्त नहीं है और संसार से पार उतारने को तो आप ही ख्याति प्राप्त हैं।

आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन ॥१३॥

अन्वयार्थ : आत्मा का अहित करने वाली पाँचों इन्द्रियों के विषयों में लीनता और कषायें हैं। हे प्रभो! मैं चाहता हूँ कि इनकी ओर मेरा झुकाव न हो। मैं तो अपने में ही लीन रहूँ, जिससे मैं पूर्ण स्वाधीन हो जाऊँ।

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप ॥१४॥

अन्वयार्थ : मेरे हृदय में और कोई इच्छा नहीं है, बस एक रत्नत्रय निधि ही पाना चाहता हूँ। मेरे हित रूपी कार्य के निमित्त कारण आप ही हो। मेरा मोह-ताप नष्ट होकर कल्पाण हो, यही भावना है।

शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय ॥१५॥

अन्वयार्थ : जैसे चन्द्रमा स्वयमेव गर्मी कम करके शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार आपकी स्तुति करने से स्वयमेव ही आनन्द प्राप्त होता है। जैसे अमृत के पीने से रोग चला जाता है, उसी प्रकार आपका अनुभव करने से संसार-रूपी रोग चला जाता है।

त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज ॥१६॥

अन्वयार्थ : तीनों लोकों में और तीनों कालों में आपके समान सुखदायक (सन्मार्गदर्शक) और कोई नहीं है। ऐसा आज मुझे निश्चय हो गया है कि आप ही दुःख-रूपी समुद्र से पार उतारने वाले जहाज हो।

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार
'दौल' स्वत्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सँभार ॥

अन्वयार्थ : आपके गुणों-रूपी मणियों को गिनने में गणधर देव भी समर्थ नहीं हैं, तो फिर मैं (दौलतराम) अल्पबुद्धि उनका वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ। अंतः मैं आपको मन, वचन और काय को सँभाल कर बार-बार नमस्कार करता हूँ।



मिथ्यातम नासवे को, ज्ञान के प्रकासवे को,
आपा-पर भासवे को, भानु-सी बखानी है ।
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध-विधि भानवे को,
स्व-पर पिछानवे को, परम प्रमानी है ॥

अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को,
काहूं न सतायवे को, भव्य उर आनी है ।
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को,
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है ॥

हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिन रैन,
जो तेरी शरणा गहै, सो पावे सुख चैन ।
जा वाणी के ज्ञान तें, सूझे लोकालोक,
सो वाणी मस्तक नवों, सदा देत हों ढोक ॥



आराधना-पाठ



पं. ज्ञानतरायजी कृत

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं ।
मैं सुर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं ॥
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना ।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना ॥१॥

चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं ।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदितैं पातक नसैं ॥
गिरनार शिखर समेद चाहूँ, चम्पापुर पावापुरी ।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी ॥२॥

नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं ।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासों भय हरों ॥

पूजा परम जिनराज चाहुँ, और देव नहीं कदा ।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहुँ, पाप नहिं लागे कदा ॥३॥

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहुँ भाव सों ।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहुँ, महा हरख उछाव सों ॥
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहुँ प्रीति सों ।
मैं नित अठाई पर्व चाहुँ, महामंगल रीति सों ॥४॥

मैं वेद चारों सदा चाहुँ, आदि अन्त निवाह सों ।
पाये धरम के चार चाहुँ, अधिक चित्त उछाह सों ।
मैं दान चारों सदा चाहुँ, भुवनवशि लाहो लहुँ ।
आराधना मैं चार चाहुँ, अन्त में ये ही गहुँ ॥५॥

भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं ।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहुँ, त्याग भाव उद्योत हैं ॥
प्रतिमा दिग्म्बर सदा चाहुँ, ध्यान आसन सोहना ।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहुँ, शिव लहुँ जहुँ मोह ना ॥६॥

मैं साधुजन को संग चाहुँ, प्रीति तिनहीं सों करौं ।
मैं पर्व के उपवास चाहुँ, और आरँभ परिहरौं ॥
इस दुखद पंचमकाल माहिं, सुकुल श्रावक मैं लह्यौ ।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ ॥७॥

आराधना उत्तम सदा चाहुँ, सुनो जिनराय जी ।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी ॥
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुद्घको दीजिये ।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये ॥८॥



आर्हत-वंदना



तुम चिरंतन, मैं लघुक्षण
लक्ष वंदन, कोटी वंदन ॥

जागरण तुम, मैं सुषुप्ति
दिव्यतम् आलोक हो प्रभु,
मैं तमिस्ता हूँ अमा की,
क्षीण अन्तर, क्षीण तन-मन ॥लक्ष...॥

शोध तुम, प्रतिशोध रे ! मैं
क्षुद्र-बिन्दु विराट हो तुम,
अज्ञ मैं पामर अधमतम
सर्व जग के विज्ञ हो तुम,
देव ! मैं विक्षिप्त उन्मन ॥लक्ष...॥

चेतना के एक शाश्वत
मधु मंदिर उच्छ्वास ही हो
पूर्ण हो, पर अज्ञ को तो
एक लघु प्रतिभास ही हो
दिव्य कांचन, मैं अकिंचन ॥लक्ष...॥

व्याधि मैं, उपचार अनुपम
नाश मैं, अविनाश हो रे !
पार तुम, मङ्गधार हूँ मैं
नाव मैं, पतवार हो रे !
मैं समय, तुम सार अर्हन् ! ॥लक्ष...॥



आलोचना-पाठ



दोहा

वंदो पांचो परम - गुरु, चौबिसों जिनराज
कर्सूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज ॥१॥

सखी छन्द

सुनिए जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी
तिनकी अब निवृति काजा, तुम शरण लही जिनराजा ॥२॥

इक बे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा
तिनकी नहि करुणा धारी, निरदई हो घात विचारी ॥३॥

समरम्भ समारंभ आरम्भ, मन वच तन कीने प्रारम्भ
कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्य धरिके ॥४॥

शत आठ जु इमि भेदनतै, अघ कीने परिछेदन तै
तिनकी कहुं कोलो कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥

विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के
वश होय घोर अघ कीने, वचतै नहि जाय कहीने ॥६॥

कुगुरुन की सेवा किनी, केवल अदया करि भीनी
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँ गति मधि दोष उपायों ॥७॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सो द्रग जोरी
आरम्भ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८॥

सपरस रसना घ्रानन को, द्रग कान विषय सेवन को
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥९॥

फल पञ्च उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये
नहि अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुव्यसन दुखकारे ॥१०॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यो त्यों करि उदर भरायो ॥११॥

अनन्तानुबन्धी सो जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश गुनिये ॥१२॥

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई
फिर जागी विषय वन धायो, नाना विध विष फल खायो ॥१४॥

आहार विहार निहारा, इनमे नहि जतन विचारा
बिन देखि धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो
कछु सुधि बुधि नाहि रही है, मिथ्यामति छाय गई हैं ॥१६॥

मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी
भिन भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषै सब पइये ॥१७॥

हा हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहि लीनी ॥१८॥

पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो ॥१९॥

हा हा ! मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी
तामधि जीवन के खंदा, हम खाए धरी आनंदा ॥२०॥

हा हा ! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई
तामध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥

बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो
झाड़ू ले जागाँ बुहारी, चींटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी
नहिं जल थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥

जल मल मोरिन गिरवायो, क्रमि कुल बहु घात करायो
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥

अन्नादिक शोध कराई, तातें जु जीव निसराई
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥२५॥

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरम्भ हिंसा साजै
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी ॥२६॥

इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवंता
संतति चिरकाल उपाई, वाणी तै कहिय न जाई ॥२७॥

ताको जु उदय अब आयो, नाना विध मोहि सतायो
फल भुंजत जिय दुःख पावै, वचतै कैसे करि गावै ॥२८॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी
हम तो तुम शरण लहि है, जिन तारन विरद सही हैं ॥२९॥

इक गाँवपति जो होवे, सो भी दुखिया दुःख खोवै

तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी ॥३०॥

द्रोपदी को चीर बढायो, सीता प्रति कमल रचायो
अंजन से किये अकामी, दुःख मेटो अंतरजामी ॥३१॥

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनों विरद सम्हारो
सब दोष रहित करि स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥

इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ
रागादिक दोष हरिजे, परमात्म निज पद दीजे ॥३३॥

दोहा

दोष रहित जिनदेव जी, निज पद दीज्यो मोय
सब जीवन के सुख बढ़े, आनन्द मंगल होय ॥
अनुभव माणिक पारखी, जौहरी आप जिनन्द
येही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द ॥



दुखहरन-विनती



पं वन्दवनदासजी कृत

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुम्हारा बाना है
मत मेरी बार अबार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है ॥टेक॥

त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुम सों कछु बात न छाना है
मेरे उर आरत जो वरतैं, निहचैं सब सो तुम जाना है ॥१॥

अवलोक विथा मत मौन गहो, नहिं मेरा कहीं ठिकाना है
हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मैं तुमसों हित ठाना है ॥२॥

सब ग्रंथनि में निरग्रंथनि ने, निरधार यही गणधार कही

जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक ज्ञानमही ॥३॥

यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही
क्यों मेरी बारी बिलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही ॥४॥

काहू को भोग मनोग करो, काहू को स्वर्ग विमाना है
काहू को नाग नरेशपती, काहू को ऋद्धि निधाना है ॥५॥

अब मो पर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है
इंसाफ करो मत देर करो, सुखवृन्द भरो भगवाना है ॥६॥

खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है
तुम ही समरत्य न न्याय करो, तब बंदे का क्या चारा है ॥७॥

खल घालक पालक बालक का नृपनीति यही जगसारा है
तुम नीतिनिपुण त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है ॥८॥

जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमही को माना है
तुमरे ही शासन का स्वामी, हमको शरना सरधाना है ॥९॥

जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसौं जमराज डराना है
यह सुजस तुम्हारे सांचे का, सब गावत वेद पुराना है ॥१०॥

जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है
अघ छोटा मोटा नाशि तुरत, सुख दिया तिन्हें मनमाना है ॥११॥

पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढ़ा असमाना है
भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है ॥१२॥

चिंतामणि पारस कल्पतरु, सुखदायक ये सरधाना है
तव दासन के सब दास यही, हमरे मन में ठहराना है ॥१३॥

तुम भक्तन को सुर इंदपदी, फिर चक्रपती पद पाना है
क्या बात कहों विस्तार बड़ी, वे पावै मुक्ति ठिकाना है ॥१४॥

गति चार चुरासी लाख विषें, चिन्मूरत मेरा भटका है
हो दीनबंधु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है ॥१५॥

जब जोग मिला शिवसाधन का, तब विघ्न कर्म ने हटका है
तुम विघ्न हमारे दूर करो सुख देहु निराकुल घट का है ॥१६॥

गज-ग्राह-ग्रसित उद्धार किया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है
ज्यों सागर गोपदरूप किया, मैना का संकट टारा है ॥१७॥

ज्यों सूलीतें सिंहासन औ, बेड़ी को काट बिडारा है
त्यौं मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है ॥१८॥

ज्यों फाटक टेकत पायं खुला, औ सांप सुमन कर डारा है
ज्यों खड़ग कुसुम का माल किया, बालक का जहर उतारा है ॥१९॥

ज्यों सेठ विपत चकचूरि पूर, घर लक्ष्मी सुख विस्तारा है
त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु, मोकूं आस तुम्हारा है ॥२०॥

यद्यपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है
चिन्मूरति आप अनंतगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है ॥२१॥

तद्यपि भक्तन की भीरि हरो, सुख देत तिन्हें जु सुहाना है
यह शक्ति अचिंत तुम्हारी का, क्या पावै पार सयाना है ॥२२॥

दुखखंडन श्रीसुखमंडन का, तुमरा प्रण परम प्रमाना है
वरदान दया जस कीरत का, तिहुंलोक धुजा फहराना है ॥२३॥

कमलाधरजी! कमलाकरजी! करिये कमला अमलाना है
अब मेरि विथा अवलोकि रमापति, रंच न बार लगाना है ॥२४॥

हो दीनानाथ अनाथ हितू, जन दीन अनाथ पुकारी है
उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है ॥२५॥

ज्यों आप और भवि जीवन की, तत्काल विथा निरवारी है
त्यों 'वृदावन' यह अर्ज करै, प्रभु आज हमारी बारी है ॥२६॥



अमूल्य-तत्त्व-विचार



पं युगलजी कृत

राग : यमन कल्पण

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला
तो भी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला ॥१॥

सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है ॥२॥

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिए
परिवार और कुटुंब है क्या? वृद्धि नय पर तोलिए ॥३॥

संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है ॥४॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, लो जहाँ भी प्राप्त हो
यह दिव्य अंतस्तत्त्व जिससे, बंधनों से मुक्त हो ॥५॥

पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात जिसके दुःख भरा ॥६॥

मैं कौन हूँ आया कहाँ से! और मेरा रूप क्या?
संबंध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ॥७॥

इसका विचार विवेक पूर्वक, शांत होकर कीजिए
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धांत का रस पीजिए ॥८॥

किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है ॥९॥

तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिए
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिए ॥१०॥

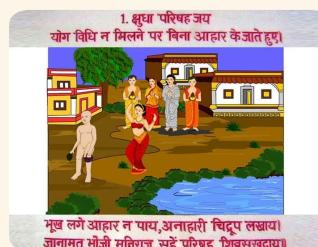


बाईस-परीषह



आ. ज्ञानमती कृत

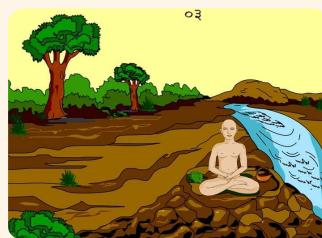
देवशास्त्र गुरु को नमू नमू जोड़ के हाथ
द्वाविंशति परिषह लिखूं लखूं स्वात्म सुखनाथ ॥
आप आप में नित बसूं मिटे सकल परिताप
निज आतम वैभव भजूं संजूं आपको आप ॥



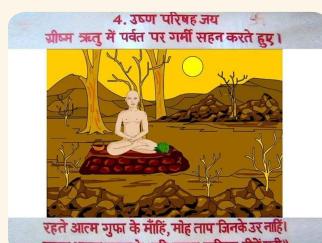
अग्नि शिखा सम क्षुदा वेदना, मुनिजन वन में सहते हैं
बेला तेला पक्ष मास का, अनशन कर तप तपते हैं
नरक पशुगति क्षुदा वेदना, का नित चिन्तन करते हैं
इस विधि आतम चिंतनकर नित, क्षुदा परिषह सहते हैं ॥१॥



ग्रीष्मकाल में तन तपने से, प्यास सताती यतियों को
तपा तपा तन कर्म खिपाते, चहुंगति पीर मिटाने को ॥
प्यास पीर को चीर चीरकर, शांति नीर को पीते हैं
इस विधि मुनिजन प्यास परिषह, ग्रीष्म ऋतु में सहते हैं ॥२॥



कप कप कप कपती रहती, शीत पवन से देह सदा
तथापि आतम चिंतवन में वे, कहते मम यह काय जुदा ॥
शीतकाल में सरिता तट पर, ऋषिगण ध्यान लगाते हैं
कर्मिधन को जला जलाकर, शीत परिषह सहते हैं ॥३॥



तप्त धरातन अन्तरतल में, धग धग धग धग करती है
उपर नीचे आगे पीछे, दिशि में तप तप तपता है ॥
तप्तशिला पर बैठे साधुजन, तथापि तपरत रहते हैं
निर्जन वन में अहो निरंतर, उष्ण परिषह सहते हैं ॥४॥



दंश मक्षिका की परिषह को, मुनिजन वन में सहते हैं
रात समय में खड़े-खड़े वे, आत्म चिंतवन करते हैं ॥
डांस मक्खियां मुनि तन पर जब, कारखून को पीते हैं
नहीं उड़ाकर उन जीवों पर, समता रख नित सहते हैं ॥५॥



नग्न तन पर कीड़े निश दिन, चढ़कर डसते रहते हैं
दुष्ट लोग भी नग्न मुनिश्वर, समता धर नित सहते हैं ॥
इन सबको वे नग्न देखकर, खिलखिलकर हंसते रहते हैं
निर्विकार बन निरालम्ब मुनि, नग्न परिषह सहते हैं ॥६॥



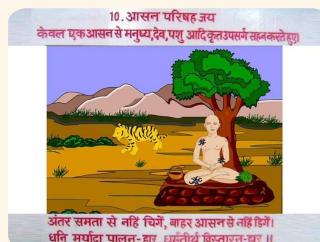
तन रति तजकर तपरत होकर, मुनि जब वन में रहते हैं
कूर प्राणिजन सदा मुनि के, निकट उपस्थित रहते हैं ॥
तथापि आगमरूपी अमृत, पी मुनि ध्यान लगाते हैं
अमृत पीकर निर्भय होकर, अरति परिषह सहते हैं ॥७॥



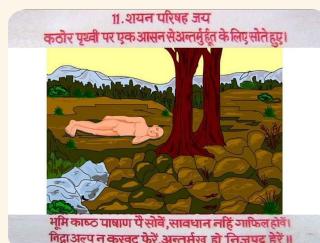
काम वाण से उद्रेकित, यौवन वती वनिता आती है
निर्जन वन में देख मुनि को, मधुर स्वरों में गाती है ॥
तथापि अविचल निर्विकार मुनि, वनिता परिषह सहते हैं
आत्म ब्रह्म में दृढ़तर रह मुनि, कर्म निर्जरा करते हैं ॥८॥



कंकर पत्थर चुभकर पथ में, घाव बना कर पगतल में
कमलपत्र सम कोमल पग से, खून बह रहा जंगल में ॥
तथापि मुनिजन मुक्तिरमा से, रति रख चलते रहते हैं
मुमुक्षु बनकर मोक्षमार्ग में, चर्या परिषह सहते हैं ॥९॥



गिरि गुफा या कानन में जब, कठिनासन पर ऋषि रहते
कई उपद्रव होने पर भी, आसन विचलित नहि करते ॥
अचलासन पर अपने मन को, स्थापित अपने में करते
मुक्तिरमा पाने को मुनि, निषध्या परिषह को सहते ॥१०॥



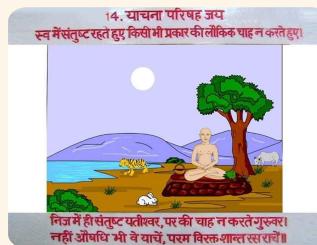
ध्यान परिश्रम शम करने यति, दो घड़ी निशि में सोते हैं
तथापि मन को वश रख निद्रा, एक करवट से लेते हैं ॥
तदा मुनि पर महा उपद्रव, वन पशु करते रहते हैं
तथापि करवट अविचल रखकर, शाय्या परिषह सहते हैं ॥११॥



अज्ञानी जन गाली देकर, पागल कह कर हँसते हैं
 वचन तिरस्कार कह फिर नंगा, लुच्चा कहते रहते हैं ॥
 दुष्टों से मुनि गाली सुनकर, जरा भी क्लेश नहीं करते
 समता सागर बन मुनि इस, आक्रोश परिषह को सहते ॥१२॥



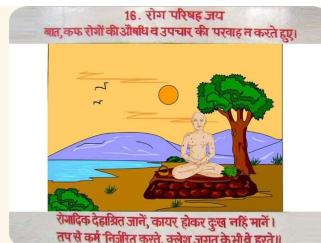
सघन वनों में व शहरों में, जब मुनि विहार करते हैं
 दुष्ट जनों के वध बन्धन, ताड़न भी पथ सहते हैं ॥
 प्राण हरण करने वाले उस, वध परिषह को सहते हैं
 क्षमता रख मुनि मौन धार कर, कर्म निर्जरा करते हैं ॥१३॥



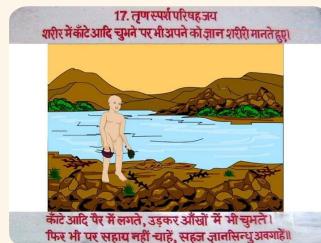
अहो कलेवर सूख गया है, रोग भ्यानक होने से
 तथापि मुनिवर अनशन करते, भय नहीं रखते कर्मों से ॥
 ऐसे मुनिवर पुर में आ जब, अहो पारणा करते हैं
 औषधि जल तक नहीं याचना, करते परिषह सहते हैं ॥१४॥



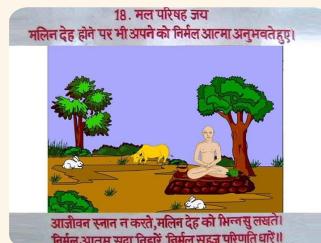
पक्ष मास का अनशन कर मुनि, गमन नगर में जब करते
 अन्नादिक का लाभ नहीं होने, पर तब वापिस आते ॥
 उस दिन उदराग्नि की पीड़ा, क्षण-क्षण पल-पल में सहते
 अहोसाधना पथ पर इस विध, अलाभ परिषह मुनि सहते ॥१५॥



भस्म भगंदर कुष्ट रोग के, होने पर भी नहीं डरते
सतत वेदना रहने पर भी, उसका इलाज नहीं करते ॥
जन्म जरा जो महारोग का, निशिदिन इलाज करते हैं
तन रोगों पर समता रख कर, रोग परिषह सहते हैं ॥१६॥



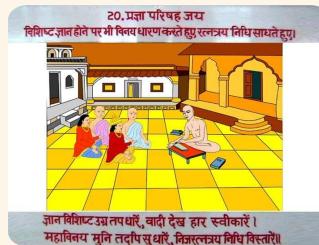
शुष्क पत्र जल कण तन पर, गिरने से खुजली चलती रहती
तथापि मुनिवर नहीं खुजाते, वह तो चलती ही रहती ॥
कण-कण कंकर कंटक चुभते, गमन समय में जंगल में
इस तृण स्पर्श परिषह सह मुनि, कर्म खिपाते पल-पल में ॥१७॥



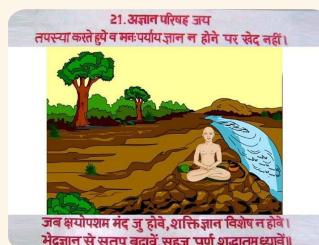
पाप कर्म मल विनाश करने, मल परिषह मुनि नित सहते
जल जीवों पर दया धारकर, स्नान को हमेशा तजते ॥
श्रुत गंगा में वीतराग जल से, स्नान किया करते
तथापि मुनिवर अर्धजले, शव के सम निशदिन हैं दिखते ॥१८॥



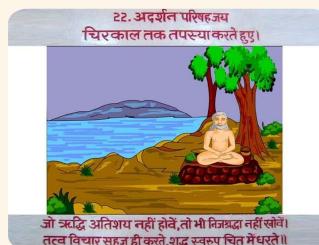
मुनि की स्तुति नमन प्रशंसा, करना यह सुन है सत्कार
 आगे रखकर पीछे चलना, पुरस्कार हैं गुण भंडार ॥
 परन्तु यदि कोई जग मे, स्तुति या विनयादिक नहीं करते
 पुरस्कार सत्कार परिषह को, नित तब मुनि है सहते ॥१९॥



मैं पंडित हूँ ज्ञानी हूँ मैं, द्वादशांग का पाठी हूँ
 इस जग में महाकवि हूँ, सब तत्त्वों का ज्ञाता हूँ ॥
 इस विध बुध मुनि कदापि मन में, वृथा गर्व नहीं करते हैं
 निरभिमान हो मोक्षमार्ग में, प्रज्ञा परिषह सहते हैं ॥२०॥



अहो सुनो यह ज्ञानहीन मुनि, वृथा जगत में तप तपता
 कठिन तपस्या करने पर भी, श्रुत में विकास नहीं दिखता ॥
 इस विध मुनि को मूढ़मति जन, वचन तिरस्कृत कर कहते
 तदा कर्म का पाक समझ, अज्ञान परिषह मुनि सहते ॥२१॥



मैं तप तपता दीर्घकाल से, पर कुछ अतिशय नहीं दिखता
 सुरजन अतिशय करते कहना, मात्र कथन ही है दिखता ॥
 इस विध द्वगधारी मुनि मन में, कलूष भावना ही रखते हैं
 पर वांछा को छोड़ अदर्शन, परिषह नित मुनि सहते हैं ॥२२॥



सामायिक-पाठ



आ.अमितगति कृत, हिंदी पद्धानुवाद - पुगलजी

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥

((अमितगति आचार्य कृत; हिंदी पद्धानुवाद पं रविन्द्रजी))

मेरा आतम सब जीवों पर, मैत्री भाव करे
गुण-गण मंडित भव्य जनों पर, प्रमुदित भाव रहे ॥
दीन दुखी जीवों पर स्वामी, करुणा भाव करे
और विरोधी के ऊपर नित, समता भाव धरे ॥१॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! मेरी आत्मा हमेशा संपूर्ण जीवों में मैत्रीभाव, गुणीजनों में हर्षभाव, दुःखी जीवों के प्रति दयाभाव और विपरीत व्यवहार करने वाले शत्रुओं के प्रति माध्यस्थभाव को धारण करे।

शरीरतः कर्तुमनंतशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्
जिनेंद्र कोषादिव खड्गयष्टि, तत्र प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥

तुम प्रसाद से हो मुझमें वह, शक्ति नाथ जिससे
अपने शुद्ध अतुल बलशाली, चेतन को तन से ॥
पृथक कर सकूँ पूर्णतया मैं, ज्यों योद्धा रण में
खींचे निज तलवार म्यान से, रिपु सन्मुख क्षण में ॥२॥

अन्वयार्थ : हे जिनेंद्रदेव ! म्यान से तलवार को निकालने के समान दोषों से रहित और अनंत शक्तिमान इस आत्मा को शरीर से पृथक करने में आपके प्रसाद से मुझे शक्ति प्राप्त होवे।

दुःखे सुखे वैरिणि बंधुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा
निराकृताशेष-ममत्व-बुद्धेः, समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥

छोड़ा है सब में अपनापन, मैनें मन मेरा
बना रहे नित सुख में दुख में, समता का डेरा ॥
शत्रु मित्र में मिलन विरह में, भवन और वन में
चेतन को जाना न पड़े फिर, नित नूतन तन में ॥३॥

अन्वयार्थ : हे नाथ ! संपूर्ण वस्तु में ममत्व बुद्धि से रहित मेरा मन दुःख-सुख में, बैरी और बंधुजनों में, संयोग-वियोग में अथवा महल में या वन में निरंतर ही समता भाव धारण करे।

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निखाताविव विम्बिताविव
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो-धुनानौ हृदि दीपिकाविव ॥४॥

अंधकार नाशक दीपक सम, अडिग चरण तेरे
अहो विराजे रहें हमेशा, उर में ही मेरे ॥
हो मुनीश वे घुले हुए से या कीलित जैसे
अथवा खुदे हुए से हों या प्रतिबिंबित जैसे ॥४॥

अन्वयार्थ : हे मुनियों के ईश ! आपके दोनों चरण-कमल मेरे हृदय में हमेशा के लिये लीन के समान, कीलित हुए के समान, गढ़े हुए के समान, प्रतिबिंबित हुये के समान और अंधकार को दूर करते हुये दीपक के समान स्थित हो जावें ।

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः
क्षताः विभिन्ना मिलिता निपीडितास्-तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥

हो प्रमादवश जहां तहां यदि, मैने गमन किया
एकेन्द्रिय आदिक जीवों को, घायल बना दिया ॥
प्रथक किया या भिडा दिया हो, अथवा दबा दिया
मिथ्या हो दुष्कृत वह मेरा, प्रभुपद शीश किया ॥५॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! इधर-उधर संचार करते हुये एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि जीवों को यदि मैने प्रमाद से क्षति पहुंचाई हो (नष्ट किया हो), अलग-अलग किया हो, मिला दिया हो या दुःख दिया हो तो वह मेरा असत् व्यवहार मिथ्या हो ।

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिनाः, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया
चारित्र शुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥

चल विरुद्ध शिवपथ के मैने, जो दुर्मति होके
होके वश में दुष्ट इन्द्रियों, और कषायों के ॥
खंडित की जो चारित शुद्धि वह, दुष्कृत निष्फल हो
मेरा मन भी दुर्भावों को तजकर निर्मल हो ॥६॥

अन्वयार्थ : मोक्षमार्ग के प्रतिकूल चलने वाले दुर्भुद्धि से मैने कषाय और इंद्रियों के आधीन होकर चारित्र की शुद्धि का जो लोप किया है हे प्रभो ! वह मेरा सब दुष्कृत मिथ्या होवे ।

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचः कायकषायनिर्मितम्
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥

मंत्र शक्ति से वैद्य उतारें, ज्यों अहिविष सारा
त्यों अपनी निंदा गर्हा व, आलोचन द्वारा ॥
मन वच तन से या कषाय से, संचित अघ भारी
भव दुख कारण नष्ट करूँ मैं, होकर अविकारी ॥७॥

अन्वयार्थ : मन, वचन, काय और कषाय से निर्मित चतुर्गति दुःख के कारण ऐसे सर्व पापों का मैं मंत्र गुणों के द्वारा जैसे वैद्य विष को दूर कर देता है वैसे नाश करता हूँ ।

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र-कर्मणः
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

धर्म क्रिया में मुझे लगा जो, कोइ अघकारी
अतिक्रम व्यतिक्रम अतीचार या अनाचार भारी ॥
कुमति प्रमाद निमित्तक उसका, प्रतिक्रमण करता
प्रायश्चित्त बिना पापों को कौन कहाँ धरता ॥८॥

अन्वयार्थ : हे जिनराज ! सम्पूर्ण चारित्र में जो मोह और प्रमाद से मैने अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार किया है, उस दोष की शुद्धि के लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ ।

क्षतिं मनः-शुद्धि-विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शील-व्रतेर्विलङ्घनम्
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

चित्त शुद्धि की विधि की क्षति को, अतिक्रमण कहते
शील बाढ़ के उल्लंघन को, व्यतिक्रमण कहते ॥
त्यक्त विषय के सेवन को प्रभु, अतिचार कहते
विषयासक्तपने को जगमें अनाचार कहते ॥९॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो ! मन की शुद्धि की हानि को अतिक्रम, शील की बाढ़ का उल्लंघन कर देने को व्यतिक्रम, विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार और इन विषयों में ही अति आसक्ति होने को अनाचार ऐसा-आपके शासन में कहते हैं ।

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

शास्त्र पठन में मेरे द्वारा, यदि जो कहीं कहीं
प्रमाद से कुछ अर्थ वाक्य पद मात्रा छूट गई ॥
सरस्वती मेरी उस त्रुटि को कृप्या क्षमा करे
और मुझे कैवल्यधाम में माँ अविलम्ब धरे ॥१०॥

अन्वयार्थ : मैंने प्रमाद से जो कुछ भी अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से हीन कहा हो उस कमी को क्षमा करके सरस्वती देवी तुम मुझे केवलज्ञान-लब्धि प्रदान करो ।

**बोधि: समाधि: परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने, त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि! ॥११॥**

वांछित फलदात्री चिंतामणि सद्वश मात! तेरा
वंदन करने वाले मुझको मिले पता मेरा ।
बोधि, समाधि, विशुद्ध भावना, आत्मसिद्धि मुझ्यको
मिले और मैं पा जाऊँ माँ! मोक्ष-महासुख को ॥११॥

अन्वयार्थ : हे सरस्वती देवि ! चिंतित वस्तु को देने में चिंतामणि स्वरूप ऐसी आपकी वन्दना करने वाले मुझे रक्त्रय की प्राप्ति, समाधि, परिणामों की शुद्धि, अपने शुद्ध आत्मा की प्राप्ति और मोक्षसुख की सिद्धि होवे ।

**यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दै, र्यः स्तूयते सर्वनराऽमरेन्द्रै:
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥**

सब मुनिराजों के समूह भी, जिनका ध्यान करें
सुरों नरों के सारे स्वामी, जिन गुणगान करें ॥
वेद पुराण शास्त्र भी जिनके, गीतों के डेरे
वे देवों के देव विराजें, उर में ही मेरे ॥१२॥

अन्वयार्थ : जिनका सर्व मुनिनाथ स्मरण करते हैं, जिनकी सर्व मनुष्य और सुरेंद्रगण स्तुति करते हैं, जिनका वेद, पुराण और शास्त्रों में वर्णन किया जाता है, वे देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान होवें ।

**यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्त-संसार-विकारबाह्यः
समाधिगम्यः परमात्मसञ्ज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥**

जो अनंत द्रग ज्ञान स्वरूपी सुख स्वभाव वाले
भव के सभी विकारों से भी जो रहे निराले ॥
जो समाधि के विषयभूत हैं परमात्म नामी
वे देवों के देव विराजें मम उर में स्वामी ॥१३॥

अन्वयार्थ : जो अनंतदर्शन, अनंतज्ञान और अनंत सुख-स्वभावी हैं, संपूर्ण संसार के विकारों से बहिर्भूत हैं, योगियों के ध्यान में ही जाने जाते हैं और 'परमात्मा' इस नाम को प्राप्त है वे देवाधिदेव मेरे हृदय में निवास करें ।

**निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥**

जो भव दुख का जाल काटकर, उत्तम सुख वरते
अखिल विश्व के अंतःस्थल का अवलोकन करते ॥
जो निज में लवलीन हुए प्रभू ध्येय योगियों के
वे देवों के देव विराजें मम उर के होके ॥१४॥

अन्वयार्थ : जिन्होंने भवदुःखों के समूह को नष्ट कर दिया है, जो सर्व-जगत के अंतराल को देखते हैं, जो अध्यात्म ध्यान में रत हुए योगियों के द्वारा देखे जाते हैं, वे देवाधिदेव मेरे हृदय में निवास करें ।

**विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥**

मोक्ष मार्ग के जो प्रतिपादक, सब जग उपकारी
जन्म मरण के संकटादि से, रहित निर्विकारी ॥

त्रिलोकदर्शि दिव्यशरीरी, सब कलंक नाशी
वे देवों के देव विराजें मम उर में अविनाशि ॥१५॥

अन्वयार्थ : जो मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करने वाले हैं, जो जन्म-मृत्यु के दुःख से छूट चुके हैं, तीनों-लोकों को देखने वाले हैं, शरीर-रहित हैं और कर्म-कलंक रहित हैं वे देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान रहें।

**क्रोडीकृताऽशेष-शरीरिवर्गा, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥**

आलिंगित हैं जिनके द्वारा, जग के सब प्राणी
वे रागादिक न जिनके, सर्वोत्तम ध्यानी ॥
इन्द्रिय रहित परम ज्ञानी जो, अविचल अविनाशी
वे देवों के देव विराजें मम उर के ही वासी ॥१६॥

अन्वयार्थ : जिन्होंने सर्व संसारी जीवों को अपने अधीन कर रखा है, ऐसे ये राग-द्वेष आदि दोष जिनके नहीं हैं, जो इन्द्रियों से रहित ज्ञानस्वरूप और दुःखरहित हैं, वे देवदेव मेरे हृदय में निवास करें।

**यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धृतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥**

जग कल्याणी परिणति से जो, व्यापक गुण राशी
भावी सिद्ध विबुद्ध जिनेश्वर, करुण पाश नाशी ॥
जिसने ध्येय बनाया उसके, सकल दोष हारी
वे देवों के देव विराजें, मम उर में अविकारी ॥१७॥

अन्वयार्थ : जो संसार के संपूर्ण व्यापारों में व्यापक है, सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, कर्मबंध से रहित हैं और जिनका ध्यान करने से संपूर्ण विभाव भाव नष्ट हो जाते हैं, वे देवाधिदेव मेरे हृदय में निवास करें।

**न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः, यो ध्वान्तसङ्घैरिव तिग्मरश्मिः
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥**

कर्म कलंक दोष भी जिनको, कभी न छू पाते
ज्यों रवि के सन्मुख न कभी भी, तम समूह आते ॥
नित्य निरंजन जो अनेक हैं, और एक भी हैं
उन अरहंत देव की मैनें सुखद शरण ली है ॥१८॥

अन्वयार्थ : जो अंधकार-समूह से स्पर्शित नहीं हुये सूर्य के समान कर्मरूपी कलंक दोषों से स्पर्शित नहीं होते हैं, कर्मजिन से रहित हैं, नित्य हैं, अनेक हैं और एक हैं उन सच्चे-देव की मैं शरण लेता हूँ।

**विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥**

जगत प्रकाशक जिनके रहते सूर्य प्रभाधारी,
किंचित भी ना शोभा पाता जिनवर अविकारी ॥
निज आत्म में हैं जो सुस्थित, ज्ञान प्रभाशाली
उन अरहंत देव की मैनें सुखद शरण पा ली ॥१९॥

अन्वयार्थ : जिनके विद्यमान रहने पर सूर्य भी शोभायमान नहीं होता है, जो अपनी आत्मा में ही स्थित है, ज्ञानरूप प्रकाश से युक्त है, उन आपत देव की मैं शरण लेता हूँ।

**विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥**

जिनका दर्शन पा लेने पर, प्रकट झलक आता
अखिल विश्व से भिन्न आत्मा, जो शाश्वत ज्ञाता
शुद्ध शांत शिवरूप आदि या अंत विहीन बली
उन अरहंत देव की मुझको अनुपम शरण मिली ॥२०॥

अन्वयार्थ : जिनको देख लेने पर यह लोक-अलोक से भेदरूप जगत् स्पष्ट देख लिया जाता है, जो शुद्ध हैं, शांत हैं, शिव हैं, अनादि और अनंत हैं, उन सच्चे देव की मैं शरण लेता हूँ।

येन क्षता मन्मथमानमूर्छा, विषादनिद्राभय-शोक-चिन्ता:
क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस्, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

जो मद मदन ममत्व शोक भय, चिंता दुख निद्रा
जीत चुके हैं निज पौरुष से, कहती जिनमुद्रा ॥
ज्यों दावानल तरु समूह को शीघ्र जला देता
उन अरहंत देव की मैं भी सुखद शरण लेता ॥२१॥

अन्वयार्थ : जैसे अग्नि से वृक्षों का समूह जल जाता है वैसे ही जिन्होंने काम, मान, मूर्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक और चिंता को नष्ट कर दिया है उन आप्तदेव की मैं शरण लेता हूँ ।

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः
यतो निरस्ताक्षकषाय-विद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२॥

ना पलाल पाषाण न धरती, हैं संस्तर कोई
ना विधि पूर्वक रचित काठ का पाटा भी कोई ॥
कारण इन्द्रिय वा कषाय रिपु, जीते जो ध्यानी
उसका आत्म ही शुचि संस्तर माने सब ज्ञानी ॥२२॥

अन्वयार्थ : साधु के लिये संस्तर न पश्चर की शिला है, न घास-पुवाल है, न पृथ्वी है और विधान से बनाया गया पाटा भी नहीं है क्योंकि बुद्धिमानों ने इन्द्रिय और कषायों को जीतने वाला आत्मा ही अत्यंत निर्मल माना है ।

न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च सङ्घमेलनम्
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३॥

ना समाधि का साधन संस्तर, नहीं लोकपूजा
ना मुनिसंघों का सम्मेलन, या कोई द्वजा ॥
इसीलिये हे भद्र सदा तुम, आत्म लीन बनों
तज बाहर की सभी वासना, कुछ ना कहो सुनो ॥२३॥

अन्वयार्थ : हे भद्र ! ये संस्तर समाधि के साधन नहीं हैं, न लोक पूजा और न संघ का संमेलन ही समाधि का साधन है, जिस कारण ऐसा है उसी कारण तुम सदा अध्यात्म में लीन होवो, सभी बाह्य वासना को छोड़कर ।

न सन्ति बाह्या मम केचनार्थ, भवामि तेषां न कदाचनाहम्
इत्यं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै ॥२४॥

पर पदार्थ कोई ना मेरे, ये होंगे ना हैं
और कभी उनका त्रिकाल में हो पाऊँगा मैं ॥
ऐसा निर्णय करके पर के, चक्कर को छोडो
स्वस्थ रहो नित भद्र मुक्ति से तुम नाता जोडो ॥२४॥

अन्वयार्थ : बाहरी कोई भी पदार्थ मेरे नहीं हैं और मैं भी उन किसी का नहीं हूँ ऐसा निश्चय करके हे भव्य ! तुम बाह्य पदार्थों को छोड़कर मुक्ति प्राप्ति के लिये सदा अपने आत्मा में स्थित होवो ।

आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्, त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

तुम अपने में अपना दर्शन, करने वाले हो
दर्शन ज्ञानमयी शुद्धात्म, पर से न्यारे हो ॥
जहाँ कहीं भी बैठे मुनिवर, अविचल मनधारी
वहाँ समाधी लगे उनकी जो, उनको अति प्यारी ॥२५॥

अन्वयार्थ : आत्मा को आत्मा में देखते हुये तुम दर्शन ज्ञानमय हो, विशुद्ध हो क्योंकि जिस समय साधु एकाग्रचित्त होते हैं, उस समय समाधि को प्राप्त कर लेते हैं ।

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

नित एकाकी मेरा आतम, नित अविनाशी है
निर्मल दर्शन ज्ञान स्वरूपी, स्वपर प्रकाशी है ॥
देहादिक या रागादिक जो, कर्म जनित दिखते
क्षण भंगुर हैं वे सब मेरे, कैसे हो सकते ॥२६॥

अन्वयार्थ : मेरा आता सदा अकेला है, अविनाशी है, कर्मल से रहित है और ज्ञान-स्वभावी है अन्य सभी बाहरी भाव या पदार्थ अविनाशी नहीं हैं (क्षणिक हैं) और ये अपने द्वारा संचित कर्म के निमित्त से ही हुये हैं।

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि साद्व, तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपा, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥२७॥

जहाँ देह से नहीं एकता, तो जीवन साथी
वहाँ मित्र सुत वनिता कैसे हो मेरे साथी ॥
इस काया से ऊपर से यदि, चर्म निकल जाए
रोम छिद्र तब कैसे इसके बीच ठहर पाए ॥२७॥

अन्वयार्थ : जिसका शरीर के साथ भी ऐक्य नहीं है उसका पुत्र, स्त्री, मित्रों से कैसा ऐक्य ? क्योंकि चमड़े को अलग कर देने पर शरीर में रोमछिद्र कैसे रहेंगे ?

संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्रुते जन्मवने शरीरी
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥

भव वन में संयोगों से यह, संसारी प्राणी
भोग रहा है कष्ट अनेकों कह न सके वाणी ॥
अतः त्याज्य है मन वच तन से वह संयोग सदा
उसको जिसको इष्ट हितैषी मुक्ति विगत विपदा ॥२८॥

अन्वयार्थ : यह संसारी प्राणी जिस हेतु से इस जन्मरूपी वन में संयोग से अनेक प्रकार के दुःख भोगता है, उसी कारण आत्मा से संबंधित सुख को प्राप्त करने के इच्छुक को वह संयोग मन, वचन, काय से छोड़ देना चाहिये।

सर्वं निराकृत्य विकल्प-जालं, संसार-कान्तार- निपातहेतुम्
विविक्तमात्मानमवेक्ष्य-माणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥

भव वन में पड़ने के कारण, हैं विकल्प सारे
उनका जाल हटाकर पहुँचो शिवपुर के द्वारे ॥
अपने शुद्धात्म का दर्शन तुम करते करते
लीन रहो परमात्म तत्त्व में दुःखो को हरते ॥२९॥

अन्वयार्थ : संसाररूपी वन में गिराने में कारण ऐसे संपूर्ण विकल्प समूह को दूर करके अपनी आत्मा को पर से भिन्न देखने वाले, तुम परमात्म तत्त्व में लीन हो जाओ।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

किया गया जो कर्म पूर्व में, स्वयं जीव द्वारा
उसका ही फल मिले शुभाशुभ, अन्य नहीं चारा
औरों के कारण यदि प्राणी, सुख दुख को पाता
तो निज कर्म अवश्य ही, निष्फल हो जाता ॥३०॥

अन्वयार्थ : पहले इस जीव ने कर्म जो स्वयं किये हैं उन्हीं का अच्छा या बुरा फल प्राप्त करता है यदि पर के द्वारा दिये गये फल को भोगता है तब तो अपने द्वारा किये हुये कर्म व्यर्थ हो जावेंगे ?

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन
विचारयन्नेव-मनन्यमानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ॥३१॥

अपने अर्जित कर्म बिना इस प्राणी को जग में
कोइ अन्य न सुख दुख देता, कहीं किसी डग पे ॥
ऐसा अडिग विचार बनाकर, तुम निज को मोडो
अन्य मुझे सुख दुख देता है ऐसी हठ छोडो ॥३१॥

अन्वयार्थ : प्राणियों को अपने द्वारा अर्जित कर्म का छोड़कर कोई भी किसी को कुछ नहीं देता है; ऐसा विचार करते हुये अन्य में मन न लगाकर दूसरा देता है ऐसी बुद्धि को छोड़ो ।

**यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः, सर्वविविक्तो भृशमनवन्द्यः
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥**

परमात्म सबसे न्यारे हैं, अतिशय अविकारी
संत अमितगति से वंदित हैं, शम दम समधारी ॥
जो भी भव्य मनुज प्रभुवर को, नित उर में लाते
वे निश्चित ही उत्तम वैभव मोक्ष महल पाते ॥३२॥

अन्वयार्थ : जो अमितगति से वंदनीय, सर्व पर-पदार्थों से भिन्न, अत्यंत निर्दोष, परमात्मा का हमेशा मन में चिंतवन करते हैं, वे वैभव से परिपूर्ण मुक्ति-स्थान को प्राप्त कर लेते हैं ।

**इति द्वात्रिंशतावृत्तैः, परमात्मानमीक्षते
योऽनन्यगत-चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम् ॥३३॥**

(दोहा)

जो ध्याता जगदीश को, लेय पद बत्तीस
अचल चित्त होकर वही, बने अचल पद ईश ॥३३॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार इन बत्तीस पदों के द्वारा जो एकाग्रचित्त होकर परमात्मा का अवलोकन करता है, वह कभी नष्ट नहीं होने वाले अविनाशी पद को प्राप्त कर लेता है ।



सामायिक-पाठ



कविवर महाचंद्र कृत

१. प्रतिक्रमण कर्म

काल अनंत भ्रम्यो जग में सहिये दुःख भारी,
जन्म मरण नित किये पाप को है अधिकारी,
कोटि भवांतर मांहि मिलन दुर्लभ सामायिक,
धन्य आज मैं भयो जोग मिलियो सुखदायक ॥
हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब,
ते सब मन वच काय योग की गुप्ति बिना लभ,
आप समीप हजूर मांहि मैं खडो खडो सब,
दोष कहुं सो सुनो करो नठ दुःख देहि जब ॥
क्रोध मान मद लोभ मोह मायावश प्रानी,

दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहि आनी,
बिना प्रयोजन एक इन्द्रि बि ति चउ पंचेंद्रिय,
आप प्रसादहि मिटे दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥
आपस में इक ठौर थापि करी जे दुःख दीने,
पेलि दिये पगतलें दाबि करी प्राण हरीने,
आप जगत के जीव जिते तिन सब के नायक,
अरज करुं मैं सुनो, दोष मेटो दुःखदायक ॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय,
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय,
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि,
यह पडिकोणो कियो आदि षटकर्ममांहि विधि ॥

२. प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमाद वश होय विराधे जीव घनेरे,
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे,
सो सब झूठो होहु जगतपति के परसादै,
जा प्रसादतैं मिले सर्व सुख, दुःख न लाधैं ॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ,
किये पाप अति घोर पापमति होय चित्त दुठ,
निंदू हूं मैं बारबार निज जिय को गरहूं,
सब विधि धर्म उपाय पाय फिरि पापहि करहूं ॥
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी,
सत्संगति संयोग धर्म जिन श्रद्धा धारी,
जिन वचनामृत धार समावर्ते जिनवानी,
तो हूं जीव संहारे धिक् धिक् धिक् हम जानी ॥
इन्द्रियलंपट होय खोय निज ज्ञानजमा सब,
अज्ञानी जिम करै तिसी विधि हिंसक है अब,
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले,
ते सब दोष किये निंदूं अब मन-वच तोले ॥
आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे,

ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे,
बारबार इस भाँति मोह मद दोष कुटिलता,
ईर्षादिकतैं भये निंदिये जे भयभीता ॥

३. सामायिक कर्म

सब जीवन में मेरे समता भाव जग्यो है,
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है,
आर्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक,
संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायिक ॥
पृथिवी जल अर अग्नि वायु चउकाय वनस्पति,
पंचहि थावरमांहिं तथा त्रसजीव बसैं जित,
बे इन्द्रिय तिय चउ पंचेन्द्रिय मांहिं जीव सब,
तिनसैं क्षमा कराऊं मुझ पर क्षमा करो अब ॥
इस अवसर में मेरे सब सम कंचन अरु तृण,
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहु सम गण,
जन्म मरन समान जान हम समता कीनी,
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी ॥
मेरो है इक आतम तामैं ममत जु कीनो,
और सबै मम भिन्न जानि समता रस भीनो,
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह,
मोतैं न्यारे जानि यथारथ रूप कर्यो गह ॥
मैं अनादि जगजाल मांहि फँसि रूप न जाण्यो,
एकेन्द्रिय दे आदि जंतु को प्राण हराण्यो,
ते अब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी,
भवभव को अपराध क्षमा कीज्यो करी मरजी ॥

४. स्तवन कर्म

नमौं रिषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको,
संभव भवदुःखहरन करन अभिनंद शर्मको,
सुमति सुमतिदातार तार भवसिंधु पार कर,

पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीतिप्रीति धर ॥
श्री सुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर,
श्री चंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांति धर,
पुष्पदंत दमि दोषकोष भवि पोष रोष हर,
शीतल शीतल-करन हरन भवताप दोष हर ॥
श्रेयरूप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन,
वासुपूज्य शत पूज्य वासवादिक भवभय हन,
विमल विमलमति देन अंतगत है अनन्त जिन,
धर्म शर्म शिवकरन शांति जिन शांति विधायिन ॥
कुंथु कुंथुमुख जीवपाल अरनाथ जालहर,
मल्लि मल्लसम मोहमल्ल मारन प्रचारधर,
मुनिसुव्रत व्रतकरन नमत सुरसंघहि नमि जिन,
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथ मांहि ज्ञानधन ॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपल सम मोक्ष रमापति,
वर्द्धमान जिन नमौं वमौं भवदुःख कर्मकृत,
या विधि मैं जिनसंघ रूप चउवीस संख्य धर,
स्तवूं नमूं हूं बारबार वंदूं शिवसुखकर ॥

५. वंदना कर्म

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति,
वर्द्धमान अतिवीर वंदिहौं मनवचतनकृत,
त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं
वंदूं नित प्रति कनकरूपतनु पाप निकंदूं ॥
सिद्धारथ नृपनंद द्वंद दुःख दोष मिटावन,
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उद्धारन,
कुंडलपुर करि जन्म जगत जिय आनंदकारन,
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सबही दुःख-टारन ॥
सप्त हस्त तनु तुंग भंग कृत जन्ममरनभय,
बाल ब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय,
दे उपदेश उद्धारि तारि भवसिंधु जीवघन,

आप बसे शिवमांहिं ताहि वंदौ मनवचतन ॥
जाके वंदन थकी दोष दुःख दूरहि जावे,
जाके वंदन थकी मुक्तितिय सन्मुख आवे,
जाके वंदन थकी वंद्य होवैं सुरगनके,
ऐसे वीर जिनेश वंदि हौं क्रमयुग तिनके ॥
सामायिक षट्कर्ममांहिं वंदन यह पंचम,
वंदूँ वीर जिनेंद्र इन्द्रशतवंद्य वंद्य मम,
जन्ममरण भय हरो करो अघशांति शांतिमय,
मैं अघकोश सुपोष दोष को दोष विनाशय ॥

६. कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करुं अंतिम सुखदाई,
काय यजनमय होय काय सबको दुखदाई,
पूरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं,
जिनगृह वंदन करुं हरुं भव पापतिमिर मैं ॥
शिरोनती मैं कर्स्न नमूं मस्तक कर धरिकैं,
आवतार्दिक क्रिया करुं मनवच मद हरिकैं,
तीनलोक जिनभवन मांहिं जिन हैं जु अकृत्रिम,
कृत्रिम हैं द्वयअर्द्धद्वीप मांहिं वंदौं जिम ॥
आठकोडिपरि छप्न लाख जु सहस सत्याणुं,
च्यारि शतक परि असी एक जिनमंदिर जाणुं,
व्यंतर ज्योतिष मांहि संख्यरहिते जिनमंदिर,
जिनगृह वंदन करुं हरहु मम पाप संघकर ॥
सामायिक सम नाहि और कोउ वैर मिटायक,
सामायिक सम नाहि और कोउ मैत्रीदायक,
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक,
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुःखहानक ॥
जे भवि आतम काजकरण उद्यम के धारी,
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी,

राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब,
बुध 'महाचंद्र' बिलाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥



सामायिक-पाठ



प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो
करुणा-स्रोत बहें दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥१॥

यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥२॥

सुख-दुख, वैरी-बन्धु वर्ग में, काँच-कनक में समता हो
वन-उपवन, प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो ॥३॥

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ
वह सुंदर-पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥४॥

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ॥५॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जायें सद्ग्रावों से ॥६॥
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत
अपनी निंदा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त ॥७॥

सत्य-अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया ।
व्रत-विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया ॥८॥
कभी वासना की सरिता का, गहन-सलिल मुझ पर छाया ।
पी-पी कर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया ॥९॥

मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया ॥१०॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे
निर्मल जल की सरिता-सद्वश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥११॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥१२॥

दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये
परम ध्यान गोचर परमात्म, परम देव मम हृदय रहे ॥१३॥
जो भवदुःख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥१४॥
मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत ।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥१५॥

निखिल-विश्व के वशीकरण जो, राग रहे ना द्वेष रहे
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे ॥१६॥
देख रहा जो निखिल-विश्व को, कर्मकलंक विहीन विचित्र
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥१७॥
कर्मकलंक अछूत न जिसको, कभी छू सके दिव्यप्रकाश
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१८॥
जिसकी दिव्यज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्यप्रकाश
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१९॥
जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ
आदि-अन्त से रहित शान्त शिव, परमशरण मुझको वह आप्त ॥२०॥
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव
भय-विषाद-चिन्ता नहीं जिसके, परम शरण मुझको वह देव ॥२१॥
तृण, चौकी, शिल-शैल, शिखर नहीं, आत्मसमाधि के आसन ।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ॥२२॥
इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम
हेय सभी है विषय वासना, उपादेय निर्मल आत्म ॥२३॥
बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥२४॥
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास
जग का सुख तो मृग-तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥२५॥
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है
जो कुछ बाहर है, सब 'पर' है, कर्माधीन विनाशी है ॥२६॥
तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत-तिय-मित्रों से कैसे
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ॥२७॥

महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग
मोक्ष-महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥२८॥

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प-जालों को छोड़
निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व आतमा, फिर-फिर लीन उसी में हो ॥२९॥

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते
करें आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ॥३०॥

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि ॥३१॥

निर्मल, सत्य, शिव, सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥३२॥

दोहा

इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमात्म को ध्याते हैं
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं ॥



निर्वाण-कांड



मेया भगवतीदास कृत

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय
कहुं कांड निर्वाण की भाषा सुगम बनाय ॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामी, बासु पूज्य चंपापुरनामी
नेमिनाथस्वामी गिरनार वंदो, भाव भगति उरधार ॥१॥

चरम तीर्थकर चरम शरीर, पावापुरी स्वामी महावीर
शिखर सम्मेद जिनेसुर बीस, भाव सहित वंदौं निशदीस ॥२॥

वरदतराय रूइंद मुनिंद, सायरदत्त आदिगुणवृंद
नगरतारकर मुनि उठकोडि, वंदौ भाव सहित करजोडि ॥३॥

श्री गिरनार शिखर विष्वात, कोडि बहत्तर अरू सौ सात

संबु प्रदुम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय ॥4॥

रामचंद्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिंद आदि गुण धीर
पांचकोड़ि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि वंदौ निरधार ॥5॥

पांडव तीन द्रविड़ राजान आठकोड़ि मुनि मुक्तिपयान
श्री शत्रुंजय गिरि के सीस, भाव सहित वंदौ निशादीस ॥6॥

जे बलभद्र मुक्ति में गए, आठकोड़ि मुनि औरहु भये
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहूं काल ॥7॥

राम हण् सुग्रीव सुडील, गवगवाख्य नीलमहानील
कोड़ि निष्यान्वे मुक्ति पयान, तुंगीगिरी वंदौ धरिध्यान ॥8॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पांच कोड़ि अरू अर्ध प्रमान
मुक्ति गए सोनागिरि शीश, ते वंदौ त्रिभुवनपति इस ॥9॥

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गए रेवातट सार
कोड़ि पंच अरू लाख पचास ते वंदौ धरि परम हुलास ॥10॥

रेवा नदी सिद्धवरकूट, पश्चिम दिशा देह जहां छूट
द्वै चक्री दश कामकुमार, उठकोड़ि वंदौं भवपार ॥11॥

बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरिचूल उतंग
इंद्रजीत अरू कुंभ जु कर्ण, ते वंदौ भवसागर तर्ण ॥12॥

सुवरण भद्र आदि मुनि चार, पावागिरिवर शिखर मंझार
चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गयैं वंदौं नित तास ॥13॥

फलहोड़ी बड़ग्राम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप
गुरु दत्तादि मुनिसर जहां, मुक्ति गए बंदौं नित तहां ॥14॥

बाली महाबाली मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय
श्री अष्टपद मुक्ति मंझार, ते वंदौं नितसुरत संभार ॥15॥

अचलापुर की दिशा ईसान, जहां मेंढगिरि नाम प्रधान
साड़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चितलाय ॥16॥

वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥17॥

जशरथराजा के सुत कहे, देश कलिंग पांच सो लहे
कोटिशिला मुनिकोटि प्रमान, वंदन करूं जौर जुगापान ॥18॥

समवसरण श्री पार्श्वजिनेंद्र, रेसिंदीगिरि नयनानंद
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वंदौं नित धरम जिहाज ॥19॥

सेठ सुदर्शन पटना जान, मथुरा से जम्बू निर्वाण
चरम केवलि पंचमकाल, ते वंदौं नित दीनदयाल ॥20॥

तीन लोक के तीरथ जहां, नित प्रति वंदन कीजे तहां
मनवचकाय सहित सिरनाय, वंदन करहिं भविक गुणगाय ॥21॥

संवत् सतरहसो इकताल, आश्विन सुदी दशमी सुविशाल
'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाण कांड गुणमाल ॥22॥



देव-शास्त्र-गुरु-वंदना

देव वंदना

सुध्यान में लवलीन हो जब, घातिया चारों हने ।
सर्वज्ञ बोध विरागता को, पा लिया तब आपने ।



उपदेश दे हितकर अनेकों, भव्य निज सम कर लिये ।
रविज्ञान किरण प्रकाश डालो, वीर! मेरे भी हिये ॥

शास्त्र वंदना

स्याद्वाद, नय, षट् द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रमाण का ।
जड़कर्म चेतन बंध का, अरु कर्म के अवसान का ।
कहकर स्वरूप यथार्थ जग का, जो किया उपकार है ।
उसके लिये जिनवाणी माँ को, वंदना शत बार है ॥

गुरु वंदना

निसंग हैं जो वायुसम, निर्लेप हैं आकाश से ।
निज आत्म में ही विहरते, जीवन न पर की आस से ।
जिनके निकट सिंहादि पशु भी, भूल जाते क्रूरता ।
उन दिव्य गुरुओं की अहो! कैसी अलौकिक शूरता ॥



वैराग्य-भावना



पं. भूषणदासजी कृत

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं
त्यों चक्री सुख में मगन, धर्म विसारै नाहिं ॥

इहविध राज करै नर नायक, भोगे पुण्य विशालो
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो ॥
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे
देखि श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥१॥

तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे
राज-रमा-वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे ॥२॥

मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी

भव-तन-भोग स्वरूप विचार्यों, परम धरम अनुरागी ॥
इह संसार महा-वन भीतर, भ्रमते ओर न आवै
जामन मरण जरा दव दाझै, जीव महादुःख पावै ॥३॥

कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन-भेदन भारी
कबहूँ पशु परजाय धरै तहूँ, वध-बन्धन भयकारी ॥
सुरगति में पर-सम्पत्ति देखे, राग उदय दुःख होई
मानुषयोनि अनेक विपत्तिमय, सर्व सुखी नहिं कोई ॥४॥

कोई इष्ट-वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट-संयोगी
कोई दीन दरिद्री विगुचे, कोई तन के रोगी ॥
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी-सम भाई
किसही के दुःख बाहिर दीखै, किस ही उर दुचिताई ॥५॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै
खोटी संतति सों दुःख उपजै, क्यों प्राणी सुख सोवै ॥
पुण्य-उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुःख दाता ॥६॥

जो संसार-विषे सुख होता, तीर्थकर क्यों यागे
काहे को शिव-साधन करते, संजम सों अनुरागे ॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई ।
सागर के जल सों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई ॥७॥

सप्त कुधातु भरी मल मूरत, चाम लपेटी सोहै
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है ॥
नव मल द्वार स्रवैं निशि-वासर, नाम लिये घिन आवै
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहूँ, कौन सुधी सुख पावै ॥८॥

पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥

राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है
यह तन पाय महातप कीजै, यामैं सार यही है ॥९॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावें, बैरी हैं जग जीके
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागे नीके ॥
वज्र अग्नि विष से विषधर से, ये अधिके दुःखदाई
धर्म रतन के चोर चपल अति, दुर्गति पन्थ सहाई ॥१०॥

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानें
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, तो सब कंचन मानें ॥
ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावे
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे ॥११॥

मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥
राज समाज महा अघ कारण, वैर बढ़ावन हारा
वेश्या-सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतियारा ॥१२॥

मोह महारिपु वैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे
तन कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान-चरन-तप, ये जिय के हितकारी
ये ही सार, असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥१३॥

छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि, अरु छोड़े संग साथी
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरण तृण-सम त्यागी
नीति विचार नियोगी सुत को, राज्य दियो बड़भागी ॥१४॥

होय निःशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे
श्रीगुरु चरन धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी

ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥१५॥

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पन्थ
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ ॥



भूधर-शतक

1 - श्री आदिनाथ स्तुति



सत्या

ज्ञानजिहाज बैठि गनधर-से, गुनपयोधि जिस नाहिं तरे हैं ।
अमर-समूह आनि अवनी सौं, घसि-घसि सीस प्रनाम करे हैं ।
किधौं भाल-कुकरम की रेखा, दूर करन की बुद्धि धरे हैं ।
ऐसे आदिनाथ के अहनिस, हाथ जोड़ि हम पाँय परे हैं ॥१॥

सत्या

काउसग मुद्रा धरि वन में, ठाड़े रिषभ रिद्धि तजि हीनी¹ ।
निहचल अंग मेरु है मानौ, दोऊ भुजा छोर जिन दीनी ।
फँसे अनंत जंतु जग-चहले, दुखी देखि करुना चित लीनी ।
काढ़न काज तिन्हैं समरथ प्रभु, किधौं बाँह ये दीरघ कीनी ॥२॥

सत्या

करनौं कछु न करन तैं कारज, तातैं पानि प्रलम्ब करे हैं ।
रह्यौ न कछु पाँयन तैं पैबौ, ताही तैं पद नाहिं टरे हैं ।
निरख चुके नैनन सत्र यातैं, नैन नासिका-अनी धरे हैं ।
कानन कहा सुनैं यौं कानन, जोगलीन जिनराज खरे हैं ॥३॥

छप्य

जयौ नाभिभूपाल-बाल सुकुमाल सुलच्छन ।
जयौ स्वर्गपातालपाल गुनमाल प्रतच्छन ।

दग विशाल वर भाल लाल नख चरन विरजहिं । रूप रसाल मराल चाल सुन्दर लखि लज्जहिं ॥ रिप-जाल-काल रिसहेश हम, फँसे जन्म-जंबाल-दह । यातें निकाल बेहाल अति, भो दयाल दुख टाल यह ॥4॥

अन्वयार्थ : जिनके गुणसमूद्र का पार गणधर जैसे बड़े-बड़े नाविक अपने विशाल ज्ञानजहाजों द्वारा भी नहीं पा सके हैं और जिन्हें देवताओं के समूह स्वर्ग से उत्तरकर पृथी से पुनः पुनः अपने सिर घिसकर इस तरह प्रणाम करते हैं मानों वे अपने ललाट पर बनी कुकर्मों की रेखा को दूर करना चाहते हों; उन प्रथम तीर्थकर भगवान आदिनाथ को हम संदेव हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं और उनके चरणों की शरण ग्रहण करते हैं ॥1॥
भगवान ऋषभदेव कायोत्सर्प मद्रा धारण कर वन में खड़े हए हैं। उन्होंने समस्त ऐश्वर्य को तुच्छ जानकर छोड़ दिया है। उनका शरीर इतना निश्चल है मानों सुमेरु पर्वत हो। उन्होंने अपनी दोनों भुजाओं को शिथिलतापूर्वक नीचे छोड़ रखा है, जिससे ऐसा लगता है मानों संसाररूपी कीचड़ में फँसे हुए अनन्त प्राणियों को दुःखी देख कर उनके मन में करुणा उत्पन्न हुई है और उन्होंने अपनी दोनों भुजाएँ उन प्राणियों को संसाररूपी कीचड़ से निकालने के लिए लम्बी की हैं ॥2॥

पाठान्तर : दीनी

जिनेन्द्र भगवान को हाथों से कुछ भी करना नहीं बचा है, अतः उन्होंने अपने हाथों को शिथिलतापूर्वक नीचे लटका दिया है। पैरों से चलकर उन्हें कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहा है, अतः उनके पैर एक स्थान से हिलते नहीं हैं, स्थिर हैं; वे सब कुछ देख चुके हैं, अतः उन्होंने अपनी आँखों को नासिका की नोक पर टिका दिया है; तथा कानों से भी अब वे क्या सुनें, इसलिए ध्यानस्थ होकर कानन (वन) में खड़े हैं ॥3॥

नाभिराय के सुलक्षण और सुकुमार पुत्र श्री ऋषभदेव जयवन्त वर्तो ! स्वर्ग से पाताल तक तीनों लोकों का पालन करने वाले श्री ऋषभदेव जयवन्त वर्तो !! स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुए उल्कृष्ट गुणों के समुदाय स्वरूप श्री ऋषभदेव जयवन्त वर्तो !!! श्री ऋषभदेव के नेत्र विशाल हैं, उनका भाल (ललाट) श्रेष्ठ या उन्नत है, उनके चरणों में लाल नख सुशोभित हैं, उनका रूप बहुत मनोहर है और उनकी सुन्दर चाल को देखकर हंस भी लजित होते हैं। - हे कर्मशत्रुओं के समूह को नष्ट करने वाले भगवान ऋषभदेव ! जन्म-मरण के गहरे कीचड़ में फँसकर हमारी बहुत दुर्दशा हो रही है, अतः आप हमें उसमें से निकालकर हमारा महादुःख दूर कर दीजिये ॥4॥

2 - श्री चन्द्रप्रभ स्तुति

सत्येण

चितवत वदन अमल-चन्द्रोपम, तजि चिंता चित होय अकामी । त्रिभुवनचन्द्र पापतपचन्दन, नमत चरन चंद्रादिक नामी ॥ तिहुँ जग छई चन्द्रिका-कीरति, चिह्न चन्द्र चिंतत शिवगामी । बन्दौं चतुर चकोर चन्द्रमा, चन्द्रवरन चंद्रप्रभ स्वामी ॥५॥

अन्वयार्थ : जिनके निर्मल चन्द्रमा के समान मुख का दर्शन करते ही भव्य जीवों का चित्त समस्त चिन्ताओं का त्याग कर अकामी (समस्त इच्छाओं से रहित) हो जाता है, जो तीन लोकों के चन्द्रमा हैं, जो पापरूपी आतप के लिए चन्दन हैं, जिनके चरणों में बड़े प्रसिद्ध चन्द्रादिक देव भी प्रणाम करते हैं, जिनकी उज्ज्वल कीर्तिरूपी चाँदनी तीनों लोकों में छाई हुई है, जिनके चन्द्रमा का चिह्न है, मोक्षाभिलाषी जीव जिनका स्मरण करते हैं, जो बुद्धिमान पुरुषरूपी चकोरों के लिए चन्द्रमा हैं, और जिनका वर्ण चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है; उन चन्द्रप्रभ स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

3 - श्री शान्तिनाथ स्तुति

मत्तगयन्द सत्येण

शांति जिनेश जयौ जगतेश, हरै अघताप निशेश की नाई । सेवत पाय सुरासुरराय, नमैं सिर नाय महीतल ताँई । मौलि लगे मनिनील दिपैं, प्रभु के चरनौं झलकैं वह झाँई । सूंधन पाँय-सरोज-सुगंधि, किधौं चलि ये अलिपंकति आई ॥६॥

अन्वयार्थ : जो पापरूपी आतप को चन्द्रमा के समान हरते हैं, सुरेन्द्र और असुरेन्द्र भी जिनके चरणों की सेवा करते हैं और उन्हें धरती तक सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं, वे जगतस्वामी श्री शांतिनाथ भगवान जयवन्त वर्तों। हे शांतिनाथ भगवान ! जिस समय आपको सुरेन्द्र और असुरेन्द्र धरती तक सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं और उनके मुकुटों में लगी हुई दिव्य नीलमणियों की परछाई आपके चरणों पर झलकती है तो उस समय ऐसा लगता है मानों आपके चरण-कमलों की सुगन्ध सूंधने के लिए भ्रमरों की पंक्ति ही चली आई है ॥६॥

4 - श्री नैमिनाथ स्तुति

कवित्त मनहर

शोभित प्रियंग अंग देखें दुख होय भंग,

लाजत अनंग जैसैं दीप भानुभास तैं ।
बालब्रह्मचारी उग्रसेन की कुमारी जादों-
नाथ ! तैं निकारौ कर्मकादो-दुखरास तैं ॥

भीम भवकानन मैं आन न सहाय स्वामी,
अहो नेमि नामी तकि आयौ तुम तास तैं ।
जैसैं कृपाकंद वनजीवन की बन्द छोरी,
त्यौंही दास को खलास कीजे भवपास तैं ॥७॥

अन्वयार्थ : हे भगवान नेमिनाथ ! आपका शरीर प्रियंगु के फूल के समान श्याम वर्ण से सुशोभित है, आपके दर्शन से सारा दुःख दूर हो जाता है। और जिसप्रकार सूर्य की प्रभा के सामने दीपक लज्जित होता है, उसीप्रकार आपके सामने कामदेव लज्जित होता है। हे यादवनाथ ! आप बालब्रह्मचारी हैं। आपने सांसारिक कीचड़ के अनन्त दुःखों में से महाराजा उग्रसेन की कन्या (राजुल) को भी निकाला है। हे सुप्रसिद्ध नेमिनाथ स्वामी ! अब मैंने यह भली प्रकार समझ लिया है कि इस भयानक संसाररूपी जंगल में मुझे आपके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है, इसलिए मैं आपकी ही शरण में आया हूँ। हे कृपाकंद ! जिस प्रकार आपने पशुओं को बन्धन से मुक्त किया था, उसी प्रकार मुझ सेवक को भी संसार-जाल से मुक्त कर दीजिये ॥७॥

5 - श्री पार्वनाथ स्तुति

जनम-जलधि-जलजान, जान जनहंस-मानसर ।
सरव इन्द्र मिलि आन, आन जिस धरहिं सीस पर ॥
परउपगारी बान, बान उत्थपइ कुनय-गन ।
गन-सरोजवन-भान, भान मम मोह-तिमिर-घन ॥
घनवरन देहदुख-दाह हर, हरखत हेरि मयूर-मन ।
मनमथ-मतंग-हरि पास जिन, जिन विसरहु छिन जगतजन! ॥८॥

अन्वयार्थ : हे संसार के प्राणियो! भगवान पार्वनाथ को कभी क्षण भर भी मत भूलो। वे संसाररूपी समुद्र को तिरने के लिए जहाज हैं, भव्यजीवरूपी हंसों के लिए मानसरोवर हैं, सभी इन्द्र आकर उनकी आज्ञा मानते हैं, उनके वचन परोपकारी और कुनय-समूह की प्रकृति को उखाड़ फेंकने वाले हैं, मुनिसमुदायरूपी कमल के बनों (समूहों) के लिए सूर्य हैं, आत्मा के घने मोहास्तकर को नष्ट करने वाले हैं, मेघ के समान वर्णवाले हैं, सांसारिक दुःखों की ज्वाला को हरने वाले हैं, उन्हें पाकर मनमयूर प्रसन्न हो जाता है, और कामदेवरूपी हाथी के लिए तो वे ऐसे हैं जैसे कोई सिंह।

विशेष :- प्रस्तुत पद में महाकवि भूधरदास ने तेइसवें तीर्थकर भगवान पार्वनाथ की बड़े ही कलात्मक ढंग से स्तुति की है। पद का भाव-सौन्दर्य तो अगाध है ही, शिल्प-सौन्दर्य भी विशिष्ट है। यथा, इस पद का पहला कदम 'जान' शब्द पर रुका है तो दूसरा कदम पुनः 'जान' शब्द से ही शुरू हो रहा है, दूसरा कदम 'सर' पर रुका है तो तीसरा कदम पुनः 'सर' से ही प्रारम्भ हो रहा है, तीसरा कदम 'आन' पर रुका है तो चौथा कदम पुनः 'आन' से ही प्रारंभ हो रहा है। इसी प्रकार पद के अन्य सभी कदम अपने पूर्व-पूर्वर्ती कदम के अन्तिम अक्षरों को अपने हाथ में पकड़कर ही आगे बढ़ते हैं। इतना ही नहीं, पद का प्रारंभ 'जन' शब्दांश से हुआ है तो अन्त भी 'जन' से ही हुआ है। यद्यपि ऐसी विशेषता 'कुण्डलिया' में पाई जाती है, पर महाकवि भूधरदास ने 'छप्य' में भी यह कलात्मक प्रयोग कर दिखाया है। यमक अलंकार के विशिष्ट प्रयोग की दृष्टि से भी यह पद उल्लेखनीय है। यमक अलंकार के एक साथ इतने और वे भी ऐसे विशिष्ट प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ हैं।

6 - श्री वर्द्धमान स्तुति

दिढ़-कर्मचिल-दलन पवि, भवि-सरोज-रविराय ।
कंचन छवि कर जोर कवि, नमत वीरजिन-पाँय ॥९॥

रहौ दूर अंतर की महिमा, बाहिज गुन वरनन बल का पै ।
एक हजार आठ लच्छन तन, तेज कोटिरवि-किरनि उथापै ॥
सुरपति सहस्राँख-अंजुलि सौं, रूपामृत पीवत नहिं धापै ।
तुम बिन कौन समर्थ वीर जिन, जग सौं काढ़ि मोख मैं थापै ॥१०॥

अन्वयार्थ : प्रबल कर्मरूपी पर्वत को चकनाचूर करने के लिए जो वज्र के समान हैं, भव्यजीवरूपी कमलों को खिलाने के लिए जो श्रेष्ठ सूर्य के समान हैं और जिनकी प्रभा स्वर्णिम है; उन भगवान महावीर के चरणों में मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ। विशेष :- यहाँ कवि ने 'दिढ़ कर्मचिल दलन पवि' कहकर भगवान के वीतरागता गुण की ओर संकेत किया है, 'भवि-सरोज-रविराय' कहकर हितोपदेशीपने की ओर संकेत किया है और 'कचन छवि' कहकर सर्वज्ञता गुण की ओर संकेत किया है। तात्पर्य यह है कि जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हैं, उन वर्द्धमान जिनेन्द्र के चरणों को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥११॥ हे भगवान महावीर ! आपके अन्तरंग गुणों की महिमा तो दूर, बहिरंग गुणों का वर्णन करने की भी सामर्थ्य किसी में नहीं है। एक हजार आठ लक्षणों से युक्त आपके शरीर का तेज करोड़ों सूर्यों की किरणों को उखाड़ फेंकता है अर्थात् आपके शरीर के तेज की बराबरी करोड़ों सूर्य भी नहीं कर सकते हैं। देवताओं का राजा इन्द्र हजार आँखों की अंजुलि से भी आपके रूपामृत को पीता हुआ तृप्त नहीं होता है। हे वार प्रभो ! इस जगत में आपके अतिरिक्त अन्य कौन ऐसा समर्थ है, जो जीवों को संसार से निकालकर मोक्ष में स्थापित कर सके ? ॥१०॥

7 - श्री सिद्ध स्तुति

मत्सगम्यद सर्वैषा

ध्यान-हुताशन मैं अरि-ईंधन, झोंक दियो रिपुरोक निवारी ।
शोक हर्यो भविलोकन कौ वर, केवलज्ञान-मयूख उघारी ॥
लोक-अलोक विलोक भये शिव, जन्म-जरा-मृत पंक पखारी ।
सिद्धन थोक बसैं शिवलोक, तिन्हैं पगधोक त्रिकाल हमारी ॥११॥

तीरथनाथ प्रनाम करैं, तिनके गुनवर्णन मैं बुधि हारी ।
मोम गयौ गलि मूस मङ्जार, रह्यौ तहैं व्योम तदाकृतिधारी ॥
लोक गहीर-नदीपति-नीर, गये तिर तीर भये अविकारी ।
सिद्धन थोक बसैं शिवलोक, तिन्हैं पगधोक त्रिकाल हमारी ॥१२॥

अन्वयार्थ : जिन्होंने आत्मध्यानरूपी अग्नि में कर्मशब्दरूपी ईंधन को झोंककर समस्त बाधाओं को दूर कर दिया है, भव्य जीवों का सर्व शोक नष्ट कर दिया है, केवलज्ञानरूपी उत्तम किरणें प्रकट कर ली हैं, सम्पूर्ण लोक-अलोक को देख लिया है, जो मुक्त हो गये हैं और जिन्होंने जन्म-जरा-मरण की कीचड़ को साफ कर दिया है ; उन मोक्षनिवासी अनन्त सिद्ध भगवन्तों को त्रिकाल - सदैव हमारी पाँवाढोक मालूम होवे ॥११॥ जिन्हें तीर्थकरदेव प्रणाम करते हैं, जिनके गुणों का वर्णन करने में बुद्धिमानों की बुद्धि भी हार जाती है, जो मोम के साँचे में मोम के गल जाने पर बचे हुए तदाकार आकाश की भाँति अपने अंतिम शरीराकाररूप से स्थित हैं, जिन्होंने संसाररूपी महा समुद्र को तिरकर किनारा प्राप्त कर लिया है और जो विकारी भावों से रहित शुद्ध दशा को प्राप्त हुए हैं; उन अनन्त सिद्ध भगवन्तों को त्रिकाल - सदैव हमारी पाँवाढोक मालूम होवे ॥१२॥

8 - श्री साधु स्तुति

कवित्त मनहर

शीतरितु जोरैं अंग सब ही सकोरे तहाँ,
तन को न मोरैं नदीधौरैं धीर जे खरे ।
जेठ की झकोरैं जहाँ अण्डा चील छोरैं,
पशु-पंछी छाँह लौरैं गिरिकोरैं तप वे धरें ॥

घोर घन घोरैं घटा चहूँ ओर डोरैं ज्यों-ज्यौं,

चलत हिलारैं त्यौं-त्यौं फौरैं बल ये अरे ।
 देहनेह तोरैं परमारथ सौं प्रीति जोरैं,
 ऐसे गुरु ओरैं हम हाथ अंजुली करें ॥13॥

अन्वयार्थ : जो धीर, जब सब लोग अपने शरीर को संकुचित किये रहते हैं ऐसी कड़ाके की सर्दी में, अपने शरीर को बिना कुछ भी मोड़े, नदी-किनारे खड़े रहते हैं, जब चील अंडा छोड़ दे और पशु-पक्षी छाया चाहते फिरे ऐसी जेठ माह की लूओं (गर्म हवाओं) वाली तेज गर्मी में पर्वत-शिखर पर तप करते हैं तथा गरजती हुई घनधोर घटाओं और प्रबल पवन के झोंकों में अपने पुरुषार्थ को अधिकाधिक स्फुरायमान करते हुए डटे रहते हैं, शरीर सम्बन्धी राग को तोड़कर परमार्थ से प्रीति जोड़ते हैं; उन गुरुओं को हम हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं ॥13॥

9 - श्री जिनवाणी स्तुति

मत्सगम्बद सर्वैया

वीर-हिमाचल तैं निकसी, गुरु-गौतम के मुख-कुण्ड ढरी है ।
 मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़ता-तप दूर करी है ।
 ज्ञान-पयोनिधि माहिं रली, बहु भंग-तरंगनि सौं उछरी है ।
 ता शुचि-शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुरी करि शीश धरी है ॥14॥

या जग-मन्दिर मैं अनिवार, अज्ञान-अंधेर छयौ अति भारी ।
 श्रीजिन की धुनि दीपशिखा-सम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी ॥
 तो किस भाँति पदारथ-पाँति, कहाँ लहते? रहते अविचारी ।
 या विधि सन्त कहैं धनि हैं, धनि हैं, जिनवैन बड़े उपगारी ॥15॥

अन्वयार्थ : जो भगवान महावीररूपी हिमालय पर्वत से निकली है, गौतम गणधर के मुखरूपी कुण्ड में ढली है, मोहरूपी विशाल पर्वतों का भेदन करती चल रही है, जगत् की अज्ञानरूपी गर्मी को दूर कर रही है, ज्ञानसमुद्र में मिल गई है और जिसमें भंगों रूपी बहुत तरंगें उछल रही हैं; उस जिनवाणीरूपी पवित्र गंगा नदी को मैं हाथ जोड़कर और शीश झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥14॥

ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि अहो ! इस संसाररूपी भवन में अज्ञानरूपी अत्यधिक घना अन्धकार छाया हुआ है । उसमें यदि यह प्रकाश करने वाली जिनवाणीरूपी दीपशिखा नहीं होती तो हम वस्तु का स्वरूप किस प्रकार समझते, भेदज्ञान कैसे प्राप्त करते ? तथा इसके बिना तो हम अविचारी -- अज्ञानी ही रह जाते । अहो ! धन्य है !! धन्य है !! जिनवचन परम उपकारक है ॥15॥

10 - जिनवाणी और मिथ्यावाणी

कवित्त मनहर

कैसे करि केतकी-कनेर एक कहि जाय,
 आकदूध-गाय दूध अन्तर घनेर है ॥
 पीरी होत रीरी पै न रीस करै कंचन की,
 कहाँ काग-वानी कहाँ कोयल की टेर है ॥

कहाँ भान भारौ कहाँ आगिया बिचारौ कहाँ,
 पूनौ को उजारौ कहाँ मावस-अंधेर है ॥
 पच्छ छोरि पारखी निहारौ नेक नीके करि,
 जैनबैन-औरबैन इतनौं ही फेर है ॥१६॥

अन्वयार्थ : केतकी और कनेर को एक समान कैसे कहा जा सकता है? उन दोनों में तो बहुत अन्तर है। आक के दूध और गाय के दूध को एक समान कैसे कहा जा सकता है? उन दोनों में तो बहुत अन्तर है।

इसीप्रकार यद्यपि पीतल भी पीला होता है, पर वह कंचन की समानता नहीं कर सकता है। हे भाई! जरा तुम ही विचारो! कहाँ कौए की आवाज और कहाँ कोयल की टेरे! कहाँ दैदीयमान सूर्य और कहाँ बेचारा जुगनूँ। कहाँ पूर्णिमा का प्रकाश और कहाँ अमावस्या का अन्धकार! हे पारखी! अपना पक्ष (दुराग्रह) छोड़कर जरा सावधानीपूर्वक देखो, जिनवाणी और अन्यवाणी में उपर्युक्त उदाहरणों की भाँति बहुत अन्तर है।

केतकी एक ऐसे वृक्ष विशेष का नाम है जिस पर अत्यन्त सुगम्यित पुष्ट आते हैं और जिसे सामान्य भाषा में केवड़ा भी कहते हैं। तथा 'कनेर' यद्यपि देखने में केतकी जैसा ही लगता है, पर वस्तुतः वह एक विषवृक्ष होता है और उसके पुष्ट सुगम्यादि गुणों से हीन होते हैं।

11 - वैराग्य-कामना

कविता मनहर

कब गृहवास सौं उदास होय वन सेऊँ,
वेऊँ निजरूप गति रोकूँ मन-करी की ।
रहि हौं अडोल एक आसन अचल अंग,
सहि हौं परीसा शीत-घाम-मेघझरी की ॥

सारंग समाज खाज कबधौं खुजेहैं आनि,
ध्यान-दल-जोर जीतूं सेना मोह-अरी की ।
एकलविहारी जथाजातलिंगधारी कब,
होऊँ इच्छाचारी बलिहारी हौं वा घरी की ॥17॥

अन्वयार्थ : अहो! वह घड़ी कब आयेगी, जब मैं गृहस्थदशा से विरक्त होकर वन में जाऊँगा, अपने मनरूपी हाथी को वश में करके निज आत्मस्वरूप का अनुभव करूँगा।

एक आसन पर निश्चलतया स्थिर रहकर सर्दी, गर्मी, वर्षा के परीषहों को सहन करूँगा।

मृगसमूह (मेरे निश्चल शरीर को पाषाण समझकर उससे) अपनी खाज (चर्मरोग) खुजायेगे और मैं आत्मध्यानरूपी सेना के बल से मोहरूपी शत्रु की सेना को जीतुंगा? अहो! मैं ऐसी उस अपूर्व घड़ी की बलिहारी जाता हूँ, जब मैं एकल-विहारी होऊँगा, यथाजातलिंगधारी (पूरी तरह नग्न दिगम्बर) होऊँगा और पूर्णतः स्वाधीन वृत्तिवाल होऊँगा।

12 - राग और वैराग्य का अन्तर

कविता मनहर

राग-उदै भोग-भाव लागत सुहावने-से,
विना राग ऐसे लागैं जैसैं नाग कारे हैं ।
राग ही सौं पाग रहे तन मैं सदीव जीव,
राग गये आवत गिलानि होत न्यारे हैं ॥

राग ही सौं जगरीति झूठी सब साँची जाने,
राग मिटैं सूझत असार खेल सारे हैं ।
रागी-विनरागी के विचार मैं बड़ौई भेद,
जैसे भटा पच काहूँ काहूँ को बयारे हैं ॥18॥

अन्वयार्थ : पंचेन्द्रिय के विषयभोग और उन्हें भोगने के भाव, राग (मिथ्यात्व) के उदय में सुहावने-से लगते हैं, परन्तु वैराग्य होने पर काले नाग के समान (दुःखदायी और हेय) प्रतीत होते हैं।

राग ही के कारण अज्ञानी जीव शरीरादि में रम रहे हैं - एकत्वबुद्धि कर रहे हैं। राग समाप्त हो जाने पर तो शरीरादि से भेदज्ञान प्रकट होकर विरक्ति उत्पन्न हो जाती है।

राग ही के कारण अज्ञानी जीव जगत् की समस्त झूठी स्थितियों को सच्ची मान रहा है; राग समाप्त हो जाने पर तो जगत् का सारा खेल असार दिखाई देता है। इसप्रकार रागी (मिथ्यादृष्टि) और विरागी (सम्यदृष्टि) के विचार (मान्यता) में बड़ा भारी अन्तर होता है। बैगन किसी को पच जाते हैं और किसी को बाढ़ी करते हैं - वायुवर्द्धक होते हैं।

13 - भोग-निषेध

राग : मत्तगयद सर्वेया

तू नित चाहत भोग नए नर ! पूरवपुन्य विना किम पैहै ।
कर्मसँजोग मिले कहिं जोग, गहे तब रोग न भोग सके है ।
जो दिन चार को ब्योंत बन्यौं कहुँ, तौ परि दुर्गति मैं पछितैहै ।
याहितैं यार सलाह यही कि, गई कर जाहु निबाह न है है ॥१९॥

अन्वयार्थ : हे मित्र ! तुम नित्य नये-नये भोगों की अभिलाषा करते हो, किन्तु यह तो सोचो कि तुम्हारे पुण्योदय के बिना वे तुम्हें मिल कैसे सकते हैं ? और कदाचित् पुण्योदय से मिल भी गये तो हो सकता है, रोगादिक के कारण तुम उन्हें भोग ही नहीं सको। और, यदि किसी प्रकार चार दिन के लिए भोग भी लिये तो उससे क्या हुआ? दुर्गति में जाकर दुःख उठाने पड़ेंगे। इसलिए हे प्यारे मित्र ! हमारी तो सलाह यही है कि तुम इनकी ओर से गई कर जाओ - उदास हों जाओ - इनकी उपेक्षा कर दो, अन्यथा पार नहीं पड़ेगी।

14 - देह-स्वरूप

राग : मत्तगयद सर्वेया

मात-पिता-रज-वीरज सौं, उपजी सब सात कुधात भरी है ।
माँखिन के पर माफिक बाहर, चाम के बेठन बेढ़ धरी है ।
नाहिं तौ आय लगैं अब ही बक, वायस जीव बचै न घरी है।
देहदशा यहै दीखत भ्रात ! धिनात नहीं किन बुद्धि हरी है ॥२०॥

अन्वयार्थ : यह शरीर माता-पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न हुआ है, और इसमें अत्यन्त अपवित्र सप्त धातुएँ (रस, रुधिर, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और वीर्य) भरी हुई हैं। वह तो इसके ऊपर मक्खी के पर के समान पतला-सा वैष्ण चढ़ा हुआ है। अन्यथा इस पर इसी वक्त बगुले-कौए आकर टूट पड़ें और यह देखते ही देखते साफ हो जाये, घड़ी भर भी न बचे। हे भाई ! शरीर की ऐसी अपवित्र दशा को देखकर भी तुम इससे विरक्त क्यों नहीं होते हो ? तुम्हारी बुद्धि किसने हर ली है?

15 - संसार का स्वरूप और समय की बहुमूल्यता

राग : कवित्त मनहर

काहू घर पुत्र जायौ काहू के वियोग आयौ,
काहू राग-रंग काहू रोआ रोई करी है ।
जहाँ भान ऊगत उछाह गीत गान देखे,
साँझ समै ताही थान हाय हाय परी है ॥

ऐसी जगरीति को न देखि भयभीत होय,
हा हा नर मूढ़ ! तेरी मति कौनैं हरी है ।
मानुषजनम पाय सोवत विहाय जाय,
खोवत करोरन की एक-एक घरी है ॥२१॥

कर कर जिनगुन पाठ, जात अकारथ रे जिया ।
 आठ पहर मैं साठ, घरी घनेरे मोल की ॥२२॥
 कानी कौड़ी काज, कोरिन को लिख देत खत ।
 ऐसे मूरखराज, जगवासी जिय देखिये ॥२३॥

कानी कौड़ी विषयसुख, भवदुख करज अपार ।
 विना दियै नहिं छूटिहै, बेशक लेय उधार ॥२४॥

अन्वयार्थ : अहो! इस संसार की रीति बड़ी विचित्र और वैराग्योत्पादक है। यहाँ किसी के घर में पुत्र का जन्म होता है और किसी के घर में मरण होता है।

किसी के राग-रंग होते हैं और किसी के रोया-रोई मरी रहती है।

यहाँ तक कि जिस स्थान पर प्रातःकाल उत्सव और नृत्य-गानादि दिखाई देते हैं, शाम को उसी स्थान पर 'हाय! हाय!' का करुण क्रन्दन मच जाता है।

संसार के ऐसे स्वरूप को देखकर भी हे मूढ़ पुरुष ! तुम इससे डरते नहीं हो- विरक्त नहीं होते हो; पता नहीं, तुम्हारी बुद्धि किसने हर ली है? तथा जिसकी एक-एक घड़ी करोड़ों रुपयों से भी अधिक मूल्यवान है - ऐसे मनुष्य जन्म को पाकर भी तुम उसे प्रमाद और अज्ञान दशा में ही रहकर व्यर्थ खो रहे हो।

हे जीव ! (अथवा हे मेरे मन !) तू जिनेन्द्र के गुणों का स्तवन कर, अन्यथा तेरी प्रतिदिन आठों पहर की साठ-साठ घड़ियाँ व्यर्थ ही समाप्त होती जा रही हैं, जो कि अत्यधिक मूल्यवान हैं।

अहो ! इस जगत् में ऐसे-ऐसे मूरखराज (अज्ञानी प्राणी) दिखाई देते हैं, जो कानी कौड़ी के लिए करोड़ों का कागज लिख देते हैं। अर्थात् क्षणिक विषयसुख के लोभ में अपने अमूल्य मनुष्य भव को बरबाद कर घोर दुःख देने वाले प्रबल कर्मों का बन्ध कर लेते हैं।

हे भाई ! ये विषय-सुख तो कानी कौड़ी के समान हैं परन्तु इन्हें प्राप्त करने पर संसार के अपार दुःखों का कर्ज सिर चढ़ता है जो कि पूरा-पूरा चुकाना ही पड़ता है, लेश मात्र भी बिना चुकाये नहीं रहता। ले-ले खूब उधार !

16 - शिक्षा

दश दिन विषय-विनोद फेर बहु विपति परंपर ।
 अशुचिगेह यह देह नेह जानत न आप जर ।
 मित्र बन्धु सम्बन्धि और परिजन जे अंगी ।
 अरे अंध सब धन्ध जान स्वारथ के संगी ॥
 परहित अकाज अपनौ न कर, मूढ़राज! अब समझ उर!
 तजि लोकलाज निज काज कर, आज दाव है कहत गुर ॥२५॥

जौलौं देह तेरी काहू रोग सौं न घेरी जौलौं,
 जरा नाहिं नेरी जासौं पराधीन परिहै ।
 जौलौं जमनामा वैरी देय ना दमामा जौलौं,
 मानै कान रामा बुद्धि जाइ ना बिगरि है ।

तौलौं मित्र मेरे निज कारज सँवार ले रे,

पौरुष थकेंगे फेर पीछे कहा करिहै ।
अहो आग आयैं जब झौंपरी जरन लागी,
कुआ के खुदायैं तब कौन काज सरिहै ॥२६॥

सौ हि वरष आयु ताका लेखा करि देखा जब,
आधी तौ अकारथ ही सोवत विहाय रे ।
आधी मैं अनेक रोग बाल-वृद्ध दशा भोग,
और हु सँयोग केते ऐसे बीत जाँय रे ।

बाकी अब कहा रहीं ताहि तू विचार सही,
कारज की बात यही नीकै मन लाय रे ।
खातिर मैं आवै तौ खलासी कर इतने मैं,
भावै फँसि फंद बीच दीनौं समझाय रे ॥२७॥

अन्वयार्थ : हे भाई ! विषयों का विनोद तो बस कुछ ही दिन का है, उसके बाद तो विपत्तियों पर विपत्तियाँ आने वाली हैं। विषय-विनोद का साधन यह शरीर तो अशविगृह है, अचेतन है, जीव द्वारा किये गये स्नेह को समझता तक नहीं है।

मित्रजन, बम्यु-बांधव, कुटुम्बी आदि समस्त रिश्ते-नातेदारों के भी सारे व्यवहार अज्ञानजन्य और दुःखदायी हैं। वे सब तो स्वार्थ के साथी हैं।

अतः हे मूढराज ! तू दूसरों के लिए अपना नुकसान न कर। अब तो अपने हृदय में समझा गुरुवर कहते हैं कि आज तुझे अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है, अतः लोकलाज का त्यागकर आत्मा का कल्याण कर ले।

हे मेरे प्रिय मित्र ! जब तक तुम्हारे शरीर को कोई रोगादि नहीं घेर लेता है, पराधीन कर डालनेवाला बुढ़ापा जब तक तुम्हारे पास नहीं आ जाता है, प्रसिद्ध शत्रु यमराज का डंका जब तक नहीं बज जाता है।

बुद्धि रूपी पत्नी जब तक तुम्हारी आज्ञा मानती है, बिंगड़ नहीं जाती है; उससे पहले-पहले तुम आत्मकल्याण अवश्य कर लो, अन्यथा बाद में तुम्हारी शक्ति ही क्षीण हो जावेगी, तब क्या कर पाओगे?

कुओँ आग लगने से पहले ही खोद लेना चाहिए। जब आग लग जाए और झोंपड़ी जलने लगे, तब कुओँ खुदाने से क्या लाभ ?

मनुष्य की आयु सामान्यतः सौ वर्ष बताई जाती है; परन्तु यदि इसका हिसाब लगाकर देखा जाये तो आधी आयु तो सोने में ही व्यर्थ चली जाती है।

पचास वर्ष, जिसमें भी अनेक रोग होते हैं, नासमझ रूप बाल दशा होती है, असर्मर्थरूप वृद्ध दशा होती है, उन्मत्तरूप भोग दशा होती है तथा और भी कितने ही ऐसे-वैसे अनेक संयोग बन जाते हैं।

कितनी शेष रही? नहीं के बराबर । अतः हे भाई! भलीप्रकार विचारकर प्रयोजनभूत बात को अपने हृदय में अच्छी तरह उतार लो, इसी में लाभ है। तथा यदि तुम्हारे हमारी बात जंचती हो तो भवबन्धनों से मुक्त हो जाओ; अन्यथा तुम्हारी मर्जी, फँसे रहो भवबन्धनों में; हमने तो तुम्हें समझा दिया है।

17 - बुढ़ापा

बालपनैं बाल रह्यौ पीछे गृहभार वह्यौ,
लोकलाज काज बाँध्यौ पापन कौ ढेर है ।
आपनौ अकाज कीनौं लोकन मैं जस लीनौं,
परभौ विसार दीनौं विषैवश जेर है ।

ऐसे ही गई विहाय, अलप-सी रही आय,
नर-परजाय यह औँधे की बटेर है ।

आये सेत भैया अब काल है अवैया अहो,
जानी रे सयानैं तेरे अजौं हू अँधेर है ॥२८॥

मत्सगपन्द सवैया

बालपनै न संभार सक्यौ कछु, जानत नाहिं हिताहित ही को ।
यौवन वैस वसी वनिता उर, कै नित राग रह्यौ लछमी को ॥
यौं पन दोइ विगोइ दये नर, डारत क्यों नरकै निज जी को ।
आये हैं सेत अजौं शठ चेत, गई सुगई अब राख रही को ॥२९॥

कवित्त मनहर

सार नर देह सब कारज कौं जोग येह,
यह तौ विष्वात बात वेदन मैं बँचै है ।
तामै तरुनाई धर्मसेवन कौं समै भाई,
सेये तब विषै जैसै माखी मधु रचै है ।

मोहमद भोये धन-रामा हित रोज रोये,
यौंही दिन खोये खाय कोदौं जिम मचै है ।
अरे सुन बौरे ! अब आये सीस धौरे अजौं,
सावधान हो रे नर नरक सौं बचे है ॥३०॥

मत्सगपन्द सवैया

बाय लगी कि बलाय लगी, मदमत्त भयौ नर भूलत त्यौं ही ।
वृद्ध भये न भजै भगवान, विषै-विष खात अघात न क्यौं ही ॥
सीस भयौ बगुला सम सेत, रह्यो उर अन्तर श्याम अजौं ही ।
मानुषभौ मुकताफलहार, गँवार तगा हित तोरत यौं ही ॥३१॥

अन्वयार्थ : हे भाई ! तुम बात्यावस्था में नासमझ रहे, उसके बाद तुमने गृहस्थी का बोझा ढोया, लोकमर्यादाओं के खातिर बहुत-से पाप उपार्जित किये । अपना नुकसान करके भी लोकबड़ाई प्राप्त की, अगले जन्म तक को भूल गये - कभी यह विचार तक न किया कि अगले भव में मेरा क्या होगा, फँसे रहे विषयों के बन्धनों में ।

और इसप्रकार तुम्हारी इस अंथे की बटेर के समान महादुर्लभ मनुष्यपर्याय की आयु, जो वैसे ही थोड़ी-सी थी, व्यर्थ ही चली गई है । अब तो सफेद बाल आ गये हैं - बुद्धापा आ गया है और तुम्हें मालूम भी है कि मृत्यु अने ही वाली है । परन्तु अहो ! तुम अभी भी आत्मा का हित करने के लिए सचेत नहीं हुए हो । ज्ञात होता है, तुम्हारे अन्दर अभी भी अँधेरा है ॥२८॥

हे मनुष्य ! बचपन में तो तू हिताहित को समझता नहीं था, इसलिए तब अपने को नहीं संभाल सका, किन्तु युवावस्था में भी या तो तेरे हृदय में स्त्री बसी रही या तुझे निरन्तर धन-लक्ष्मी जोड़ने की अभिलाषा बनी रही और इस प्रकार तूने अपने जीवन के दो महत्वपूर्ण पन यों ही बिगड़ दिये हैं । पता नहीं क्यों तुम इसप्रकार अपने आपको नरक में डाल रहे हो ? अब तो सफेद बाल आ गये हैं - वृद्धावस्था आ गई है, अभी भी क्यों मूर्ख बने हो ? अब तो चेतो ! गई सो गई ; पर जो शेष रही है, उसे तो रखो । अर्थात् कम से कम अब तो आत्मा का हित करने के लिए सचेत होओ ॥२९॥

शास्त्रों में कहीं गई यह बात अत्यन्त प्रसिद्ध है कि मनुष्यदेह ही सर्वोत्तम है, यही समस्त अच्छे कार्यों के योग्य है; उसमें भी इसकी युवावस्था धर्मसेवन का सर्वश्रेष्ठ समय होता है; परन्तु हे भाई ! ऐसे समय में तुम विषय-सेवन में इसप्रकार लिप्त रहे, मानों कोई मक्खी शहद में लिप्त हो । हे भाई ! मोहरूपी मदिरा में झूबकर तुम निरन्तर कंचन और

कामिनी के लिए रोते रहे - अपार कष्ट सहते रहे - और अपने अमूल्य दिनों को तुमने व्यर्थ ही इसप्रकार खो दिया, मानो कोदों खाकर मत्त हो रहे हो। अरे नादान ! सुनो, अब तो सिर में सफेद बाल आ गये हैं, अब तो सावधान होकर आत्मकल्याण कर लो, ताकि नरकादि कुगतियों से बच सको ॥३०॥

यह मनुष्य इसप्रकार मदोन्मत्त होकर सब-कुछ भूला हुआ है, मानों उसे कोई वातरोग हुआ हो अथवा किसी प्रेतबाधा ने ऐर रखा हो। यद्यपि इसकी वृद्धावस्था आ गई है, परन्तु अभी भी यह आत्मा और परमात्मा की आराधना नहीं करता है, अपितु विषतुल्य विषयों का ही सेवन कर रहा है और कभी उनसे अघाता ही नहीं है - उनसे कभी इसका मन भरता ही नहीं है।

यद्यपि इसका सम्पूर्ण सिर बगुले की भाँति एकदम सफेद हो गया है, किन्तु इसका अन्तर्मन अभी भी काला हो रहा है - अत्यधिक वृद्धावस्था में भी इसने रागादि विकारों का त्याग नहीं किया है। अहो ! यह मनुष्य-भव मोतियों का हार है, परन्तु यह अज्ञानी इसे मात्र धागे के लिए व्यर्थ ही तोड़े डाल रहा है ॥३१॥

18 - संसारी जीव का चितवन

मत्तगम्द सवैया

चाहत है धन होय किसी विध, तौ सब काज सरैं जिय राजी ।
गेह चिनाय करूँ गहना कछु, ब्याहि सुता, सुत बाँटिये भाजी ॥
चिन्तत यौं दिन जाहिं चले, जम आनि अचानक देत दगा जी ।
खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रुपी शतरंज की बाजी ॥३२॥

तेज तुरंग सुरंग भले रथ, मत्त मतंग उतंग खरे ही ।
दास खवास अवास अटा, धन जोर करोरन कोश भरे ही ॥
ऐसे बढ़े तो कहा भयौ हे नर! छोरि चले उठि अन्त छरे ही ।
धाम खरे रहे काम परे रहे, दाम गरे रहे ठाम धरे ही ॥३३॥

अन्वयार्थ : संसारी प्राणी सोचता है कि यदि किसी तरह मेरे पास धन इकट्ठा हो जावे तो मेरे सारे काम सिद्ध हो जायें और मेरा मन पूरी तरह प्रसन्न हो जावे। धन होने पर मैं एक अच्छा-सा मकान बनाऊँ, थोड़ा-बहुत गहना (आभूषण) तैयार कराऊँ और बेटे-बेटियों का विवाह करके सारी समाज में मिठाइयाँ बैंटवा दूँ। परन्तु इस प्रकार सोचते-सोचते ही सारा जीवन व्यतीत हो जाता है और अचानक यमराज हमला बोल देता है - शीघ्र मृत्यु आ जाती है। खिलाड़ी खेलते-खेलते ही चला जाता है और शतरंज की बाजी जहाँ की तहाँ जमी ही रह जाती है ॥३२॥

भाजी = विवाहादि उत्सवों में जो मिष्ठान्न बाँटा जाता है, उसे भाजी कहते हैं

द्वार पर तीव्रगमी (स्वस्थ और फुर्तीले) घोड़े खड़े हो गये, सुन्दर-सुन्दर रथ आ गये, ऊँचे-ऊँचे मस्त हाथी खड़े हो गये, नौकर-चाकर इकट्ठे हो गये, बड़े-बड़े भवन और अटारियाँ बन गईं, धन भी अनाप-शनाप इकट्ठा हो गया, कोषों के कोष भर गये - करोड़ों खजाने भर गये। परन्तु हे भाई ! ऐसी उत्तरि से क्या होता है? अन्त समय तुम्हें ये सब यहाँ छोड़कर अकेले ही चला जाना होगा। ये सारे भवन खड़े ही रह जायेंगे, काम पड़े ही रह जायेंगे, दाम (धन) गड़े ही रह जायेंगे; सब कुछ जहाँ का तहाँ धरा ही रह जाएगा।

19 - अभिमान-निषेध

कवित्त मनहर

कंचन-भंडार भरे मोतिन के पुंज परे,
घने लोग द्वार खरे मारग निहारते ।
जान चढ़ि डोलत हैं झीने सुर बोलत हैं,
काहु की हू ओर नेक नीके ना चितारते ॥

कौलौं धन खांगे कोउ कहै यौं न लांगे,
तेई, फिरैं पाँय नांगे कांगे परपग झारते ।
एते पै अयाने गरबाने रहैं विभौ पाय,
धिक है समझ ऐसी धर्म ना सँभारते ॥३४॥

देखो भरजोबन मैं पुत्र को वियोग आयौ,
तैसैं ही निहारी निज नारी कालमग मैं ।
जे जे पुन्यवान जीव दीसत हे या मही पै,
रंक भये फिरैं तेऊं पनहीं न पग मैं ॥

एते पै अभाग धन-जीतब सौं धरै राग,
होय न विराग जानै रहूँगौं अलग मैं ।
आँखिन विलोकि अंध सूसे की अंधेरी करै,
ऐसे राजरोग को इलाज कहा जग मैं ॥35॥

जैन वचन अंजनवटी, आँजैं सुगुरु प्रवीन । रागतिमिर तोहु न मिटै, बड़ो रोग लख लीन ॥36॥

अन्वयार्थ : जिनके यहाँ सोने के भण्डार भरे हैं, मोतियों के ढेर पड़े हैं, बहुत से लोग उनके आने की राह देखते हुए दरवाजे पर खड़े रहते हैं, जो वाहनों पर चढ़कर घूमते हैं, झीनी आवाज में बोलते हैं, किसी की भी ओर जरा ठीक से देखते तक नहीं हैं, जिनके बारे में लोग कहते हैं कि इनके पास इतना धन है कि उसे ये न जाने कब तक खायेंगे, इनका धन तो ऐसे-वैसे कभी खत्म ही नहीं होने वाला है; वे ही एक दिन (पापकर्म का उदय आने पर) कंगाल होकर नंगे पैरों फिरते हैं और दूसरों के पैरों की मिट्टी झाड़ते रहते हैं - सेवा करते फिरते हैं। अहो ! ऐसी स्थिति होने पर भी अज्ञानी जीव वैभव पाकर अभिमान करते हैं। धिक्कार है उनकी उल्टी समझ को, जो कि वे धर्म नहीं सँभालते हैं ॥३४॥

अहो ! इस संसार में लोगों को भरी जवानी में पुत्र का वियोग हो जाता है और साथ ही अपनी पत्नी भी मृत्यु के मार्ग में देखनी पड़ती है। तथा जो कोई पुण्यवान जीव दिखाई देते थे, वे भी एक दिन इस पृथ्वी पर इस तरह रंक होकर भटकते फिर कि उनके पाँवों में जूती तक नहीं रही। परन्तु अहो ! ऐसी स्थिति होने पर भी अज्ञानी प्राणी धन और जीवन से राग करता है, उनसे विरक्त नहीं होता। सोचता है कि मैं तो अलग (सुरक्षित) रहूँगा - मेरे साथ ऐसा कुछ भी नहीं घटित होने वाला है। अपनी आँखों से देखता हुआ भी वह उस खरगोश की तरह अन्धा (अज्ञानी) बन रहा है जो अपनी आँखें बन्द करके समझता है कि सब जगह अंधेरा हो गया है, मुझे कोई नहीं देख रहा है, मुझ पर अब कोई आपत्ति आने वाली नहीं है। अहो ! इस राजरोग का इलाज क्या है? ॥३५॥

राजरोग का अर्थ यहाँ महारोग भी है और आम रोग (सार्वजनिक बीमारी) भी। महारोग तो इसलिए क्योंकि यह सबसे बड़ा रोग है, अन्य ज्वर-कैंसरादि रोग तो शरीर में ही होते हैं, उपचार से ठीक भी हो जाते हैं और यदि ठीक न हों तो भी एक ही जन्म की हानि करते हैं, परन्तु उक्त महारोग तो आत्मा में होता है, किसी बाह्य उपचार से ठीक भी नहीं होता है और जन्मजन्मांतरों में जीव की महाहानि करता है। और यह आम रोग इसलिए है, क्योंकि प्रायः सभी सांसारिक प्राणियों में पाया जाता है।

यहाँ दीसत हे या मही पै के स्थान पर किसी-किसी प्रति मैं दीसत थे यान ही पै - ऐसा पाठ भी मिलता है। उसे मानने पर अर्थ होगा - जो सदा वाहनों पर दिखाई देते थे अहो ! इस अज्ञानी जीव की आँखों में प्रवीण गुरुवर जिनेन्द्र भगवान के वचनों की अंजनगुटिका लगा रहे हैं, परन्तु फिर भी इसका रागरूपी अन्धकार नहीं मिट रहा है। लगता है, रोग बहुत बड़ा है ॥३६॥

अंजनगुटिका एक प्रकार की औषधि होती है जिसे पानी में घिसकर रत्नौधादि के लिए आँख में लगाया जाता है।

जोई दिन कटै सोई आयु¹ मैं अवसि घटै,
बूँद-बूँद बीतै जैसैं अंजुली को जल है ।
देह नित झीन होत, नैन-तेज हीन होत,
जोबन मलीन होत, छीन होत बल है ।

आवै जरा नेरी, तकै अंतक-अहेरी, आवै²,
परभौ नजीक, जात³ नरभौ निफल है ।
मिलकै मिलापी जन पूँछत कुशल मेरी,
ऐसी दशा माहीं मित्र! काहे की कुशल है ॥३७॥

अन्वयार्थ : हे मित्र ! मुझसे मेरे मिलने-जुलने वाले मेरी कुशलता के बारे में पूछते हैं; परन्तु तुम्हीं बताओ, कुशलता है कहाँ? दशा तो ऐसी हो रही है: जिस प्रकार अंजुलि का जल जैसे-जैसे उसमें से बूंद गिरती जाती है वैसेवैसे ही समाप्त होता जाता है; उसी प्रकार जैसे-जैसे दिन करते जा रहे हैं वैसेवैसे ही यह आयु भी निश्चित रूप से घटती जा रही है, दिनों-दिन शरीर दुर्बल होता जा रहा है, आँखों की रोशनी कम होती जा रही है, युवावस्था बिगड़ती जा रही है, शक्ति क्षीण होती जा रही है, वृद्धावस्था पास आती जा रही है, मृत्युरूपी शिकारी इधर देखने लग गया है, परभव पास आता जा रहा है और अनुष्ठभव व्यर्थ ही बीतता जा रहा है ॥२०॥

1. पाठान्तर : आब। 2 पाठान्तर : आय। 3. पाठान्तर : जाय।

21 - बुढ़ापा

मत्सगंदं सर्वया

दृष्टि घटी पलटी तन की छबि, बंक भई गति लंक नई है ।
रूस रही परनी घरनी अति, रंक भयौ परियंक लई है ॥
काँपत नार बहै मुख लार, महामति संगति छाँरि गई¹ है ।
अंग उपंग पुराने परे, तिशना उर और नवीन भई है ॥३८॥

कवित मनहर

रूप को न खोज रह्यौ तरु ज्यौं तुषार दह्यौ,
भयौ पतझार किधौं रही डार सूनी-सी ।
कूबरी भई है कटि दूबरी भई है देह,
ऊबरी इतेक आयु सेर माहिं पूनी-सी ॥

जोबन नैं विदा लीनी जरा नैं जुहार कीनी,
हीनी भई सुधि-बुधि सबै बात ऊनीसी ।
तेज घट्यौ ताव घट्यौ जीतव को चाव घट्यौ,
और सब घट्यौ एक तिस्ना दिन दूनी-सी ॥३९॥

कवित मनहर

अहो इन आपने अभाग उदै नाहिं जानी,
वीतराग-वानी सार दयारस-भीनी है ।
जोबन के जोर थिर-जंगम अनेक जीव,

जानि जे सताये कछु करुना न कीनी है ।

तई अब जीवराश आये परलोक पास,
लेंगे बैर देंगे दुख भई ना नवीनी है ।
उनही के भय को भरोसौ जान काँपत है,
याही डर डोकरा ने लाठी हाथ लीनी है ॥40॥

कवित्त मनहर

जाको इन्द्र चाहैं अहमिंद्र से उमाह जासौं,
जीव मुक्ति-माहैं जाय भौ-मल बहावै है ।
ऐसौ नरजन्म पाय विषे-विष खाय खोयौ,
जैसैं काच साँ, मूढ़ मानक गमावै है ।

मायानदी बूढ़ भीजा काया-बल-तेज छीजा,
आया पन तीजा अब कहा बनि आवै है ।
तातै निज सीस ढोलै नीचे नैन किये डोलै,
कहा बढ़ि बोलै वृद्ध बदन दुरावै है ॥41॥

मत्तगयंद सरेया

देखहु जोर जरा भट को, जमराज महीपति को अगवानी ।
उज्जल केश निशान धरै, बहु रोगन की सँग फौज पलानी ।
कायपुरी तजि भाजि चल्यौ जिहि, आवत जोबनभूप गुमानी ।
लूट लई नगरी सगरी, दिन दोय मैं खोय है नाम निशानी ॥42॥

दोहा

सुमतिहिं तजि जोबन समय, सेवहु विषय विकार ।
खल साँटैं नहिं खोइये, जनम जवाहिर सार ॥43॥

अन्वयार्थ : अहो! यद्यपि वृद्धावस्था के कारण इस प्राणी की आँखों की रोशनी कमजोर हो गई है, शरीर की शोभा समाप्त हो गई है, चाल भी टेढ़ी हो गई है, कमर भी झुक गई है, ब्याहता पती भी इससे अप्रसन्न हो गई है, यह बिल्कुल अनाथ हो गया है, चारपाई पकड़ ली है, इसकी गर्दन काँपने लगी है, मुँह से लार बहने लगी है, बुद्धि इसका साथ छोड़कर चली गई है और अंग-उपांग भी पुराने पड़ गये हैं; तथापि हृदय में तृष्णा और अधिक नवीन हो गई है ॥३८॥ वृद्धावस्था के कारण अब शरीर में सुन्दरता का नामोनिशान भी नहीं रहा है; शरीर ऐसा हो गया है मानों कोई वृक्ष बर्फ (पाला पहने) से जल गया हो अथवा मानों पतझड़ होकर कोई डाल सूनी हो गई हो; कमर में कूब निकल आई है, देह दुर्बल हो गई है, आयु इतनी अल्प रह गई है मानों एक किलो रूई में से एक पूनी, युवावस्था ने अब विदाई ले ली है और वृद्धावस्था ने आकर जुहार (नमस्कार) कर ली है, सारी सुधि-बुधि कम हो गई है, सभी बातें उत्त्रीसी रह गई हैं, तेज भी घट गया है, ताव (उत्साह) भी घट गया है और जीने का चाव (अभिलाषा) भी घट गया है; सब कुछ घट गया है, किन्तु एक तृष्णा ही ऐसी है जो दिन-प्रतिदिन दूनी होती जा रही है ॥३९॥

अहो! इस जीव ने युवावस्था में अपने अशुभकर्म के उदय के कारण दयारस से भरी हुईं श्रेष्ठ वीतराग-वाणी को नहीं समझा और जवानी के जौर में अनेक त्रस-स्थावर जीवों को जान-बूझकर बहुत सताया, उनके प्रति किंचित् भी दया नहीं की; अतः अब वृद्धावस्था में वे सभी प्राणी, जिनको इसने युवावस्था में सताया था, इकट्ठे होकर मानों इससे बदला लेने के लिए आये हैं। पहले इसने दुःख दिया था, सो अब वे इसे दुःख देंगे - यह निश्चित बात है, कोई नई बात नहीं। यही कारण है कि यह वृद्ध उनसे डर कर काँपने लगा है और इसी डर से इसने अपने हाथ में लाठी ले ली है ॥40॥

अहो! जिसे इन्द्र और अहमिन्द्र भी उत्साहपूर्वक चाहते हैं और जिसे धारण कर जीव सर्व सांसारिक मलिनता को दूर कर मोक्ष में चला जाता है, ऐसे नरजन्म को पाकर भी इस अज्ञानी जीव ने विषयरूपी विष खाकर उसे ऐसे खो दिया है, जैसे कोई मूर्ख काँच के बदले माणिक खो देता है। तथा अब तो यह मायानदी में झुबकर इतना भीग गया है कि शरीर का सारा बल और तेज क्षीण हो गया है, तीसरापन आ गया है, अतः ऐसे में हो ही क्या सकता है? यही कारण है कि यह वृद्ध अपना सिर हिलाता हुआ नीची दृष्टि किये डोलता रहता है। अब बढ़-बढ़कर क्या बोले ? इसीलिए मुंह छुपाये रहता है ॥41॥

इस बुद्धापेरूपी योद्धा का प्रभाव तो देखिये ! यह यमराज (मृत्यु) रूपी राजा के आगमन की सूचना है, सफेद बाल इसका चिह्न (ध्वज) है, ढेरों रोगों की सेना इसके साथ दौड़ती आ रही है, यौवनरूपी अभिमानी राजा इसे आता हुआ देखकर अपनी कायारूपी नगरी को छोड़कर भाग छूटा है, इस बुद्धापेरूपी योद्धा ने सारी कायारूपी नगरी लूट ली है और अब कुछ ही समय में यह उसका नामोनिशान ही मिटा देगा ॥42॥

युवावस्था में सुमति का परित्याग कर विषय-विकारों का सेवन करने वाले हैं भाई ! तुम ऐसा करके निःसार खली के बदले मनुष्यभवरूपी श्रेष्ठ व अमूल्य रत्न को व्यर्थ मत खोओ ॥43॥

22 - कर्त्तव्य-शिक्षा

कविता मनहर

देव-गुरु साँचे मान साँचौ धर्म हिये आन,
साँचौ ही बखान सुनि साँचे पंथ आव रे ।
जीवन की दया पाल झूठ तजि चोरी टाल,
देख ना विरानी बाल तिसना घटाव रे ॥

अपनी बड़ाई परनिंदा मत करै भाई,
यही चतुराई मद मांस कौं बचाव रे ।
साध खटकर्म साध-संगति में बैठ वीर,
जो है धर्मसाधन कौं तेरे चित चाव रे ॥44॥

कविता मनहर

साँचौ देव सोई जामै दोष कौं न लेश कोई,
वहै गुरु जाकै उर काहु की न चाह है ।
सही धर्म वही जहाँ करुना प्रधान कही,
ग्रन्थ जहाँ आदि अन्त एक-सौ निबाह है ।

ये ही जग रत्न चार इनकौं परख यार,
साँचे लेहु झूठे डार नरभौ कौं लाह है ।
मानुष विवेक बिना पशु के समान गिना,
तातैं याहि बात ठीक पारनी सलाह है ॥45॥

अन्वयार्थ : हे भाई! यदि तेरे हृदय में धर्मसाधन की अभिलाषा है तो तू सच्चे देव-गुरु की श्रद्धा कर ! सच्चे धर्म को हृदय में धारण कर ! सच्चे शास्त्र सुन ! सच्चे मार्ग पर चल ! जीवों की दया पाल ! झूठ का त्याग कर ! चोरी का त्याग कर ! पराई स्त्री को बुरी नजर से मत देख ! तुष्णा कम कर ! अपनी बड़ाई और दुसरों की निन्दा मत कर ! और इसी में तेरी चतुराई है कि तू मद्य और मांस से बचकर रह ! देवपूजा आदि षट् आवश्यक कर्मों का पालन कर ! सज्जनों की संगति में बैठा कर ! ॥44॥ सच्चा देव वही है जिसमें किंचित् भी दोष (क्षुधादि अठारह दोष एवं रागद्वेषादि सर्व विकारी भाव) न हो, सच्चा गुरु वही है जिसके हृदय में किसी प्रकार की इच्छा नहीं हो,

सच्चा धर्म वही है जिसमें दया की प्रधानता हो, सच्चा शास्त्र वही है जिसमें आदि से अन्त तक एकरूपता का निर्वाह हो अर्थात् जो पूर्वापरविरोध से रहित हो। इसप्रकार हे मित्र ! इस जगत् में वस्तुतः ये चार ही रत्न हैं :- देव, गुरु, शास्त्र और धर्म; अतः तू इनकी परीक्षा कर और पश्चात् सच्चे देव, गुरु, शास्त्र और धर्म को ग्रहण कर तथा झूठे देव, गुरु, शास्त्र और धर्म का त्याग कर। इसी में मनुष्यभव की सार्थकता है। _____ हे भाई! विवेकहीन मनुष्य पशु के समान माना गया है, अतः भवसागर से पार उतारने वाली उचित सलाह यही है कि तुम उक्त चारों बातों का सम्प्यक प्रकार से निश्चय करो ॥45॥

23 - सच्चे देव का लक्षण

छप्प

जो जगवस्तु समस्त हस्ततल जेम निहारै ।
जगजन को संसार-सिंधु के पार उतारै ॥
आदि-अन्त-अविरोधि वचन सबको सुखदानी ।
गुन अनन्त जिहँ माहिं दोष की नाहिं निशानी ॥
माधव महेश ब्रह्मा किधौं, वर्धमान के बुद्ध यह ।
ये चिह्न जान जाके चरन, नमो-नमो मुझ देव वह ॥46॥

अन्वयार्थ : जो जगत की समस्त वस्तुओं को अपनी हथेली के समान प्रत्यक्ष या स्पष्ट रूप से जानता हो, संसारी प्राणियों को संसार-सागर से पार उतारता हो, जिसके वचन पूर्वापर-विरोध से रहित एवं प्राणिमात्र के हितकारक हों और जिसमें गुण तो अनन्त हों, पर दोष (**क्षुणादि** अठारह दोष या राग-द्वेषादि) किंचित् भी न हो; वही सच्चा देव है। फिर चाहे वह नाम से माधव हो, महेश हो, ब्रह्मा हो या बुद्ध हो। मैं तो जिसमें उक्त सर्वशता, हितोपदेशिता और वीतरागता - ये गुण पाये जाते हों, उस देव को बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥46॥

24 - यज्ञ में हिंसा का निषेध

कवित मनहर

कहै पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहि,
होमत हुताशन मैं कौन सी बड़ाई है ।
स्वर्गसुख मैं न चहौं 'देहु मुझे' यौं न कहौं,
घास खाय रहौं मेरे यही मनभाई है ॥

जो तू यह जानत है वेद यौं बखानत है,
जग्य जलौ जीव पावै स्वर्ग सुखदाई है ।
डारे क्यों न वीर यामैं अपने कुटुम्ब ही कौं ?
मोहि जिन, जारे जगदीश की दुहाई है ॥47॥

अन्वयार्थ : यज्ञ में बलि के लिए प्रस्तुत असाहाय पशु पूछता है कि - हे यज्ञ करने वाले ! मुझे अग्नि में होम देने में तुम्हारी क्या बड़ाई है? अथवा इसमें तुम्हें क्या लाभ है? सुनो ! मुझे स्वर्गसुख नहीं चाहिए और न ही मैं तुमसे उसे माँगता हूँ। मुझे कुछ दो - ऐसा मैं तुमसे नहीं कहता हूँ। मैं तो बस घास खाकर रहता हूँ, यही मेरी अभिलाषा है। और हे वीर पुरुष ! जो तुम ऐसा समझते हो कि यज्ञ में बलि के रूप में होम दिया जाने वाला जीव वेदानुसार सुखदायक स्वर्ग प्राप्त करता है, तो तुम इस यज्ञाग्नि में अपने कुटुम्ब को ही क्यों नहीं डालते हो? मुझे तो मत जलाओ, तुम्हें भगवान की सौंगंध है ॥47॥

25 - सातों वार गर्भित षट्कर्मोपदेश

छप्प

अघ-अंधेर-आदित्य नित्य स्वाध्याय करिज्जै ।
सोमोपम संसारतापहर तप कर लिज्जै ।
जिनवरपूजा नियम करहु नित मंगलदायनि ।

बुध संजम आदरहु धरहु चित श्रीगुरु-पांयनि ॥
 निजवित समान अभिमान बिन, सुकर सुपत्तहिं दान कर ।
 यौं सनि सुधर्म षटकर्म भनि, नरभौ-लाहौ लेहु नर ॥48॥

दोहा

ये ही छह विधि कर्म भज, सात विसन तज वीर ।
 इस ही पैंडे पहुँचिहै, क्रम-क्रम भवजल-तीर ॥49॥

अन्वयार्थ : प्रतिदिन, पापरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए जो सूर्य के समान है - ऐसा स्वाध्याय कीजिये, संसाररूपी ताप को हरने के लिये जो चन्द्रमा के समान है - ऐसा तप कीजिये, जिनेन्द्र देव की पूजा कीजिये, विवेक सहित संयम का आदर कीजिये, श्रीगुरु-चरणों की उपासना कीजिये और अपनी शक्ति के अनुसार अभिमान-रहित होकर सुपात्रों को अपने शुभ हाथों से दान दीजिये। इस प्रकार हे भाई ! षट् आवश्यक कार्यों में संलग्न होकर मनुष्य भव का लाभ लीजिये। विशेष :- इस छन्द में रविवार से शनिवार तक सात वारों के नाम का क्रमशः संकेत किया गया है। इससे काव्य में चमल्कार तो उत्पन्न हुआ ही है। भाव भी उच्च हुये हैं। तात्पर्य यह निकला कि देवपूजादि षडावश्यक कर्म के बीच रविवार या केवल सोमवार आदि को ही करने योग्य नहीं हैं, अपितु सातों वारों को प्रतिदिन अवश्य करने योग्य हैं ॥48॥ हे भाई ! (छन्द-संख्या 48 में कहे गये) षट् आवश्यक कर्मों का पालन करो और (छन्द-संख्या 50 में बताये जानेवाले) सप्त व्यसनों का त्याग करो। तुम इसी तरह क्रम-क्रम से संसार-सागर का किनारा प्राप्त कर लोगे ॥49॥

26 - सप्त व्यसन

दोहा

जूआखेलन मांस मद, वेश्याविसन शिकार ।
 चोरी पर-रमनी-रमन, सातौं पाप निवार ॥50॥

अन्वयार्थ : जुआ खेलना, मांसभक्षण, मद्यपान, वेश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्तीरमण - ये सात व्यसन हैं। तथा ये सातों पापरूप हैं, अतः इनका त्याग अवश्य करो।

27 - जुआ-निषेध

छप्पय

सकल-पापसंकेत आपदाहेत कुलच्छन ।
 कलहखेत दारिद्र देत दीसत निज अच्छन ।
 गुनसमेत जस सेत केत रवि रोकत जैसै ।
 औगुन-निकर-निकेत लेत लखि बुधजन ऐसै ॥
 जूआ समान इह लोक में, आन अनीति न पेखिये ।
 इस विसनराय के खेल कौ, कौतुक हु नहिं देखिये ॥५१॥

अन्वयार्थ : जुआ नामक प्रथम व्यसन प्रत्यक्ष ही अपनी आँखों से अनेक दोषों से युक्त दिखाई देता है। वह सम्पूर्ण पापों को आमंत्रित करने वाला है, आपत्तियों का कारण है, खोटा लक्षण है, कलह का स्थान है, दरिद्रता देने वाला है, अनेक अच्छाइयाँ करके प्राप्त किये हुए उज्ज्वल यश को भी उसीप्रकार ढक देने वाला है जिसप्रकार केतु सूर्य को ढंकता है, जानी पुरुष इसे अनेक अवगुणों के घर के रूप में देखते हैं, इस दुनिया में जुआ के समान अन्य कोई अनीति नहीं दिखाई देती; अतः इस व्यसनराय के खेल को कभी कौतूहल मात्र के लिए भी नहीं देखना चाहिए।

विशेष :- यहाँ जुआ को सातों व्यसनों में सबसे पहला ही नहीं, सबसे बड़ा भी बताया गया है तथा उसे अन्य भी अनेक दुर्गुणों का जनक बताया गया है। सो ऐसा ही अभिप्राय अनेक पूर्वचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। उदाहरणार्थ 'पद्मनन्दि-पंचविंशतिका' के धर्मोपदेशनाधिकार के १७वें-१८वें श्लोकों को देखना चाहिए।

28 - मांसभक्षण-निषेध

छप्पय

जंगम जिय कौ नास होय तब मांस कहावै ।

सपरस आकृति नाम गन्ध उर घिन उपजावै ॥
 नरक जोग¹ निरदई खाहिं नर नीच अधरमी ।
 नाम लेत तज देत असन उत्तमकुलकरमी ॥
 यह निपटनिंद्य अपवित्र अति, कृमिकुल-रास-निवास नित ।
आमिष अभच्छ या² सदा, बरजौ दोष दयालचित! ॥५२॥

अन्वयार्थ : मांस की प्राप्ति त्रस जीवों का घात होने पर ही होता है। मांस का स्पर्श, आकार, नाम और गन्ध - सभी हृदय में ग्लानि उत्पन्न करते हैं। मांस का भक्षण नरक जाने की योग्यतावाले निर्दयी, नीच और अधर्मी पुरुष करते हैं; उत्तम कुल और कर्म वाले तो इसका नाम लेते ही अपना भोजन तक छोड़ देते हैं। मांस अत्यन्त निन्दनीय है, अत्यन्त अपवित्र है और उसमें सदैव अनन्त जीवसमूह पाये जाते हैं। यही कारण है कि मांस सदैव अभक्ष्य बतलाया गया है। हे दयालु चित्त वाले! तुम इस मांस-भक्षणरूप दोष का त्याग करो।

1. पाठान्तर : जैन। 2. पाठान्तर : याकौ।

29 - मदिरापान-निषेध

दुर्मिल सर्वेया

कृमिरास कुवास सराय दहैं, शुचिता सब छीवत जात सही ।
 जिहिं पान कियैं सुधि जात हियैं, जननीजन जानत नारि यही ॥
 मदिरा सम आन निषिद्ध कहा, यह जान भले कुल मैं न गही ।
धिक है उनकौ वह जीभ जलौ, जिन मूढ़न के मत लीन कही ॥५३॥

अन्वयार्थ : मदिरा जीवसमूहों का देर है, दुर्गन्धियुक्त है, वस्तुओं को सड़ाकर और जलाकर तैयार की जाती है। निश्चय ही उसके स्पर्श करने मात्र से व्यक्ति की सारी पवित्रता नष्ट हो जाती है और उसे पी लेने पर तो सारी सुध-बुध ही हृदय से जाती रहती है। मदिरा पीनेवाला व्यक्ति माता आदि को भी पन्नी समझने लगता है। इस दुनिया में मदिरा के समान त्याज्य वस्तु अन्य कोई नहीं है, इसलिए मदिरा उत्तम कुलों में ग्रहण नहीं की जाती है। तथापि जो मूर्ख मदिरा को ग्रहण करने योग्य बतलाते हैं, उन्हें धिक्कार है, उनकी जीभ जल जावे।

30 - वेश्यासेवन-निषेध

सर्वेया

धनकारन पापनि प्रीति करै, नहिं तोरत नेह जथा तिनकौ ।
 लव चाखत नीचन के मुँह की, शुचिता सब जाय छियैं जिनको ।
 मद मांस बजारनि खाय सदा, अँधले विसनी न करैं घिन कौ ।
गनिका सँग जे शठ लीन भये, धिक है धिक है धिक है तिनकौ ॥५४॥

अन्वयार्थ : पापिनी वेश्या धन के लिए प्रेम करती है। यदि व्यक्ति के पास धन नहीं बचे तो सारा प्रेम ऐसे तोड़ फेंकती है जैसे तिनका। वेश्या अधम व्यक्तियों के होठों का चुम्बन करती है अथवा उनके मुँह से निःसृत लार आदि अपवित्र वस्तुओं का स्वाद लेती है / सम्पूर्ण शुचिता वेश्या के हूँने से समाप्त हो जाती है। वेश्या सदा बजारों में मांस-मदिरा खाती-पीती फिरती है। वेश्या-व्यसन से घृणा वे ही नहीं करते, जो व्यसनों में अंधे हो रहे हैं। जो मूर्ख वेश्या-सेवन में लीन हैं, उन्हें बारम्बार धिक्कार है ॥५४॥

31 - आखेट-निषेध

कवित्त मनहर

कानन मैं बसै ऐसौ आन न गरीब जीव,
 प्रानन सौं प्यारौ प्रान पूँजी जिस यहै है ।
 कायर सुभाव धरै काहूँ सौं न द्रोह करे,
 सबही सौं डरै दाँत लियै तून रहै हैं ॥

काहू सौं न दोष पुनि काहू पै न पोष चहै,
 काहू के परोष परदोष नाहिं कहै है ।
 नेकु स्वाद सारिवे कौं ऐसे मृग मारिवे कौं,
 हा हा रे कठोर तेरौ कैसे कर वहै है ॥55॥

अन्वयार्थ : जो जंगल में रहता है, सबसे गरीब है, अपने प्राण ही जिसकी प्राणों से प्यारी पूँजी है, जो स्वभाव से ही कायर है, सभी से डरता रहता है, किसी से द्रोह नहीं करता, बेचारा अपने दाँतों में तिनका लिये रहता है, किसी पर नाराज नहीं होता, किसी से अपने पालन-पोषण की अपेक्षा नहीं रखता, परोक्ष में किसी के दोष नहीं कहता फिरता अर्थात् पीछे परनिन्दा करने का दुर्गुण भी जिसमें नहीं है. ऐसे 'मृग' को अपने जरा-से स्वाद के लिए मारने हेतु रे रे कठोर हृदय! तेरा हाथ उठता कैसे है? ॥55॥

32 - चोरी-निषेध

छप्प

चिंता तजै न चोर रहत चौंकायत सारै ।
 पीटै धनी विलोक लोक निर्दइ मिलि मारै ॥
 प्रजापाल करि कोप तोप सौं रोप उड़ावै ।
 मरै महादुख पेखि अंत नीची गति पावै ॥
 अति विपतिमूल चोरी विसन, प्रगट त्रास आवै नजर ।
 परवित अदत्त अंगार गिन, नीतिनिपुन परसैं न कर ॥56॥

अन्वयार्थ : चोर कभी भी और कहीं भी निश्चित नहीं होता, हमेशा और हर जगह चौकना रहता है / देख लेने पर स्वामी (चोरी की गई वस्तु का मालिक) उसकी पिटाई करता है। अन्य अनेक व्यक्ति भी मिल कर उसे निर्दयतापूर्वक बहुत मारते हैं / राजा भी क्रोध करके उसे तोप के सामने खड़ा करके उड़ा देता है। चोर इस भव में भी बहुत दुःख भोगकर मरता है और परभव में भी उसे अधोगति प्राप्त होती है। चोरी नामक व्यसन अनेक विपत्तियों की जड़ है। उसमें प्रत्यक्ष ही बहुत दुःख दिखाई देता है। समझदार व्यक्ति तो दूसरे के अदत्त (बिना दिये हुए) धन को अंगारे के समान समझकर कभी अपने हाथ से छूते भी नहीं।

33 - परस्तीसेवन-निषेध

छप्प

कुगति-वहन गुनगहन-दहन दावानल-सी है ।
 सुजसचंद्र-घनघटा देहकृशकरन खई¹ है ॥
 धनसर-सोखन धूप धरमदिन-साँझ समानी ।
 विपतिभुजंग-निवास बांबई वेद बखानी ॥
 इहि विधि अनेक औगुन भरी, प्रानहरन फाँसी प्रबल ।
 मत करहु मित्र ! यह जान जिय, परवनिता सौं प्रीति पल ॥57॥

अन्वयार्थ : परनारी-सेवन खोटी गति में ले जाने के लिए वाहन है, गुणसमूह को जलाने के लिए जंगल की सी भयानक आग है, उज्ज्वल यशरूपी चन्द्रमा को ढकने के लिए बादलों की घटा है, शरीर को कमजोर करने के लिए क्षयरोग (टी.बी.) है, धनरूपी सरोवर को सुखाने के लिए धूप है, धर्मरूपी दिन को अस्त करने के लिए सम्भ्या है और विपतिरूपी सर्यों के निवास के लिए बाँबी है। शास्त्रों में परनारी-सेवन को इसी प्रकार के अन्य भी अनेक दुर्गुणों से भरा हुआ कहा गया है। वह प्राणों को हरने के लिए प्रबल फाँसी है। ऐसा हृदय में जानकर है मित्र ! तुम कभी पल भर भी परस्ती से प्रेम मत करो।

1. पाठान्त्र : खसी।

34 - परस्तीत्याग-प्रशंसा

दिवि दीपक-लोय बनी वनिता, जड़जीव पतंग जहाँ परते ।
 दुख पावत प्रान गवाँवत हैं, बरजे न रहैं हठ सौं जरते ॥
 इहि भाँति विचच्छन अच्छन के वश, होय अनीति नहीं करते ।
 परती लखि जे धरती निरखें, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते ॥58॥

दिढ़ शील शिरोमन कारज मैं, जग मैं जस आरज तेइ लहैं ।
 तिनके जुग लोचन वारिज हैं, इहि भाँति अचारज आप कहैं ।
 परकामिनी कौ मुखचन्द चितैं, मुंद जांहि सदा यह टेव गहैं ।
 धनि जीवन है तिन जीवन कौ, धनि माय उनैं उर मांय¹ वहैं ॥59॥

अन्वयार्थ : परनारी एक ऐसी ज्वलित दीपक की लौ है जिस पर मूर्ख प्राणीरूपी पतंगे गिरते हैं, दुःख पाते हैं और जलकर प्राण गँवा देते हैं; रोकने और समझाने पर भी नहीं मानते, हठपूर्वक जलते ही हैं। विवेकी पुरुष इन्द्रियों के वश होकर ऐसा अनुचित कार्य नहीं करते। अहो ! जो व्यक्ति परनारी को देखकर अपनी नजर धरती की ओर नीची कर लेते हैं, वे धन्य हैं !! धन्य हैं !!! जो व्यक्ति शीलरूपी सर्वोत्तम कार्य में दृढ़तापूर्वक लगे हैं, वे ही आर्य पुरुष हैं - श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे ही जगत् में यश प्राप्त करते हैं। आचार्य कहते हैं कि ऐसे ही व्यक्तियों की आँखें वास्तव में कमल की उपमा देने लायक हैं, क्योंकि वे आँखें परस्ती के मुखरूपी चन्द्रमा को देखकर सदा मुंद जाने की आदत ग्रहण किये हुए हैं। धन्य है ऐसे व्यक्तियों का जीवन तथा धन्य हैं उनकी मातायें जो ऐसे आर्यपुरुषों को अपने गर्भ में धारण करती हैं।

1: पाठान्तर - माँझ।

35 - कुशील-निन्दा

मत्तगयन्द सत्या

जे परनारि निहारि निलज्ज, हँसैं विगसैं बुधिहीन बड़े रे ।
 जूँठन की जिमि पातर पेखि, खुशी उर कूकर होत घनेरे ॥
 है जिनकी यह टेव वहै, तिनकौं इस भौ अपकीरति है रे ।

है परलोक विषैं दृढ़दण्ड¹, करै शतखण्ड सुखाचल केरे ॥60॥

अन्वयार्थ : जो निर्लज्ज व्यक्ति परस्ती को देखकर हँसते हैं, खिलते हैं - प्रसन्न होते हैं, वे बड़े बुद्धिहीन (बेवकूफ) हैं। परस्ती को देखकर उनका प्रसन्न होना ऐसा है, मानों झूठन की पतल देखकर कोई कुत्ता अपने मन में बहुत प्रसन्न हो रहा हो। जिन व्यक्तियों की ऐसी (परस्ती को देखकर निर्लज्जतापूर्वक हँसने और प्रसन्न होने की) खोटी आदत पड़ गई है, उनकी इस भव में बदनामी होती है, और परभव में भी कठोर दण्ड मिलता है, जो उनके सुखरूपी पर्वत के टुकड़े-टुकड़े कर डालता है अर्थात् समस्त सुख-शांति का विनाश कर देता है।

1: पाठान्तर - बिजुरी सु।

36 - व्यसन-सेवन के उदाहरण व फल

छप्प

प्रथम पांडवा भूप खेलि जूआ सब खोयौ ।
 मांस खाय बक राय पाय विपदा बहु रोयौ ।
 बिन जानैं मदपानजोग जादौगन दज्जे ।
 चारुदत्त दुख सह्यौ¹ वेसवा-विसन अरुज्जे ।
 नृप ब्रह्मदत्त आखेट सौं, द्विज शिवभूति अदत्तरति ।

पर-रमनि राचि रावन गयौ, सातौं सेवत कौन गति ॥६१॥

पाप नाम नरपति करै, नरक नगर मैं राज ।
तिन पठये पायक विसन, निजपुर वसती काज ॥६२॥

जिनकैं जिन के वचन की, बसी हिये परतीत ।
विसनप्रीति ते नर तजौ, नरकवास भयभीत ॥६३॥

अन्वयार्थ : 1. पाठान्तर : संहे।

पांडवों के राजा युधिष्ठिर ने जुआ नामक प्रथम व्यसन के सेवन से सब कुछ खो दिया, राजा बक ने मांस खाकर बहुत कष्ट उठाये, यादव बिना जाने मद्यपान कर जल मरे, चारुदत्त ने वेश्याव्यसन में फंसकर बहुत दुःख भोगे, राजा ब्रह्मदत्त (चक्रवर्ती) शिकार के कारण नरक गया, चोरी के कारण - धरोहर के प्रति नियत खराब कर लेने के कारण - शिवभूति ब्राह्मण ने बहुत दुःख सहा, और रावण परस्ती में आसक्त होकर नरक गया। अहो ! जब एक-एक व्यसन का सेवन करने वालों की ही यह दुर्दशा हुई, तो जो सातों का सेवन करते हैं उनकी क्या दुर्दशा होगी?

विशेष :-प्रस्तुत छन्द में कवि ने सातों व्यसनों के वृष्णान्तस्वरूप क्रमशः सात कथा-प्रसंगों की ओर संकेत किया है, जिनकी पूर्ण कथा प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में प्राप्त होती है। अतिसंक्षेप में वे इसप्रकार हैं -

1. जुआ : इसमें महाराजा युधिष्ठिर की कथा सुप्रसिद्ध है / एक बार युधिष्ठिर ने कौरवों के साथ जुआ खेलते हुए अपना सब-कुछ दाव पर लगा था और पराजित होकर उन्हें राज्य छोड़कर वन में जाना पड़ा था। वन में उन्होंने अपार दुःख सहन किये।

2. मांस-भक्षण : मनोहर देश के कुशाग्र नगर में एक भूपाल नाम का धर्मात्मा राजा राज्य करता था। उसने नगर में जीव-हिंसा पर प्रतिबंध घोषित कर रखा था। किन्तु उसका अपना पुत्र बक ही बड़ा मांस-लोलुपी था। वह मांस के बिना नहीं रह सकता था, अतः उसने रसोइये को धनादि का लालच देकर अपने लिए मांसाहार का प्रबन्ध कर लिया। एक दिन रसोइये को किसी भी पशु-पक्षी का मांस नहीं मिला, अतः उसने शमशान में से गढ़े हुए बालक को निकालकर उसका ही मांस राजकुमार बक को खिला दिया। राजकुमार बक को यह मांस बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने प्रतिदिन ऐसा ही मांस खाने की अभिलाषा व्यक्त की। रसोइया धनादि के लालच में ऐसा ही करने को तैयार हो गया। अब वह प्रतिदिन नगर के बालकों को मिठाई देने के बहाने बुलाता और उनमें से किसी एक बालक को छुपकर मार डालता। नगर में बालकों की संख्या घटने लगी। अंत में सारा भैद खुल गया। राजकुमार बक को देश निकाला मिला। वह इधर-उधर भटकता-भटकता नरभक्षी राक्षस बन गया। एक बार वसुदेव से उसकी भेट हुई। वसुदेव ने उसे मार डाला।

3. मदिरापान : भगवान नेमिनाथ के समय की बात है। एक बार द्वारिकानिवासी यादवगण (यदुवंशी मनुष्य) वन-कीड़ा हेतु नगर से बाहर निकले। वहाँ उन्हें बहुत प्यास लगी और उन्होंने अनजाने में ही एक ऐसे जलाशय का जल पी लिया जो वस्तुतः सामान्य जल नहीं, अपितु कदम्ब फलों के कारण मदिरा ही बन चुका था। इससे वे सब मदोन्मत्त होकर द्वीपायन मुनि को परेशान करने लगे। परिणामस्वरूप द्वीपायन की क्रोधाग्नि में जलकर समूची द्वारिका के साथ साथ वे भी भस्म हो गये।

4. वेश्यासेवन : चम्पापुरी में सेठ भानुदत्त और सेठानी सुभद्रा के एक चारुदत्त नाम का वैराग्य प्रकृति का पुत्र था। परन्तु उसे विषयभोगों की ओर से उदासीन रहकर उसकी माँ को बहुत दुःख होता था, अतः माँ ने उसे व्यभिचारी पुरुष की संगति में डाल दिया। इससे चारुदत्त शनैः-शनैः विषयभोगों में ही बुरी तरह फैस गया। वह 12 वर्ष तक वेश्यासेवन में लीन रहा। उसने अपना धन, यौवन, आभूषण आदि सब कुछ लुटा दिया। और अन्त में जब उसके पास कुछ भी शेष नहीं बचा तो वसन्तसेना वेश्या ने उसे घर से निकलवा कर गन्दे स्थान पर फिकवा दिया।

5. शिकार : राजा ब्रह्मदत्त शिकार का प्रेमी था। वह प्रतिदिन वन के निरीह प्राणियों का शिकार करके घोर पाप का बन्ध करता था। एक दिन उसे कोई शिकार नहीं मिला। उसने इधर-उधर देखा तो एक मुनिराज बैठे थे। उसने समझा कि इन्हीं के कारण आज मुझे कोई शिकार नहीं मिला है। उसने अपने मन में मुनिराज से बदला लेने की ठानी। दूसरे दिन जब मुनिराज आहार हेतु गये, तब उसने उस शिला को अत्यधिक गर्म कर दिया। मुनिराज आहार करके आये तो अचल योग धारण करके उसी शिला पर बैठ गये। उनका शरीर जलने लगा, पर वे विचलित नहीं हुये। परिणामस्वरूप मुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उधर राजा ब्रह्मदत्त को घर जाने के बाद भयंकर कोढ़ हो गया। उसके शरीर से दुर्गंध आने लगी। सबने उसका साथ छोड़ दिया। वह मरकर सातवें नरक में गया। नरक से निकलने के बाद महादुर्गम्य शरीरवाली धीवर कन्या हुआ और उसके बाद भी अनेक जन्मों में उसने वचनातीत कष्टों को सहन किया।

6. चोरी : सिंहपुर नगर में एक शिवभूति नाम का पुरोहित था। यद्यपि वह बड़ा चोर और बेर्इमान था, पर उसने मायाचारी से अपने संबंध में यह प्रकट कर रखा था कि मैं बड़ा सत्य बोलने वाला हूँ। वह कहता था कि देखो, मैं अपने पास सदा यह चाकू रखता हूँ, ताकि झूठ बोलूँ तो तुरन्त अपनी जीभ काट डालूँ। इससे अनेक भोले लोग उसे 'सत्यघोष' ही कहने-समझने लगे। यद्यपि अनेक लोग इस शिवभूति पुरोहित के चक्कर में आकर ठगाये जा चुके थे, पर कोई उसे झूठा नहीं सिद्ध कर पाता था। एक बार एक समुद्रदत्त नामक वणिक विदेश जाते समय अपने पाँच बहुमूल्य रत्नों को उस शिवभूति के पास रखकर गया और वहाँ से लौटकर उसने अपने रत्न वापस माँगे। हमेशा की तरह इस बार भी शिवभूति ने साफ-साफ इनकार कर दिया। बेचारा समुद्रदत्त दुःखी होकर रोता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। आखिरकार रानी की कुशलता से शिवभूति का अपराध सामने आ गया। दण्डस्वरूप उसे तीन सजाएँ सुनाई गईं कि या तो वह अपना सर्वस्व देकर देश से बाहर चला जावे अथवा पहलवान के 32 मुक्के सहन करे अथवा तीन परात गोबर खाना स्वीकार किया। पर नहीं खा सका। फिर उसने पहलवान के 32 मुक्के खाना स्वीकार किया, पर वे भी उससे सहन नहीं हुए और अन्त में उसे अपना सर्वस्व देकर नगर से बाहर जाना पड़ा।

7. परस्ती-सेवन : इसमें रावण की कथा सर्वजनप्रसिद्ध ही है, अतः उसे यहाँ नहीं लिखते हैं / रावण सीता के प्रति दुर्भव रखने के कारण ही नरक गया ॥६१॥ एक पाप नाम का राजा है जो नरकरूपी नगर में राज्य करता है और उसी ने अपने नगर की समुद्धि के लिए इस लोक में अपने सप्त व्यसनरूपी दूत छोड़ रखे हैं ॥६२॥ जिनके हृदय में जिनेन्द्र भगवान के वचनों की प्रतीति हुई हो और जो नरकवास से भयभीत हों, वे इन व्यसनों के प्रति अनुराग का त्याग करो ॥६३॥

राग उदै जग अंध भयौ, सहजै सब लोगन लाज गवाँई ।
 सीख बिना नर सीख रहे, विसनादिक^१ सेवन की सुघराई ।
 ता पर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई ।
 अंध असूझन की अँखियान मैं, झोंकत हैं रज रामदुहाई ॥६४॥

कंचन कुम्भन की उपमा, कह देत उरोजन को कवि बारे ।
 ऊपर श्याम विलोकत कै^२, मनिनीलम की ढकनी ढँकि छारे ॥
 यौं सत वैन कहैं न कुपंडित, ये जुग आमिषपिंड उघारे ।
 साधन झार दई मुँह छार, भये इहि हेत किधौं कुच कारे ॥६५॥

ए विधि ! भूल भई तुमतैं, समुझे न कहाँ कस्तूरि बनाई ।
 दीन कुरंगन के तन मैं, तृन दंत धैरैं करुना किन^३ आई ॥
 क्यौं न करी तिन जीभन जे, रसकाव्य करैं पर कौं दुखदाई ।
 साधु-अनुग्रह दुर्जन-दण्ड, दुहू सधते विसरी चतुराई ॥६६॥

अन्वयार्थ : १. पाठान्त्र : विषयादिक। २. पाठान्त्र : वे। ३. पाठान्त्र : नहिं।

अहो! रागभाव के उदय से यह दुनिया वैसे ही इतनी अंधी हो रही है कि सब लोग अपनी सारी मान-मर्यादा खोये बैठे हैं। व्यक्ति बिना ही सिखाये व्यसनादि-सेवन में कुशलता प्राप्त कर रहे हैं। ऊपर से, जो कुकवि उन्हीं व्यसनादि के पोषण करने वाले काव्यों की रचना करते हैं, उनकी निष्ठुरता का क्या कहना? वे बड़े निर्दयी हैं। भगवान की सौगन्ध, वे कुकवि, जो लोग अंधे हैं - जिन्हें कुछ नहीं दीखता, उनकी आँखों में धूल झोंक रहे हैं ॥६४॥

बावले कवि (कुकवि) नारियों के स्तनों को स्वर्णकलश और स्तनों के अग्रभाग को कालिमा के कारण नीलमणि के ढक्कन की उपमा देते हैं। कहते हैं कि नारियों के स्तन नीलमणि के ढक्कन से ढके हुए स्वर्ण-कलश हैं। जबकि वस्तुस्थिति यह नहीं है। वे कुकवि सही-सही बात नहीं कहते हैं। सही बात तो यह है कि नारियों के स्तन स्पष्टतया दो मांसपिण्ड हैं, जिनके मुँह में साधु पुरुषों ने राख भर दी है (अर्थात् उनकी अत्यन्त उपेक्षा कर दी है), इसी वजह से उनका अग्रभाग काला हो गया है ॥६५॥

है विधाता ! तुमसे भूल हो गई। तुम नहीं समझ पाये कि कस्तूरी कहाँ बनाना चाहिए और तुमने बेचारे उन असाह्य हिरण्यों के शरीर में कस्तूरी बना दी जो अपने दाँतों में घास-तृण लिये रहते हैं। तुम्हें इन हिरण्यों पर दया क्यों नहीं आई? हे विधाता ! तुमने यह कस्तूरी उनकी जीभ पर क्यों नहीं बनाई जो जगत् का अहित करने वाली काव्यरचना करते हैं? ऐसा करने से सज्जनों पर कृपा भी हो जाती और दुर्जनों को दण्ड भी मिल जाता, दोनों ही प्रयोजन सिद्ध हो जाते। पर क्या बतायें, तुम तो अपनी सारी चतुराई भूल गये ॥६६॥

ज्ञानमहावत डारि सुमतिसंकल गहि खंडै ।
 गुरु-अंकुश नहिं गिनै ब्रह्मव्रत-विरख विहंडै ॥
 कर सिधंत-सर न्हौन केलि अघ-रज सौं ठाने ।
 करन-चपलता धैरै कुमति-करनी रति मानै ॥

डोलत सछन्द मदमत्त अति, गुण-पथिक न आवत उरै । वैराग्य-खंभ से बाँध नर, मन-मतंग विचरत ब्रै ॥६७॥

अन्वयार्थ : हे मनुष्य ! तुम्हारा मनरूपी हाथी बुरी तरह विचरण कर रहा है, तुम इसे वैराग्यरूपी स्तंभ से बाँधो। इस मनरूपी हाथी ने ज्ञानरूपी महावत को गिरा दिया है, सुमतिरूपी साँकल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं, गुरुवचनरूपी अंकुश की उपेक्षा कर रखी है और ब्रह्मचर्यरूपी वृक्ष को उखाड़ फेंका है। तथा यह मनरूपी हाथी सिद्धान्त (शास्त्र) रूपी सरोवर में स्नान करके भी पापरूपी धूल से खेल रहा है, अपने इन्द्रियरूपी कानों को चपलता-पूर्वक बारम्बार हिला रहा है और कुमतिरूपी हथिनी के साथ रतिक्रीड़ा कर रहा है। इस प्रकार यह मनरूपी हाथी अत्यधिक मदोन्मत्त होता हुआ स्वच्छंदतापूर्वक घूम रहा है, गुणरूपी राहगीर इसके पास तक नहीं आ रहे हैं; अतः इसे वैराग्यरूपी स्तंभ से बाँधो। तात्पर्य यह है कि हमें अपने चंचल मन को वैराग्य-भावना के द्वारा स्थिर या एकाग्र करना चाहिए, अन्यथा यह हमारे ज्ञान, शील आदि सर्व गुणों का विनाश कर देगा और हमारे ऊपर गुरुवचनों व जिनवचनों का कोई असर नहीं होने देगा। जबतक हमारा मन चंचल है तब तक कोई सद्गुण हमारे समीप तक नहीं आएगा।

39 - गुरु-उपकार

कविता मनहर

ढई-सी सराय काय पंथी जीव वस्यौ आय,
रत्नत्रय निधि जापै मोख जाकौ घर है ।
मिथ्या निशि कारी जहाँ मोह अन्धकार भारी,
कामादिक तस्कर समूहन को थर है ।

सोवै जो अचेत सोई खोवै निज संपदा कौ,
तहाँ गुरु पाहरु पुकारैं दया कर है ।
गाफिल न हजै भ्रात ! ऐसी है अंधेरी रात,
जाग रे बटोही ! इहाँ चोरन को डर है ॥६८॥

अन्वयार्थ : हे भाई ! यह शरीर ढह जाने वाली धर्मशाला के समान है। इसमें एक जीवरूपी राहगीर आकर ठहरा हुआ है। उसके पास रत्नत्रयरूपी पूँजी है और मोक्ष उसका घर है। यात्रा के इस पड़ाव पर मिथ्यात्वरूपी काली रात है, मोहरूपी घोर अन्धकार है और काम-क्रोध आदि लुटेरों के झूँण्डों का निवास है। यहाँ जो अचेत होकर सोता है वह अपनी संपत्ति खो बैठता है। अतः हे भाई ! गाफिल मत होओ, रात बड़ी अंधेरी है। गुरुरूपी पहरेदार भी दया करके आवाज लगा रहे हैं कि हे राहगीर ! जागते रहो, यहाँ चोरों का डर है।

40 - कषाय जीतने का उपाय

मत्तगयन्द सत्त्वेया

छेमनिवास छिमा धुवनी विन, क्रोध पिशाच उरै न टरैगौ ।
कोमलभाव उपाव विना, यह मान महामद कौन हरैगौ ॥
आर्जव सार कुठार विना, छलबेल निकंदन कौन करैगौ ।
तोषशिरोमनि मन्त्र पढ़े विन, लोभ फणी विष क्यौं उतरैगौ ॥६९॥

अन्वयार्थ : क्रोधरूपी पिशाच, जिसमें कुशलता निवास करती है ऐसी क्षमा की धूनी दिये बिना दूर नहीं हटेगा, मानरूपी प्रबल मदिरा कोमलभाव के बिना नहीं उतरेगी, छलरूपी बेल आर्जवरूपी तीक्ष्ण कुल्हाड़ी के बिना नहीं कटेगी, और लोभरूपी विषेले सर्प का जहर सन्तोषरूपी महामन्त्र के जाप बिना नहीं उतरेगा। तात्पर्य यह है कि क्रोध, मान, माया और लोभरूप कषायों का अभाव करने का एक मात्र उपाय उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव और उत्तम शौचरूप आस्थाधर्म ही है।

41 - मिष्ठ वचन

मत्तगयन्द सत्त्वेया

काहे को बोलत बोल बुरे नर ! नाहक क्यौं जस-धर्म गमावै ।
कोमल वैन चवै किन ऐन, लगै कछ है न सबै मन भावै ।

तालु छिदै रसना न भिदै, न घटैं कछु अंक दरिद्र न आवै । जीभ कहैं जिय हानि नहीं तुझ, जी सब जीवन कौ सुख पावै ॥70॥

अन्वयार्थ : हे भाई ! कठोर वचन क्यों बोलते हो ? कठोर वचन बोलकर व्यर्थ ही क्यों अपना यश और धर्म नष्ट करते हो ? अच्छे व कोमल वचन क्यों नहीं बोलते हो ? देखो ! कोमल वचन सबके मन को अच्छे लगते हैं ; जबकि उन्हें बोलने में कोई धन नहीं लगता, बोलने पर ताल भी नहीं छिदता, जीभ भी नहीं भिदती. रूपया-पैसा कुछ घट नहीं जाता और दरिद्रता भी नहीं आ जाती। इसप्रकार अपनी जीभ से मधुर और कोमल वचन बोलने में तुम्हें हानि कुछ भी नहीं होती, अपितु सुनने वाले सब जीवों के मन को बड़ा सुख प्राप्त होता है ; अतः कोमल वचन ही बोलो, कटु वचन मत बोलो।

42 - धैर्य-धारण का उपदेश

कविता मनहर

आयो है अचानक भयानक असाता कर्म,
ताके दूर करिवे को बलि कौन अह रे ।
जे जे मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आप,
तेई अब आये निज उदैकाल लह रे ॥
एरे मेरे वीर ! काहे होत है अधीर यामैं,
कोउ को न सीर तू अकेलौ आप सह रे।
भयै दिलगीर कछु पीर न विनसि जाय,
ताही तैं सयाने ! तू तमासगीर रह रे ॥71॥

अन्वयार्थ : हे भाई ! यदि तुम्हारे ऊपर भयानक असाता कर्म का अचानक उदय आ गया है तो तुम इससे अधीर क्यों होते हो, क्योंकि अब इसे टालने में कोई समर्थ नहीं है। तुमने स्वयं ने अपनी इच्छानुसार प्रवर्तन करके जो-जो पाप पहले कमाये थे, वे ही अब अपना उदयकाल आने पर तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हारे कर्मों के इस फल को अब दूसरा कोई नहीं बाँट सकता, तुम्हें स्वयं अकेले ही भोगना होगा। अतः अब चिंतित या उदास (दुःखी) होने से कोई लाभ नहीं है। चिन्ता करने से या उदास रहने से दुःख मिट नहीं जावेगा। अतः हे मेरे सयाने भाई ! तुम ज्ञाता-द्रष्टा बने रहो - तमाशा देखने वाले बने रहो।

43 - होनहार दुर्निवार

कविता मनहर

कैसे कैसे बली भूप भू पर विख्यात भये,
वैरीकल काँपैं नेकु भहौं के विकार सौं ।
लंघे गिरि-सायर दिवायर-से दिपैं जिनों,
कायर किये हैं भट कोटिन हुँकार सौं ॥
ऐसे महामानी मौत आये हू न हार मानी,
क्यों ही उतरे न कभी मान के पहार सौं ।
देव सौं न हारे पुनि दानो सौं न हारे और,
काहू सौं न हारे एक हारे होनहार सौं ॥72॥

अन्वयार्थ : देखो तो सही ! इस पृथ्वी पर ऐसे-ऐसे बलशाली व प्रसिद्ध राजा उत्पन्न हो गये हैं - जिनकी भौंहों के तनिक-सी टेढ़ी करने पर शत्रुओं के समूह काँप उठते थे, जो पहाड़ों और समुद्रों को लाँघ सकते थे, जो सूर्य के समान तेजस्वी थे, जिन्होंने अपनी हुंकार मात्र से करोड़ों योद्धाओं को कायर बना दिया था और अभिमानी ऐसे कि कभी मान के पहाड़ से नीचे उतरे ही नहीं, जिन्होंने कभी मौत से भी अपनी हार नहीं मानी थी, जो कभी किसी से नहीं हारे थे, न किसी देव से और न किसी दानव से, परन्तु अहो ! वे भी एक होनहार से हार गये।

विशेष :- यहाँ कवि ने होनहार को अत्यन्त बलवान बताते हुए कहा है कि होनहार का उल्लंघन कोई भी कैसे भी नहीं कर सकता। सो अनेक पूर्वाचार्यों ने भी ऐसा ही कहा है। उदाहरणार्थ आचार्य समन्तभद्र के 'स्वयंभू-स्तोत्र' का ३३वाँ श्लोक द्रष्टव्य है - अलंधशक्तिर्भित्वित्व्यतेयं... .

44 - काल-सामर्थ्य

लोहमई कोट केर्ई कोटन की ओट करौ,
काँगुरेन तोप रोपि राखो पट भेरिकैं ।
इन्द्र चन्द्र चौंकायत चौकस है चौकी देहु,
चतुरंग चमू चहूँ ओर रहो घेरिकैं ॥

तहाँ एक भौंहिरा बनाय बीच बैठौ पुनि,
बोलौ मति कोऊ जो बुलावै नाम टेरिकैं ।
ऐसैं परपंच-पाँति रचौ क्यों न भाँति-भाँति,
कैसैं हूँ न छोरै जम देख्यौ हम हेरिकैं ॥73॥

अन्तक सौं न छूटै निहचै पर, मूरख जीव निरन्तर धूजै ।
चाहत है चित मैं नित ही सुख, होय न लाभ मनोरथ पूजै ॥
तौ पन मूढ़ बँध्यौ भय आस, वृथा बहु दुःखदवानल भूजै ।
छोड़ विचच्छन ये जड़ लच्छन, धीरज धारि सुखी किन हूजै ॥74॥

अन्वयार्थ : एक लौहमय किला बनवाइये, उसे अनेक परकोटों से घिरवा दीजिये, परकोटों के कंगूरों पर तोपें रखवा दीजिये, इन्द्र-चन्द्रादि जैसे सावधान पहरेदारों को चौकन्ने होकर पहरे पर बिठा दीजिये, किवाड़ भी बन्द कर लीजिये, चारों और चतुरंगिणी सेना का घेरा डलवा दीजिये तथा आप उस लौहमय किले के तलघर में जाकर बैठ जाइये, कोई चाहे कितनी ही आवाजें लगावे, आप बोलिये तक नहीं। इसी प्रकार के और भी कितने ही इन्तजामों (तामझाम) का ढेर लगा दीजिए, पर यह हमने खूब खोजकर देख लिया है कि मृत्यु कभी नहीं छोड़ती ॥73॥

यह निश्चित है कि मृत्यु से बचा नहीं जा सकता है, तथापि अज्ञानी प्राणी निरन्तर भयभीत बना रहता है। वह सदा सुखसामग्री की इच्छा करता रहता है, किन्तु न तो उनकी प्राप्ति होती है और न कभी उसके मनोरथ पूरे होते हैं। परन्तु फिर भी वह भय और आशा से बँधा रहता है और व्यर्थ ही दुःखरूपी प्रबल आग में जलता रहता है। हे विचक्षण ! तुम इन मूर्खता के लक्षणों को त्याग कर एवं धैर्य धारण कर सुखी क्यों नहीं हो जाते हो ? ॥74॥

विशेष :- इसी प्रकार का भाव आचार्य समन्तभद्र ने भी स्वयंभू स्तोत्र, छन्द 34 में प्रकट किया है ।

45 - धैर्य-शिक्षा

जो धनलाभ लिलार लिख्यौ, लघु दीरघ सुक्रत के अनुसारै ।
सो लहिहै कछू फेर नहीं, मरुदेश के ढेर सुमेर सिधारै ॥
घाट न बाढ़ कहीं वह होय, कहा कर आवत सोच-विचारै ।
कूप किधौं भर सागर मैं नर, गागर मान मिलै जल सारै ॥75॥

अन्वयार्थ : थोड़े या बहुत पुण्य के अनुसार जितना धनलाभ भाग्य में लिखा होता है, व्यक्ति को उतना ही मिलता है - इसमें कोई सन्देह नहीं, फिर चाहे वह मारवाड़ के टीलों पर रहे और चाहे सुमेर पर्वत पर चला जाए। वह कितना ही सोचविचार क्यों न कर ले, परन्तु उससे वह किंचित् भी कम या अधिक नहीं हो सकता। और भाई ! कुएं में भरो या सागर में, जल तो सर्वत्र उतना ही मिलता है, जितनी बड़ी गागर (बर्तन) होती है।

46 - आशारूपी नदी

मोह से महान ऊँचे पर्वत सौं ढर आई,
तिहूँ जग भूतल मैं याहि विसतरी है ।
विविध मनोरथमै भूरि जल भरी बहै,
तिसना तरंगनि सौं आकुलता धरी है ।

परैं भ्रम-भौंर जहाँ राग-सो मगर तहाँ,
चिंता तट तुङ्ग धर्मवृच्छ ढाय ढरी है ।
ऐसी यह आशा नाम नदी है अगाध ताकौ,
धन्य साधु धीरज-जहाज चढ़ि तरी है ॥76॥

अन्वयार्थ : आशारूपी नदी बड़ी अगाध - गहरी है। यह मोहरूपी महान् पर्वत से ढलकर आई है, तीनों लोकरूपी पृथ्वी पर बह रही है, इसमें विविध मनोरथमयी जल भरा हुआ है, तृष्णारूपी तरंगों के कारण इसमें आकुलता उत्पन्न हो रही है, भ्रमरूपी भँवरें पड़ रही हैं, रागरूपी बड़ा मगरमच्छ इसमें रहता है, चिन्तारूपी इसके विशाल तट हैं, और यह धर्मरूपी विशाल वृक्ष को गिरा कर बह रही है। अहो ! वे साधु धन्य हैं, जिन्होंने धैर्यरूपी जहाज पर चढ़कर इस आशा नदी को पार कर लिया है।

47 - महामूढ़-वर्णन

जीवन कितेक तामैं कहा बीत बाकी रह्यौ,
तापै अंध कौन-कौन करै हेर फेर ही ।
आपको चतुर जानै औरन को मूढ़ मानै,
साँझ होन आई है विचारत सवेर ही ॥

चाम ही के चखन तैं चितवै सकल चाल,
उर सौं न चौंधे, कर राख्यौ है अँधेर ही ।
बाहै बान तानकैं अचानक ही ऐसौ जम,
दीसहै मसान थान हाड़न कौ ढेर ही ॥77॥

केती बार स्वान सिंघ सावर सियाल साँप,
सिँधुर सारङ्ग सूसा सूरी उदरै पर्यो ।
केती बार चील चमगादर चकोर चिरा,
चक्रवाक चातक चँडुल तन भी धर्यो ।

केती बार कच्छ मेंडक गिंडोला मीन,
शंख सीप कौड़ी है जलूका जल मैं तिर्यो ।
कोऊ कहै 'जाय रे जनावर !' तो बुरो मानै,
यौं न मूढ़ जानै मैं अनेक बार है मर्यो ॥78॥

अन्वयार्थ : यह जीवन वैसे ही कितना थोड़ा-सा है, और उसमें भी बहुत सारा तो बीत ही चुका है, अब शेष बचा ही कितना है; परन्तु यह अज्ञानी प्राणी न जाने क्या-क्या उलटे-सीधे करता रहता है, अपने को होशियार समझता है, और सबको मूर्ख समझता है। देखो तो सही ! सन्ध्या होने जा रही है, पर यह अभी सवेरा ही समझ रहा है। अभी भी सारे जगत और उसके क्रिया-कलापों को अपनी चर्म-चक्षुओं से ही देख रहा है, हृदय की आँखों से नहीं देखता; हृदय की आँखों में तो इसने अभी भी अँधेरा कर रखा है। लेकिन अब अचानक (कभी भी) यमराज एक बाण ऐसा खींचकर चलाने वाला है कि बस फिर शमशान में हड्डियों का ढेर ही दिखाई देगा ॥77॥ यद्यपि यह अज्ञानी कितनी ही बार कुत्ता, सिंह, साँभर (एक प्रकार का हिरण), सियार, सर्प, हाथी, हिरण, खरगोश, सुअर आदि अनेक थलचर प्राणियों के रूप में उत्पन्न हुआ है, कितनी ही बार चील, चमगादड़, चकोर, चिड़िया, चकवा, चातक, चंद्रल (खाकी रंग की एक छोटी चिड़िया) आदि अनेक नभचर प्राणियों के रूप में उत्पन्न हुआ है; और कितनी ही बार कछुआ, मगरमच्छ, मेंडक, गिंदोड़ा, मछली, शंख, सीप, कौड़ी, झोंक आदि अनेक जलचर प्राणियों के रूप में भी उत्पन्न हुआ है; तथापि यदि कोई इसे 'जानवर' कह दे तो बुरा मानता है - खेदखिन्न होता है; यह विचारकर समता धारण नहीं करता कि जानवर तो मैं अनेक बार हुआ हूँ, हो-होकर मरा हूँ ॥78॥

48 - दुष्ट कथन

छप्प

करि गुण-अमृत पान दोष-विष विषम समप्पै ।
बंकचाल नहिं तजै जुगल जिह्वा मुख थप्पै ॥
तकै निरन्तर छिद्र उदै-परदीप न रुचै ।
बिन कारण दुख करै वैर-विष कबहुँ न मुच्वै ॥
वर मौनमन्त सौं होय वश, सङ्गत कीयै हान है ।
बहु मिलत बान यातैं सही, दुर्जन साँप-समान है ॥79॥

अन्वयार्थ : दुर्जन वास्तव में सर्प के समान है, क्योंकि उसमें सर्प की बहुत आदतें (विशेषताएँ) मिलती हैं। यथा : जिसप्रकार सर्प दूध पीकर भी जहर ही उगलता है, उसीप्रकार दुर्जन व्यक्ति भी गुणरूपी अमृत पीकर भी दोषरूपी भीषण जहर ही उगलता है। जिसप्रकार सर्प कभी अपनी टेढ़ी चाल को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार दुर्जन भी दोगला होता है, वह कभी किसी को कुछ कहता है, और कभी किसी से कुछ और ही कहता है। जिसप्रकार सर्प सदा बिल की खोज में रहता है, उसीप्रकार दुर्जन भी सदा बुराइयों की ही खोज में रहता है। जिसप्रकार सर्प को जलता हुआ दीपक पसन्द नहीं होता, उसीप्रकार दुर्जन को दूसरे की उत्तरति पसन्द नहीं होती। जिसप्रकार सर्प दूसरों को अकारण ही दुःखी करता है, उसीप्रकार दुर्जन भी दूसरों को अकारण ही परेशान करता है। जिसप्रकार सर्प जहर को कभी नहीं छोड़ता, उसीप्रकार दुर्जन भी बैररूपी जहर को कभी नहीं छोड़ता। जिसप्रकार सर्प मंत्र से वशीभूत हो जाता है, उसीप्रकार दुर्जन भी मौनरूपी श्रेष्ठ मन्त्र से वशीभूत हो जाता है। जिसप्रकार सर्प की संगति से व्यक्ति की हानि होती है, उसीप्रकार दुर्जन की संगति से भी व्यक्ति की हानि होती है।

49 - विधाता से तर्क

कविता मनहर

सज्जन जो रचे तौ सुधारस सौ कौन काज,
दुष्ट जीव किये कालकूट सौं कहा रही ।
दाता निरमापे फिर थापे क्यौं कलपवृक्ष,
जाचक विचारे लघु तृण हूं तैं हैं सही ॥

इष्ट के संयोग तैं न सीरौ घनसार कछु,
जगत कौ ख्याल इन्द्रजाल सम है वही ।

ऐसी दोय-दोय बात दीखैं विधि एक ही सी, काहे को बनाई मेरे धोखौ मन है यही ॥80॥

अन्वयार्थ : हे विधाता ! इस जगत् में एक जैसी ही दो-दो वस्तुएँ दिखाई देती हैं, अतः मेरे मन में एक शंका है कि तुमने ऐसा क्यों किया? एक जैसी ही दो-दो वस्तुएँ क्यों बनाई? जब तुमने सज्जन बना दिये तो फिर अमृत बनाने की क्या आवश्यकता थी? और जब तुमने दुर्जन बना दिये थे तो फिर हलाहल जहर बनाने की क्या आवश्यकता रह गई थी? तथा जब तुमने दाता बना दिये थे तो कल्पवृक्ष बनाने की क्या आवश्यकता थी? और जब याचक बना दिये तो तिनके बनाने की क्या आवश्यकता थी? याचक तो वस्तुतः तिनके से भी छोटे हैं। इसीप्रकार जब तुमने इष्टसंयोग बना दिया था तो चंदन बनाने की क्या आवश्यकता थी? चन्दन कोई इष्टसंयोग से तो अधिक शीतल है नहीं। और जब तुमने जगत् का विचित्र स्वरूप बना दिया तो इन्द्रजाल बनाने की क्या आवश्यकता थी? जगत् का विचित्र स्वरूप तो वैसे ही इन्द्रजाल के समान है। तात्पर्य यह है कि सज्जन अमृत से भी उत्तम होते हैं, दुर्जन कालकृत विष में भी बुरे होते हैं, दाता कल्पवृक्ष से भी बड़े होते हैं, याचक तिनके से भी छोटे होते हैं, इष्टसंयोग चंदन से भी अधिक शीतल होता है और इस जगत् का स्वरूप इन्द्रजाल से भी अधिक विचित्र है।

विशेष :- यद्यपि 'घनसार' शब्द का अर्थ चन्दन और कपूर दोनों ही होता है, पर यहाँ चन्दन ही लेना उचित है, क्योंकि यहाँ विधाता से तर्क किया जा रहा है। कपूर कृत्रिम है।

50 - चौबीस तीर्थङ्करों के चिह्न

गऊपुत्र गजराज बाजि बानर मन मोहै ।
कोक कमल साँथिया सोम सफरीपति सौहै ।
सरतरु गैंडा महिष कोल पुनि सेही जानौं ।
वज्र हिरन अज मीन कलश कच्छप उर आनौं ॥
शतपत्र शंख अहिराज हरि, रिषभदेव जिन आदि ले ।
श्री वर्धमान लौं जानिये, चिह्न चारु चौवीस ये ॥81॥

अन्वयार्थ : श्री ऋषभदेव से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस सुन्दर चिह्न क्रमशः इसप्रकार हैं :- 1. बैल, 2. हाथी, 3. घोड़ा, 4. बन्दर, 5. चकवा, 6. कमल, 7. साँथिया, 8. चन्द्र, 9. मगर, 10. कल्पवृक्ष, 11. गैंडा, 12. भैंसा, 13. शूकर, 14. सेही, 15. वज्र, 16. हिरन, 17. बकरा, 18. मछली, 19. कलश, 20. कछुआ, 21. नीलकमल, 22. शंख, 23. सर्प, 24. सिंह।

51 - श्री ऋषभदेव के पूर्वभव

आदि जयवर्मा, दूजे महाबल भूप, तीजे,
सुरग ईशान ललितांग देव थयौ है ।
चौथे वज्रजंघ, एह पाँचवें जुगल देह,
सम्यक् ले दूजे देवलोक फिर गयौ है ॥
सातवें सुबुद्धिराय, आठवैं अच्युत-इन्द्र,
नवमैं नरेंद्र वज्रनाभ नाम भयौ है ।
दशैं अहमिन्द्र जान, ग्यारवैं रिषभ-भान,
नाभिनंद¹ भूधर के सीस जन्म लयौ है ॥82॥

अन्वयार्थ : 1. पाठान्तर : नाभिवेश।

पहले तीर्थकर श्री ऋषभदेव के 11 भव क्रमशः इसप्रकार हैं : 1. जयवर्मा, 2. महाबल नामक राजा, 3. ईशान स्वर्ग में ललितांग देव, 4. वज्रजंघ राजा, 5. भोगभूमि में युगलिया, 6. दूसरे स्वर्ग में देव, 7. सुबुद्धि नामक राजा, 8. अच्युत स्वर्ग में इन्द्र, 9. वज्रनाभि चक्रवर्ती, 10. अहमिन्द्र, 11. ऋषभदेव।

52 - श्री चन्द्रप्रभ के पूर्वभव

श्रीवर्म भूपति पालि पुहमी, स्वर्ग पहले सुर भयौ ।
 पनि अजितसेन छखंडनायक, इन्द्र अच्युत मैं थयौ ।
 वर पद्मनाभि नरेश निर्जर, वैजयन्ति विमान मैं ।
 चंद्राभ स्वामी सातवैं भव, भये पुरुष पुरान मैं ॥83॥

अन्वयार्थ : आठवें तीर्थकर श्री चन्द्रप्रभ के 7 भव क्रमशः इसप्रकार हैं : 1. श्रीवर्मा नामक राजा, 2. पहले स्वर्ग में देव, 3. अजितसेन चक्रवर्ती, 4. सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र, 5. पद्मनाभि राजा, 6. वैजयन्ति नामक दूसरे अनुत्तर विमान में देव, 7. चन्द्रप्रभ स्वामी।

53 - श्री शांतिनाथ के पूर्वभव

सिरीसेन, आरज, पुनि स्वर्गी, अमिततेज खेचर पद पाय ।
 सुर रविचूल स्वर्ग आनत मैं, अपराजित बलभद्र कहाय ॥
 अच्युतेन्द्र, वज्रायुध चक्री, फिर अहमिन्द्र, मेघरथ राय ।
 सरवारथसिद्धेश, शांति जिन, ये प्रभु की द्वादश परजाय ॥84॥

अन्वयार्थ : सोलहवें तीर्थकर श्री शान्तिनाथ के 12 भव क्रमशः इसप्रकार हैं : 1. राजा श्रीषेण, 2. भोगभूमि में आर्य, 3. स्वर्ग में देव, 4. अमिततेज नामक विद्याधर, 5. तेरहवें स्वर्ग में रविचूल नामक देव, 6. अपराजित नामक बलभद्र, 7. सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र, 8. वज्रायुध चक्रवर्ती, 9. अहमिन्द्र, 10. राजा मेघरथ, 11. स्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र, 12. शान्तिनाथ स्वामी।

54 - श्री नेमिनाथ के पूर्वभव

पहले भव वन भील, दुतिय अभिकेतु सेठ घर ।
 तीजे सर सौधर्म, चौथ चिन्तागति नभचर ॥
 पंचम चौथे स्वर्ग, छठें अपराजित राजा ।
 अच्युतेन्द्र सातवैं अमरकुलतिलक विराजा ॥
 सुप्रतिष्ठ राय आठम, नवें जन्म जयन्त विमान धर ।
 फिर भये नेमि हरिवंश-शशि, ये दश भव सुधि करहु नर ॥85॥

अन्वयार्थ : बाईसवें तीर्थकर श्री नेमिनाथ के 10 भव क्रमशः इसप्रकार हैं : 1. वन में भील, 2. अभिकेतु नामक सेठ, 3. सौधर्म स्वर्ग में देव, 4. चिन्तागति विद्याधर, 5. चौथे स्वर्ग में देव, 6. अपराजित राजा, 7. अच्युत स्वर्ग में इन्द्र, 8. सुप्रतिष्ठ राजा, 9. जयन्त विमान में देव, 10. नेमिनाथ।

55 - श्री पार्श्वनाथ के पूर्वभव

विप्रपूत मरुभूत विचच्छन, वज्रघोष गज गहन मँझार ।
 सुरि, पुनि सहसरश्मि विद्याधर, अच्युत स्वर्ग अमरि-भरतार ॥
 मनुज-इन्द्र, मध्यम ग्रैवेयिक, राजपुत्र आनन्दकुमार ।
 आनतेन्द्र, दशवैं भव जिनवर, भये पार्श्वप्रभु के अवतार ॥86॥

अन्वयार्थ : तेईसवें तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ के 10 भव क्रमशः इसप्रकार हैं : 1. मरुभूति नामक विद्वान् ब्राह्मण, 2. वन में वज्रघोष नामक हाथी, 3. देव, 4. सहसरश्मि विद्याधर, 5. सोलहवें स्वर्ग में देव, 6. चक्रवर्ती, 7. मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र, 8. आनन्द राजा, 9. आनत स्वर्ग में इन्द्र, 10. पार्श्वनाथ।

राय यशोधर चन्द्रमती पहले भव मंडल मोर कहाये ।
जाहक सर्प, नदीमध मच्छ, अजा-अज, भैंस, अजा फिर जाये ।
फेरि भये कुकड़ा-कुकड़ी, इन सात भवांतर मैं दुख पाये ।
चूनमई चरणायुध मारि, कथा सुन संत हिये नरमाये ॥८७॥

अन्वयार्थ : राजा यशोधर और रानी चन्द्रमती ने आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण क्रमशः इन सात भवों में अपार कष्ट सहन किये :- 1. मोर-मोरनी, 2. सर्पसर्पिणी, 3. मच्छ-मच्छी, 4. बकरा-बकरी, 5. भैंस-भैंस, 6. बकरा-बकरी और 7. मुर्गा-मुर्गी । जानी पुरुष उनकी कहानी सुनकर अपने हृदय में बहुत वैराग्य उत्पन्न करते हैं।

57 - सुबुद्धि सखी के प्रतिवचन

कहै एक सखी स्यानी सुन री सुबुद्धि रानी!
तेरौ पति दुखी देख लागै उर आर है ।
महा अपराधी एक पुगल है छहौं माहिं,
सोई दुख देत दीसै नाना परकार है ।

कहत सुबुद्धि आली कहा दोष पुगल कौं,
अपनी ही भूल लाल होत आप ख्वार है ।
खोटौं दाम आपनो सराफै कहा लगै वीर,
काहूं को न दोष मेरै भौंदू भरतार है ॥८८॥

अन्वयार्थ : एक चतुर सखी बोली :- हे सुबुद्धि रानी ! तुम्हारा पति बहुत दुःखी हो रहा है, लगता है उसके हृदय में कोई बड़ा शूल चुभा हो । हे सखी, सुनो ! इस लोक में जो 6 द्रव्य हैं, उनमें एक पुद्दल नाम का द्रव्य बड़ा अपराधी है / लगता है, वही तुम्हारे पति को नाना प्रकार से कष्ट दे रहा है । प्रत्युत्तर में सुबुद्धि रानी कहती है :- हे सखी ! इसमें पुद्दल का क्या दोष है? मेरा स्वामी स्वयं ही अपनी भूल से दुःखी हो रहा है / हे सखी ! जब अपना ही सिक्का खोटा हो तो सराफ को क्या दोष दें? अतः वास्तव में पुद्दल आदि अन्य किसी का भी कोई दोष नहीं है, मेरा भरतार स्वयं ही भौंदू है ।

58 - गुजराती भाषा में शिक्षा

ज्ञानमय रूप रूङ्डो सदा साततौ, ओलखै क्यों न सुखपिंड भोला ।
बेगली देहथी नेह तूं शू करै, एहनी टेव जो मेह ओला ॥
मेरने मान भवदुक्ख पाम्या पछी, चैन लाध्यो नथी एक तोला ।
वळी दुख वृच्छनो बीज बावै अने, आपथी आपने आप भोला ॥८९॥

अन्वयार्थ : हे भोले भाई ! तुम सुख के पिण्ड हो । तुम्हारा रूप ज्ञानमय है, सुन्दर है, शाश्वत (सतत) है । तुम उसे पहिचानते क्यों नहीं हो? तथा शरीर तुमसे भिन्न है, पराया है, तुम उससे राग क्यों करते हो? उसका स्वरूप तो बरसात के ओले की भाँति क्षणभंगुर है । हे भाई! इस राग के कारण तुमने मेरु पर्वत के समान अपार दुःख झेले हैं, कभी एक तोला भी सुख प्राप्त नहीं किया, फिर भी तुम पुनः वही दुःखरूपी वृक्ष का बीज बो रहे हो और स्वयं ही अपने आपको भूल रहे हो ।

59 - द्रव्यलिंगी मुनि

शीत सहैं तन धूप दहें, तरुहेट रहैं करुना उर आनैं ।
 झूठ कहैं न अदत्त गहैं, वनिता न चहैं लव लोभ न जानैं ।
 मौन वहैं पढि भेद लहैं, नहिं नेम जहैं व्रतरीति पिछानैं ।
 यौं निबहैं पर मोख नहीं, विन ज्ञान यहै जिन वीर बखानैं ॥९०॥

अन्वयार्थ : * कुछ प्रतियों में यह पद नहीं मिलता।

द्रव्यलिंगी मुनि यद्यपि शीत ऋतु में नदी-तट पर रहकर सर्दी सहन करता है, गर्मी में पर्वत पर जाकर शरीर जलाता है, और वर्षा ऋतु में वृक्ष के नीचे रहकर बरसात भी सहन करता है; अपने हृदय में करुणाभाव धारण करता है, झूठ नहीं बोलता है, चोरी नहीं करता है, कुशील-सेवन की अभिलाषा नहीं करता है, और किंचित् लोभ भी नहीं रखता है; मौन धारण करता है, शास्त्र पढ़कर उनके अर्थ भी जान लेता है, कभी प्रतिज्ञा भंग नहीं करता, व्रत करने की विधि को समझता है; तथापि भगवान महावीर कहते हैं कि उसे आत्मज्ञान के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

60 - अनुभव-प्रशंसा

जीवन अलप आयु बुद्धि बल हीन तामैं,
 आगम अगाध सिंधु कैसैं ताहि डाक है ।
 द्वादशांग मूल एक अनुभौ अपूर्व कला,
 भवदाघहारी घनसार की सलाक है ॥
 यह एक सीख लीजै याही कौ अभ्यास कीजै,
 याको रस पीजै ऐसो वीरजिन-वाक है ।
 इतनो ही सार येही आतम कौ हितकार,
 यहीं लौं मदार और आगै दृकढाक है ॥९१॥

अन्वयार्थ : हे भाई ! यह मनुष्यजीवन वैसे ही बहुत थोड़ी आयुवाला है, ऊपर से उसमें बुद्धि और बल भी बहुत कम है, जबकि आगम तो अगाध समुद्र के समान है, अतः इस जीवन में उसका पार कैसे पाया जा सकता है? अतः हे भाई! वस्तुतः सम्पूर्ण द्वादशांगरूप जिनवाणी का मूल तो एक आत्मा का अनुभव है, जो बड़ी अपूर्व कला है और संसाररूपी ताप को शान्त करने के लिए चन्दन की शलाका है। अतः इस जीवन में एकमात्र आत्मानुभवरूप अपूर्व कला को ही सीख लो, उसका ही अभ्यास करो और उसको ही भरपूर आनन्द प्राप्त करो। यहीं भगवान महावीर की वाणी है। हे भाई! एक आत्मानुभव ही सारभूत है - प्रयोजनभूत है, करने लायक कार्य है, और इस आत्मानुभव के अतिरिक्त अन्य सब तो बस कोरी बातें हैं।

61 - भगवत्-प्रार्थना

आगम-अभ्यास होहु सेवा सरवज्ज ! तेरी,
 संगति सदीव मिलौ साधरमी जन की ।
 सन्तन के गुन कौ बखान यह बान परौ,
 मेटौ टेव देव ! पर-औगुन-कथन की ॥
 सब ही सौं ऐन सुखदैन मुख वैन भाखौं,
 भावना त्रिकाल राखौं आत्मीक धन की ।
 जौलौं कर्म काट खोलौं मोक्ष के कपाट तौलौं,
 ये ही बात हूजौ प्रभु! पूजौ आस मन की ॥९२॥

अन्वयार्थ : हे सर्वज्ञदेव ! मेरी अभिलाषा यह है कि मैं जबतक कर्मों का नाश करके मोक्ष का दरवाजा नहीं खोल लेता हूँ, तबतक मुझे सदा शास्त्रों का अध्यास रहे, आपकी सेवा का अवसर प्राप्त रहे, साधर्मीजनों की संगति मिली रहे, सज्जनों के गुणों का बखान करना ही मेरा स्वभाव हो जावे, दूसरों के अवगुण कहने की आदत से मैं दूर रहूँ, सभी से उचित और सुखकारी वचन बोलूँ और हमेशा आत्मिक सुखरूप शाश्वत धन की ही भावना भाऊँ। हे प्रभो ! मेरे मन की यह आशा पूरी होवे।

62 - जिनधर्म-प्रशंसा

दोहा

छये अनादि अज्ञान सौं, जगजीवन के नैन ।
सब मत मूठी धूल की, अंजन है मत जैन ॥93॥

भूल-नदी के तिरन को, और जतन कछु है न ।
सब मत घाट कुघाट हैं, राजघाट है जैन ॥94॥

तीन भवन मैं भर रहे, थावर-जङ्गम जीव ।
सब मत भक्षक देखिये, रक्षक जैन सदीव ॥95॥

इस अपार जगजलधि मैं, नहिं नहिं और इलाज ।
पाहन-वाहन धर्म सब, जिनवरधर्म जिहाज ॥96॥

मिथ्यामत के मद छके, सब मतवाले लोय ।
सब मतवाले जानिये, जिनमत मत्त न होय ॥97॥

मत-गुमानगिरि पर चढ़े, बड़े भये मन माहिं ।
लघु देखें सब लोक कौं, क्यों हूँ उतरत नाहिं ॥98॥

चामचखन सौं सब मती, चितवत करत निबेर ।
ज्ञाननैन सौं जैन ही, जोवत इतनो फेर ॥99॥

ज्यौं बजाज ढिंग राखिकैं, पट परखैं परवीन ।
त्यौं मत सौं मत की परख, पावैं पुरुष अमीन ॥100॥

दोय पक्ष जिनमत विषैं, नय निश्चय-व्यवहार ।
तिन विन लहै न हंस यह, शिव सरवर की पार ॥101॥

सीझे सीझैं सीझहौं, तीन लोक तिहुँ काल ।

जिनमत को उपकार सब, मत* भ्रम करहु दयाल ॥102॥

महिमा जिनवर-वचन की, नहीं वचन-बल होय ।
भुज-बल सौं सागर अगम, तिरे न तिरहीं कोय ॥103॥

अपने-अपने पंथ को, पौखे सकल जहांन ।
तैसैं यह मत-पोखना, मत समझो मतिवान ॥104॥

इस असार संसार मैं, और न सरन¹ उपाय ।
जन्म-जन्म हूजो हमैं, जिनवर धर्म सहाय ॥105॥

अन्वयार्थ : अनादिकालीन अज्ञान के कारण संसारी प्राणियों की आँखें बन्द पड़ी हैं। उनके लिए अन्य सब मत तो धूल की मुट्ठी के समान हैं, अज्ञानी जीवों के अज्ञान का ही पोषण करते हैं; लेकिन जैनधर्म अंजन के समान है, जो जीवों के अज्ञान का अभाव करने वाला है ॥93॥
भ्रमरूपी नदी को तिरने के लिए जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। जैनेतर सभी मत उस नदी के खोटे घाट हैं; एक जैनधर्म ही राजघाट है - सच्चा मार्ग है ॥94॥

तीनों लोकों में त्रस और स्थावर जीव भरे हुए हैं। वहाँ अन्य सब मत तो उनके भक्षक हैं और जैनधर्म उनका सदा रक्षक है ॥95॥
अहो, इस अपार संसार-सागर से पार होने के लिए जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है, नहीं है। यहाँ अन्य सभी धर्म (मत/सम्प्रदाय) तो पश्चर की नौका के समान हैं, केवल एक जैनधर्म ही पार उतारने वाला जहाज है ॥96॥
इस दुनिया में अन्यमतों को मानने वाले सब लोग मिथ्यास्व की मदिरा पीकर मतवाले हो रहे हैं। किन्तु जिनमत को अपनाने वाला कभी मदोन्मत्त नहीं होता - मिथ्यात्व का सेवन नहीं करता ॥97॥

अन्यमतों को माननेवाले सब लोग अपने-अपने मत के अभिमानरूपी पहाड़ पर चढ़कर अपने ही मन में बड़े बन रहे हैं, वे अपने आगे सारी दुनिया को छोटा समझते हैं, कभी भी कैसे भी अभिमान के पहाड़ से नीचे नहीं उतरते ॥98॥

जैनमत और अन्यमतों में इतना बड़ा अन्तर है कि अन्यमतों को मानने वाले तो चर्मचक्षुओं से ही देखकर निर्णय करते हैं, किन्तु जैन ज्ञानचक्षुओं से देखता है ॥99॥
जिसप्रकार बजाज अनेक वस्त्रों को पास-पास रखकर श्रेष्ठ वस्त्र की परीक्षा (पहचान) कर लेता है; उसीप्रकार सत्यनिष्ठ पुरुष विभिन्न मतों की भलीभाँति तुलना करके श्रेष्ठ मत की परीक्षा (पहचान) कर लेता है ॥100॥

जिनमत में निश्चय-व्यवहार नय रूप दो पक्ष हैं, जिनके बिना यह आत्मा संसार-सागर को पार कर मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं कर सकता।

* किसी-किसी प्रति में 'मत' के स्थान पर 'जनि' लिखा मिलता है और वह भी ठीक हो सकता है। ब्रजभाषा में 'जनि' का अर्थ भी निषेध ही है

हे दयाल ! तीन लोक तीन काल में आज तक जितने भी सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं, और भविष्य में होंगे; वह सब एकमात्र जिनमत का ही उपकार है। इसमें शंका न करो ॥102॥

अहो! जिनेन्द्र भगवान के वचनों की महिमा वचनों से नहीं हो सकती। अपार समुद्र को भुजाओं के बल से तैरकर न कभी कोई पार कर पाया, न कर पायेगा ॥103॥
हे बुद्धिमान भाई ! हमारी उक्त बातों को, जिनमें अन्यमतों से जिनमत की श्रेष्ठता बताई गई है, वैसा ही मतपोषण करना मत समझना, जैसा कि दुनिया के सब लोग अपने-अपने मतों का पोषण करते हैं ॥104॥

1. पाठान्तर : सरल।

अहो ! इस असार संसार में जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है, साधन नहीं है। हमें जन्म-जन्म में जिनधर्म की ही सहायता प्राप्त होवे ॥105॥

आगरे मैं बालबुद्धि भूधर खंडेलवाल,
बालक के ख्याल-सो कवित्त कर' जानै है ।

ऐसे ही कहत भयो जैसिंह सवाई सूबा,
हाकिम गुलाबचन्द रह तिहि थानै है ।
हरिसिंह साह के सुवंश धर्मरागी नर,
तिनके कहे सौं जोरि कीनी एक ठानै है ।

फिरि-फिरि प्रेरे मेरे आलस को अंत भयो,
उनकी सहाय यह मेरो मन मानै है ॥106॥

दोहा

सतरह सै इक्यासिया, पोह पाख तमलीन ।
तिथि तेरस रविवार को, शतक सम्पूर्ण कीन ॥107॥

अन्वयार्थ : मैं, भूधरदास खण्डेलवाल, आगरा में बालकों के खेल जैसी कविता-रचना करता हूँ। ये उक्त छन्द मैंने जयपुर के श्री हरिसिंहजी शाह के बंशज धर्मनुरागी हाकिम श्री गुलाबचन्द्रजी के अनुरोध से एकत्रित किये हैं / उन्हीं की पुनः-पुनः प्रेरणा से मेरे आलस्य का अन्त हुआ है। मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ ॥

106॥
यह शतक पौप कृष्णा त्रयोदशी रविवार विक्रम संवत् 1781 को पूरा किया ॥107॥



आत्मबोध-शतक



आर्थिका-पूर्णमति कृत

आत्म गुण के घातक चारों कर्म आपने घात दिए
अनन्तचतुष्टय गुण के धारक दोष अठारह नाश किए
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर अरिहंतों को नमन करूँ
आत्म बोध पाकर विभाव का नाश करूँ सब दोष हरु ॥1॥

कभी आपका दर्श किया ना ऐ सिद्धालय के वासी
आगम से परिचय पाकर मैं हुआ शुद्ध पद अभिलाषी
ज्ञान शरीरी विदेह जिनको वंदन करने मैं आया
सिद्ध देश का पथिक बना मैं सिद्धों सा बनने आया ॥2॥

छत्तीस मूलगुणों के गहने निज आत्म को पहनाए
पाले पंचाचार स्वयं ही शिष्य गणों से पलवाए
शिवरमणी को वरने वाले जिनवर के लघुनंदन हैं
श्री आचार्य महा मुनिवर को तीन योग से वंदन है ॥3॥

अंग पूर्व धर उपाध्याय श्रीश्रुत ज्ञानमृत दाता हैं
ज्ञान मूर्ति पाठक दर्शन से पाते भविजन साता हैं

ज्ञान गुफा में रहने वाले कर्म शत्रु से रक्षित हैं
एमो उवज्ज्ञायाणं पद से भव्य जनों से वंदित हैं ॥4॥

आत्म साधना लीन साधुगण आठ बीस गुण धारी हैं
अनुपम तीन रत्न के धारक शिवपद के अधिकारी हैं
साधु पद से अर्हत होकर सिद्ध दशा को पाना है
अतः प्रथम इन श्री गुरुओं के पद में शीश नवाना है ॥5॥

धन्य धन्य जिनवर की वाणी आत्म बोध का हेतु है
निज आत्म से परमात्म में मिलने का एक सेतु है
जहाँ जहाँ पर द्रव्यागम है उनको भाव सहित वंदन
नमन भावश्रुत धर को मेरा मेटो भव भव का क्रंदन ॥6॥

निज भावों की परिणतिया ही कर्मरूप फल देती है
भावों की शुभ-अशुभ दशा ही दुख-सुख मय कर देती है
कर्म स्वरूप न जान सका मैं नोकर्मों को दोष दिया
नूतन कर्म बाँध कर निज को अनंत दुख का कोष किया ॥7॥

तन से एक क्षेत्र अवगाही होकर यद्यपि रहता हूँ
फिर भी स्वात्मचतुष्य में ही निवास मैं नित करता हूँ
पर भावों मे व्यर्थ उलझ कर स्वात्म को न लख पाया
भान हो रहा मुझे आज क्यों आत्म रस न चख पाया ॥8॥

उपादान से पर न किंचित मेरा कुछ कर सकता है
नहीं स्वयं भी पर द्रव्यों को बना मिटा न सकता है
किंतु भ्रमित हो पर को निज का निज को पर कर्ता माने
अशुभ भाव से भव-कानन मे भटके निज न पहचाने ॥9॥

मिथ्यावश चैतन्य देश का राज कर्म को सौंप दिया
दुष्कर्मों ने मनमानी कर गुणोंद्यान को जला दिया
विकृत गुण को देख देख कर नाथ आज पछताता हूँ

कैसे प्राप्त करूँ स्वराज को सोच नहीं कुछ पाता हूँ ॥10॥

इक पल की अज्ञान दशा में भव-भव दुख का बँध किया
अनर्थकारी रागादिक कर पल भर भी न चैन लिया
विकल्प जितना सस्ता उसका फल उतना ही महँगा है
सुख में रस्ता छोटा लगता दुख में लगता लंबा है ॥11॥

मंद कषाय दशा में प्रभु के दिव्य वचन का श्रवण किया
किंतु मोह वश सम्यक श्रद्धा और नहीं अनुसरण किया
आत्मस्वरूप शब्द से जाना अनुभव से मैं दूर रहा
स्वानुभूति के बिना स्वयं के कष्ट दुःख हों चूर कहाँ ॥12॥

मेरे चेतन चिदाकाश में अन्य द्रव्य अवगाह नहीं
फिर भी देहादिक निज माने यह मेरा अपराध सही
नीरक्षीर सम चेतन तन से नित्य भिन्न रहने वाला
रहा अचेतन तन्मय चेतन अनंत गुण गहने वाला ॥13॥

जग में यश पाकर अज्ञानी मान शिखर पर बैठ गया
सबसे बड़ा मान कर निज को काल कीच में पैठ गया
पर को हीन मान निज-पर के स्वरूप से अनजान रहा
इक पल यश सौ पल अपयश में दिवस बिता कर दुःख सहा ॥14॥

विशेष बनने की आशा में नहीं रहा सामान्य प्रभो
साधारण में एकेन्द्रिय बन काल बिताया अनंत प्रभो
भाव यही सामान्य रहूँ नित विशेष शिव पद पाना है
सिद्ध शिला पर नंत सिद्ध में समान होकर रहना है ॥15॥

मैं हूँ चिन्मय देश निवासी जहाँ असंख्य प्रदेश रहें
अनंत गुणमणि कोष भरे जग दुःख कष्ट न लेश रहें
जानन देखन काम निरंतर लक्ष्य मेरा निष्काम रहा
मेरा शाश्वत परिचय सुनलो आत्म मेरा नाम रहा ॥16॥

स्पर्श रूप रस गंध रहित मैं शब्द अगोचर रहता हूँ
परम योगी के गम्य अनुपम निज में खेली करता हूँ
निराकार निर्बन्ध स्वरूपी निश्चय से निर्दोषी हूँ
स्वानुभूति रस पीने वाला निज गुण में संतोषी हूँ ॥17॥

निज भावों से कर्म बाँध क्यों पर को दोषी ठहराता
कर्म सज़ा ना देता इनको यह विकल्प तू क्यों लाता
कर्म न्याय करने मे सक्षम सुख-दुख आदिक कार्यों में
हस्तक्षेप न करना पर में विशेष गुण यह आर्यों में ॥18॥

गुरुदर्श गुरुस्नेह कृपा सच शिव सुख के ही साधन हैं
गुरु स्नेह पा मान करे तो होता धर्म विराधन है
अतः सुनो हे मेरे चेतन आतम नेह नहीं तजना
कृपा करो निज शुद्धातम पर मान यान पर न चढ़ना ॥19॥

नश्वर तन-धन की हो प्रशंसा सुनकर क्यों इतराते हो
कर्म निमित्ताधीन सभी यह समझ नहीं क्यों पाते हो
शत्रु पक्ष को प्रोत्साहित कर शर्म तुम्हें क्यों न आती
सिद्ध प्रभु के वंशज हो तुम क्रिया न यह शोभा पाती ॥20॥

अपने को न अपना माने तब तक ही अज्ञानी है
तन में आतम भ्रांति करके करे स्वयं मनमानी है
इष्टनिष्ट कल्पना करके क्यों निज को तड़पाता है
ज्ञानवान होकर भी चेतन सत्य समझ न पाता है ॥21॥

जगत प्रशंसा धन अर्चन हित जैनागम अभ्यास किया
स्वात्म लक्ष्य से जिनवाणी का श्रवण किया न ध्यान किया
बिना अनुभव मात्र शब्द से औरों को भी समझाया
किया अभी तक क्या-क्या अपनी करनी पर मैं पछताया ॥22॥

स्वयं जागृति से हो प्रगति बात समझ में आई है
मात्र निमित्त से नहीं उन्नति कभी किसी ने पाई है
निज सम्यक पुरुषार्थ जगाकर नहीं एक पल खोना है
निज से निज में निज के द्वारा निज को निजमय होना है ॥23॥

पर भावों के नहीं स्वयं के भावों के ही कर्ता हैं
कर्मोदय के समय जीव निज भाव फलों का भोक्ता है
भाव शुभाशुभ कर्म जनित सब शुद्ध स्वभाव हितंकर है
अर्हत और सिद्ध पद दाता अनंत गुण रत्नाकर है ॥24॥

निज उपयोग रहे निज गृह तो कर्म चोर न घुस पाता
पर द्रव्यों में रहे भटकता चेतन गुण गृह लुट जाता
जागो जागो मेरे चेतन सदा जागते तुम रहना
सम्यक दृष्टि खोलो अपनी निज गृह की रक्षा करना ॥25॥

राग द्वेष से दुष्कर्मों को क्यों करता आमंत्रित है
स्वयं दुखी होने को आतुर क्यों शिव सुख से वंचित है
गुण विकृत हो दोष बने पर गुण की सत्ता नाश नहीं
ज्ञानादिक की अनुपम महिमा क्या यह तुझको ज्ञात नहीं ॥26॥

सहानुभूति की चाह रखे न स्वानुभूति ऐसी पाऊँ
स्वात्मचतुष्टय का वासी मैं पराधीनता न पाऊँ
मैं हूँ नित स्वाधीन स्वयं में निमित्त के आधीन नहीं
शुद्ध तत्त्व का लक्ष्य बनाकर पाऊँ पावन ज्ञान मही ॥27॥

जीव द्रव्य के भेद ज्ञात कर परिभाषा भी ज्ञात हुई
किंतु यह मैं जीव तत्त्व हूँ भाव भासना नहीं हुई
बिना नीव जो भवन बनाना सर्व परिश्रम व्यर्थ रहा
आत्म तत्त्व के ज्ञान बिना त्यों चारित का क्या अर्थ रहा ॥28॥

त्रैकालिक पर्याय पिंडमय अनंत गुणमय द्रव्य महान

निज स्वरूप से हीन मानना भगवंतों ने पाप कहा
वर्तमान पर्याय मात्र ही क्यों तू निज को मान रहा
पर्यायों में मूढ़ आत्मा पूर्ण द्रव्य न जान रहा ॥29॥

कर्म पुण्य का वेश पहन कर चेतन के गृह में आया
निज गृह में भोले चेतन ने पर से ही धोखा खाया
सहज सरल होना अच्छा पर सावधान होकर रहना
आत्म गुण की अनुपम निधियां अब इसकी रक्षा करना ॥30॥

पढ़ा कर्म सिद्धांत बहुत पर समझ नहीं कुछ भी आया
नोकर्मों पर बरस पड़ा यह जब दुष्कर्म उदय आया
कर्म स्वरूप भिन्न है मुझसे भेद ज्ञान यह हुआ नहीं
बोझ रूप वह शब्द ज्ञान है कहते हैं जिनराज सही ॥31॥

पर द्रव्यों के जड़ वैभव पर आत्म क्यों ललचाता है
निज प्रदेश में अणु मात्र भी नहीं कभी कुछ पाता है
हो संतुष्ट अनंत गुणों से अनंत सुख को पाएगा
निज वैभव से भव विनाश कर सिद्ध परम पद पाएगा ॥32॥

वीतराग की पूजा कर क्यों राग भाव से राग करे
निर्ग्रंथों का पूजक होकर परिग्रह की क्यों आश करे
कथनी औं करनी में अंतर धरती अंबर जैसा है
कहो वही जो करते हो तुम वरना निज को धोखा है ॥33॥

अंतर्मुख उपयोग रहे तो निजानन्द का द्वार खुले
अन्य द्रव्य की नहीं अपेक्षा कर्म-मैल भी सहज धुले
गृह स्वामी ज्ञानोपयोग यदि निज गृह रहता सुख पाता
पर ज्ञेयों में व्यर्थ भटकता झूठा है पर का नाता ॥34॥

अपने को जो अपना माने वह पर को भी पर माने
स्वपर भेद विज्ञानी होकर लक्ष्य परम पद का ठाने

ज्ञानी करता ज्ञान मान का अज्ञ ज्ञान का मान करे
संयोगों में राग द्वेष बिन विज्ञ स्वात्म पहचान करे ॥35॥

वस्तु अच्छी बुरी नहीं होती दृष्टि इष्टानिष्ट करे
वस्तु का आलंबन लेकर विकल्प मोही नित्य करे
बंधन का कारण नहीं वस्तु भाव बँध का कारण है
अतः भव्य जन भाव सम्हालो कहते गुरु भवतारण हैं ॥36॥

इच्छा की उत्पत्ति होना भव दुख का ही वर्धन है
इच्छा की पूर्ति हो जाना राग भाव का बंधन है
इच्छा की पूर्ति न हो तो द्वेष भाव हो जाता है
इच्छाओं का दास आत्मा भव वन में खो जाता है ॥37॥

सर्व द्रव्य हैं न्यारे-न्यारे यही समझ अब आता है
जीव अकेला इस भव वन में सुख-दुख भोगा करता है
फिर क्यों पर की आशा करना सदा अकेले रहना है
स्व सन्मुख दृष्टि करके अब अपने में ही रमना है ॥38॥

अरी चेतना सोच ज़रा क्यों पर परिणति में लिपट रही
स्वानुभूति से वंचित होकर क्यों निज-सुख से विमुख रही
पर द्रव्यों में उलझ-उलझ कर बोल अभी तक क्या पाया
अपना अनुपम गुण-धन खोकर विभाव में ही भरमाया ॥39॥

पिता पुत्र धन दौलत नारी मोह बढ़ावन हारे हैं
परम देव गुरु शास्त्र समागम मोह घटावन हारे हैं
सम्यक दर्शन ज्ञान चरित सब मोह नशावन हारा हैं
रत्नत्रय की नैया ने ही नंत भव्य को तारा है ॥40॥

अज्ञानी जन राग भाव को उपादेय ही मान रहे
ज्ञानी भी तो राग करे पर हेय मानना चाह रहे
दृष्टि में नित हेय वर्तता किंतु आचरण में रागी

ऐसे ज्ञानी धन्य-धन्य हैं शीघ्र बनें वे वैरागी ॥41॥

कर्म बँध के समय आत्मा रागादिक से मलिन हुई
कर्म उदय के समय कर्म फल संवेदन मे लीन हुई
भाव कर्म से द्रव्य कर्म औ द्रव्य उदय में भाव हुआ
निमित्त नैमित्तिक भावों से इसी तरह परिभ्रमण हुआ ॥42॥

कर्म उदय को जीत आत्मा निज स्वरूप में लीन रहे
उपादान को जागृत करके नहीं निमित्ताधीन रहे
राग द्वेष भावों को तज कर नूतन कर्म विहीन करे
जिनवर कहते विजितमना वह मुक्तिरमा को शीघ्र वरे ॥43॥

कर्म यान पर संसारी जन बैठ चतुर्गति सैर करे
ज्ञान नाव पर ज्ञानी बैठे भव समुद्र से तैर रहे
एक कर्म फल का रस चखता इक शिव फल रस पीता है
जनम मरण करता अज्ञानी ज्ञानी शाश्वत जीता है ॥44॥

योगी भोजन करते-करते कर्म निर्जरा करता है
भजन करे अज्ञानी फिर भी कर्म बंध ही करता है
अभिप्राय अनुसार कर्म के बंध निर्जरा होती है
श्रीजिनवर की सहज देशना कर्म कलुशता धोती है ॥45॥

चेतन द्रव्य नहीं दिखता है जो दिखता वह सब जड़ है
फिर क्यों जड़ का राग करूँ मैं चेतन मेरा शुचितम है
देह विनाशी मैं अविनाशी निज का ही संवेदक हूँ
स्वयं स्वयं का पालनहारा निज का ही निर्देशक हूँ ॥46॥

क्या ले कर आए क्या ले कर जाएँगे ये मत सोचो
तीव्र पुण्य ले कर आए हो जैन धर्म पाया सोचो
देव शास्त्र गुरु मिला समागम तत्त्व रूचि भी प्रकट हुई
शक्ति के अनुसार व्रती बन नर काया यह सफल हुई ॥47॥

हे उपयोगी नाथ ज्ञानमय दृष्टि स्वसन्मुख कर दो
नंत कल से व्यथित चेतना दुःख शमन कर सुख भर दो
तजो अशुभ उपयोग नाथ तुम शुभ से शुद्ध वरण कर लो
अपनी प्रिया चेतना के गृह मिथ्यात्मस सभी हर लो ॥48॥

पर वस्तु पर द्रव्य समागम दुःख क्लेश का कारण है
आत्मज्ञान से निजानुभव ही सुख कारण भय वारण है
स्वपर तत्त्व का भेद जानकर निज को ही नित लखना है
शिव पद पाकर नंत काल तक स्वात्म ज्ञान रस चखना है ॥49॥

मेरे पावन चेतन गृह में अनंत निधियां भरी पड़ी
माँ जिनवाणी बता रही पर ज्ञान नयन पर धूल पड़ी
बना विकारी मन इन्द्रिय से भीख माँगता रहता है
दर दर का यह बना भिखारी पर घर दृष्टि रखता है ॥50॥

हे आत्म तू नंत काल से निज में परिणम करता है
पर से कुछ न लेना देना फिर विकल्प क्यों करता है
निर्विकल्प होने का चेतन दृढ़ संकल्प तुम्हें करना
तज कर अन्तर्जल्प शीघ्र ही शांत भवन में है रहना ॥51॥

वर्तमान में भूल कर रहा पूर्व कर्म का उदय रहा
नहीं भूल को भूल मानना वर्तमान का दोष रहा
निज से ही अंजान आत्मा पर को कैसे जानेगा
इच्छा के अनुसार वर्तता प्रभु की कैसे मानेगा ॥52॥

मेरी अनुपम सुनो चेतना ज्ञान-बाग में तुम विचरो
निज उपयोगी देव संग में शील स्वरूप सुगंध भरो
अन्य द्रव्य से दृष्टि हटाकर व्यभिचार का त्याग करो
अनविकार चेष्टाएँ तजकर निजात्म पर उपकार करो ॥53॥

सुख स्वरूप आत्म अनुभव से राग दुःखमय भास रहा
निज निर्दीष स्वरूप लखा तो दृष्टि में न दोष रहा
राग भाव संयोगज जाने ज्ञानी इनसे दूर रहे
मैं एकत्व विभक्त आत्मा यही जान सुख पूर रहे ॥54॥

पर से नित्य विभक्त चेतना निज गुण से एकत्व रही
स्वभाव से सामर्थवान यह पर द्रव्यों से पृथक रही
अन्य अपेक्षा नहीं किसी की निजानन्द को पाने में
निज स्वभाव का सार यही है विभाव के खो जाने में ॥55॥

न्यायवान एक कर्म रहा है समदृष्टि से न्याय करे
भावों के अनुसार उदय की पूर्ण व्यवस्था कर्म करे
कर्म समान व्यवस्थापक इस जग में और न दिखता है
निज निज करनी के अनुसारी लेख सभी के लिखता है ॥56॥

तन चेतन इक साथ रहे तो दुख का कारण न मानो
एक मानना देहात्म को अनंत दुख कारण जानो
देह चेतना भिन्न-भिन्न ज्यों त्यों दुख चेतन भिन्न रहा
परम शुद्ध निश्चय से आत्म नित चिन्मय सुख कंद कहा ॥57॥

राग भाव है आत्म विपत्ति इसे नहीं अपना मानो
राग भाव का राग सदा ही महा विपत्ति ही जानो
सब विभाव से भिन्न रहा मैं ज्ञान भाव से भिन्न नहीं
राग आग का फल है जलना पाऊँ केवलज्ञान मही ॥58॥

पूजा और प्रतिष्ठा के हित भगवत भक्ति न करना
शब्द ज्ञान पांडित्य हेतु मन श्रुताभ्यास भी न करना
मात्र बाह्य उपलब्धि हेतु अनुष्ठान सब व्यर्थ रहा
दृष्टि सम्यक नहीं हुई तो पुरुषार्थ क्या अर्थ रहा ॥59॥

मैं को प्राप्त नहीं करना है मात्र प्रतीति करना है

जो मैं हूँ वह निज में ही हूँ स्वानुभूति ही करना है
दृष्टि अपेक्षा विभाव तजकर ज्ञान मात्र अनुभवना है
नंत गुणों का पिंड स्वयं मैं निज में ही नित रमना है ॥60॥

आत्म भावना भा ले चेतन भाव स्वयं ही बदलेगा
भाव बदलते भव बदलेगा पर का तू क्या कर लेगा
स्वयं जगत परिणाम हो रहा तू निज भावों का कर्ता
ज्ञान मात्र अनुभवो स्वयं को हे चेतन चिन्मय भोक्ता ॥61॥

तत्त्व ज्ञान जितना गहरा हो निज समीपता आती है
निकट सरोवर के हो जितना शीतलता ही आती है
आत्म तत्त्व का आश्रय करके ज्ञान करे तो सम्प्यक हो
ज्ञान सिंधु में खूब नहाकर भविष्य शाश्वत उज्जवल हो ॥62॥

पूर्ति असंभव सब विकल्प की अभाव इसका संभव है
पर आश्रय से होने वाले स्वाश्रय से होता क्षय है
विकल्प करने योग्य नहीं है निषेधने के योग्य रहे
निर्विकल्प होकर हे चेतन ज्ञान मात्र ही भोग्य रहे ॥63॥

भविष्य के संकल्प भूत के विकल्प तू क्यों करता है
अजर अमर अविनाशी होकर कौन जनमता मरता है
पुद्गल की इन पर्यायों में निर्भ्रम होकर रहना है
वर्तमान में निज विवेक से निजात्म में ही रमना है ॥64॥

पर का कर्ता मान भले तू पर कर्ता न बन सकता
पर को सुखी-दुखी करने में भाव मात्र ही कर सकता
तेरा कार्य तुझे ही करना अन्य नहीं कर सकता है
दृढ़ निश्चय यह करके आत्म अनंत सौख्य पा सकता है ॥65॥

किंचित ज्ञान प्राप्त कर चेतन समझाने क्यों दौड़ गया
लक्ष्य स्वयं को समझाने का तू क्यों आखिर भूल गया

सभी समझते स्वयं ज्ञान से पर की चिंता मत करना
स्वयं शुद्ध आत्मज्ञ होय कर ज्ञान शरीरी ही रहना ॥66॥

निमित्त दूर करो मत चेतन उपादान को सम्हालो
बारंबार निमित्त मिलेंगे चाहे कितना कुछ कर लो
कर्मोदय ही नोकर्मों के निमित्त स्वयं जुटाता है
उपादान यदि जागृत हो तो कोई न कुछ कर पाता है ॥67॥

भव वर्धक भावों से आत्म कभी रूचि तुम मत करना
परमानंद तुम्हारा तुममें इससे वंचित न रहना
बहुत कर चुके कार्य अभी तक किंतु नहीं कृतकृत्य हुए
रूचि अनुसारी वीर्य वर्तता आत्म रूचि अतः प्राप्त करे ॥68॥

निज की सुध-बुध भूल गया तो कर्म लूट ले जाएँगे
स्वसन्मुख यदि दृष्टि रही तो कर्म ठहर न पाएँगे
निज पर नज़र गड़ाए रखना हे अनंत धन के स्वामी
आत्म प्रभु का कहना मानो बनना तुमको शिवधामी ॥69॥

इच्छा से जब कुछ न होता फिर क्यों कष्ट उठाते हो
सब अनर्थ की जड़ है इच्छा समझ नहीं क्यों पाते हो
ज्ञानानंद घातने वाली इच्छाएँ ही विपदा हैं
निस्तरंग आनंद सरोवर निज में शाश्वत सुखदा है ॥70॥

परिजन मित्र समाज देशहित बहुत व्यवस्थाएँ करते
अस्त-व्यस्त निज रही चेतना आत्म व्यवस्था कब करते
चेतन प्यारे निज की सुध लो बाहर में कुछ इष्ट नहीं
नंत काल से जानबूझ कर विष को पीना ठीक नहीं ॥71॥

पुद्गल आदिक बाह्य कार्य में चेतन जड़वत हो जाना
विषय भोग व्यवहार कार्य में मेरे आत्म सो जाना
निश्चय में नित जागृत रहना लक्ष्य न ओझाल हो पावे

कर्मोदय हो तीव्र भले पर दृष्टि आतम पर जावे ॥72॥

हेय तत्त्व का ज्ञान किया जो मात्र हेय के लिए नहीं
उपादेय की प्राप्ति हेतु ही ज्ञेय ज्ञान हो जाए सही
ज्ञायक मेरा रूप सुहाना ज्ञाता मेरा भाव रहे
ज्ञान संग मैं अनंत गुणयुत चिन्मय मेरा धाम रहे ॥73॥

प्रति वस्तु की अपनी-अपनी मर्यादाएँ होती हैं
भिन्न चतुष्टय सबके अपने निज में परिणति होती है
इक क्षेत्रावगाह चेतन तन होकर भिन्न-भिन्न रहते
निज-निज गुणमय पर्यायों में द्रव्य नित्य परिणम करते ॥74॥

निज की महिमा नहीं समझता यही पाप का उदय कहा
पर पदार्थ की महिमा गाता नश्वर की तू शरण रहा
वीतराग प्रभुवर कहते तू तीन लोक का ज्ञाता है
इससे बढ़कर क्या महिमा है निश्चय से निज दृष्टि है ॥75॥

मेरे में मैं ही रहता हूँ अन्य द्रव्य का दखल नहीं
अनंत गुण हैं सदा सुरक्षित सत्ता मेरी नित्य रही
निज में ही संतुष्ट रहूँ मैं पर से मेरा काम नहीं
यह दृढ़ निश्चय करके ही मैं पा जाऊँ ध्रुव धाम मही ॥76॥

निज पर दुष्कर्मों के द्वारा क्यों उपसर्ग कराते हो
मिथ्यात्म अविरत कषाय औ योग द्वार खुलवाते हो
अपने हाथों निज गृह में क्यों आग लगाते रहते हो
अपने को ही अपना मानो अपनों में क्यों रमते हो ॥77॥

स्वपर भेद अभ्यास बिना ही संकट नाश नहीं होता
स्वात्म प्रभु की दृढ़ आस्था बिन निज में भास नहीं होता
भेद ज्ञान अमृत के जैसा अजर अमर पद दाई है
हे आतम इसको न तजना यह अनुपम अतिशायी है ॥78॥

विभाव विष को तज कर आत्म स्वभाव अमृत पान करो
सबसे भिन्न निराला निरखो निज का निज में ध्यान धरो
बहुत सरल है आत्म ध्यान जो पंचेंद्रिय अनपेक्ष रहा
सरल कार्य को कठिन बनाया चेतन अब तो चेत ज़रा ॥79॥

स्वभाव का सामर्थ्य जानकर पर द्रव्यों से पृथक रहो
विभाव को विपरीत समझकर स्वात्म गुणों में लीन रहो
बाहर में करने जैसा कुछ नहीं जगत में दिखता है
भीतर में जो होने वाला वही हो रहा होता है ॥80॥

निज आत्म से अन्य रहे जो वे मुझको क्या दे सकते
मेरे गुण मुझ में शाश्वत हैं वे मुझसे क्या ले सकते
मैं अपने में परिणमता हूँ पर का कुछ संयोग नहीं
मेरा सब कुछ मुझ को करना मेरा दृढ़ विश्वास यही ॥81॥

मैं धर्मात्मा बहुत शांत हूँ जग वालों से मत कहना
शांति प्रदर्शन बिन अशांति के कैसे हो जिन का कहना
ज्ञानी तुम्हे अशांत कहेंगे अतः सत्य शांति पाओ
शब्द अगोचर आत्मशांति है शब्द वेश ना पहनाओ ॥82॥

जो दिखता है वह अजीव है इसमे सुख गुण सत्त्व नहीं
फिर कैसे वह सुख दे सकता आश न रखना अन्य कहीं
सुख गुण वाले जीव नंत पर वह निज सुख न दे सकते
अपने सुख को प्रगटा कर अनंत सुखमय हो सकते ॥83॥

आत्म शांति यदि पाना चाहो जग के मुखिया मत होना
नश्वर ख्याति पद के खातिर आत्म निधियां मत खोना
पल भर इंद्रिय सुख को पाने चिदानंद को न भूलो
सर्व जगत से मोह हटा कर निज प्रदेश को तुम छू लो ॥84॥

समझाने का भ्रम न पालो किसकी सुनता कौन यहाँ
सब अपने मन की सुनते हैं कौन किसी का हुआ यहाँ
अपना ही अपना होता है केवल आत्म अपना है
ज्ञानमयी आत्म को समझो शेष जगत सब सपना है ॥85॥

मान बढ़ाने जग का परिचय विकल्पाग्नि का ईंधन है
स्वात्म अनंत गुणों का परिचय जीवन का शाश्वत धन है
पर से परिचित निज से वंचित रह कर आखिर क्या पाया
जिन परिचय से निज का परिचय मुझको आज समझ आया ॥86॥

पर पदार्थ को शरण मानकर निज को अशरण करना है
निज का संबल छूट गया तो भव-भव में दुख वरना है
परमेष्ठी व्यवहार शरण औ निज शुद्धात्म निश्चय है
अनंत बलयुत चिद घन निर्मल शरणभूत निज चिन्मय है ॥87॥

कर्मोपाधी रहित सदा मैं अनंत गुण का पिंड रहा
जिनवाणी ने आत्म तत्त्व को पूर्ण ज्ञान मार्त्तड कहा
सुख-दुख कर्म जनित पीड़ाएँ आती जाती रहती हैं
मेरे ज्ञान समंदर में नित ज्ञान धार ही बहती है ॥88॥

राग भाव की पूर्ति करके अज्ञानी हर्षित होता
ज्ञानी राग नहीं करता पर हो जाने पर दुख होता
ज्ञानी और अज्ञानीजन में अंतर अवनि अंबर का
इक बाहर नश्वर सुख पाता इक पाता है अंदर का ॥89॥

बिना कमाए सारे वैभव पुण्योदय से मिल जाते
किंतु तत्त्व-ज्ञान बिन आत्म शांति कभी नहीं पाते
श्रम करते पर पापोदय में धन सुख वैभव नहीं मिले

***** ॥90॥

जो दिखता है वह मैं न हूँ देखनहारा ही मैं हूँ

निज आत्म को ज्ञानद्वार से जाननहारा ही मैं हूँ
ज्ञान ज्ञान में ही रहता है पर ज्ञेयों में न जाता
ज्ञेय ज्ञेय में ही रहते पर सहज जानने में आता ॥91॥

वर्तमान में निर्दोषी पर भूतकाल का दोषी हूँ
नोकर्मों का दोष नहीं कुछ यही समझ संतोषी हूँ
अन्य मुझे दुख देना चाहे किंतु दुखी मैं क्यों होऊ
आत्मधरा पर कषाय करके नये कर्म को क्यों बोऊ ॥92॥

निश्चय से उपयोग कभी भी बाहर कहीं न जा सकता
एक द्रव्य का गुण दूजे में प्रवेश ही न पा सकता
मोही पर को विषय बनाता तब कहने में आता है
यदि पर में उपयोग गया तो ज्ञान शून्य हो जाता है ॥93॥

अगर हृदय में श्रद्धा है तो पथर में भी जिनवर हैं
मूर्तिमान दिखते मूर्ति में कागज पर जिनवर वच हैं
कर्म परत के पार दिखेगा तुझको तेरा प्रभु महान
कौन रोक पाएगा तुझको बनने से अर्हत भगवान ॥94॥

मान नाम हित किया दान तो अनर्थ औ निस्सार रहा
पुण्य लक्ष्य से दान दिया तो दान नहीं व्यापार रहा
पुण्य खरीदा निज को भूला अपना क्यों नुकसान करे
अहम भाव से रहित दान कर भगवत पद आसान करे ॥95॥

पाप भाव का दंड बाह्य में मिले न या मिल सकता है
पर अंतस मे आकुलता का दंड निरंतर मिलता है
पाप विभाव भाव दुखदाई कर्म जनित है नित्य नहीं
जो स्वभाव है वह अपना है शाश्वत रहता सत्य वही ॥96॥

पूजादिक शुभ सर्व क्रियाएँ रूढिक कही न जा सकती
मोक्ष निमित्तिक क्रिया सभी यह शिव मंजिल ले जा सकती

समकित के यदि साथ क्रिया हो सम्यक संयम चरित वही
अतः भावयुत क्रिया करो नित पा जाओ ध्रुव धाम मही ॥97॥

तन परिजन परिवार संबंधी नंत बार कर्तव्य किए
निज शुद्धात्म प्रकट करने को कभी न कोई कार्य किए
निज मंतव्य शुद्ध करके अब शीघ्र प्राप्त गंतव्य करें
कुछ ऐसा कर्तव्य करें अब जिनवर पद कृतकृत्य वरे ॥98॥

हो निमित्त आधीन आत्मा कर्म बांधता रहता है
कभी-कभी ऐसा भी होता उसे पता न चलता है
बँध शुभाशुभ भावों से हो श्वान वृत्ति को तजना है
सिंह वृत्ति से उपादान की स्वयं विशुद्धी करना है ॥99॥

पर की अपकीर्ति फैलाकर कभी कीर्ति न पा सकते
अपयश का भय रख कर यश की चाह नहीं कम कर सकते
ख्याति-त्याग के प्रवचन में भी ख्याति का न लक्ष्य रहे
यश चाहो तो ऐसा चाहो तीन लोक यश बना रहे ॥100॥

भव भटकन को तज कर साधक आत्मिक यात्रा शुरू करो
स्वानुभूति का मंत्र जापकर अपनी मंजिल प्राप्त करो
पर ज्ञेयों की छटा ना देखो आत्म ज्ञान ही ज्ञेय रहे
कर्मशूल से बच कर चलना मात्र लक्ष्य आदेय रहे ॥



चौबीस-तीर्थकर-स्तवन

जो अनादि से व्यक्त नहीं था त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भाव ।
वह युगादि में किया प्रकाशित वन्दन ऋषभ जिनेश्वर राव ॥१॥

जिसने जीत लिया त्रिभुवन को मोह शत्रुवह प्रबल महान ।
उसे जीतकर शिवपद पाया वन्दन अजितनाथ भगवान ॥२॥



काललब्धि बिन सदा असम्भव निज सन्मुखता का पुरुषार्थ ।
निर्मल परिणति के स्वकाल में सम्भव जिनने पाया अर्थ ॥३॥

त्रिभुवन जिनके चरणों का अभिनन्दन करता तीनों काल ।
वे स्वभाव का अभिनन्दन कर पहुँचे शिवपुर में तत्काल ॥४॥

निज आश्रय से ही सुख होता यही सुमति जिन बतलाते ।
सुमतिनाथ प्रभु की पूजन कर भव्यजीव शिवसुख पाते ॥५॥

पद्मप्रभु के पद पंकज की सौरभ से सुरभित त्रिभुवन ।
गुण अनन्त के सुमनों से शोभित श्री जिनवर का उपवन ॥६॥

श्री सुपार्श्व के शुभ-सु-पार्श्व में जिसकी परिणति करे विराम ।
वे पाते हैं गुण अनन्त से भूषित सिद्ध सदन अभिराम ॥७॥

चारु चन्द्रसम सदा सुशीतल चेतन-चन्द्रप्रभ जिनराज ।
गुण अनन्त की कला विभूषित प्रभु ने पाया निजपद राज ॥८॥

पुष्पदन्त सम गुण आवलि से सदा सुशोभित हैं भगवान ।
मोक्षमार्गकी सुविधि बताकर भविजन का करते कल्याण ॥९॥

चन्द्र किरण समशीतल वचनों से हरते जग का आताप ।
स्याद्वादमय दिव्यध्वनि से मोक्षमार्ग बतलाते आप ॥१०॥

त्रिभुवन के श्रेयस्कर हैं श्रेयांसनाथ जिनवर गुणखान ।
निज स्वभाव से ही परम श्रेय का केन्द्रबिन्दु कहते भगवान ॥११॥

शत इन्द्रों से पूजित जग में वासुपूज्य जिनराज महान ।
स्वाश्रित परिणति द्वारा पूजित पञ्चमभाव गुणों की खान ॥१२॥

निर्मल भावों से भूषित हैं जिनवर विमलनाथ भगवान् ।
राग-द्वेषमल का क्षय करके पाया सौख्य अनन्त महान् ॥१३॥

गुण अनन्तपति की महिमा से मोहित है यह त्रिभुवन आज ।
जिन अनन्त को वन्दन करके पाऊँ शिवपुर का साम्राज्य ॥१४॥

वस्तुस्वभाव धर्मधारक हैं धर्म धुरन्धर नाथ महान् ।
ध्रुव की धुनिमय धर्म प्रगट कर वंदित धर्मनाथ भगवान् ॥१५॥

रागरूप अङ्गारों द्वारा दहक रहा जग का परिणाम ।
किन्तु शान्तिमय निज परिणति से शोभित शान्तिनाथ भगवान् ॥१६॥

कुन्तु आदि जीवों की भी रक्षा का देते जो उपदेश ।
स्व-चतुष्टय से सदा सुरक्षित कुन्तुनाथ जिनवर परमेश ॥१७॥

पञ्चेन्द्रिय विषयों से सुख की अभिलाषा है जिनकी अस्त ।
धन्य-धन्य अरनाथ जिनेश्वर राग-द्वेष अरि किये परास्त ॥१८॥

मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर जो हैं त्रिभुवन में विख्यात ।
मल्लिनाथ जिन समवसरण में सदा सुशोभित हैं दिन-रात ॥१९॥

तीन कषाय चौकड़ी जयकर मुनि-सु-व्रत के धारी हैं,
वन्दन जिनवर मुनिसुव्रत जो भविजन को हितकारी हैं ॥२०॥

नमि जिनेश्वर ने निज में नमकर पाया केवलज्ञान महान् ।
मन-वच-तन से कर्त्तु नमन सर्वज्ञ जिनेश्वर हैं गुणखान ॥२१॥

धर्मधुरा के धारक जिनवर धर्मतीर्थ का रथ संचालक ।
नेमिनाथ जिनराज वचन नित भव्यजनों के हैं पालक ॥२२॥

जो शरणागत भव्यजनों को कर लेते हैं आप समान ।

ऐसे अनुपम अद्वितीय पारस हैं पार्श्वनाथ भगवान ॥२३॥

महावीर सन्मति के धारक वीर और अतिवीर महान ।
चरण-कमल का अभिनन्दन है वन्दन वर्धमान भगवान ॥२४॥



लघु-प्रतिक्रमण

चिदानन्दैक रूपाय, जिनाय परमात्मने । परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥



अन्वयार्थ : मैं नित्य उन परम सिद्धि को प्राप्त परमात्मा को नमस्कार करता हूँ जो परमात्म पद के प्रकाशन में अग्रसर हुए हैं, जिन्होंने अनेक रूपता में स्थित चिदानन्द प्रभु को सन्मार्ग के आधार स्वयं को परमात्म पद में स्थित कर जिस परमात्म पद को दर्शाया है, मुक्ति प्राप्त की है, अनेक गुणों के भंडार हुए हैं।

है प्रभु मैंने अब तक पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पन्द्रह योग, पच्चीस कषाय, ये सत्तावन आस्रव के कारण हैं, इन्हीं के अंतर्गत संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन वच काय द्वारा, कृत, कारित, अनुमोदना तथा क्रोध, मान, माया, लोभ से 108 प्रकार नित्य ही तीन दण्ड, त्रिशल्य, तीन वर्ग, राज कथा, चोर कथा, स्त्री कथा, भोजन कथा, मैं अपने को अनादि मिथ्या, अज्ञान, मोहवश परिणामया, परिणामाता रहता हूँ, और जब तक सद्बोधी की प्राप्ति नहीं हुई, परिणामाता रहूँगा, ऐसी दशा में मैंने जिनवाणी द्वारा सत्-समागम से जो उपलब्धि प्राप्त की है, उसके ऊपर कथित आस्रव में जो पाप लगा हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ।

मैंने भूल से मिथ्यात्ववश अज्ञान-दशा में जो, इतर निगोद सात लाख, नित्य निगोद सात लाख, पृथ्वीकायिक सात लाख, जलकायिक सात लाख, अग्निकायिक सात लाख, वायुकायिक सात लाख, वनस्पतिकायिक दस लाख, दो इन्द्रिय दो लाख, तीन इन्द्रिय दो लाख, चार इन्द्रिय दो लाख, पंचेन्द्रिय पशु चार लाख, मनुष्य गति के चौदह लाख, देव गति के चार लाख, नरक गति के चार लाख, ये सब जाति चौरासी लाख योनि हैं, माता पक्ष पिता पक्ष एक सौ साढ़े निन्यानवे कोडा कोडी कुल, सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त लङ्घि, अपर्याप्त आदि जीवों की विराधना की हो, तथा इन पर राग-द्वेष द्वारा जो पाप लगा हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ।

हे भगवन ! मेरे चार आर्त ध्यान, चार रौद्र ध्यान का पाप लगा हो, अनाचार का तथा त्रस जीवों की विराधना की हो, सप्त व्यसन सेवन किये हों, सप्त भयों का, अष्ट मूल गुणव्रत में अतिचार लगे हों, दस प्रकार का बहिरंग परिग्रह, चौदह प्रकार का अंतरंग परिग्रह, सम्बन्धी पाप किया हो, पन्द्रह प्रमाद के वशीभूत होकर बारह व्रतों के पांच-पांच अतिचार, इस प्रकार साठ अतिचारों में, पानी छानने में, जीवानी यथास्थान न पहुँचाने में, जो भी पाप लगा हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ।

हे भगवन ! मेरे रौद्र परिणाम दुश्मिन्तवन बोलने में, चलने में, हिलने में, सोने में, करवट लेने में, मार्ग में ठहरने में, बिना देखे गमन करने में, मेरे मन, वच, काय द्वारा जो पाप नासमझ से, समझ से, लगा हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ।

हे भगवन ! मैंने सूक्ष्म अथवा बादर कोई भी जीव, पैर तले, करवट में, बैठने, उठने, चलने-फिरने इत्यादि आरम्भ के द्वारा, रसोई-व्यापर इत्यादि आरम्भ में सताए हों, भय को पहुँचाए हों, मरण को प्राप्त हुए हों, दुख को अनुभव करते हों, छेदन-भेदन को मन वच काय द्वारा जाने अनजाने में दुख को ज्ञात करते हों, यह सब दोष मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ।

मैं सर्व जिनेद्रों की वन्दना करता हूँ। चौबीस जिन भूत, भविष्य, वर्तमान, बीस तीर्थकर, सिद्ध क्षेत्र, कल्याणक क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय की, जिन मन्दिरों की, जिन चैत्यालयों की, वन्दना करता हूँ। मैं सर्व मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, ग्यारह प्रतिमाओं में स्थित साधर्मी बन्धुओं की, बिना समझे अनुभवी भव्य जीवों की, जो निंदा की हो, कटु वचन कहें हों, आघात पहुँचाया हो, विनय न की हो, तथा किन्हीं जीवों की निंदा की हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ।

हे प्रभु मैंने निर्मल्य द्रव्य का उपयोग किया हो, सामायिक के बत्तीस प्रकार के दोष लगाये हों, जिन मन्दिर में पांच इन्द्रियों के विषय व मन के द्वारा, विषयों में प्रवृत्ति की हो, भगवत् पूजन में जो प्रमाद किया हो, मैंने राग से, द्वेष से, मान से, माया से, खेल-तमाशे में, नाटक ग्रहों में, नृत्य-गान आदि सभा में, गृहित-अगृहित मिथ्या द्वारा जो कर्म-नोकर्म संग्रहित किये हों, व जो भाव दूसरों के प्रति अहित के हुये हों, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ।

मेरा समस्त जीवों के प्रति मैत्री भाव रहे, सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करें, मेरा क्षमा भाव बने, कर्मक्षय के उपाय का प्रयत्न करूँ, मेरा समाधि-मरण हो, चारों गतियों में मेरे भाव निर्मल रहें, यही प्रार्थना है।

मुझे निरंतर शास्त्राभ्यास की प्राप्ति हो, सज्जन समागम का लाभ मिले, दोषों को कहने में मौन रहूँ, अपने दोषों को त्यागने व प्रायश्चित्त के भाव हों, परोपकार, मिष्ठवचन, प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ रहूँ, चारों दान के भाव बनें।

हे भगवन ! जब तक मेरा भव-भ्रमण ना छूटे, आपकी शांत मुद्रा व आपके कर्मक्षय के प्रयास, अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति का लक्ष्य, आपके हितकारी वचन, वीतराग परिणति, केवलज्ञान द्वारा आत्महित का मनन, मुझे गति-गति में प्राप्त हो, यह अंतिम निवेदन है, मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे, शीघ्र भव पार होऊँ, यही मेरी आपसे प्रार्थना है।

(॥इति लघु प्रतिक्रमण॥)



मृत्युमहोत्सव

मृत्यु - मार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागोददातु मे समाधि-बोधि-पाथेयं यावन्मुक्ति-पुरी पुरः ॥१॥



कृमि - जाल - शताकीर्ण, जजरि देह - पञ्चरे
भज्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञान-विग्रहः ॥२॥

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्यु-महोत्सवे
स्वरूपस्थः पुरं याति, देही देहान्तर-स्थितिम् ॥३॥

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद्, दृश्यते पूर्व-सत्तमैः
भुज्यते-स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीतिः कुतः सताम् ॥४॥

आगर्भाद्दुःख - सन्तप्तः प्रक्षिप्तो देह-पिञ्जरे
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्यु-भूमिपतिं विना ॥५॥

सर्व - दुःखं - प्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः
मृत्यु-मित्र-प्रसादेन प्राप्यन्ते सुख-सम्पदः ॥६॥

मृत्यु-कल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः
निमग्नो जन्म-जम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥७॥

जीर्ण देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सतोत्थितिर्यथा ॥८॥

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत्
मृत्यु-भीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥९॥

संसारासक्त-चित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञान-वैराग्यवासिनाम् ॥१०॥

पुराधीशो यदा याति सुकृत्यस्य बुभुत्सया
तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पाञ्च-भौतिकैः ॥११॥

मृत्यु-काले सतां दुःखं यद् भवेद् व्याधि-संभवम्
देह-मोह-विनाशाय मन्ये शिव-सुखाय च ॥ १२ ॥

ज्ञानिनोऽमृत - सङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥ १३ ॥

यत्फलं प्राप्यते सद्विरतायास - विडम्बनात्
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्यु-काले समाधिना ॥ १४ ॥

अनार्तः शान्तिमान् मत्रो न तिर्यग्नापि नारकः
धम्र्य-ध्यानी पुरो मत्रोऽनशनी त्वमरेश्वरः ॥ १५ ॥

तप्तस्य तपसश्वापि पालितस्य व्रतस्य च
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना ॥ १६ ॥

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जन-वादः
चिरंतर-शरीर-नाशे नवतर-लाभे च किं भीरुः ॥ १७ ॥

स्वगदित्य पवित्र-निर्मल - कुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्त्वा भक्ति-विधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनम्!
भुक्त्वा भोगमहर्निंशं पर-कृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले,
पात्रावेश-विसर्जनामिव मृतिं सन्तो लभन्ते स्वतः ॥ १८ ॥



अपूर्व-अवसर



अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रथ जब
संबंधों का बंधन तीक्ष्ण छेदकर
विचर्णगा कब महत्पुरुष के पंथ जब ॥ १ ॥

उदासीन वृत्ति हो सब परभाव से
यह तन केवल संयम हेतु होय जब
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं
तन में किंचित भी मूर्छा नहीं होय जब ॥२॥

दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब
चरित्र मोह का क्षय जिससे हो जायेगा
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब ॥३॥

आत्म लीनता मन वच काया योग की
मुख्यरूप से रही देह पर्यन्त जब
भयकारी उपसर्ग परीषह हो महा
किन्तु न होवे स्थिरता का अंत जब ॥४॥

संयम ही के लिये योग की वृत्ति हो
निज आश्रय से जिन आज्ञा अनुसार जब
वह प्रवृत्ति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी
होऊँ अंत में निज स्वरूप में लीन जब ॥५॥

पंच विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं
अरु प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव प्रतिबन्ध बिन
वीतलोभ हो विचर्ण उदयाधीन जब ॥६॥

क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता
मान भाव प्रति दीन भावमय मान जब
माया के प्रति माया साक्षी भाव की
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब ॥७॥

बहु उपसर्ग कर्ता के प्रति भी क्रोध नहीं
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब
देह जाय पर माया नहीं हो रोम में
लोभ नहीं हो प्रबल सिद्धि निदान जब ॥८॥

नग्नभाव मुँडभाव सहित अस्त्रानता
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब
केश-रोम-नख आदि अंग श्रृंगार नहीं
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रथ सिद्ध जब ॥९॥

शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता
मान-अपमान में वर्ते वही स्वभाव जब
जन्म-मरण में हो नहीं न्यूनाधिकता
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब ॥१०॥

एकाकी विचर्ष्णगा जब श्मशान में
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो
जानुँ पाया परम मित्र संयोग जब ॥११॥

घोर तपश्चर्या में तन संताप नहीं
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की
सब में भासे पुद्गल एक स्वभाव जब ॥१२॥

ऐसे प्राप्त कर्ण जय चारित्र मोह पर
पाऊँगा तब करण अपूरव भाव जब
क्षायिक श्रेणी पर होऊँ आरूढ़ जब
अनन्य चिंतन अतिशय शुद्ध स्वभाव जब ॥१३॥

मोह स्वयंभूरमण उदधि को तैर कर

प्राप्त कर्णा क्षीणमोह गुणस्थान जब
अंत समय में पूर्णरूप वीतराग हो
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब ॥१४॥

चार घातिया कर्मों का क्षय हो जहाँ
हो भवतरु का बीज समूल विनाश जब
सकल ज्ञेय का ज्ञाता दृष्टा मात्र हो
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनंत प्रकाश जब ॥१५॥

चार अघाति कर्म जहाँ वर्ते प्रभो
जली जेवरीवत हो आकृति मात्र जब
जिनकी स्थिति आयु कर्म आधीन है
आयु पूर्ण हो तो मिटता तन पात्र जब ॥१६॥

मन वच काया अरु कर्मों की वर्गणा
छूटे जहाँ सकल पुद्गल सम्बन्ध जब
यही अयोगी गुणस्थान तक वर्तता
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जब ॥१७॥

इक परमाणु मात्र की न स्पर्शता
पूर्ण कलंक विहीन अडोल स्वरूप जब
शुद्ध निरंजन चेतन मूर्ति अनन्यमय
अगुरुलघु अमूर्ति सहजपद रूप जब ॥१८॥

पूर्व प्रयोगादिक कारण के योग से
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय में सुस्थित जब
सादि अनंत अनंत समाधि सुख में
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जब ॥१९॥

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब

उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ
अनुभव गोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब ॥२०॥

यही परम पद पाने को धर ध्यान जब
शक्तिविहीन अवस्था मनरथरूप जब
तो भी निश्चय 'राजचंद्र' के मन रहा
प्रभु आज्ञा से होऊँ वही स्वरूप जब ॥२१॥



कुंदकुंद-शतक



कुंद-कुंद आचार्य के पंच परमागम में से चूनी हुई १०१ गाथाएँ

हिंदी पद्मानुवाद - डा. हुक्मचंद भारिल्ल

प्रवचनसार-३

सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र-वंदित, कर्ममल निर्मल करन
वृष्टीर्थ के करतार श्री, वर्द्धमान जिन शत-शत नमन ॥१॥

मोक्षपाठुड-१०४

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु हैं परमेष्ठि पण
सब आतमा की अवस्थाएँ, आतमा ही है शरण ॥२॥

मोक्षपाठुड-१०५

सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप, समभाव सम्यक् आचरण
सब आतमा की अवस्थाएँ, आतमा ही है शरण ॥३॥

नियमसार-४४

निर्ग्रन्थ है नीराग है, निःशाल्य है निर्दोष है
निर्मान-मद यह आतमा, निष्काम है निष्क्रोध है ॥४॥

निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है, यह निरालम्बी आतमा
निर्देह है निर्मूढ है, निर्भयी निर्मम आतमा ॥५॥

मैं एक दर्शन-ज्ञानमय, नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं
ये अन्य सब परद्रव्य, किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ॥६॥

चैतन्य गुणमय आतमा, अव्यक्त अरस अरूप है
जानो अलिंगग्रहण इसे, यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥७॥

जिस भाँति प्रज्ञाछैनी से, पर से विभक्त किया इसे
उस भाँति प्रज्ञाछैनी से ही, अरे ग्रहण करो इसे ॥८॥

जो जानता मैं शुद्ध हूँ, वह शुद्धता को प्राप्त हो
जो जानता अविशुद्ध वह, अविशुद्धता को प्राप्त हो ॥९॥

यह आत्म ज्ञानप्रमाण है, अर ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है
हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि, सर्वगत यह ज्ञान है ॥१०॥

चारित्र दर्शन ज्ञान को, सब साधुजन सेवे सदा
ये तीन ही हैं आतमा, बस कहे निश्चयनय सदा ॥११॥

'यह नृपति है' यह जानकर, अर्थार्थिजन श्रद्धा करें
अनुचरण उसका ही करें, अति प्रीति से सेवा करें ॥१२॥

यदि मोक्ष की है कामना, तो जीवनृप को जानिए
अति प्रीति से अनुचरण करिये, प्रीति से पहिचानिए ॥१३॥

जो भव्यजन संसार-सागर, पार होना चाहते
वे कर्मईधन-दहन निज, शुद्धात्मा को ध्यावते ॥१४॥

मोक्षपथ में थाप निज को, चेतकर निज ध्यान धर
निज में ही नित्य विहार कर, पर द्रव्य में न विहार कर ॥१५॥

जीवादि का श्रद्धान सम्यक्, ज्ञान सम्यग्ज्ञान है
रागादि का परिहार चारित, यही मुक्तिमार्ग है ॥१६॥

तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है, तत्त्वहण सम्यग्ज्ञान है
जिनदेव ने ऐसा कहा, परिहार ही चारित्र है ॥१७॥

जानना ही ज्ञान है, अरु देखना दर्शन कहा
पुण्य-पाप का परिहार चारित्र, यही जिनवर ने कहा ॥१८॥

दर्शन रहित यदि वेष हो, चारित्र विरहित ज्ञान हो
संयम रहित तप निरर्थक, आकाश-कुसुम समान हो ॥१९॥

शीलपादुड़-६

दर्शन सहित हो वेष चारित्र, शुद्ध सम्यज्ञान हो
संयम सहित तप अल्प भी हो, तदपि सुफल महान हो ॥२०॥

समयसार-१५२

परमार्थ से हों दूर पर, तप करें व्रत धारण करें
सब बालतप है बालव्रत, वृषभादि सब जिनवर कहें ॥२१॥

समयसार-१५३

व्रत नियम सब धारण करें, तप शील भी पालन करें
पर दूर हों परमार्थ से ना, मुक्ति की प्राप्ति करें ॥२२॥

दर्शनपादुड़-२२

जो शक्य हो वह करें, और अशक्य की श्रद्धा करें
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है, इस भाँति सब जिनवर कहें ॥२३॥

दर्शनपादुड़-२०

जीवादि का श्रद्धान ही, व्यवहार से सम्यक्त्व है
पर नियत नय से आत्म का, श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥२४॥

मोक्षपादुड़-१४

नियम से निज द्रव्य में, रत श्रमण सम्यक्वंत हैं
सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही, क्षय करें करमानन्त हैं ॥२५॥

मोक्षपादुड़-८८

मुक्ति गये या जायेंगे, माहात्म्य है सम्यक्त्व का

यह जान लो हे भव्यजन, इससे अधिक अब कहें क्या ॥२६॥

मोक्षपादुड़-८१

वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं, वे शूर नर पण्डित वही
दुःस्वप्न में सम्यक्त्व को, जिनने मलीन किया नहीं ॥२७॥

समयसार-१३

चिदचिदास्रव पाप-पुण्य, शिव बंध संवर निर्जरा
तत्वार्थ ये भूतार्थ से, जाने हुए सम्यक्त्व हैं ॥२८॥

समयसार-११

शुद्धनय भूतार्थ है, अभूतार्थ है व्यवहारनय
भूतार्थ की ही शरण गह, यह आतमा सम्यक् लहे ॥२९॥

समयसार-८

अनार्य भाषा के बिना, समझा सके न अनार्य को
बस त्योंहि समझा सके ना, व्यवहार बिन परमार्थ को ॥३०॥

समयसार-२७

देह-चेतन एक हैं, यह वचन है व्यवहार का
ये एक हो सकते नहीं, यह कथन है परमार्थ का ॥३१॥

समयसार-७

दृग ज्ञान चारित जीव के हैं, यह कहा व्यवहार से
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक, शुद्ध है परमार्थ से ॥३२॥

मोक्षपादुड़-३१

जो सो रहा व्यवहार में, वह जागता निज कार्य में
जो जागता व्यवहार में, वह सो रहा निज कार्य में ॥३३॥

इस ही तरह परमार्थ से, कर नास्ति इस व्यवहार की
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन, प्राप्ति करें निर्वाण की ॥३४॥

सद्धर्म का है मूल दर्शन, जिनवरेन्द्रों नें कहा
हे कानवालों सुनों, दर्शन-हीन वंदन योग्य ना ॥३५॥

जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं, चारित्र से भी भ्रष्ट हैं
वे भ्रष्ट करते अन्य को, वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं ॥३६॥

दग-भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं, उनको कभी निर्वाण ना
हों सिद्ध चारित्र-भ्रष्ट पर, दग-भ्रष्ट को निर्वाण ना ॥३७॥

जो लाज गौरव और भयवश, पूजते दग-भ्रष्ट को
की पाप की अनुमोदना, ना बोधि उनको प्राप्त हो ॥३८॥

चाहें नमन दगवंत से, पर स्वयं दर्शनहीन हों
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी, वे भी वचन-पग हीन हों ॥३९॥

यद्यपि करें वे उग्र तप, शत-सहस-कोटी वर्ष तक
पर रतनत्रय पावें नहीं, सम्यक्त्व-विरहित साधु सब ॥४०॥

जिस तरह द्रुम परिवार की, वृद्धि न हो जड़ के बिना
बस उस्तरह ना मुक्ति हो, जिनमार्ग में दर्शन बिना ॥४१॥

असंयमी न वन्द्य है, दृगहीन वस्त्रविहीन भी
दोनों ही एक समान हैं, दोनों ही संयत हैं नहीं ॥४२॥

ना वंदना हो देह की, कुल की नहीं ना जाति की
कोई करे क्यों वंदना, गुण-हीन श्रावक-साधु की ॥४३॥

मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ, या हैं हमारे ये सभी
यह मान्यता जब तक रहे, अज्ञानी हैं तब तक सभी ॥४४॥

करम के परिणाम को, नोकरम के परिणाम को
जो ना करे बस मात्र जाने, प्राप्त हो सद्ज्ञान को ॥४५॥

मैं मारता हूँ अन्य को, या मुझे मारें अन्यजन
यह मान्यता अज्ञान है, जिनवर कहें हे भव्यजन ॥४६॥

निज आयुक्षय से मरण हो, यह बात जिनवर ने कही
तुम मार कैसे सकोगे जब, आयु हर सकते नहीं? ॥४७॥

निज आयुक्षय से मरण हो, यह बात जिनवर ने कही
वे मरण कैसे करें तब जब, आयु हर सकते नहीं? ॥४८॥

समयसार-२५०

मैं हूँ बचाता अन्य को, मुझको बचावे अन्यजन
यह मान्यता अज्ञान है, जिनवर कहें हे भव्यजन ॥४९॥

समयसार-२५१

सब आयु से जीवित रहें, यह बात जिनवर ने कही
जीवित रखोगे किस तरह, जब आयु दे सकते नहीं? ॥५०॥

समयसार-२५२

सब आयु से जीवित रहें, यह बात जिनवर ने कही
कैसे बचावे वे तुझे, जब आयु दे सकते नहीं? ॥५१॥

समयसार-२५३

मैं सुखी करता दुःखी करता, हूँ जगत में अन्य को
यह मान्यता अज्ञान है, क्यों ज्ञानियों को मान्य हो? ॥५२॥

समयसार-२६२

मारो न मारो जीव को, हो बंध अध्यवसान से
यह बंध का संक्षेप है, तुम जान लो परमार्थ से ॥५३॥

प्रवचनसार-२१७

प्राणी मरें या न मरें, हिंसा अयत्नाचार से
तब बंध होता है नहीं, जब रहें यत्नाचार से ॥५४॥

पंचास्तिकाग्र-१०

उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त सत्, सत् द्रव्य का लक्षण कहा

पर्याय-गुणमय द्रव्य है, यह वचन जिनवर ने कहा ॥५५॥

पंचास्तिकाय-१२

पर्याय बिन ना द्रव्य हो, ना द्रव्य बिन पर्याय ही
दोनों अनन्य रहे सदा, यह बात श्रमणों ने कही ॥५६॥

पंचास्तिकाय-१३

द्रव्य बिन गुण हों नहीं, गुण बिना द्रव्य नहीं बने
गुण द्रव्य अव्यतिरिक्त हैं, यह कहा जिनवर देव ने ॥५७॥

पंचास्तिकाय-१४

उत्पाद हो न अभाव का, ना नाश हो सन्द्राव में
उत्पाद-व्यय करते रहें, सब द्रव्य गुण-पर्याय में ॥५८॥

प्रवचनसार-३७

असद्भूत हों सद्भूत हों, सब द्रव्य की पर्याय सब
सद्ज्ञान में वर्तमानवत ही, हैं सदा वर्तमान सब ॥५९॥

प्रवचनसार-३८

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं, या नष्ट जो हो गई हैं
असन्दावी वे सभी, पर्याय ज्ञान प्रत्यक्ष हैं ॥६०॥

प्रवचनसार-३९

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं, या हो गई हैं नष्ट जो
फिर ज्ञान की क्या दिव्यता, यदि ज्ञात होवे नहीं वो? ॥६१॥

सूत्रपाण्ड-१

अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर, सूत्र से ही श्रमणजन
परमार्थ का साधन करें, अध्ययन करो हे भव्यजन ॥६२॥

डोरा सहित सुइ नहीं खोती, गिरे चाहे वन भवन
संसार-सागर पार हों, जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण ॥६३॥

तत्वार्थ को जो जानते, प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से
द्वग्मोह क्षय हो इसलिए, स्वाध्याय करना चाहिए ॥६४॥

जिन-आगमों से सिद्ध हों, सब अर्थ गुण-पर्यय सहित
जिन-आगमों से ही श्रमणजन, जानकर साधें स्वहित ॥६५॥

स्वाध्याय से जो जानकर, निज अर्थ में एकाग्र हैं
भूतार्थ से वे ही श्रमण, स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है ॥६६॥

जो श्रमण आगमहीन हैं, वे स्वपर को नहिं जानते
वे कर्मक्षय कैसे करें जो, स्वपर को नहिं जानते? ॥६७॥

व्रत सहित पूजा आदि सब, जिन धर्म में सत्कर्म हैं
द्वग्मोह-क्षोभ विहीन निज, परिणाम आत्मधर्म हैं ॥६८॥

चारित्र ही बस धर्म है, वह धर्म समताभाव है
द्वग्मोह - क्षोभ विहीन निज, परिणाम समताभाव है ॥६९॥

प्राप्त करते मोक्षसुख, शुद्धोपयोगी आतमा
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख, हि शुभोपयोगी आतमा ॥७०॥

शुभोपयोगी श्रमण हैं, शुद्धोपयोगी भी श्रमण
शुद्धोपयोगी निरास्त्रव हैं, आस्त्रवी हैं शेष सब ॥७१॥

कांच-कंचन बन्धु-अरि, सुख-दुःख प्रशंसा-निन्द में
शुद्धोपयोगी श्रमण का, समभाव जीवन-मरण में ॥७२॥

भावलिंगी सुखी होते, द्रव्यलिंगी दुःख लहें
गुण-दोष को पहिचान कर सब, भाव से मुनि पद गहें ॥७३॥

मिथ्यात्व का परित्याग कर, हो नग्न पहले भाव से
आज्ञा यही जिनदेव की, फिर नग्न होवे द्रव्य से ॥७४॥

जिन भावना से रहित मुनि, भव में भ्रमें चिरकाल तक
हों नगन पर हों बोधि-विरहित, दुःख लहें चिरकाल तक ॥७५॥

वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ा, कोडि वर्षों तप करें
पर भाव बिन ना सिद्धि हो, सत्यार्थ यह जिनवर कहें ॥७६॥

नारकी तिर्यंच आदिक, देह से सब नग्न हैं
सच्चे श्रमण तो हैं वही, जो भाव से भी नग्न हैं ॥७७॥

सूत्रपादुड़-१८

जन्मते शिशुवत अकिंचन, नहीं तिलतुष हाथ में
किंचित् परिग्रह साथ हो तो, श्रमण जाँय निगोद में ॥७८॥

लिंगपादुड़-५

जो आर्त होते जोड़ते, रखते रखाते यत्र से
वे पाप मोहितमती हैं, वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥७९॥

लिंगपादुड़-१७

राग करते नारियों से, दूसरों को दोष दें
सदृशान-दर्शन रहित हैं, वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥८०॥

लिंगपादुड़-२

श्रावकों में शिष्यगण में, नेह रखते श्रमण जो
हीन विनयाचार से, वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥८१॥

लिंगपादुड़-१८

पार्श्वस्थ से भी हीन जो, विश्वस्त महिला वर्ग में
रत ज्ञान दर्शन चरण दें, वे नहीं पथ अपवर्ग में ॥८२॥

लिंगपादुड़-२०

धर्म से हो लिंग केवल, लिंग से न धर्म हो
समभाव को पहिचानिये, द्रव्यलिंग से क्या कार्य हो? ॥८३॥

समयसार-१५०

विरक्त शिवरमणी वरें, अनुरक्त बाँधे कर्म को

जिनदेव का उपदेश यह, मत कर्म में अनुरक्त हो ॥८४॥

समयसार-१५४

परमार्थ से हैं बाह्य, वे जो मोक्षमग नहीं जानते
अज्ञान से भवगमन-कारण, पुण्य को हैं चाहते ॥८५॥

समयसार-१५५

सुशील है शुभकर्म और, अशुभ करम कुशील है
संसार के हैं हेतु वे, कैसे कहें कि सुशील हैं? ॥८६॥

समयसार-१५६

ज्यों लोह बेड़ी बाँधती, त्यों स्वर्ण की भी बाँधती
इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों, कर्म बेड़ी बाँधती ॥८७॥

समयसार-१५७

दुःशील के संसर्ग से, स्वाधीनता का नाश हो
दुःशील से संसर्ग एवं, राग को तुम मत करो ॥८८॥

प्रवचनसार-७७

पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है, जो न माने बात ये
संसार-सागर में भ्रमे, मद-मोह से आच्छन्न वे ॥८९॥

प्रवचनसार-७६

इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है, विषम बाधा सहित है
है बंध का कारण दुखद, परतंत्र है विच्छिन्न है ॥९०॥

नियमसार-१२०

शुभ-अशुभ रचना वचन वा, रागादिभाव निवारिके
जो करें आत्म ध्यान नर, उनके नियम से नियम है ॥९१॥

सद्-ज्ञान-दर्शन-चरित ही, है 'नियम' जानो नियम से
विपरीत का परिहार होता, 'सार' इस शुभ वचन से ॥९२॥

जैन शासन में कहा, है मार्ग एवं मार्गफल
है मार्ग मोक्ष-उपाय एवं, मोक्ष ही है मार्गफल ॥९३॥

है जीव नाना कर्म नाना, लब्धि नानाविधि कही
अतएव वर्जित वाद है, निज-पर समय के साथ भी ॥९४॥

ज्यों निधि पाकर निज वतन में, गुप्त रह जन भोगते
त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञाननिधि, परसंग तज के भोगते ॥९५॥

यदि कोई ईर्ष्याभाव से, निन्दा करे जिनमार्ग की
छोड़ो न भक्ति वचन सुन, इस वीतरागी मार्ग की ॥९६॥

जो थाप निज को मुक्तिपथ, भक्ति निवृत्ति की करें
वे जीव निज असहाय गुण, सम्पन्न आत्म को वरें ॥९७॥

मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की, भक्ति करें गुणभेद से
वह परमभक्ति कही है, जिनसूत्र में व्यवहार से ॥९८॥

द्रव्य गुण पर्याय से, जो जानते अरहंत को
वे जानते निज आतमा, व्यगमोह उनका नाश हो ॥९९॥

सर्व ही अरहंत ने विधि, नष्ट कीने जिस विधि
सबको बताई वही विधि, हो नमन उनको सब विधि ॥१००॥

है ज्ञान दर्शन शुद्धता, निज शुद्धता श्रामण्य है
हो शुद्ध को निर्वाण, शत-शत बार उनको नमन है ॥१०१॥



सिद्ध-श्रुत-आचार्य-भक्ति



श्री सिद्ध-भक्ति

अथ पौर्वाहिणक आपराहिणक आचार्य वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यनुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थ, भाव-पूजा-
वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

सम्मत-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरू-लघु-मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥

तव-सिद्धे णय सिद्धे संजम- सिद्धे चरित्त- सिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥

इच्छामि भंते ! सिद्ध भक्ति काउस्सगो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्त-
जुत्ताणं, अटुविह-कम्म-विष्मुककाणं, अटु-गुण-संपण्णाणं, उङ्गलोयमत्थयम्मि पयट्टियाणं, तव-
सिद्धाणं, णय सिद्धाणं, संजम सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं, अतीताणागद -वट्टमाण-कालत्तय-
सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, णिच्वकालं अञ्चेमि, पूज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ,
कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्जं ।

श्रुतभास्ति

अथ पौर्वाहिणक आपराहिणक आचार्य वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यनुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थ, भाव-पूजा-
वन्दना-स्तव-समेतं श्री श्रुतभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

27 उच्छवास में कायोत्सर्ग करना

कोटि-शतं द्वादश चैव कोट्यो,
लक्षाण्यशीति-स्त्र्यधिकानि चैव ।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्र संख्या -
मेतच्छुतं पञ्च-पदं नमामि ॥१॥

अरहंत-भासियत्यं गणहर-देवेहिं गांथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुद-णाण-महोवहिं सिरसा ॥२॥

अञ्चालिका

इच्छामि भंते ! सुदभक्ति काउस्सगो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्म-
सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइधम्म-कहाइयं णिच्वकालं अञ्चेमि, पूज्जेमि,
वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-
गुण-संपत्ति होउ मज्जं ।

आचार्य भक्ति

अथ पौर्वाहिणक आपराहिणक आचार्य वन्दना- क्रियायां पूर्वाचार्यनुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थ, भाव-पूजा-

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः , स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः ।
 सुचरित-तपो-निधिभ्यो, नमो गुरूभ्यो गुण-गुरूभ्यः ॥१॥
 छत्तीस-गुण-समग्गे, पञ्च-विहाचार-करण-संदरिसे ।
 सिस्साणुग्रह-कुसले, धम्माइरिए सदा वन्दे ॥२॥
 गुरू-भत्ति संजमेण्य, तरन्ति संसार-सायरं घोरम् ।
 छिण्णन्ति अटु-कम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥३॥
 ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः ।
 षट्-कर्माभि-रतास्तपोधन-धनाः, साधु-क्रियाः साधवः ॥
 शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्-चन्दार्क-तेजोऽधिका ।
 मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणन्तु माम् साधवः ॥४॥
 गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञान-दर्शन-नायकाः ।
 चारित्रार्णव-गम्भीरा, मोक्ष-मार्गोपदेशकाः ॥५॥

इच्छामि भंते ! आइरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्त
 जुत्ताणं, पञ्च-विहाचाराणं, आइरियाणं, आयारादिसुद-णाणोवदेसयाणं उवज्ज्ञायाणं, ति-रयण-
 गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अञ्चेमि, पूज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ,
 कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्जं ।



ध्यान-सूत्र-शतक



सहज शुद्ध पारिणामिक भाव स्वरूपोऽहं ॥
 सहज शुद्ध ज्ञानानन्दैक स्वभावोऽहं ॥

चैतन्य रत्नाकर स्वरूपोऽहं ॥
सहज ज्ञान ज्योति स्वरूपोऽहं ॥
अनन्त सुख स्वरूपोऽहं ॥
अनन्त शक्ति स्वरूपोऽहं ॥
नित्य निरंजन ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
सहज सुखानन्द स्वरूपोऽहं ॥
परम ज्योति स्वरूपोऽहं ॥
शुद्धात्मानुभूति स्वरूपोऽहं ॥
कारण परमात्मा स्वरूपोऽहं ॥
समयसार स्वरूपोऽहं ॥
परम समाधि स्वरूपोऽहं ॥
केवल ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
केवल दर्शन स्वरूपोऽहं ॥
अष्टादश दोष रहितोऽहं ॥
कर्माण्डिकरहित स्वरूपोऽहं ॥
सम्यग्दर्शन संपन्नोऽहं।
सम्यक चारित्र संपन्नोऽहं ॥
व्यवहार रन्नत्रय संपन्नोऽहं ॥
क्षायिक सम्यकत्व स्वरूपोऽहं ॥
क्षायिक ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
क्षायिक चारित्र संपन्नोऽहं ॥
क्षायिक लब्धि स्वरूपोऽहं ॥
परमशुद्ध चिद्रूप स्वरूपोऽहं ॥
अनन्त दर्शन स्वरूपोऽहं ॥
सहज चैतन्य स्वरूपोऽहं ॥
शुद्धचिन्मात्र स्वरूपोऽहं ॥
अनन्त ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
अनन्त वीर्य स्वरूपोऽहं ॥
सहजानन्द स्वरूपोऽहं ॥
चिदानन्दस्वरूपोऽहं ॥
शुद्धात्मस्वरूपोऽहं ॥

स्वात्मोपलब्धि स्वरूपोऽहं ॥
शुद्धात्मसंवित्ति स्वरूपोऽहं ॥
परमात्म स्वरूपोऽहं ॥
परम मंगल स्वरूपोऽहं ॥
परमोत्तमस्वरूपोऽहं ॥
परमब्रह्म स्वरूपोऽहं ॥
शुद्धस्वरूपोऽहं ॥
सिद्ध स्वरूपोऽहं ॥
निर्मोह स्वरूपोऽहं ॥
सम्यग्ज्ञान संपन्नोऽहं ॥
निश्चय रत्नत्रय संपन्नोऽहं ॥
त्रिगुप्तिगुप्त स्वरूपोऽहं ॥
पंच समिति संपन्नोऽहं ॥
पंच महाव्रत संपन्नोऽहं ॥
दर्शनाचार संपन्नोऽहं ॥
ज्ञानाचार संपन्नोऽहं ॥
वीर्याचार संपन्नोऽहं ॥
शुद्ध चैतन्य स्वरूपोऽहं ॥
अखंड शुद्धज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
स्वाभाविक ज्ञान दर्शन स्वरूपोऽहं ॥
अनन्त चतुष्टय स्वरूपोऽहं ॥
अतींद्रियज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
स्व-पर भेद ज्ञान स्वरूपोऽहं ॥
चैतन्य चिन्ह स्वरूपोऽहं ॥
अष्टगुण सहितोऽहं ॥
उत्तम क्षमा धर्म स्वरूपोऽहं ॥
उत्तम मार्दव धर्म स्वरूपोऽहं ॥
उत्तम आर्जव धर्म स्वरूपोऽहं ॥
उत्तम शौच धर्म स्वरूपोऽहं ॥
उत्तम संयम धर्म स्वरूपोऽहं ॥
उत्तम तपो धर्म स्वरूपोऽहं।

उत्तम आकिंचन धर्म स्वरूपोऽहं ॥
उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म स्वरूपोऽहं ॥
स्वरूपाचरण चारित्र स्वरूपोऽहं।
वीतराग स्वसंवेदन स्वरूपोऽहं ॥

अरस- अगंध- अवर्ण- अस्पर्श स्वरूपोऽहं ॥
कर्म फल चेतना रहित स्वरूपोऽहं ॥
राग-द्वेष मोहादि रहित स्वरूपोऽहं ॥
शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूपोऽहं ॥
शुद्ध जीव पदार्थ स्वरूपोऽहं ॥
निजतत्त्व स्वरूपोऽहं ॥
बुद्धोऽहं ॥

चारित्राचार संपन्नोऽहं ॥
तपाचार संपन्नोऽहं ॥
अमूर्त स्वरूपोऽहं ॥
वीतराग स्वरूपोऽहं ॥
अतींद्रियसुख स्वरूपोऽहं।
ज्ञानार्णव स्वरूपोऽहं ॥
अष्टविध कर्म रहितोऽहं ॥
धर्मध्यान स्वरूपोऽहं ॥
शुक्लध्यान स्वरूपोऽहं।
आत्मध्यान स्वरूपोऽहं ॥
निर्दोषपरमात्म स्वरूपोऽहं ॥
अनन्तानन्त स्वरूपोऽहं ॥
उत्तम सत्य धर्म स्वरूपोऽहं ॥
उत्तम त्याग धर्म स्वरूपोऽहं ॥
पूर्ण ज्ञान घन स्वरूपोऽहं ॥
पूर्णनिंद स्वरूपोऽहं ॥
एकत्व विभक्त स्वरूपोऽहं ॥
ज्ञान चेतना स्वरूपोऽहं ॥
कर्म चेतना रहित स्वरूपोऽहं ॥
अबद्ध-अस्पृष्ट-स्वरूपोऽहं ॥

अशब्द स्वरूपोऽहं ॥
शुद्धोपयोग स्वरूपोऽहं ॥
शुद्धजीवतत्त्व स्वरूपोऽहं ॥
शुद्धोऽहं ॥
सोऽहं । सोऽहं । सोऽहं ॥



पखवाड़ा



दोहा

बानी एक नमों सदा, एक दरब आकाश ।
एक धर्म अधर्म दरब, 'पड़िवा' शुद्धि प्रकाश ।

चौपाई

दोज दु भेद सिद्ध संसार, संसारी त्रस-थावर धार ।
स्व-पर दया दोनों मन धरो, राग-दोष तजि समता करो ॥२॥

तीज त्रिपात्र दान नित भजो, तीन काल सामायिक सजो ।
व्यय-उत्पाद-धौव्य पद साध, मन-वच-तन थिर होय समाध ॥३॥

चौथ चार विधि दान विचार, चारयो आराधना सभार ।
मैत्री आदि भावना चार, चार बंध सों भिन्न निहार ॥४॥

पाँचें पञ्च लब्धि लहि जीव, भज परमेष्ठी पञ्च सदीव ।
पाँच भेद स्वाध्याय बखान, पाँचों पैताले पहचान ॥५॥

छठ छः लेश्या के परिनाम, पूजा आदि करो षट् काम ।
पुद्गल के जानो षट्-भेद, छहों काल लखिकै सुख वेद ॥६॥

सातै सात नरकनै डरो, सातों खेत धन जन सों भरो ।
सातों नय समझो गुणवंत, सात तत्त्व सरथा करि संता ॥७॥

आठैं आठ दरस के अङ्ग, ज्ञान आठ-विधि गहो अभंग ।
आठ-भेद पूजा जिनराय, आठ-योग कीजै मन लाय ॥८॥

नौमी शील बाडि नौ पाल, प्रायश्चित्त नौ-भेद संभाल ।
नौ हायिक गुण मन में राख, नौ कवाय की तज अभिलाख ॥९॥

दशमी दश पुद्गल परजाय, दशौं बंध हर चेतन राय ।
जनमत दश अतिशय जिनराज, दशविधि परिग्रह सों क्या काज ॥१०॥

ग्यारस ग्यारह भाव समाज, सब अहमिंदर ग्यारह राज ।
ग्यारह लोक सुर लोक मंझार, ग्यारह अंग पढँे मुनि सार ॥११॥

बारस बारह विधि उपयोग, बारह प्रकृति दोष का रोग ।
बारह चक्रवर्ति लख लेहु, बारह अविरत को तजि देह ॥१२॥

तेरस तेरह श्रावक थान, तेरह भेद मनुष पहचान ।
तेरह राग प्रकृति सब निंद, तेरह भाव अयोग जिनन्द ॥१३॥

चौदह चौदह पूरव जान, चौदह बाहिज-अंग बखान ।
चौदह अंतर-परिग्रह डार, चौदह जीव समास विचार ॥१४॥

मावस सम पन्द्रह परमाद, करम भूमि पंद्रह अनाद ।
पंच शरीर पंद्रह रूप, पंद्रह प्रकृति हरै मुनि भूप ॥१५॥

पूरनमासी सोलह ध्यान, सोलह स्वर्ग कहे भगवान ।
सोलह कषाय राहु घटाय, सोलह कला सम भावना भाय ॥१६॥

सब चर्चा की चर्चा एक, आतम आतम पर पर टेक ।
लाख कोटि-ग्रन्थन को सार, भेद-ज्ञान अरु दया विचार ॥१७॥

गुण विलास सब तिथि कही, हैं परमारथ रूप ।
पद सुनै जो मन धरै, उपजै जान अनूप ॥



श्री-गोम्मटेश्वर-स्तुति

विसद्गु कंदोद्गु दलाणुयारं, सुलोयणं चंद समाण तुण्डं
घोणाजियं चम्पय पुष्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥१॥

अन्वयार्थ : [सुलोयणं] जिनके उत्तम नेत्र [कंदोद्गु] नील कमल के [दलाणुयारं] पत्र (पंखुड़ी) के अनुशरण को [विसद्गु] छोड़ने वाले अर्थात् उससे भी सुन्दर हैं, [तुण्डं] मुख [चंद-समाण] चन्द्रमा के समान सौम्य तथा [घोणा] नासिका [चम्पय पुष्फसोहं] चम्पक पुष्प की शोभा को [जियं] जीती है (पराजित करती है), [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥१॥

अच्छाय-सच्छं जलकंत गंडं, आबाहु दोलंत सुकण्ण पासं
गइंद-सुण्डुज्जल बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥२॥

अन्वयार्थ : [जलकंत गंडं] जल के समान स्वच्छ कपोल [सुकण्ण पासं] कर्णपाश [आबाहु दोलंत] कंधो तक दोलयित हैं, [बाहुदण्डं] दोनों भुजाएँ [गइंद-सुण्डुज्जल] गजराज की सूँड के समान सुन्दर लम्बी हैं, [तं] उन [अच्छाय-सच्छं] आकाश के समान निर्मल [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥२॥

सुकण्ठ-सोहा जियदिव्व संखं, हिमालयुद्धाम विसाल कंधं
सुपेक्ख णिज्जायल सुट्ठुमज्जं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥३॥

अन्वयार्थ : [सुकण्ठ-सोहा] अद्वितीय कंठ की शोभा से जिन्होंने [दिव्व संखं] दिव्व (अनुपम) शंख की शोभा को [जिय] जीत लिया है, [यस्य कंधं] जिनका वक्ष स्थल [हिमालयुद्धाम] हिमालय की भाँति उत्त्रत [च] और [विसाल] विशाल है, [यस्य] जिनका [सुट्ठुमज्जं] सुन्दर मध्यभाग/ कटिप्रदेश [सुपेक्ख णिज्जायल] सम्यक् अवलोकनीय और अचल है, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥३॥

विज्ञाय लग्गे पविभासमाणं, सिहामणि सव्व-सुचेदियाणं
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥४॥

अन्वयार्थ : [विज्ञाय लग्गे] विंध्यगिरि के अप्रभाग में [पविभासमाणं] जो प्रकाशमान हो रहे हैं, [सव्व-सुचेदियाणं] सभी सुन्दर चैतों के [सिहामणि] शिखामणि तथा [तिलोय-संतोसय] तीन लोक के जीवों को आनंद देने में [पुण्णचंदं] जो पूर्ण चन्द्रमा है, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥४॥

लया-समकंत-महासरीरं, भव्वावलीलद्व सुकप्परुक्खं
देविंदविंदच्चिय पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥५॥

अन्वयार्थ : [लया-समकंत] लताओं से आक्रांत (जिनका) [महासरीर] विशाल शरीर है, [भव्वावलीलद्व] जो भव्य समूह के लिए प्राप्त [सुकप्परुक्खं] कल्पवक्ष के समान है तथा [देविंदविंदच्चिय] देवेंद्रों के द्वारा अर्चित जिनके [पायपोम्मं] पाद-पद्म (चरण कमल) हैं, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥५॥

दियंबरो जो ण भीइ जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥६॥

अन्वयार्थ : [दियंबरो जो] जो दिगंबर हैं, [च] और [ण भीइ जुत्तो] भययुक्त नहीं हैं अर्थात् निर्भय हैं, [ण च अंबरे] और न वस्त्रादि में [सत्तमणो] आसक्त मन वाले हैं [विसुद्धो] विशुद्ध हैं, [सप्पादि जंतुप्फुसदो] सप्पादि जंतुओं से स्पर्श होने पर भी [ण कंपो] कम्पायमान नहीं हैं अर्थात् अडोल-अकम्प हैं, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥६॥

आसां ण जो पोकखदि सच्छदिट्टी, सोकखे ण वंछा हयदोसमूलं
विराय भावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥७॥

अन्वयार्थ : [जो सच्छदिट्टी] जो स्वच्छ (सम) दृष्टि होने से [आसां] आशा तृष्णा को [ण पोकखदि] पुष्ट नहीं करते [हयदोसमूलं] दोषों का मूल (मोह) नाश करने में [सोकखे] जिनकी सुख में [ण वंछा] वंछा नहीं और [विराय भावं] विराग भाव होने से [भरहे] भरत में [विसल्लं] जो निशल्य हैं, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥७॥

उपाहि मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय-मोह-हारयं
वस्सेय पञ्जंतमुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥८॥

अन्वयार्थ : [उपाहि मुत्तं] जो उपाधि से रहित हैं, [धण-धाम] धन मकान आदि से [वज्जियं] रहित हैं, [सुसम्मजुत्तं] समता भाव सहित हैं तथा [मय-मोह-हारयं] मद मोह को हरने (नष्ट करने) वाले हैं, [वस्सेय पञ्जंतं] एक वर्ष पर्यन्त [उववास-जुत्तं] उपवास धारण करने वाले, [तं] उन [गोम्मटेसं] गोम्मट स्वामी को [णिच्चं] (मैं) नित्य [पणमामि] प्रणाम करता हूँ ॥८॥



श्रीजिनेन्द्रगुणसंस्तुति



श्रीपात्रकेसरिस्वामिकृत -- ईरवी सप्तमशताब्दी

पृष्ठीछन्दः

जिनेन्द्र ! गुणसंस्तुतिस्तव मनागपि प्रस्तुता
भवत्यखिलकर्मणं प्रहतये परं कारणम् ।
इति व्यवसिता मतिर्मम ततोऽहमत्यादरात्
स्फुटार्थनयपेशलां सुगत ! संविधास्ये स्तुतिम् ॥१॥
मतिः श्रुतमथवावधिश्च सहजं प्रमाणं हि ते
ततः स्वयमबोधि मोक्षपदवीं स्वयम्भूर्भवान् ।
न चैतदिह दिव्यचक्षुरधुनेक्ष्यतेऽस्मादशां
यथा सुकृतकर्मणं सकलराज्यलक्ष्यादयः ॥२॥
व्रतेषु परिरज्यसे निरूपमे च सौख्ये स्पृहा
बिभेष्यपि च संसृतेरसुभृतां वधं द्वेक्ष्यपि ।
कदाचिददयोदयो विगतचित्तकोऽप्यञ्जसा
तथाऽपि गुरुरिष्यसे त्रिभुवनैकबन्धुर्जिनः ॥३॥
तपः परमुपश्चितस्य भवतोऽभवत्केवलं
समस्तविषयं निरक्षमपुनश्च्युति स्वात्मजम् ।
निरावरणक्रमं व्यतिकरादपेतात्मकं
तदेव पुरुषार्थसारमभिसम्मतं योगिनाम् ॥४॥

परस्परविरोधवद्विविधभङ्गशाखाकुलं
पृथग्जनसुदुर्गमं तव निरर्थकं शासनम् ।
तथापि जिन ! सम्मतं सुविदुषां न चात्यद्भुतं
'भवन्ति हि महात्मनां दुरुदितान्यपि ख्यातये' ॥5॥

सुरेन्द्रपरिकल्पितं बृहदनर्घसिंहासनं
तथाऽतपनिवारणत्रयमथोल्लसच्चामरम् ।
वशं च भुवनत्रयं निरूपमा च निःसंगता
न संगतमिदं द्वयं त्वयि तथाऽपि संगच्छते ॥6॥

त्वमिन्द्रियविनिग्रहप्रवणनिष्ठुरं भाषसे
तपस्यपि यातयस्यनघदुष्करे संश्रितान् ।
अनन्यपरिदृष्ट्या षड्सुकायसंरक्षया ।

स्वनुग्रहपरोऽप्यहो ! त्रिभुवनात्मनां नापरः ॥7॥

ददास्यनुपमं सुखं स्तुतिपरेष्वतुष्यन्नपि
क्षिपस्यकुपितोऽपि च ध्रुवमसूयकान्दुर्गतौ ।
न चेश ! परमेष्ठिता तव विरुद्ध्यते यद्भवान्
न कुप्यति न तुष्यति प्रकृतिमाश्रितो मध्यमाम् ॥8॥

परिक्षणितकर्मणस्तव न जातु रागादयो
न चेन्द्रियविवृत्यो न च मनस्कृता व्यावृतिः ।
तथाऽपि सकलं जगद्युगपदंजसा वेत्सि च
प्रपश्यसि च केवलाभ्युदितदिव्यसच्चक्षुषा ॥9॥

क्षयाच्च रतिरागमोहभयकारिणां कर्मणं
कषायरिपुनिर्जयः सकलतत्त्वविद्योदयः ।
अनन्यसदृशं सुखं त्रिभुवनाधिपत्यं च ते
सुनिश्चितमिदं विभो ! सुमुनिसम्प्रदायादिभिः ॥10॥

न हीन्द्रियधिया विरोधि न च लिङ्गबुद्ध्या वचो
न चाप्यनुमतेन ते सुनय ! सप्तधा योजितम् ।
व्यपेतपरिशङ्कनं वितथकारणादर्शना-
दतोऽपि भगवंस्त्वमेव परमेष्ठितायाः पदम् ॥11॥

न लुब्ध इति गम्यसे सकलसङ्गसंन्यासतो
न चाऽपि तव मूढता विगतदोषवाग्यद्भवान् ।

अनेकविधरक्षणादसुभृतां न च द्वेषिता
निरायुधतयाऽपि च व्यपगतं तथा ते भयम् ॥12॥

यदि त्वमपि भाषसे वितथमेवमाप्तोऽपि सन्
परेषु जिन का कथा प्रकृतिलुब्धमुग्धादिषु ।
न चाऽप्यकृतकात्मिका वचनसंहतिर्द्वयते
पुनर्जननमप्यहो ! न हि विरुद्धते युक्तिभिः ॥13॥

सजन्मरणर्षिगोत्रचरणादिनामश्रुते-
रनेकपदंसहतिप्रतिनियामसन्दर्शनात् ।
फलार्थिपुरुषप्रवृत्तिविनिवृत्तिहेत्वात्मनां-
श्रुतेश्व मनुसूत्रवत्पुरुषकर्तृकैव श्रुतिः ॥14॥

स्मृतिश्व परजन्मनः स्फुटमिहेक्ष्यते कस्यचित्
तथाप्तवचनान्तरात्प्रसृतलोकवादादपि ।
न चाऽप्यसत उद्धवो न च सतो निमूलात्क्षयः
कथं हि परलोकिनामसुभृतामसत्तोह्यते ॥15॥

न चाऽप्यसदुदीयते न च सदेव वा व्यज्यते
सुराङ्गमदवत्तथा शिखिकलापवैचित्र्यवत् ।
क्वचिन्मृतकरन्धनार्थपिठरादिके नेक्ष्यते ।
कथं क्षितिजलादिसङ्गगुण इष्टते चेतना ॥16॥

प्रशान्तकरणं वपुर्विगतभूषणं चाऽपि ते
समस्तजनचित्तनेत्रपरमोत्सवत्वं गतम् ।

विनाऽयुधपरिग्रहाज्जिन ! जितास्त्वया दुर्जयाः
कषायरिपवो परैर्न तु गृहीतशस्त्रैरपि ॥17॥

धियान्तरतमार्थवद्भूतिसमन्वयान्वीक्षणात्
भवेत्खपरिमाणवत्कचिदिह प्रतिष्ठा परा ।

प्रहाणमपि दृश्यते क्षयवतो निमूलात्कचित्
तथाऽयमपि युज्यते ज्वलनवत्कषायक्षयः ॥18॥

अशेषविदिहेक्ष्यते सदसदात्मसामान्यवित्
जिन ! प्रकृतिमानुषोऽपि किमुताखिलज्ञानवान् ।
कदाचिदिह कस्यचित्कचिदपेतरागादिता
स्फुटं समुपलभ्यते किमुत ते व्यपेतैनसः ॥19॥

अशेषपुरुषादितत्वगतदेशनाकौशलं
त्वदन्यपुरुषान्तरानुचितमाप्ततालाञ्छनम् ।
कणादकपिलाक्षपादमुनिशाक्यपुत्रोक्तयः
सखलन्ति हि सुचक्षुरादिपरिनिश्चितार्थेष्वपि ॥20॥

परैरपरिणामकः पुरुष इष्टते सर्वथा
प्रमाणविषयादितत्वपरिलोपनं स्यात्ततः ।
कषायविरहान्न चाऽस्य विनिबन्धनं कर्मभिः
कुतश्च परिनिर्वृतिः क्षणिकरूपतायां तथा ॥21॥

मनो विपरिणामकं यदिह संसृतिं चाश्रुते
तदेव च विमुच्यते पुरुषकल्पना स्याद् वृथा ।
न चाऽस्य मनसो विकार उपपद्यते सर्वथा
ध्रुवं तदिति हीष्टते द्वितयवादिता कोपिनि ॥22॥

पृथग्जनमनोनुकूलमपरैः कृतं शासनं
सुखेन सुखमाप्यते न तपसेत्यवश्येन्द्रियैः ।
प्रतिक्षणविभङ्गुरं सकलसंस्कृतं चेष्टते ।
ननु स्वमतलोकलिङ्गपरिनिश्चितैर्व्याहितम् ॥23॥

न सन्ततिरनश्वरी न हि च नश्वरी नो द्विधा
वनादिवदभाव एव यत इष्टते तत्त्वतः ।
वृथैव कृषिदानशीलमुनिवन्दनादिक्रियाः
कथञ्चिदविनश्वरी यदि भवेत्प्रतिज्ञाक्षतिः ॥24॥

अनन्यपुरुषोत्तमो मनुजतामतीतोऽपि स-
मनुष्य इति शस्यसे त्वमधुना नरैर्बालिशैः ।
क्व ते मनुजगर्भिता क्व च विरागसर्वज्ञता
न जन्ममरणात्मता हि तव विद्यते तत्त्वतः ॥25॥

स्वमातुरिह यद्यपि प्रभव इष्टते गर्भतो
मलैरनुपसंप्लुतो वरसरोजपत्राऽम्बुवत् ।
हिताहितविवेकशून्यहृदयो न गर्भऽप्यभूः
कथं तव मनुष्यमात्रसदृशत्वमाशङ्क्यते ॥26॥

न मृत्युरपि विद्यते प्रकृतिमानुषस्येव ते
मृतस्य परिनिर्वृतिर्न मरणं पुनर्जन्मवत् ।

जरा च न हि यद्वपुर्विमलकेवलोत्पत्तिः
प्रभृत्यरुजमेकरूपमवतिष्ठते प्राङ्मृतेः ॥27॥

परः कृपणदेवकैः स्वयमसत्सुखैः प्रार्थते
सुखं युवतिसेवनादिपरसन्निधिप्रत्ययम् ।
त्वया तु परमात्मना न परतो यतस्ते सुखं
व्यपेतपरिणामकं निरुपमं ध्रुवं स्वात्मजम् ॥28॥

पिशाचपरिवारितः पितृवने नरीनृत्यते
क्षरद्रुधिरभीषणद्विरदकृत्तिहेलापटः ।
हरो हसति चायतं कहकहादृहासोल्बणं
कथं परमदेवतेति परिपूज्यते पण्डितैः ॥29॥

मुखेन किल दक्षिणेन पृथुनाऽखिलप्राणिनां
समत्ति शवपूतिमज्जरुधिरान्त्वमांसानि च ।
गणैः स्वसदृशैर्भृशं रतिमुपैति रात्रिन्दिवं
पिबत्यपि च यः सुरां स कथमाप्तताभाजनम् ॥30॥

अनादिनिधनात्मकं सकलतत्त्वसंबोधनं
समस्तजगदाधिपत्यमथ तस्य संतृप्तता ।
तथा विगतदोषता च किल विद्यते यन्मृषा
सुयुक्तिविरहान्न चाऽस्ति परिशुद्धतत्त्वागमः ॥31॥

कमण्डलुमृगाजिनाक्षवलयादिभिर्ब्रह्मणः
शुचित्वविरहादिदोषकलुषत्वमभ्यूह्यते ।
भयं विघृणता च विष्णुहरयोः सशस्त्रत्वतः
स्वतो न रमणीयता च परिमूढता भूषणात् ॥32॥

स्वयं सृजति चेत्प्रजाः किमिति दैत्यविधंसनं
सुदुष्टजननिग्रहार्थमिति चेदसृष्टिर्वरम् ।
कृतात्मकरणीयकस्य जगतां कृतिर्निष्फला
स्वभाव इति चेन्मृषा स हि सुदुष्ट एवाऽप्यते ॥33॥

प्रसन्नकुपितात्मनां नियमतो भवेदुःखिता
तथैव परिमोहिता भयमुपद्रतिश्वामयैः ।
तृषाऽपि च बुभुक्षया च न च संसृतिश्छिद्यते
जिनेन्द्र ! भवतोऽपरेषु कथमाप्तता युज्यते ॥34॥

कथं स्वयमुपद्रुताः परसुखोदये कारणं
स्वयं रिपुभयार्दिताश्च शरणं कथं बिभ्यताम् ।
गतानुगतिकैरहो त्वदपरत्र भक्तैर्जनैः
अनायतनसेवनं निरयहेतुरङ्गीकृतम् ॥35॥

सदा हननघातनाद्यनुमतिप्रवृत्तात्मनां
प्रदुष्टचरितोदितेषु परिहृष्टतां देहिनाम् ।
अवश्यमनुषज्यते दुरितबन्धनं तत्त्वतः
शुभेऽपि परिनिश्चितस्त्रिविधबन्धहेतुभवेत् ॥36॥

विमोक्षसुखचैत्यदानपरिपूजनाद्यात्मिकाः
क्रिया बहुविधासुभून्मरणपीडनाहेतवः ।
त्वया ज्वलितकेवलेन न हि देशिताः किं नु ताः
त्वयि प्रसृतभक्तिभिः स्वयमनुष्ठिताः श्रावकैः ॥37॥

त्वया त्वदुपदेशकारिपुरुषेण वा केनचित्
कथश्चिदुपदिश्यते स्म जिन ! चैत्यदानक्रिया ।
अनाशकविधिश्च केशपरिलुञ्चनं चाऽथवा
श्रुतादनिधनात्मकादधिगतं प्रमाणान्तरात् ॥38॥

न चासुपरिपीडिनं नियमतोऽशुभायेष्यते
त्वया न च शुभाय वा न हि च सर्वथा सत्यवाक् ।
न चाऽपि दमदानयोः कुशलहेतुतैकान्ततो
विचित्रनयभङ्गजालगहनं त्वदीयं मतम् ॥39॥

त्वयाऽपि सुखजीवनार्थमिह शासनं चेत्कृतं
कथं सकलसंग्रहत्यजनशासिता युज्यते ।
तथा निरशनार्द्ध-भुक्तिरसवर्जनाद्युक्तिभि-
जितेन्द्रियतया त्वमेव जिन इत्यभिष्ठां गतः ॥40॥

जिनेश्वर ! न ते मतं पटकवस्त्रपात्रग्रहो
विमृश्य सुखकारणं स्वयमशक्तकैः कल्पितः ।
अथायमपि सत्यप्रस्तव भवेद्यथा नग्नता
न हस्तसुलभे फले सति तरुः समारुह्यते ॥41॥

परिग्रहवतां सतां भयमवश्यमापद्यते
प्रकोपपरिहिंसने च परुषानृतव्याहती ।

ममत्वमथ चोरतो स्वमनसश्च विभ्रान्तता
कुतो हि कलुषात्मनां परमशुक्लसद्-ध्यानता ॥42॥

स्वभाजनगतेषु पेयपरिभोज्यवस्तुष्वमी
यदा प्रतिनिरीक्षतास्तनुभृतः सुसूक्ष्मात्मिकाः ।

तदा क्वचिदपोज्ज्ञने मरणमेव तेषां भवे-
दथाऽप्यभिनिरोधनं बहुतरात्मसंमूर्च्छनम् ॥43॥

दिगम्बरतया स्थिताः स्वभुजभोजिनो ये सदा
प्रमादरहिताशयाः प्रचुरजीवहत्यामपि ।

न बन्धफलभागिनस्त इति गम्यते येन ते
प्रवृत्तमनुबिभ्रति स्वबलयोग्यमद्याप्यमी ॥44॥

यथागमविहारिणामशनपानभक्ष्यादिषु
प्रयत्नपरचेतसामविकलेन्द्रियालोकिनाम् ।

कथञ्चिदसुपीडनाद्यदि भवेदपुण्योदय-
स्तपोऽपि वध एव ते स्वपरजीवसंतापनात् ॥45॥

मरुज्ज्वलनभूपयःसु नियमाक्षचिद्युज्यते
परस्परविरोधितेषु विगतासुता सर्वदा ।

प्रमादजनितागसां क्वचिदपोहनं स्वागमात्
कथं स्थितिभुजां सतां गगनवाससां दोषिता ॥46॥

परैरनघनिर्वृतिः स्वगुणतत्त्वविध्वंसनं
व्यघोषि कपिलादिभिश्च पुरुषार्थविभ्रंशनम् ।

त्वया सुमृदितैनसा ज्वलितकेवलौघश्रिया
ध्रुवं निरूपमात्मकं सुखमनन्तमव्याहतम् ॥47॥

निरन्वयविनश्वरी जगति मुक्तिरिष्टा परैः
न कश्चिदिह चेष्टते स्वव्यसनाय मूढेतरः ।

त्वयाऽनुगुणसंहतेरतिशयोपलब्ध्यात्मिका ।

स्थितिः शिवमयी प्रवचने तव ख्यापिता ॥48॥

इत्यपि गुणस्तुतिः परमनिवृतेः साधनी
भवत्यलमतो जनो व्यवसितश्च तत्काङ्क्षया ।

विरस्यति च साधुना रुचिरलोभलाभे सतां
मनोऽभिलषिताप्तिरेव ननु प्रयासावधिः ॥49॥

इति मम मतिवृत्या संहतिं त्वद्गुणाना-
मनिशममितशक्तिं संस्तुवानस्य भक्त्या ।
सुखमनघमनन्तं स्वात्मसंस्थं महात्मन् ।
जिन ! भवतु महत्या केवल श्रीविभूत्या ॥५०॥



रत्नाकर-पंचविंशतिका



श्री रत्नाकर सुरि विरचित स्तोत्र

हिन्दी पद्मानुवाद - कविश्री रामचरित उपाध्याय

श्रेयः श्रियां मङ्गलकेलिसद्मा, नरेन्द्रदेवेन्द्रनताङ्ग्निपद्मा ।
सर्वज्ञ ! सर्वातिशयप्रधान, चिरं जय ज्ञानकलानिधान ॥१॥

शुभ-केलि के आनंद के धन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से पूजित चरण गतकाम हो
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो सबसे सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में ॥१॥

जगत्क्षयाधार ! कृपावतार, दुर्वारसंसारविकारवैद्य ।
श्रीवीतराग ! त्वयि मुग्ध भावाद्विज्ञ, प्रभो ! विज्ञपयामि किञ्चित् ॥२॥

संसार-दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश ! रत्नाकरप्रभो ! अनुपम कृपा-अवतार हो
गतराग ! है विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिए,
क्योंकि प्रभो ! तुम विज्ञ हो, मुझको अभय वर दीजिए ॥२॥

किं बाललीलाकलितो न बालः, पित्रोः पुरो जल्पति निर्विकल्पः ।
तथा यथार्थं कथयामि नाथ, निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे ॥३॥

माता-पिता के सामने, बोली सुनाकर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्य-वश लीलावली
अपने हृदय के हाल को, त्यों ही यथोचित-रीति से,
मैं कह रहा हूँ आपके, आगे विनय से प्रीति से ॥३॥

दत्तं न दानं परिशीलितं तु, न शालि शीलं न तपोभितप्तम् ।
शुभो न भावोभ्यभवद् भवेऽस्मिन्, विभो ! मया भ्रान्तमहो मुधैव ॥४॥

मैंने नहीं जग में कभी कुछ, दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया
शुभ-भावनाएँ भी हुई, अब तक न इस संसार में,
मैं धूमता हूँ, व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि-धार में ॥४॥

दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दुष्टो, दुष्टेन लोभाख्यमहोरगेण ।
ग्रस्तोभिमानाजगरेण माया,-जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ॥५॥

क्रोधाग्नि से मैं रात-दिन हा! जल रहा हूँ है प्रभो !
मैं 'लोभ' नामक साँप से, काटा गया हूँ है विभो !

अभिमान के खल-ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भाँति हों स्मृत आप, माया-जाल से मैं व्यस्त हूँ ॥५॥

कृतं मयाऽमुत्र हितं न चेह - लोकेऽपि लोकेश ! सुखं न मेऽभूत् ।
अस्माद्शां केवलमेव जन्म, जिनेश ! जज्ञे भवपूरणाय ॥६॥

लोकेश! पर-हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, झींकता हूँ शोक में
जग में हमारे सम नरों का, जन्म ही बस व्यर्थ है,
मानो जिनेश्वर! वह भवों की, पूर्णता के अर्थ है ॥६॥

मन्ये मनो यन्त्र मनोज्ञवृत्तं, त्वदास्यपीयूषमयूखलाभात् ।
द्रुतं महानन्दरसं कठोर-मस्माद्शां देव ! तदश्मतोऽपि ॥७॥

प्रभु! आपने निज मुख-सुधा का, दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया
आनंद-रस में छूबकर, सदृश्वत वह होता नहीं,
है वज्र-सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही ॥७॥

त्वत्तः सुदुःप्रापमिदं मयाप्तं, रत्नत्रयं भूरिभवभ्रमेण ।
प्रमादनिद्रावशतो गतं तत्, कस्याग्रतो नायक ! पूत्करोमि ॥८॥

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहु-काल तक बहु-बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया
हा! खो गया वह भी विवश, मैं नींद आलस में रहा,
बतलाइये उसके लिए रोऊँ, प्रभो! किसके यहाँ? ॥८॥

वैराग्यरङ्गः परवञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्चनाय ।
वादाय विद्याऽध्ययनं च मेऽभूत्, कियद् ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश! ॥९॥

संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,
जग को रिझाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया
इगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊँ, है प्रभो! अपनी हँसी ॥९॥

परापवादेन मुखं सदोषं, नेत्रं परस्त्रीजनवीक्षणेन ।
चेतः परापायविचिन्तनेन, कृतं भविष्यामि कथं विभोऽहम् ॥१०॥

परदोष को कहकर सदा, मेरा वदन दूषित हुआ,
लखकर पराई नारियों को, हा नयन दूषित हुआ
मन भी मलिन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो!
किस भाँति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो! ॥१०॥

विडम्बितं यत्स्मरघस्मरार्त्ति-दशावशात्स्वं विषयान्धलेन ।
प्रकाशितं तद्वतो हियैव, सर्वज्ञ ! सर्वं स्वयमेव वेत्सि ॥११॥

मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुःख-राक्षसी
हा! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ! हो सब जानते, स्वयमेव संसृति की क्रिया ॥११॥

ध्वस्तोऽन्यमन्त्वैः परमेष्टिमन्त्वः, कुशास्त्रवाक्यैर्निर्हताऽगमोक्तिः ।
कर्तुं वृथा कर्म कुदेवसङ्गा,-दवाञ्छि ही नाथ मतिभ्रमो मे ॥१२॥

अन्यान्य मंत्रों से परम, परमेष्टि-मंत्र हटा दिया,
सच्चास्त्र-वाक्यों को कुशास्त्रों, से दबा मैं ने दिया

विधि-उदय को करने वथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
हे नाथ! यों भ्रमवश अहित, मैंने नहीं क्या-क्या किया ॥१२॥

विमुच्य दृग्लक्षणतं भवन्तं, ध्याता मया मूढधिया हृदन्तः ।
कटाक्ष-वक्षोज-गभीरनाभी,-कटीतटीयाः सुदृशां विलासाः ॥१३॥

हा! तज दिया मैंने प्रभो ! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञानवश मैंने किया, फिर देखिये किस पाप को
वामाक्षियों के राग में, रत हो सदा मरता रहा,
उनके विलासों के हृदय में, ध्यान को धरता रहा ॥१३॥

लोलेक्षणावक्तव्यनिरीक्षणेन, यो मानसे रागलवो विलग्रः ।
न शुद्धसिद्धान्तपयोधिमध्ये, धौतोऽप्यगत्तारक ! कारणं किम् ? ॥१४॥

लखकर चपल-दग-युवतियों, के मुख मनोहर रसमई,
जो मन-पटल पर राग भावों, की मलिनता बस गई
वह शास्त्र-निधि के शुद्ध जल से, भी न क्यों धोई गई,
बतलाइए यह आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई ॥१४॥

अनंग अङ्ग न चङ्गं न गणो गुणानां, न निर्मलः कोपि कलाविलासः ।
स्फुरत्प्रधानप्रभुता च कापि, तथाप्यहङ्कारकदर्थितोऽहम् ॥१५॥

मुझमें न अपने अंग के, सौन्दर्य का आभास है,
मुझमें न गुणगण हैं विमल, न कला-कलाप-विलास है
प्रभुता न मुझ में स्वप्न को, भी चमकती है देखिये,
तो भी भरा हूँ गर्व से, मैं मूढ़ हो किसके लिए ॥१५॥

आयुर्गालत्याशु न पापबुद्धि,-र्गतं वयो नो विषयाभिलाषः ।
यत्नश्च भैषज्यविधो शो न धर्मे, स्वामिन् ! महामोहविडम्बना मे ॥१६॥

हा! नित्य घटती आयु है, पर पाप-मति घटती नहीं,
आई बुद्धौती पर विषय से, कामना हटती नहीं
मैं यत्न करता हूँ दवा में, धर्म मैं करता नहीं,
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ! बच सकता नहीं ॥१६॥

नात्मा न पुण्यं न भवो न पापं, मया विटानां कटुगीरपीयम् ।
अधारि कर्णे त्वयि केवलार्के, पुरिः परि स्फुटे सत्यपि देव ! धिग्माम् ॥१७॥

अघ-पुण्य को, भव-आत्म को, मैंने कभी माना नहीं,
हा! आप आगे हैं खड़े, दिननाथ से यद्यपि यहीं
तो भी खलों के वाक्यों को, मैंने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म हीं मानों वृथा ॥१७॥

न देवपूजा न च पात्रपूजा, न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः ।
लब्ध्वापि मानुष्यमिदं समस्तं, कृतं मया ऽरण्यविलापतुल्यम् ॥१८॥

सत्यात्र-पूजन देव-पूजन कुछ नहीं मैंने किया,
मुनिधर्म-श्रावकधर्म का भी, नहि सविधि पालन किया
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वन में, व्यर्थ ही रोता रहा ॥१८॥

चक्रे मया ऽसत्स्वपि कामधेनु - कल्पद्रुचिन्तामणिषु स्पृहार्त्तिः ।
न जैनधर्मे स्फुटशर्मदेऽपि, जिनेश ! मे पश्य विमूढभावम् ॥१९॥

प्रत्यक्ष सुखकर जिन-धरम, मैं प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ! मेरी देखिये, है मूढ़ता भारी यहीं

हा! कामधुक कल्पद्रूमादिक, के यहाँ रहते हुए,
हमने गँवाया जन्म को, धिक्कार दुःख सहते हुए ॥१९॥

सद्दोगलीला न च रोगकीला, धनागमो नो निधनागमश्व ।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते, व्यचिन्ति नित्यं मयकाऽधमेन ॥२०॥

मैंने न रोका रोग-दुःख, संभोग-सुख देखा किया,
मनमें न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ ही लेखा किया
हा! मैं अधम युवती-जनों, का ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागार से, मन में न मैं डरता रहा ॥२०॥

स्थितं न साधोरह्यदि साधुवृत्त्या, परोपकारात्र यशोऽर्जितं च ।
कृतं न तीर्थद्वरणादि कृत्यं, मया मुधा हारितमेव जन्म ॥२१॥

सद्वृत्ति से मन में न, मैंने साधुता ही साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता
शुभ तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाये नहीं,
नर-जन्म पारस-तुल्य निज मैंने गँवाये व्यर्थ ही ॥२१॥

वैराग्यरङ्गो न गुरुदितेषु, न दुर्जनानां वचनेषु शान्तिः ।
नाध्यात्मलेशो मम कोपि देव !, तार्यः कथङ्गारमयं भवाब्धिः ॥२२॥

शास्त्रोक्त-विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं,
खल-वाक्य भी गतक्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें, है न कोई सत्कला,
फिर देव! कैसे यह भवोदधि, पार होवेगा भला? ॥२२॥

पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्य,- मागामिजन्मन्यपि नो करिष्ये ।
यदीद्वशोऽहं मम तेन नष्टा, भूतोद्भवद्वाविभवत्रयीश ! ॥२३॥

सत्कर्म पहले-जन्म में, मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्य में, उसको करूँगा मैं कहीं
इस भाँति का यदि हूँ जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हों
संसार में फिर जन्म तीनों, क्यों न मेरे नष्ट हों? ॥२३॥

किं वा मुधाऽहं बहुधा सुधाभुक् - पूज्य ! त्वदग्रे चरितं स्वकीयं ।
जल्पामि यस्मात् त्रिजगत्स्वरूप - निरूपकस्त्वं कियदेतदत्र ॥२४॥

हे पूज्य! अपने चरित को, बहुभाँति गाँऊँ क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी, है पापमय मेरी कथा
क्योंकि त्रिजग के रूप हो, तुम ईशा, हो सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो तुम्हीं, मम चित्त के मर्मज्ञ हो ॥२४॥

दीनोद्धारधुरन्धरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर ! तथाप्येतां न याचे श्रियम् ।
किंत्वर्हन्त्रिदमेव केवलमहो सद्बोधिरत्नं शिवं,
श्रीरत्नाकर ! मङ्गलैकनिलय ! श्रेयस्करं प्रार्थये ॥२५॥

दीनोद्धारक धीर हे प्रभु! आप-सा नहीं अन्य है,
कृपा-पात्र भी नाथ! न, मुझ-सा कहीं अवर है
तो भी माँगूँ नहीं धान्य धन कभी भूलकर,
अर्हन्! प्राप्त होवे केवल, बोधिरत्न ही मंगलकर ॥२५॥

(दोहा)



भूपाल-पंचविंशतिका



मूल संस्कृत-काव्य कवि भूपाल 11-12वीं शताब्दी

हिंदी अनुवाद- कवि श्री भूषरदास

दोहा

सकल सुरासुर-पूज्य नित, सकलसिद्धि-दातार
जिन-पद वंदूँ जोर कर, अशरन-जन-आधार ॥

बौपाई

श्री सुख-वास-मही कुलधाम, कीरति-हर्षण-थल अभिराम
सरसुति के रतिमहल महान्, जय-जुवती को खेलन-थान
अरुण वरण वाँछित वरदाय, जगत्-पूज्य ऐसे जिन पाय
दर्शन प्राप्त करे जो कोय, सब शिवनाथ सो जन होय ॥१॥

निर्विकार तुम सोम शरीर, श्रवण सुखद वाणी गम्भीर
तुम आचरण जगत् में सार, सब जीवन को है हितकार
महानिंद भव मारु देश, तहाँ तुंग तरु तुम परमेश
सघन-छाँहि-मंडित छवि देत, तुम पंडित सेवें सुख-हेत ॥२॥

गर्भकूपतें निकस्यो आज, अब लोचन उघरे जिनराज
मेरो जन्म सफल भयो अबै, शिवकारण तुम देखे जबै
जग-जन-नैन-कमल-वनखंड, विकसावन शशि शोक विहंड
आनंदकरन प्रभा तुम तणी, सोई अमी झरन चाँदणी ॥३॥

सब सुरेन्द्र शेखर शुभ रैन, तुम आसन तट माणक ऐन
दोऊँ दुति मिल झलकें जोर, मानों दीपमाल दुहँ ओर

यह संपति अरु यह अनचाह, कहाँ सर्वज्ञानी शिवनाह
ता तें प्रभुता है जगमाँहिं, सही असम है संशय नाहिं ॥४॥

सुरपति आन अखंडित बहै, तृण जिमि राज तज्यो तुम वहै
जिन छिन में जगमहिमा दली, जीत्यो मोहशत्रु महाबली
लोकालोक अनंत अशेख, कीनो अंत ज्ञानसों देख
प्रभु-प्रभाव यह अद्भुत सबै, अवर देव में भूल न फबै ॥५॥

पात्रदान तिन दिन-दिन दियो, तिन चिरकाल महातप कियो
बहुविध पूजाकारक वही, सर्व शील पाले उन सही
और अनेक अमल गुणरास, प्रापति आय भये सब तास
जिन तुम सरधा सों कर टेक ,दग-वल्लभ देखे छिन एक ॥६॥

त्रिजग-तिलक तुम गुणगण जेह, भवन-भुजंग-विषहर-मणि तेह
जो उर-कानन माँहि सदीव, भूषण कर पहरे भवि-जीव
सोई महामती संसार, सो श्रुतसागर पहुँचे पार
सकल-लोक में शोभा लहैं, महिमा जाग जगत् में वहै ॥७॥

दोहा

सुर-समूह ढोरें चमर, चंदकिरण-दयुति जेम
नवतन-वधू-कटाक्षतें, चपल चलैं अति एम
छिन-छिन ढलकें स्वामि पर, सोहत ऐसो भाव
किधौं कहत सिधि-लच्छि सों, जिनपति के ढिंग आव ॥८॥

चौपाई छन्द १५ मात्रा

शीश छत्र सिंहासन तलै, दिपै देह दुति चामर ढुरैं
बाजे दुंदुभि बरसैं फूल, ढिंग अशोक वाणी सुखमूल
इहविधि अनुपम शोभा मान, सुर-नर सभा पदमनी भान
लोकनाथ वंदें सिरनाय, सो हम शरण होहु जिनराय ॥९॥

सुर-गजदंत कमल-वन-माँहि, सुरनारी-गण नाचत जाँहि
बहुविधि बाजे बाजै थोक, सुन उछाह उपजै तिहुँलोक
हर्षत हरि जै जै उच्वरै, सुमनमाल अपछर कर धरै
यों जन्मादि समय तुम होय, जयो देव देवागम सोय ॥१०॥

तोष बढ़ावन तुम मुखचंद, जन नयनामृत करन अमंद
सुन्दर दुतिकर अधिक उजास, तीन भुवन नहिं उपमा तास
ताहि निरखि सनयन हम भये, लोचन आज सुफल कर लये
देखन-योग जगत् में देख, उमग्यो उर आनंद-विशेष ॥११॥

कैयक यों मानै मतिमंद, विजित-काम विधि-ईश मुकंद
ये तो हैं वनिता-वश दीन, काम-कटक-जीतन-बलहीन
प्रभु आगै सुर-कामिनि करै, ते कटाक्ष सब खाली परै
यातै मदन-विध्वंसन वीर, तुम भगवंत और नहिं धीर ॥१२॥

दर्शन-प्रीति हिये जब जगी, तबै आम्र-कोपल बहु लगी
तुम समीप उठ आवन ठयो, तब सों सघन प्रफुल्लित भयो ॥
अबहुँ निज नैनन ढिंग आय, मुख मयंक देख्यो जगराय
मेरो पुन्य विरख इहबार, सुफल फल्यो सब सुखदातार ॥१३॥

दोहा

त्रिभुवन-वन में विस्तरी, काम-दावानल जोर
वाणी-वरषाभरण सों, शांति करहु चहुँ ओर
इंद्र मोर नाचै निकट, भक्ति भाव धर मोह
मेघ सघन चौबीस जिन, जैवंते जग होय ॥१४॥

चौपाई

भविजन-कुमुदचंद सुखदैन, सुर-नरनाथ प्रमुख-जग जैन
ते तुम देख रमै इह भाँत, पहुप गेह लह ज्यों अलि पाँत ॥
सिर धर अंजुलि भक्ति समेत, श्रीगृह प्रति परिदक्षण देत

शिवसुख की सी प्रापति भई, चरण छाँहसों भव-तप गई ॥१५॥

वह तुम-पद-नख-दर्पण देव, परम पूज्य सुन्दर स्वयमेव
तामें जो भवि भाग विशाल, आनन अवलोकै चिरकाल
कमला की रति काँति अनूप, धीरज प्रमुख सकल सुखरूप
वे जग मंगल कौन महान्, जो न लहै वह पुरुष प्रधान ॥१६॥

इंद्रादिक श्रीगंगा जेह, उत्पति थान हिमाचल येह
जिन-मुद्रा-मंडित अति-लसै, हर्ष होय देखे दुःख नसै
शिखर ध्वजागण सोहैं एम, धर्म सुतरुवर पल्लव जेम
यों अनेक उपमा-आधार, जयो जिनेश जिनालय सार ॥१७॥

शीस नवाय नमत सुरनार, केश-कांति-मिश्रित मनहार
नख-उद्घोत-वरतैं जिनराज, दशदिश-पूरित किरण-समाज
स्वर्ग-नाग-नर नायक संग, पूजत पाय-पद्म अतुलंग
दुष्ट कर्मदल दलन सुजान, जैवंतो वरतो भगवान् ॥१८॥

सो कर जागै जो धीमान, पंडित सुधी सुमुख गुणगान
आपन मंगल-हेत प्रशस्त, अवलोकन चाहैं कछु वस्त ॥
और वस्तु देखें किस काज, जो तुम मुख राजै जिनराज
तीन-लोक को मंगल-थान, प्रेक्षणीय तिहुँ जग-कल्यान ॥१९॥

धर्मोदय तापस-गृह कीर, काव्यबंध वन पिक तुम वीर
मोक्ष-मल्लिका मधुप रसाल, पुन्यकथा कज सरसि मराल
तुम जिनदेव सुगुण मणिमाल, सर्व-हितंकर दीनदयाल
ताको कौन न उन्नतकाय, धरै किरीट-मांहि हर्षाय ॥२०॥

केर्इ वाँछैं शिवपुर-वास, केर्इ करैं स्वर्ग सुख आस
पचै पंचानल आदिक ठान, दुःख बँधै जस बँधै अयान
हम श्रीमुख-वानी अनुभवैं, सरधा पूरव हिरदै ठवैं
तिस प्रभाव आनंदित रहैं, स्वर्गादि सुख सहजे लहैं ॥२१॥

होन महोच्छव इन्द्रन कियो, सुरतिय मिल मंगल पढ़ लियो
सुयश शरद-चंद्रोपम सेत, सो गंधर्व गान कर लेत ॥
और भक्ति जो जो जिस जोग, शेष सुरन कीनी सुनियोग
अब प्रभु करैं कौन-सी सेव, हम चित भयो हिंडोला एव ॥२२॥

जिनवर-जन्मकल्यानक द्योस, इंद्र आप नाचै खो होस
पुलकित अंग पिता-घर आय, नाचत विधि में महिमा पाय
अमरी बीन बजावै सार, धरी कुचाग्र करत झँकार
इहिविधि कौतुक देख्यो जबै, औसर कौन कह सकै अबै ॥२३॥

श्रीपति-बिंब मनोहर एम, विकसत वदन कमलदल जेम
ताहि हेर हरखे दग दोय, कह न सकूँ इतनो सुख होय
तब सुर-संग कल्यानक-काल, प्रगटरूप जोवै जगपाल
इकट्क दृष्टि एक चितलाय, वह आनंद कहा क्यों जाय ॥२४॥

देख्यो देव रसायन-धाम, देख्यो नव-निधि को विसराम
चिंतारयन सिद्धिरस अबै, जिनगृह देखत देखे सबै
अथवा इन देखे कछु नाहिं, यम अनुगामी फल जगमाँहिं
स्वामी सर्यो अपूरव काज, मुक्ति समीप भई मुझ आज ॥२५॥

अब विनवै 'भूपाल' नरेश, देखे जिनवर हरन कलेश
नेत्र कमल विकसे जगचंद्र, चतुर चकोर करण आनंद
थुति जलसों यों पावन भयो, पाप-ताप मेरो मिट गयो
मो चित है तुम चरणन-माहिं, फिर दर्शन हूज्यो अब जाहिं ॥२६॥

छप्य छन्द

इहिविधि बुद्धिविशाल राय भूपाल महाकवि
कियो ललित-थुति-पाठ हिये सब समझ सकै नवि
टीका के अनुसार अर्थ कछु मन में आयो

कहीं शब्द कहिं भाव जोड़ भाषा जस गायो
आतम पवित्र-कारण किमपि, बाल-ख्याल सो जानियो
लीज्यो सुधार 'भूधर' तणी, यह विनती बुध मानियो ॥२७॥



सच्चा-जैन

ज्ञानी जैन उन्हीं को कहते, आतम तत्त्व निहारे जो ।
ज्यों का त्यों जाने तत्त्वों को, ज्ञायक में चित्त धारे जो ॥१॥

सच्चे देव शास्त्र गुरुवर की, परम प्रतीति लावे जो ।
वीतराग विज्ञान परिणति सुख का मूल विचारे जो ॥२॥

नहीं मिथ्यात्व अन्याय अनीति, सप्त व्यसन के त्यागी जो ।
पूर्ण प्रामाणिक सहज अहिंसक निर्मल जीवन धारी जो ॥३॥

पापों में तो लिप्त न होवें, पुण्य भलो नहीं माने जो ।
पर्याय को ही स्वभाव न जाने, नहीं ध्रुवदृष्टि विसारे जो ॥४॥

भेद-ज्ञान की निर्मल धारा, अंतर मांहि बढ़ावे जो ।
इष्ट-अनिष्ट न कोई जग में, निज मन मांहि विचारे जो ॥५॥

स्वानुभूति बिन परिणति सूनी, राग जहर सम जाने जो ।
निज में ही स्थिरता का सम्यक पुरुषार्थ बढ़ावे जो ॥६॥

करता भोक्ता भाव न मेरे, ज्ञान स्वभाव ही जाने जो ।
स्वयं त्रिकाल शुद्ध आनंदमय निष्क्रिय तत्त्व चितारे जो ॥७॥

रहे अलिप्त जलज ज्यों जल में, नित्य निरंजन ध्यावे जो ।
'आत्मन' अल्प-काल में मंगल सूप फार्म पद पावे जो ॥८॥





सरस्वती-वंदना

**सरस्सदी-पसादेयण, कव्वं कुव्वंति माणवा ।
तम्हा पिच्चल-भावेण, पूयणीय सरस्सदी ॥१॥**

अन्वयार्थ : सर्वज्ञ परमात्मा के श्रीमुख से समुत्पन्न जो 'भारती' (सरस्वती) है, वह अनेक भाषामय है। वह अज्ञानरूपी अंधकार का विनाश करती है तथा अनेक प्रकार की विद्याओं का बहुविध प्रकाशन करती है।

**सव्वण्हु-मुहुप्पण्णा, जा भारदी बहुभासिणी ।
अण्णाण-तिमिरं हंति, विज्ञा-बहुविगासिणी ॥२॥**

अन्वयार्थ : सर्वज्ञ परमात्मा के श्रीमुख से समुत्पन्न जो 'भारती' (सरस्वती) है, वह अनेक भाषामय है। वह अज्ञानरूपी अंधकार का विनाश करती है तथा अनेक प्रकार की विद्याओं का बहुविध प्रकाशन करती है।

**सरस्दी मए दिठ्ठा, दिव्या कमललोयणा ।
हंसकखधं - समारूढा, वीणा-पुत्थगधारिणी ॥३॥**

अन्वयार्थ : सरस्वती मेरे द्वारा देखी गयी है, वह दिव्य आकृतिवाली एवं १कमल-सदृश औँखोंवाली, २हंस के स्कन्ध पर आरुढ़ तथा ३वीणा एवं ४पुस्तक को धारण किये हुये है।

१कमल निर्लिप्तता का प्रतीक
२'हंस' नीर-क्षीरन्याय का प्रतीक,
३'वीणा' यथावत् कथन का प्रतीक
४'पुस्तक' ज्ञानानिधि का प्रतीक

**पद्मं भारदी णाम, विदियं च सरस्सदी ।
तदियं सारदादेवी, चदुत्थं हंसगामिणी ॥४॥**

अन्वयार्थ : सरस्वती का प्रथम नाम भारती है, दूसरा नाम 'सरस्वती' है, तीसरा नाम 'शारदा देवी' है और चौथा नाम 'हंसगामिनी' है।

**पंचमं विदुसां मादा, छठुं वागिस्सरी तहा ।
कुमारी सत्तमं उत्तं, अठुमं बंभचारिणी ॥५॥**

अन्वयार्थ : पाँचवाँ नाम 'विद्वन्माता' है, छठवाँ नाम 'वागीश्वरी' है, सातवाँ नाम 'कुमारी' है, और आठवाँ नाम 'ब्रह्मचारिणी' है।

**एवमं च जगम्मादा, दसमं बंभणी तहा ।
एगारसं च बंभाणी, बारसं वरदा हवे ॥६॥**

अन्वयार्थ : नवमा नाम 'जगन्माता' है, दसवाँ नाम 'ब्रह्मणी', ग्यारहवाँ नाम 'ब्राह्मणी' है तथा बारहवाँ नाम 'वरदा' (वरदायिनी) है।

**वाणी या तेरसं णाम, भासा चेव चदुद्दसं ।
पंचदसां सुददेवी, सोलहं गो वि भण्णदे ॥७॥**

अन्वयार्थ : उनका तेरहवाँ नाम 'वाणी' है, चौदहवाँ नाम 'भासा' है, पन्द्रहवाँ नाम 'श्रुतदेवी' है तथा सोलहवाँ नाम 'गो' भी कहा जाता है।

**एदाणि सुद-णामाणि, पच्चूसे जो पदिज्जाद ।
तस्स संतुदुदि मादा, सारदा वरदा हवे ॥८॥**

अन्वयार्थ : इस श्रुत (सरस्वती) की नामवलि को 'प्रत्युष' काल में जो पढता है, उस पर माँ सरस्वती वरदायिनी होकर प्रसन्न होती है।

सरस्सदि! णमो तुम्हं, वरदे कामरूपिणी। विज्ञारंभं करिस्सामि, सिद्धी हवदु में सया ॥९॥

अन्वयार्थ : हे सरस्वती! तुम्हें नमस्कार है, तुम वर देने वाली एवं कामरूपिणी हो (मैं आपका स्मरण करके) विद्याध्यन आरम्भ करता हूँ मुझे सदा सिद्ध (ज्ञानाप्राप्ति) हो ।



छहढाला

पहली ढाल



पण्डित द्यानतरायजी कृत

सोरठा

ओंकार मंज्ञार, पंच परम पद वसत हैं
तीन भुवन में सार, वन्दू मन वच काय कर ॥१॥
अक्षर ज्ञान न मोहि, छन्द-भेद समझूँ नहीं
मति थोड़ी किम होय, भाया अक्षर बावनी ॥२॥
आतम कठिन उपाय, पायो नर भव क्यों तजे
राई उदधि समाय, फिर हूँडे नहिं पाइये ॥३॥
इह विध नर भव कोय, पाय विषय सुख में रमै
सो शठ अमृत खोय, हालाहल विष को पिये ॥४॥
ईश्वर भाखो येह, नर भव मत खोओ वृथा
फिर न मिलै यह देह, पछतावो बहु होयगो ॥५॥
उत्तम नर अवतार, पायो दुख कर जगत में
यह जिय सोच विचार, कुछ टोसा संग लीजिये ॥६॥
ऊरध गति को बीज, धर्म न जो मान आचरैं
मानुष योनि लहीज, कूप पड़े कर दीप ले ॥७॥
ऋषिवर के सुन बैन, सार मनुज सब योनि में
ज्यों मुख ऊपर नैन, भानु दिपै आकाश में ॥८॥

द्वासरी ढाल

चाल छंद

रे जिय यह नरभव पाया, कुल जाति विमल तू आया
जो जैनधर्म नहिं धारा, सब लाभ विषयसंग हारा ॥९॥

लखि बात हृदय गह लीजे, जिनकथित धर्म नित कीजे
 भव दुख सागर को वरिये, सुख से नवका ज्यों तरिये ॥२॥
 ले सुधि न विषय रस भरिया, भ्रम मोह ने मोहित करिया
 विधि ने जब दई घुमरिया, तब नरक भूमि तू परिया ॥३॥
 अब नर कर धर्म अगाऊ, जब लों धन यौवन चाऊ
 जब लों नहिं रोग सतावै, तोहि काल न आवन पावै ॥४॥
 ऐश्वर्य रु आश्रित नैना, जब लों तेरी वष्टि फिरै ना
 जब लों तेरी वष्टि सवाई, कर धर्म अगाऊ भाई ॥५॥
 ओस बिंदु त्यों योवन जैहे, कर धर्म जरा पुन यै है
 ज्यों बूढ़ो बैल थकै है, कछु कारज कर न सकै है ॥६॥
 औ छिन संयोग वियोगा, छिन जीवन छिन मृत्यु रोगा
 छिन में धन यौवन जावै, किस विधि जग में सुख पावै ॥७॥
 अंबर धन जीवन येहा, गज-करण चपल धन देहा
 तन दर्पण छाया जानो, यह बात सभी उर आनौ ॥८॥

तीसरी ढाल

रोला छंद

आ यम ले नित आयु, क्यों न धर्म सुनिजै
 नयन तिमिर नित हीन, आसन यौवन छीजै ॥
 कमला चले नहिं पैंड, मुख ढाकैं परिवारा
 देह थकैं बहु पोष, क्यों न लखै संसारा ॥१॥
 छिन नहिं छोड़े काल, जो पाताल सिधारै
 वसे उदधि के बीच, जो बहु दूर पधारै ॥
 गण-सुर राखै तोहि, राखै उदधि-मथैया
 तोहु तजै नहिं काल, दीप पतंग ज्यों पड़िया ॥२॥
 घर गौ सोना दान, मणि औषधि सब यों ही
 यंत्र मंत्र कर तंत्र, काल मिटै नहिं क्यों ही ॥
 नरक तनो दुख भूर, जो तू जीव सम्हारे
 तो न रुचै आहार, अब सब परिग्रह डारै ॥३॥
 चेतन गर्भ मंझार, वसिके अति दुख पायो
 बालपने को ख्याल, सब जग प्रगटहि गायो ॥

छिन में तन को सोच, छिन में विरह सतावै
छिन में इष्ट वियोग, तरुण कौन सुख पावै ॥४॥

चौथी ढाल

अडिल्ल छंद

जरापने जो दुख सहे, सुन भाईरे
सो क्यों भूले तोहि, चेत सुन भाईरे
जो तू विषयों से लगा, सुन भाईरे
आतम सुधि नहिं तोहि, चेत सुन भाईरे ॥१॥

झूठ वचन अघ ऊपजै, सुन भाईरे
गर्भ बसो नवमास, चेत सुन भाईरे
सम धातु लहि पाप से, सुन भाईरे
अबहू पाप रताय, चेत सुन भाईरे ॥२॥

नहीं जरा गदआय है, सुन भाईरे
कहाँ गये यम यक्ष वे, सुन भाईरे
जे निश्चिन्ति हो रह्यो, सुन भाईरे
सो सब देख प्रत्यक्ष, चेत सुन भाईरे ॥३॥

टुक सुख को भवदधि पड़े, सुन भाईरे
पाप लहर दुखदाय, चेत सुन भाईरे
पकड़ो धर्म जहाज को, सुन भाईरे
सुख से पार करेय, सुन भाईरे ॥४॥

ठीक रहे धन सास्वतो, सुन भाईरे
होय न रोग न काल, चेत सुन भाईरे
उतम धर्म न छोड़िये, सुन भाईरे
धर्म कथित जिन धार, चेत सुन भाईरे ॥५॥

डरपत जो परलोक से, सुन भाईरे
चाहत शिव सुखसार, चेत सुन भाईरे
क्रोध लोभ विषयन तजो, सुन भाईरे
कोटि कटै अघजाल, चेत सुन भाईरे ॥६॥

ढील न कर आरम्भ तजो, सुन भाईरे
आरम्भ में जिय घात, चेत सुन भाईरे

जीवधात से अघ बढें, सुन भाईरे
 अघ से नरक लहात, चेत सुन भाईरे ॥७॥
 नरक आदि त्रैलोक्य में, सुन भाईरे
 ये परभव दुख राशि, चेत सुन भाईरे
 सो सब पूरब पाप से, सुन भाईरे
 सबहि सहै बहु त्रास, चेत सुन भाईरे ॥८॥

पाँचवीं ढाल

रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥टेक॥
 तिहुँ जग में सुर आदि दे जी, सो सुख दुर्लभ सार,
 सुन्दरता मन-मोहनी जी, सो है धर्म विचार
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥१॥
 थिरता यश सुख धर्म से जी, पावत रत्न भंडार,
 धर्म बिना प्राणी लहै जी, दुःख अनेक प्रकार
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥२॥
 दान धर्म ते सुर लहै जी, नरक लहै कर पाप,
 इह विधि नर जो क्यों पड़े जी, नरक विषैं तू आप
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥३॥
 धर्म करत शोभा लहै जी, हय गय रथ वर साज,
 प्रासुक दान प्रभाव ते जी, घर आवे मुनिराज
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥४॥
 नवल सुभग मन मोहनाजी, पूजनीक जग मांहि,
 रूप मधुर बच धर्म से जी, दुख कोई व्यापै नाहिं
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥५॥
 परमारथ यह बात है जी, मुनि को समता सार,
 विनय मूल विद्यातनी जी, धर्म दया सरदार
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥६॥
 फिर सुन करुणा धर्ममय जी, गुरु कहिये निर्गन्थ,
 देव अठारह दोष बिन जी, यह श्रद्धा शिव-पंथ
 रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥७॥
 बिन धन घर शोभा नहीं जी, दान बिना पुनि गेह,

जैसे विषयी तापसी जी, धर्म दिया बिन नेह
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥८॥

छठी ढाल

दोहा

भोंदू धनहित अघ करे, अघ से धन नहिं होय
धरम करत धन पाइये, मन वच जानो सोय ॥१॥
मत जिय सोचे चिंतवै, होनहार सो होय
जो अक्षर विधना लिखे, ताहि न मेटे कोय ॥२॥
यद्यपि द्रव्य की चाह में, पैठै सागर मांहि
शैल चढ़े वश लाभ के, अधिको पावै नाहिं ॥३॥
रात-दिवस चिंता चिता, मांहि जले मत जीव
जो दीना सो पायगा, अधिक न मिलै सदीव ॥४॥
लागि धर्म जिन पूजिये, सत्य कहैं सब कोय
चित प्रभु चरण लगाइये, मनवांछित फल होय ॥५॥
वह गुरु हों मम संयमी, देव जैन हो सार
साधर्मी संगति मिलो, जब लों हो भव पार ॥६॥
शिव मारग जिन भाषियो, किंचित जानो सोय
अंत समाधी मरण करि, चहुँगति दुख क्षय होय ॥७॥
षट्टिथि सम्यक् जो कहै, जिनवानी रुचि जास
सो धन सों धनवान है, जन में जीवन तास ॥८॥
सरधा हेतु हृदय धरै, पढ़ै सुनै दे कान
पाप कर्म सब नाश के, पावै पद निर्वाण ॥९॥
हित सों अर्थ बताइयो, सुथिर बिहारी दास
सत्रहसौ अठानवे, तेरस कार्तिक मास ॥१०॥
क्षय-उपशम बलसों कहै, धानत अक्षर येह
देख सुबोध पचासका, बुधिजन शुद्ध करेहु ॥११॥
त्रेपन क्रिया जो आदरै, मुनिगण विंशत आठ
हृदय धरैं अति चाव सो, जारैं वसु विधि काठ ॥१२॥
ज्ञानवान जैनी सबै, बसैं आगरे मांहि
साधर्मी संगति मिले, कोई मूरख नाहिं ॥१३॥





छहठाला

ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य और जीवों की इच्छा



जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहें दुःखतै भयवंत
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥१॥

अन्वयार्थ : [त्रिभुवन में] तीनों लोकों में [जे] जो [अनन्त] अनन्त [जीव] प्राणी हैं [वे] [सुख] सुख की [चाहें] इच्छा करते हैं और [दुखतैं] दुःख से [भयवन्त] डरते हैं [तातैं] इसलिये [गुरु] आचार्य [करुणा] दया [धार] करके [दुःखहारी] दुःख का नाश करनेवाली और [सुखकार] सुख को देनेवाली [सीख] शिक्षा [कहैं] कहते हैं।

गुरु-शिक्षा सुनने का आदेश तथा संसार-परिभ्रमण का कारण



ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥२॥

अन्वयार्थ : [भवि] हे भव्यजीवों! [जो] यदि [अपनो] अपना [कल्यान] हित [चाहो] चाहते हो (तो) [ताहि] गुरु की वह शिक्षा [मन] मन को [थिर] स्थिर [आन] करके [सुनो] सुनो (कि इस संसार में प्रत्येक प्राणी) [अनादि] अनादिकाल से [मोह महामद] मोहरूपी महामदिरा [पिया] पीकर, [आपको] अपने आत्मा को [भूल] भूलकर [वादि] व्यर्थ [भरमत] भटक रहा है।

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता और निगोद का दुःख



तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कुछ कहूँ कही मुनि यथा
काल अनंत निगोद मंझार, बीत्यो एकेंद्री तन धार ॥३॥

अन्वयार्थ : [तास] उस संसार में [भ्रमण की] भटकने की [कथा] कथा [बहु] बड़ी [है] है [पै] तथापि [यथा] जैसी [मुनि] पूर्वचार्यों ने [कही] कहीं है (दनुसार मैं भी) [कछु] थोड़ी-सी [कहूँ] कहता हूँ (कि इस जीव का) [निगोद मझार] निगोद में [एकेन्द्री] एकेन्द्रिय जीव के [तन] शरीर [धार] धारण करके [अनंत] अनंत [काल] काल [बीत्यो] व्यतीत हुआ है।

निगोद का दुःख और वहाँ से निकलकर प्राप्त की हुई पर्याये



एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्यो भर्यो दुखभार निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥४॥

अन्वयार्थ : (निगोद में यह जीव) [एक श्वास में] एक सांस में [अठदस बार] अठारह बार [जन्म्यो] जनमा और [मरयो] मरा (तथा) [दुखभार] दुःखों के समूह [भरयो] सहन किये (और वहाँ से) [निकसि] निकलकर [भूमि] पृथ्वीकायिक, [जल] जलकायिक, [पावक] अग्निकायिक [भयो] हुआ तथा [पवन] वायुकायिक (और) [प्रत्येक वनस्पति] प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव [थयो] हुआ ।

तिर्यचगति में त्रसपर्याय की दुर्लभता और उसका दुःख



दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी लट पिपील अलि आदि शरीर, धर धर मर्यो सही बहु पीर ॥५॥

अन्वयार्थ : [ज्यों] जिसप्रकार [चिन्तामणि] चिन्तामणि-रत् [दुर्लभ] कठिनाई से [लहि] प्राप्त होता है [त्यों] उसीप्रकार [त्रसतणी] त्रस-पर्याय (बड़ी कठिनाई से) [लहि] प्राप्त हुई । (वहाँ भी) [लट] इल्ली [पिपील] चींटी [अलि] भवरा [आदि] इत्यादि के [शरीर] शरीर [धर धर] बारम्बार धारण करके [मरयो] मरण को प्राप्त हुआ (और) [बहु पीर] अत्यन्त पीड़ा [सही] सहन की ।

तिर्यचगति में असंज्ञी तथा संज्ञी के दुःख



कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो सिंहादिक सैनी है कूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥६॥

अन्वयार्थ : (यह जीव) [कबहूँ] कभी [पंचेन्द्रिय] पंचेन्द्रिय [पशु] तिर्यच [भयो] हुआ (तो) [मन बिन] मन के बिना [निपट] अत्यंत [अज्ञानी] मूर्ख [थयो] हुआ (और) [सैनी] संज्ञी (भी) [है] हुआ (तो) [सिंहादिक] सिंह आदि [कूर] कूर जीव [है] होकर [निबल] अपने से निर्बल, [भूर] अनेक [पशु] तिर्यच [हति] मार-मारकर [खाये] खाये ।

तिर्यचगति में निर्बलता तथा दुःख



कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन, हिम, आतप त्रास ॥७॥

अन्वयार्थ : (यह जीव तिर्यच गति में) [कबहूँ] कभी [आप] स्वयं [बलहीन] निर्बल [भयो] हुआ (तो) [अतिदीन] असमर्थ होने से [सबलनि करि] अपने से बलवान प्राणियों द्वारा [खायो] खाना गया (और) [छेदन] छेदा जाना, [भेदन] भेदा जाना, [भूख] भूख [पियास] प्यास, [भार-वहन] बोझ ढोना, [हिम] ठण्ड [आतप] गर्म (आदि के) [त्रास] दुःख सहन किये ।

तिर्यच के दुःख की अधिकता और नरक गति की प्राप्ति का कारण



बध बंधन आदिक दुख घने, कोटि जीभ तैं जात न भने अति संक्लेश भावतैं मर्यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्यो ॥८॥

अन्वयार्थ : (इस तिर्यचगति में जीव ने अन्य भी) [बध] मारा जाना, [बंधन] बंधना [आदिक] आदि [घने] अनेक [दुख] दुःख सहन किये; (तो) [कोटि] करोड़ों [जीभतैं] जीभों से [भने न जात] नहीं कहे जा सकते । (इस कारण) [अति संक्लेश] अत्यंत बुरे [भावतैं] परिणामों से [मर्यो] मारकर [घोर] भयानक [श्वभ्रसागर में] नरकरूपी समुद्र में [परयो] जा गिरा ।

नरकों की भूमि और नदियों का वर्णन



तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छृ सहस डसे नहिं तिसो तहाँ राध-श्रोणितवाहिनी, कृमि-कुल-कलित, देह-दाहिनी ॥९॥

अन्वयार्थ : [तहाँ] उन नरक में [भूमि] धरती [परसत] स्पर्श करने से [इसो] ऐसा [दुख] दुःख होता है (कि) [सहस] हजारों [बिच्छृ] बिच्छृ [डसे] डंक मारें, तथापि [नहिं तिसो] उसने समान दुःख नहीं होता (तथा) [तहाँ] वहाँ (नरक में) [राधा-श्रोणितवाहिनी] रक्त और मवाद बहानेवाली नदी (वैतरणी नामक नदी) है, जो [कृमि-कुल-कलिता] छोटे-छोटे क्षुद्र कीड़ों से भरी हैं तथा [देहदाहिनी] शरीर में दाह उत्पन्न करनेवाली है ।

नरकों के सेमल वृक्ष तथा सर्दी-गर्मी के दुःख



सेमर तरु दलजुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥१०॥

अन्वयार्थ : [तत्र] उन नरकों में, [असिपत्र ज्यों] तलवार की धार की भाँति तीक्ष्ण [दलजुत] पत्तोंवाले [सेमर तरु] सेमल के वृक्ष (हैं, जो) [देह] शरीर को [असि ज्यों] तलवार की भाँति [विदारैं] चीर देते हैं (और) [तत्र] वहाँ (उस नरक में) [ऐसी] ऐसी [शीत] ठण्ड (और) [उष्णता] गरमी [थाय] होती है (कि) [मेरु समान] मेरु पर्वत के बाराबर [लोह] लोहे का गोला भी [गलि] गल जाय ।

नरकों में अन्य नारकी, असुरकुमार तथा प्यास का दुःख



तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड सिन्धुनीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥११॥

अन्वयार्थ : (उन नरकों में नारकी जीव एक-दूसरे के) [देह के] शरीर के [तिल-तिल] तिल्ली के दाने बराबर [खण्ड] टुकड़े [करें] कर डालते हैं (और) [प्रचण्ड] अत्यंत [दुष्ट] कूर [असुर] असुरकुमार जाति के देव (एक-दूरे के साथ) [भिड़ावैं] लड़ते हैं; (तथा इतनी) (प्यास) प्यास (लगती है कि) [सिन्धुनीर तैं] समुद्रभर पानी पीने से भी (न जाय) शांत न हो, (तो पण) तथापि (एक बूँद) एक बूंदी भी (न लहाय) नहीं मिलती।

नरकों की भूख, आयु और मनुष्यगति प्राप्ति का वर्णन



तीनलोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय ये दुख बहु सागर लौं सहै, करम जोगतै नरगति लहै ॥१२॥

अन्वयार्थ : (उन नरकों में इतनी भूख लगती है कि) [तीन लोक को] तीनों लोक का [नाज] अनाज [जुखाय] खा जाये तथापि [भूख] क्षुधा [न मिटै] शांत न हो (परंतु खाने के लिए) [कणा] एक दाना भी [न लहाय] नहीं मिलता। [ये दुख] ऐसे दुःख [बहु सागर लौं] अनेक सागरोपम काल तक [सहै] सहन करता है, [करम जोगतै] किसी विशेष शुभ-कर्म के योग से [नरगति] मनुष्य-गति [लहै] प्राप्त करता है।

मनुष्यगति में गर्भ-निवास तथा प्रसवकाल के दुःख



जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतैं पायो त्रास निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥१३॥

अन्वयार्थ : (मनुष्यगति में भी यह जीव) [नव मास] नौ महीने तक [जननी] माता के [उदर] पेट में [वस्यो] रहा; (तब वहां) [अंग] शरीर [सकुचतैं] सिकोड़कर रहने से [त्रास] दुःख [पायो] पाया (और) [निकसत] निकलते समय [जे] जो [घोर] भयंकर [दुख पाये] दुःख पाये [तिलको] उन दुःखों को [कहत] कहने से [ओर] अंत [न आवे] नहीं आ सकता।

मनुष्यगति में बाल, युवा और वृद्धावस्था के दुःख



**बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी-रत रह्यो
अर्ध-मृतक-सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥१४॥**

अन्वयार्थ : (मनुष्यगति में) [बालपने में] बचपन में [ज्ञान] ज्ञान [न लह्यो] प्राप्त नहीं कर सका (और) [तरुण समय] युवावस्था में [तरुणी-रत] युवती स्त्री में लीन [रह्यो] रहा, (और) [बूढ़ापनो] वृद्धावस्था [अर्धमृतकसम] अधमरा जैसा (रहा, ऐसी दशा में) [कैसे] किस प्रकार (जीव) [अपनी] अपना [रूप] स्वरूप [लखै] देखे - विचारे ।

देवगति में भवनत्रिक का दुःख



**कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै
विषय-चाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥१५॥**

अन्वयार्थ : (इस जीव ने) [कभी] कभी [अकाम निर्जरा] अकाम निर्जरा [करै] की (तो मरने के पश्चात) [भवनत्रिक] भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी में [सुरतन] देवपर्याय [धरै] धारण की, (परंतु वहां भी) [विषय चाह] पांच इन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी [दावानल] भयंकर अप्ति में [दह्यो] जलता रहा (और) (मरत) मरते समय [विलाप करत] रो-रोकर [दुख सह्यो] दुःख सहन किया ।

देवगति में वैमानिक देवों का दुःख



**जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय
तहंतें चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥१६॥**

अन्वयार्थ : [जो] यदि [विमानवासी] वैमानिक देव [हो] भी [थाय] हुआ (तो वहां) [सम्यग्दर्शन] सम्यग्दर्शन [बिना] बिना [दुख] दुःख [पाय] प्राप्त किया (और) [तहंतें] वहां से [चय] मरकर [थावर तन] स्थावर जीव का शरीर [धरै] धारण करता है; [यों] इसप्रकार (यह जीव) [परिवर्तन] पांच परावर्तन [पूरे करै] पूर्ण करता है ।

संसार में परिभ्रमण का कारण



**ऐसे मिथ्या दृग-ज्ञान-चर्णवश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मर्ण
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥१॥**

अन्वयार्थ : [मिथ्यादृग्-ज्ञान-चर्णवश] मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के वश होकर [ऐसे] इस प्रकार [भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण] जन्म और मरण के दुःखों को भोगता हुआ भटकता फिरता है। [तातै इनको] इसलिये इन (तीनों) को [तजिये सुजान] भली-भाँति जानकर छोड़ना चाहिये। [सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान] इनका संक्षेप से वर्णन करता हूँ, उसे सुनो।

अग्रहीत-मिथ्यादर्शन और जीवतत्त्व का लक्षण



**जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिनमाहिं विपर्ययत्व
चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप ॥२॥**

अन्वयार्थ : [जीवादि] जीव आदि (जीव, अजीव, आस्व, वंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष) प्रयोजनभूत तत्त्व हैं, [सरधैं तिनमाहिं विपर्ययत्व] उनमें विपरीत श्रद्धान करना (सो अग्रहीत मिथ्यादर्शन है); [चेतन को है उपयोग रूप] आत्मा का स्वरूप उपयोग (दर्शन-ज्ञान) है, और वह [बिनमूरत चिन्मूरत अनूप] अमूर्तिक, चैतन्यमय और उपमा-रहित है।

जीव-तत्त्व के विषय में मिथ्यात्व



**पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान ॥३॥**

अन्वयार्थ : पुद्गल [नभ] आकाश, धर्म, अधर्म, काल [इनतैं] इनसे [न्यारी है जीव चाल] जीव का स्वभाव भिन्न है; (तथापि मिथ्यादृष्टि जीव) [ताकों न जान] उस (स्वभाव) को नहीं जानता और विपरीत [मान करि] मानकर [देह में निज पिछान] शरीर में आत्मा की पहिचान करता है।

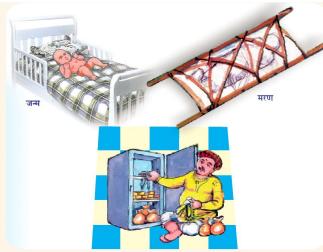
मिथ्यादृष्टि का शरीर तथा पर-वस्तुओं सम्बन्धी विचार



**मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गो-धन प्रभाव
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण ॥४॥**

अन्वयार्थ : (मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के कारण से मानता है कि) [मैं सुखी दुखी] मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, [रंक राव] निर्धन हूँ, राजा हूँ, [मेरे धन] मेरे यहाँ रूपया-पैसा आदि [गृह गोधन] घर, गाय-भैस आदि [प्रभाव] बड़प्पन (है; और) [मेरे सुत] मेरी संतान तथा [तिय] मेरी स्त्री है; [मैं सबल] मैं बलवान, [दीन] निर्बल, [बेरूप] कुरूप, [सुभग] सुन्दर, [मूरख] मूर्ख और [प्रवीण] चतुर हूँ।

अजीव और आस्व-तत्त्व की विपरीत श्रद्धा



तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनहीं को सेवत गिनत चैन ॥५॥

अन्वयार्थ : (मिथ्यादृष्टि जीव) [तन] शरीर के [उपजत] उत्पन्न होने से [अपनी] अपना आत्मा [उपज] उत्पन्न हुआ [जान] मानता है और [तन] शरीर के [नशत] नाश होने से [आपको] आत्मा का [नाश] मरण हुआ ऐसा [मान] मानता है। [रागादि] राग, द्वेष, मोहादि [ये प्रगट] जो स्पष्ट रूप से [दुःख देन] दुःख देनेवाले हैं, [तिनहीं को] उनकी [सेवत] सेवाता हुआ [चैन गिनत] सुख मानता है।

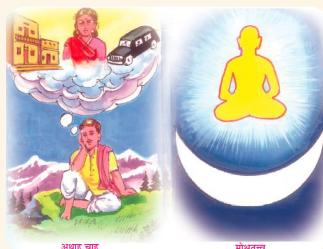
बन्ध और संवर तत्त्व की विपरीत श्रद्धा



शुभ-अशुभ बंध के फल मंझार, रति-अरति करै निज पद विसार आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान ॥६॥

अन्वयार्थ : (मिथ्यादृष्टि जीव) [निजपद] आत्मा के स्वरूप को [विसार] भूलकर [बंध के] कर्म-बन्ध के [शुभ] अच्छे [फल मंझार] फल में [रति] प्रेम [करै] करता है और कर्म-बन्ध के [अशुभ] बुरे फल से [अरति] द्वेष करता है; (तथा जो) [विराग] राग-द्वेष का अभाव (अपने यथार्थ स्वभाव में स्थिरतारूप सम्यक्चारित्र) और [ज्ञान] सम्यग्ज्ञान (और सम्पर्ददर्शन) [आतमहित] आत्मा के हित के [हेतु] कारण हैं, [ते] उन्हें [आपको] आत्मा को [कष्टदान] दुःख देनेवाले [लखै] मानता है।

निर्जरा और मोक्ष की विपरीत श्रद्धा तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान



रोकी न चाह निजशक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥७॥

अन्वयार्थ : (मिथ्यादृष्टि जीव) [निजशक्ति] अपने आत्मा की शक्ति [खोय] खोकर [चाह] इच्छा को [न रोकी] नहीं रोकता, और [निराकुलता] आकुलता के अभाव को [शिवरूप] मोक्ष का स्वरूप [न जोय] नहीं मानता। [याही] इस [प्रतीतिजुत] मिथ्या मान्यता सहित [कछुक ज्ञान] जो कुछ ज्ञान है [सो] वह [दुखदायक] कष्ट देनेवाला [अज्ञान] अगृहीत मिथ्याज्ञान है - ऐसा [ज्ञान] समझना चाहिए।

अगृहीत मिथ्याचारित्र (कुचारित्र) का लक्षण



इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत, सुनिये सु तेह ॥८॥

अन्वयार्थ : [जो] जो [विषयनि में] पाँच इन्द्रियों के विषयों में [इन जुत] इस-रूप (अगृहीत मिथ्यादर्शन तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित) [प्रवृत्त] प्रवृत्ति करता है [ताको] उसे [मिथ्याचरित्त] अगृहीत मिथ्याचारित्र [जानो] समझो। [यों] इस प्रकार [निसर्ग] अगृहीत [मिथ्यात्वादि] मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है (वर्णन किया गया है) [अब जे गृहीत] अब जो गृहीत [मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र] है [तेह सुनिये] उसे सुनो।

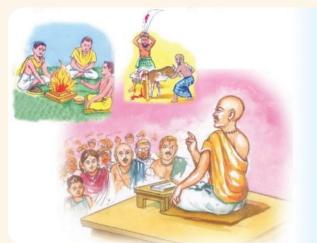
गृहीत मिथ्यादर्शन और कुगुरु के लक्षण



जे कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव
अंतर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥९॥
धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्मजल उपलनाव
जो राग-द्वेष मलकरि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ॥१०॥

अन्वयार्थ : जो [कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव] मिथ्या-गुरु, मिथ्या-देव और मिथ्या-धर्म की सेवा करता है, वह [पोषैं चिर दर्शनमोह एव] अति दीर्घकाल तक मिथ्यादर्शन ही पोषता है। [अंतर रागादिक धरैं जेह] कुगुरु अंतर में मिथ्यात्व-राग-द्वेष आदि धारण करता है और [बाहर धन अम्बरतैं सनेह] बाहर में धन तथा वस्त्रादि से प्रेम रखता है। [धारैं कुलिंग लहि महत भाव] महात्मापने का भाव ग्रहण करके मिथ्यावेषों को धारण करता है, [ते कुगुरु जन्मजल उपलनाव] ऐसा कुगुरु संसाररूपी समुद्र में पथर की नौका के समान है (खुद भी डूबता है और शिष्यों को भी डुबोता है)। [जे राग-द्वेष मलकरि मलीन] जो (कुदेव) राग-द्वेषरूपी मैल से मलिन हैं और [वनिता गदादि जुत चिह्न चीन] स्त्री, गदा आदि सहित विहँों से पहिचाने जाते हैं।

कुधर्म और गृहीत मिथ्यादर्शन का संक्षिप्त लक्षण

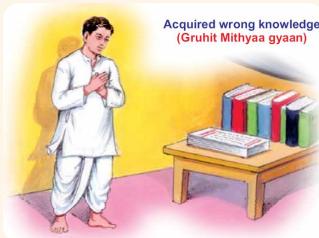


ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव
रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥११॥
जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥१२॥

अन्वयार्थ : [ते हैं कुदेवा] वे झूठे देव हैं, [तिनकी जु सेव शठा] उनकी जो मूर्ख सेवा करते हैं, [करत न तिन भवभ्रमण छेवा] उनका संसार में भ्रमण करना नहीं मिटता। [रागादि भावहिंसा समेत] राग-द्वेष आदि भाव-हिंसा सहित तथा [दर्वित त्रस-थावर मरण खेत] त्रस और स्थावर मरण का स्थान द्रव्यहिंसा समेत (कुधर्म है)।

[जे क्रिया तिन्हैं] जो (पूर्व-कतिथ) क्रियाएँ हैं उन्हें [जानहु कुधर्म] मिथ्याधर्म जानना चाहिये। [तिन सरधै जीव] उनकी श्रद्धा करने से आत्मा [लहै अशर्म] दुःख पाते हैं। [याकू] इनको (कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का श्रद्धान करने को) गृहीत मिथ्यादर्शन जानना, अब गृहीत मिथ्याज्ञान जिसे कहा जाता है उसका वर्णन सुनो।

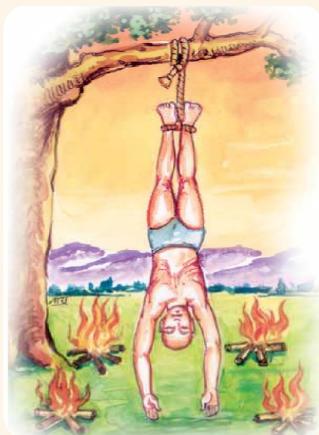
गृहीत मिथ्याज्ञान का लक्षण



**एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त
कपिलादि रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥१३॥**

अन्वयार्थ : अर्थात् – अनेक धर्मात्मक वस्तु के किसी एक ही धर्म को समस्त वस्तु कहने के कारण, दूषित तथा विषय कषाय आदि को पुष्ट करने वाले कपिल आदि कुगुरुओं के बनाये हुए सब प्रकार के खोटे शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना, गृहीत मिथ्याज्ञान कहलाता है।

गृहीत मिथ्याचारित्र का लक्षण



**जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध विध देहदाह
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन ॥१४॥**

अन्वयार्थ : शरीर और आत्मा का भेदविज्ञान न होने से जो यश, धनसंपत्ति, आदर-सल्कार आदि की इच्छा से मानादि कषाय के वशीभूत होकर शरीर को क्षीण करनेवाली अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है, उसे "गृहीत मिथ्याचारित्र" कहते हैं।

मिथ्याचारित्र के त्याग का तथा आत्महित में लगने का उपदेश



**ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत! निज आतम सुपाग ॥१५॥**

अन्वयार्थ : आत्महितैषी जीव को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ग्रहण करके गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का त्याग करके आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिए। श्री पण्डित दौलतरामजी अपनी आत्मा को सम्बोधन करके कहते हैं कि - हे आत्मन! पराश्रयरूप संसार अर्थात् पुण्य-

पाप में भटकना छोड़कर सावधानी से आत्मस्वरूप में लीन हो ॥

आत्महित, सच्चा सुख वा द्विविध मोक्षमार्ग का लक्षण



आत्म को हित है सुख सो सुख, आकुलता-बिन कहिये
 आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिये ॥
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो द्विविध विचरो
 जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥१॥

अन्वयार्थ : [आत्म को हित] आत्मा का कल्याण [है सुख] है सुख की प्राप्ति, [सो सुख] वह सुख [आकुलता बिन] आकुलता रहित [कहिये] कहा जाता है। [आकुलता] आकुलता [शिवमाहिं न] मोक्ष में नहीं है, [तातैं शिवमग] इसलिये मोक्षमार्ग में [लाग्यो चहिये] लगना चाहिये। [सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन] सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों की एकता वह [शिवमग] मोक्ष का मार्ग है। [सो] उस (मोक्षमार्ग) का [द्विविध] दो प्रकार से [विचारो] विचार करना चाहिये कि [जो] जो [सत्यारथरूप] वास्तविक स्वरूप है [सो] वह [निश्चय] निश्चय-मोक्षमार्ग है और [कारण] जो निश्चय-मोक्षमार्ग का निमित्त कारण है [सो] उसे [व्यवहारो] व्यवहार-मोक्षमार्ग कहते हैं।

निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का लक्षण



परद्रव्यनतै भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त्व भला है
 आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है ॥
 आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई
 अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥२॥

अन्वयार्थ : [आप में] आत्मा में [परद्रव्यनतैं] पर-वस्तुओं से [भिन्न] भिन्नत की [रुचि] श्रद्धा करना सो [भला] निश्चय [सम्यक्त्व] सम्यग्दर्शन है; [आपरूप को] आत्मा के स्वरूप को [परद्रव्यनतै भिन्न] पर-द्रव्यों से भिन्न [जानपनों] जानना [सो] वह [सम्यग्ज्ञान] निश्चय सम्यग्ज्ञान [कला] प्रकाश [है] है। [परद्रव्यनतै भिन्न] पर-द्रव्यों से भिन्न ऐसे [आपरूप में] आत्म-स्वरूप में [थिर] स्थिरतापूर्वक [लीन रहे] लीन होना सो [सम्यक्चारित्र] निश्चय सम्यक्चारित्र [सोई] है। [अब] अब [व्यवहार मोक्षमग] व्यवहार-मोक्षमार्ग [सुनिये] सुनो कि जो व्यवहार मोक्षमार्ग [नियतको] निश्चय-मोक्षमार्ग का [हेतु] निमित्त कारण [होई] है।

व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप



जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो
 निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानों

है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दिद प्रतीत उर आनो ॥३॥

अन्वयार्थ : [जिन] जिनेन्द्रदेव ने [जीव] जीव, [अजीव] अजीव, [आस्र] आस्र, [बन्ध] बन्ध, [संवर] संवर, [निर्जरा] निर्जरा, [अरु] और [मोक्ष] मोक्ष [तत्त्व] यह सात तत्त्व [कहे] कहे हैं; [तिनको] उन सबकी [ज्योंका त्यों] यथावत्-यथार्थरूप से [सरधानो] श्रद्धा करो। [सोई] इस प्रकार श्रद्धा करना सो [समकित व्यवहारी] व्यवहारसे सम्पर्कदर्शन है। अब [इन रूप] इन सात तत्त्वों के रूप का [बखानो] वर्णन करते हैं; [तिनको] उन्हें [सामान्य विशेषैं] संक्षेप से तथा विस्तार से [सुन] सुनकर [उर] मनमें [दिद] अटल [प्रतीत] श्रद्धा [आनो] करो।

जीव के भेद, बहिरात्मा और उत्तम अंतरात्मा का लक्षण



बहिरात्म अन्तर आतम परमात्म जीव त्रिधा है
देह जीव को एक गिनै बहिरात्म तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी
द्विविध संग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी ॥४॥

अन्वयार्थ : [बहिरात्म] बहिरात्मा, [अन्तरआतम] अन्तरात्मा [और] [परमात्म] परमात्मा [इस प्रकार] [जीव त्रिधा है] जीव तीन प्रकार के हैं; (उनमें) [देह जीवको] शरीर और आत्मा को [एक गिने] एक मानते हैं वे [बहिरात्म] बहिरात्मा हैं [और वे बहिरात्मा] [तत्त्वमुधा] यथार्थ तत्त्वों से अजान अर्थात् तत्त्वमूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। [आतमज्ञानी] आत्मा को पर-वस्तुओं से भिन्न जानकर यथार्थ निश्चय करनेवाले [अन्तरआत्मा] अन्तरात्मा [कहलाते हैं]; वे [उत्तम] उत्तम [मध्यम] मध्यम और [जघन] जघन्य -ऐसे [त्रिविध] तीन प्रकार के हैं; (उनमें) [द्विविध] दो प्रकार के (अंतरंग तथा बहिरंग) [संगबिना] परिग्रह रहित [शुध उपयोगी] शुद्ध उपयोगी [निजध्यानी] आत्मध्यानी [मुनि] दिग्म्बर मुनि [उत्तम] उत्तम अन्तरात्मा हैं।

मध्यम और जघन्य अन्तरात्मा तथा सकल परमात्मा



मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिव-मग चारी ॥
सकल निकल परमात्म द्वैविध, तिनमें घाति निवारी
श्री अरिहन्त सकल परमात्म, लोकालोक निहारी ॥५॥

अन्वयार्थ : [अनगारी] अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह रहित यथाजातरूपधर भाविलंगी मुनि मध्यम अन्तरात्मा हैं तथा [देशव्रती] दो कषाय के अभाव सहित ऐसे पंचम गुणस्थानवर्ती सम्पर्कदृष्टि श्रावक [मध्यम] मध्यम [अन्तर-आतम] अन्तरात्मा [हैं] हैं और [अविरत] व्रतरहित [समदृष्टि] सम्पर्कदृष्टि जीव [जघन] जघन्य अन्तरात्मा [कहे] कहलाते हैं; [तीनों] यह तीनों [शिवमगचारी] मोक्षमार्ग पर चलनेवाले हैं। [सकल निकल] सकल और निकल के भेद से [परमात्म] परमात्मा [द्वैविध] दो प्रकार के हैं [तिनमें] उनमें [घाति] चार घातिकर्मों को [निवारी] नाश करनेवाले [लोकालोक] लोक तथा अलोक को [निहारी] जानने-देखनेवाले [श्री अरिहन्त] अरहन्त परमेश्वरी [सकल] शरीर सहित [परमात्म] परमात्मा हैं।

निकल परमात्मा का लक्षण वा परमात्मा के ध्यान का उपदेश



ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल वर्जित सिद्ध महंता
ते हैं निकल अमल परमात्म, भोगैं शर्म अनंता ॥
बहिरात्मता हेय जानि तजि, अन्तर आत्म हूजे
परमात्म को ध्याय निरन्तर, जो नित आनंद पूजै ॥६॥

अन्वयार्थ : [ज्ञानशरीरी] ज्ञानमात्र जिनका शरीर है ऐसे [त्रिविध] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म तथा औदारिक शरीरादि नोकर्म-ऐसे तीन प्रकारके [कर्ममल] कर्मरूपी मैल से [वर्जित] रहित, [अमल] निर्मल और [महन्ता] महान् [सिद्ध] सिद्ध परमेष्ठी [निकल] निकल [परमात्म] परमात्मा हैं। वे [अनन्त] अपरिमित [शर्म] सुख [भोगैं] भोगते हैं। इन तीनों में [बहिरात्मता] बहिरात्मपने को [हेय] छोड़ने योग्य [जानि] जानकर और [तजि] उसे छोड़कर [अन्तर आत्म] अन्तरात्मा [हूजै] होना चाहिये और [निरन्तर] सदा [परमात्मको] [निज] परमात्मपद का [ध्याय] ध्यान करना चाहिए; [जो] जिसके द्वारा [नित] अर्थात् निरंतर [आनन्द] आनन्द [पूजै] प्राप्त किया जाता है।

अजीव तत्त्व का लक्षण वा भेद



चेतनता-बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं
पुद्गल पंच वरन-रस गंध दो, फरस वसु जाके हैं ॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिनमूर्ति निरूपी ॥७॥

अन्वयार्थ : जो [चेतनता-बिन] चेतनता रहित है [सो] वह [अजीव] अजीव है; [ताके] उस अजीवके [पंच भेद] पाँच भेद हैं; [जाके पंच वरन-रस] जिसके पाँच वर्ण और रस, दो गत्य और [वसु] आठ [फ रस] स्पर्श [हैं] होते हैं, वह पुद्गलद्रव्य है। जो [जिय] जीव को (और) [पुद्गल को] पुद्गल को [चलन सहाई] चलने में निमित्त [और] [अनुरूपी] अमूर्तिक है वह [धर्म] धर्म-द्रव्य है तथा [तिष्ठत] गतिपूर्वक स्थिति-परिणाम को प्राप्त (जीव और पुद्गल को) [सहाई] निमित्त [होय] होता है वह [अधर्म] अधर्म द्रव्य है। [जिन] जिनेन्द्र भगवान ने उस अधर्म-द्रव्य को [बिन-मूर्ति] अमूर्तिक, [निरूपी] अरूपी कहा है।

आकाश, काल और आस्त्रव के लक्षण वा भेद



सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो
नियत वर्तना निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो ॥

यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा मिथ्या अविरत अरु कषाय परमाद सहित उपयोगा ॥८॥

अन्वयार्थ : [जास में] जिसमें [सकल] समस्त [द्रव्य को] द्रव्यों का [वास] निवास है [सो] वह [आकाश] आकाश द्रव्य [पिछानो] जानना; [वर्तना] स्वयं प्रवर्तित हो और दूसरों को प्रवर्तित होने में निमित्त हो वह [नियत] निश्चय काल-द्रव्य है; तथा [निशिदिन] रात्रि, दिवस आदि [व्यवहारकाल] व्यवहारकाल [परिमानो] जानो। [यों] इस प्रकार [अजीव] अजीव-तत्त्व का वर्णन हुआ। [अब] अब [आस्रव] आस्रव-तत्त्व [सुनिये] सुनो। [मन-वच-काय] मन, वचन और काया के आलम्बन से आत्मा के प्रदेश चंचल होनेरूप [त्रियोगा] तीन प्रकार के योग तथा मिथ्यात्म, अविरत, कषाय [अरु] और [परमाद] प्रमाद [सहित] सहित [उपयोगा] उपयोग आत्मा की प्रवृत्ति वह [आस्रव] आस्रव-तत्त्व कहलाता है।

आस्रव त्याग का उपदेश और बंध, संवर, निर्जरा का लक्षण



ये ही आत्म को दुखकारण, तातै इनको तजिये
जीव प्रदेश बंधै विधिसों सो बन्धन कबहूं न सजिये ॥
शम-दमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये
तप-बलतैं विधि झरन निरजरा ताहि सदा आचरिये ॥९॥

अन्वयार्थ : [ये ही] यह मिथ्यात्वादि ही [आत्मको] आत्मा को [दुःख-करण] दुःख के कारण हैं, [तातै] इसलिये [इनको] इन मिथ्यात्वादि को [तजिये] छोड़ देना चाहिये [जीव-प्रदेश] आत्मा के प्रदेशों का [विधि सों] कर्मों से [बन्धै] बँधना वह [बंधन] बन्ध है [सो] वह (बन्ध) [कबहूँ] कभी भी [न सजिये] नहीं करना चाहिये। [शम] कषायों का अभाव (और) [दम तैं] इन्द्रियों तथा मन को जीतने से [कर्म] कर्म [न आवैं] नहीं आयें वह [संवर] संवर-तत्त्व है; [ताहि] उस संवर को [आदरिये] ग्रहण करना चाहिये। [तपबल तैं] तप की शक्ति से [विधि] कर्मों का [झरन] एकदेश खिर जाना सो [निरजरा] निर्जरा है। [ताहि] उस निर्जरा को [सदा] सदैव [आचरिये] प्राप्त करना चाहिये।

मोक्ष का लक्षण, व्यवहार सम्यक्त्व का लक्षण तथा कारण



सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी
इहिविधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो
येहु मान समकित को कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो ॥१०॥

अन्वयार्थ : [सकल कर्मतैं] समस्त कर्मों से [रहित] रहित [थिर] स्थिर-अटल [सुखकारी] अनन्त सुखदायक [अवस्था] दशा-पर्याय सो [शिव] मोक्ष कहलाता है। [इहि विधि] इस प्रकार [जो] जो [तत्त्वन की] सात तत्त्वों के भेद सहित [सरधा] श्रद्धा करना सो [व्यवहारी] व्यवहार [समकित] सम्यगदर्शन है। [जिनेन्द्र] वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी [देव] सच्चे देव [परिग्रह बिन] चौबीस परिग्रह से रहित [गुरु] वीतराग गुरु (तथा) [सारो] सारभूत [दयाजुत] अहिंसामय [धर्म] जैनधर्म [येहु] इन सबको [समकितको] सम्यगदर्शन का [कारण] निमित्त कारण [मान] जानना चाहिये। सम्यगदर्शन को उसके [अष्ट] आठ [अंगजुत] अंगों सहित [धारो] धारण करना चाहिये।



वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो
 शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो
 अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेप हु कहिये
 बिन जानें तैं दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये ॥११॥

अन्वयार्थ : [वसु मद टारि] आठ मद का त्याग करके, [निवारि त्रिशठता] तीन प्रकार की मूढ़ता को हटाकर, [षट् अनायतन] छह अनायतनों का [त्यागो] त्याग करना चाहिये। [शंकादिक वसु] शंकादि आठ [दोष विना] दोषों से रहित होकर [संवेगादिक] संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य और प्रशम में [चित] मनको [पागो] लगाना चाहिये। अब, सम्यक्त्व के [अष्ट अंग अरु] आठ अंग और [पचीसों दोष] पचीस दोषों को [संक्षेप] संक्षेप में [कहिये] कहा जाता है; क्योंकि [बिन जानें तैं] उन्हें जाने बिना [दोष] दोषों को [कैसे] किस प्रकार [तजिये] छोड़ें और [गुनन को] गुणों को किस प्रकार [गहिये] ग्रहण करें?

सम्यक्त्व के आठ अंगों और शंकादिक आठ दोषों के लक्षण



जिन वच में शंका न धार वृष, भव -सुख वांछा भानै
 मुनि तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ॥
 निजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निज धर्म बढ़ावै
 कामादिक कर वृषतैं, चिगते, निज पर को सु दिढावै ॥१२॥
 धर्मीसों गौ वच्छ प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै
 इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै ॥

अन्वयार्थ : [जिन वचमें] सर्वज्ञदेव के कहे हुए तत्त्वों में [शंका] संशय-सन्देह [न धार] धारण नहीं करना (सो निःशंकित अंग है); [वृष] धर्म को [धार] धारण करके [भव-सुख-वांछा] सांसारिक सुखों की इच्छा [भानै] न करे (सो निःकांकित अंग है); [मुनि-तन] मुनियों के शरीरादि [मलिन] मैले [देखा] देखकर [न घिनावै] धृणा न करना (सो निर्विचिकित्सा अंग है); [तत्त्व-कुतत्त्व] सच्चे और झूठे तत्त्वों की [पिछानै] पहिचान रखे (सो अमूढ़दृष्टि अंग है); [निजगुण] अपने गुणों को [अरु] और [पर औगुण] दूसरे के अवगुणों को [ढाँकै] छिपाये [वा] तथा [निजधर्म] अपने आत्म-धर्म को [बढ़ाये] बढ़ाये अर्थात् निर्मल बनाए (सो उपगूहन अंग है); [कामादिक कर] काम-विकारादि के कारण [वृषतैं] धर्म से [चिगते] च्युत होते हुए [निज-परको] अपने को तथा पर को [सु दिढावै] उसमें पुनः दृढ़ करे (सो स्थितिकरण अंग है); [धर्मीसों] अपने साधर्मीजनों से [गौ-वच्छ-प्रीति] समा बछड़े पर गाय की प्रीति समान [करा] प्रेम रखना (सो वातसत्त्व अंग है) और [जिनधर्म] जैनधर्म की [दिपावै] शोभा में वृद्धि करना (सो प्रभावना अंग है); [इन गुणतैं] इन (आठ) गुणों से [विपरीत] उल्टे [वसु] आठ [दोष] दोष हैं, [तिनको] उन्हें [सतत] हमेशा [खिपावै] दूर करना चाहिये।

सम्यक्त्व के मदनामक आठ दोष



पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै
 मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै ॥१३॥
 तपकौ मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै
 मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित को मल ठानै ॥

अन्वयार्थ : (जो जीव) [जो] यदि [पिता] पिता आदि पितृपक्ष के स्वजन [भूप] राजादि [होय] हों [तौ] तो [मद] अभिमान [न ठानै] नहीं करता, (यदि) [मातुल] मामा आदि मातृपक्ष के स्वजन [नप होय] राजादि हों तो [मद न] अभिमान नहीं करता, [ज्ञान कौ] विद्या का [मद न] अभिमान नहीं करता, [धन कौ] लक्ष्मी का [मद भानै] अभिमान नहीं करता, [बल कौ] शक्ति का [मद भानै] अभिमान नहीं करता, [तप कौ] तप का [मद न] अभिमान नहीं करता, [जु] और [प्रभुताकौ] ऐश्वर्य, बड़प्पनका [मद न करै] अभिमान नहीं करता [सो] वह [निज] अपने आत्माको [जानै] जानता है। (यदि जीव उनका) [मद] अभिमान [धारै] रखता है तो [यही वसु] ऊपर कहे हुए मद आठ [दोष] दोष रूप होकर [समकितकौ] सम्यक्त्वको-सम्यक्दर्शन को [मल ठानै] फूटित करते हैं।

सम्यक्त्व के छः अनायतन दोष और तीन मूढ़ता दोष



कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवक की, नहीं प्रशंस उचरै है
 जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करै है ॥१४॥

अन्वयार्थ : (सम्यग्दृष्टि जीव) [कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवक की] कुगुरु, कुदेव और कुधर्म-सेवक की [प्रशंसा] प्रशंसा [नहिं उचरै है] नहीं करता। [जिन] जिनेन्द्रदेव [मुनि] वीतरागी मुनि [और] [जिनश्रुत] जिनवाणी [विन] के अतिरिक्त (जो) [कुगुरादि] कुगुरु, कुदेव, कुधर्म हैं [तिन्हें] उन्हें [नमन] नमस्कार [न करै है] नहीं करता।

सम्यक्त्व का महत्व



दोष रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यक् दरश सजै हैं
 चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं ॥
 गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है
 नगरनारि को प्यार यथा कादे में हेम अमल है ॥१५॥

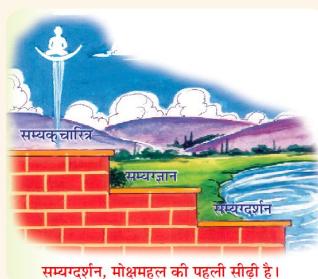
अन्वयार्थ : [जो] जो [सुधी] बुद्धिमान पुरुष (ऊपर कहे हुए) [दोष रहित] पच्चीस दोष रहित (तथा) [गुणसहित] निःशंकादि आठ गुणों सहित [सम्यग्दरश] सम्यग्दर्शन से [सजै हैं] भूषित हैं [उन्हें] [चरितमोहवश] (अप्रत्याख्यानावरणीय) चारित्रमोहनीय कर्म के उदयवश [लेश] किंचित् भी [संजम] संयम [न] नहीं है [पै] तथापि [सुरनाथ] देवों के स्वामी इन्द्र (उनकी) [जजै हैं] पूजा करते हैं; (यद्यपि पै) [गेही] गृहस्थ हैं [पै] तथापि [गृह में] घर में [न रचै] नहीं रचते। [ज्यों] जिस प्रकार [कमल] कमल [जलतैं] जल से [भिन्न] भिन्न है [तथा] [यथा] जिस प्रकार [कादे में] कीचड़ में [हेम] सुवर्ण [अमल है] शुद्ध रहता है, (उसीप्रकार उनका घर में) [नगरनारि कौ] वेश्या के [प्यार यथा] प्रेम की भाँति [प्यार] प्रेम (होता है)।



प्रथम नरक बिन षट भू ज्योतिष, वान भवन षंड नारी
थावर विकलत्रय पशु में नहिं उपजत सम्यकधारी ॥
तीन-लोक तिहुं-काल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी
सकल धरम को मूल यही इस, बिन करनी दुखकारी ॥१६॥

अन्वयार्थ : [सम्यकधारी] सम्यगदृष्टि जीव [प्रथमनरक बिन] पहले नरक के अतिरिक्त [षट भू] शेष छह नरकों में, [ज्योतिष] ज्योतिषी देवों में, [वान] व्यंतर देवों में, [भवन] भवनवासी देवों में [षंड] नुपंसकों में [नारी] स्त्रियों में, [थावर] पाँच स्थारों में, [विकलत्रय] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में तथा [पशु] में पशुओं में [नहिं उपजत] उत्पन्न नहीं होते। [तीनलोक] तीनलोक [तिहुंकाल] तीनकाल में [दर्शन सो] सम्यगदर्शन के समान [सुखकारी] सुखदायक [नहिं] अन्य कुछ नहीं है, [यही] यह सम्यगदर्शन ही [सकल धरमको] समस्त धर्मों का [मूल] मूल है: [इस बिन] इस सम्यगदर्शन के बिना [करनी] समस्त क्रियाएँ [दुखकारी] दुःखदायक हैं।

सम्यगदर्शन के बिना ज्ञान चारित्र के मिथ्यापना



मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा
सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै ॥१७॥

अन्वयार्थ : (यह सम्यगदर्शन) [मोक्षमहल की] मोक्षरूपी महल की [परथम] प्रथम [सीढ़ी] सीढ़ी है; [या बिन] इस (सम्यगदर्शन) के बिना [ज्ञान चरित्रा] ज्ञान और चारित्र [सम्यकता] सच्चाई [न लहै] प्राप्त नहीं करते; इसलिये [भव्य] है भव्य जीवों! [सो] ऐसे [पवित्रा] पवित्र [दर्शन] सम्यगदर्शन को [धारो] धारण करो। [सयाने 'दौल'] है समझदार दौलतराम! [सुन] सुन [समझ] समझ और [चेता] सावधान हो, [काल] समय को [वृथा] व्यर्थ [मत खोवै] न गँवा; (व्योंकि) [जो] यदि [सम्यक्] सम्यगदर्शन [नहिं होवै] नहीं हुआ तो [यह] यह [नरभव] मनुष्य पर्याय [फिर] पुनः [मिलन] मिलना [कठिन है] दुर्लभ है।

सम्यगज्ञान की प्रेरणा



सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ॥१॥

अन्वयार्थ : [सम्यक् श्रद्धा] सम्यग्दर्शन [धारि] धारण करके [पुनि] फि र [सम्यग्ज्ञान] सम्यग्ज्ञानका [सेवहु] सेवन करो; (जो सम्यग्ज्ञान) [बहु धर्मजुत] अनेक धर्मात्मक [स्व-पर अर्थ] अपना और दूसरे पदार्थोंका [प्रगटावन] ज्ञान करानेमें [भान] सूर्य समान है।

सम्यग्दर्शन और ज्ञान में भेद



**सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपकतैं होई ॥२॥**

अन्वयार्थ : [सम्यक् साथै] सम्यग्दर्शनके साथ[ज्ञान] सम्यग्ज्ञान [होय] होता है। [पै] तथापि (उन दोनोंको) [भिन्न] भिन्न [अराधौ] समझना चाहिये; क्योंकि [लक्षण] उन दोनोंके लक्षण (क्रमशः) [श्रद्धा] श्रद्धा करना और [ज्ञान] जानना है तथा [सम्यक्] सम्यग्दर्शन [कारण] कारण है और [ज्ञान] सम्यग्ज्ञान [कारज] कार्य है। [सोई] यह भी [दुहूमें] दोनोंमें [भेद] अन्तर [अबाधौ] निर्बाध है। (जिसप्रकार) [युगपत्] एक साथ [होते हू] होने पर भी [प्रकाश] उजाला [दीपकतैं] दीपककी ज्योतिसे [होई] होता है उसीप्रकार।

सम्यग्ज्ञान के भेद



**तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछि तिन माहिं
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं
अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देश-प्रतच्छा
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जानै जिय स्वच्छा ॥३॥**

अन्वयार्थ : [तास] उस सम्यग्ज्ञानके [परोक्ष] परोक्षऔर [परतछि] प्रत्यक्ष [दो] दो [भेद हैं] भेद हैं; [तिन माहीं] उनमें [मति श्रुत] मतिज्ञान और श्रुतज्ञान [दोय] यह दोनों [परोक्ष] परोक्षज्ञान हैं। (क्योंकि वे) [अक्ष] मनतैं इन्द्रियों तथामनके निमित्तसे [उपजाहीं] उत्पन्न होते हैं। [अवधिज्ञान] अवधिज्ञान और [मनपर्जय] मनःपर्यज्ञान [दो] यह दोनों ज्ञान[देश-प्रतच्छा] देशप्रत्यक्ष [हैं] हैं; (क्योंकि इन ज्ञानोंसे) [जिय] जीव [द्रव्य क्षेत्र परिमाण] द्रव्य और क्षेत्रकी मर्यादा [लिये] लेकर [स्वच्छा] स्पष्ट [जानै] जानता है।

केवलज्ञान



सकल द्रव्य के गुन अनंत, परजाय अनंता
जानै एकै काल, प्रकट केवलि भगवन्ता
ज्ञान समान न आन जगत में सुख कौ कारन
इहि परमामृत जन्मजरामृति-रोग-निवारन ॥४॥

अन्वयार्थ : (जिस ज्ञान से) [केवलि भगवन्ता] केवलज्ञानी भगवान् [सकल द्रव्य के] छहों द्रव्यों के [अनन्त] अपरिमित [गुण] गुणों को और [अनन्ता] अनन्त [परजाय] पर्यायों को [एकै काल] एक साथ [प्रगट] स्पष्ट [जानै] जानते हैं (उस ज्ञान को) [सकल] सकल-प्रत्यक्ष अथवा केवलज्ञान कहते हैं। [जगत में] इस जगत में [ज्ञान समान] सम्पर्क जैसा [आन] दूसरा कोई पदार्थ [सुख कौ] सुख का [न कारन] कारण नहीं है। [इहि] यह सम्पर्क ही [जन्मजरामृति-रोग-निवारन] जन्म, जरा (वृद्धावस्था) और मृत्युरूपी रोगों को दूर करने के लिये [परमामृत] उल्कृष्ट अमृत-समान है।

ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर



कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे
ज्ञानी के छिनमांहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते
मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ॥५॥

अन्वयार्थ : [ज्ञान बिना] सम्पर्क के बिना [कोटि जन्म] करोड़ों जन्मों तक [तप तपैं] तप करने से [जे कर्म] जितने कर्म [झरैं] नाश होते हैं [ते] उतने कर्म [ज्ञानी के] सम्पर्क जीव के [त्रिगुप्ति तैं] मन, वचन और काय की ओर की प्रवृत्ति को रोकने से (निर्विकल्प शुद्ध स्वभाव से) [छिन में] क्षणमात्र में [सहज] सरलता से [टरैं] नष्ट हो जाते हैं। (यह जीव) [मुनिव्रत] मुनियों के महाव्रतों को [धारा] धारण करके [अनन्तबार] अनन्तबार [ग्रीवक] नवें ग्रैवेयक तक [उपजायो] उत्पन्न हुआ, [पै] परन्तु [निज आत्म] अपने आत्मा के [ज्ञान बिना] ज्ञान बिना [लेश] किंचित्मात्र [सुख] सुख [न पायो] प्राप्त न कर सका।

दुर्लभ मनुष्य पर्याय ज्ञानाभ्यास द्वारा सफल



तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजे
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे

यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी इह विध गये न मिले, सुमणि ज्यौं उदधि समानी ॥६॥

अन्वयार्थ : [तातै] इसलिये [जिनवर-कथित] जिनेन्द्र भगवन के कहे हुए [तत्त्व] परमार्थ तत्त्व का [अभ्यास] अभ्यास [करीजे] करना चाहिये और [संशय] संशय [विभ्रम] विपर्यय तथा [मोह] अनध्यवसाय (अनिश्चितता) को [त्याग] छोड़कर [आपो] अपने आत्मा को [लख लीजे] लक्ष्म में लेना चाहिये अर्थात् जानना चाहिये। (यदि ऐसा नहीं किया तो) [यह] यह [मानुष पर्याय] मनुष्य भव [सुकुल] उत्तम कुल और [जिनवानी] जिनवाणी का [सुनिवौ] सुनना [इह विध] ऐसा सुयोग [गये] बीत जाने पर, [उदधि] समुद्र में [समानी] समाये-हूबे हुए [सुमणि ज्यौं] सच्चे रत की भाँति (पुनः) [न मिलै] मिलना कठिन है।

ज्ञान की महिमा



धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै
ज्ञान आपकौ रूप भये, फिर अचल रहावै
तास ज्ञान को कारन, स्व-पर विवेक बखानौ
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनौ ॥७॥

अन्वयार्थ : [धन] पैसा, [समाज] परिवार, [गज] हाथी, [बाज] घोड़ा, [राज] राज्य [तो] तो [काज] अपने काममें [न आवै] नहीं आते; किन्तु [ज्ञान] सम्यग्ज्ञान [आपको रूप] आत्मा का स्वरूप (जो) [भये] प्राप्त होने के [फिर] पश्चात् [अचल] अचल [रहावै] रहता है। [तास] उस [ज्ञान को] सम्यग्ज्ञान का [कारन] कारण [स्व-पर विवेक] आत्मा और परवस्तुओं का भेदविज्ञान [बखानौ] कहा है, (इसलिये) [भव्य] है भव्य जीवों! [कोटि] करोड़ों [उपाय] उपाय [बनाय] करके [ताको] उस भेदविज्ञान को [उर आनौ] हृदय में धारण करो।

सम्यग्ज्ञान की महिमा



जे पूरब शिव गये, जाहिं, अरु आगे जैहैं
सो सब महिमा ज्ञान-तनी, मुनिनाथ कहै हैं
विषय-चाह दव-दाह, जगत-जन अरनि दझावै
तास उपाय न आन, ज्ञान-घनघान बुझावै ॥८॥

अन्वयार्थ : [पूरब] पूर्वकाल में [जे] जो जीव [शिव] मोक्ष में [गये] गये हैं, (वर्तमानमें) [जाहिं] जा रहे हैं [अरु] और [आगे] भविष्य में [जैहैं] जायेंगे [सो] वह [सब] सब [ज्ञान-तनी] सम्यग्ज्ञान की [महिमा] महिमा है -- ऐसा [मुनिनाथ] जिनेन्द्रदेव ने कहा है। [विषय-चाह] पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी [दव-दाह] भयंकर दावानल [जगत-जन] संसारी जीवों रूपी [अरनि] अरण्य (पुराने वन) को [दझावै] जला रहा है [तास] उसकी शान्ति का [उपाय] उपाय [आन] दूसरा [न] नहीं है; (मात्र) [ज्ञान-घनघान] ज्ञानरूपी वर्षका समूह [बुझावै] शान्त करता है।

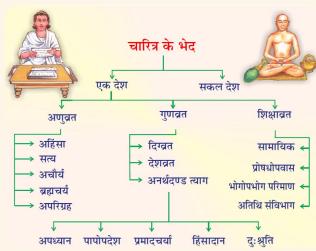
सम्पूर्ण कथन का सार



पुण्य-पाप-फलमाहिं, हरख बिलखौ मत भाई
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई
लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ
तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आत्म ध्याओ ॥९॥

अन्वयार्थ : [भाई] हे आत्मार्थी प्राणी ! [पुण्य-फलमाहिं] पुण्य के फल में [हरख मत] हर्ष न कर और [पाप-फलमाहिं] पाप के फल में [बिलखौ मत] द्वेष न कर (क्योंकि यह पुण्य और पाप) [पुद्गल परजाय] पुद्गल की पर्यायें हैं । (वे) [उपजि] उत्पन्न होकर [विनसै] नष्ट हो जाती हैं और [फिर] पुनः [थाई] उत्पन्न होती हैं । [उर] अपने अन्तर में [निश्चय] निश्चयसे - वास्तव में [लाख बातकी बात] लाखों बातों का सार [यही] इसीप्रकार [लाओ] ग्रहण करो कि [सकल] पुण्य-पापरूप समस्त [जग-दंद-फंद] जन्म-मरण के द्वन्द्व (राग-द्वेष) रूप विकारी- मलिन भाव [तोरि] तोड़कर [नित] सदैव [आत्म ध्याओ] अपने आत्मा का ध्यान करो ।

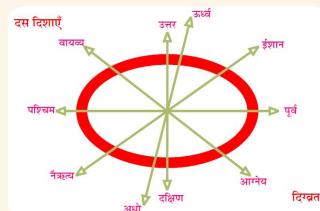
अणुव्रत की प्रेरणा



सम्यज्ञानी होय, बहुरि दिद्धि चारित लीजै
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँहारै
पर-वधकार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै ॥१०॥

अन्वयार्थ : [सम्यज्ञानी] सम्यज्ञानी [होय] होकर [बहुरि] फिर [दिद्धि] द्वारा [चारित] सम्यक्चारित्र [लीजै] का पालन करना चाहिये; [तसु] उसके (उस सम्यक्चारित्र के) [एकदेश] एकदेश [अरु] और [सकलदेश] सर्वदेश (ऐसे दो) [भेद] भेद [कहीजै] कहे गये हैं । (उनमें) [त्रसहिंसा को] त्रस जीवों की हिंसा का [त्याग] करना और [वृथा] बिना कारण [थावर] स्थावर जीवों का [न सँहारै] घात न करना (वह अहिंसा-अणुव्रत कहलाता है) [पर-वधकार] दूसरों को दुःखदायक [कठोर] कठोर (और) [निंद्य] निंद्यनीय [वयन] वचन [नहिं उचारै] न बोलना (वह सत्य-अणुव्रत कहलाता है) ।

गुणव्रत

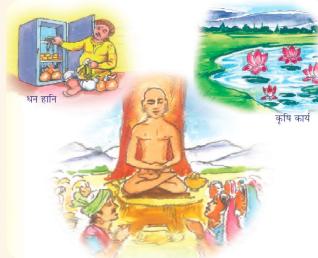


जल-मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता
निज वनिता बिन सकल नारिसौं रहै विरत्ता

अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै ॥११॥

अन्वयार्थ : [जल-मृतिका विन] पानी और मिट्टी के अतिरिक्त [और कछु] अन्य कोई वस्तु [अदत्ता] बिना दिये [नाहिं] नहीं [ग्रहे] लेना (उसे अचौर्याणुव्रत कहते हैं) [निज] अपनी [वनिता विन] स्त्री के अतिरिक्त [सकल नारि सों] अन्य सर्व स्त्रियों से [विरत्ता] विरक्त [रहे] रहना (वह ब्रह्मचर्याणुव्रत है) [अपनी] अपनी [शक्ति विचार] शक्ति का विचार करके [परिग्रह] परिग्रह [थोरो] मर्यादित [राखै] रखना (सो परिग्रह-परिमाणाणुव्रत है) [दस दिश] दस दिशाओं में [गमन] जाने-आने की [प्रमाण] मर्यादा [ठान] रखकर [तसु] उस [सीमा] सीमा का [न नाखै] उल्लंघन न करना (सो दिग्व्रत है)।

देशब्रत



ताहू में फिर ग्राम गली, गृह बाग बजार गमनागमन प्रमाण ठान अन, सकल निवारा ॥१२॥

अन्वयार्थ : [फिर] फिर [ताहू में] उसमें (किन्हीं प्रसिद्ध-प्रसिद्ध) [ग्राम] गाँव, [गली] गली, [गृह] मकान, [बाग] उद्यान तथा [बजार] बाजार तक [गमनागमन] जाने-आने का [प्रमाण] माप [ठान] रखकर [अन] अन्य [सकल] सब का [निवारा] त्याग करना (उसे देशब्रत अथवा देशावकाशिक व्रत कहते हैं।)

अनर्थदण्ड व्रत



काहू की धनहानि, किसी जय-हार न चिन्तै देय न सो उपदेश, होय अघ वनज कृषी तैं ॥१२॥ कर प्रमाद जल भूमि वृक्ष पावक न विराधै असि धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे यश लाधै राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै और हु अनरथ दंड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै ॥१३॥

अन्वयार्थ : १. [काहूकी] किसी के [धनहानि] धन के नाश का, [किसी] किसी की [जय] विजय का (अथवा) [हार] किसी की हार का [न चिन्तै] विचार न करना (उसे अपध्यान-अनर्थदण्डव्रत कहते हैं।) २. [बनज] व्यापार और [कृषी तैं] खेती से [अघ] पाप [होय] होता है; इसलिये [सो] उसका [उपदेश] उपदेश [न देय] न देना (उसे आपोपदेश-अनर्थदण्डव्रत कहा जाता है।) ३. [प्रमाद कर] प्रमाद से (बिना प्रयोजन) [जल] जलकायिक, [भूमि] पृथ्वीकायिक, [वृक्ष] वनस्पतिकायिक, [पावक] अग्निकायिक (और वायुकायिक) जीवों का [न विराधै] घात न करना (सो प्रमादवर्या-अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।) ४. [असि] तलवार, [धनु] धनुष्ट, [हल] हल (आदि) [हिंसोपकरण] हिंसा होने में कारणभूत पदार्थों को [दे] देकर [यश] यश [नहिं लाधै] न लेना (सो हिंसादान-अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।) ५. [राग-द्वेष-करतार] राग और द्वेष उत्पन्न करनेवाली [कथा] कथाएँ [कबहूँ] कभी भी [न सुनीजै] नहीं सुनना (सो दुःश्रुति अनर्थदण्डव्रत कहा जाता है।) [और हु] तथा अन्य भी [अघहेतु] पाप के कारण [अनरथ दंड] अनर्थदण्ड हैं [तिन्हैं] उन्हें भी [न कीजै] नहीं करना चाहिये।

शिक्षाव्रत



धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये
परव चतुष्टयमाहिं, पाप तज प्रोष्ध धरिये
भोग और उपभोग, नियमकरि ममत निवारै
मुनि को भोजन देय फेर, निज करहि अहारै ॥१४॥

अन्वयार्थ : [उर] मन में [समताभाव] निर्विकल्पता अर्थात् शत्य के अभाव को [धर] धारण करके [सदा] हमेशा [सामायिक] सामायिक [करिये] करना (सो सामायिक-शिक्षाव्रत है;) [परव चतुष्टयमाहिं] चार पर्व के दिनों में [पाप] पाप-कार्यों को छोड़कर [प्रोष्ध] प्रोष्ठोपवास [धरिये] करना (सो प्रोष्ध-उपवास शिक्षाव्रत है;) [भोग] एक बार भोगा जा सके ऐसी वस्तुओं का तथा [उपभोग] बारम्बार भोगा जा सके ऐसी वस्तुओं का [नियमकरि] परिमाण करके-मर्यादा रखकर [ममत] मोह [निवारै] छोड़ दे (सो भोग-उपभोग परिमाणव्रत है;) [मुनि को] वीतरागी मुनि को [भोजन] आहार [देय] देकर [फेर] फिर [निज आहारै] स्वयं भोजन करे (सो अतिथि-संविभागव्रत कहलाता है।)

ब्रतों का फल



बारह ब्रत के अतीचार, पन-पन न लगावै
मरण-समय संन्यास धारि तसु दोष नशावै
यों श्रावक-ब्रत पाल, स्वर्ग सोलह उपजावै
तहँतें चय नरजन्म पाय, मुनि है शिव जावै ॥१५॥

अन्वयार्थ : जो जीव [बारह ब्रत के] बारह ब्रतों के [पन पन] पाँच-पाँच [अतीचार] अतीचारों को [न लगावै] नहीं लगाता और [मरण-समय] मृत्यु-काल में [संन्यास] समाधि [धार] धारण करके [तसु] उनके [दोष] दोषों को [नशावै] दूर करता है वह [यों] इस प्रकार [श्रावक ब्रत] श्रावक के ब्रत [पाल] पालन करके [सोलह] सोलहवें [स्वर्ग] स्वर्ग तक [उपजावै] उत्पन्न होता है, (और) [तहँतै] वहाँ से [चय] मृत्यु प्राप्त करके [नरजन्म] मनुष्य-पर्याय [पाय] पाकर [मुनि] मुनि [है] होकर [शिव] मोक्ष [जावै] जाता है।

वैराग्य-जननी बारह भावना



मुनि सकलब्रती बड़भागी भव-भोगनतैं वैरागी
वैराग्य उपावन माईं, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥

अन्वयार्थ : [भाई] हे भव्यजीव! [सकलव्रती] महात्रों के धारक [मुनि] मुनिराज [बड़भागी] बड़े भाग्यवान हैं कि वे [भोगनतैं वैरागी] संसार और भोगों से विरक्त होते हैं और [वैराग्य उपावन माई] वीतरागता को उत्पन्न करने में, माता के समान [चिन्तैं अनुप्रेक्षा] बारह भावनाओं का चिंतवन करते हैं।

बारह भावनाओं का कार्य



**इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥**

अन्वयार्थ : [इन चिंतत] इन (बारह भावनाओं) के चिंतवन से [सम-सुख जागै] समतारूपी सुख प्रकट होता है [जिमि ज्वलन] जैसे अग्नि [पवन के लागै] वायु के लगने से (भक्त उठती है)। [जब ही जिय आतम जानै] जब जीव आत्मस्वरूप को जानता है, [तब ही जिय] तभी जीव [शिवसुख ठानै] मोक्षसुख को प्राप्त करता है।

अनित्य भावना



**जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥**

अन्वयार्थ : [जोबन गृह गौ धन नारी] यौवन, मकान, गाय-भैंस, लक्ष्मी, स्त्री। [हय गय जन आज्ञाकारी] घोड़ा, हाथी, कुटुम्ब, नौकर-चाकर तथा [इन्द्रिय-भोग] पांच इन्द्रियों के भोग-ये सब [सुरधनु चपला चपलाई] इन्द्रधनुष तथा बिजली की चंचलता-क्षणिकता की भाँति [छिन थाई] क्षणमात्र रहनेवाले हैं।

अशरण भावना



**सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि, काल दले ते
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥४॥**

अन्वयार्थ : [सुर असुर खगाधिप जेते] देवों के इन्द्र, असुरों के इन्द्र और खगेन्द्र (गरुड़, हंस) जो-जो हैं, [मृग हरि ज्यों] जिसप्रकार हिरन को सिंह मार डालता है, उसीप्रकार [काल दले] मृत्यु उन सबको नाश करती है। [मणि मंत्र तंत्र बहु होई] मणि, मंत्र, तंत्र बहुत से होने पर भी [मरते न बचावै कोई] मरनेवाले को कोई नहीं बचा सकते।

संसार भावना



चहुँगति दुःख जीव भरै है, परिवर्तन पंच करै है
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ॥५॥

अन्वयार्थ : [चहुँगति दुःख जीव भरै है] चारों गति में जीव दुःख भोगता है और [परिवर्तन पंच करै है] पांच प्रकार से परिभ्रमण करता है; [सब विधि संसार असारा] संसार सर्व प्रकार से असार है, [यामें सुख नाहिं लगारा] इसमें सुख लेशमात्र भी नहीं है।

एकत्व भावना



एकत्वभावना (व्याख्यात सभा व्याप्ति के संग ५)

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एक हि ते ते
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥

अन्वयार्थ : [शुभ-अशुभ करमफल जेते] शुभ और अशुभ कर्म के फल जितने हैं, [भौगे जिय एक हि ते ते] उनको यह जीव अकेला ही भोगता है; [सुत दारा] पुत्र, स्त्री [होय न सीरी] साथी नहीं होते, [सब स्वारथ के हैं भीरी] सब स्वारथ के सगे हैं।

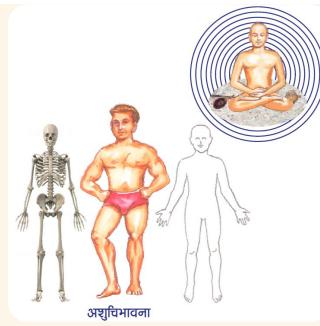
अन्यत्व भावना



जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों है इक मिलि सुत रामा ॥७॥

अन्वयार्थ : [जल-पय-ज्यों जिय-तन मेला] पानी और दूध की भाँति जीव और शरीर मिले हुए हैं, [पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला] तथापि पृथक-पृथक हैं, एकरूप नहीं हैं, [तो प्रकट जुदे] फिर जो स्पष्ट पृथक दिखाई देते हैं - ऐसे [धन धामा] लक्ष्मी, मकान, [सुत रामा] पुत्र और स्त्री आदि [इक मिलि] मिलकर एक [क्यों हैं?] कैसे हो सकते हैं?

अशुचि भावना



पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करे किम यारी ॥८॥

अन्वयार्थ : [पल रुधिर राध] मांस, रक्त, पीव और [मल थैली] विश्व की थैली, [कीकस वसादितैं मैली] हड्डी, चर्बी आदि से अपवित्र, [नव द्वार बहैं घिनकारी] घृणा (ग्लानि) उत्पन्न करनेवाले नौ दरवाजे बहते हैं, [अस देह यारी किमि करै] ऐसे शरीर में प्रेम कैसे किया जा सकता है?

आस्रव-भावना



जो योगन की चपलाई, तातैं है आस्रव भाई आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे ॥९॥

अन्वयार्थ : हे भाई! [जो योगन की चपलाई] जो योगों की चंचलता है, [तातैं आस्रव हू] उससे आस्रव होता है; [आस्रव दुःखकार घनेरे] आस्रव अत्यन्त दुःखदायक है, इसलिए [बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे] बुद्धिमान उसे दूर करते हैं।

संवर भावना



जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना तिनहीं विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

अन्वयार्थ : [जिन पुण्य पाप] जिन्होंने शुभभाव और अशुभभाव [नहिं कीना] नहीं किये; [आतम अनुभव] आत्मा के अनुभव में [चित दीना] मन को लगाया, [तिनहीं विधि] उन्होंने ही कर्मों को [आवत रोके] आने से रोका और [संवर लहि] संवर प्राप्त करके [सुख अवलोके] सुख का साक्षात्कार किया है।

निर्जरा भावना



**निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥**

अन्वयार्थ : [निज काल पाय] अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण होने पर [विधि झरना] कर्म खिर जाते हैं, [तासों निज काज] उससे (सविपाक निर्जरा से) जीव का धर्मरूपी कार्य [न सरना] नहीं होता; [तप करि जो] जो तप द्वारा [कर्म खिपावै] कर्मों का नाश करती है, [सोई शिवसुख दरसावै] वह (अविपाक निर्जरा) मोक्ष का सुख दिखलाती है।

लोक-भावना



**किनहू न करौ न धरै को, षड् द्रव्यमयी न हरै को
सो लोकमाहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥**

अन्वयार्थ : इस लोक को [किनहू न करौ] किसी ने बनाया नहीं है [न धरै को] किसी ने टिका नहीं रखा है, [न हरै को] कोई नाश नहीं कर सकता [षड् द्रव्यमयी] छह प्रकार के द्रव्यमय [सो लोकमाहिं] ऐसे लोक में [बिन समता] समता बिना [जीव नित भ्रमता] सदैव भटकता हुआ जीव [दुख लहै] दुःख सहता है।

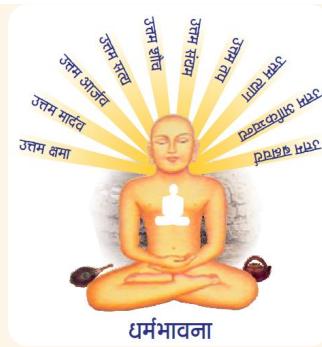
बोधि-दुर्लभ भावना



**अंतिम-ग्रीवकलौं की हद, पायो अनन्त विरियाँ पद
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥१३॥**

अन्वयार्थ : [अंतिम ग्रीवकलौं की हद] नवे ग्रैवेयक तक के पद [पायो अनन्त विरियाँ] अनन्तबार प्राप्त किये, [पर सम्यग्ज्ञान] तथापि सम्यग्ज्ञान [न लाधौ] प्राप्त न हुआ; [दुर्लभ] ऐसे दुर्लभ सम्यग्ज्ञान को [निज में मुनि साधौ] अपने आत्मा में मुनि धारण करते हैं।

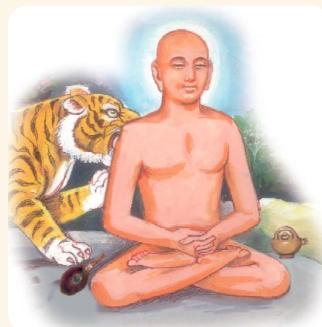
धर्म-भावना



जो भाव मोहतैं न्यारे, द्वग-ज्ञान-व्रतादिक सारे सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे ॥१४॥

अन्वयार्थ : [जो भाव मोह तैं न्यारे] जो भाव, मोह से रहित, [द्वग-ज्ञान-व्रतादिक सारे] साररूप (निश्चय) दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय आदिक [सो धर्म] ऐसे धर्म को [जबै जिय धारै] जब जीव धारण करता है, तब ही [सुख अचल निहारे] अचल सुख (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

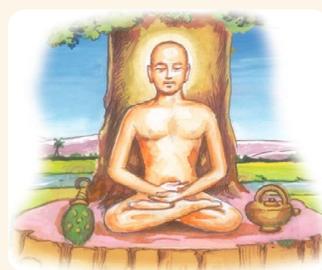
मुनि-धर्म के निरूपण की प्रतिज्ञा



सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

अन्वयार्थ : [सो धर्म] ऐसा रत्नत्रय धर्म [मुनिनकरि धरिये] मुनियों द्वारा धारण किया जाता है, [तिनकी करतूत] उन मुनियों की क्रियाएं [उचरिये] कही जाती है, [भवि प्रानी] हे भव्यजीवों! [ताको सुनिये] उसे सुनो और [अपनी अनुभूति पिछानी] आत्मा को अनुभव द्वारा पहचानो।

पंच महाव्रत



षट्काय जीव न हननतैं, सब विध दरवहिंसा टरी रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयो गहैं अठदश सहस विध शील धर, चिद्रह्म में नित रमि रहैं ॥१॥

अन्वयार्थ : [षट्काय जीव] छह कायके जीवों को [न हननतैं] धात न करने से [सब विध] सर्व प्रकार से [दरवहिंसा] द्रव्य-हिंसा [टरी] दूर हो जाती है और [रागादि भाव] रागादि (राग-द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि) भावों को [निवारतैं] दूर करने से [भावित हिंसा] भाव-हिंसा भी [न अवतरी] नहीं होती, [जिनके] उन मुनियों को [लेश] किंचित् [मृषा] झूठ [न] नहीं होती, [जल] पानी और [मृण] मिट्टी [हा] भी [बिना दीयो] दिये बिना [न गहैं] ग्रहण नहीं करते तथा

|अठदशसहस्र| अठारह हजार |विधि| प्रकार के |शीला| शील (ब्रह्मचर्य) को |धर| धारण
करके |निता| सदा |चिद्वृत्तमें| चैतन्य-स्वरूप आत्मा में |रमि रहैं| लीन रहते हैं।

अपरिग्रह और समिति



अंतर चतुर्दस भेद बाहिर, संग दसधा तैं टलैं
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं
जग-सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं
भ्रमरोग-हर जिनके वचन-मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं ॥२॥

अन्वयार्थ : (वे वीतरागी दिग्म्बर जैन मुनि) |चतुर्दस भेद| छोड़कर प्रकार के |अन्तर| अंतरंग तथा |दसधा| दस प्रकार के |बाहिर| बहिरंग |संग| परिग्रह से |टलैं| रहित होते हैं। |परमाद| प्रमाद (असावधानी) |तजि| छोड़कर |चौकरा| चार हाथ |मही| जमीन |लखि| देखकर |ईर्या| ईयापथ |समिति तैं| समिति से |चलैं| चलते हैं और |जिनके| जिन (मुनिराजों) के |मुखचन्द्र तैं| मुखरूपी चन्द्रमा से |जग सुहितकर| जगत का सच्चा हित करनेवाला तथा |सब अहितकर| सर्व अहित का नाश करनेवाला, |श्रुति सुखद| सुनने में प्रिय लगे ऐसा |सब संशय| समस्त संशयों का |हरैं| नाशक और |भ्रम रोगहर| मिथ्यात्वरूपी रोग को हरनेवाला |वचन-अमृत| वचनरूपी अमृत |झरैं| झरता है।

शेष तीन समिति



छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावकतनैं घर अशन को
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन-पोषते तजि रसन को
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं
निर्जन्तु थान विलोकि तन-मल मूत्र श्लेष्म परिहरैं ॥३॥

अन्वयार्थ : (वीतरागी मुनि) |सुकुल| उत्तम-कुल वाले |श्रावकतनैं| श्रावक के घर और |रसन को| छहों-रस अथवा एक-दो रसों को |तजि| छोड़कर |तन| शरीर को |नहिं पोषतैं| पुष्ट न करते हुए - मात्र |तप| तप की |बढ़ावन हेतु| वृद्धि करने के हेतु से (आहार के) |छ्यालीस| छ्यालीस |दोष बिना| दोषों को दूर करके |अशनको| भोजन को |लैं| ग्रहण करते हैं। |शुचि| पवित्रता के |उपकरण| साधन (कमण्डल) को, |ज्ञान| ज्ञान के |उपकरण| साधन (शास्त्र) को, तथा |संयम| संयम के |उपकरण| साधन (पीछी) को |लखिकैं| देखकर |गहैं| ग्रहण करते हैं और |लखिकैं| देखकर |धरैं| रखते हैं; |मूत्र| पेशाब, |श्लेष्म| श्लेष्म (कफ) |तन-मल| शरीर के मैल को |निर्जन्तु| जीव-रहित |थान| स्थान |विलोकि| देखकर |परिहरैं| त्यागते हैं।

गुप्ति और इंद्रियजय



सम्यक् प्रकार निरोध मन वच काय, आतम ध्यावते
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ॥४॥

अन्वयार्थ : (वीतरागी मुनि) [मन वच काय] मन-वचन-काया का [सम्यक् प्रकार] भली-भाँति-बराबर [निरोध] निरोध करके, जब [आतम] अपने आत्मा का [ध्यावते] ध्यान करते हैं, तब [तिन] उन मुनियोंकी [सुथिर] सुथिर-शांत [मुद्रा] मुद्रा [देखि] देखकर, उन्हें [उपल] पथर समझकर [मृगगण] हिरन (वौपाये प्याणी) समूह [खाज] अपनी खाज (खुजली) को [खुजावते] खुजाते हैं। (जो) [शुभ] प्रिय और [असुहावने] अप्रिय (पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी) [रस] पाँच रस, [रूप] पाँच वर्ण, [गंध] दो गंध, [फरस] आठ प्रकार के स्पर्श, [अरु] और [शब्द] शब्द- [तिनमें] उन सब में [राग-विरोध] राग या द्वेष [न] मुनि को नहीं होते, (इसलिये वे मुनि) [पंचेन्द्रिय जयन] पाँच इन्द्रियों को जीतनेवाला अर्थात् जितेन्द्रिय [पद] पद [पावने] प्राप्त करते हैं।

छह आवश्यक



समता सम्हारैं, थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को
नित करैं श्रुति-रति, करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को
जिनके न न्हौन, न दंतधोवन, लेश अम्बर आवरन
भू माहिं पिछली रयनि में कछु शयन एकासन करन ॥५॥

अन्वयार्थ : (वीतरागी मुनि) [नित] सदा [समता] सामाधिक [सम्हारैं] सम्हालकर करते हैं, [थुति] स्तुति [उचारैं] बोलते हैं। [जिनदेव को] जिनेन्द्र भगवान की [वन्दना] वन्दना करते हैं। [श्रुतिरति] स्वाध्याय में प्रेम [करैं] करते हैं, [प्रतिक्रम] प्रतिक्रमण [करैं] करते हैं, [तन] शरीर की [अहमेव को] ममता को [तजैं] छोड़ते हैं। [जिनके] उन (मुनियों) के [न न्हौन न दंतधोवन] स्नान और दाँतों को स्वच्छ करना नहीं होता, [अंबर आवरन] शरीर ढँकने के लिये वस्त्र [लेश] किंचित् भी उनके [न] नहीं होता और [पिछली रयनिमें] रात्रिके पिछले भाग में [भूमाहिं] धरती पर [एकासन] एक करवट [कछु] कुछ समय तक [शयन करन] शयन करते हैं।

परीषह-जय

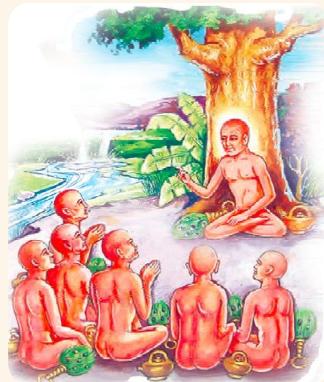


इक बार दिन में लें अहार, खड़े अलप निज-पान में
कचलोंच करत न डरत परिषह सौं, लगे निज ध्यान में

अरि मित्र महल मसान कंचन, काँच निन्दन थुति करन अर्घावितारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन ॥६॥

अन्वयार्थ : (वे वीतरागी मुनि) [इकबार दिन में] दिन में एक बार [खड़े] खड़े रहकर और [निज-पान में] अपने हाथ में रखकर [अल्प] थोड़ा-सा [लें] अहार आहार लेते हैं; [कचलोंच करता] केशलोंच करते हैं, [निज ध्यान में] अपने आत्मा के ध्यान में [लगे] तत्पर होकर [परिषह सौं] (बाइस प्रकार के) परिषहों से [न डरता] नहीं डरते और [अरि मित्र] शत्रु या मित्र, [महल मसान] महल या शमशान, [कंचन काँच] सोना या काँच [निन्दन थुति करन] निन्दा या स्तुति करनेवाले, [अर्घावितारन] पूजा करनेवाले और [असि-प्रहारन] तलवार से प्रहार करनेवाले उन सब में [सदा] सदा [समता धरन] समताभाव धारण करते हैं।

रलत्रय के धारी



तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा
मुनि साथ में वा एक विचरैं चहैं नहिं भवसुख कदा
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७॥

अन्वयार्थ : (वे वीतरागी मुनि सदा) [तप तपैं द्वादश] बाहर प्रकार के तप करते हैं; [वृष दश] दस प्रकार के धर्म को [धरैं] धारण करते हैं और [रतनत्रय] सम्प्रदर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का [सदा] सदा [सेवैं] सेवन करते हैं। [मुनि साथ में] मुनियों के संघ में [वा] अथवा [एक विचरैं] अकेले विचरते हैं और [भवसुख कदा] किसी भी समय (सांसारिक) सुखों की [नहिं चहैं] इच्छा नहीं करते। [यों] इसप्रकार [है] सकल संयम चरिता सकल संयम चारित्र है; [सुनिए स्वरूपाचरण अब] अब स्वरूपाचरण चारित्र सुनो। [जिस होत प्रकटे] जो (स्वरूपाचरण चारित्र) के प्रगट होने से [प्रगटै आपनी निधि] अपने आत्मा की (ज्ञानादिक) सम्पत्ति प्रगट होती है तथा [सब] सर्व प्रकार से [मिटै पर की प्रवृत्ति] पर-वस्तुओं की ओर की प्रवृत्ति मिट जाती है।

स्वरूप-स्थिरता



जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया
वरणादि अरु रागादितैं निज भाव को न्यारा किया
निजमाहिं निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो ॥८॥

अन्वयार्थ : [जिन] उन (वीतरागी मुनिराज) ने [परम पैनी] अलंतं तीक्ष्ण [सुबुधि] सम्यग्ज्ञान अर्थात् भेदविज्ञानरूपी [छैनी डारि] छैनी पटककर [अन्तर भेदिया] अन्तरंग में भेदकर के [निजभाव को] आत्मा के वास्तविक स्वरूप को [वरणादि] वर्ण, रस, गंध, तथा स्पर्शरूप द्रव्य-कर्म से [अरु] और [रागादितैं] राग-द्वेषादिरूप भाव-कर्म से [न्यारा किया] भिन्न करके [निजमाहिं] अपने आत्मा में [निज के हेतु] अपने लिये [निजकर] अपने द्वारा [आपको] आत्मा को [आपै] स्वयं अपने

से [गहो] ग्रहण करते हैं, तब [गुण गुणी] गुण और गुणी (द्रव्य), [ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मूँझार] ज्ञाता (आत्मा), ज्ञान (साधन, करण), ज्ञान का विषय के मध्य [कछु भेद न रहो] किंचित्मात्र भेद (विकल्प) नहीं रहा ।

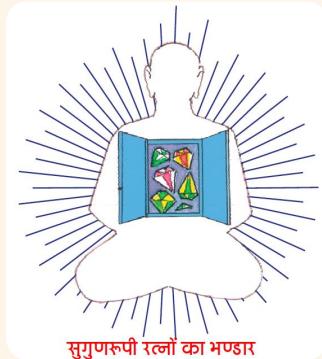
आत्मानुभूति



जहाँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प, वच भेद न जहाँ
चिन्द्राव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दशा
प्रकटी जहाँ द्वग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ॥९॥

अन्वयार्थ : [जहाँ] जिस स्वरूपाचरण-चारित्र में [ध्यान] ध्यान, [ध्याता] ध्याता और [ध्येयको] ध्येय - इन तीनों के [विकल्प] भेद [न] नहीं होते तथा [जहाँ] जहाँ [वच] वचन का [भेद न] विकल्प नहीं होता, [तहाँ] वहाँ तो [चिन्द्राव] आत्मा का स्वभाव ही [कर्म] कर्म, [चिदेश] आत्मा ही [करता] कर्ता, [चेतना] चैतन्यस्वरूप आत्मा ही [किरिया] क्रिया होता है -- अर्थात् कर्ता, कर्म और क्रिया-ये तीनों [अभिन्न] भेदरहित-एक, [अखिन्न] अखण्ड (बाधारहित) हो जाते हैं और [शुध उपयोगकी] शुद्ध-उपयोग की [निश्चल] निश्चल [दशा] पर्याय [प्रगटी] प्रगट होती है; [जहाँ] जिसमें [द्वग-ज्ञान-व्रत] सम्यादर्शन, सम्याज्ञान और सम्यक्चारित्र [ये तीनधा] यह तीनों [एकै] एकरूप (अभेदरूप) से [लसा] शोभायमान होते हैं ।

निर्विकल्प दशा



परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै
द्वग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं
चित् पिंड चंड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितैं ॥१०॥

अन्वयार्थ : (उस स्वरूपाचरण-चारित्र के समय मुनियों के) [अनुभवमें] आत्मानुभव में [परमाण] प्रमाण, [नय] नय और [निक्षेप को] निक्षेप का विकल्प [उद्योत] प्रगट [न दिखै] दिखाई नहीं देता, (परन्तु ऐसा विचार होता है कि) [मैं] मैं [सदा] सदा [द्वग-ज्ञान-सुख-बलमय] अनन्तदर्शन-अनन्तज्ञान-अनन्तसुख और अनन्तवीर्यमय हूँ । [मो विखै] मेरे स्वरूप में [आन] अन्य राग-द्वेषादि [भाव] भाव [नहिं] नहीं है, [मैं] मैं [साध्य] साध्य, [साधक] साधक तथा [कर्म] कर्म [अरु] और [तसु] उसके [फलनितैं] फलों के [अबाधक] विकल्प-रहित [चित् पिंड] ज्ञान-दर्शन-चेतनास्वरूप [चण्ड] निर्मल तथा ऐश्वर्यवान [अखंड] अखंड [सुगुण करंड] सुगुणों का भंडार [पुनि] और [कलनितैं] अशुद्धता से [च्युत] रहित हूँ ।



यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो
 सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्रकैं नाहीं कह्यो
 तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो
 सब लख्यो केवलज्ञानकरि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥११॥

अन्वयार्थ : (स्वरूपाचरण-चारित्र में) |यों| इस प्रकार [चिन्त्य] चिंतन करके [निज में] आत्मस्वरूप में [थिर भये] लीन होने पर [तिन] उन मुनियोंको [जो] जो [अकथ] कहा न जा सके ऐसा (वचन से पार) [आनन्द] आनन्द [लह्यो] होता है [सो] वह आनन्द [इन्द्र] इन्द्र को, [नाग] नागेन्द्र को, [नरेन्द्र] चक्रवर्ती को [वा] अहमिन्द्रको। या अहमिन्द्र को [नहीं कह्यो] कहने में नहीं आया (नहीं होता)। [तब ही] वह स्वरूपाचरण-चारित्र प्रगट होने के पश्चात् जब [शुक्ल ध्यानाग्नि करि] शुक्ल-ध्यानरूपी अग्नि द्वारा [चउघाति विधि कानन] चार घाति-कर्मास्त्रीपी वन [दह्यो] जल जाता है और [केवलज्ञानकरि] केवलज्ञान से [सब] तीनकाल और तीन-लोक में होनेवाले समस्त पदार्थों के सर्वगुण तथा पर्यायों को [लख्यो] प्रत्यक्ष जान लेते हैं, तब [भविलोकको] भव्य-जीवों को [शिवमग] मोक्षमार्ग [कह्यो] बतलाते हैं।

सिद्ध दशा



पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम भू वसैं
 वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं
 संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये
 अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥

अन्वयार्थ : [पुनि] केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् [शेष] शेष चार [अघाति विधि] अघातिया कर्मों का [घाति] नाश करके [छिनमाहिं] कुछ ही समयमें [अष्टम भू] आठवीं पृथ्वी (ईष्ट प्राभार) मोक्ष-क्षेत्र में [वसैं] निवास करते हैं; उनको [वसु कर्म] आठ कर्मों का [विनसैं] नाश हो जाने से [सम्यक्त्व आदिक] सम्यक्त्वादि [सब] समस्त [वसु सुगुण] आठ मुख्य गुण [लसैं] शोभायमान होते हैं। (ऐसे सिद्ध होनेवाले मुक्तात्मा) [संसार खार अपार पारावार] संसाररूपी खारे तथा अगाध समुद्र को [तरि] पार करके [तीरहिं] किनारे पर [गये] पहुँच जाते हैं और [अविकार] विकार-रहित, [अकल] शरीर-रहित, [अरूप] रूप-रहित, [शुचि] शुद्ध-निर्दोष [चिद्रूप] दर्शन-ज्ञान-चेतनास्वरूप तथा [अविनाशी] नित्य-स्थायी [भये] होते हैं।

सिद्ध जीव धन्य



निजमाहिं लोक-अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये
 रहिहैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये

धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया तिनहीं अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥१३॥

अन्वयार्थ : [निजमांहि] (उन सिद्धभगवान के) आत्मा में [लोक-अलोक] लोक तथा अलोक के [गुण, परजाय] गुण और पर्यायें [प्रतिबिम्बित थये] झलकने लगते हैं (ज्ञात होने लगते हैं); वे [यथा] जिसप्रकार [शिव] मोक्षरूप से [परिणये] परिणमित हुए हैं [तथा] उसीप्रकार [अनन्तानन्त काल] अनन्त-अनन्त काल तक [रहिहैं] रहेंगे। [जे] जिन [जीव] जीवों ने [नरभव पाय] पुरुष-पर्याय प्राप्त करके [यह] यह (मुनिपद आदि की प्राप्तिरूप) [कारज] कार्य [किया] किया है, वे जीव [धनि धन्य हैं] धन्य हैं और धन्यवाद के पात्र हैं और [तिनहीं] उन्हीं जीवों ने [अनादि] अनादिकाल से चले आ रहे [पंच प्रकार] पाँच प्रकार के परिवर्तनरूप [भ्रमण] संसार-परिभ्रमण को [तजि] छोड़कर [वर] उत्तम [सुख] सुख [लिया] प्राप्त किया है।

निजहित के लिए प्रेरणा



मुख्योपचार दु भेद यों बढ़भागि रत्नत्रय धरैं अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल-जग-मल हरैं इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ जबलों न रोग जरा गहै, तबलों झटिति निज हित करौ ॥१४॥

अन्वयार्थ : [बढ़भागि] जो महा पुरुषार्थी जीव [यों] इसप्रकार [मुख्योपचार] निश्चय और व्यवहार [दुभेदा] ऐसे दो प्रकार के [रत्नत्रय] रत्नत्रय को [धरैं अरु धरेंगे] धारण करते हैं और करेंगे [तो] वे [शिव] मोक्ष [लहैं] प्राप्त करते हैं और [तिन] उन जीवों का [सुयश-जल] सुकीर्तिरूपी जल [जग-मल] संसाररूपी मैल को [हरैं] नाश करता है। [इमि] ऐसा [जानि] जानकर [आलस] प्रमाद (स्वरूप में असावधानी) [हानि] छोड़कर [साहस] पुरुषार्थ [ठानि] करके [यह] यह [सिख] शिक्षा-उपदेश [आदरौ] ग्रहण करो कि [जबलों] जब तक [रोग जरा] रोग या वृद्धावस्था [न गहै] न आये [तबलों] तब तक [झटिति] शीघ्र [निज हित] आत्मा का हित [करौ] कर लेना चाहिये।

हेय उपादेय



यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये कहा रच्यो पर पद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुख सहै अब "दौल"! होउ सुखी स्वपद-रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५॥

अन्वयार्थ : [यह] यह [राग-आग] रागरूपी अग्नि [सदा] अनादिकाल से निरन्तर जीव को [दहै] जला रही है, [तातैं] इसलिये [समामृत] समतारूप अमृत का [सेइये] सेवन करना चाहिये। [विषय-कषाय] विषय-कषाय का [चिर भजे] अनादिकाल से सेवन किया है, [अब तो] अब तो [त्याग] उसका त्याग करके [निजपद] आत्म-स्वरूप को [बेइये] जानना चाहिये (प्राप्त करना चाहिये)। [पर पद में] पर-पदार्थों में (परभावों में) [कहा] क्यों [रच्यो] आसक्त-सन्तुष्ट हो रहा है? [पद यहै] यह पद [न तेरो] तेरा नहीं है। [क्यों दुख सहै] दुःख किसलिये सहन करता है? [दौल!] हे दौलतराम! [अब] अब [स्वपद] अपने आत्मपद (सिद्धपद) में [रचि] लगकर [सुखी] सुखी [होउ] होओ!

[यह] यह [दाव] अवसर [मत चूकौ] न गँवाओ!

प्रशस्ति छन्द

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख
 कर्यों तत्त्व-उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख
 लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल
 सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥

अन्वयार्थ : पण्डित बुधजनकृत छहढाला के कथन का आधार लेकर (पंडित जनों के लिए) मैंने (दौलतराम ने) विक्रम संवत् १८९९, वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) के दिन इस छहढाला ग्रन्थ की रचना की है। मेरी अल्पबुद्धि तथा प्रमादवश उसमें कहीं शब्द की या अर्थ की भूल रह गई हो तो बुद्धिमान उसे सुधारकर पढ़ें, ताकि जीव संसार-समुद्र को पार करने में शक्तिमान हो।



छहढाला



पद्मरि छंद

इस विधि भववन के मांहि जीव, वश मोह गहल सोता सदीव
 उपदेश तथा सहजै प्रबोध, तबही जागै ज्यों उठत जोध ॥१॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार संसाररूपी वन मे मोह-वश पड़ा जीव बेसुध होकर सदा गहरी निद्रा मे सोया हुआ है। परन्तु जब आत्मज्ञानी गुरु के उपदेश से अथवा पूर्व-संस्कार के बल से वह मोह-निद्रा से जागा / जिस प्रकार रण मे मूर्छिंत हुआ योद्धा फिर से जाग गया हो, उसी प्रकार यह संसारी-जीव मोह-निद्रा दूर करके जाग गया।

जब चिंतवत अपने माहिं आप, हूँ चिदानन्द नहिं पुन्य-पाप
 मेरो नाहीं है राग भाव, यह तो विधिवश उपजै विभाव ॥२॥

अन्वयार्थ : आत्मभान करके जब यह संसारी मोही-जीव जाग गया तब ही अपने अन्तरंग मे अपने स्वरूप का ऐसा चिन्तवन करने लगा कि मैं चिदानन्द हूँ, पुण्य-पाप मैं नहीं हूँ, रागभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है, वह तो कर्मवश उत्पन्न हुआ विभाव भाव है।

हूँ नित्य निरंजन सिद्ध समान, ज्ञानावरणी आच्छाद ज्ञान
 निश्चय सुध इक व्यवहार भेव, गुण-गुणी अंग-अंगी अछेव ॥३॥

अन्वयार्थ : मैं सिद्ध-समान नित्य अविनाशी जीव-तत्त्व है, द्रव्य-कर्म, नौकर्म और भावकर्म से रहित हूँ। ज्ञानावरणी कर्म के उदय से मेरा ज्ञान अप्रगट है। निश्चय से मैं अतीन्द्रिय महापादार्थ हूँ, गुण-गुणी भेद अथवा अंश-अंशी भेद आदि सर्व-भेद कल्पना तो व्यवहार से है। मैं तो अभेद हूँ।

मानुष सुर नारक पशुपर्याय, शिशु युवा वृद्ध बहुरूप काय
 धनवान दरिद्री दास राय, ये तो विडम्ब मुझको न भाय ॥४॥

अन्वयार्थ : तथा मनुष्य-देव नारकी व पशु पर्याय अथवा बालक, जवान, वृद्ध इत्यादि अनेक रूप शरीर की ही अवस्थाये हैं तथा धनवानपना, दासपना, राजापना ये सभी औपाधिक भाव विडम्बना है - उपाधि है, वे कुछ भी मुझे प्रिय नहीं हैं, मेरे शुद्ध ज्ञायक स्वरूप में ये कुछ भी शोभता नहीं।

रस फरस गंध वरनादि नाम, मेरे नाहीं मैं ज्ञानधाम
 मैं एकरूप नहिं होत और, मुझमें प्रतिबिम्बित सकल ठौर ॥५॥

अन्वयार्थ : स्पर्श-रस-गंध-वर्ण आदि अथवा व्यवहार नाम आदि मेरे नहीं, ये सभी तो पुद्गल द्रव्य के हैं, मैं तो ज्ञानधाम हूँ। मैं तो सदाकाल एकरूप रहने वाला परमात्मा हूँ, अन्यरूप कभी भी नहीं होता। मेरे ज्ञान-दर्पण में तो समस्त पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं।

तन पुलकित उर हरषित सदीव, ज्यों भई रंकगृह निधि अतीव
 जब प्रबल अप्रत्याख्यान थाय, तब चित परिणति ऐसी उपाय ॥६॥

अन्वयार्थ : ऐसा भेदविज्ञान पूर्वक सम्यक श्रद्धान होने पर जीव सदा ही अतिशय प्रसन्न होता है, आनन्दित होता है। हृदय में निरन्तर हर्ष वर्तने से शरीर भी पुलकित हो जाता है। जिस प्रकार दरिद्री के घर में अत्यधिक धन-निधि के प्रगट होने पर वह प्रसन्न होता है, उसी प्रकार यह सम्बद्धिं जीव अन्तर में निजानन्द मूर्ति भगवान आत्मा को देखकर प्रसन्न होता है। ऐसा सम्यकदर्शन हो जाने पर जब तक अप्रत्याख्यान कषाय की प्रबलता रूप उदय रहता है तब तक उस सम्बद्धिं की चित्त परिणति कैसी होती है - उसे अब यहाँ पर कहते हैं।

सो सुनो भव्य चित धार कान, वरणत हूँ ताकी विधि विधान सब करै काज घर मांहि वास, ज्यों भिन्न कमल जल में निवास ॥७॥

अन्वयार्थ : हे भव्य जीवों! तुम चित लगाकर उस भेद-विज्ञानी की परिणति को सुनो। उस अविरत सम्बद्धिं के विधि-विधान का मैं वर्णन करता हूँ। स्वानुभव बोध का जिसे लाभ हुआ है, ऐसा वह जीव घर-कुटम्ब के बीच में रहता है तथा सभी गृहकार्य, व्यापार आदि भी करता दिखाई देता है, परन्तु जैसे जल में कमल का वास होने पर भी वह जल से भिन्न अलिप्त रहता है। उसी प्रकार गृहवास में रहता होने पर भी धर्मी जीव उस घर, कुटम्ब, व्यापार आदि से भिन्न-अलिप्त एवं उदास रहता है।

ज्यों सती अंग माहीं सिंगार, अति करत प्यार ज्यों नगर नारि ज्यों धाय चखावत आन बाल, त्यों भोग करत नाहीं खुशाल ॥८॥

अन्वयार्थ : जैसे शीलवान स्त्री के शरीर का श्रंगार पर-पुरुष के प्रति राग के लिए नहीं होता, जैसे वेश्या अतिशय-प्रेम दिखाती है परन्तु वह अन्तरंग का प्रेम नहीं होता और जैसे धाय-माता अन्य दूसरे के बालक को दूध पिलाती है, परन्तु अन्तरंग में वह धाय उस बालक को पराया ही जानती है; ठीक उसी प्रकार सम्बद्धिं जीव संसार के भोगों को भोगता हुआ दिखता है, तथापि उसे उन भोगों में खुशी नहीं, उनमें वह सुख नहीं मानता, उनसे तो वह अन्तरंग श्रद्धान में विरक्त ही है।

जब उदय मोह चारित्र भाव, नहिं होत रंच हू त्याग भाव तहाँ करै मंद खोटी कषाय, घर में उदास हो अथिर थाय ॥९॥

अन्वयार्थ : जबतक उसे चारित्र-मोह रूप कर्म प्रकृति का तीव्र उदय रहता है तबतक वह जीव रंचमात्र भी त्याग भावरूप व्रत-धारण नहीं कर सकता है। परन्तु वह अशुभ रूप कषायों को शुभभाव रूप करता है और वह अस्थिरपने वश उदास चित वाला होकर घर में रहता हुआ दिखता है।

अथिर-भावना आयु घटे तेरी दिन-रात, हो निश्चिंत रहो क्यों भ्रात यौवन तन धन किंकर नारि, हैं सब जल बुद्बुद उनहारि ॥१॥

अन्वयार्थ : हे भाई! तेरी आयु दिन-रात घटती ही जा रही है फिर भी तू निश्चिंत कैसे हो रहा है? यह यौवन, शरीर, लक्ष्मी, सेवक, स्त्री आदि सभी पानी के बुलबुले समान क्षण-भंगुर हैं।

अशरण-भावना पूरण आयु बढे छिन नाहिं, दिये कोटि धन तीरथ मांहि इन्द्र चक्रपति हू क्या करैं, आयु अन्त पर वे हू मरैं ॥२॥

अन्वयार्थ : आयु समाप्त होने पर एक क्षण भी बढ़ती नहीं, भले करोड़ों रुपया-धनादि तीर्थों पर दान करो। इन्द्र चक्रवर्ती भी क्या करे? आयु पूर्ण होने पर वे भी मरते हैं।

संसार-भावना यों संसार असार महान, सार आप में आपा जान सुख से दुख, दुख से सुख होय, समता चारों गति नहिं कोय ॥३॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार यह संसार अत्यन्त असार है, उसमें अपना आत्मा ही मात्र सार है। संसार में सुख के पश्चात दुःख एवं दुःख के पश्चात सुखरूप आकुलता होती ही रहती है। चारों गतियों में कहीं भी लेशमात्र सुख शान्ति नहीं है।

एकत्व-भावना अनंतकाल गति-गति दुख लह्यो, बाकी काल अनंतो कह्यो सदा अकेला चेतन एक, तो माहीं गुण वसत अनेक ॥४॥

अन्वयार्थ : इस जीव ने अनादिकाल से चारों ही गतियों में दुख ही पाया और बाकी अनन्तकाल पर्यन्त चारों-गतियां रहने वाली हैं। चारों-गति में जीव अकेला ही रहता है। तू चेतन एक है तो भी उसमें अनन्त गुण बसते हैं - सदाकाल विद्यमान रहते हैं।

अन्यत्व-भावना

तू न किसी का तेरा न कोय, तेरा सुख दुख तोकों होय
याते तोकों तू उर धार, पर द्रव्यनतें ममत निवार ॥५॥

अन्वयार्थ : तू अन्य किसी का नहीं और अन्य भी तेरा कोई नहीं है। तेरा सुख-दुख तुझको ही होता है, इसलिये पर-द्रव्य पर-भावों से भिन्न अपने स्वरूप को तू अन्तर में धारण कर एवं समस्त पर-द्रव्य, पर-भावों से मोह छोड़।

अशुचि-भावना

हाड़ मांस तन लिपटी चाम, रुधिर मूत्र- मल पूरित धाम
सो भी थिर न रहे क्षय होय, याको तजे मिले शिव लोय ॥६॥

अन्वयार्थ : हाड़-मांस से भरा हुआ यह शरीर ऊपर से चमड़ी से मढ़ा हुआ है, अन्दर तो रुधिर मल-मूत्रादि से भरा हुआ धाम है। ऐसा होने पर भी वह स्थिर तो रहता ही नहीं, निश्चयकर क्षय को प्राप्त हो जाता है। देह से एकत्व-ममत्व हटते ही जीव को मोक्षमार्ग और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

आस्रव-भावना

हित अनहित तन कुलजन मांहि, खोटी बानि हरो क्यों नाहिं
याते पुद्गल-करमन जोग, प्रणवे दायक सुख-दुख रोग ॥७॥

अन्वयार्थ : शरीर, कुटुम्बी-जन इत्यादि में हित-अनहितरूप मिथ्या प्रवृत्ति को तू क्यों नहीं छोड़ता? इस मिथ्या प्रवृत्ति से तो पुद्गल कर्मों का आस्रव-बन्ध होता है, जो कि साता-असातरूप सुखदुख रोग को देने वाला होकर परिणमता है।

संवर-भावना

पांचों इन्द्रिन के तज फैल, चित्त निरोध लाग शिव- गैल
तुझमे तेरी तू करि सैल, रहो कहा हो कोल्हू बैल ॥८-संवर॥

अन्वयार्थ : तू पाँचों-इन्द्रियों के विषयों को रोककर, चित्त निरोध करके (संकल्प-विकल्प रूप मिथ्याभावों का परिहार करके) मोक्षमार्ग में लग जाना। तू अपने को जड़-पत्थर सदृश कर अपने पुरुषार्थ में देरी क्यों कर रहा है? व्यर्थ ही कोल्हू के बैल की भान्ति क्यों भटक रहा है।

निर्जरा-भावना

तज कषाय मन की चल चाल, ध्यावो अपनो रूप रसाल
झड़े कर्म-बंधन दुखदान, बहुरि प्रकाशै केवलज्ञान ॥९॥

अन्वयार्थ : तू कषाय एवं मन की चंचल वृत्ति को छोड़कर, आनन्द-रस से भरे हुये अपने निज-स्वरूप को ध्याओ, जिससे कि दुखदायी कर्म झड जावे और केवल-ज्ञान प्रकाश प्रगट हो।

लोक-भावना

तेरो जन्म हुओ नहिं जहाँ, ऐसा खेतर नाहीं कहाँ
याही जन्म-भूमिका रचो, चलो निकसि तो विधि से बचो ॥१०॥

अन्वयार्थ : सम्पूर्ण लोक में ऐसा कोई क्षेत्र बाकी नहीं जहाँ तेरा जन्म न हुआ हो। तू इसी जन्मभूमि में मोहित होकर क्यों मग्न हो रहा है? तू सम्यक पुरुषार्थी बनकर इस लोक से निकल अर्थात् अशरीरी जो सिद्धपद उसमें स्थिर हो। तभी तू सकल कर्म-बन्धन से छूट सकेगा।

बोधि-भावना

सब व्यवहार क्रिया को ज्ञान, भयो अनंती बार प्रधान
निपट कठिन 'अपनी' पहिचान, ताको पावत होत कल्याण ॥११॥

अन्वयार्थ : सर्व व्यवहार-क्रियाओं का ज्ञान तो तुझे अनन्ती बार हुआ, परन्तु जिसकी प्राप्ति से कल्याण होता है ऐसे निज-विदानन्द घनस्वरूप की पहचान अत्यन्त दुर्लभ है। अतः उसही की पहचान करना योग्य है, ऐसा तू जान।

धर्म स्वभाव आप सरधान, धर्म न शील न न्हौंन न दान 'बुधजन' गुरु की सीख विचार, गहो धाम आतम सुखकार ॥१२॥

अन्वयार्थ : निज-स्वभाव का श्रद्धान करना ही धर्म है। धर्म न तो बाह्य शीलादि पालने में है, न स्नान करने में है और न दानादि देने में है। हे बुधजन! तुम श्रीगुरु के इस उपदेश पर विचार करो और निज-स्वरूप का निर्णय करके आत्मधर्म को ग्रहण करो।

सबकी रक्षा युत न्याय नीति, जिनशासन गुरु की दृढ़ प्रतीति बहु रुले अर्द्ध-पुद्गल प्रमान, अंतरमुहूर्त ले परम थान ॥१०॥

अन्वयार्थ : और वह सम्यग्दृष्टि जीव सभी जीवों की रक्षा-सहित न्याय-नीति से प्रवर्त्ता है, सर्वज्ञ भगवान के उपदेश को एवं सच्चे-गुरु की द्रढ़-प्रतीति करता है। यदि सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो जावे तो यह अधिक से अधिक अर्द्ध पुद्गल-परावर्तन प्रमाण काल तक संसार में रह सकता है और यदि उग्र पुरुषार्थ साथे तो शीघ्र ही अन्तरमुहूर्त मात्र काल में परमधाम रूप निर्वाण सुख को प्राप्त कर लेता है।

वे धन्य जीव धन भाग सोय, जाके ऐसी परतीत होय ताकी महिमा है स्वर्ग लोय, बुधजन भाषे मोतैं न होय ॥११॥

अन्वयार्थ : जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है, वे जीव धन्य हैं, वही धन्य भाग्य है। स्वर्गलोक में भी उनकी प्रशंसा होती है, ज्ञानी-जन भी उनकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु बुधजन कवि कहते हैं कि मुझसे तो ऐसे आत्मज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता है।

सुन रे जीव कहत हूँ तोकों, तेरे हित के काजै हो निश्वल मन जो तू धारे, तब कछु-इक तोहि लाजे ॥ जिस दुख से थावर तन पायो, वरन सको सो नाहीं अठदश बार मरो अरु जीयो, एक स्वास के माहीं ॥१॥

अन्वयार्थ : हे जीव! ध्यान पूर्वक सुन, तेरे हित के लिये तुझको कहता हूँ। जो यह हित की बात स्थिर-चित्त होकर तू अब धारण करेगा तो तुझे कुछ तो लज्जा आवेगी कि अरे! अभी तक यह मैंने क्या किया? अज्ञान से मैं कितना दुखी हुआ। एकेन्द्रिय स्थावर शरीर धारण कर जो अत्यन्त दुख भोगे, उसे शब्दों में वर्णन किया जा सके - ऐसा नहीं है।

काल अनतानन्त रह्यो यों, पुनि विकलत्रय हूवो बहुरि असैनी निपट अज्ञानी, छिनछिन जीओ मूवो ॥ ऐसे जन्म गयो करमन-वश, तेरो जोर न चाल्यो पुन्य उदय सैनी पशु हूवो, बहुत ज्ञान नहिं भाल्यो ॥२॥

अन्वयार्थ : हे जीव! इसप्रकार तू अनन्तानन्त काल पर्यन्त एकेन्द्रिय पर्याय में रहा, पश्चात कभी दो इन्द्रियादि विकलत्रय पर्याय वाला हुआ, कदाचित् पंचेन्द्रिय-पर्याय भी पाई तो असंजी महा-अज्ञानी रहा और क्षण-क्षण में जन्म-मरण किया। इस प्रकार अज्ञान से कर्मदय वश होकर तूने अनन्त जन्म धारण किये, वहाँ तेरा कुछ पुरुषार्थ नहीं हो सका, पश्चात पुण्योदय से कदाचित् संज्ञी-पशु भी हुआ तो भी वहाँ तू भेदज्ञान प्राप्त नहीं कर सका।

जबर मिलो तब तोहि सतायो, निबल मिलो ते खायो मात त्रिया-सम भोगी पापी, तातें नरक सिधायो ॥ कोटिन बिच्छु काटत जैसे, ऐसी भूमि तहाँ है रुधिर-राध जल छार बहे जहाँ, दुर्गन्ध निपट तहाँ है ॥३॥

अन्वयार्थ : तुझ से बलवान पशुओं ने तुझे सताया और निर्बल मिला तो तूने उसे मारकर खाया। पशु दशा में तूने माता को स्त्री समान भोगा, इसलिये तू पापी होकर नरकों में जा पड़ा। जहाँ की भूमि ऐसी कठोर है कि उसका स्पर्श होते ही मानों करोड़ों बिच्छु काटते हो - ऐसा दुख होता है और जहाँ अत्यन्त दुर्गन्ध-युक्त सड़े लहू से भरी खरे-जल जैसी वैतरणी नदी बहती है।

घाव करै असिपत्र अंग में, शीत ऊष्ण तन गाले कोई काटे करवत कर गह, कोई पावक जालें ॥

**यथायोग सागर-थिति भुगते, दुख को अंत न आवे
कर्म-विपाक इसो ही होवे, मानुष गति तब पावै ॥४॥**

अन्वयार्थ : नरक में असिपत्र अंग पर पड़ते ही धाव कर देते हैं। अत्यधिक शीत एवं प्रचन्द गर्मी देह को गला देती है। कोई नारकी दूसरे नारकी को पकड़कर करोंत से काट डालते हैं और अग्नि में जला देते हैं। आयु बन्धन वश सागरोपम की स्थिति पर्यन्त इस प्रकार के महादुःखों को भोगते पार नहीं आता - वहाँ कर्म का विपाक ऐसा ही होता है। उसे पूर्णकर कदाचित मन्द-कषाय अनुसार शुभ-कर्म का विपाक होने पर कोई नारकी नरक में से निकलकर मनुष्यगति प्राप्त करता है।

**मात उदर मे रहो गेंद है, निकसत ही बिललावे
डंभा दांत गला विष फोटक, डाकिन से बच जावे ॥
तो यौवन में भामिनि के संग, निशि-दिन भोग रचावे
अंधा है धंधे दिन खोवै, बूढ़ा नाड़ हिलावे ॥५॥**

अन्वयार्थ : मनुष्यगति में भी माता के गर्भ में संकुचित होकर गेद की तरह नव-मास तक रहता है और पीछे जन्मते समय त्रास से बिल्लाता है। बालकपन में अनेक प्रकार के रोग जहरीले फोड़े, चेचक, दाँत-गले आदि के रोग आदि से कदाचित बच जावे तो जवानी में निशदिन पत्नी के साथ भोग-विलास में ही मग्न रहता है, नये-नये भोग रुचाता है और व्यापार धर्मों में अन्धा होकर जिन्दगी व्यतीत कर देता है। जब वृद्ध हो जाता है तब मस्तक आदि अंग कांपने लग जाते हैं -- इस प्रकार मूढ़ मोही जीव, आत्मा के हित का उपाय किये बिना मनुष्य-भव व्यर्थ ही गंवा देता है।

**जम पकडे तब जोर न चाले, सैनहि सैन बतावै
मंद कषाय होय तो भाई, भवनत्रिक पद पावै ॥
पर की संपति लखि अति झूरे, कै रति काल गमावै
आयु अंत माला मुरझावै, तब लखि लखि पछतावे ॥६॥**

अन्वयार्थ : जब मरण काल आ उपस्थित हो तब इस जीव का कुछ भी जोर नहीं चलता, बोल भी नहीं सकता, अतः मन की बात इशारा कर-करके बतलाता है। इस प्रकार कुमरण भाव से मरकर जो मन्द-कषाय रूप भाव हो तो भवनवासी-व्यन्तर या ज्योतिषी - इन हल्की जाति के देवों में उत्पन्न होता है। वहाँ अन्य दूसरे बड़े वैभवान देवों की सम्पदा देखकर खूब कुढ़ता है। अथवा विषय-क्रीड़ा रूप रति में ही काल गंवाता है। आयु का अन्त आने पर उस देव की मन्दार-माला मुरझाने लगती है, उसे देखकर वह जीव बहुत ही पछताता है।

**तह तैं चयकर थावर होता, रुलता काल अनन्ता
या विध पंच परावृत पूरत, दुख को नाहीं अन्ता ॥
काललब्धि जिन गुरु-कृपा से, आप आप को जानो
तबही 'बुधजन' भवदधि तिरके, पहुँच जाय शिव-थाने ॥७॥**

अन्वयार्थ : और वह देव आर्त्थान पूर्वक देवलोक से चयकर स्थावर हो जाता है। इसप्रकार अज्ञान से संसार में भ्रमते-भ्रमते जीव ने अनन्त काल पर्यन्त पंच-परावर्तन किया और अनन्त दुख पाया। निज काल-लब्धि रूप सुसमय आने पर जिन गुरु की कृपा से जब आत्मा स्वयं अपना स्वरूप जानले, मानले और अनुभव करले तब वह जीव भव-समुद्र से तिर कर निवार्ण रूप सिद्धपद में पहुँच जाता है, जहाँ पाश्वत सुखी रहता है।

सोरठा

**ऊग्यो आतम सूर, दूर भयो मिथ्यात-तम
अब प्रगटे गुणभूर, तिनमें कछु इक कहत हूँ ॥१॥**

अन्वयार्थ : सम्पत्क्व होते ही आत्मारूपी सूर्य उदित हो गया और मिथ्यात् रूपी अन्धकार दूर हुआ, वहीं पर अनन्त गुणों का समूह भगवान-आत्मा भी प्रगट हो गया, उनमें से कुछ एक गुणों को यहाँ पर कहता हूँ।

**शंका मन में नाहिं, तत्वारथ सरधान में
निरवांछा चित मांहि, परमारथ में रत रहै ॥२॥
नेक न करत गिलान, बाह्य मलिन मुनि तन लखे**

नाहीं होत अजान, तत्त्व कुतत्त्व विचार में ॥३॥

उर में दया विशेष, गुण प्रकटैं औगुण ढंके
शिथिल धर्म मे देख, जैसे - तैसे दृढ़ करै ॥४॥

साधर्मी पहिचान, करैं प्रीति गौ वत्स सम
महिमा होत महान्, धर्म काज ऐसे करै ॥५॥

अन्वयार्थ : ऐसे आत्मज्ञानी जीव के मन में कभी भी

- तत्त्वार्थ श्रद्धान में शंका नहीं होती, मुक्ति मार्ग साधने मे रत रहते हैं
- चित्त मे दूसरी अन्य कोई वांछा नहीं होती है।
- मुनिजनों के देह की मलिनता देखकर जरा भी ग्लानि नहीं करते हैं।
- तत्त्व और कुतत्त्व के निर्णय मे मूर्ख नहीं रहते हैं।
- अन्तर हृदय मे सर्व जीवों के प्रति विशेष दया रूप कोमल परिणाम रहता है, धर्मात्मा के गुणों को प्रसिद्ध करते हैं तथा अवगुणों को ढांकते हैं।
- धर्मात्मा जीवों को धर्म मे शिथिल होता जाने तो हर सम्बव उपाय के द्वारा उन्हे मोक्षमार्ग मे स्थिर करते हैं।
- साधर्मी बम्बुओं को देखकर उनके प्रति गौ-वत्स समान प्रीति करते हैं।
- ऐसे सभी धर्म कार्यों को करते हैं कि जिससे धर्म की अतिशय महिमा प्रसिद्ध हो -

इत्यादि प्रमाण सहित सम्यक्त्व होने पर निःशंकितादि आठ गुण तत्काल प्रगट हो जाते हैं।

मद नहिं जो नृप तात, मद नहिं भूपति माम को
मद नहिं विभव लहात, मद नहिं सुन्दर रूप को ॥६॥

मद नहिं जो विद्वान, मद नहिं तन में जोर को
मद नहिं जो परधान, मद नहिं संपति कोष को ॥७॥

हूवो आत्म ज्ञान, तज रागादि विभाव पर
ताको है क्यों मान, जात्यादिक वसु अथिर को ॥८॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दृष्टि जीव का

1. पिता राजा होय तो उसका भी कुलमद नहीं होता है।
2. मामा राजा होय तो उसका भी जातिमद नहीं होता है।
3. वैभव धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति होने का भी मद नहीं होता है।
4. सुन्दर रूप लावण्य का भी मद नहीं होता है।
5. ज्ञान का भी मद नहीं होता है।
6. शरीर में विशेष ताकत बल होय उसका भी मद नहीं होता है।
7. लोक मे कोई मुखिया प्रधान पद वगैरह अधिकार का भी मद नहीं होता है।
8. धन-सम्पति कोष का भी मद नहीं होता है।

जिससे रागादि विभाव भावों को छोड़कर उनसे भिन्न आत्मा का ज्ञान प्रगट किया है उसको जाति आदि आठ प्रकार को अस्थिर नाशवान वस्तुओं का मद कैसे हो सकता है ? कभी भी नहीं हो सकता है। इस तरह से सम्यग्दृष्टि जीव को आठ प्रकार के मदों का अभाव वर्तता है।

बन्दत हैं अरिहंत, जिन-मुनि जिन-सिद्धान्त को
नमें न देख महन्त, कुगुरु कुदेव कुधर्म को ॥९॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दृष्टि जीव अरिहन्त जिनदेव, जिन मुद्राघारी मुनि मौर जिन सिद्धान्त को ही वन्दन करता है, परन्तु कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को चाहे वे लोक मे कितने ही महान दिखाई देते हो तो भी उन्हें वन्दन नहीं करता है - इस प्रकार ज्ञानी जीव को तीन मूढ़ताओं का अभाव होता ही है।

कुत्सित आगम देव, कुत्सित गुरु पुनि सेवकी
परशंसा षट भेव, करै न सम्यक्वान हैं ॥१०॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दृष्टि जीव कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरु सेवक, कुदेव सेवक तथा कुधर्म सेवक - यह छह अनायतन दोष कहलाते हैं, उनकी भक्ति-विनय और पूजनादि तो दूर रही, किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव उनकी प्रशंसा भी नहीं करता, क्योंकि उनकी प्रशंसा करने से भी सम्यक्त्व मे दोष लगता है। इस प्रकार शंकादि आठ दोष, आठ मद, तीन मूढ़ता और छह अनायतन - ये पच्चीस दोष जिसमे नहीं पाये जाते, वह जीव सम्यग्दृष्टि है।

प्रगटो ऐसो भाव, कियो अभाव मिथ्यात्व को बन्दत ताके पाँय, 'बुधजन' मन-वच-कायतै ॥१॥

अन्वयार्थ : जिस जीव ने ऐसा निर्मल भाव प्रगटाया है और मिथ्यात्व का अभाव किया है, उस ज्ञानी के चरणों की मैं (बुधजन) मन-वचन-काया से बन्दना करता हूँ।

चाल छंद

तिर्यच मनुज दोउ गति में, व्रत धारक श्रद्धा चित में
सो अगलित नीर न पीवै, निशि भोजन तजत सदीवै ॥१॥

अन्वयार्थ : सम्पर्दशन सहित व्रत धारण करने वाले संयमी-जीव तिर्यच और मनुष्य इन दो गति में ही होते हैं। वे अणुव्रत धारी श्रावक बिना छना हुआ पानी नहीं पीते और रात्रि-भोजन भी सदा के लिये छोड़ देते हैं।

मुख वस्तु अभक्ष न लावै, जिन भक्ति त्रिकाल रचावै
मन वच तन कपट निवारै, कृत कारित मोद संवारै ॥२॥

अन्वयार्थ : मुख में कभी भी अभक्ष वस्तु नहीं लाते, सदैव जिनेन्द्र देव की भक्ति में अपने को लीन रखते हैं, मन-वचन-काया से मायाचारी छोड़ देते हैं और पाप-कार्यों को न स्वयं करता है, न कराता और न उनकी अनुमोदना करता है।

जैसी उपशमत कषाया, तैसा तिन त्याग कराया
कोई सात व्यसन को त्यागै, कोई अणुव्रत में मन पागै ॥३॥

अन्वयार्थ : उस आत्मज्ञानी सम्पर्दश्टि को जितनी-जितनी कषायें उपशमतीं जाती हैं, उतने-उतने प्रमाण में उसको हिंसादि पापों का त्याग होता जाता है। कोई-कोई तो सात व्यसन का सर्वथा त्याग कर देते हैं और कोई-कोई अणुव्रत धारण करके शुभाशुभ भावों से रहित तप में लग जाते हैं।

त्रस जीव कभी नहिं मारै, विरथा थावर न संहारै
परहित बिन झूठ न बोले, मुख सांच बिना नहिं खोले ॥४॥

अन्वयार्थ : ऐसे श्रावक त्रस जीवों को कभी नहीं मारते और स्थावर जीवों का भी निष्प्रयोजन कभी भी संहार नहीं करते। पर-हित सिवाय कभी झूठ नहीं बोलते (अर्थात् कदाचित् किसी धर्मात्मा से कोई दोष हो गया होय उसे बचाने के लिए अथवा कोई निरपराधी फंस रहा होय उसे निकालने के लिये इन प्रसंगों के सिवाय वह कभी झूठ नहीं बोलते) और सत्य सिवाय कभी भी मुख नहीं खोलते।

जल मृतिका बिन धन सबहू, बिन दिये न लेवे कबहू
ब्याही वनिता बिन नारी, लघु बहिन बड़ी महतारी ॥५॥

अन्वयार्थ : जिनकी मनाई नहीं - ऐसा पानी व मिट्ठी के सिवाय दूसरी कोई भी वस्तु जो उसे दी नहीं गई हो कभी भी लेता नहीं है। अपनी विवाहिता नारी के अलावा अन्य दूसरी लधुवय स्त्रियों को बहिन समान एवं अपने से बड़ी स्त्रियों की माता समान समझता है।

तृष्णा का जोर संकोचै, ज्यादा परिग्रह को मोचै
दिश की मर्यादा लावै, बाहर नहि पाँव हिलावै ॥६॥

अन्वयार्थ : वह श्रावक विषय-पदार्थों के प्रति उत्पन्न होने वाली जो तृष्णा, उसके जोर को संकोचता है, ममता को घटाकर अधिक-परिग्रह को छोड़ देता है, परिग्रह का प्रमाण कर लेता है। दिशाओं में गमन करने की अथवा किसी को बुलाने, लेन-देन आदि करने की मर्यादा कर लेता है और मर्यादा से बाहर पग भी नहीं निकालता है।

ताहू में गिरि पुर सरिता, नित राखत अघ तें डरता
सब अनरथ दंड न करता, छिन-छिन निज धर्म सुमरता ॥७॥

अन्वयार्थ : पाप से डरने वाला श्रावक दिग्वत मे निश्चित की हुई मर्यादा में भी पर्वत, नगर, नदी आदि तक गमनादि-व्यापारादि करने की मर्यादा कर लेता है तथा किसी भी प्रकार का अनर्थ दंड (खोटा पाप निष्प्रयोजन हिंसादि) नहीं करता एवं प्रतिक्षण जिन-धर्म का स्मरण करता रहता है।

**द्रव्य क्षेत्र काल सुध भावै, समता सामायिक ध्यावै
सो वह एकाकी हो है, निष्किंचन मुनि ज्यों सोहै ॥८॥**

अन्वयार्थ : वह श्रावक द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की शुद्धि-पूर्वक समतारूप सामायिक को ध्याता है। अष्टमी, चतुर्दशी प्रोष्ठ उपवास के दिन एकान्त में रहता है और निष्परिग्रही मुनि समान शोभता है।

**परिग्रह परिमाण विचारै, नित नेम भोग को धारै
मुनि आवन बेला जावै, तब जोग अशन मुख लावै ॥९॥**

अन्वयार्थ : वह श्रावक परिग्रह की मर्यादा का विचार करता है और भोग-उपभोग की मर्यादा का भी हमेशा नियम करता है। मुनिवरों को प्रतिदिन आहार-दान देने की भावना भाता है और जब मुनिवरों के आहार का समय बीत जावे तब ही स्वयं योग्य शुद्ध भोजन करता है।

**यों उत्तम किरिया करता, नित रहत पाप से डरता
जब निकट मृत्यु निज जाने, तब ही सब ममता भाने ॥१०॥**

अन्वयार्थ : इस प्रकार धर्मी श्रावक सदा ही उत्तम कार्य करता है और पाप से सदा ही डरता रहता है। तथा जब मरण का काल समीप आया जानता है, तब तत्काल समस्त परिग्रह की ममता को छोड़ देता है।

**ऐसे पुरुषोत्तम केरा, 'बुधजन' चरणों का चेरा
वे निश्चय सुरपद पावैं, थोरे दिन में शिव जावैं ॥११॥**

अन्वयार्थ : बुधजन कहते हैं कि हम तो ऐसे उत्तम पुरुषों के चरणों के दास हैं। वे धर्मात्मा श्रावक तो नियम से देव होकर अल्पकाल में ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

षटपद छंद

**अथिर ध्याय पर्याय, भोग ते होय उदासी
नित्य निरंजन जोति, आत्मा घट में भासी ॥
सुत दारादि बुलाय, सबनितैं मोह निवारा
त्यागि शहर धन धाम, वास वन-बीच विचारा ॥१॥**

अन्वयार्थ : सम्यग्दृष्टि जीव को नित्य निरंजन चैतन्य ज्योति स्वरूप आत्मा अपने अन्तरंग में प्रगट भाषित हुआ है, वह देह (पर्याय) को अस्थिर नाशवान समझकर संसार-शरीर भोगों से उदासीन हो जाता है। वह स्त्री-पुत्रादि को धर्म सम्बोधन करके समस्त चेतन अचेतन परिग्रह के प्रति मोह ममत्व छोड़ देता है और नगर-धन-मकानादि सब परिग्रह छोड़कर वन के बीच एकान्त निर्जन वन में वास करने का विचार दृढ़ कर लेता है।

**भूषण वसन उतार, नगन है आत्म चीना
गुरु ढिंग दीक्षा धार, सीस कचलोच जु कीना ॥
त्रस थावर का घात, त्याग मन-वच-तन लीना
झूठ वचन परिहार, गहैं नहिं जल बिन दीना ॥२॥**

अन्वयार्थ : पश्चात वह विरागी श्रावक श्री निर्ग्रन्थ गुरु के पास जाकर समस्त आभूषण एवं वस्त्र उतारकर नग्र दिगम्बर वेष धारण कर दीक्षा लेकर केशलोच करके आत्म-ध्यान में मग्न हो जाता है। समस्त त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा का मन-वच-काया से त्याग कर देता है, मिथ्या वचनादि बोलने का भी त्यागकर देता है तथा बिना दिया हुआ पानी भी नहीं लेता है।

**चेतन जड़ तिय भोग, तजो भव-भव दुखकारा
अहि-कंचुकि ज्यों जान, चित तें परिग्रह डारा ॥
गुप्ति पालने काज, कपट मन-वच-तन नाहीं
पांचों समिति संवार, परिषह सहि है आहीं ॥३॥**

अन्वयार्थ : तथा सर्वप्रकार की चेतन व अचेतन स्त्रियों के उपभोग को भव-भव मे दुखकारी जानकर छोड़ दिया है । तथा चित मे निर्ममत्व होकर सर्प की कांचली के समान सर्वप्रकार के परिग्रह को भी भिन्न जानकर छोड़ दिया है । त्रिगुणि के पालने के लिए मन-वचन-काया से कपट भाव छोड़ दिया है । ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण तथा प्रतिष्ठापन -- इन पांच समिति के पालने मे सावधान हो वर्तन करते हैं और बाईंस प्रकार के परिषह को सहन करने लगे ।

**छोड़ सकल जंजाल, आप कर आप आप में
अपने हित को आप, करो है शुद्ध जाप में ॥
ऐसी निश्वल काय, ध्यान में मुनि जन केरी
मानो पत्थर रची, किधों चित्राम उकेरी ॥४॥**

अन्वयार्थ : और कैसे हैं वे मुनिराज ? सकल जगजाल को छोड़कर उन्होने अपने द्वारा अपने को अपने मे ही एकाग्र किया है । अपने स्वयं हित के लिए अपने स्वयं का ध्यान स्वयं ने शुद्ध किया है अर्थात् शुद्धामा का ध्यान करके निज स्वरूप मे ही लीन हुए हैं । अहा ! शुद्धोपयोग ध्यान में लीन मुनिराज का शरीर भी ऐसा स्थिर हुआ है कि मानो पत्थर की मूर्ति अथवा चित्र ही हो । इस प्रकार अडौलपने द्वारा आत्म-ध्यान मे एकाग्र हैं ।

**चार घातिया नाश, ज्ञान मे लोक निहारा
दे जिनमत उपदेश, भव्य को दुख तें टारा ॥
बहुरि अघाती तोरि, समय में शिव-पद पाया
अलख अखंडित जोति, शुद्ध चेतन ठहराया ॥५॥**

अन्वयार्थ : इस प्रकार शुद्धाम ध्यान द्वारा चार घाति कर्मों का घात करके केवलज्ञान मे लोकालोक को जान लिया और केवलज्ञान के अनुसार उपदेश देकर भव्य जीवों को दुख से छुड़ाया अर्थात् मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया । पश्चात चार अघाति कर्मों का भी नाश करके एक समय मात्र मे सिद्धपद प्राप्त किया तथा इन्द्रिय ज्ञान से जो जानने मे नहीं आता ऐसा अलख अखंड आत्म-ज्योति शुद्ध-चेतना रूप होकर स्थिर हो गई ।

**काल अनंतानंत, जैसे के तैसे रहिहैं
अविनाशी अविकार, अचल अनुपम सुख लाहिहैं ॥
ऐसी भावन भाय, ऐसे जे कारज करिहैं
ते ऐसे ही होय, दुष्ट करमन को हरिहैं ॥६॥**

अन्वयार्थ : ऐसी सिद्ध दशा को प्राप्त करके वह जीव अनन्तानन्त काल पर्यन्त ऐसे के ऐसे रहता है तथा अविनाशी, अविकार, अचल, अनुपम सुख का निरन्तर अनुभव किया करता है । जो कोई भव्यजीव ऐसी आत्म-भावना भाकर श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का कार्य करते हैं, वे भी इस अनुपम अविनाशी सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं और दुष्ट कर्मों को नाश कर देते हैं ।

**जिनके उर विश्वास, वचन जिन-शासन नाहीं
ते भोगातुर होय, सहैं दुख नरकन माही ॥
सुख दुख पूर्व विपाक, अरे मत कल्पै जीया
कठिन कठिन ते मित्र, जन्म मानुष का लीया ॥७॥**

अन्वयार्थ : जिन के मन मे जिनशासन के वचनों का (सर्वज्ञ भगवान के उपदेश का) विश्वास नहीं है, वह जीव विषय-भोगों मे मग्न पश्चात नरकों मे दुख भोगते हैं । संसार में सुख-दुख तो पूर्व कर्मों के उदय अनुसार होता है । अतः हे जीव ! इससे तू डर मत (अन्यथा कल्पना मत कर) उदय में जो कर्म आया हो उसे सहन कर । हे मित्र ! बहुत ही अधिक कठिनता से यह मनुष्य जन्म तुझे मिला है ।

**सो बिरथा मत खोय, जोय आपा पर भाई
गई न लावैं फेरि, उदधि में ढूबी राई ॥
भला नरक का वास, सहित समकित जो पाता
बुरे बने जे देव, नृपति मिथ्यामत माता ॥८॥**

अन्वयार्थ : इसलिये इसे तू व्यर्थ यों ही विषयों में मत गवा । हे भाई ! इस नर-भव में तू स्व-पर के विवेकरूप भेद-विज्ञान प्रगट कर, क्योंकि जिस प्रकार समुद्र मे ढूबा हुआ राई का दाना पुन मिलना अत्यन्त कठिन है, उसीप्रकार इस दुर्लभ मनुष्य-जन्म बीत जाने के बाद पुनः प्राप्त करना कठिन है । सम्यक्त्र की प्राप्ति सहित तो नरकवास भी भला है परन्तु सम्यक्त्र रहित मिथ्यात्व भाव से भरा हुआ जीव देव अथवा राजा भी हो जाय तो भी वह बुरा ही है ।

नहीं खरच धन होय, नहीं काहू से लरना
 नहीं दीनता होय, नहीं घर का परिहरना ॥
 समकित सहज स्वभाव, आप का अनुभव करना
 या बिन जप तप वृथा, कष्ट के माहीं परना ॥९॥

अन्वयार्थ : सम्यक्त्व वह तो आत्मा का सहज स्वभाव है, उसमें न तो कुछ धन खर्च होता है और न ही किसी से लड़ना पड़ता है। न तो किसी के पास दीनता करनी पड़ती है और न ही घरबार छोड़ना पड़ता है। अपना एक रूप त्रिकाली सहज स्वभाव - ऐसे आत्मा का अनुभव करना वही सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व के बिना जप-तप आदि व्यवहार क्रियारूप आचरण निरर्थक है, कष्ट में पड़ना है।

कोटि बात की बात अरे, 'बुधजन' उर धरना
 मन-वच-तन सुधि होय, गहो जिन-मत का शरना ॥
 ठारा सौ पच्चास, अधिक नव संवत जानों
 तीज शुक्ल वैशाख, ढाल षट शुभ उपजानों ॥१०॥

अन्वयार्थ : ग्रन्थ की पूर्णता करते हुए पण्डित बुधजन अन्तिम पद में कहते हैं कि अरे भव्य आत्माओं - बुधजनों ! करोड़ों बात की सार रूप यह बात तुम अन्तरंग में धारण करो, मन-वचन-काया की पवित्रता पूर्वक जिन-धर्म की शरण ग्रहण करो। 'ढाल' - इस नाम की शुभ उपमा वाला यह छह पदों की रचना 'छहढाला' सम्बत 1856 की बैशाख शुद्धि तीज को समाप्त हुई।



स्वयंभू-स्तोत्र-भाषा



आचार्य समंतभद्र कृत

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा ।
 विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥

अन्वयार्थ : जो स्वयम्भू थे (अर्थात् अपने आप दूसरों के उपदेश के बिना ही मोक्ष के मार्ग को जानकर और उस रूप आचरण कर अनन्तचतुष्य-रूप अपूर्व गुणों के धारी परमात्मा), सर्व प्राणियों के हितकारक थे, तथा सम्प्रज्ञान की विभूति-रूप नेत्रों से युक्त थे। गुणों के समूह से युक्त वचनों के द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करने वाले ऐसे श्री ऋषभदेव भगवान् गुणों से युक्त किरणों के द्वारा अन्धकार का नाश करने वाले चन्द्रमा की तरह इस भूतल पर शोभायमान हुए थे।



स्वयंभू-स्तोत्र-भाषा



पं. द्यानतरायजी कृत

राजविषै जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भुवि शिवपद लियो ।
 स्वयंबोध स्वयंभू भगवान्, बन्दौं आदिनाथ गुणखान ॥

इन्द्र क्षीरसागर-जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय ।
 मदन-विनाशक सुख करतार, बन्दौं अजित अजित-पदकार ॥

शुकल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति-अघाति सकल दुखराशि ।
लह्यो मुक्तिपद सुख अविकार, बन्दौं सम्भव भव-दुःख टार ॥

माता पच्छिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार ।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, बन्दौं अभिनन्दन मन लाय ॥

सब कुवादवादी सरदार, जीते स्याद्वाद-धुनि धार ।
जैन-धरम-परकाशक स्वाम, सुमतिदेव-पद करहुँ प्रनाम ॥

गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय ।
बरसे रतन पंचदश मास, नमौं पदमप्रभु सुख की रास ॥

इन्द फनेन्द नरिन्द त्रिकाल, बानी सुनि-सुनि होहिं खुस्याल ।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौं सुपारसनाथ निहार ॥

सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं ।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौं चन्द्रप्रभ राख समीप ॥

द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश ।
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, बन्दौं पुहुपदन्त मन आन ॥

भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय ।
आप समान सबनि सुख देह, बन्दौं शीतल धर्म-सनेह ॥

समता-सुधा कोप-विष नाश, द्वादशांग वानी परकाश ।
चार संघ आनंद-दातार, नमौं श्रियांस जिनेश्वर सार ॥

रत्नत्रय चिर मुकुट विशाल, सोभै कण्ठ सुगुन मनि-माल ।
मुक्ति-नार भरता भगवान, वासुपूज्य बन्दौं धर ध्यान ॥

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी-ध्यानी हित-उपदेश ।
कर्म नाशि शिव-सुख-विलसन्त, बन्दौं विमलनाथ भगवन्त ॥

अन्तर-बाहिर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर-व्रत को धारि ।
सर्व जीव-हित-राह दिखाय, नमौं अनन्त वचन-मन लाय ॥

सात तत्त्व पंचास्तिकाय, अरथ नवों छ दरब बहु भाय ।
लोक अलोक सकल परकास, बन्दौं धर्मनाथ अविनाश ॥

पंचम चक्रवर्ती निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग ।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ बन्दौं हरषाय ॥

बहु थुति करे हरष नहिं होय, निन्दे दोष गहैं नहिं कोय ।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, बन्दौं कुन्थुनाथ शिव-भूप ॥

द्वादश गण पूजैं सुखदाय, थुति बन्दना करैं अधिकाय ।
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, बन्दौं अर-जिनवर-पद दोय ॥

पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव व्याह-समय वैराग ।
बाल-ब्रह्म पूरन-व्रत धार, बन्दौं मल्लिनाथ जिनसार ॥

बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करै पग लाग ।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहि, बन्दौं मुनिसुव्रत व्रत देहि ॥

श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति-भाव सों दियो अहार ।
बरसी रत्न-राशि तत्काल, बन्दौं नमिप्रभु दीन-दयाल ॥

सब जीवन की बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वय बन्धन तोर ।
रजमति तजि शिव-तिय सों मिले, नेमिनाथ बन्दौं सुखनिले ॥

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनधार ।

गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमों मेरु-सम पारसस्वाम ॥

भव-सागर तैं जीव अपार, धरम-पोत में धरे निहार ।
दूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान बन्दौं बहु बार ॥

चौबीसों पद-कमल-जुग, बन्दौं मन-वच-काय ।
'द्यानत' पढ़े सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥



स्वयंभू-स्तोत्र



आचार्य विद्यासागर कृत

आदिम तीर्थकर प्रभो ! आदिनाथ मुनिनाथ,
आधि-व्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ
वृषका होता अर्थ है, दयामयी शुभ धर्म
वृष से तुम भरपूर हो, वृष से मिटते कर्म
दीनों के दुर्दिन मिटे, तुम दिनकर को देख
सोया जीवन जागता, मिटता अघ अविवेक
शरण चरण हैं आपके, तारण तरन जिहाज
भव दधि तट तक ले चलो, करुनाकर जिनराज ॥

ॐ हीं आहं श्री आदिनाथ जिनेश्वर नमः

हार-जीत के हो परे, हो अपने में आप
विहार करते अजित हो, यथा नाम गुण छाप
पुण्य पुंज हो पर नहीं, पुण्य फलों में लीन
पर पर पामर भ्रमित हो, पल-पल पर आधीन
जित इन्द्रिय जित मद बने, जित भव विजित कषाय
अजितनाथ को नित नमूं अर्जित दुरित पलाय
कोंपल पल-पल को पाले, वन में ऋतु पति आय
पुलकित मम जीवन लता, मन में जिन पद पाय ॥

भव-भव भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता आज
 संभव जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज
 क्षण-क्षण मिटे द्रव्य हैं, पर्यय वश अविराम
 चिर से हैं चिर ये रहें, स्वभाव वश अभिराम
 परमार्थ का कथन यूँ मंथन किया स्वयमेव
 यतिपन पालें यतन से, नियमित यदि हो देव
 तुम पद पंकज से प्रभु, झर-झर झरी पराग
 जब तक शिव सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग ॥

ॐ हीं आहे श्री संभवनाथ जिनेश्वराय नमो नमः

गुण का अभिनन्दन करो, करो कर्म की हानि
 गुरु कहते गुण गौण हो, किस विधि सुख हो प्राणि
 चेतनवश तन शिव बने, शिव बिन तन शव होय
 शिव की पूजा बुध करें, जड़ जन शव पर रोय
 विषयों को विष बन तजूँ बनकर विषयातीत
 विषय बना ऋषि ईश को, गाऊँ उनका गीत
 गुण धारे पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत
 अभिनन्दन जिन ! नित नमूँ मुनि बन में भवभीत ॥

ॐ हीं आहे श्री अभिनन्दननाथ जिनेश्वराय नमो नमः

बचूँ अहित से हित करूँ, पर न लगा हित हाथ
 अहित साथ न छोड़ता, कष्ट सहूँ दिन-रात
 बिगड़ी धरती सुधरती, मति से मिलता स्वर्ग
 चारों-गतियाँ बिगड़ती, पा अघ मति संसर्ग
 सुमतिनाथ प्रभु ! सुमति हो, मम मति है अति मंद
 बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरंद
 तुम जिन मेघ मयूर मैं, गरजो-बरसो नाथ
 चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ ॥

ॐ हीं आहे श्री सुमतिनाथ जिनेश्वराय नमो नमः

निरी छटा ले तुम छठे, तीर्थकरों में आप
 निवास लक्ष्मी के बने, रहित पाप संताप
 हीरा-मोती पद्म ना, चाहूँ तुमसे नाथ
 तुम सा तम-तामस मिटा, सुखमय बनूँ प्रभात
 शुभ्र सरल तुम बाल तब, कुटिल कृष्ण तब नाग
 तब चिति चित्रित ज्ञेय से, किन्तु न उसमें दाग
 विराग पद्मप्रभ आपके, दोनों पाद सरग
 रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग ॥

ॐ हीं अहं श्री पद्मप्रभ जिनेश्वराय नमो नमः

यथा सुधाकर खुद सुधा, बरसाता बिन स्वार्थ
 धर्मामृत बरसा दिया, मिटा जगत का आर्त
 दाता देते दान हैं, बदले की ना चाह
 चाह-दाह से दूर हो, बड़े-बड़ों की राह
 अबंध भाते काटके, वसु विध विधि का बंध
 सुपार्श्व प्रभु निज प्रभुपना, पा पाए आनंद
 बांध-बांध विधि बंध मैं, अंध बना मति मंद
 ऐसा बल दो अंध, को बंधन तोहुं ढंद्व ॥

ॐ हीं अहं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेश्वराय नमो नमः

सहन कहाँ तक अब करूँ, मोह मारता डंक
 दे दो इसको शरण ज्यों, माता सुत को अंक
 कौन पूजता मूल्य क्या, शून्य रहा बिन अंक
 आप अंक हैं शून्य मैं, प्राण फूँक दो शंख
 चन्द्र कलंकित किन्तु हो, चन्द्रप्रभ अकलंक
 वह तो शंकित केतु से शंकर तुम निशंक
 रंक बना हूँ मम अतः, मेटो मन का पंक
 जाप जपूँ जिननाम का, बैठ सदा पर्यंक ॥

ॐ हीं अहं श्री चन्द्रप्रभ जिनेश्वराय नमो नमः

सुविधि ! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर,
 मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर
 किस वन की मूली रहा, मैं तुम गगन विशाल
 दरिया में खसखस रहा, दरिया मौन निहार
 फिर किस विधि निरखून तुम्हे, नयन करूँ विस्फार
 नाचूँ गाऊँ ताल दूँ, किस भाषा में ढाल
 बाल मात्र भी ज्ञान ना, मुझमें मैं मुनि बाल
 बवाल भव का मम मिटे, तुम पद में मम भाल ॥

ॐ ह्रीं आहं श्री सुविधिनाथ जिनेश्राप नमः नमः

चिंता छूती कब तुम्हें, चिंतन से भी दूर
 अधिगम में गहरे गए, अव्यय सुख के पूर
 युगों-युगों से युग बना, विघ्न अघों का गेह
 युग द्रष्टा युग में रहें, पर ना अघ से नेह
 शीतल चन्दन है नहीं, शीतल हिम ना नीर
 शीतल जिन तब मत रहा, शीतल हरता पीर
 सुचिर काल से मैं रहा, मोह नींद से सुप्त
 मुझे जगाकर कृपा, प्रभो करो परितृप्त ॥

ॐ ह्रीं आहं श्री शीतलनाथ जिनेश्राप नमः नमः

राग द्वेष अरु मोह ये, होते कारण तीन
 तीन लोक में भ्रमित वह, दीं-हीन अघ लीन
 निज क्या पर क्या स्व-पर क्या, भला बुरा बिन बोध
 जिजीविषा ले खोजता, सुख ढोता तन बोझ
 अनेकांत की कांति से, हटा तिमिर एकांत,
 नितांत हर्षित कर दिया, क्लांत विश्व को शांत
 निःश्रेयस् सुख धाम हो, हे जिनवर ! श्रेयांस
 तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लों घाट में श्वाँस ॥

ॐ ह्रीं आहं श्री श्रेयांसनाथ जिनेश्राप नमः नमः

औं न दया बिन धर्म ना, कर्म कटे बिन धर्म

धर्म मम तुम समझकर, करलो अपना कर्म
वासुपूज्य जिनदेव ने, देकर यूँ उपदेश
सबको उपकृत कर दिया, शिव में किया प्रवेश
वसु-विध मंगल-द्रव्य ले, जिन पूजों सागार
पाप घटे फलतः फले, पावन पुण्य अपार
बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजों मुनि लोग
बिन निज शुभ उपयोग कल, शुद्ध ना उपयोग ॥

ॐ हीं अहं श्री वासुपूज्य जिनेश्राय नमो नमः

काया-कारा में पला, प्रभु तो कारातीत
चिर से धारा में पड़ा, जिनवर धारातीत
कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल
मार दिया तुमने उसे, फाड़ा उसका गाल
मोह अमल वश समल बन, निर्बल मैं भगवान
विमलनाथ ! तुम अमल हो, संबल दो भगवान
ज्ञान छोर तुम मैं रहा, ना समझ की छोर
छोर पकड़कर झट इसे, खींचो अपनी ओर ॥

ॐ हीं अहं श्री विमलनाथ जिनेश्राय नमो नमः

आदि रहित सब द्रव्य हैं, ना हो इनका अंत
गिनती इनकी अंत से, रहित अनंत-अनंत
कर्ता इनका पर नहीं, ये न किसी के कर्म
संत बने अरिहंत हो, जाना पदार्थ धर्म
अनंत गुण पा कर दिया, अनंत भव का अंत
'अनंत' सार्थक नाम तब, अनंत जिन जयवंत
अनंत सुख पाने सदा, भव से हो भयवंत
अंतिम क्षण तक मैं तुम्हें, स्मरुं स्मरें सब संत ॥

ॐ हीं अहं श्री अनंतनाथ जिनेश्राय नमो नमः

जिससे बिछुड़े जुड़ सकें, रुदन रुके मुस्कान
तन गत चेतन दिख सके, वही धर्म सुखखान

विरागता में राग हो, राग नाग विष त्याग
अमृतपान चिर कर सकें, धर्म यही झट जाग
दयाधर्म वर धर्म है, अदया भाव अधर्म
अधर्म तज प्रभु 'धर्म ने', समझाया पुनि धर्म
धर्मनाथ को नित नमूं सधे शीघ्र शिव शर्म
धर्म-मर्म को लख सकूँ, मिटे मलिन मम कर्म ॥

ॐ ह्रीं अहं श्री धर्मनाथ जिनेश्राय नमो नमः

सकलज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूं नत-शीश
कामदेव हो काम से, रखते कुछ ना काम
काम रहे ना कामना, तभी बने सब काम
बिना कहे कुछ आपने, प्रथम किया कर्तव्य
त्रिभुवन पूजित आप्त हो, प्राप्त किया प्राप्तव्य
शांतिनाथ हो शांत कर, सातासाता सांत
केवल केवलज्योतिमय, क्लान्ति मिटी सब ध्वान्त ॥

ॐ ह्रीं अहं श्री शांतिनाथ जिनेश्राय नमो नमः

ध्यान अग्नि से नष्ट कर, पप्रथम ताप परिताप
कुंथुनाथ पुरुषार्थ से, बने न अपने आप
उपादान की योग्यता, घट में ढलती सार
कुम्भकार का हाथ हो, निमित्त का उपकार
दीन-दयाल प्रभु रहे, करुणा के अवतार
नाथ-अनाथों के रहे, तार सको तो तार
ऐसी मुझपे हो कृपा, मम मन मुझमे आय
जिस विध पल में लवण है, जल में घुल मिल जाय ॥

ॐ ह्रीं अहं श्री कुंभुनाथ जिनेश्राय नमो नमः

चक्री हो पर चक्र के, चक्कर में ना आय
मुमुक्षुपन जब जागता, बुमुक्षुपन भग जाय
भोगों का कब अंत है, रोग भोग से होय

शोक रोग में हो अतः, काल योग का रोय
नाम मात्र भी नहीं रखो, नाम काम से काम
ललाम आतम में करो, विराम आठों याम
नाम धरी 'अर' नाम तव, अतः स्मर्ण अविराम
अनाम बन शिव धाम में, काम बनूँ कृत काम ॥

ॐ हीं अहं श्री अरनाथ जिनेश्राय नमः नमः

क्षार-क्षार भार है भरा, रहित सार संसार
मोह उदय से लग रहा, सरस सार संसार
बने दिगम्बर प्रभु तभी, अन्तरंग बहिरंग
गहरी-गहरी हो नदी, उठती नहीं तरंग
मोह मल्ल को मारकर, मल्लिनाथ जिनदेव
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षयपद स्वयमेव
बाल ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग
किसी वस्तु से राग ना, तुम पद से मम राग ॥

ॐ हीं अहं श्री मल्लिनाथ जिनेश्राय नमः नमः

निज में यति ही नियति है, ध्येय 'पुरुष' पुरुषार्थ
नियति और पुरुषार्थ का, सुन लो अर्थ यथार्थ
लौकिक सुख पाने कभी, श्रमण बनो मत भ्रात !
मिले धान्य जब कृषि करे, घास आप मिल जात
मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ
मात्र भावना मम रही, मुनिव्रत पालूँ यथार्थ
मैं भी 'मुनिसुव्रत' बनूँ, पावन पाय पदार्थ ॥

ॐ हीं अहं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेश्राय नमः नमः

मात्र नग्रता को नहीं, माना प्रभु शिव पंथ
बिना नग्रता भी नहीं, पावो पद अरहंत
प्रथम हते छिलका तभी, लाली हटती भ्रात
पाक कार्य फिर सफल हो, लो तब मुख में भात

अनेकांत का दास हो, अनेकांत की सेव
करूँ गहूँ मैं शीघ्र ही, अनेक गुण स्वयमेव
अनाथ मैं जगनाथ हो, नमिनाथ दो साथ
तव पद में दिन-रात हो, हाथ जोड़ नत माथ ॥

ॐ ह्रीं अहं श्री नमिनाथ जिनेश्राय नमः नमः

राज तजा राजुल तजी, श्याम तजा बलराम
नाम धाम धन मन तजा, ग्राम तजा संग्राम
मुनि बन वन में तप सजा, मन पर लगा लगाम
ललाम परमात्म भजा, निज में किया विराम
नील-गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन
नील कमल आसीन हो, नीलम से अति नील
शील-झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील
शील डोर मुझ बांध दो, डोर करो मत ढील ॥

ॐ ह्रीं अहं श्री नमिनाथ जिनेश्राय नमः नमः

रिपुता की सीमा रही, गहन किया उपसर्ग
समता की सीमा यही, ग्रहण किया अपवर्ग
क्या-क्यों किस विध कब कहें, आत्मध्यान की बात
पल में मिटती चिर बसी, मोह-अमा की रात
खास-दास की आस बस, श्वास-श्वास पर वास
पार्श्व ! करो मत दास को, उदासता का दास
ना तो सुर सुख चाहता, शिव सुख की ना चाह
तव थुति सरवर में सदा, होवे मम अवगाह ॥

ॐ ह्रीं अहं श्री पार्वतीनाथ जिनेश्राय नमः नमः

क्षीर रहो प्रभु नीर मैं, विनती करूँ अखीर
नीर मिला लो क्षीर मैं, और बना दो क्षीर
अबीर हो, तुम वीर भी, धरते ज्ञान शरीर
सौरभ मुझमें भी भरो, सुरभित करो समीर
नीर-निधि से धीर हो, वीर बने गंभीर

पूर्ण तैरकर पा लिया, भवसागर का तीर
अधीर हो मुझ धीर दो, सहन करूँ सब पीर
चीर-चीर कर चिर लखूँ अंतर की तस्वीर ॥

ॐ ही अहं श्री महावीर जिनेश्राय नमो नमः



पार्श्वनाथ-स्तोत्र



पं. द्यानतरापणी कृत

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं, शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥१॥

गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै, महा आगतैं नागतैं तू बचावै
महावीरतैं युद्ध में तू जितावै, महारोगतैं बंधतैं तू छुड़ावै ॥२॥

दुखीदुःखहर्ता सुखीसुक्खकर्ता, सदा सेवकों को महानंदभर्ता
हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं, विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं ॥३॥

दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीनकौं तू भले पुत्र कीने
महासंकटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्व को देहि दाता ॥४॥

महाचोर को वज्र को भय निवारै, महापौन के पुंजतैं तू उबारै
महाक्रोध की अग्नि को मेघधारा, महालोभ शैलेश को वज्रभारा ॥५॥

महामोह अन्धेर को ज्ञान भानं, महाकर्मकांतार को दौ प्रधानं
किये नाग नागिन अधोलोकस्वामी, हर्यो मान तू दैत्य को हो अकामी ॥६॥

तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं, तुही दिव्य चिंतामणी नाग एनं
पशू नर्क के दुःखतैं तू छुड़ावै, महास्वर्ग में मुक्ति में तू बसावै ॥७॥

करे लोह को हेम पाषाण नामी, रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी

करै सेव ताकी करैं देव सेवा, सुनै वैन सोही लहै ज्ञान मेवा ॥८॥

जपै जाप ताको नहीं पाप लागै, धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे ॥९॥

गणधर इन्द्र न कर सकै, तुम विनती भगवान
'द्यानत' प्रीति निहारकै, कीजे आप समान ॥१०॥



महावीराष्ट्र-स्तोत्र



ॐ भगवद्गीता कृत, हिंदी अनुवाद डा. वीरसागर

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः ।
समं भान्ति ध्रौव्य-व्ययजनि-लसंतोऽन्तरहिताः ॥
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटनपरो भानुरिव यो ।
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥१॥

जिनके चेतन में दर्पणवत सभी चेतनाचेतन भाव
युगपद झलकें अंतरहित हो ध्रुव-उत्पाद-व्ययात्मक भाव
जगत्साक्षी शिवमार्ग प्रकाशक जो हैं मानो सूर्य-समान
वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥२॥

अन्वयार्थ : [ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तः] ध्रुवता, विनाश, उत्पत्ति से शोभायमान [अन्तरहितः] अन्त से रहित [चित-अचितः भावः] चेतन अचेतन पदार्थ [मुकुर] दर्पण [इव] समान [यदीये चैतन्ये] जिनके चैतन्य में [समं भान्ति] एक साथ झलकते हैं [यः] जो [जगत्साक्षी] संसार का प्रत्यक्ष करने वाले [भानु इव] सूर्य के समान [मार्गप्रकटनपरः] मोक्षमार्ग के प्रकाशक हैं [महावीर स्वामी] महावीर जिनेन्द्र [मे] मेरी [नयनपथगामी भवतु] दृष्टि के सामने रहें ॥१॥

अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्दरहितं ।
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ॥
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला ।
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥२॥

जिनके लोचनकमल लालिमा रहित और चंचलताहीन
समझाते हैं भव्यजनों को बाह्याभ्यन्तर क्रोध-विहीन
जिनकी प्रतिमा प्रकट शान्तिमय और अहो है विमल अपार
वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥२॥

अन्वयार्थ : [यत्] जिनके [अ-ताम्र] ललाई से रहित [चक्षुः कमल-युगलं] नेत्ररूपी कमल का जोड़ा [स्पन्द रहितं] टिमकार रहित हैं [जनान्] लोगों को [आभ्यन्तरम् अपि] अन्तरंग में भी [कोप-अपाय] क्रोध का अभाव [प्रकटयति] प्रकट करते हैं । [यस्य-मूर्तिः] जिनकी मूर्ति [स्फुटं] स्पष्ट या प्रकट [प्रशमितमयी] प्रशान्तरस से युक्त [वा] और [अति विमला] अत्यन्त निर्मल [महावीर स्वामी] महावीर भगवान् [मे] मेरी [नयनपथगामी भवतु] दृष्टि के सामने रहें ॥२॥

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भाजालजटिलं ।
 लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृतां ॥
 भवज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि ।
 महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥३॥

नमते देवों की पंक्ति की मुकुटमणि का प्रभासमूह
 जिनके दोनों चरणकमल पर झ़िलके देखो जीवसमूह
 सांसारिक ज्वाला को हरने जिनका स्मरण बने जलधार
 वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥३॥

अन्वयार्थ : [यदीयं] जिनके [पादाम्भोज द्वयम्] दोनों चरण-कमल [नमन्नाकेन्द्राली] नमस्कार करते हुए स्वर्ग के देवों की पंक्ति के [मुकुट मणि-भाजाल जटिलं] मुकुटों के मणियों के प्रकाश समूह से घनीभूत [लसत्] शोभते हुए [इह] इस जगत में [स्मृतम् अपि] स्मरण-मात्र से भी [तनुभृताम्] संसारी जीवों के [भवज्वालाशान्त्यै] संसार ज्वाला की शान्ति के लिए [जलं प्रभवति] जल बन जाता है [महावीर स्वामी] महावीर भगवान् [मे] मेरी [नयन-पथ-गामी भवतु] दृष्टि के सामने रहें ॥३॥

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह ।
 क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः ॥
 लभंते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा ।
 महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥४॥

जिनके अर्चन के विचार में मेंढक भी जब हर्षितवान
 क्षण भर में बन गया देवता गुणसमूह और सुख निधान
 तब अचरज क्या यदि पाते हैं सच्चे भक्त मोक्ष का द्वार ?
 वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥४॥

अन्वयार्थ : [यत् अर्चा भावेन] जब पूजा करने के भाव से [प्रमुदितमना] आनन्दित वित्त वाला [इह] इस लोक में [दर्दुरा] मेंढक [क्षणात्] क्षण भर में ही [गुण-गण समृद्धः] गुणों के समुदाय से सम्पन्न [स्वर्गी आसीत्] स्वर्ग में देव बना था [तदा] तब [सद्भक्ताः] जो सद्भक्त हैं वे [शिव-सुख-समाजं] मोक्ष की निधि [लभन्ते] पाते हैं [किमु] इसमें क्या आश्चर्य है [महावीर स्वामी] महावीर भगवान् [मे] मेरी [नयनपथगामी भवतु] दृष्टि के सामने रहें ॥४॥

कनत्स्वर्णभासोऽप्यपगत तनुर्जनि-निवहो,
 विचित्रात्माप्येको नृपति-वर सिद्धार्थ-तनयः।
 अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुत-गतिः,
 महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥५॥

तप्तस्वर्ण-सा तन है फिर भी तनविरहित जो ज्ञानशरीर
 एक रहें होकर विचित्र भी, सिद्धार्थ राजा के वीर
 होकर भी जो जन्मरहित हैं, श्रीमन फिर भी न रागविकार
 वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥५॥

अन्वयार्थ : [कनत्स्वर्णभासः] अपि चमकते हुए स्वर्ण के समान कान्तिमान होने पर भी [अपगततनुः] शरीर रहित [ज्ञान-निवहो] ज्ञानसमूह [विचित्र आत्मा] अनेक गुणों युक्त होने से अनेक रूप [अपि एक] भी एक [नृपति-वर-सिद्धार्थ-तनयः] श्रेष्ठ राजा सिद्धार्थ के पुत्र [अपि] फिर भी [अजन्म] जन्म रहित [श्रीमान्] लक्ष्मीवान् [अपि] फिर भी [विगत-भव-राग] संसार का राग निकल चुका है [अद्भुत गतिः] अद्भुत ऐसी मोक्षगति को प्राप्त [महावीर स्वामी] महावीर भगवान् [मे] मेरी [नयनपथगामी भवतु] दृष्टि के सामने रहें ॥५॥

यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय कल्लोल-विमला,
 वृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
 इदानीमप्येषा बुध-जनमरालैः परिचिता,
 महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥६॥

जिनकी वाणीरूपी गंगा नयलहरों से हीनविकार
 विपुल ज्ञानजल से जनता का करती है जग में स्नान

अहो ! आज भी इससे परिचित ज्ञानी रूपी हंस अपार
वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥६॥

अन्वयार्थ : [यदीया] जिनकी [विविध-नय-कल्लोल-विमला] विविध प्रकार के नयरूपी तरंगों से स्वच्छ, [वागगङ्गा] वाणी रूपी गंगा [या] जो [जगति] जगत् के [जनतां] जीवों को [वृहज्जानाभ्योधिः] विशिष्ट ज्ञानरूपी जल से [स्नापयति] नहलाती, [इदानीम् अपि] अब भी [बुध-जन-मरालैः] हंस सामान ज्ञानीजनों के द्वारा [परिचिता] परिचित है ऐसे [महावीर स्वामी] महावीर भगवान् [मे] मेरी [नयनपथगामी भवतु] दृष्टि के सामने रहें ॥६॥

अनिवारोद्रेकस्तिभुवनजयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥७॥

तीव्रवेग त्रिभुवन का जेता कामयोद्धा बड़ा प्रबल
वयकुमार में जिनने जीता उसको केवल निज के बल
शाश्वत सुख-शान्ति के राजा बनकर जो हो गये महान
वे तीर्थकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥७॥

अन्वयार्थ : [अनिवारोद्रेकः] दुर्निवार [त्रिभुवनजयी] तीन लोक को जिनने वाले [काम-सुभटः] कामदेव योद्धा को [अपि] भी [येन] जिसने [कुमारावस्थायां अपि] योवन किशोर अवस्था में ही [निजबलात्] अपने आम्बल से [विजितः] जीता है [स्फुरन्] स्फुरायमान होते हुए [नित्यानन्दप्रशम-पद राज्याय] नित्य, आनन्दमय, प्रशान्तपदस्वरूप [स जिनः] वे जिनेश्वर [महावीर स्वामी] महावीर भगवान् [मे] मेरी [नयनपथगामी भवतु] दृष्टि के सामने रहें ॥७॥

महामोहातड़क-प्रशमनपरा-कस्मिकभिषड् ,
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा मङ्गलकरः ॥
शरण्यः साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो ।
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥८॥

महामोह आतंक शमन को जो हैं आकस्मिक उपचार
निरापेक्ष बन्धु हैं, जग में जिनकी महिमा मंगलकार
भवभव से डरते सन्तों को शरण तथा वर गुण भंडार
वे तीर्थकर महावीर प्रभु, मम हिय आवें नयनद्वार ॥८॥

अन्वयार्थ : [महामोह-आतंक प्रशमन] महामोहरूपी रोग को शान्त करने वाले [आकस्मिक भिषडः] आकस्मिक वैद्य, [निरापेक्षो बन्धुः] अपेक्षा रहित बंधु, [विदित-महिमा] जिनकी महानता प्रकट है, [मङ्गलकरः] मङ्गल करने वाले, [भवभयभृताम्] संसार से भय धारण करने वाले [साधूनां] साधुओं को [शरण्यः] शरण रूप [उत्तम गुणाः] उक्त गुणों से सम्पन्न [महावीर स्वामी] महावीर भगवान् [मे] मेरा [नयनपथगामी भवतु] मार्ग-दर्शन करें ॥८॥

अनुष्टुप् छंद

महावीराष्ट्रकं स्तोत्रं, भक्त्या भागेन्दुना कृतम् ।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम् ॥९॥

महावीराष्ट्रक स्तोत्र को, 'भाग' भक्ति से कीन
जो पढ़ ले अथवा सुने, परमगति वह लीन

अन्वयार्थ : [भक्त्या] भक्ति से [भागेन्दुना] भागचंद जी के द्वारा [कृतम्] रचा गया [महावीराष्ट्र] महावीर स्वामी का आठ श्लोकों का अष्टक [यः] जो [पठेत्] पढ़ता है [च] और [श्रृणुयात् अपि] सुनता भी है [स] वह [परमां गतिम् याति] मोक्ष गति को जाता है ॥९॥



वीतराग-स्तोत्र

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्म न कर्ता ।



न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥

न बन्धो न मोक्षो न रागादि दोषः, न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकं ।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा, न चक्षुर्न कर्ण न वक्त्रं न निद्रा ।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मत्रः, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥

न जन्मं-मृत्युं न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न काश्यं न तन्द्रा ।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥

त्रिदंडे त्रिखंडे हरे विश्वनाथम्, हृषीकेश विध्वस्त कर्मादि जालम् ।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रम्, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः ।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्, न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः ।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् ॥

इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्य स्वरूपम् ।
न चान्यो न भिन्नो न परमार्थमेकम्, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥

आत्माराम गुणाकरं गुणनिधिं चैतन्य रत्नाकरं
सर्वे भूतगतागते सुखदुःखे ज्ञाते त्वया सर्वगे ।
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा ध्यायन्ति योगीश्वराः
वंदे तं हरिवंशहर्षहृदयं श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥9॥



कल्याण-मन्दिरमुदारमवद्य-भेदि भीताभय-प्रदमनिन्दितमङ्ग्लिप-पद्मम् संसार-सागर-निमज्जदशेष-जन्तु- पोतायमानमभिनन्द्य जिनेश्वरस्य ॥१॥

(दोहा)

परम-ज्योति परमात्मा, परम-ज्ञान परवीन
वंदे परमानंदमय घट-घट-अंतर-लीन ॥

(चौपाई)

निर्भयकरन परम-परधान, भव-समुद्र-जल-तारन-यान
शिव-मंदिर अघ-हरन अनिद, वंदे पार्श्व-चरण-अरविंद ॥

अन्वयार्थ : [कल्याणमंदिरम्] कल्याणकों के मंदिर, [उदारम्] उदार, [अवद्यभेदि] पापों को नष्ट करने वाले, [भीताभयप्रदम्] संसार से डरे हुए जीवों को अभयपद देने वाले, [अनिन्दितम्] प्रशंसनीय और [संसार सागर निमज्जत् अशेष-जन्तु-पोतायमानम्] संसाररूपी समुद्र में झूबते हुए समस्त जीवों के लिए जहाज के समान [जिनेश्वरस्य] जिनेन्द्रभगवान के [अग्निपद्मम्] चरण कमल को [अभिनन्द्य] नमस्कार करके ।

यस्य स्वयं सुरगुरुर्गिरिमाम्बुराशोः,
स्तोत्रं सुविस्तृत-मतिर्न विभुर्विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय-धूमकेतोस्-
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥

कमठ-मान-भंजन वर-वीर, गरिमा-सागर गुण-गंभीर
सुर-गुरु पार लहें नहिं जास, मैं अजान जापै जस तास ॥

अन्वयार्थ : [गरिमाम्बुराशोः] गौरव के समुद्र [यस्य] जिन पार्श्वनाथ की [स्तोत्रम्] स्तुति, [विधातुम्] करने के लिए [स्वयं सुरगुरुः] खुद बृहस्पति भी [सुविस्तृतमति] विस्तृत बुद्धि वाले [विभुः] समर्थ (न अस्ति) नहीं हैं, [कमठस्मयधूमकेतोः] कमठ का मान भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप [तस्य] उन [तीर्थेश्वरस्य] पार्श्वनाथ भगवान की [किल] आश्र्य है कि [एषः अहम्] यह मैं [संस्तवनम्] स्तुति [करिष्ये] करूँगा ।

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्माद्वशः कथमधीश भवन्त्यधीशाः
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरशमेः ॥३॥

प्रभु-स्वरूप अति-अगम अथाह, क्यों हम-सेती होय निवाह
ज्यों दिन अंध उल्लू को होत, कहि न सके रवि-किरण-उद्योत ॥

अन्वयार्थ : [अधीशाः] है स्वामिन्! [सामान्यतः अपि सामान्य रीति से भी] [तव] तुम्हारे [स्वरूपम्] स्वरूप को [वर्णयितुं] वर्णन करने के लिए [अस्माद्वशाः] मुझ जैसे मनुष्य [कथम्] कैसे [अधीशाः] समर्थ [भवन्ति] हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते । [यदि वा] अथवा [दिवान्धः] दिन में अंधा रहने वाला [कौशिक शिशुः] उलूक का बच्चा [धृष्टः अपि] ढीठ होता हुआ भी [किम्] क्या [घर्मरशमेः] सूर्य के [रूपम्] रूप का [प्ररूपयति किला] वर्णन कर सकता है क्या?

मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो
नूनं गुणानाणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मान्-
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥४॥

मोह-हीन जाने मनमाँहि, तो हु न तुम गुन वरने जाहिं
प्रलय-पयोधि करे जल गौन, प्रगटहिं रत्न गिने तिहिं कौन ॥

अन्वयार्थ : [नाथ!] हे पार्श्वनाथ! [मत्रः] मनुष्य [मोहक्षयात्] मोहनीय कर्म के क्षय से [अनुभवन् अपि] अनुभव करता हुआ भी [तव] आपके [गुणान्] गुणों को [गणयितुम्] गिनने के लिए [नूनम्] निश्चय करके [न क्षमेत] समर्थ नहीं हो सकता है । [यस्मात्] क्योंकि [कल्पान्तवान्तपयसः] प्रलय काल के समय जिसका

जल बाहर हो गया है, ऐसे [जलधेः] समुद्र की [प्रकटः अपि] प्रकट हुई भी [रत्नराशिः] रत्नों की राशि [ननु केन मीयेत्] किसके द्वारा गिनी जा सकती है?

अभ्युदयतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य-गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निज-बाहु-युगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ? ॥५॥

तुम असंख्य निर्मल गुणखान, मैं मतिहीन कहूँ निज बान
ज्यों बालक निज बाँह पसार, सागर परमित कहे विचार ॥

अन्वयार्थ : [नाथः] हे स्वामिन्! [जडाशयः अपि अहम्] मैं मूर्ख भी [लसदसंख्यगुणाकरस्य] शोभायमान असंख्यात् गुणों की खानि स्वरूप [तव] आपके [स्तवम् कर्तुम्] स्तवन करने के लिए [अभ्युदयः अस्मि] तैयार हुआ हूँ । क्योंकि [बालः अपि] बालक भी [स्वधिया] अपनी बुद्धि के अनुसार [निजबाहुयुगम्] अपने दोनों हाथों को [वितत्य] फैलाकर [किम्] क्या [अम्बुराशेः] समुद्र के [विस्तीर्णताम्] विस्तार को [न कथयति] नहीं कहता?

ये योगनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ?
जाता तदेवमसमीक्षित-कारितेयं,
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

जे जोगीन्द्र करहिं तप-खेद, तेऊ न जानहिं तुम गुनभेद
भक्तिभाव मुझ मन अभिलाष, ज्यों पंछी बोले निज भाष ॥

अन्वयार्थ : [ईशा!] हे स्वामिन्! [तव] आपके [ये गुणः] जो गुण [योगिनाम् अपि] योगियों को भी [वत्तुम्] कहने के लिए [न यान्ति] नहीं प्राप्त होते [तेषु] उनमें [मम] मेरा [अवकाशः] अवकाश [कथम् भवति] कैसे हो सकता है? [तत्] इसलिए [एवम्] इस प्रकार [इयम्] मेरा यह [असमीक्षितकारिता जाता] बिना विचारे काम करता हुआ [वा] अथवा [पक्षिणः अपि] पक्षी भी [निजगिरा] अपनी वाणी से [जल्पन्तिननु] बोला करते हैं।

आस्तामचिन्त्य-महिमा जिन ! संस्तवस्ते,
नामाऽपि पाति भवतो-भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहत-पान्थ-जनान्निदाघे
प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

तुम जस-महिमा अगम अपार, नाम एक त्रिभुवन-आधार
आवे पवन पदमसर होय, ग्रीष्म-तपन निवारे सोय ॥

अन्वयार्थ : [जिनः] हे जिनेन्द्र! [अचिन्त्य महिमा] अचिन्त्य है महात्म्य जिसका ऐसा [ते] आपका [संस्ततः] स्तव [आस्ताम्] दूर रहे, [भवतः] आपका [नाम अपि] नाम भी [जगन्ति] जीवों को [भवतः] संसार से [पाति] बचा लेता है क्योंकि [निदाघे] ग्रीष्मकाल में [तीव्रातपोपहतपान्थजनान्] तीव्र धूप से सताये हुए पथिक जनों को [पद्मसरसः] कमलों के सरोवर का [सरसः] सरस-शीतल [अनिलः अपि] पवन भी [प्रीणाति] सन्तुष्ट करता है।

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्म-बन्धाः
सद्यो भुजंगममया इव मध्य-भाग-
मध्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥

तुम आवत भवि-जन मनमाँहिं, कर्मनि-बन्ध शिथिल है जाहिं
ज्यों चंदन-तरु बोलहिं मोर, डरहिं भुजंग भर्गे चहुँ और ॥

अन्वयार्थ : [विभो!] हे पार्वतीनाथ! [त्वयि] आपके [हृद्वर्तिनि] हृदय में रहते हुए [जन्तोः] जीवों के [निविडा: अपि] सघन भी [कर्म-बन्धः] कर्मों के बंधन [क्षणेन] क्षण भर में [वन शिखण्डिनि] वन मध्यूर के [चन्दनस्य मध्यभागम् अभ्यागते 'सत'] चन्दन तरु के बीच में आने पर [भुजंगममया इव] सर्पों की कुण्डलियों के समान [सद्यः] शीघ्र ही [शिथिली भवन्ति] ढीले हो जाते हैं।

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र !
रौद्रैरुपद्रव-शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥९॥

तुम निरखत जन दीनदयाल, संकट तें छूटें तत्काल
ज्यों पशु धेर लेहिं निशि चोर, ते तज भागहिं देखत भोर ॥

अन्वयार्थ : [जिनेन्द्रः] हे जिनेन्द्रदेव! [स्फुरिततेजसि] पराक्रमी [गोस्वामिनि] गोपालक [दृष्टमात्रे] दिखते ही [आशु] शीघ्र ही [प्रपलायमानैः] भागते हुए [चौरैः] चोरों के द्वारा [पशवःऽव] पशुओं की तरह [त्वयि वीक्षते अपि] आपके दर्शन करते ही [मनुजाः] मनुष्य [रौद्रैः] भयंकर [उपद्रवशतैः] सैकड़ों उपद्रवों के द्वारा [सहसा एव] शीघ्र ही [मुच्यन्ते] छोड़ दिए जाते हैं।

त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव
त्वामुद्धहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून-
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥

तुम भविजन-तारक इमि होहि, जे चित धारें तिरहिं ले तोहि
यह ऐसे करि जान स्वभाव, तिरहिं मसक ज्यों गर्भित बाव ॥

अन्वयार्थ : [जिनः] हे जिनेन्द्रदेव! [त्वम् भविनाम् तारकः कथम्] आप संसारी जीवों के तारने वाले कैसे हो सकते हैं? [यत्] क्योंकि [उत्तरन्तः] संसार-समुद्र से पार होते हुए [ते एव] वे ही [हृदयेन] हृदय से [त्वम्] आपको [उद्धहन्ति] तिरा ले जाते हैं [यद्वा] अथवा ठीक है कि [दृतिः] मसक [यत्] जो [जलम् तरति] पानी में तैरती है, [सः एषः] वह [नूनम्] निश्चय से [अन्तर्गतस्य] भीतरस्थित [मरुतः] हवा का ही [अनुभावः] किला प्रभाव है।

यस्मिन्हर-प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥११॥
जिह्नं सब देव किये वश वाम, तैं छिन में जीत्यो सो काम
ज्यों जल करे अग्नि-कुल हान, बडवानल पीवे सो पान ॥

अन्वयार्थ : [यस्मिन्] जिसके विषय में [हरप्रभृतयः अपि] महादेव आदि भी [हतप्रभावाः] प्रभाव रहित हैं [सः] वह [रतिपतिः] कामदेव भी [त्वया] आपके द्वारा [क्षणेन] क्षणमात्र में [क्षपितः] नष्टकर दिया गया [अथ] अथवा ठीक है कि [येन पयसा] जिस जल ने [हुतभुजः विध्यापिताः] अग्नि को बुझाया है [तत् अपि] वह जल भी [दुर्धरवाडवेन] प्रचण्ड दावानल के द्वारा [किम्] क्या [न पीतम्] नहीं पिया गया?

स्वामिन्ननल्प-गरिमाणमपि प्रपन्नास्
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥

तुम अनंत गुरुवा गुन लिए, क्यों कर भक्ति धर्म निज हिये
हैं लघुरूप तिरहिं संसार, प्रभु तुम महिमा अगम अपार ॥

अन्वयार्थ : [स्वामिनः] हे प्रभो! [अहो] आश्र्य है कि [अनल्पगरिमाणम् अपि] अधिक गौरव से युक्त भी विरोध पक्ष में अत्यन्त वजनदार [त्वाम्] आपको [प्रपन्नाः] प्राप्त हो [हृदये दधानाः] हृदय में धारण करने वाले [जन्तवः] प्राणी [जन्मोदधिम्] संसार समुद्र को [अति लाघवेन] बहुत ही लघुता से [कथम्] कैसे [लघु] शीघ्र [तरन्ति] तर जाते हैं। [यदि वा] अथवा [हन्त] हर्ष है कि [महताम्] महापुरुषों का [प्रभावः] प्रभाव [चिन्त्यः] चिन्तवन के योग्य [न भवति] नहीं होता है।

क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः ।

**प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नील-द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥१३॥**

क्रोध-निवार कियो मन शांत, कर्म-सुभट जीते किहिं भाँत
यह पटुतर देखहु संसार, नील वृक्ष ज्यों दहै तुषार ॥

अन्वयार्थ : [विभोऽ] हे पार्श्वनाथ! [यदि] यदि [त्वया] आपके द्वारा [क्रोधः] क्रोध [प्रथमम्] पहले ही [निरस्तः] नष्ट कर दिया गया था, [तदा] तो फिर [वद] बोलिए कि [कर्मचौराः] कर्मरूपी चोर [कथम्] कैसे [ध्वस्ता] किला] नष्ट किये? [यदि वा] अथवा [अमुत्त लोके] इस लोक में [हिमानी अपि] बर्प होने पर भी [किम्] क्या [नील द्रुमाणि] हरे-हरे वृक्ष जिनमें ऐसे [विपिनानि] वनों को [न प्लोषति] नहीं जला देता है! अर्थात् जला देता है, मुरझा देता है।

त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज-कोश-देशे ।
पूतस्य निर्मल-रुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

मुनिजन हिये कमल निज टोहि, सिद्धरूप सम ध्यावहिं तोहि
कमल-कर्णिका बिन-नहिं और, कमल बीज उपजन की ठोरे ॥

अन्वयार्थ : [जिनः] हे पार्श्वनाथ! [योगिनः] ध्यान करने वाले मुनीश्वर [सदा] हमेशा [परमात्मरूपम्] परमात्मस्वरूप [त्वाम्] आपको [हृदयाम्बुजकोषदेशो] अपने हृदयरूपी कमल के मध्य भाग में [अन्वेषयन्ति] खोजते हैं। [यदि वा] अथवा ठीक है कि [पूतस्य] पवित्र और [निर्मल-रुचे:] निर्मल कान्तिवाले [अक्षस्य] कमल के बीज का अथवा शुद्धात्मा का [संभवपदम्] उत्पत्ति स्थान अथवा खोज करने का स्थान [कर्णिकायाः] अन्यत् कमल की डण्ठल को छोड़कर [अन्यत् किम् ननु] दूसरा क्या हो सकता है?

ध्यानाञ्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपल-भावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः ॥१५॥

जब तुव ध्यान धरे मुनि कोय, तब विदेह परमात्म होय
जैसे धातु शिला-तनु त्याग, कनक-स्वरूप धवे जब आग ॥

अन्वयार्थ : [जिनेशः] हे पार्श्वनाथ! [लोके] लोक में [तीव्रानलातु] तीव्र अग्नि के संबंध से [धातु भेदाः] अनेक धातुएँ [उपलभावम्] पत्थर रूप पूर्व पर्याय को [अपास्य] छोड़कर [अचिरातु] शीघ्र ही [चामीकरत्वम् इव] जिस तरह सुवर्ण पर्याय को प्राप्त हो जाती हैं, उसी तरह [भविनः] भव्य प्राणी [भवतः] आपके [ध्यानात्] ध्यान से [देहम्] शरीर को [विहाय] छोड़कर [क्षणेन] क्षणभर में [परमात्मदशाम्] परमात्मा की अवस्था को [व्रजन्ति] प्राप्त हो जाते हैं।

अन्तः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्य-विवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥

जाके मन तुम करहु निवास, विनशि जाय सब विग्रह तास
ज्यों महंत ढिंग आवे कोय, विग्रहमूल निवारे सोय ॥

अन्वयार्थ : [जिनः] हे जिनेन्द्र! [भव्यैः] भव्यजीवों के द्वारा [यस्य] जिस शरीर के [अन्तः] भीतर [त्वम्] आप [सदैव] हमेशा [विभाव्यसे] ध्याये जाते हों [तत्] उस [शरीरम् अपि] शरीर को भी आप [कथम्] क्यों [नाशयसे] नष्ट करा देते हैं? [अथ] अथवा [एतत्स्वरूपम्] यह स्वभाव ही है [यत्] कि [मध्यविवर्तिनः] बीच में रहने वाले और रागद्वेष से रहित [महानुभावाः] महापुरुष [विग्रहम्] विग्रह-शरीर और द्वेष को [प्रशमयन्ति] शान्त करते हैं।

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेद-बुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृत-मित्यनुचिन्त्यमानं
किं नाम नो विष-विकारमपाकरोति ॥१७॥

करहि विबुध जे आतमध्यान, तुम प्रभाव तें होय निदान
जैसे नीर सुधा अनुमान, पीवत विष विकार की हान ॥

अन्वयार्थ : [जिनेन्द्र!] हे पाश्वनाथ [मनीषिभिः] बुद्धिमानों के द्वारा [त्वदभेदबुद्ध्या] आप से अभिन्न है ऐसी बुद्धि से [ध्यातः] ध्यान किया गया [अथम् आत्मा] यह आत्मा [भवत्प्रभावः] आप ही के समान प्रभाव वाला [भवति] हो जाता है [अमृतम् इति अनुचिन्त्यमानम्] यह अमृत है इस तरह चिन्तावन करने वाला [पानीयम् अपि] पानी भी [किम्] क्या [विषविकारम्] विष विकार को [नो अपाकरोति नाम] दूर नहीं करता है ?

त्वामेव वीत-तमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो हरि-हरादि-धिया प्रपन्नाः ।
किं काच-कामलिभिरीश सितोऽपि शड्खो
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण ॥१८॥

तुम भगवंत विमल गुणलीन, समल रूप मानहि मतिहीन
ज्यों पीलिया रोग दृग गहे, वर्ण विवर्ण शंख सों कहे ॥

अन्वयार्थ : [विभो!] हे पार्श्वनाथ ! [परवादिनः] अपि अन्यमतावलम्बी पुरुष भी [वीत-तमसम्] अज्ञान अंधकार से रहित [त्वाम् एव] आपको ही [नूनम्] निश्चय से [हरिहरादिधिया] विष्णु महादेव आदि की कल्पना से [प्रपन्नाः] पूजते हैं । [किम्] क्या [ईश] हे विभो ! [काचकामलिभिः] जिनकी आँख पर रंगदार चश्मा है, अथवा जिन्हें पीलिया रोग हो गया है ऐसे पुरुषों द्वारा [शंखसितः अपि] शंख सफेद होने पर भी [विविधवर्णविपर्ययेण] तरह-तरह के विपरीत वर्णों से [नो गृह्यते] नहीं ग्रहण किया जाता है ?

धर्मोपदेश-समये सविधानुभावाद्
आस्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्रुते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीव-लोकः ॥१९॥

(दोहा)

निकट रहत उपदेश सुन, तरुवर भयो 'अशोक'
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥

अन्वयार्थ : [धर्मोपदेश समये] धर्मोपदेश के समय [ते] आपकी [सविधानुभावात्] समीपता के प्रभाव से [जनः आस्ताम्] मनुष्य तो दूर रहे [तर्सः अपि] वृक्ष भी [अशोकः] शोक रहित [भवति] हो जाता है । [वा] अथवा [दिनपतौ अभ्युद्रुते 'सति'] सूर्य के उदय होने पर [समहीरुहः अपि जीव लोकः] वृक्षों सहित समस्त जीवलोक [किम्] क्या [विबोधम्] विशेषज्ञान को [न उपयाति] प्राप्त नहीं होते ?

चित्रं विभो कथमवाङ्मुख-वृन्तमेव
विष्वक्पतत्यविरला सुर-पुष्प-वृष्टिः ।
त्वद्-गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥

'सुमन वृष्टि' ज्यों सुर करहिं, हेठ बीठमुख सोहिं
ल्यों तुम सेवत सुमन जन, बंध अधोमुख होहिं ॥

अन्वयार्थ : [विभो!] हे जिनेन्द्र ! [चित्तम्] आश्र्य है कि [विष्वक्पतः] सब ओर [अविरला] व्यवधान रहित [सुरपुष्पवृष्टिः] देवों के द्वारा की हुई फूलों की वर्षा [अवाङ्मुखवृन्तम्] नीचे को बंधन करके ही [कथम्] क्यों [पतति] पड़ती है ? [यदि वा] अथवा [मुनीशः] हे मुनियों के नाथ ! [त्वद्गोचरे] आपके समीप [सुमनसाम्] पुष्पों अथवा विद्वानों के [बंधनानि] कर्मों के बंधन [नूनम् हि] निश्चय से [अधः एव गच्छन्ति] नीचे को ही जाते हैं ।

स्थाने गभीर-हृदयोदधि-सम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परम-सम्मद-संग-भाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥२१॥

उपजी तुम हिय उदधि तें, 'वाणी' सुधा समान
जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमर-पदथान ॥

अन्वयार्थ : [गंभीरहृदयोदधिसंभवाया:] गंभीर हृदयरूपी समुद्र में पैदा हुई [तब] आपकी [गिर:] वाणी के [पीयूषताम्] अमृतपने को [स्थाने] ठीक ही [समुद्रीरथन्ति] प्रकट करते हैं। [यतः] क्योंकि [भव्यः] भव्यजीव [ताम् पीत्वा] उसे पीकर [परमसंमदसङ्गभाजः] परम सुख के भागी होते हुए [तरसा अपि] बहुत ही शीघ्र [अजरामरत्वम्] अजर अमरपने को [व्रजन्ति] प्राप्त होते हैं।

**स्वामिन्! सुदूरमवनम्य समुत्पत्तन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुङ्गवाय,
ते नूनमूर्ध्व-गतयः खलु शुद्ध-भावाः ॥२२॥**

कहहिं सार तिहुँ-लोक को, ये 'सुर-चामर' दोय
भावसहित जो जिन नमहिं, तिहुँ गति ऊरध होय ॥

अन्वयार्थ : [स्वामिन्] हे प्रभो! [मन्ये] मैं मानता हूँ कि [सुदूरम्] बहुत दूर तक [अवनम्य] नमीभूत होकर [समुत्पत्तन्तः] ऊपर को जाते हुए [शुचयः] पवित्र [सुरचामरौघा] देवों के चामर समूह [वदन्ति] कह रहे हैं कि [ये] जो [अस्मै मुनिपुङ्गवाय] इन श्रेष्ठ मुनि को [नतिम्] नमस्कार [विदधते] करते हैं, [ते] वे [नूनम्] निश्चय से [शुद्ध भावाः] विशुद्ध परिणाम वाले होकर [ऊरधगतयः] ऊरधगति वाले हो जाते हैं।

**श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न
सिंहासनस्थमिह भव्य-शिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैश-
चामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥**

'सिंहासन' गिरि मेरु सम, प्रभु धुनि गरजत घोर
श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन मोर ॥

अन्वयार्थ : [इह] इस लोक में [श्यामं] श्याम वर्ण [गभीरगिरम्] गंभीर दिव्यधन युक्त और [उज्ज्वलहेम रत्नसिंहासनस्थम्] निर्मल सुवर्ण के बने हुए रत्नजड़ित सिंहासन पर स्थित [त्वाम्] आपको [भव्यशिखण्डिनः] भव्य जीवरूपी मयूर [चामीकराद्रिशिरसि] सुवर्णमय मेरुपर्वत के शिखर पर [उच्चैः] जोर से [नदन्तम्] गजते हुए [नवाम्बुवाहम् इव] नूतन मेघ की तरह [रभसेन] उल्कण्ठापूर्वक [आलोकयन्ति] देखते हैं।

**उद्भृता तव शिति-दयुति-मण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छविरशोक-तरुर्बभूव ।
सान्त्रिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग !
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥२४॥**

छवि-हत होत अशोक-दल, तुम 'भामंडल' देख
वीतराग के निकट रह, रहत न राग विशेष ॥

अन्वयार्थ : [उद्भृता] स्पृशरायमान [तव] आपके [शितिदयुतिमण्डलेन] श्यामप्रभामण्डल के द्वारा [अशोकतरुः] अशोकवृक्ष [लुप्तच्छदच्छविः] कान्तिहीन पत्रों वाला [बभूव] हो गया, [यदि वा] अथवा [वीतराग!] हे रागद्वेष रहित देव! [तव सान्त्रिध्यतः अपि] आपकी समीपता मात्र से ही [कः सचेतनः अपि] कौन पुरुष सचेतन होकर भी [नीरागताम्] अनुराग के अभाव को [न व्रजति] नहीं प्राप्त होता है?

**भो! भोः! प्रमादमवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृति-पुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव! जगत्लयाय,
मन्ये नदन्त्रभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥**

सीख कहे तिहुँ-लोक को, ये 'सुर-दुन्दुभि' नाद
शिवपथ-सारथ-वाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥

अन्वयार्थ : [देवः] हे देव [मन्ये] मैं समझता हूँ कि [अभिनभः] आकाश में सब ओर [नदन्] शब्द करती हुई [ते] आपकी [सुरदुन्दुभिः] देवों के द्वारा बजाई गई दुन्दुभि [जगत्लयाय] तीनों लोक के जीवों को [एतत्-निवेदयति] यह बतला रही है कि [भोः भोः] रे रे प्राणियों! [प्रमादम् अवधूय] प्रमाद को छोड़कर [निर्वृतिपुरीम् प्रति सार्थवाहम्] मोक्षपुरी को ले जाने में अगुआ [एवम्] इन भगवान को [आगत्य] आकर [भजध्वम्] भजो।

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ !,
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ।
मुक्ता-कलाप-कलितोल्ल-सितातपत्र-
व्याजात्लिधा धृत-तनुर्धुवमभ्युपेतः ॥२६॥

'तीन छत्र' त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छवि देत
त्रिविध-रूप धर मनहु शशि, सैवत नखत-समेत ॥

अन्वयार्थ : [नाथ!] हे स्वामिन्! [भवता भुवनेषु उद्योति तेषु] आपके द्वारा तीनों लोकों के प्रकाशित होने पर [विहताधिकारः] अपने अधिकार से भ्रष्ट तथा [मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्रव्याजातु] मोतियों के समूह से सहित अतएव शोभायमान सफेद छत्र के छल से [तारान्वित] ताराओं से वेष्टित [अयम् विधुः] यह चन्द्रमा [त्रिधा धृततनु] तीन-तीन शरीर धारण कर [धृवम्] निश्चय से [अभ्युपेतः] सेवा को प्राप्त हुआ है।

स्वेन प्रपूरित-जगत्लय-पिण्डितेन,
कान्ति-प्रताप-यशसामिव सञ्चयेन ।
माणिक्य-हेम-रजत-प्रविनिर्मितेन,
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥

(पद्मरि छन्द)

प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम, परताप पुंज जिम शुद्ध-हेम
अतिधवल सुजस रूपा समान, तिनके गुण तीन विराजमान ॥

अन्वयार्थ : [भगवन्] हे भगवन्! आप [अभितः] चारों ओर से [प्रपूरित-जगत्लयपिण्डितेन] भरे हुए जगत्लय के पिण्ड अवस्था को प्राप्त [स्वेन कान्तिप्रतापयशसाम् सञ्चयेन इव] अपने कान्ति, प्रताप और यश के समूह के समान शोभायमान [माणिक्य-हेम-रजत-प्रविनिर्मितेन] माणिक्य, सुवर्ण और चाँदी से बने हुए [सालत्रयेण] तीनों कोटों से [विभासि] शोभायमान होते हैं।

दिव्य-स्रजो जिन! नमत्लिदशाधिपाना-
मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र,
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमत भाल, तिन सीस मङ्कुट तज देहिं माल
तुम चरण लगत लहलहे प्रीति, नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥

अन्वयार्थ : [जिन!] हे जिनेन्द्र! [दिव्यस्रजः] दिव्यपुरुषों की मालाएँ [नमत्लिदशाधिपानाम्] नमस्कार करते हुए इन्द्रों के [रत्न रचितान्] अपि मौलिबन्धान्। रत्नों से बने हुए मुकुटों को भी [विहाय] छोड़कर [भवतः पादौ श्रयन्ति] आपके चरणों का आश्रय लेती हैं। [यदि वा] अथवा [त्वत्सङ्गमे] आपका समागम होने पर [सुमनसः] पुष्प अथवा विद्वान पुरुष [परत्र] किसी दूसरी जगह [न एव रमन्ते] नहीं रमण करते हैं।

त्वं नाथ! जन्मजलधेविपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयस्यसुमतो निज-पृष्ठ-लग्नान् ।
युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो! यदसि कर्म-विपाक-शून्यः ॥२९॥

प्रभु भोग-विमुख तन करम-दाह, जन पार करत भवजल निवाह
ज्यों माटी-कलश सुपक्ष होय, ले भार अधोमुख तिरहिं तोय ॥

अन्वयार्थ : [नाथ!] हे स्वामिन् [त्वम्] आप [जन्मजलधेः] संसाररूप समुद्र से [विपराङ्मुखः] अपि सन् पराङ्मुख होते हुए भी [यत्] जो [निजपृष्ठलग्नान्] अपने पीछे लगे हुए अनुयायी [अनुमतः] जीवों को [तारयसि] तार देते हों, [तत्] वह [पार्थिवनपस्य सतः] राजाधिराज अथवा मिट्टी के पके हुए घड़े की तरह परिणमन करने वाले [तव] आपको [युक्तम् एव] उचित ही है। परन्तु [विभो!] हे प्रभो! [चित्रम्] आश्र्य की बात है [यत्] जो आप [कर्मविपाक शून्यः असि] कर्मदय रूप क्रिया से रहित हो।

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक! दुर्गतस्त्वं,
किं वाऽक्षर-प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश !
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतुः ॥३०॥

तुम महाराज निरधन निराश, तज तुम विभव सब जगप्रकाश
अक्षर स्वभाव-सुलिखे न कोय, महिमा भगवंत अनंत सोय ॥

अन्वयार्थ : [जनपालक!] हे जीवों के रक्षक! [त्वम्] आप [जिनेश्वरः] अपि दुर्गतः] तीन लोक के स्वामि होकर भी दरिद्र हैं [किं वा] और [अक्षर प्रकृतिः] अपि त्वम् अलिपिः] अक्षर स्वभाव होकर भी लेखन क्रिया से रहित हैं। [ईश!:] है स्वामिन्! [कथञ्चित्] किसी प्रकार से [अज्ञानवति अपि त्वयि] अज्ञानवान होने पर भी आप में [विश्वविकास हेतु ज्ञानम्] सभी पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान [सदा एव स्फुरति] हमेशा स्फुरायमान रहता है।

प्राग्भार-सम्भूत-नभांसि रजांसि रोषा-
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥

कोपियो कमठ निज बैर देख, तिन करी धूलि वरषा विशेष
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन, सो भयो पापी लंपट मलीन

अन्वयार्थ : [नाथ!] है स्वामिन्! [शठेन] मूर्ख [कमठेन] कमठ के द्वारा [रोषात्] क्रोध से [प्राग्भारसम्भूतनभांसि] सम्पूर्ण रूप से आकाश को व्याप्त करने वाली [यानि] जो [रजांसि] धूल [उत्थापितानि] आपके ऊपर उड़ाई गई थी [तैःतु] उससे तो [तव] आपकी [छाया अपि] छाया भी [न हता] नहीं नष्ट हुई थी। [परम्] किन्तु [अयमेव दुरात्मा] यहीं दुष्ट [हताशः] हताश हो [अमीभिः] कर्मरूप रजों से [ग्रस्तः] जकड़ा गया।

यद्गर्जदूर्जित-घनौघमदभ्र-भीम
भ्रश्यत्तडिन्-मुसल-मांसल-घोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर-वारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन! दुस्तर-वारिकृत्यम् ॥३२॥

गरजंत घोर घन अंधकार, चमकंत-विज्जु जल मूसल-धार
वरषंत कमठ धर ध्यान रुद्र, दुस्तर करंत निज भव-समद्र ॥

अन्वयार्थ : [अथ] और [जिन!] है जिनेश्वर! [दैत्येन] उस कमठ ने गर्जदूर्जितघनौघम् खूब गर्ज रहे हैं बलिष्ठ-मेघ-समूह जिसमें [भ्रश्यत्तडित्] गिर रही है बिजली और [मुसलमांसलघोरधारम्] मूसल के समान बड़ी है मोटी धारा जिसमें तथा [अद्भुभीम] अत्यंत भयंकर [यत्] जो [दुस्तरवारि] अथाह जल [मुक्तम्] वर्षया था [तेन] उस जलवृष्टि से [तस्य एव] उस कमठ ने ही अपने लिए [दुस्तरवारिकृत्यम्] तीक्ष्ण तलवार का काम कर लिया था।

ध्वस्तोध्-र्वकेश-विकृताकृति-मर्त्य-मुण्ड-
प्रालम्बभृद्यदवक्त-विनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भव-दुःख-हेतुः ॥३३॥

(वास्तु छन्द)

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि
भेजे तुरत पिशाच-गण, नाथ-पास उपसर्ग कारण
अग्नि-जाल झलकंत मुख, धुनिकरत जिमि मत्त वारण
कालरूप विकराल-तन, मुंडमाल-हित कंठ
है निशंक वह रंक निज, करे कर्म दृढ़-गंठ ॥

अन्वयार्थ : [तेन असुरेण] उस असुर के द्वारा [ध्वस्तोध्वकेशविकृताकृतिमुण्डे] हुए तथा विकृत आकृति वाले [मर्त्यमुण्डप्रालम्बभृद्] नर कपालों की माला को धारण करने वाले [भयदवक्तविनिर्यदग्निः] जिसके भयंकर मुख से अग्नि निकल रही है, ऐसा [यः] जो [प्रेतव्रजः] पिशाचों का समूह [भवन्तम् प्रति] आपके प्रति [ईरितः] प्रेरित किया गया था [सः] वह [अस्य] उस असुर को [प्रतिभवम्] प्रत्येक भव में [भवदुःख हेतुः] संसार के दुःखों का कारण [अभवत्] हुआ।

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसंध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्य-कृत्याः ।
भक्त्योल्लस्त्युलक-पक्ष्मल-देह-देशाः,
पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः ॥३४॥

(चौपाई छन्द)

जे तुम चरण-कमल तिहँकाल, सेवहि तजि माया जंजाल
भाव-भगति मन हरष-अपार, धन्य-धन्य जग तिन अवतार ॥

अन्वयार्थ : [भुवनाधिप!] हे तीन लोक के नाथ! [ये] जो [जन्मभाजः] प्राणी [विधुतान्यकृत्याः] जिन्होंने अन्य काम छोड़ दिये हैं और [भक्त्या] भक्ति से [उल्लस्त] प्रकट हुए [पक्ष्मलदेहदेशाः] रोमांचों से जिनके शरीर का प्रत्येक अवयव व्याप्त है, ऐसे [सन्तः] होते हुए [विधिवत्] विधिपूर्वक [त्रिसन्ध्यम्] तीनों कालों में [तव] आपके [पादद्वयम् आराधयन्ति] चरण युगल की आराधना करते हैं। [विभो!] हे स्वामिन्! [भुवि] संसार में [ते एव] वे ही [धन्याः] धन्य हैं।

अस्मिन्नपार-भव-वारि-निधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

भवसागर में फिरत अजान, मैं तुव सुजस सुन्यो नहिं कान
जो प्रभु-नाम-मंत्र मन धरे, ता सों विपति भुजंगम डरे ॥

अन्वयार्थ : [मुनीश!] हे मुनीन्द्र! [मन्ये] मैं समझता हूँ कि [अस्मिन्] इस [अपारभववारिनिधौ] अपार संसाररूप समुद्र में कभी भी [मे] मेरे [कर्णगोचरताम् न गतः असि] कानों की विषयता को प्राप्त नहीं हुए हो। क्योंकि [तु] निश्चय से [तव गोत्र पवित्र मन्त्रे] आपके नामरूपी मंत्र के [आकर्णिते] सुन लेने पर [विपद्विषधरी] विपत्तिरूपी नागिन [किम् वा] क्या [सविधम्] समीप [समेति] आती है?

जन्मान्तरेऽपि तव पाद-युगं न देव !
मन्ये मया महितमीहित-दान-दक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां,
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥३६॥

मनवाँछित-फल जिनपद माहिं, मैं पूरब-भव पूजे नाहिं
माया-मगन फिर्यो अज्ञान, करहिं रंक-जन मुझ्य अपमान ॥

अन्वयार्थ : [देव!] हे देव! [मन्ये] मैं मानता हूँ कि मैंने [जन्मान्तरे अपि] दूसरे जन्म में भी [ईहितदानदक्षम्] इच्छित फल देने में समर्थ [तव पादयुगम्] आपके चरण कमल [न महितम्] नहीं पूजे, [तेन] उसी से [ईह जन्मनि] इस भव में [मुनीश!] हे मुनीश! [अहम्] मैं [मथिताशयानाम्] हृदयभेदी [पराभवानाम्] तिरस्कारों का [निकेतनम्] घर [जातः] हुआ हूँ।

नूनं न मोह-तिमिरावृतलोचनेन,
पूर्व विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्ध-गतयः कथमन्यथेते ॥३७॥

मोहतिमिर छायो दग मोहि, जन्मान्तर देखो नहिं तोहि
जो दुर्जन मुझ्य संगति गहें, मरम छेद के कुवचन कहें ॥

अन्वयार्थ : [विभो!] हे स्वामिन्! [मोहतिमिरावृतलोचनेन] मोहरूपी अंधकार से ढक हुए हैं नेत्र जिसके ऐसे [मया] मेरे द्वारा आप [पूर्वम्] पहले कभी [सकृदापि] एकबार भी [नूनम्] निश्चय से [प्रविलोकितःन असि] अच्छी तरह अवलोकित नहीं हुए हों, अर्थात् मैंने आपके दर्शन नहीं किए। [अन्यथा हि] नहीं तो [प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः] जिनमें कर्मबंध की गति बढ़ रही है ऐसे [ऐते] ये [मर्माविधः] मर्मभेदी [अनर्थः] अनर्थ [माम्] मुझे [कथम्] क्यों [विधुरयन्ती] देखी करते?

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।

**जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रम्,
यस्माल्क्रिया: प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः ॥३८॥**

**सुन्यो कान जस पूजे पायঁ, नैनन देख्यो रूप अघाय
भक्ति हेतु न भयो चित चाव, दुःखदायक किरिया बिनभाव ॥**

अन्वयार्थ : [जनबान्धव!] हे जगद् बस्यो! [मया] मेरे द्वारा [आकर्षितः] अपि दर्शन किये गये हो [महितः अपि] पूजित भी हुए हो और [निरीक्षितः अपि] अवलोकित भी हुए हो फिर भी [नूनम्] निश्चय है कि [भक्त्या] भक्तिपूर्वक [चेतसि] चित में [न विधृतः असि] धारण नहीं किये गये हो। [तेन] उसी से [दुःखपात्रम् जातः अस्मि] दुःखों का पात्र हो रहा हूँ [यस्मात्] क्योंकि [भावशून्याः] भाव रहित [क्रियाः] क्रियाएँ [न प्रति फलन्ति] सफल नहीं होतीं।

**त्वं नाथ! दुःखि-जन-वत्सल! हे शरण्य !
कारुण्य-पुण्य-वसते! वशिनां वरेण्य ।
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय,
दुखांकुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९॥**

**महाराज शरणागत पाल, पतित-उधारण दीनदयाल
सुमिरन करहूँ नाय निज-शीश, मुझ दुःख दूर करहु जगदीश ॥**

अन्वयार्थ : [नाथ!] हे नाथ! [दुःखिजनवत्सल!] हे दुखियों पर प्रेम करने वाले [हे शरण्य] हे शरणागत प्रतिपालक! [कारुण्यपुण्य वसते!] हे दया की पवित्र भूमि! [वशिनाम् वरेण्य] हे जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ! और [महेश!] हे महेश्वर! [भक्त्या] भक्ति से [नते मयि] नम्रीभूत मुझ पर [दयाम् विधाय] दया करके [दुःखाञ्चुर के] [उद्दलन] नाश करने में [तत्परताम्] तत्परता [विधेहि] कीजिए।

**निःसंख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादित-रिपु-प्रथितावदानम् ।
त्वत्पाद-पङ्कजमपि प्रणिधान-वन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि चेदभुवन-पावन! हा हतोऽस्मि ॥४०॥**

**कर्म-निकंदन-महिमा सार, अशरण-शरण सुजस विस्तार
नहि सेये प्रभु तुमरे पाय, तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥**

अन्वयार्थ : [भुवनपावन] हे संसार को पवित्र करने वाले भगवन्! [निःसंख्यसारशरणम्] असंख्यात श्रेष्ठ पदार्थों के घर की [शरणम्] रक्षा करने वाले [शरण्यम्] शरणागत प्रतिपालक और [सादितरिपुप्रथितावदानम्] कर्मशत्रुओं के नाश से प्रसिद्ध है, पराक्रम जिनका ऐसे [त्वत्पादपञ्जजम्] आपके चरणकमलों को [आसाद्य अपि] पाकर भी [प्रणिधानबन्धः] उनके ध्यान से रहित हुआ मैं [बन्धः अस्मि] फलहीन हूँ [तत्] उससे [हा] खेद है कि मैं [हतः अस्मि] नष्ट हुआ जा रहा हूँ।

**देवेन्द्रवन्ध्य! विदिताखिल-वस्तु-सार !
संसार-तारक! विभो! भुवनाधिनाथ! ।
त्रायस्व देव! करुणा-हृद! मां पुनीहि,
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बुराशेः ॥४१॥**

**सुर-गन-वंदित दया-निधान, जग-तारण जगपति अनजान
दुःख-सागर तें मोहि निकासि, निर्भय-थान देहु सुख-रासि ॥**

अन्वयार्थ : [देवेन्द्रवन्ध्य!] हे इन्द्रों के वन्दनीय! [विदिताखिलवस्तुसार!] हे सब पदार्थों के रहस्य को जानने वाले! [संसारतारक!] हे संसार समुद्र से तारने वाले! [विभो!] हे प्रभो! [भुवनाधिनाथ!] हे तीन लोक के स्वामिन्! [करुणाहृद] हे दया के सरोवर! [देव] देव! [अद्य] आज [सीदन्तम्] तड़पते हुए [माम्] मुझको [भयदव्यसनाम्बुराशेः] भयंकर दुःखों के समुद्र से [त्रायस्व] बचाओ और [पुनीहि] पवित्र करो।

**यद्यस्ति नाथ! भवदङ्ग्नि-सरोरुहाणां,
भक्ते: फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः ।
तन्मे त्वदेक-शरणस्य शरण्य! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥**

मैं तुम चरण कमल गुणगाय, बहु-विधि-भक्ति करी मनलाय
जनम-जनम प्रभु पाऊँ तोहि, यह सेवाफल दीजे मोय ॥

अन्वयार्थ : [नाथ!] हे नाथ! [त्वदेकशरणस्य] केवल आप ही की है शरण जिसको ऐसे मुझे [सन्त सञ्चितायाः] चिरकाल से सञ्चित-एकत्रित हुई [भवदंग्रिसरोरुहाणाम्] आपके चरण कमलों की [भक्तेः] भक्ति का [यदि] यदि [किमपि फलम् अस्ति] कुछ फल हो, [तत्] तो उससे [शरण्ण] हे शरणागत प्रतिपालक! [त्वम् एव] आप ही [अत्र भुवने] इस लोक में और [भवान्तरे अपि] परलोक में भी [स्वामि] मेरे स्वामी [भूयाः] होवें।

इत्यं समाहित-धियो विधिवज्जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लसत्पुलक-कञ्चुकिताङ्गंभागाः ।
त्वद्विम्ब-निर्मल-मुखाम्बुज-बद्ध-लक्ष्या,
ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्याः ॥४३॥
जननयन 'कुमुदचन्द्र' प्रभास्वराः स्वर्ग-सम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलित-मल-निचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥४४॥

(बेसरी छंद - षड्पद)

इहविधि श्री भगवंत, सुजस जे भविजन भाषहि
ते निज पुण्यभंडार, संचि चिर-पाप प्रणासहि ॥
रोम-रोम हुलसंति अंग प्रभु-गुण मन ध्यावहि
स्वर्ग संपदा भुंज वेगि पंचमगति पावहि ॥
यह कल्याणमंदिर कियो, कुमुदचंद्र की बुद्धि
भाषा कहत 'बनारसी', कारण समकित-शुद्धि ॥

अन्वयार्थ : [जिनेन्द्र विभो!] हे जिनेन्द्रदेव! [ये भव्याः] जो भव्यजन [इत्यम्] इस तरह [समाहितधियः] सावधानबुद्धि से युक्त हो [त्वद्विम्बनिर्मल-मुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः] आपके निर्मल मुख कमल पर बांधा है लक्ष्य जिन्होंने ऐसे [सान्द्रोल्लसत्पुलक-कञ्चुकिताङ्गभागाः] सघन रूप से उठे हुए रोमांचों से व्याप्त है शरीर के अवयव जिनके ऐसे [सन्तः] होते हुए [विधिवत्] विधिपूर्वक [तव] आपका [संस्तवनम्] स्तोत्र [रचयन्ति] रचते हैं, [ते] वे [जननयनकुमुदचन्द्र] हे प्राणियों के नेत्ररूपी कुमुदों-कमलों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा की तरह शोभायमान देव! [प्रभास्वराः] दैदीष्यमान [स्वर्गसम्पदः] स्वर्ग की सम्पत्तियों को [भुक्त्वा] भोगकर [विगलित मलनिचयाः] कर्मरूपी मल से रहित हो [अचिरात्] शीघ्र ही [मोक्षम् प्रपद्यन्ते] मुक्ति को पाते हैं।



कल्याणमन्दिर-स्तोत्र-हिंदी



आ. कुमुदचंद्र कृत संस्कृत पाठ का हिंदी रूपांतर

तर्ज़ : आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते

फूल तुम्हें भेजा है खत में

कुसुमलता छंद

पारस प्रभु कल्याण के मंदिर, निज-पर पाप विनाशक हैं
अति उदार हैं भयाकुलित, मानव के लिए अभयप्रद हैं ॥
भवसमुद्र में पतितजनों के, लिए एक अवलम्बन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥१॥

सागर सम गंभीर गुणों से, अनुपम हैं जो तीर्थकर
सुरगुरु भी जिनकी महिमा को, कह न सके वे क्षेमंकर ॥
महाप्रतापी कमठासुर का, मान किया प्रभु खण्डन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२॥

दिवाअन्ध ज्यों कौशिक शिशु नहिं, सूर्य का वर्णन कर सकता
वैसे ही मुझ सम अज्ञानी, कैसे प्रभु गुण कह सकता ॥
सूर्य बिम्ब सम जगमग-जगमग, जिनवर का मुखमंडल है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥३॥

प्रलय अनंतर स्वच्छ सिन्धु में, भी ज्यों रत्न न गिन सकते
वैसे ही तव क्षीणमोह के, गुण अनंत नहिं गिन सकते ॥
उनके क्षायिक गुण कहने में, पुद्गल शब्द न सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥४॥

शिशु निज कर फैलाकर जैसे, बतलाता सागर का माप
वैसे ही हम शक्तिहीन नर, कर लेते हैं व्यर्थ प्रलाप ॥
सच तो प्रभु गुणरत्नखान अरु, अतिशायी सुन्दर तन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥५॥

बड़े-बड़े योगी भी जिनके, गुणवर्णन में नहिं सक्षम
तब अबोध बालक सम मैं, कैसे कर सकता भला कथन ॥
फिर भी पक्षीसम वाणी से, कर्ण पुण्य का अर्जन मैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥६॥

जलाशयों की जलकणयुत, वायू भी जैसे सुखकारी
ग्रीष्मवायु से थके पथिक के, लिए वही है श्रमहारी ॥
वैसे ही प्रभुनाम मंत्र भी, मात्र हमारा संबल है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥७॥

जो नर मनमंदिर में अपने, प्रभु का वास कराते हैं

उनके कर्मों के दृढ़तर, बंधन ढीले पड़ जाते हैं ॥
चंदन तरु लिपटे भुजंग के, लिए मयूर वचन सम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥८॥

ग्वाले के दिखते ही जैसे, चोर पशूधन तज जाते
वैसे ही तव मुद्रा लखकर, पाप शीघ्र ही भग जाते ॥
कैसा हो संकट समक्ष प्रभु, ही हरने में सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥९॥

भवपयोधितारक हे जिनवर! तुम्हें हृदय में धारण कर
तिर सकते हैं जैसे पवन, सहित तिरती है चर्ममसक ॥
इसीलिए भवसागर तिरने, में कारण प्रभु चिन्तन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥१०॥

हे अनङ्गविजयिन्! हरिहर, आदिक भी जिससे हार गये
कामदेव के वे प्रहार भी, तुम सम्मुख आ हार गये ॥
दावानल शांति में जल सम, प्रभु इन्द्रियजित् सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥११॥

हे त्रैलोक्यतिलक! जिसकी, तुलना न किसी से हो सकती
उन अनंत गुणभार को मन में, धर जनता कैसे तिरती ॥
किन्तु यही आश्वर्य हुआ, तिरते जिनवर भावितकजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१२॥

प्रभो! क्रोध को प्रथम जीतकर, कर्मचोर कैसे जीता?
प्रश्न उठा मन में बस केवल, इसीलिए तुमसे पूछा ॥
उत्तर आया हिम तुषार ज्यों, जला सके वन-उपवन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१३॥

हे जिनवर! योगीजन तुमको, हृदयकोष के मध्य रखें
वैसे ही ज्यों कमल कर्णिका, कमलबीज को संग रखें ॥

शुद्धात्मा के अन्वेषण में, हृदय कमल ही माध्यम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१४॥

हे जिनेश! तव ध्यानमात्र से, परमात्म पद पाते जीव
अग्निनिमित पा करके जैसे, सोना बनता शुद्ध सदैव ॥
ऐसी शक्ति देने में निज, ज्ञानपुञ्ज ही सक्षम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१५॥

जिस काया के मध्य भव्यजन, सदा आपका ध्यान करें
उस काया का ही विनाश, क्यों करते हो भगवान्! अरे ॥
अथवा उचित यही जो विग्रह-तन तजते बन भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१६॥

हे जिनेन्द्र! मंत्रादिक से, जैसे जल अमृत बन जाता
विषविकार हरने में सक्षम, वह परमौषधि कहलाता ॥
इसी तरह तुमको ध्याकर, तुम सम बनते योगीजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१७॥

जैसे कामलरोगी को, दिखती पीली वस्तू सब हैं
वैसे ही अज्ञानी को, प्रभुवर दिखते हरिहर सम हैं ॥
हे त्रिभुवनपति! फिर भी वे, करते तेरी ही पूजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१८॥

हे प्रभु पुण्य गुणों के आकर! तव महिमा का क्या कहना
तरु भी शोकरहित तुम ढिग हों, फिर मानव का क्या कहना ॥
रवि प्रगटित होते ही जैसे, कमल आदि खिलते सब हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१९॥

हे मुनीश! सुरपुष्पवृष्टि, जो तेरे ऊपर होती है
उनकी डंठल नीचे अरु, ऊपर पंखुरियाँ होती हैं ॥
यही सूचना है कि भव्य के, प्रभु ढिग खुलते बन्धन हैं

ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२०॥

तव गंभीर हृदय उदधी से, समुत्पन्न जो दिव्यधनी
अमृततुल्य समझकर भविजन, पीकर बनते अतुलगुणी ॥

सबकी भव बाधा हरने में, जिनवर गुण ही साधन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२१॥

देवों द्वारा दुरते चामर, जब नीचे-ऊपर जाते
विनयभाव वे भव्यजनों को, मानो करना सिखलाते ॥
प्रातिहार्य यह प्रगटित कर, बन गये नाथ अब भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२२॥

स्वर्ण-रत्नमय सिंहासन पर, श्यामवर्ण प्रभु जब राजे
स्वर्ण मेरु पर कृष्ण मेघ लख, मानों मोर स्वयं नाचें ॥
इसी तरह जिनवर सम्मुख, आल्हादित होते भविजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२३॥

तव भामण्डल प्रभ से जब, तरुवर अशोक भी कान्तिविहीन
हो जाता है तब बोलो क्यों?, भव्यराग नहिं होगा क्षीण ॥
वीतरागता के इस अतिशय, से लाभान्वित भविजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२४॥

हे प्रभु! देवदुन्दुभी बाजे, जब त्रिलोक में बजते हैं
तब असंख्य देवों-मनुजों को, वे आमंत्रित करते हैं ॥
तज प्रमाद शिवपुर यात्रा, करना चाहें तब भविजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२५॥

तीन छत्र हे नाथ! चन्द्रमा, मानो स्वयं बना आकर
निज अधिकार पुनः लेने को, सेवा में वह है तत्पर ॥
छत्रों के मोती बन मानो, ग्रह भी करते वंदन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२६॥

समवसरण में माणिक-सोने-चांदी के त्रय कोट बने
माना नाथ! तुम्हारी कांती-कीर्ती और प्रताप इन्हें ॥
जन्मजात वैरी के भी, हो जाते मैत्रीयुत मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२७॥

प्रभु! इन्द्रों के नत मुकुटों की, पुष्पमालिका कहती हैं
तब पद का सामीप्य प्राप्त कर, प्रगट हुई जो भक्ती है ॥
इसका अर्थ समझिये प्रभु से, जुड़े सभी अन्तर्मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२८॥

हे कृपालु! जिस तरह अधोमुखि, पका घड़ा करता नदि पार
कर्मपाक से रहित प्रभो! त्यों ही तुम करते भवि भवपार ॥
इस उपकारमयी प्रकृति का, जिनमें अति आकर्षण है ॥
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२९॥

हे जगपालक! तुम त्रिलोकपति, हो फिर भी निर्धन दिखते
अक्षरयुत हो लेखरहित, अज्ञानी हो ज्ञानी दिखते ॥
शब्द विरोधी अलंकार हैं, प्रभु तो गुण के उपवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३०॥

हे जितशत्रु! कमठ वैरी ने, तुम पर बहु उपसर्ग किया
किन्तु विफल हो कर्म रजों से, कमठ स्वयं ही जकड़ गया ॥
कर न सका कुछ अहित चूँकि, ध्यानस्थ हुए जब भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३१॥

हे बलशाली! तुम पर मूसल-धारा दैत्य ने बरसाई
भीम भयंकर बिजली की, गर्जना उसी ने करवाई ॥
खोटे कर्म बंधे उसके पर, जिनवर तो निश्चल तन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३२॥

केशविकृत मृतमुंडमाल धर, कंठ रूप विकराल किया
अग्नीज्वाला फैक-फैककर, विषधर सम मुख लाल किया ॥
क्रूर दैत्यकृत इन कष्टों से, भी नहिं प्रभु विचलित मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३३॥

हे प्रभु! अन्यकार्य तज जो जन, तव पद आराधन करते
भक्ति भरित पुलकित मन से, त्रय संध्या में तुमको यजते ॥
धन्य-धन्य वे ही इस जग में, धन्य तुम्हारा दर्शन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३४॥

इस भव सागर में प्रभु! तेरा, पुण्यनाम नहिं सुन पाये
इसीलिए संसार जलधि में, बहुत दुःख हमने पाये ॥
जिनका नाम मंत्र जपने से, खुल जाते भवबंधन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३५॥

हे जिन! पूर्व भवों में शायद, चरणयुगल तव नहिं अर्चे
तभी आज पर के निन्दायुत, वचनों से मन दुखित हुए ॥
अब देकर आधार मुझे, कर दो मेरा मन पावन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३६॥

मोहतिमिरयुत नैनों ने, प्रभु का अवलोकन नहीं किया
इसीलिए क्षायिक सम्यग्दर्शन आत्मा में नहीं हुआ ॥
जिनके दर्शन से भूतादिक, के कट जाते संकट हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३७॥

देखा सुना और पूजा भी, पर न प्रभो! तव ध्यान दिया
भक्तिभाव से हृदय कमल में, नहिं उनको स्थान दिया ॥
इसीलिए दुखपात्र बना, अब मिला भक्ति का साधन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३८॥

हे दयालु! शरणागत रक्षक, तुम दुःखितजन-वत्सल हो

पुण्यप्रभाकर इन्द्रियजेता, मुझ पर भी अब दया करो ॥
जग के दुःखांकुर क्षय में, जिनकी भक्ती ही माध्यम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३९॥

हे त्रिभुवन पावन जिनवर! अशरण के भी तुम शरण कहे
कर न सकें यदि भक्ति तुम्हारी, समझो पुण्यहीन हम हैं
जिनका पुण्य नाम जपने से, होता नष्ट विषम ज्वर है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४०॥

हे देवेन्द्रवंद्य! सब जग का, सार तुम्हीं ने समझ लिया
हे भुवनाधिप नाथ! तुम्हीं ने, जग को सच्चा मार्ग दिया ॥
जनमानस की रक्षा करते, दयासरोवर भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४१॥

नाथ! तुम्हारे चरणों की, स्तुति में यह अभिलाषा है
भव-भव में तुम मेरे स्वामी, रहो यही आकांक्षा है ॥
जिन पद के आराधन से, मिटते सब रोग विघ्न घन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४२॥

हे जिनेन्द्र! तव रूप एकटक, देख-देख नहिं मन भरता
रोम-रोम पुलकित हो जाता, जो विधिवत् सुमिरन करता ॥
दिव्य विभव को देने वाले, रहते सदा अकिञ्चन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४३॥

जो जन नेत्र 'कुमुद' शशि की, किरणों का दिव्य प्रकाश भरें
स्वर्गों के सुख भोग-भोग, कर्मों का शीघ्र विनाश करें ॥
मोक्षधाम का द्वार खोलकर, सिद्धिप्रिया का वरण करें
ऐसे पारस प्रभु को हम सब, शीश झुकाकर नमन करें ॥४४॥

इस स्तोत्र सुपाठ का, भाषामय अनुवाद
किया 'चन्दनामति' सुखद, ले ज्ञानामृत स्वाद ॥



भक्तामर



आ. मानतुंग कृत

भक्तामर-प्रणत-मौलिमणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमोवितानम्
सम्यक् प्रणम्य जिन पादयुगं युगादा-
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥
भक्त अमर नत-मुकुट सुमणियों, की सुप्रभा का जो भासक
पापरूप अतिसघन-तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक ॥
भव-जल पतित जनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन
उनके चरण-कमल को करते, सम्यक् बारम्बार नमन ॥१॥

अन्वयार्थ : इनके हुए भक्त देवों के मुकुट-जड़ित मणियों की प्रथा को प्रकाशित करने वाले, पाप रूपी अंधकार के समूह को नष्ट करने वाले, कर्म-युग के प्रारम्भ में संसार-समुद्र में ढूबते हुए प्राणियों के लिये आलम्बन भूत जिनेन्द्र-देव के चरण-युगल को मन-वचन-काय से प्रणाम करके (मैं मुनि मानतुंग उनकी स्तुति करूँगा) ।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्वबोधा-
दुद्भूत-बुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः
स्तोत्रैर्जगत्तितय चित्त हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

सकल वाङ्मय तत्त्वबोध से, उद्धव पटुतर धी-धारी
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग-जन मनहारी ॥
अति आश्वर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिन स्वामी की
जगनामी-सुखधामी तद्व-शिवगामी अभिरामी की ॥२॥

अन्वयार्थ : सम्पूर्ण श्रुतज्ञान से उत्पन्न हुई बुद्धि की कुशलता से इन्द्रों के द्वारा तीन-लोक के मन को हरने वाले, गंभीर स्तोत्रों के द्वारा जिनकी स्तुति की गई है उन प्रथम तीर्थकर (आदिनाथ जिनेन्द्र) की निश्चय ही मैं (मानतुंग) भी स्तुति करूँगा ।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्वित-पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विंगत-त्रपोऽहम्
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

स्तुति को तैयार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड़ के लाज
विज्ञनों से अर्वित हैं प्रभु, मंदबुद्धि की रखना लाज ॥
जल में पड़े चन्द्र-मंडल को, बालक बिना कौन मतिमान ?
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान ॥३॥

अन्वयार्थ : देवों के द्वारा पूजित है सिंहासन जिनका, ऐसे हे जिनेन्द्र ! मैं बुद्धि-रहित, निर्लज्ज होकर स्तुति करने के लिये तत्पर हुआ हूँ क्योंकि जल में स्थित चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को बालक को छोड़कर दूसरा कौन सहसा पकड़ने की इच्छा करता है?

वक्तुं गुणानुण-समुद्र शशाङ्क-कान्तान्
 कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या
 कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
 को वा तरीतुमलम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

हे जिन ! चन्द्रकान्त से बढ़कर, तब गुण विपुल अमल अतिश्वेत
 कह न सकें नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धिसमेत ॥
 मक्र-नक्र-चक्रादि जन्म युत, प्रलय पवन से बढ़ा अपार
 कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार ॥४॥

अन्वयार्थ : हे गुणों के भंडार ! आपके चन्द्रमा के समान सुन्दर गुणों को कहने लिये ब्रह्मस्ति के सद्रश भी कौन पुरुष समर्थ है ? प्रलयकाल की वायु के द्वारा प्रचण्ड है मगर मच्छों का समूह जिसमें, ऐसे समुद्र को भुजाओं के द्वारा तैरने के लिए कौन समर्थ है ?

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
 कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः
 प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
 नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

वह मैं हूँ, कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार
 करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वा-पर्य विचार ॥
 निज शिशु की रक्षार्थ आत्म-बल, बिना विचारे क्या न मृगी
 जाती है मृगपति के आगे, शिशु-सनेह में हुई रंगी ॥५॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश ! शक्ति रहित होता हुआ भी, मैं अल्पज्ञ, भक्तिवश, आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ; हरिणि, अपनी शक्ति का विचार न कर, प्रीतिवश अपने शिशु की रक्षा के लिये, क्या सिंह के सामने नहीं जाती ?

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
 त्वद्वक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्
 यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
 तच्चाम्र-चारु- कलिका निकरैकहेतु ॥६॥

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से, हास्य कराने का ही धाम
 करती है वाचाल मुझे प्रभु! भक्ति आपकी आठों याम ॥
 करती मधुर गान पिक मधु में, जग-जन मनहर अति अभिराम
 उसमें हेतु सरस फल-फूलों, से युत हरे-भरे तरु -आम ॥६॥

अन्वयार्थ : विद्वानों की हँसी के पात्र, मुझ अल्पज्ञानी को आपकी भक्ति ही बोलने को विवश करती है; बसन्त ऋतु में कोयल जो मधुर शब्द करती है उसमें निश्चय से आम्र-कलिका ही एक मात्र कारण है ।

त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्त्रिबद्धं
 पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्
 आक्रान्त -लोकमलि-नीलमशेषमाशु
 सूर्याशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप
 पलभर में भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप ॥
 सकल लोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वन्त
 प्रातः रवि की उग्र किरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त ॥७॥

अन्वयार्थ : आपकी स्तुति से प्राणियों के अनेक जन्मों में बाँधे गये पाप-कर्म क्षण-भर में नष्ट हो जाते हैं जैसे सम्पूर्ण लोक में व्याप्त रात्रि का अंधकार सूर्य की किरणों से क्षणभर में छिन्न-भिन्न हो जाता है ।

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
 मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्
 चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
 मुक्ता-फल दयुतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८॥

मैं मतिहीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूँ स्तुति अघ-हान
 प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान ॥
 जैसे कमल-पत्र पर जल-कण, मोती जैसे आभावान
 दिपते हैं फिर छिपते हैं असली मोती मैं हे भगवान् ॥८॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन् ! ऐसा मानकर मुझ मन्द-बुद्धि के द्वारा भी आपका यह स्तवन प्रारम्भ किया जाता है, जो आपके प्रभाव से सज्जनों के चित्त को हरेगा; निश्चय से पानी की बूँद कमलिनी के पत्तों पर मोती के समान शोभा को प्राप्त करती है।

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं
 त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति
 दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
 पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ॥९॥

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष
 पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्पष-कोष ॥
 प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर
 फेंका करता सूर्य-किरण को, आप रहा करता है दूर ॥९॥

अन्वयार्थ : सम्पूर्ण दोषों से रहित आपका स्तवन तो दूर, आपकी पवित्र कथा भी प्राणियों के पापों का नाश कर देती है; सूर्य तो दूर, उसकी प्रभा ही सरोवर में कमलों को विकसित कर देती है।

नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूतनाथ
 भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः
 तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
 भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

त्रिभुवन-तिलक जगत-पति हे प्रभु! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य
 सद्ब्रक्तिओं को निज सम करते, इसमें नहीं अधिक आश्र्य ॥
 स्वाश्रित जन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से
 नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या ? उन धनिकों की करनी से ॥१०॥

अन्वयार्थ : हे जगत के भूषण ! हे प्राणियों के नाथ ! सत्यगुणों के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले पुरुष, पृथ्वी पर यदि आपके समान हो जाते हैं तो इसमें अधिक आश्र्य नहीं है, क्योंकि उस स्वामी से क्या प्रयोजन, जो इस लोक में अपने अधीन पुरुष को सम्पत्ति के द्वारा अपने समान नहीं कर लेता ।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष विलोकनीयं
 नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः
 पीत्वा पयः शशिकरदयुति दुग्धसिन्धोः
 क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु! तुम्हें देखकर परम-पवित्र
 तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र ॥
 चन्द्रकिरण सम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का कर जल पान
 कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ॥११॥

अन्वयार्थ : हे अनिमेष दर्शनीय प्रभो ! आपके दर्शन के पश्चात् मनुष्यों के नेत्र अन्यत्र सन्तोष को प्राप्त नहीं होते । चन्द्रकीर्ति के समान निर्मल क्षीर-समुद्र के जल को पीकर कौन पुरुष समुद्र के खारे पानी को पीना चाहेगा ?

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्तवं
 निर्मापितस्तिभुवनैक ललाम भूत
 तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
 यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह
 थे उतने वैसे अणु जग में, शान्ति-राग-मय निःसन्देह ॥
 हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण-रूप
 इसीलियैं तो आप सरीखा, नहीं दूसरों का है रूप ॥१२॥

अन्वयार्थ : हे त्रिभुवन के एकमात्र आभूषण जिनेन्द्रदेव ! जिन राग-रहित सुन्दर परमाणुओं के द्वारा आपकी रचना हुई, वे परमाणु, पृथ्वी पर निश्चय से उतने ही थे क्योंकि आपके समान दूसरा रूप नहीं है ।

वक्तं कृते सुरनरोरगनेत्रहारि
 निःशोष-निर्जित-जगत्त्वितयोपमानम्
 बिम्बं कलङ्कं मलिनं कृति निशाकरस्य
 यद्वासरे भवति पांडु-पलाशकल्पम् ॥१३॥

कहाँ आपका मुख अतिसुंदर, सुर-नर उरग नेत्रहारी
 जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमाधारी ॥
 कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक-समान कीट-सा दीन
 जो पलाश-सा फीका पड़ता, दिन में हो करके छबि-छीन ॥१३॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो ! सम्पूर्ण रूप से तीनों जगत् की उपमाओं का विजेता, देव मनुष्य तथा धरणेन्द्र के नेत्रों को हरने वाला कहाँ आपका मुख ? और कलंक से मलिन, चन्द्रमा का वह मण्डल कहाँ ? जो दिन में पलाश (ढाक) के पते के समान फीका पड़ जाता है ।

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्कं-कला-कलाप-
 शुभ्रा गुणास्तिभुवनं तव लंघयन्ति
 ये संश्रितास् त्रिजगदीश्वर नाथमेकं
 कस्तात्रिवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

तव गुण पूर्ण-शशांक कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के
 तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढ़के ॥
 विचरें चाहे जहाँ कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार
 कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार ॥१४॥

अन्वयार्थ : पूर्ण चन्द्र की कलाओं के समान उज्ज्वल आपके गुण तीनों-लोक में व्याप्त हैं क्योंकि जो अद्वितीय त्रिजगत् के भी नाथ के आश्रित हैं उन्हें इच्छानुसार धूमते हुए कौन रोक सकता है ?

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि
 नीतं मनागपि मनो न विकार मार्गम् ॥
 कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
 किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

मद की छकी अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विकार
 कर न सकीं आश्वर्य कौन-सा, रह जाती हैं मन को मार ॥
 गिरि गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु-शिखर
 हिल सकता है रंच-मात्र भी, पाकर झङ्घावात प्रखर ॥१५॥

अन्वयार्थ : यदि आपका मन देवगांनाओं के द्वारा किंचित् भी विक्रिति को प्राप्त नहीं कराया जा सका, तो इस विषय में आश्वर्य ही क्या है ? पर्वतों को हिला देने वाली प्रलयकाल की पवन के द्वारा क्या कभी मेरु का शिखर हिल सका है ?

निर्धूमवर्तिरपवर्जित तैलपूरः
 कृत्स्नं जगत्त्यमिदं प्रकटी करोषि ॥
 गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
 दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

धूम न बत्ती तैल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनों लोक
 गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक ॥
 तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात
 ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्वपर प्रकाशक जग विख्यात ॥१६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन् ! आप धूम तथा बाती से रहित, तेल के प्रवाह के बिना भी इस सम्पूर्ण लोक को प्रकट करने वाले अपूर्व जगत-प्रकाशक अलौकिक दीपक हैं जिसे विशाल पर्वतों को कंपा देने वाला झाँझावात भी कभी बुझा नहीं सकता ।

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
 स्पष्टीकरोषि सहसा युगपञ्जगन्ति
 नाम्भोधरोदर निरुद्धमहाप्रभावः
 सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके ॥१७॥

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल
 एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ॥
 रुक्ता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट
 ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ॥१७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्ररूपी सूर्य ! आप न तो कभी अस्त होते हैं न ही राहु के द्वारा ग्रसे जाते हैं और न आपका महान तेज मेघ से तिरोहित होता है आप एक साथ तीनों लोकों को शीघ्र ही प्रकाशित कर देते हैं अतः आप सूर्य से भी अधिक महिमावत्त हैं ।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
 गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्
 विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प कान्ति
 विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला
 राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला ॥
 विश्व प्रकाशक मुख-सरोज तब, अधिक कांतिमय शांतिस्वरूप
 है अपूर्व जग का शशिमंडल, जगत शिरोमणि शिव का भूप ॥१८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्रदेव ! आपका मुख-मंडल नित्य उदित रहने वाला विलक्षण चंद्रमा है, जिसने मोहरूपी अंधकार को नष्ट कर दिया है, जो अत्यंत दीप्तिमान है, जिसे न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं, तथा जो जगत को प्रकाशित करता हुआ अलौकिक चंद्रमंडल की तरह सुशोभित होता है ।

किं शर्वरीषु शशिनाहि विवस्वता वा
 युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ
 निष्पन्न- शालि-वन-शालिनि जीव-लोके
 कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नमैः ॥१९॥

नाथ ! आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश
 तब दिन में रवि और रात्रि में, चन्द्रबिम्ब का विफल प्रयास ॥
 धान्य खेत जब धरती तल के, पके हुए हों अति अभिराम
 शोर मचाते जल को लादे, हुए घनों से तब क्या काम ? ॥१९॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन् ! जब अंधकार आपके मुख रूपी चन्द्रमा के द्वारा नष्ट हो जाता है तो रात्रि में चन्द्रमा से एवं दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन ? जैसे कि पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान धरती तल पर पानी के भार से झुके हुए मेघों से फिर क्या प्रयोजन ।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
 नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु
 तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
 नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वपर प्रकाशक उत्तम ज्ञान
 हरि-हरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान ॥
 अति ज्योर्तिमय महारतन का, जो महत्त्व देखा जाता
 क्या वह किरणा-कुलित काँच में, अरे कभी लेखा जाता ॥२०॥

अन्वयार्थ : अनंत गुण-पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान जिस प्रकार आप में सुशोभित होता है वैसा हरि-हरादिक (विष्णु-ब्रह्मा-महेश आदि) लौकिक देवों में ही नहीं। स्फुरायमान महारतों में जैसा तेज होता है, किरणों की राशि से व्याप्त होने पर भी काँच के टुकड़ों में वैसा तेज नहीं होता।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा
 दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति
 किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
 कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानूँ उत्तम अवलोकन
 क्योंकि उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन ॥
 है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन्! मुझको लाभ
 जन्म-जन्म में लुभा न पाते, कोई यह मेरा अमिताभ ॥२१॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! इस पृथ्वी पर मैंने विष्णु और महादेव देखे, तो ठीक ही है, क्योंकि उन्हें देखकर, आपको देखने के बाद मन तृप्त हुआ, किन्तु आपको देखने से क्या लाभ? जिससे कि पृथ्वी पर कोई दूसरा देव जन्मान्तर में भी चिंत को नहीं हर पाता।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
 नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता
 सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
 प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालं ॥२२॥

सौ-सौ नारी, सौ-सौ सुत को, जनती रहती सौ-सौ ठौर
 तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और ॥
 तारागण को सर्व दिशाएँ धरें नहीं कोई खाली
 पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥२२॥

अन्वयार्थ : सैकड़ों-स्त्रियाँ सैकड़ों-पुत्रों को जन्म देती हैं, परन्तु आप जैसे पुत्र को दूसरी माँ उत्पन्न नहीं कर सकी। नक्षत्रों को सभी दिशायें धारण करती हैं परन्तु कान्तिमान् किरण समूह से युक्त सूर्य को पूर्व-दिशा ही जन्म देती है।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
 मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्
 त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयंति मृत्युं
 नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३॥

तुम को परम पुरुष मुनि मानें, विमल वर्ण रवि तमहारी
 तुम्हें प्राप्त कर मृत्युञ्जय के, बन जाते जन अधिकारी ॥
 तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर-पथ बतलाता है
 किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव में भटकाता है ॥२३॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! तपस्वीजन आपको सूर्य की तरह तेजस्वी, निर्मल और मोहान्धकार से परे रहने वाले परम-पुरुष मानते हैं। वे आपको ही अच्छी तरह से प्राप्त कर मृत्यु को जीतते हैं। इसके सिवाय मोक्षपद का दूसरा अच्छा रास्ता नहीं है।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
 ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम्
 योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं
 ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

तुम्हें आद्य अक्षय अनन्त प्रभु, एकानेक तथा योगीश
 ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, विदितयोग मुनिनाथ मुनीश ॥
 विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगत्राथ जगपति जगदीश
 इत्यादिक नामों कर माने, सन्त निरन्तर विभो निधीश ॥२४॥

अन्वयार्थ : सज्जन पुरुष आपको शाश्वत, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आद्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंगकेतु, योगीश्वर, विदितयोग, अनेक, एक, ज्ञान-स्वरूप और अमल कहते हैं।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्
 त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात्
 धातासि धीर शिव-मार्ग विधेर्विधानाद्
 व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, इसीलिये कहलाते बुद्ध
 भुवनत्रय के सुख संवर्धक, अतः तुम्हीं शंकर हो शुद्ध ॥
 मोक्ष-मार्ग के आद्य प्रवर्तक, अतः विधाता कहे गणेश
 तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश ॥२५॥

अन्वयार्थ : देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित ज्ञान वाले होने से आप ही बुद्ध हैं। तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण आप ही शंकर हैं। हे धीर ! मोक्षमार्ग की विधि के करने वाले होने से आप ही ब्रह्मा हैं। हे स्वामिन् ! आप ही स्पष्ट रूप से मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हैं।

तुभ्यं नमस्तिभुवनार्तिहराय नाथ!
 तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय
 तुभ्यं नमस्तिजगतः परमेश्वराय
 तुभ्यं नमो जिन! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

तीन लोक के दुःख हरण करने वाले हे तुम्हें नमन
 भूमण्डल के निम्नल-भूषण आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन ॥
 हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन
 भवसागर के शोषक पोषक, भव्यजनों के तुम्हें नमन ॥२६॥

अन्वयार्थ : तीनों लोकों के दुःख को हरने वाले को नमस्कार हो, पृथ्वीतल के निम्नल आभुषण स्वरूप को नमस्कार हो, तीनों जगत् के परमेश्वर को नमस्कार हो और संसार समुद्र को सुखा देने वाले को नमस्कार हो।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशै
 स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीशः!
 दोषैरूपात्तविविधाश्रय- जात-गर्वः
 स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

गुणसमूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश
 क्या आश्र्य न मिल पाये हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश
 देव कहे जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष
 तेरी ओर न झाँक सकें वे, स्वप्नमात्र में हे गुण-कोष ॥२७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश ! अन्यत्र स्थान न मिलने के कारण समस्त गुणों ने यदि आपको आश्रय लिया हो तो तथा अन्यत्र अनेक आधारों को प्राप्त होने से अहंकार को प्राप्त दोषों ने कभी स्वप्न में भी आपको न देखा हो तो इसमें क्या आश्र्य ?

उच्चैरशोक तरु-संश्रितमुन्मयूख
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्
स्पष्टोल्लसल्किरणमस्त- तमो-वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥२८॥

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर-छवि-वाला ॥
वितरण-किरण निकर तमहारक, दिनकर धनके अधिक समीप
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीरांजन करता ले दीप ॥२८॥

अन्वयार्थ : ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, उन्नत किरणों वाला, आपका उज्ज्वल रूप जो स्पष्ट रूप से शोभायमान किरणों से युक्त है, अंधकार समूह के नाशक, मेघों के निकट स्थित सूर्य-बिम्ब की तरह अत्यन्त शोभित होता है ।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता- वितानं
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥२९॥

मणि-मुक्ता-किरणों से चित्रित, अद्भुत शोभित सिंहासन
कान्तिमान कंचन सा दिखता, जिस पर तव कमनीय वदन ॥
उदयाचल के तुंग शिखर से, मानो सहस्र रश्मि वाला
किरण-जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला ॥२९॥

अन्वयार्थ : मणियों की किरण-ज्योति से सुशोभित सिंहासन पर, आपका सुर्वा कि तरह उज्ज्वल शरीर, उदयाचल के उच्च शिखर पर आकाश में शोभित, किरण रूप लताओं के समूह वाले सूर्य-मण्डल की तरह शोभायमान हो रहा है ।

कुन्दावदात चल-चामर-चारु-शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्
उद्यच्छशांक-शुचि-निझर वारि-धार
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

द्वरते सुन्दर चँवर विमल अति, नवल कुन्द के पुष्प-समान
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान ॥
कनकाचल के तुंग श्रृंग से, झर-झर झरता है निझर
चन्द्रप्रभा सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर ॥३०॥

अन्वयार्थ : कुन्द के पुष्प के समान धवल चँवरों के द्वारा सुन्दर है शोभा जिसकी, ऐसा आपका स्वर्ण के समान सुन्दर शरीर, सुमेरु-पर्वत, जिस पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल झरने के जल की धारा बह रही है, के स्वर्ण-निर्मित ऊँचे तट की तरह शोभायमान हो रहा है ।

छत्रत्रयं तव विभाति शशांक-कान्त
मुच्चैःस्थितं स्थगित-भानु-कर प्रतापम्
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्तिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

चन्द्रप्रभा सम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय
दीप्तिमान शोभित होते हैं, सिर पर छत्र-त्रय भवदीय ॥
ऊपर रहकर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर प्रताप
मानों वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप ॥३१॥

अन्वयार्थ : चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य की किरणों के सन्ताप को रोकने वाले, तथा मोतियों के समूहों से बढ़ती हुई शोभा को धारण करने वाले, आपके ऊपर स्थित तीन-छत्र, मानो आपके तीन लोक के स्वामित्व को प्रकट करते हुए शोभित हो रहे हैं ।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग
 स्तैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः
 सद्वर्मराज-जय-घोषण घोषकः सन्
 खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुज्जन
 करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ-सम्मेलन ॥
 पीट रही है डंका, हो सत् धर्म-राज की हो जय-जय
 इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तब यश की अक्षय ॥३२॥

अन्वयार्थ : गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओं को गुज्जायामान करने वाला, तीन-लोक के जीवों को शुभ विभूति प्राप्त कराने में समर्थ और समीचीन जैन धर्म के स्वामी की जय घोषणा करने वाला दुन्दुभि वाद्य, आपके यश का गान करता हुआ आकाश में शब्द करता है।

मन्दार-सुन्दर-नमेरू-सुपारिजात
 सन्तानकादि-कुसुमोत्कर- वृष्टि-रुद्धा
 गम्योद-बिन्दु-शुभ-मन्द मरुत्प्रपाता
 दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मंदार
 गंधोदक की मंदवृष्टि करते हैं प्रमुदित देव उदार ॥
 तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी-धीमी मंद पवन
 पंक्ति बाँधकर बिखर रहे हों, मानों तेरे दिव्य वचन ॥३३॥

अन्वयार्थ : सुगंधित जल बिन्दुओं और मन्द सुगंधित वायु के साथ गिरने वाले श्रेष्ठ मनोहर मन्दार, सुन्दर, नमेरू, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा आपके वचनों की पंक्तियों की तरह आकाश से होती है।

शुभत्प्रभा-वलय भूरिविभा विभोस्ते
 लोक-त्रये दयुतिमतां दयुतिमाक्षिपन्ती
 प्रोद्यद्यिवाकर निरन्तर- भूरि-संख्या
 दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥

तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आये
 तन-भा-मंडल की छवि लखकर, तव सन्मुख शरमा जावे ॥
 कोटि सूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप
 जिसके द्वारा चन्द्र सु-शीतल, होता निष्प्रभ अपने आप ॥३४॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो ! तीनों लोक के कान्तिमान पदार्थों की प्रभा को तिरस्कृत करती हुई आपके मनोहर भामण्डल की विशाल कान्ति, एक साथ उगते हुए अनेक सूर्यों की कान्ति से युक्त होने पर भी चन्द्रमा से अधिक शीतलता, सौम्यता प्रदान करने वाली है।

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग विमार्गणेषः
 सद्वर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्तिलोक्याः
 दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व
 भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन
 करा रहे हैं सत्य-धर्म के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन ॥
 सुनकर जग के जीव वस्तुतः, कर लेते अपना उद्धार
 इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ॥३५॥

अन्वयार्थ : आपकी दिव्य-ध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने में सक्षम, तीन लोक के जीवों को समीचीन धर्म का कथन करने में समर्थ, स्पष्ट अर्थ वाली, समस्त भाषाओं में परिवर्तित करने वाले स्वाभाविक गुण से सहित होती है।

उत्तिद्र-हेम-नव-पंकज-पुंज-कान्ती
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभ में चन्द्रकिरण
विकसित नुतन सरसीरुह सम, हे प्रभु तेरे विमल चरण ॥

रखते जहाँ वहीं रचते हैं, स्वर्ण-कमल, सुर दिव्य ललाम
अभिनन्दन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उनमें अभिराम ॥३६॥

अन्वयार्थ : नव विकसित स्वर्ण-कमलों के समान शोभायमान नखों की किरण प्रभा से सुन्दर आपके चरण जहाँ पड़ते हैं वहाँ देव-गण स्वर्णमयी कमलों की रचना करते जाते हैं।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य
याद्वक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
ताद्वकुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥

धर्म-देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौन्दर्य ॥
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती
वैसी ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रों में लेखी जाती ॥३७॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र ! इस प्रकार धर्मोपदेश के कार्य में जैसा आपका ऐश्वर्य होता है, वैसा अन्य देवों को कभी प्राप्त नहीं होता । अंधकार को नष्ट करने वाली जैसी प्रभा सूर्य की होती है वैसी अन्य प्रकाशमान भी ग्रहों की कैसे हो सकती है ?

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध कोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतनतं,
दृष्टवा भयं भवति नो भवदाश्रितानां ॥३८॥

लोल कपोलों से झरती हैं, जहाँ निरन्तर मद की धार
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौंरे गुঁজार ॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत-सा काल
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥३८॥

अन्वयार्थ : [भवदाश्रितानाम्] आपके आश्रित मनुष्यों को [श्च्योतन्मदाविल-विलोलकपोलमूल मत्तभ्रमद्भ्रमर नादविवृद्धकोपम्] झरते हुए मद जल से मलिन और चंचल गालों के मूल भाग में पागल हो घूमते हुए भौंरों के शब्द से बढ़ गया है क्रोध जिसका ऐसे [ऐरावताभम्] ऐरावत की तरह [उद्धतम्] उद्धण्ड [आपतन्तम्] सामने आते हुए [इभम्] हाथी को [दृष्टा] देखकर [भयम्] डर [नो भवति] नहीं होता।

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्जवल-शोणिताक्त
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमिभागः
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥३९॥

क्षत-विक्षत कर दिये गजों के, जिसने उत्त्रत गण्डस्थल
कान्तिमान गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल ॥
जिन भक्तों को तेरे चरणों के, गिरि की हो उत्त्रत ओट
ऐसा सिंह छलांगे भरकर, क्या उस पर कर सकता चोट? ॥३९॥

अन्वयार्थ : [भिन्ने भक्तम् भगलदुर्ज्जलशोणिता कत्तमुक्ताफलप्रकरभूषित-भूमिभागः] विदरे हुए हाथी के, गणस्थल से गिरते हुए उज्ज्वल तथा खून से भींगे हुए मोतियों के समूह के दवारा भूषित किया है पृथ्वी का भाग जिसने ऐसा तथा [बद्धक्रमः] छलांग मारने के लिए तैयार [हरिणाधिपः अपि सिंह भी] [क्रमगतम्] अपने पांवों के बीच आये हुए [ते] आपके [क्रमयुगाचलसंश्रितम्] चरण-युगल रूप पर्वत का आश्रय लेने वाले पुरुष पर [न आक्रामति] आक्रमण नहीं करता।

**कल्पांत-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्जवलमुत्सुलिंगम्
विश्वं जिधत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥**

प्रलयकाल की पवन उड़ाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर
फिके फुलिंगे ऊपर तिरछे, अंगारों का भी होवे जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार
प्रभु के नाम-मंत्र-जल से वह, बुझा जाती है उसही बार ॥४०॥

अन्वयार्थ : आपकी नाम स्मरणरूपी जलधारा, प्रलयकाल की वायु से उद्धत, प्रचण्ड अग्नि के समान प्रज्वलित, उज्ज्वल विंगारियों से युक्त, संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह सामने आती हुई वन की अग्नि को पूर्ण रूप से बुझा देती है ।

**रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शंकः
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥**

कंठ-कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल
लाल-लाल लोचन करके यदि, झापटै नाग महा विकराल ॥
नाम-रूप तब अहि-दमनी का, लिया जिन्होंने हो आश्रय
पग रख कर निशंक नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥४१॥

अन्वयार्थ : जिस पुरुष के हृदय में नाम स्मरणरूपी-नागदमनी नामक औषध मौजूद है, वह पुरुष लाल-लाल आँखों वाले, मद-युक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले, क्रोध से उद्धत और ऊपर को फण उठाये हुए, सामने आते हुए सर्प को निःशंक निर्भय हाकर पुष्पमाला की भांति दोनों पैरों से लाँघ जाता है ।

**वल्लात्तुरंग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्!
उद्घद्विवाकर मयूख शिखापविद्वं
त्वल्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥**

जहाँ अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर
शूरवीर नृप की सेनायें, रव करती हों चारों ओर ॥
वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम
सूर्य तिमिर सम शूर-सैन्य का, कर देता है काम तमाम ॥४२॥

अन्वयार्थ : आपके यशोगान से युद्ध-क्षेत्र में उछलत हुए घोड़े और हाथियों की गर्जना से उत्पन्न भयंकर कोलाहल से युक्त पराक्रमी राजाओं की भी सेना, उगते हुए सूर्य किरणों की शिखा से वेधे गये अंधकार की तरह शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है ।

**कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥**

रण में भालों से वेधित गज, तन से बहता रक्त अपार
वीर लड़ाकू जहाँ आतुर हैं, रुधिर-नदी करने को पार ॥

भक्त तुम्हारा हो निराश तहँ, लख अरिसेना दुर्जयरूप
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार-स्वरूप ॥४३॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! आपके चरण-कमलरूप वन का सहारा लेने वाले पुरुष, भालों की नोकों से छेद गये हाथियों के रक्त रुप जल-प्रवाह में पड़े हुए, तथा उसे तैरने के लिये आतुर हुए योद्धाओं से भयानक युद्ध में, दुर्जय शत्रु-पक्ष को भी जीत लेते हैं ।

अम्बोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाम्बौ
रंगत्तरंग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा
स्तासं विहाय भवतःस्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घडियाल
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल ॥
भ्रमर-चक्र में फँसे हुये हों, बीचोबीच अगर जलयान
छुटकारा पा जाते दुःख से, करने वाले तेरा ध्यान ॥४४॥

अन्वयार्थ : क्षोभ को प्राप्त भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भयभीत करने वाले दावानल से युक्त समुद्र में विकराल लहरों के शिखर पर स्थित हैं जहाज जिनका, ऐसे मनुष्य, आपके स्मरण-मात्र से भय छोड़कर पार हो जाते हैं ।

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुम्बा:
शोच्यां दशामुपगताश्वृतजीविताशाः
त्वत्पाद-पंकज -रजोऽमृत-दिग्ध-देहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥४५॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा भार
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार ॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद-रज संजीवन
स्वास्थ्य लाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुंदर तन ॥४५॥

अन्वयार्थ : उत्पन्न हुए भीषण जलोदर रोग के भार से झुके हुए, शोचनीय अवस्था को प्राप्त और नहीं रही है जीवन की आशा जिनके, ऐसे मनुष्य आपके चरण-कमलों की रज रुप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए कामदेव के समान रुप वाले हो जाते हैं ।

आपाद-कण्ठमुर्स्त-शृंखल-वेष्टितांगा
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंघाः
त्वन्नाम-मंत्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४६॥

लोह-शृंखला से जकड़ी है, नख से शिख तक देह समस्त
घुटने-जंघे छिले बेड़ियों से, जो अधीर जो है अतित्रस्त ॥
भगवन् ऐसे बंदीजन भी, तेरे नाम - मंत्र की जाप
जप कर गत-बंधन हो जाते, क्षणभर में अपने ही आप ॥४६॥

अन्वयार्थ : जिनका शरीर पैर से लेकर कण्ठ पर्यन्त बड़ी-बड़ी सांकलों से जकड़ा हुआ है और विकट सघन बेड़ियों से जिनकी जंघायें अत्यन्त छिल गई हैं ऐसे मनुष्य निरन्तर आपके नाम-मंत्र को स्मरण करते हुए शीघ्र ही बन्धन-मुक्त हो जाते हैं ।

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
संग्राम-वारिधि-महोदर बन्धनोत्थम्
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

वृषभेश्वर के गुण स्तवन का, करते निश-दिन जो चिंतन
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन् ॥

कुंजर-समर-सिंह-शोक - रुज, अहि दावानल कारागार
इनके अति भीषण दुःखों का, हो जाता क्षण में संहार ॥४७॥

अन्वयार्थ : जो बुद्धिमान मनुष्य आपके इस स्तवन को पढ़ता है उसका मत हाथी, सिंह, दवानल, युद्ध, समुद्र जलोदर रोग और बन्धन आदि से उत्पन्न भय मानो डरकर शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है ।

स्तोत्रस्तजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया विविध-वर्ण-विचित्रपुष्पाम्
धत्ते जनो य इह कंठगतामजसं
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

हे प्रभु ! तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य ललाम
गूँथी विविध वर्ण सुमनों की, गुणमाला सुन्दर अभिराम ॥
श्रद्धासहित भविकजन जो भी कण्ठाभरण बनाते हैं
मानतुंग-सम निश्चित सुन्दर, मोक्ष-लक्ष्मी पाते हैं ॥४८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव ! इस जगत् में जो लोग मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक, गुणों से रची गई नाना अक्षर रूप, रंग-बिरंगे फूलों से युक्त आपकी स्तुति रूप माला को कंठाग्र करता है उस उन्नत सम्मान वाले पुरुष को स्वर्ग मोक्षादि की विभूति अवश्य प्राप्त होती है ।



भक्तामर



दोहा

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार ।
धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥

चौपाई

सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करैं, अन्तर पाप-तिमिर सब हरैं
जिनपद वंदों मन-वच-काय, भव-जल-पतित उधरन-सहाय ॥१॥

अन्वयार्थ : भगवान ऋषभदेव के चरण-युगल में जब देवगण भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं, तब उनके मुकुट में जड़ी मणियां प्रभु के चरणों की दिव्य कांति से और अधिक चमकने लगती हैं। भगवान के ऐसे दीक्षितमान चरणों का स्पर्श ही प्राणियों के पापों का नाश करने वाला है, तथा जो उन चरण-युगल का आलम्बन(सहारा) लेता है, वह संसार समुद्र से पार हो जाता है। इस युग के प्रारंभ में धर्म का प्रवर्तन करने वाले प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव के चरण-युगल में विधिवत प्रणाम करके मैं स्तुति करता हूँ।

श्रुत पारग इन्द्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभु की वरनों गुन-माल ॥२॥

अन्वयार्थ : सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने से जिनकी बुद्धि अत्यंत प्रखर हो गई है, ऐसे देवेन्द्रों ने तीन लोक के चित्त को आनन्दित करने वाले सुन्दर स्तोतों द्वारा प्रभु आदिनाथ की स्तुति की है। उन प्रथम जिनेन्द्र की मैं, अल्पबुद्धि वाला मानतुंग आचार्य भी स्तुति करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन, हो निलज्ज थुति-मनसा कीन
जल-प्रतिबिम्ब बुद्ध को गहै, शशि-मण्डल बालक ही चहै ॥३॥

अन्वयार्थ : हे देवों के द्वारा पूजित जिनेश्वर ! जिस प्रकार जल में पड़ते चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकड़ना असंभव होते हुए भी, नासमझ बालक उसे पकड़ने का प्रयास करता है, उसी प्रकार मैं अत्यंत अल्प बुद्धि होते हुए भी आप जैसे महामहिम की स्तुति करने का प्रयास कर रहा हूँ।

गुन-समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुर-गुरु पावें पार
प्रलय-पर्वत जल-जन्तु, जलधि तिरै को भुज-बलवन्त ॥४॥

अन्वयार्थ : हे गुणों के समुद्र जिनेश्वर ! आपके चन्द्रमा के समान स्वच्छ, आनन्दरूप, अनंत गुणों का वर्णन करने में देव-गुरु ब्रह्मस्पति के समान बुद्धिमान भी कौन पुरुष समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं। अथवा प्रलयकाल की वायु के द्वारा प्रचण्ड है मगर मच्छों का समृह जिसमें, ऐसे समुद्र को भुजाओं के द्वारा तैरने के लिए कौन समर्थ है अर्थात् कोई नहीं।

सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्तिभाव वश कुछ नहिं उरूँ
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश ! तथापि-शक्ति रहित होता हुआ भी, मैं- अल्पज्ञ, भक्तिवश, आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ जैसे हरिणी, अपनी शक्ति का विचार न कर, प्रीतिवश अपने शिशु की रक्षा के लिये, क्या सिंह के सामने नहीं जाती? अर्थात् जाती हैं।

मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम
ज्यों पिक अंब-कली-परभाव, मधु-ऋतु मधुर करै आराव ॥६॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो ! जिस प्रकार बसंत-ऋतु में आम की मंजरियां खाकर कोकिल मधुर स्वर में कूजती है, उसी प्रकार आपकी भक्ति का बल पाकर मैं भी स्तुति करने को वाचाल हो रहा हूँ। अन्यथा मेरी क्या शक्ति? मैं तो अल्पज्ञ हूँ और विद्वानों के सामने उपहास का पात्र हूँ।

तुम जस जंपत जन छिनमाहिं, जनम-जनम के पाप नशाहिं
ज्यों रवि उगै फटै तत्काल, अलिवत नील निशा-तम-जाल ॥७॥

अन्वयार्थ : हे आदिदेव ! आपकी भक्ति में लीन होने वाले प्राणियों के अनेक जन्मों में बाँधे गये पाप कर्म आपकी भक्ति के प्रभाव से क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं, जैसे समस्त संसार को आच्छादित करने वाला भंवरे के समान काला पीला सघन अंधकार सूर्य की किरणों से क्षणभर में छिन्न भिन्न हो जाता है।

तव प्रभावतैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार
ज्यों जल-कमल-पत्र पै परै, मुक्ताफल की दयुति विस्तरै ॥८॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! ऐसा मानकर मुझ मन्दबुद्धि के द्वारा भी आपका यह स्तवन प्रारम्भ किया जाता है, जो आपके दिव्य प्रभाव से सज्जनों के चित्त को हरेगा। जिस प्रकार कमलिनी के पत्तों पर पड़ी नहीं-नहीं औस की बूँदें सूरज की किरणें पड़ने से मोती के समान चमकने लगती हैं।

तुम गुन-महिमा हत-दुःख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष
पाप-विनाशक है तुम नाम, कमल-विकासी ज्यों रवि-धाम ॥९॥

अन्वयार्थ : हे जिनेश्वरदेव ! समस्त दोषों का नाश करने वाले आपके स्त्रोत की असीम शक्ति का तो कहना ही क्या, किन्तु श्रद्धा भक्तिपूर्वक किया गया आपका नाम भी जगत जीवों के नापों का नाश कर उन्हें पवित्र बना देता है। जैसे, सूर्य तो दूर, उसकी प्रभा ही सरोवर में कमलों को विकसित कर देती है।

नहिं अचम्भ जो होहिं तुरन्त, तुमसे तुम गुण वरणत संत
जो अधीन को आप समान, करै न सो निंदित धनवान ॥१०॥

अन्वयार्थ : हे जगत के भूषण! हे प्राणियों के नाथ! सत्यगुणों के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले पुरुष पृथ्वी पर यदि आपके समान हो जाते हैं तो इसमें अधिक आश्वर्य नहीं है। क्योंकि उस स्वामी से क्या प्रयोजन, जो इस लोक में अपने अधीन पुरुष को सम्पत्ति के द्वारा अपने समान नहीं कर लेता।

इकट्क जन तुमको अविलोय, अवरविषै रति करै न सोय
को करि क्षीर-जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान ॥११॥

अन्वयार्थ : हे अनिमेष दर्शनीय प्रभो! आपके दिव्य स्वरूप के दर्शन के पश्चात् मनुष्यों के नेत्र अन्यत्र सन्तोष को प्राप्त नहीं होते। चन्द्रकीर्ति के समान निर्मल क्षीरसमुद्र के जल को पीकर कौन पुरुष समुद्र के खारे पानी को पीना चाहेगा? अर्थात् कोई नहीं।

प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन, जिन परमाणु देह तुम की
हैं तितने ही ते परमाणु, यातैं तुम सम रूप न आनु ॥१२॥

अन्वयार्थ : हे त्रिभुवन के एकमात्र आभूषण जिनेन्द्रदेव! जिन रागरहित सुन्दर परमाणुओं के द्वारा आपकी रचना हुई, वे परमाणु पृथ्वी पर निश्चय से उतने ही थे क्योंकि आपके समान दूसरा रूप नहीं है।

कहँ तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मनहार
कहाँ चन्द्र-मण्डल सकलंक, दिन में ढाक-पत्र सम रंक ॥१३॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो! सम्पूर्ण रूप से तीनों जगत् की उपमाओं का विजेता, देव मनुष्य तथा धरणेन्द्र के नेत्रों को हरने वाला कहाँ आपका मुख? और कलंक से मलिन, चन्द्रमा का वह मण्डल कहाँ? जो दिन में पलाश (ढाक) के पत्ते के समान फीका पड़ जाता।

पूरन-चन्द्र-ज्योति छबिवंत, तुम गुन तीन जगत लंघंत
एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार ॥१४॥

अन्वयार्थ : पूर्णमासी के चन्द्रमा की कलाओं के समान उज्ज्वल आपके गुण, तीन लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं क्योंकि जो अद्वितीय त्रिजगत के भी नाथ के आश्रित हैं उन्हें इच्छानुसार धूमते हुए कौन रोक सकता है? कोई नहीं।

जो सुर-तियविभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तो न अचंभ
अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु-शिखर डगमगै न धीर ॥१५॥

अन्वयार्थ : हे वीतराग देव ! यदि आपका मन देवागंनाओं के द्वारा किंचित् भी विक्रति को प्राप्त नहीं कराया जा सका, तो इस विषय में आश्वर्य ही क्या है? क्योंकि सामान्य पर्वतों को हिला देने वाली प्रलयकाल की पवन के द्वारा क्या कभी सुमेरु पर्वत का शिखर हिल सका है? नहीं।

धूम रहित वाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन घर एह
वात-गम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम बलो अखण्ड ॥१६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन! आप धूम तथा बाती से रहित, तेल के प्रवाह के बिना भी इस सम्पूर्ण लोक को प्रकट करने वाले अपूर्व जगत प्रकाशक अलौकिक दीपक हैं जिसे विशाल पर्वतों को कंपा देने वाला झांझावात भी कभी बुझा नहीं सकता।

छिपहु न लुपहु राहुकी छाहिं, जग-परकाशक हो छिनमाहिं
घन अनवर्त्त दाह विनिवार, रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥१७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! आप न तो कभी अस्त होते हैं न ही राहु के द्वारा ग्रसे जाते हैं और न आपका महान तेज मेघ से तिरोहित होता है आप एक साथ तीनों लोकों को शीघ्र ही प्रकाशित कर देते हैं अतः आप सूर्य से भी अधिक महिमावन्त हैं।

सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित नेह राहु अविरोह
तुम मुख-कमल अपूरब चंद, जगत विकासी जोति अमन्द ॥१८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्रदेव ! आपका मुखमंडल नित्य उदित रहने वाला विलक्षण चंद्रमा है, जिसने मोहरूपी अंधकार को नष्ट कर दिया है, जो अत्यंत दीप्तिमान है, जिसे न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं, तथा जो जगत को प्रकाशित करता हुआ अलौकिक चंद्रमंडल की तरह सुशोभित होता है।

निशदिन शशि रवि को नहिं काम, तुम मुखचंद हरै तम घाम
जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज ॥१९॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन! जब अंधकार आपके मुख रुपी चन्द्रमा के द्वारा नष्ट हो जाता है तो रात्रि में चन्द्रमा से एवं दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन? जैसे कि पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान धरती तल पर पानी के भार से झुके हुए मेघों से किर क्या प्रयोजन।

जो सुबोध सोहै तुम माहिं, हरि नर आदिकमें सो नाहिं
जो दुति महा-रतन में होय, काच-खण्ड पावै नहिं सोय ॥२०॥

अन्वयार्थ : अनंत गुण-पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान जिस प्रकार आप में सुशोभित होता है वैसा हरि-हरादिक अर्थात् विष्णु-ब्रह्मा-महेश आदि लौकिक देवों में है ही नहीं। सुरायमान महारत्नों में जैसा तेज होता है, किरणों की राशि से व्याप्त होने पर भी काँच के टुकड़ों में वैसा तेज नहीं होता।

कछु न तोहि देख के जहाँ तुही विशेखिया
मनोग चित्त-चोर और भूल हूँ न पेखिया ॥२१॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! देखे गये विष्णु महादेव ही मैं उत्तम मानता हूँ, जिन्हें देख लेने पर मन आपमें सन्तोष को प्राप्त करता है। किन्तु आपको देखने से क्या लाभ? जिससे कि प्रथमी पर कोई दूसरा देव जन्मान्तर में भी चित्त को नहीं हर पाता।

अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ॥
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥२२॥

अन्वयार्थ : सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं, परन्तु आप जैसे पुत्र को दूसरी माँ उत्पन्न नहीं कर सकी। नक्षत्रों को सभी दिशायें धारण करती हैं परन्तु कान्तिमान् किरण समूह से युक्त सूर्य को पूर्व दिशा ही जन्म देती है।

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो
कहैं मुनीश अन्धकार-नाश को सुभान हो ॥
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके
न और मोहि मोखपंथ देह तोहि टालके ॥२३॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! तपस्वीजन आपको सूर्य की तरह तेजस्वी निर्मल और मोहान्धकार से परे रहने वाले परम पुरुष मानते हैं। वे आपको ही अच्छी तरह से प्राप्त कर म्रत्यु को जीतते हैं। इसके सिवाय मोक्षपद का दूसरा अच्छा रास्ता नहीं है।

अनन्त नित्य चित्त की अगम्य रम्य आदि हो
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥२४॥

अन्वयार्थ : सज्जन पुरुष आपको शाश्वत, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आद्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंगकेतु, योगीश्वर, विदितयोग, अनेक, एक ज्ञानरूप और अमल कहते हैं।

तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतैं
तुही जिनेश शंकरो जगल्ये विधानतैं ॥
तुही विधात है सही सु मोखपंथ धारतैं
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचारतैं ॥२५॥

अन्वयार्थ : देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित ज्ञान वाले होने से आप ही बुद्ध हैं। तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण आप ही शंकर हैं। हे धीर! मोक्षमार्ग की विधि के करने वाले होने से आप ही ब्रह्म हैं। और हे स्वामिन्! आप ही स्पष्ट रूप से मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हैं।

नमों करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो
नमों करूँ सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो ॥
नमों करूँ भवाद्यि-नीर-राशि-शोष-हेतु हो
नमों करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥२६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! तीनों लोकों के दुःख को हरने वाले आपको नमस्कार हो, प्रथमीतल के निर्मल आभूषण स्वरूप आपको नमस्कार हो, तीनों जगत् के परमेश्वर आपको नमस्कार हो और संसार समुन्द्र को सुखा देने वाले आपको नमस्कार हो।

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्व करि तुम परिहरे
और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥२७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश! अन्यत्र स्थान न मिलने के कारण समस्त गुणों ने यदि आपका आश्रय लिया हो तो तथा अन्यत्र अनेक आधारों को प्राप्त होने से अहंकार को प्राप्त दोषों ने कभी स्वप्न में भी आपको न देखा हो तो इसमें क्या आश्र्य?

तरु अशोक-तर किरन उदार, तुम तन शोभित हे अविकार
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत ॥२८॥

अन्वयार्थ : ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, उन्नत किरणों वाला, आपका उज्ज्वल रूप जो स्पष्ट रूप से शोभायमान किरणों से युक्त है, अंधकार समूह के नाशक, मेघों के निकट स्थित सूर्य बिंब की तरह अत्यन्त शोभित होता है।

सिंहासन मनि-किरन-विचित्र, तापर कंचन-वरन पवित्र
तुम तन शोभित किरन-विथार, ज्यों उदयाचल रवि तमहार ॥२९॥

अन्वयार्थ : मणियों की किरण-ज्योति से सुशोभित सिंहासन पर, आपका सुर्वा कि तरह उज्ज्वल शरीर, उदयाचल के उच्च शिखर पर आकाश में शोभित, किरण रूप लताओं के समूह वाले सूर्य मण्डल की तरह शोभायमान हो रहा है।

कुन्द-पहुप-सित-चमर दुरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरैं नीर उमगांति ॥३०॥

अन्वयार्थ : कुन्द के पुष्प के समान धवल चँवरों के द्वारा सुन्दर है शोभा जिसकी, ऐसा आपका स्वर्ण के समान सुन्दर शरीर, सुमेरुपर्वत, जिस पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल झरने के जल की धारा बह रही है, के स्वर्ण निर्मित ऊँचे तट की तरह शोभायमान हो रहा है।

ऊँचे रहैं सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपैं अगोप
तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती-झालरसौं छबि लहैं ॥३१॥

अन्वयार्थ : चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य की किरणों के सन्ताप को रोकने वाले, तथा मोतियों के समूहों से बढ़ती हुई शोभा को धारण करने वाले, आपके ऊपर स्थित तीन छत्र, मानो आपके तीन लोक के स्वामित्व को प्रकट करते हुए शोभित हो रहे हैं।

दुन्दुभि-शब्द गहर गम्भीर, चहुँ दिशि होय तुम्हारे धीर
त्रिभुवन-जन शिवसंगम करैं, मानूँ जय-जय रव उच्वरै ॥३२॥

अन्वयार्थ : गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओं को गुज्जायमान करने वाला, तीन लोक के जीवों को शुभ विभूति प्राप्त कराने में समर्थ और समीचीन जैन धर्म के स्वामी की जय घोषणा करने वाला दुन्दुभि वाद्य आपके यश का गान करता हुआ आकाश में शब्द करता है।

मन्द पवन गन्धोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पहुप सुवृष्ट
देव करैं विकसित दल सार, मानौं द्विज-पंकति अवतार ॥३३॥

अन्वयार्थ : सुगंधित जल बिन्दुओं और मन्द सुगंधित वायु के साथ गिरने वाले श्रेष्ठ मनोहर मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा आपके वचनों की पंक्तियों की तरह आकाश से होती है। (छठवां प्रातिहार्य “पुष्पवृष्टि”)

तुम तन-भामण्डल जिनचन्द, सब दुतिवंत करत है मन्द
कोटिशंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय ॥३४॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो! तीनों लोकों के कान्तिमान पदार्थों की प्रभा को तिरस्कृत करती हुई आपके मनोहर भामण्डल की विशाल कान्ति, एक साथ उगते हुए अनेक सूर्यों की कान्ति से युक्त होने पर भी चन्द्रमा से अधिक शीतलता, सौम्यता प्रदान करने वाली है। (सातवां प्रातिहार्य “भामण्डल”)

स्वर्ग-मोख-मारग संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध, सब भाषागर्भित हित साध ॥३५॥

अन्वयार्थ : आपकी दिव्यधनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने में सक्षम, तीन लोक के जीवों को समीचीन धर्म का कथन करने में समर्थ, स्पष्ट अर्थ वाली, समस्त भाषाओं में परिवर्तित करने वाले स्वाभाविक गुण से सहित होती है। (आठवां प्रातिहार्य ‘दिव्यधनि’)

दोहा

**विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं
तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥**

अन्वयार्थ : नव विकसित स्वर्ण कमलों के समान शोभायमान नखों की किरण प्रभा से सुन्दर आपके चरण जहाँ पड़ते हैं वहाँ देव गण स्वर्णमयी कमलों की रचना करते जाते हैं।

**ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय
सूरज में जो जोत है, नहिं तारा-गण होय ॥३७॥**

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र! इस प्रकार धर्मोपदेश के कार्य में जैसा आपका ऐश्वर्य होता है, वैसा अन्य देवों को कभी प्राप्त नहीं होता। अंधकार को नष्ट करने वाली जैसी प्रभा सूर्य की होती है वैसी अन्य प्रकाशमान भी ग्रहों की कैसे हो सकती है?

षट्पद

**मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झँकारै
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारै ॥
काल-वरन विकराल कालवत सनमुख आवैं
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावैं ॥
देखि गयन्द न भय करै, तुम पद-महिमा छीन
विपति रहित सम्पति सहित, वरतैं भक्त अदीन ॥३८॥**

अन्वयार्थ : आपके आश्रित मनुष्यों को, ज्ञाते हुए मद जल से जिसके गण्डस्थल मलीन, कलुषित तथा चंचल हो रहे हैं और उन पर उन्मत्त होकर मंडराते हुए काले रंग के भौंरे अपने गुजंन से क्रोध बढ़ा रहे हैं ऐसे ऐरावत की तरह उद्धण्ड, सामने आते हुए हाथी को देखकर भी, भय नहीं होता।

**अति मद-मत्त-गयन्द कुम्भपल नखन विदारै
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ॥
बाँकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै
भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै ॥
ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय
शरण गये तुम चरण की, बाधा करै न सोय ॥३९॥**

अन्वयार्थ : सिंह, जिसने हाथी का गण्डस्थल विदीर्ण कर, गिरते हुए उज्ज्वल तथा रक्तमिश्रित गजमुक्ताओं से पृथ्वी तल को विभूषित कर दिया है तथा जो छलांग मारने के लिये तैयार है वह भी अपने पैरों के पास आये हुए ऐसे पुरुष पर आक्रमण नहीं करता जिसने आपके चरण युगल रूप पर्वत का आश्रय ले रखा है।

**प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटन्तर
बमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरन्तर ॥
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों
तडतडाट दव-अनल जोर चहुँ दिशा उठानो ॥**

सो इक छिन में उपशमें, नाम-नीर तुम लेत
होय सरोकर परिनमै, विकसित कमल समेत ॥४०॥

अन्वयार्थ : आपकी नाम स्मरणरुपी जलधारा, प्रलयकाल की वायु से उद्धत, प्रचण्ड अग्नि के समान प्रज्वलित, उज्ज्वल चिनगारियों से युक्त, संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह सामने आती हुई वन की अग्नि को पूर्ण रूप से बुझा देती है।

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता
रक्त-नयन फुँकार मार विष-कण उगलन्ता ॥
फण को ऊँचो करै वेग ही सन्मुख धाया
तब जन होय निशंक देख फेणपति को आया ॥
जो चाँपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगार
नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार ॥४१॥

अन्वयार्थ : जिस पुरुष के हृदय में नाम स्मरणरुपी-नागदमनी नामक औषध मौजूद है, वह पुरुष लाल लाल आँखों वाले, मदयुक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले, क्रोध से उद्धत और ऊपर को फण उठाये हुए, सामने आते हुए सर्प को निःशंक निर्भय हाकर पुष्पमाला की भांति दोनों पैरों से लाँघ जाता है।

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम
घन-से गज गरजाहिं मत्त मानो गिरि जंगम ॥
अति कोलाहल माहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै
राजन को परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥
नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय ॥४२॥

अन्वयार्थ : आपके यशोगान से युद्धक्षेत्र में उछलते हुए घोड़े और हाथियों की गर्जना से उत्पन भयंकर कोलाहल से युक्त पराक्रमी राजाओं की भी सेना, उगते हुए सूर्य किरणों की शिखा से वेधे गये अंधकार की तरह शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है।

मारै जहाँ गयन्द कुम्भ हथियार विदारै
उमगै रुधिर प्रवाह बेग जल-सम विस्तारै ॥
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे
तिस रन में जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे ॥
दुर्जय अरिकुल जीत के, जय पावै निकलंक
तुम पद-पंकज मन बसै, ते नर सदा निशंक ॥४३॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! आपके चरण कमलरूप वन का सहारा लेने वाले पुरुष, भालों की नोकों से छेद गये हाथियों के रक्त रूप जल प्रवाह में पड़े हुए, तथा उसे तैरने के लिये आतुर हुए योद्धाओं से भयानक युद्ध में, दुर्जय शत्रु पक्ष को भी जीत लेते हैं।

नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावै
जामैं बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै ॥
पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी
गरजै अतिगम्भीर लहर की गिनती न ताकी ॥

सुखसों तिरै समुद्र को, जे तुम गुन सु राहिं
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहिं ॥४४॥

अन्वयार्थ : क्षीभ को प्राप्त भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भयभीत करने वाले दावानल से युक्त समुद्र में विकराल लहरों के शिखर पर स्थित है जहाज जिनका, ऐसे मनुष्य, आपके स्मरण मात्र से भय छोड़कर पार हो जाते हैं।

महा जलोदर रोग भार पीड़ित नर जे हैं
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं ॥
सोचत रहैं उदास नाहिं जीवन की आशा
अति धिनावनी देह धरैं दुर्गन्धि-निवासा ॥
तुम पद-पंकज-धूल को, जो लावैं निज-अंग
ते नीरोग शरीर लहि, छिन में होय अनंग ॥४५॥

अन्वयार्थ : उत्पन्न हुए भीषण जलोदर रोग के भार से झुके हुए, शोभनीय अवस्था को प्राप्त और नहीं रही है जीवन की आशा जिनके, ऐसे मनुष्य आपके चरण कमलों की रज रुप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए कामदेव के समान रुप वाले हो जाते हैं।

पाँव कंठतैं जकर बाँध साँकल अति भारी
गाढ़ी बेड़ी पैरमाहिं जिन जाँघ विदारी ॥
भूख प्यास चिंता शरीर दुःखजे विललाने
सरन नाहिं जिन कोय भूप के बन्दीखाने ॥
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बन्धन सब खुल जाहिं
छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहिं ॥४६॥

अन्वयार्थ : जिनका शरीर पैर से लेकर कण्ठ पर्यन्त बड़ी-बड़ी सांकलों से जकड़ा हुआ है और विकट सघन बेड़ियों से जिनकी जंघायें अत्यन्त छिल गई हैं ऐसे मनुष्य निरन्तर आपके नाममंत्र को स्मरण करते हुए शीघ्र ही बन्धन मुक्त हो जाते हैं।

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल
फणपति रण परचंड नीर-निधि रोग महाबल ॥
बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै ॥
इस अपार संसार में, शरन नाहिं प्रभु कोय
यातैं तुम पद-भक्त को, भक्ति सहाई होय ॥४७॥

अन्वयार्थ : जो बुद्धिमान मनुष्य आपके इस स्तवन को पढ़ता है उसका मत्त हाथी, सिंह, दवानल, युद्ध, समुद्र जलोदर रोग और बन्धन आदि से उत्पन्न भय मानो डरकर शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है।

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी ॥
जे नर पहिरे कंठ भावना मन में भावैं
'मानतुंग' ते निजाधीन-शिव-लछमी पावैं ॥

भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित हेत जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिव-खेत ॥४८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव! इस जगत् में जो लोग मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक (ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि) गुणों से रची गई नाना अक्षर रूप, रंग बिरंगे फूलों से युक्त आपकी स्तुति रूप माला को कंठाग्र करता है उस उन्नत सम्मान वाले पुरुष को अथवा आचार्य मानतुंग को स्वर्ग मोक्षादि की विभूति अवश्य प्राप्त होती है।



भक्तामर



मुनि क्षीरसागर कृत

शत इन्द्रनि के मुकुट जु नये, पाप विनाशक जग के भये
ऐसे चरण ऋषभ के नाय, जो भवसागर तिरन सहाय ॥१॥

तत्त्व ज्ञान से जो थुति भरी, बुद्धि चतुर सुरपति सो करी
ते पद सब जन के मन हरें, सो थुती हम उस जिन की करें ॥२॥

ज्यों नभ में शशि को लख बाल, पकड़न चाहें होय खुश्याल
त्यों मैं थुति वरणों मति हीन, जिसमें गणधर थके प्रवीण ॥३॥

हे गुण निधि तुम गुण शशि कान्त, कहि न सके ऋषि सुर लौकांत
प्रलय पवन उद्धत दधि नीर, तर सकता को भुजबल वीर ॥४॥
मै मति हीन रंच नहीं डरों, भक्ति भाव वश तुम थुति करों
तुमहिं कहो जिन निज सुत काज, मृग न लड़ें मृगपति से गाज ॥५॥

अल्प शास्त्र का ज्ञात जान, हँसी करेंगे बहु श्रुतवान
पर मो बुद्धि करे वाचाल, कोयल को ज्यों मधु ऋतु काल ॥६॥
यह थुति अल्प रचित भगवान, तुम प्रसाद हो निपुण सामान
ज्यों जल कमल पत्र पे परे, मोती वत् सो शोभा धरे ॥७॥

तुम थुति गावत ही क्षण माहि -जन्म जन्म के पाप नशाहिं
ज्यों दिनकर के उदय वशात, अंधकार तत्काल नशात ॥८॥

तुम निर्देष रहो थुति दुर, कथा मात्र से ही अधचूर
ज्यों रवि दूर किरण के जोर, कमल प्रफुल्लित सरवर ओर ॥९॥

क्या अचरज जो तुम सम बनें, कारण निश दिन तुम गुण भनें
ज्यों निरधन धनपति को पाय, धनी होए तो कहे बड़ाय ॥१०॥

शांति रूप तुम मूरत धनी, क्या अद्भुभूत परमाणु बनी
वे परमाणु रहे ना शेष, इससे तुम सम दुतिय ना भेष ॥११॥

तुम मुख उपमा सब जग वरे, सुर नर नाग नयन मन हरे
तुम सम उपमा चन्द न रखे, वह दोषी दिन फीका दिखे ॥१२॥

सब शशि मंडल मे शशि कला, त्यों तुम गुण सब जग मे फला
जो ऐसे के आश्रित होय, उस विचरत को रोके कोय ॥१३॥

देवांगना न मन को हरें, क्या अचरज हम इसमें करें
प्रलय पवन से अचला चले, किन्तु मेरु गिरी रंच न हिलें ॥१४॥

तेल न बत्ती धुआं न पास, जगमग जगमग जगत प्रकाश
प्रलय पवन से बुझे न खंड, ज्ञान दीप तुम जले अखंड ॥१५॥

राहू ग्रसे न हो तू अस्त, युगपत भाषे जगत समस्त
तुझ प्रभाव नहीं बद्दल छिपे, तू रवि से अधिकारी दिपे ॥१६॥

ताप विनाशक तू नित दिपे, राहू ग्रसे न बद्दल छिपे
तुम मुख सुन्दर ज्योति अमंद, शांति विकासी अद्भूत चंद ॥१७॥

क्या दिन रवि क्या निश शशि होय, जब तेरा मुख जग तम खोय
जब पक जाय धान्य सब ठाम, फिर घनघोर घटा बे काम ॥१८॥

जो सु ज्ञान सोहे तुम माहिं , हरि हरादि पुरुषों में नाहिं
सूर्यकांत में जो थुति कढ़े , सो नं कांच मे रवि से बढ़े ॥१९॥

हरि हरादि उत्तम इस रीति , उनको लख तुमसे है प्रीति
तुमरी रति से फल यह हमें , जो न भावांतर पर मे रमें ॥२०॥

तुम को इकट्क लखे जु कोय , अवर विषें रति कैसे होय
को कर पान मधुर जल क्षीर , फिर क्यों पीवे खारा नीर ॥२१॥

सब नारी जननी सुत घने, पर तुमसे सुत नाहीं जने
सर्व दिशा से तारे मान , किन्तु पूर्व दिश उगें भान ॥२२॥

परम पुरुष जाने मुनि तुमें , तम से परे तेज रवि समें
तुम्हे पाय सब मृत्यू हरें , मोक्ष मार्ग इससे नहीं परें ॥२३॥

तुम अचिन्त्य व्यापक ध्रुव एक , मुनिवर विदित असंख्य अनेक
ब्रह्मा ईश्वर आद्य अनंत , अमल ज्ञान मय कहते संत ॥२४॥

तुम सुबुद्धी से बुद्ध प्रसिद्ध , अघ संहारक शंकर सिद्ध
धर्म प्रवर्तक ब्रह्मा आप , जग पालक नारायण थाप ॥२५॥

तुम्हे नमों हे पर दुख हार , तुम्हें नमों जग भूषण सार
तुम्हे नमो जग नायक धार , तुम्हे नमों भव शोषण हार ॥२६॥

क्या अचरज सब गुण तुम पास , जबकि न उनको अन्य निवास
दोष गर्व बहु थल को पाय , सपने भी तुम पास न आय ॥२७॥

तरु अशोक ऊँचे के तीर , तुमरो सोहे विमल शरीर
ज्यों तम हर अरु तेजस खास , रवि दीखे घन घट के पास ॥२८॥

रतन जड़ीत सिंघासन ऊप , तुम तन सोहे कनक स्वरूप
पूरब दिश उदयाचल पास , सोहे किरण लता रवि खास ॥२९॥

कुंद पुष्प सम चौसठ चमर , तुम तन ऊपर ढोरें अमर
शशि सम श्वेत बहे जल धार , ऊँचे कनक मेरु दिश चार ॥३०॥

शशि सम तीन छत्र सिर आप , जो रोके रवि का आताप
मोती झालर शोभे घना , जिससे प्रकटे ईश्वर पना ॥३१॥

दश दिश मे धुनि उच्च अभंग, जग जन को सूचक शुभ संग
तुमरी बोलें जय जय कार , नभ मे यस को बजे नकार ॥३२॥

पारी जात सुन्दर मंदार , वर्षे फूल अनेक प्रकार
मंद पवन गंधोदक झिरें , मानों तुम बच नभ से खिरें ॥३३।

तुम भामंडल तेज अपार , जीते सब जग तेजस धार
कोटि सूर्य से बढ़ कर कांति लज्जित भई चन्द्र की शांति ॥३४॥

स्वर्ग मोक्ष पथ सूचक शुद्ध , तत्त्व कथन में सबको बुद्ध
प्रकट अर्थ तुम धुनि से होय , सब भाषा गुण परजय जोय ॥३५॥

फूले कनक कमल की ज्योति , चहुँ ओर त्यों नख दयुति होति
ऐसे चरण धरो तुम जहाँ , झटपट कमल रचें सुर तहाँ ॥३६॥

जैसा विभव तुम्हारे लार , वैसा विभव न कोई धार
जैसे तम हर सूर्य प्रकाश , तैसा अन्य न ज्योतिष पास ॥३७॥

हो उन्मत मद झरे अपार , जो क्रोधित सुन अलि गुंजार
ऐसा सुर गज सन्मुख आय , भय न करे तुम आश्रित पाय ॥३८॥

खेंचे कुम्भस्थल गज मत्त , भूमें बिखरे मोती रत्त
ऐसा सिंह न पकड़े खाय , जो तेरे पद आश्रित आय ॥३९॥

प्रलय पवन सम अग्नि हले, तड़तड़ाय दावानल जले
जगदाहक सन सन्मुख आय , तब तुम थुति जल देई बुझाय ॥४०॥

लाल नेत्र अरु काला अंग , धाय उच्च फण कुपति भुजंग
उसको लांघे निर्भय राम , जिस पर अहिऔषध तुम नाम ॥४१॥

हय उछलें गज गरजें घोर , सेना चढ़ी नृपति के जोर
तुम कीर्तन से शीघ्र पलाय , ज्यों रवि ऊगत तम विनशाय ॥४२॥

भाले छिदें बहें गज रक्त , चल फिर सकै न जोधा मत्त
तब रिपु प्रबल न जीता जाये , सो जय तुम पद आश्रय पाय ॥४३॥

दधि मे मगर मच्छ उद्धण्ड , -बद्धानल या पवन प्रचंड ।
अथवा नाव भंवर मे आय, तब तुम सुमिरत विघ्न नाशाय ॥४४॥

घोर जलोदर पीड़ा सहे , आयु न आशा चिन्ता रहे ।
जब तन लेपे तुम पद धूल, कामदेव सम होय समूल ॥४५॥

नख शिख अंग सांकलें ठिलीं, दृढ़ बेडिनि सों टांगें छिलीं
जब तुम नाम मंत्र सुमिराय , बंधन रहित शीघ्र हो जाय ॥४६॥

गज केहरि दावानल नाग , रण दधि रोग बन्ध बहु लाग
ये भय भजें स्वयं भय खाय , जब इनको तुम व्रतधर पाय ॥४७॥

तुम स्तोत्र जिनेश महान , भक्ति विवश कछु रचा अजान
पर जो पाठ पढ़े मन लाय , 'मानतुंग' अरु लक्ष्मी पाय ॥४८॥





एकीभाव-स्तोत्र

मन्दाक्रांता छंद

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो,
घोरं दुःखं भव-भव-गतो दुर्निवारः करोति ॥
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे! भक्तिरुन्मुक्तये चे-
ज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ॥१॥

यो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी ।
जो मूङ्ग-कर्म प्रबंध करत भव भव दुःख भारी ॥
ताहि तिहांरी भक्ति जगतरवि जो निरवारै ।
तो अब और कलेश कौन सो नाहिं विदारै ॥२॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र! जबकि आपकी समीचीन भक्ति के द्वारा चिर-परिचित और अत्यन्त दुःखदायी एवं आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिले हुए कर्म-बंधन भी दूर किये जाते हैं, तब दूसरा ऐसा कौन सा संताप का कारण है जो कि उस भक्ति के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता ?

ज्योतीरूपं दुरित-निवहधान्त-विधंस-हेतुं,
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्दासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥२॥

तुम जिन जोतिस्वरूप दुरित आँधियारि निवारी ।
सो गणेश गुरु कहें तत्त्व-विद्याधन-धारी ॥
मेरे चित्त घर माहिं बसौ तेजोमय यावत ।

पाप तिमिर अवकाश तहां सो क्यों करि पावत ॥२॥

अन्वयार्थ : हे नाथ जब आपको, अतिशय बुद्धि के धारक गणधारि देवों ने, पापरूपी अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान कहा है और आप मेरे मन-मंदिर में अच्छी तरह से प्रकाशमान भी हो रहे हैं, तब उसमें पापरूपी अंधकार कैसे ठहर सकता है ?

आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्ददं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत त्वयि दृढ-मनाः स्तोत्र-मन्त्रैर्भवन्तम्
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-वल्मीक-मध्यान-
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः ॥३॥

आनँद-आँसू वदन धोंय तुम जो चित्त आने ।
गदगद सरसों सुयश मन्त्र पढ़ि पूजा ठाने ॥
ताके बहुविधि व्याधि व्याल चिरकाल निवासी ।
भाजें थानक छोड़ देह बांबइ के वासी ॥३॥

अन्वयार्थ : आपके चित्त में प्रवेश करने पर, मन गदगद होने से आनन्द-अश्रुओं से मुख को भिंगते हुए सरसों और प्रकृष्ट मन्त्रों द्वारा जिसने आपकी पूजा की ठान ली उसके अनेक प्रकार की चिरकाल की व्याधियाँ उसी प्रकार दूर हो जाती हैं जैसे कि मन्त्रों द्वारा वाम्बी से सर्प निकाल दिया जाता है।

प्रागेवेह त्रिदिव-भवनादेष्यता भव्यपुण्यात्,
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम् ।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्ट-
स्तलिं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥४॥

दिवि तें आवन-हार भये भवि भाग-उदय बल ।
पहले ही सुर आय कनकमय कीन महीतल ॥
मन-गृह ध्यान-दुवार आय निवसो जगनामी ।

जो सुवरन तन करो कौन यह अचरज स्वामी ॥४॥

अन्वयार्थ : जब कि आपके स्वर्गलोक से माता के गर्भ में आने के छह महीने पहले ही देवों ने इस पृथ्वीमण्डल को सुवर्णमय बना दिया, तो फिर जिसके अन्तःकरणरूप मंदिर के ध्यान द्वार द्वारा आप प्रविष्ट हो जाएं उसका शरीर यदि सुवर्णमय हो जाय तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धु-
स्त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्तिरप्रत्यनीका ।
भक्ति-स्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-शय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः ॥५॥

प्रभु सब जग के बिना-हेतु बांधव उपकारी ।
निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहाँरी ॥
भक्ति रचित मम चित्त सेज नित वास करोगे ।
मेरे दुःख-सन्ताप देख किम धीर धरोगे ॥५॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! आप संसारी जीवों के अकारण बंधु हैं और आपकी सकल पदार्थ विषयक यह अपूर्व एवं अनन्तशक्ति प्रतिपक्षी कर्मों के प्रतिघात से रहित है, क्योंकि वह कर्म के क्षय से उत्पन्न हुई है। फिर आप चिरकाल तक हमारे पवित्र मन-मंदिर में निवास करते हुए भी क्या दुःखों को नाश नहीं करेंगे अर्थात् अवश्य ही करेंगे। जो भद्र मानव आपका भक्तिपूर्वक निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन करता है उसके दुःख दूर होना तो सहज ही है किन्तु उसके जटिल कर्मों का बंधन भी ढीला पड़ कर नष्ट हो जाता है और आत्मा विकसित होता हुआ परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है।

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घ भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी ।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं,
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः ॥६॥

भव वन में चिरकाल भ्रम्यों कछु कहिय न जाई ।
तुम थुति-कथा-पियूष-वापिका भाग से पाई ॥
शशि तुषार घनसार हार शीतल नहिं जा सम ।

करत न्हौन ता माहिं क्यों न भवताप बुझै मम ॥६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन! मुझे इस संसाररूप विषम अटवी में भ्रमण करते हुए और दुःखों को सहते हुए अनन्तकाल बीत गया है। अब मुझे बड़े भारी भाग्योदय से यह आपकी स्याद्वादरूप अमृतरस से भरी हुई वापिका बावड़ी प्राप्त हुई है जो चन्द्रमा और बर्फ से भी अत्यन्त शीतल है। ऐसी वापिका में उन्मज्जन करते हुए मेरे क्या थोड़े से दुःख सन्ताप दूर न होंगे?

पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं,
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः ।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे,
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥७॥

श्रीविहार परिवाह होत शुचिरूप सकल जग ।
कमल कनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग ॥
मेरो मन सर्वग परस प्रभु को सुख पावे ।

अब सो कौन कल्यान जो न दिन-दिन ठिग आवे ॥७॥

अन्वयार्थ : सकल परमात्मा अरहंत जब जीवन्मुक्तरूप स्वयोगकेवली अवस्था में विहार करते हैं तब उनके विहार से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं और देवगण उनके पवित्र चरणों के नीचे कमलों की रचना कर दिया करते हैं और वे कमल जब जिनेन्द्र देव के चरणों के स्पर्श से सुवर्ण सी कान्ति वाले सुगंधित एवं लक्ष्मी के निवास बन जाते हैं, तब मेरा मन आपको सर्वाङ्ग रूप से स्पर्श कर रहा है अर्थात् मेरे मन मंदिर में चैतन्य जिनप्रतिमा का सर्वाङ्गरूप से स्पर्श हो रहा है अतएव मुझे कल्याणकों का प्राप्त होना उचित ही है। जो भव्यप्राणी जिनेन्द्र भगवान का निष्कपट रूप से भक्तिपूर्वक स्मरण, चिंतन एवं ध्यान करता है उसे सर्व सुख प्राप्त होते ही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्ति-पात्रा पिबन्तं,
कर्मारण्यात्-पुरुष-मसमानन्द-धाम-प्रविष्टम् ।
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं,
क्रूराकाराः कथमिव रुजा कण्टका निर्लुठन्ति ॥८॥

भव तज सुख पद बसे काम मद सुभट संहारे ।
जो तुमको निरखतं सदा प्रिय दास तिहारे ॥
तुम-वचनामृत-पान भक्ति अंजुलि सों पीवै ।
तिन्हैं भयानक क्रूर रोगरिपु कैसे छीवै ॥८॥

अन्वयार्थ : हे भगवन्! कर्मरूपी वन से निकलकर आपने अनुपम अनंत सुखस्वरूप आनन्दधाम को प्राप्त किया है तथा आप दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले हैं। आपको देखने वाले और भक्तिरूपी पात्र से आपके अमृतरूपी वचनों को पाने वाले भव्यपुरुषों को फिर क्रूर आकार वाले रोग रूपमयी काँटे कैसे पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्ति-
मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्गः ।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः ॥९॥

मानस्तंभं पाषाण आन पाषाण पटंतर ।
ऐसे और अनेक रत्न दीखें जग अंतर ॥
देखत दृष्टि प्रमान मानमद तुरत मिटावे ।
जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावे ॥९॥

अन्वयार्थ : पत्थर का बना हुआ मानस्तम्भ भी दूसरे साधारण पत्थरों के समान ही है। रत्नमय होना उसकी कोई विशेषता नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसके समान और भी रत्न होते हैं परन्तु उनमें मान हरण करने की शक्ति नहीं होती, इस कारण से मानस्तंभ में मनुष्यों के मान हरण करने की शक्ति का अस्तित्व मालूम नहीं होता। अतएव यह स्पष्ट है कि उसकी ऐसी शक्ति में आपकी समीपता ही कारण है। यदि आपकी समीपता न होती तो गौतम जैसे महामानी विद्वानों का अभिमान कैसे दूर होता? इस कारण उस रत्नमयी मानस्तंभ में यह अपूर्वशक्ति आपके प्रसाद से ही प्राप्त हुई जान पड़ती है

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्ति-शैलोपवाही,
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा धूलिबन्धं धुनोति ।
ध्यानाहृतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्ट-
स्तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः ॥१०॥

प्रभुतन पर्वत परस पवन उर में निबहे है ।
ता साँ तत छिन सकल रोग रज बाहिर है है ॥
जा के ध्यानाहृत बसो उर अंबुज माहीं ।
कौन जगत उपकार-करन समरथ सो नाहीं ॥१०॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! जबकि आपके शरीर के पास से बहने वाली वायु भी, लोगों के तरह-तरह के रोग दूर कर देती है, तब आप जिस भव्यपुरुष के हृदय में विराजमान हो जाते हैं वह संसार के प्राणियों का कौन सा उपकार नहीं कर सकता-अर्थात् लोक की सच्ची-सजीव सेवा करना अथवा आहार पान, औषधादि के द्वारा दीन दुःखियों की सेवा कर उन्हें दुःख से उन्मुक्त करना तो सरल है परन्तु जब कोई भद्रमानव जिनेन्द्र भगवान को अपने हृदयवर्ती बना लेता है अर्थात् चैतन्य जिनप्रतिमा को अपने हृदय-कमल में अंकित कर लेता है और स्तुति पूजा-ध्यानादि के द्वारा उनके पवित्र गुणों का स्वावन-पूजन वंदनादि किया करता है एवं उनके नक्शे कदम पर चलकर तदनुकूल प्रवृत्ति करने लगता है तब उस भव्य पुरुष के अनादिकालीन कर्मबंधन भी उसी तरह शिथिल होने लगते हैं जिस तरह चन्दन के वृक्ष पर मोर के आने पर सर्पों के बंधन ढीले पड़ कर नीचे छिसकने लगते हैं

जानासि त्वं मम भवे-भवे यच्च याद्वक्य दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्ठिनष्टि ।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव! एव प्रमाणम् ॥११॥

जनम जनम के दुःख सहे सब ते तुम जानो ।
याद किये मुझ हिये लगें आयुध से मानों ॥
तुम दयाल जगपाल स्वामि मैं शरन गही है ।
जो कुछ करनो होय करो परमान वही है ॥११॥

अन्वयार्थ : हे भगवन्! इस चतुर्गति रूप सासार में अनादिकाल से भ्रमण करते हुए मैंने जो घोर दुःख भोगे हैं और भोग रहा हूँ, जिनका स्मरण करना भी शस्त्र घाट के समान दुःखदाई है। उनको आप अच्छी तरह से जानते ही हैं। आप सिर्फ़ जानते ही नहीं हैं कि न्तु सबके अकारण बंधु और दयालु हैं। इसीलिए मैं भक्तिपूर्वक आपकी शरण में आया हूँ। ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए? यह आप ही समझ सकते हैं। मैंने तो अपनी दशा आपके सामने प्रकट करा दी है

प्रापदैवं तव नुति-पदैर्जीविकेनोपदिष्टः,
पापाचारी मरण-समये सारमेयोऽपि सौख्यम् ।
कः सन्देहो यदुपलभते वासव-श्री-प्रभुत्वं,
जल्पञ्चाप्यैर्मणिभिरमलैस्-त्वन्-नमस्कार-चक्रम् ॥१२॥

मरन-समय तुम नाम मंत्र जीवक तें पायो ।
पापाचारी श्वान प्रान तज अमर कहायो ॥
जो मणिमाला लेय जपे तुम नाम निरंतर ।
इन्द्र-सम्पदा लहे कौन संशय इस अंतर ॥१२॥

अन्वयार्थ : जबकि एक पापी कुत्ता भी मृत्यु के समय (न कि जीवन भर) जीवन्धर कुमार द्वारा बताये हुए मंत्राऽक्षरों के ध्यान से यक्षों का स्वामी यक्षेन्द्र हो सकता है तब निर्मल मणियों के द्वारा आपके नमस्कारमंत्र का ध्यान करने वाला भद्र मानव यदि इन्द्र की विभूति को प्राप्त कर ले तो इसमें क्या आश्वर्य है अर्थात् कुछ नहीं है

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम् ।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो,
मुक्ति-द्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कवाटम् ॥१३॥

जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधै ।
अनवधि सुख की सार भक्ति कूँची नहिं लांघे ॥
सो शिव वांछक पुरुष मोक्ष पट केम उघारे ।
मोह मुहर दिढ़ करी मोक्ष मंदिर के द्वारे ॥१३॥

अन्वयार्थ : विशुद्धज्ञान और निर्मल चारित्र के रहते हुए भी यदि जिनेन्द्र को भक्तिमय अथवा सम्पादर्शनरूप-कुंजी नहीं है तो फिर महा मिथ्यात्वरूप मुद्रा से अंकित मोक्षमंदिर का द्वार कैसे खोला जा सकता है? अर्थात् भक्तिरूपी कुंचिका के बिना मुक्तिद्वारा का खुलना नितान्त कठिन है परन्तु जिस भद्रमानव के पास जिनेन्द्र की भक्तिरूपी अथवा सम्पादर्शनरूपी कुंजी है, वह बहुत जल्दी ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि सम्पादर्शन मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र भी मिथ्या कहलाते हैं अतः मुक्ति के इच्छुक पुरुषों को सबसे पहले सम्पादर्शन का प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है

प्रच्छन्नः खल्वय-मघ-मयैरन्धकारैः समन्तात्,
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्त्तरगाधैः ।
तस्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्वारती रत्न-दीपः ॥१४॥

शिवपुर केरो पंथ पाप-तम सों अतिछायो ।
दुःख सरुप बहु कूप-खाई सों विकट बतायो ॥
स्वामी सुख सों तहां कौन जन मारग लागें!
प्रभु-प्रवचन मणि दीप जोन के आगे आगे ॥१४॥

अन्वयार्थ : हे देव! मुक्ति का मार्ग मिथ्यात्वरूप अज्ञान अंधकार से व्याप्त है, आच्छादित है और अगाध दुःखरूप गड्ढों से विषम है, दुष्प्रवेश है। ऐसा होने पर भी यदि सप्ततत्त्वों के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला अथवा सप्त तत्त्वों के द्वारा मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाला-आपकी पवित्र दिव्यध्वनिरूप वाणीरूपी दीपक का प्रकाश आगे-आगे नहीं होता, तो ऐसा कौन पुरुष है जो आपकी वाणीरूप दीपक के प्रकाश के बिना ही उस कंटकाकीर्ण विषम मार्ग से सुखपूर्वक गमन कर सकता है? और अपने इष्टस्थान को सुगमता से प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है अर्थात् कोई नहीं। अस्तु: हे नाथ! आपकी पवित्र वाणीरूपी दीपक के प्रकाश से ही संसारी जीव हेयोपादेयरूप तत्त्वों का परिज्ञान करते हैं और उसी के अनुकूल आचरण कर कर्मबंधन से छूटने का उपाय करते हैं। अर्थात् मोक्ष के साधक सम्पादर्शन, सम्पज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण करते हैं उन्हें अपने जीवन में उतारते हैं साथ ही रत्नत्रय की पूर्णता एवं परम प्रकर्षता से ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों का समूल नाशकर कृत-कृत्य

अवस्था को प्राप्त करते हैं और अनन्तकाल तक उस आत्मोत्थ अव्याबाध निराकुल सुख का अनुभव करते रहते हैं। यह सब वीतराग भगवान की उस दिव्यवाणी का ही माहात्म्य एवं प्रभाव है

आत्म-ज्योतिर्निधि-रनवधि-र्द्रष्टुरानन्द-हेतुः,
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम् ।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्वक्तिभाजः,
स्तोत्रैर्बन्ध-प्रकृति-परुषोद्वाम-धात्री-खनित्रैः ॥१५॥

कर्म पटल भू माहिं दबी आतम निधि भारी ।
देखत अतिसुख होय विमुख जन नाहिं उघारी ॥
तुम सेवक ततकाल ताहि निहचै कर धारै ।
थुति कुदाल सों खोद बंद भू कठिन विदारै ॥१५॥

अन्वयार्थ : जिस प्रकार पृथ्वी में गड़ हुए धन को कुदाल से कठोर भूमि को खोदकर निकाल लेते हैं, ठीक उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप पुद्गल पिण्डों से आच्छादित अपनी ज्ञानादिरूप आत्मसम्पदा को आपके पवित्र स्तवनरूप कुदाल से कर्मबंधनरूप अतिशय कठोर भूमि को खोदकर निकाल लेते हैं परन्तु मिथ्यावृष्टियों को वह नहीं प्राप्त होती

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरे-रायता चामृताब्ध्येः,
या देव! त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः,
कल्माषं यद्ववति किमियं देव! सन्देह-भूमिः ॥१६॥

स्याद् वाद-गिरि उपज मोक्ष सागर लों धाई ।
तुम चरणांबुज परस भक्ति गंगा सुखदाई ॥
मो चित निर्मल थयो न्होन रुचि पूरव तामें ।
अब वह हो न मलीन कौन जिन संशय या में ॥१६॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! स्याद्वादनयरूप हिमालय से निकली और मोक्षरूपी समुद्र तक लम्बी यह आपकी भक्तिरूपी गंगा मुझे बड़े भारी भाग्योदय से प्राप्त हुई है, गंगा में स्नान करने से जिस तरह शरीर का बाह्य मैल धूल जाता है और वह स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार आपकी भक्तिरूपी गंगा में स्नान करने से, उसमें गोता लगाने से यदि मेरे अन्तःकरण की पापरूप कालिका धुलकर मेरा मन पवित्र-राग-द्वेषादि विभावभावों से रहित निर्विकार हो जाये, तो इसमें क्या संदेह है? अर्थात् कुछ नहीं है

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुख त्वामनुध्यायतो मे,
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा ।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते त्रृप्ति-मध्रेषरूपां,
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्-प्रसादान्द्रवन्ति ॥१७॥

तुम शिव सुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरो ।
मैं भगवान समान भाव यों वरतै मेरो ॥
यदपि झूठ है तदपि त्रृप्ति निश्चल उपजावे ।
तुव प्रसाद सकलंक जीव वांछित फल पावे ॥१७॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! आपके पवित्र ज्ञानादि अनंत गुणों का ध्यान एवं चिन्तन करते-करते जो परमात्मा है सो मैं हूँ सो परमात्मा है जब ऐसी निर्विकल्पात्मक अभेद ब्रूद्धि उत्पन्न हो जाती है सो यद्यपि यह मिथ्या है तो भी निश्चल आनन्द को प्रकट करती है। बहुत कहने से क्या, सदोषी पतितात्मा पुरुष भी आपके सामीप्य एवं प्रसाद से अभिमतफल को प्राप्त करते ही हैं

मिथ्यावादं मल-मपनुदन्सप्तभङ्गी-तरङ्गै-
र्वगम्भोधि-भूवन-मखिलं देव! पर्येति यस्ते ।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्वेतसैवाचलेन,
व्यातन्वन्तः सुचिर-ममृतासेवया तृप्तुवन्ति ॥१८॥

वचन जलधि तुम देव सकल त्रिभूवन में व्यापे ।
 भंग-तरंगिनि विकथ-वाद-मल मलिन उथापे ॥
 मन सुमेरु सों मथे ताहि जे सम्यग्जानी ।
 परमामृत सों तृप्त होहिं ते चिरलों प्रानी ॥१८॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! सप्तभंगरूपतरंगों से अथवा अनेकांत के माहात्म्य से शरीरादिक बाह्य पदार्थों में आत्मत्व बुद्धिरूपी जीव के विपरीताभिनिवेश को दूर करने वाले आपके वचन समुद्र का जो भव्य प्राणी निरन्तर अभ्यास मनन एवं परिशीलन करता है अर्थात् अगमोक्त विधि से अभ्यास कर चित्त की निश्चलतारूप परम समाधि को प्राप्त करता है वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है और अनन्तकाल तक यहाँ सुख में मग्न रहता है। यह सब आपके वचन समुद्र का ही माहात्म्य है

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः,
 शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः ।
 सर्वज्ञेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,
 तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्वैः ॥१९॥

जो कुदेव छविहीन वसन भूषन अभिलाखे ।
 वैरी सों भयभीत होय सो आयुध राखे ॥
 तुम सुंदर सर्वांग शत्रु समरथ नहिं कोई ।
 भूषन वसन गदादि ग्रहन काहे को होई ॥१९॥

अन्वयार्थ : आचार्य वादिराज ने इस श्लोक में सच्चे देव का यथार्थ स्वरूप दिखालाते हुए जिनेन्द्र देव की अन्य हरिहरादिक देवों से सर्वोक्तुष्टा प्रकट की है, उन्हें ही निर्दोष और वास्तविक देव बताया है, क्योंकि संसार में बहुत से जीव अपनी अज्ञातावश देवतविहीन पुरुषों में भी देव की कल्पना कर लेते हैं। जिनका चित्त राग-द्वेष से मलिन है, दूषित है-जो स्वभाव से ही कातिहीन एवं अमनोज्ञ है और अनेक प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित हैं-अथवा बहुमूल्य वस्त्राभूषण और स्त्री, गदा आदि अस्त्रों (हथियारों) से जिनकी पहचान होती है, जो नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत करने की इच्छा करते हैं। जिन्हें शत्रुओं से सदा भय बना रहता है अतएव गदा-त्रिशूल आदि अस्त्रों को धारण किए हुए हैं, जैनधर्म ऐसे भेषणे रागी-द्वेषी पुरुषों को देव नहीं कहता और न उनमें देवत का वास्तविक लक्षण ही घटित होता है। परन्तु जिनेन्द्र भगवान स्वभाव से ही मनोज्ञ हैं-कान्तिवान हैं अतः वे कृत्रिम वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत नहीं करते हैं उन्होंने देह भोगों का खुशी-खुशी त्याग किया है और मोह शत्रु पर विजय प्राप्त की है। इसके सिवाय उन्हें किसी शत्रु आदि का कोई भय नहीं है और न संसार में उनका कोई शत्रु-मित्र ही है, वे सबको समानदृष्टि से देखते हैं, चाहे पूजक और निंदक कोई भी क्यों न हो, किसी से भी उनका राग-द्वेष नहीं है। उनके आत्मजोज या तपश्चरण विशेष की सामर्थ्य से कदूर बैरी भी अपने बैर-विरोध को छोड़कर शान्त हो जाते हैं अतः ऐसे पूर्ण अहिंसक, परम वीतराग और क्षीणमोही परमामा को सुन्दर वस्त्राभूषणों और अस्त्र-शस्त्रों से क्या प्रयोजन हो सकता है? अर्थात् कुछ नहीं

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते,
 तस्यैवेयं भव-लय-करी श्लाघ्यता-मातनोति ।
 त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं,
 त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्यम् ॥२०॥

सुरपति सेवा करे कहा प्रभु प्रभुता तेरी ।
 सो सलाघना लहै मिटे जग सों जग फेरी ॥
 तुम भव जलधि जिहाज तोहि शिव कंत उचरिये ।
 तुहीं जगत-जनपाल नाथ थुति की थुति करिये ॥२०॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! इन्द्र आपकी सेवा, वन्दना, पूजा, स्तुति आदि करता है, केवल इसी से आपकी कोई महत्ता और प्रशंसा नहीं हो सकती है, क्योंकि इन्द्र तो आपकी समीचीन भक्ति एवं स्तुति, पूजादि से महान पुण्य का संचय करता है और वह भक्ति उसके लिए भवलयकरी संसार का नाश करने वाली होती है। इसी से वह एक भवावतारी हो जाता है अर्थात् मनुष्य का एक भव धारण करके ही मोक्ष चला जाता है परन्तु आप संसार-समुद्र से स्वयं तरने और तारने वाले हैं और मुक्तिरूपी लक्ष्मी के अधिपति हैं तथा संसार के समस्त जीवों के अकारण बंधु हैं-उन्हें संसार के दुःखों से छुटाने वाले हैं और हेयोपादेयरूप तत्वों का परिज्ञान करते हैं इसलिए आप उनके प्रभु हैं, आपने जिस उच्च आदर्श को प्राप्त किया है वही संसारी जीवों के द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं, इन्हीं सब कारणों से आपकी महत्ता एवं प्रभुता संसार में प्रकट होती है

वृत्तिर्वाचामपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः,
 स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते ।
 मैवं भूवंस्तदपि भगवन्! भक्ति-पीयूष-पुष्ट-
 स्ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति ॥२१॥

वचन जाल जड़ रूप आप चिन्मूरति झाँई ।
 तातैं थुति आलाप नाहिं पहुंचे तुम ताँई ॥

तो भी निर्फल नाहिं भक्ति रस भीने वायक ।
संतन को सुर तरु समान वांछित वरदायक ॥२१॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! हमारे वचनों की प्रवृत्ति अन्य अल्पज्ञ जीवों के समान ही है परन्तु आप राग-द्वेषादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चुके हैं अतः आपकी तुलना अन्य अल्पज्ञ संसारी जीवों से नहीं की जा सकती है, क्योंकि आप सच्चिदानन्द, परमब्रह्म परमात्मा हैं। यद्यपि हमारे स्तुतिरूपी उद्घार आपके समीप तक नहीं पहुँचते हैं, तो भी आपकी समीचीन भक्तिरूप-अमृत से पुष्ट हुए ये स्तुतिरूप उद्घार भव्य जीवों के लिए कल्पवृक्ष के समान इच्छित फल के देने वाले होते हैं।

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयै-वानपेक्षम् ।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि-वैर-हारी,
कैवं भूतं भुवन-तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु ॥२२॥

कोप कभी नहिं करो प्रीति कबहूं नहिं धारो ।
अति उदास बेचाह चित्त जिनराज तिहांरो ॥
तदपि आन जग बहै बैर तुम निकट न लहिये ।
यह प्रभुता जगतिलक कहां तुम बिन सरदहिये ॥२२॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! आपको न किसी से राग और न द्वेष, आप न किसी पर प्रसन्न ही होते हैं और न किसी को अपने क्रोध का भाजन ही बनाते हैं, क्योंकि आप परम वीतरागी हैं, राग-द्वेषादि के अभावरूप परम उपेक्षाभाव को अंगीकार किए हुए हैं परन्तु फिर भी, आपकी आज्ञा त्रैलोक्यवर्ती जीवों के द्वारा मान्य है तथा आपकी समीपता वैर-विरोध का नाश करने वाली है। साथ ही, आपकी प्रशंसात मुद्रा मुमुक्षु जीवों के लिए साक्षात् मोक्षमार्ग को प्रकट करती है, उसके ध्यान एवं चिंतन से भव्यात्मा आत्मा के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान करते हैं और उसी तरह चैतन्य जिनप्रतिमा बनने का अभ्यास करते हैं अतएव जैसा प्रभाव आपका है वैसा अन्य हरिहरादिक देवों का कहाँ हो सकता है? क्योंकि वे रागी-द्वेषी हैं, अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर अनुग्रह करते हैं और निंदकों पर रुष्ट होते हैं उन्हें शाप दे देते हैं परन्तु हे देव! ये सब बातें आप में नहीं हैं, पूजक और निन्दकों पर आपका समान भाव रहता है क्योंकि आप जिन हैं, इन सब विकारों को जीत चुके हैं अतः आप जैसा प्रभाव अन्य किसी भी देवी-देवता का नहीं हो सकता है।

देव! स्तोतुं त्रिदिव-गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिर्जनो यः ।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्था-
स्तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मत्रः ॥२३॥

सुरतिय गावें सुजश सर्वगत ज्ञान स्वरूपी ।
जो तुमको धिर होहिं नमै भवि आनंद रूपी ॥
ताहि छेमपुर चलन वाट बाकी नहिं हो हैं ।
श्रुत के सुमरन माहिं सो न कबहूं नर मोहै ॥२३॥

अन्वयार्थ : हे भगवन! जो भद्र मानव आपकी समीचीन भक्ति करता है और आपके पवित्र अनन्तज्ञानादि गुणों की स्तुति करता है, उनका चिन्तवन और मनन करता है, वह शोष्ण ही कर्मबंधन को काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है और कर्मबंध के विनाश से पूर्णज्ञानी होता हुआ फिर कभी भी अज्ञान को प्राप्त नहीं होता है।

चित्ते कुर्वन्निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य-रूप,
देव! त्वां यः समय-नियमादाऽऽदरेण स्तवीति ।
श्रेयोमार्ग स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम् ॥२४॥

अतुल चतुष्टय रूप तुम्हें जो चित्त में धारे ।
आदर सों तिहुं काल माहिं जग धुति विस्तारे ॥
सो सुकृत शिव पंथ भक्ति रचना कर पूरे ।
पंच कल्याणक ऋद्धि पाय निहचै दुःख चूरे ॥२४॥

अन्वयार्थ : अनन्तचतुष्टयस्वरूप हे नाथ! जो भव्य पुरुष आपका आदरपूर्वक भक्ति से स्तवन करता है, वह पुण्यात्मा पंचकल्याणकों का पात्र होता हुआ मोक्षमार्ग का नेता होता है।

भक्ति-प्रह्ल-महेन्द्र-पूजित-पद! त्वकीर्तने न क्षमा:
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभूतः के हन्त मन्दा वयम् ।

अस्माभिः स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वयादरस्तन्यते स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः ॥२५॥

अहो जगत पति पूज्य अवधि ज्ञानी मुनि हारे ।
तुम गुन कीर्तन माहिं कौन हम मंद विचारे ॥
थुति छल सों तुम विषे देव आदर विस्तारे ।
शिव सुख-पूरनहार कलपतरु यही हमारे ॥२५॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! आप जैसे परमयोगीन्द्र की, जब द्वादशांग का पाठी इन्द्र भक्तिपूर्वक स्तुति करता है और चार ज्ञान के धारक गणधरादिक भी आपको अपनी स्तुति का विषय बनाते हैं तथा अनेक ऋद्धियों के धारक क्षीणकाय मुनिपुंगव भी जब आपके गुणों की स्तुति करते हैं, तो भी वह पूर्णतया आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हो पाते, ऐसी अवस्था में आचार्य वादिराज अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहते हैं कि तब मुझ जैसा मन्दमति पुरुष आप जैसे जगद्वन्य परमात्मा की स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकता है? अस्तु, आपके गुणों में जो अनुराग प्रकट किया है भक्ति से इस स्तवनरूप पुष्टमाला को गूँथा है, सो उक्त गुणानुराग ही आत्महितैषी मोक्ष के इच्छुक हम जैसे पुरुषों का कल्याण करने वाला हो, अथवा मेरी आत्मोन्नति में सहायक हो

स्वगता छंद

वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्किक-सिंहः वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्य-सहायः ॥२६॥

वादिराज मुनि तें अनु, वैयाकरणी सारे ।
वादिराज मुनि तें अनु, तार्किक विद्यावारे ॥
वादिराज मुनि तें अनु, हैं काव्यन के ज्ञाता ।
वादिराज मुनि तें अनु, हैं भविजन के त्राता ॥२६॥

(दोहा)
मूल अर्थ बहु विधि कुसुम, भाषा सूत्र मङ्गार ।
भक्ति माल 'भूधर' करी, करो कंठ सुखकार ॥



विषापहारस्तोत्रम्

स्वात्म-स्थितः सर्वगतः समस्त-, व्यापार-वेदी विनिवृत्त-संज्ञः । प्रवृद्ध-कालोऽप्यजरो वरेण्यः, पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥१॥

अपने में ही स्थिर रहता है, और सर्वगत कहलाता ।
सर्व-संग-त्यागी होकर भी, सब व्यापारों का ज्ञाता ॥
काल-मान से वृद्ध बहुत है, फिर भी अजर अमर स्वयमेव ।
विपदाओं से सदा बचावे, वह पुराण पुरुषोत्तम देव ॥१॥

अन्वयार्थ : [स्वात्म-स्थितः सर्व-गतः] आत्म-स्वरूप में स्थित होकर भी सर्वव्यापक, [समस्त-व्यापार-वेदी विनिवृत्त-संज्ञः] सब व्यापारों के जानकार होकर भी परिग्रह-रहित, [प्रवृद्धकालः अपि अजरः] दीर्घायु होकर भी बुढ़ापे से रहित, [वरेण्यः] श्रेष्ठ पुरुषः पुराणः] पुरातन पुरुष (वृषभनाथ) (नः) हमें [पायादपायाद्] विनाश से बचावें (रक्षा करें) ॥१॥

पैररचिन्त्यं युगभारमेकः, स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः । स्तुत्योऽद्यमेऽसौ वृषभो न भानोः, किमप्रवेशो विशति प्रदीपः ॥२॥

जिसने पर-कल्पनातीत, युग-भार अकेले ही झेला ।
जिसके सुगुन-गान मुनिजन भी, कर नहिं सके एक बेला ॥
उसी वृषभ की विशद विरद यह, अल्पबुद्धि जन रचता है ।
जहाँ न जाता भानु वहाँ भी, दीप उजाला करता है ॥२॥

अन्वयार्थ : [पैरचिन्त्यं] दूसरों के द्वारा चिन्तन के अयोग्य [युग-भारमेकः] अकेले ही युग-परिवर्तन का भार वहन करने वाले, [योगिभिः अपि] मुनियों के द्वारा भी [स्तोतुम् अशक्यः] जिनकी स्तुति नहीं की जा सकती, [असौ वृषभः] ऐसे वृषभेश की [अद्य] आज [मे स्तुत्यः] मैं स्तुति करता हूँ । [भानोः] सूर्य का [अप्रवेश] प्रवेश नहीं होने पर [किम् प्रदीपः ए विशतिः] क्या दीपक प्रवेश नहीं करता ? ॥२॥

तत्याज शक्रः शकनाभिमानं, नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम् ।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं, वातायनेनेव निरुपयामि ॥३॥

शक्र सरीखे शक्तिवान ने, तजा गर्व गुण गाने का ।
किन्तु मैं साहस न छोड़ूँगा, विरदावली बनाने का ॥
अपने अल्पज्ञान से ही मैं, बहुत विषय प्रकटाऊँगा ।
इस छोटे वातायन से ही, सारा नगर दिखाऊँगा ॥३॥

अन्वयार्थ : [शक्रः] इन्द्र ने [शकनाभिमानम्] स्तुति कर सकने की शक्ति का अभिमान [तत्याज] छोड़ दिया था किन्तु [अहम्] मैं [स्तवनानुबन्धम्] स्तुति के उद्योग को [न त्यजामि] नहीं छोड़ रहा हूँ । मैं [वातायनेन इव] झरोखे की तरह [स्वल्पेन बोधेन] थोड़े से ज्ञान के द्वारा [ततः अधिकार्थं] उससे अधिक अर्थ को [निरुपयामि] निरुपित कर रहा हूँ ॥३॥

त्वं विश्वदश्वा सकलैरदश्यो, विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः ।
वक्तुं क्रियान्कीदश मित्यशक्यः, स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥४॥

तुम सब-दर्शी देव किन्तु, तुमको न देख सकता कोई ।
तुम सबके ही ज्ञाता पर, तुमको न जान पाता कोई ॥
'कितने हो' 'कैसे हो' यों कुछ, कहा न जाता हे भगवान् ।

इससे निज अशक्ति बतलाना, यही तुम्हारा स्तवन महान् ॥४॥

अन्वयार्थ : [त्वं विश्वदश्वा] आप सारे विश्व को देखते हैं किन्तु [सकलैरदश्यो] सबके द्वारा नहीं देखे जाते [विद्वानशेषं] सबको जानते हैं किन्तु [निखिलैरवेद्यः] सबके द्वारा नहीं जाने जाते आप [क्रियान्कीदश] कितने और कैसे हैं [इति वक्तुं अशक्यः] यह कहा नहीं जा सकता [स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु] इसलिए आपकी स्तुति मेरी असामर्थ्य की कहानी ही है ॥४॥

व्यापीडितं बालमिवात्म-दोषै,-रुल्लाधतां लोकमवापिपस्त्वम् ।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः, सर्वस्य जन्तोरसि बालवैद्यः ॥५॥

बालक सम अपने दोषों से, जो जन पीड़ित रहते हैं ।
उन सबको हे नाथ! आप, भवताप रहित नित करते हैं ॥
यों अपने हित और अहित का, जो न ध्यान धरने वाले ।

उन सबको तुम बाल-वैद्य हो, स्वास्थ्य-दान करने वाले ॥५॥

अन्वयार्थ : [बालम् इव] बालक की तरह [आत्मदोषैः] अपने द्वारा किए गए अपराधों से [व्यापीडितं] अत्यन्त पीड़ित [लोकम्] संसारी मनुष्यों को [उल्लाधताम्] निरोगता [वापिपस्त्वम्] आपने प्राप्त कराइ है [हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः] भले-बुरे के विचार करने में मूर्खता को प्राप्त [सर्वस्य जन्तोरसि बाल-वैद्यः] सब प्राणियों के आप बाल-वैद्य हैं ॥५॥

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वा, -नद्यश्व इत्यच्युत दर्शिताशः ।
सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः, क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥६॥

देने लेने का काम नहीं कुछ, आज कल्य परसों करके ।
दिन व्यतीत करता अशक्त रवि, व्यर्थ दिलासा देकर के ॥
पर हे अच्युत! जिनपति तुम यों, पल भर भी नहिं खोते हो ।
शरणागत नत भक्तजनों को, त्वरित इष्ट फल देते हो ॥६॥

अन्वयार्थ : [विवस्वान्] सूर्य [दाता न हर्ता] न कुछ देता है, न कुछ लेता है [दिवसं] दिन को [अच्युत] अनवरत [अद्यश्वः] आज... कल.. [इतः] इस तरह [गमयत्यशक्तः] शक्तिहीन गमन करते हुए [सव्याजम्] कपट-सहित [दर्शिताशः] दिखाता है [एवं] किन्तु आप [नताय] नम्र मनुष्य को [क्षणेन] क्षण-भर में [दत्सेऽभिमतं] इच्छित वस्तु दे देते हैं ॥६॥

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयि स्वभावाद्-विमुखश्च दुःखम् ।
सदावदात-दयुतिरेकरूप, -स्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥७॥

भक्तिभाव से सुमुख आपके, रहने वाले सुख पाते ।
और विमुख जन दुख पाते हैं, रागद्वेष नहिं तुम लाते ॥
अमल सुदुतिमय चारु आरसी, सदा एकसी रहती ज्यों ।
उसमें सुमुख विमुख दोनों ही, देखें छाया ज्यों की त्यों ॥७॥

अन्वयार्थ : [सुमुखः त्वयि] आपके अनुकूल चलने वाला [भक्त्या] भक्ति से [सुखानि] सुखों को [उपैति] प्राप्त करता है [स्वभावाद्विमुखश्च] प्रतिकूल चलने वाला स्वभाव से ही [दुःखम्] दुःख पाता है किन्तु [सदावदात-दयुति] हमेशा उज्जवल कान्ति-युक्त [एकरूपः] एक सदृश [तयोः] उन-दोनों के आगे [त्वमादर्श इव]

आप दर्पण की भौति |अवभासि| शोभायमान रहते हैं ॥७॥

अगाधताब्धे: स यतः पयोधि-, मरोश्च तुंगा प्रकृतिः स यत्र ।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव, व्यापत्वदीया भुवनान्तराणि ॥८॥

गहराई निधि की, ऊँचाई गिरि की, नभ-थल की चौड़ाई ।
वहीं वहीं तक जहाँ-जहाँ तक, निधि आदिक दें दिखलाई ॥
किन्तु नाथ! तेरी अगाधता, और तुंगता, विस्तरता ।
तीन भुवन के बाहिर भी है, व्याप रही है जगत्प्रिता ॥८॥

अन्वयार्थ : [अगाधताब्धे:] अथाह गहराई [स यतः पयोधि:] वह वहीं है जहाँ समुद्र हैं [मरोश्च तुंगा प्रकृतिः स यत्र] अथाह उंचाई वहीं है जहाँ सुमेरू पर्वत है [द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव] आकाश पृथ्वी की विशालता भी उसी प्रकार है परन्तु आप [व्याप त्वदीया भुवनान्तराणि] तीनों लोकों के भी पार व्यापते हैं ॥८॥

तवानवस्था परमार्थतत्त्वं, त्वया न गीतः पुनरागमश्च ।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषी-, विरुद्ध-व्रतोऽपि समञ्जसस्त्वम् ॥९॥

अनवस्था को परम तत्त्व, तुमने अपने मत में गाया ।
किन्तु बड़ा अचरज यह भगवन्, पुनरागमन न बतलाया ॥
त्यों आशा करके अदृष्ट की, तुम सुदृष्ट फल को खोते ।
यों तब चरित दिखें उलटे से, किन्तु घटित सब ही होते ॥९॥

अन्वयार्थ : [अनवस्था] परिवर्तशीलता [तब] आपका [परमार्थ-तत्त्वं] वास्तविक सिद्धांत है और [त्वया] आपके द्वारा [न गीतः पुनरागमश्च] मोक्ष से वापिस आने का उपदेश नहीं दिया गया है; [दृष्टं विहाय] प्रत्यक्ष इस लोक सम्बन्धी सुख छोड़कर [त्वमदृष्टमैषीः] परलोक सम्बन्धी सुख को चाहते हैं, इस तरह [विरुद्धव्रतः अपि] विपरीत प्रवृत्तियुक्त होने पर भी [समञ्जसस्त्वम्] आप उचितता से युक्त हैं ॥९॥

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्-, नुदधूलितात्मा यदि नाम शम्भुः ।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः, किं ग्रह्यते येन भवानजागः ॥१०॥

काम जलाया तुमने स्वामी, इसीलिए यह उसकी धूल ।
शंभु रमाई निज शरीर में, होय अधीर मोह में भूल ॥
विष्णु परिग्रहयुत सोते हैं, लूटे उन्हें इसी से काम ।
तुम निर्ग्रथ जागते रहते, तुमसे क्या छीने वह वाम ॥१०॥

अन्वयार्थ : [भवतैव] आपके द्वारा ही [स्मरः सुदग्धो] काम अच्छी तरह से भस्म किया गया [यदि नाम शम्भुः] यदि महादेव (शंकर) का नाम लें तो [तस्मिन्नुदधूलितात्मा] वह काम के विषय में कलंकित हो गया था [अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः] विष्णु ने वृन्दा / लक्ष्मी के साथ शयन किया था [येन] लेकिन [भवानजागः] आप काम-निद्रा द्वारा अचेत नहीं हुए इसलिए [किं ग्रह्यते] कामदेव के द्वारा आपकी कौनसी वस्तु ग्रहण हुई ? ॥१०॥

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा, तद्वोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम् ।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव!, स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११॥

और देव हों चाहे जैसे, पाप सहित अथवा निष्पाप ।
उनके दोष दिखाने से ही, गुणी कहे नहिं जाते आप ॥
जैसे स्वयं सरितपति की अति, महिमा बढ़ी दिखाती है ।
जलाशयों के लघु कहने से, वह न कहीं बढ़ जाती है ॥११॥

अन्वयार्थ : [स नीरजाः] वह पाप-रहित है [स्यादपरोऽघवान्वा] और कदाचित काई दूसरा पाप-सहित है, इस तरह [तद्वोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम्] उनके दोषों का वर्णन करने-मात्र से आपका गुणीपना नहीं होता [स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा] समुद्र की महिमा स्वभाव से ही होती है [न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य] 'यह छोटा है' इस तरह तालाब की निंदा करने से नहीं होती ॥११॥

कर्मस्थितिं जन्तुरनेक-भूमिम्, नयत्यमुं सा च परस्परस्य ।
त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ, जिनेन्द्र नौनाविक्योरिवाख्यः ॥१२॥

कर्मस्थिति को जीव निरन्तर, विविध थलों में पहुँचाता ।
और कर्म इन जग-जीवों को, सब गतियों में ले जाता ॥
यों नौका नाविक के जैसे, इस गहरे भव-सागर में ।
जीव-कर्म के नेता हो प्रभु, पार करो कर कृपा हमें ॥१२॥

अन्वयार्थ : [जन्तुः] जीव और [कर्मस्थितिं] कर्म की स्थिति [सा परस्परस्य] एक दूसरे को [अनेकभूमिम्] अनेक जगह [नयत्यमुं] ले जाते हैं [जिनेन्द्र] है जिनेन्द्र-भगवान् [त्वं] आपने [तयोः] उनका [नेतृत्व भावहि] यह नेतृत्व भाव [हि] वास्तव में [भवाब्धौ] संसार रूपी समुद्र में [नौनाविक्योरिवाख्यः] नाव और खेवटिये के

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्, धर्माय पापानि समाचरन्ति ।
तैलाय बालाः सिकतासमूहं, निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः ॥१३॥

गुण के लिए लोग करते हैं, अस्ति-धारणादिक बहु दोष ।

धर्म हेतु पापों में पड़ते, पशुवधादि को कह निर्दोष ॥

सुखहित निज-तन को देते हैं, गिरिपातादि दुःख में ठेल ।

यों जो तब मतबाह्य मूढ़ वे, बालू पेल निकालें तेल ॥१३॥

अन्वयार्थ : [स्फुटमत्वदीयाः] आपके प्रतिकूल चलने वाला स्पष्टः [सुखाय दुःखानि] सुख के लिए दुःखों को [गुणाय दोषान्] गुण के लिए दोषों को, [धर्माय पापानि] धर्म के लिए पापों को [समाचरन्ति] करता है जैसे [बालाः] अज्ञानी (मूर्ख) [तैलाय सिकता-समूहं] तेल के लिए बालू के समूह को [निपीडयन्ति] पेलता है ॥१३॥

विषापहारं मणिमौषधानि, मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च ।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति, पर्याय-नामानि तवैव तानि ॥१४॥

विषनाशक मणि मंत्र रसायन, औषध के अन्वेषण में ।

देखो तो ये भोले प्राणी, फिरें भटकते वन-वन में ॥

समझ तुम्हें ही मणिमंत्रादिक, स्मरण न करते सुखदायी ।

क्योंकि तुम्हारे ही हैं ये सब, नाम दूसरे पर्यायी ॥१४॥

अन्वयार्थ : [विषापहारं] विष को दूर करने वाले [मणिमौषधानि] मणि, औषधि, [मन्त्रं] मंत्र [रसायनं च] और रसायन को [समुद्दिश्य] उद्देश्य करके [भ्राम्यन्त्यहोन] यहाँ-वहाँ घूमते हैं [त्वमिति] आप ही हैं [स्मरन्ति] यह याद नहीं रखते [तानि] वे (मणि आदि) [तवैव] आपके ही [पर्याय-नामानि] पर्यायवाची हैं ॥१४॥

चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं, देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम् ।
हस्ते क्रतं तेन जगद्विचित्रं, सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥१५॥

हे जिनेश! तुम अपने मन में, नहीं किसी को लाते हो ।

पर जिस किसी भाग्यशाली के, मन में तुम आ जाते हो ॥

वह निज-कर में कर लेता है, सकल जगत को निश्चय से ।

तव मन से बाहर रहकर भी, अचरज है रहता सुख से ॥१५॥

अन्वयार्थ : [त्वं देवः] हे देव आप [चित्ते] हृदय में [न किञ्चित्कृतवानसि] कुछ भी धारण नहीं करते लेकिन [येन] जिसने भी [कृतश्चेतसि] आपको हृदय में धारण किया [तेन] उसके [सर्वम् हस्ते क्रतम्] हाथ में सब आ गया (सब कुछ पा लिया), वह [जगद्विचित्र] संसार के विचित्र [चित्तबाह्यः] हृदय में न समाने वाले [सुखेन जीवत्यपि] सुखों द्वारा जीता है ॥१५॥

त्रिकाल-तत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी-, स्वामीति संख्या-नियतेरमीषाम् ।
बोधाधिपत्यंप्रति नाभविष्य-्, स्तेऽन्येऽपिचेद् व्याप्त्यदमूनपीदम् ॥१६॥

त्रिकालज्ञ त्रिजगत के स्वामी, ऐसा कहने से जिनदेव ।

ज्ञान और स्वामीपन की, सीमा निश्चित होती स्वयमेव ॥

यदि इससे भी ज्यादा होती, काल जगत की गिनती और ।

तो उसको भी स्थापित करते, ये तब गुण दोनों सिरमौर ॥१६॥

अन्वयार्थ : [त्रिकालतत्त्वं अवै] त्रिकाल के पदार्थों को जानने से, [त्रिलोकी स्वामि] तीन-लोक के स्वामी [इति] इससे (ऐसा कहने से) [संख्या-नियतेरमीषाम्] (ज्ञान और स्वामिपन की) सीमा निश्चित होती है [बोधाधिपत्यंप्रति न] ज्ञान के साम्राज्य के सामने यह संख्या कुछ नहीं है [अभविष्यस्तेऽन्येऽपिचेद्] यदि ऐसे अनन्त और भी (पदार्थ) होते [त्वम् व्याप्त्यदमूनपीदम्] उन्हें भी आप व्याप्त कर लेते ॥१६॥

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं, नागम्यरूपस्य तवोपकारि ।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानो-, रुद्धिभ्रतच्छत्रमिवादरेण ॥१७॥

प्रभु की सेवा करके सुरपति, बीज स्वसुख के बोता है ।

हे अगम्य अज्ञेय न इससे, तुम्हें लाभ कुछ होता है ॥

जैसे छत्र सूर्य के सम्मुख, करने से दयालु जिनदेव ।

करने वाले ही को होता, सुखकर आतपहर स्वयमेव ॥१७॥

अन्वयार्थ : [अगम्यरूपस्य] हे अगम्य अज्ञेय [नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं] इंद्र की मनोहर सेवा से [न तवोपकारि] आपका कुछ उपकार नहीं होता [भानोरुद्धिभ्रतच्छत्रमिवादरेण] सूर्य के लिए आदरपूर्वक छत्र धारण करने वाले की तरह [तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य] वह उस इंद्र के अपने सुख का ही कारण है ॥१७॥

कोपेक्षकस्त्वं कु सुखोपदेशः, स चेलिमिच्छा-प्रतिकूलवादः ।
क्वासौ कु वा सर्वजगत्प्रियत्वम्-, तत्रो यथातथ्यमवेविचं ते ॥18॥

कहाँ तुम्हारी वीतरागता, कहाँ सौख्यकारक उपदेश ।
हो भी तो कैसे बन सकता, इन्द्रिय-सुख-विरुद्ध आदेश? ॥
और जगत की प्रियता भी तब, सम्भव कैसे हो सकती ? ।
अचरज, यह विरुद्ध गुणमाला, तुममें कैसे रह सकती? ॥१८॥

अन्वयार्थ : [कोपेक्षकस्त्वं] कहाँ राग-द्वेष रहित आप और [कु सुखोपदेशः] कहाँ सुख का उपदेश? [स चेलिमिच्छा-प्रतिकूल-वादः] यदि देते भी हैं तो इच्छा के बिना कैसे बोलते हैं? [क्वासौ कु वा सर्वजगत्प्रियत्वं] वह जगत के सभी जीवों को प्रिय क्यों हैं? [तत्रो यथातथ्यमवेविचं ते] अतः आपकी वास्तविकता का विवेचन नहीं हो सकता ॥१८॥

तुगांत्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च, प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः ।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रे-, नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥19॥

तुम समान अति तुंग किन्तु, निधनों से जो मिलता स्वयमेव ।
धनद आदि धनिकों से वह फल, कभी नहीं मिल सकता देव ।
जल विहीन ऊँचे गिरिवर से, नाना नदियाँ बहती हैं ।

किन्तु विपुल जलयुक्त जलधि से, नहीं निकलती, झरती हैं ॥१९॥

अन्वयार्थ : [तुगांत्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च प्राप्यं] उदार वित्त दरिद्र-मनुष्य से जो फल प्राप्त हो सकता है वह [समृद्धान्न धनेश्वरादेः न] वह सम्पत्तिवान धनाद्य से नहीं प्राप्त हो सकता [निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रेनैकापि] पानी से शून्य अत्यन्त ऊँचे पर्वत के समान [निर्याति धुनी पयोधेः] समुद्र से एक भी नदी नहीं निकलती ॥१९॥

त्रैलोक्य-सेवा-नियमाय दण्डं, दधे यदिन्द्रो विनयेन तस्य ।
तत्प्रातिहार्य भवतः कुतस्त्यं, तत्कर्म-योगाद्यदि वा तवास्तु ॥20॥

करो जगत-जन जिनसेवा, यह समझाने को सुरपति ने ।
दंड विनय से लिया, इसलिए प्रातिहार्य पाया उसने ॥
किन्तु तुम्हारे प्रातिहार्य वसु-विधि हैं सो आए कैसे? ।
हे जिनेन्द्र! यदि कर्मयोग से, तो वे कर्म हुए कैसे? ॥२०॥

अन्वयार्थ : [त्रैलोक्य-सेवा-नियमाय] तीन-लोक के जीव भगवान की सेवा करो इसको दर्शने के लिए [दण्डं दधे यदिन्द्रो विनयेन] इन्द्र विनय से दण्ड धारण करता है [तस्य तत्प्रातिहार्य भवतः कुतस्त्यं] इन्द्र के द्वारा वह आपका प्रातिहार्य कैसे होता है [तत्कर्म-योगाद्यदि वा तवास्तु] यदि कर्म-योग से होता है, तो वह प्रातिहार्य आपका हुआ ॥२०॥

श्रिया परंपश्यति साधु निःस्वः, श्रीमान्न कश्चित्कृपणांत्वदन्यः ।
यथा प्रकाश-स्थितमन्धकार-, स्थायीक्षेऽसौ न तथा तमःस्थम् ॥21॥

धनिकों को तो सभी निधन, लखते हैं, भला समझते हैं ।
पर निधनों को तुम सिवाय जिन, कोई भला न कहते हैं ॥
जैसे अन्धकारवासी, उजियाले वाले को देखे ।
वैसे उजियाला वाला नर, नहिं तमवासी को देखे ॥२१॥

अन्वयार्थ : [निःस्वः] निर्धन पुरुष [श्रिया परम] लक्ष्मी से श्रेष्ठ (धनि) को [पश्यति साधु] आदरभाव से देखता है परन्तु [त्वदन्यः] आपके अलावा [श्रीमान् कश्चित्] कोई धनी [कृपणं न] निर्धन को अच्छे भावों से नहीं देखता [यथा] जैसे [अन्धकारस्थायी] अन्धकार में ठहरा हुआ [प्रकाश-स्थितम्] प्रकाश में स्थित को [ईक्षते] देख लेता है [असौ न तथा तमः स्थम्] उसी प्रकार उजाले में स्थित पुरुष अंधेरे में स्थित पुरुष को नहीं देख पाता ॥२१॥

स्ववृद्धिनिःश्वास-निमेषभाजि, प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः ।
किं चाखिल-ज्ञेय-विवर्ति-बोध-, स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥22॥

निज शरीर की वृद्धि श्वास-उच्छ्वास और पलकें झापना ।
ये प्रत्यक्ष चिह्न हैं जिसमें, ऐसा भी अनुभव अपना ॥
कर न सकें जो तुच्छबुद्धि वे, हे जिनवर! क्या तेरा रूप ।
इन्द्रियगोचर कर सकते हैं, सकल ज्ञेयमय ज्ञानस्वरूप? ॥२२॥

अन्वयार्थ : [प्रत्यक्षम्] यह प्रत्यक्ष है कि [स्ववृद्धिनिःश्वास-निमेषभाजि] अपनी वृद्धि, स्वासोच्छ्वास (जीवन), आँखों की टिमकार और [आत्मानुभवेऽपि] आत्मानुभव में भी [मूढः] मूर्ख [लोकः] लोग [अखिलज्ञेयविवर्ति-बोधस्वरूपम्] सम्पूर्ण पदार्थों की सम्पूर्ण पर्यायों को जानकर [अध्यक्षम्] सकल-प्रत्यक्ष (केवलज्ञान) [किं च

अवैति। कैसे कर सकते हैं ॥२२॥

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव!, त्वां येऽवगायन्ति कुलंप्रकाश्य ।
तेऽद्यापि नन्वाशमनमित्यवश्यं, पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति ॥२३॥

'उनके पिता' 'पुत्र हैं उनके', कर प्रकाश यों कुल की बात ।
नाथ! आपकी गुण-गाथा जो, गाते हैं रट रट दिनरात ॥
चारु चित्तहर चामीकर को, सचमुच ही वे बिना विचार ।

उपल-शकल से उपजा कहकर, अपने कर से देते डार ॥२३॥

अन्वयार्थ : [देव] हे देव [ये] जो [कुलम्प्रकाश्य] कुल का वर्णन में [त्वां] आप [तस्यात्मजः] उनके पुत्र हो [तस्य पिता] उनके पिता हो, [अवगायन्ति] इस प्रकार रटते (गाते/कहते) हैं [तेऽद्यापि] वे आज भी [नन्वाशमनम्] यह पथर से उपजा है [इति] ऐसा कहकर [अवश्यं] अवश्य [पाणौ कृतं] हाथ में आए हुए [हेम पुनस्त्यजन्ति] स्वर्ण को छोड़ देते हैं ॥२३॥

दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः, सुराऽसुरास्तस्य महान् सलाभः ।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुर्-मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥२४॥

तीन लोक में ढोल बजाकर, किया मोह ने यह आदेश ।
सभी सुरासुर हुए पराजित, मिला विजय यह उसे विशेष ॥
किन्तु नाथ! वह निबल आपसे, कर सकता था कहाँ विरोध ।
वैर ठानना बलवानों से, खो देता है खुद को खोद ॥२४॥

अन्वयार्थ : [सुरासुरः] सुर और असुर को [अभिभूताः] पराजित करके [दत्तस्त्रिलोक्यां पटहः] तीन लोक में विजय नगाड़ा बजाया [सः तस्य] वह उस (मोह) का [महान् सलाभः] बड़ा लाभ हुआ किन्तु [मोहस्य मोहस्त्वयि को] आपके विषय में मोह को कोई भ्रम नहीं हो सकता [विरोद्धुर्मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः] बलवान से विरोध करना अपने आपको समूल नाश करना है ॥२४॥

मार्गस्त्वयैकोददशे विमुक्ते-, श्वर्तुर्गतीनां गहनं परेण ।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन, त्वं मा कदाचिद्-भुजमालुलोकः ॥२५॥

तुमने केवल एक मुक्ति का, देखा मार्ग सौख्यकारी ।
पर औरों ने चारों गति के, गहन पंथ देखे भारी ॥
इससे सब कुछ देखा हमने, यह अभिमान ठान करके ।
हे जिनवर! नहिं कभी देखना, अपनी भुजा तान करके ॥२५॥

अन्वयार्थ : [मार्गस्त्वयैकोददशे विमुक्ते:] आपने एक मोक्ष का मार्ग देखा [श्वर्तुर्गतीनां गहनं परेण] दूसरों ने घोर चतुर्गति का मार्ग देखा इसलिए [सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन] मैंने सब-कुछ देखा ऐसा कहकर गर्व से [त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोकः] तुम कभी अपनी भुजाओं को नहीं देखो ॥२५॥

स्वर्भानुरक्ष्य हविर्भुजोऽम्भः, कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः ।
संसार-भोगस्य वियोग-भावो, विपक्ष-पूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥२६॥

रवि को राहु रोकता है, पावक को वारि बुझाता है ।
प्रलयकाल का प्रबल पवन, जलनिधि को नाच नचाता है ॥
ऐसे ही भव-भोगों को, उनका वियोग हरता स्वयमेव ।
तुम सिवाय सबकी बढ़ती पर, घातक लगे हुए हैं देव ॥२६॥

अन्वयार्थ : [स्वर्भानुः] राहु, [अर्कस्य] सूर्य का [हविर्भुजोऽम्भः] पानी अग्नि का [कल्पान्तवातोऽम्बुनिधे:] प्रलयकाल की वायु समुद्र का [संसार-भोगस्य वियोग-भावो] संसार के भोगों का विरहभाव द्वारा [विघातः] नाश होता है [विपक्ष-पूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये] आपसे भिन्न सब पदार्थ नाश के साथ ही पैदा होते हैं ॥२६॥

अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्-तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति ।
हरिन्मणिं काचधिया दधानस्-तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥२७॥

बिन जाने भी तुम्हें नमन, करने से जो फल फलता है ।
वह औरों को देव मान, नमने से भी नहिं मिलता है ॥
ज्यों मरकत को काँच मानकर, करगत करने वाला नर ।
समझ सुमणि जो काँच गहे, उसके सम रहे न खाली कर ॥२७॥

अन्वयार्थ : [अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्] आपको जाने बिना ही नमस्कार करने वाले को जो मिलता है [तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति] वह दसरे देवता को जानकर नमने वालों को प्राप्त नहीं होता [हरिन्मणिं] हरे मणि को [काचधिया] काँच की बुद्धि से [दधान्] घारण करने वाला [तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः] काँच

को सुमणि जानकार धारण करने वाले के सामान दरिद्र नहीं होता ॥२७॥

प्रशस्त-वाचश्चतुराः कषायै-, दर्घस्य देव-व्यवहारमाहुः ।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं, दृष्टं कपालस्य च मंगलत्वम् ॥२८॥

विशद मनोज्ञ बोलने वाले, पंडित जो कहलाते हैं ।

क्रोधादिक से जले हुए को, वे यों 'देव' बताते हैं ॥

जैसे 'बुझे हुए' दीपक को, 'बढ़ा हुआ' सब कहते हैं ।

और कपाल विघट जाने को, 'मंगल हुआ' समझते हैं ॥२८॥

अन्वयार्थ : [प्रशस्त-वाचश्चतुराः] सुन्दर वचन बोलनेवाले पंडित [कषायैदर्घस्य] क्रोधादि कषायों से जलते हुए को [देव-व्यवहारमाहुः] देव कहते हैं; [हि] [गतस्य दीपस्य हि] बुझे हुए दीपक को [नन्दितत्वं] 'बढ़ा हुआ' [च] और [कपालस्य मंगलत्वम्] फूटे हुए घड़े का 'मंगलपना' (ऐसा व्यवहार लोक में) [दृष्टं] देखा जाता है ॥२८॥

नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं, हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः ।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति, ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥२९॥

नयप्रमाणयुत अतिहितकारी, वचन आपके कहे हुए ।

सुनकर श्रोताजन तत्त्वों के, परिशीलन में लगे हुए ॥

वक्ता का निर्दोषपना, जानेंगे क्यों नहिं है गुणमाल ।

ज्वरविमुक्त जाना जाता है, अच्छे स्वर से ही तत्काल ॥२९॥

अन्वयार्थ : [नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं] आपके कहे हुए प्रमाणात्मक और नयात्मक [हितं वचस्ते] हितकारी वचनों को [निशमय्य] सुनकर [वक्तुः] निर्दोषतां वक्ता की निर्दोषता [के न विभावयन्ति] कौन अनुभव नहीं करेगा ? [ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण] ज्वर से मुक्त होने पर स्वर मधुर हो जाता है ॥२९॥

न ककापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते, काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः ।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्युदंशुः, स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३०॥

यद्यपि जग के किसी विषय में, अभिलाषा तब रही नहीं ।

तो भी विमल वाणी तब खिरती, यदा कदाचित् कहीं-कहीं ॥

ऐसा ही कुछ है नियोग यह, जैसे पूर्णचन्द्र जिनदेव ।

ज्वार बढ़ाने को न ऊगता, किन्तु उदित होता स्वयमेव ॥३०॥

अन्वयार्थ : [न ककापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते] आपके किसी प्रकार की इच्छा नहीं है और वचन प्रवृत्त होने का [काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः] किसी काल में कोई नियोग होता है; [पूरयाम्यम्बुधिमित्युदंशुः] मैं समुद्र को लहरों से पूर्ण कर दूँ इसलिए [न शीतद्युतिरभ्युदेति] चन्द्रमा उदित नहीं होता [हि] किन्तु [स्वयं] स्वभाव से ही होता है ॥३०॥

गुणा गंभीराः परमाः प्रसन्नाः, बहु-प्रकारा बहवस्तवेति ।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवने न तेषाम्, गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥३१॥

हे प्रभु! तेरे गुण प्रसिद्ध हैं, परमोत्तम हैं, गहरे हैं ।

बहु प्रकार हैं, पार रहित हैं, निज स्वभाव में ठहरे हैं ॥

स्तुति करते-करते यों देखा, छोर गुणों का आखिर में ।

इनमें जो नहिं कहा रहा वह, और कौन गुण जाहिर में ॥३१॥

अन्वयार्थ : आप [गंभीराः] गंभीर हैं, [परमाः] उल्कृष्ट हैं, [प्रसन्नाः] उज्जवल हैं, [बहुप्रकारा बहवः स्तवने गुणा] और अनेक प्रकार के बहुत गुण हैं [इति अयम्] इस प्रकार [दृष्टः अन्तः स्तवने] स्तुति के द्वारा ही अन्त देखा गया है [न तेषां गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति] इसके सिवाय क्या गुणों का कहीं अन्त है ? ॥३१॥

स्तुत्या परंनाभिमतं हि भक्त्या, स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि ।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं, केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम् ॥३२॥

किन्तु न केवल स्तुति करने से, मिलता है निज अभिमत फल ।

इससे प्रभु को भक्तिभाव से, भजता हूँ प्रतिदिन प्रतिपल ॥

स्मृति करके सुमरन करता हूँ, पुनि विनम्र हो नमता हूँ ।

किसी यत्र से भी अभीष्ट-साधन की इच्छा रखता हूँ ॥३२॥

अन्वयार्थ : [स्तुत्या परंनाभिमतं हि] स्तुति के द्वारा ही इच्छित वस्तु की सिद्धि नहीं होती किन्तु [भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च] भक्ति, स्मृति और नमस्कार से भी होती है [ततो भजामि स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं] इसलिए हे देव, आपकी भक्ति, आपका स्मरण और आपको नमस्कार करता हूँ [केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम्] क्योंकि इच्छित फल को किसी भी उपाय से प्राप्त कर लेना चाहिए ॥३२॥

ततस्तिलोकी-नगराधिदेवं, नित्यं परं ज्योतिरनन्त-शक्तिम् ।
अपुण्य-पापं पर-पुण्य-हेतुं, नमाभ्यहं वन्द्यमवन्दितारम् ॥३३॥

इसीलिए शाश्वत तेजोमय, शक्ति अनन्तवन्त अभिराम ।
पुण्य पाप बिन, परम पुण्य के, कारण परमोत्तम गुणधाम ॥
वन्दनीय, पर जो न और की, करें वंदना कभी मुनीश ।
ऐसे त्रिभुवन-नगर-नाथ को, करता हूँ प्रणाम धर सीस ॥३३॥

अन्वयार्थ : [ततस्तिलोकी-नगराधिदेवं] अतः तीन-लोक रूप नगर के आधिपति, [नित्यं परं ज्योतिरनन्त-शक्तिम्] विनाश-रहित, उक्ष्य ज्ञान-ज्योति, अनन्त शक्तिमय, [अपुण्य-पापं पर-पुण्य-हेतुं] स्वयं पुण्य-पाप से रहित और दूसरों के पुण्य में कारण [नमाभ्यहं वन्द्यमवन्दितारम्] वन्दित होकर भी किसी को नहीं वन्दने वाले, आपको नमस्कार करता हूँ ॥३३॥

अशब्दमस्पर्शमरुप-गन्धं, त्वां नीरसं तद्विषयावबोधम् ।
सर्वस्य मातारममेयमन्यै-, जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥३४॥

जो नहिं स्वयं शब्द रस सपरस, अथवा रूप गंध कुछ भी ।
पर इन सब विषयों के ज्ञाता, जिन्हें केवली कहें सभी ॥
सब पदार्थ जो जानें पर न, जान सकता कोई जिनको ।
स्मरण में न आ सकते हैं जो, करता हूँ सुमरन उनको ॥३४॥

अन्वयार्थ : [अशब्दम्] शब्द-रहित [अस्पर्शम्] स्पर्श रहित [अरुप-गन्धं] रूप, गन्ध रहित और [त्वां नीरसं] रस-रहित होकर भी [तद्विषयावबोधम्] उनके ज्ञान से सहित [सर्वस्य मातारम्] सबके ज्ञाता होकर भी [अमेयमन्यैजिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि] जिन्हे नहीं जाना जा सकता, स्मरण किया जा सकता ऐसे जिनेन्द्र भगवान् का मैं प्रतिक्षण स्मरण करता हूँ, ध्यान करता हूँ ॥३४॥

अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघं, निष्किञ्चनम् प्रार्थितमर्थवन्दिः ।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं, पतिं जनानां शरणं ब्रजामि ॥३५॥

लंघ्य न औरों के मन से भी, और गूढ़ गहरे अतिशय ।
धनविहीन जो स्वयं किन्तु, जिनका करते धनवान विनय ॥
जो इस जग के पार गये पर, पाया जाय न जिनका पार ।
ऐसे जिनपति के चरणों की, लेता हूँ मैं शरण उदार ॥३५॥

अन्वयार्थ : [अगाधम्] गंभीर, [अन्यैर्मनसाप्यलंघं] दूसरों के द्वारा मन से भी उल्लंघन करने के अयोग्य (अचिन्त्य) [निष्किञ्चनं प्रार्थितमर्थवन्दिः] निर्धन होते हुए भी धनाद्यों द्वारा याचित् [विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं] विश्व के पार-स्वरूप, जिनका पार (अन्त) कोई नहीं देख सका [पतिं जनानां शरणं ब्रजामि] उन जिनेन्द्र-देव की मैं शरण को प्राप्त होता हूँ ॥३५॥

त्रैलोक्य-दीक्षा-गुरवे नमस्ते, यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत् ।
प्रागगण्डशैलः पुनरद्वि-कल्पः, पश्चात्र मेरुः कुल पर्वतोऽभूत् ॥३६॥

मेरु बड़ा सा पत्थर पहले, फिर छोटा सा शैलस्वरूप ।
और अन्त में हुआ न कुलगिरि, किन्तु सदा से उन्नत रूप ॥
इसी तरह जो वर्धमान है, किन्तु न क्रम से हुआ उदार ।
सहजोन्नत उस त्रिभुवन-गुरु को, नमस्कार है बारम्बार ॥३६॥

अन्वयार्थ : [त्रैलोक्य-दीक्षा-गुरवे नमस्ते] त्रिभुवन के जीवों के दीक्षागुरुस्वरूप, आपको नमस्कार हो [यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत्] आप क्रम से वर्धमान (उन्नत) नहीं हुए हैं, आप स्वभाव से उन्नत थे; [प्रागगण्डशैलः] पहले गोल पत्थरों का ढेर, [पुनरद्वि-कल्पः] फिर पहाड़ [पश्चात्र मेरुः कुल पर्वतोऽभूत्] फिर मेरु कुलाचल पर्वत नहीं हुआ (स्वभाव से ही विशाल था) ॥३६॥

स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा-, न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम् ।
न लाघवं गौरवमेकरूपं, वन्दे विभुं कालकलामतीतम् ॥३७॥

स्वयं प्रकाशमान जिस प्रभु को, रात दिवस नहिं रोक सका ।
लाघव गौरव भी नहिं जिसको, बाधक होकर टोक सका ॥
एक रूप जो रहे निरन्तर, काल-कला से सदा अतीत ।
भक्तिभार से झुककर उसकी, करूँ वंदना परम पुनीत ॥३७॥

अन्वयार्थ : [स्वयंप्रकाशस्य] स्वयं प्रकाशमान, [दिवा निशा वा] दिन और रात की तरह [न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम्] जिसके न बाध्यता है और न बाधकता है [न लाघवं गौरवमेकरूपं] न लघुता, न गुरुता, एक रूप रहने वाले [वन्दे विभुं कालकलामतीतम्] काल-कला (अन्त) से रहित परमेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्-वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि ।
छायातरुंसंश्रयतः स्वतः स्यात्-कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥३८॥

इस प्रकार गुणकीर्तन करके, दीन भाव से हे भगवान ।
वर न मांगता हूँ मैं कुछ भी, तुम्हें वीतरागी वर जान ॥
वृक्षतले जो जाता है, उस पर छाया होती स्वयमेव ।

छाँह-याचना करने से फिर, लाभ कौन सा है जिनदेव? ॥३८॥

अन्वयार्थ : [इति स्तुति देव विधाय] इस प्रकार स्तुति करके मैं, हे देव! [दैन्याद्वरं न याचे] वरदान नहीं मांगता क्योंकि [त्वमुपेक्षकोऽसि] आप उपेक्षक हैं। [छायातरुंसंश्रयतः स्वतः स्यात्] वृक्ष का आश्रय करने वाले को छाया स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। [कश्छायया याचितयात्मलाभ] छाया की याचना से क्या लाभ है? ॥३८॥

अस्थास्ति दित्सा यदि वोपरोध-, स्त्वयेव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिम् ।
करिष्यते देव तथा कृपां मे-, को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥३९॥

यदि देने की इच्छा ही हो, या इसका कुछ आग्रह हो ।
तो निज चरन-कमल-रत निर्मल, बुद्धि दीजिए नाथ अहो ॥
अथवा कृपा करोगे ही प्रभु, शंका इस में जरा नहीं ।
अपने प्रिय सेवक पर करते, कौन सुधी जन दया नहीं ॥३९॥

अन्वयार्थ : [अस्थास्ति दित्सा यदि वा] यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो [वा उपरोधः] अथवा वर मांगो, ऐसा आग्रह है तो [त्वयि एवं सक्तां] आपमें लीन। [दिश भक्ति-बुद्धिम्] भक्तिमयी बुद्धि प्रदान हो, [करिष्यते देव तथा कृपा मे] हे देव! आप ऐसी कृपा करिये [को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः] अपने प्रिय सेवक पर कौन पंडित-पुरुष अनुकूल नहीं होता? ॥३९॥

वितरति विहिता यथाकथञ्जिज्-, जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः ।
त्वयि नुति-विषया पुनर्विशेषाद्-, दिशति सुखानि यशो 'धनंजयं' च ॥४०॥

यथाशक्ति थोड़ी सी भी, की हुई भक्ति श्रीजिनवर की ।
भक्तजनों को मनचाही, सामग्री देती जगभर की ॥
इससे गूंथी गई स्तवन में, यह विशेषता से रुचिकर ।

'प्रेमी' देगी सौख्य सुयश को, तथा 'धनंजय' को शुचितर ॥४०॥

अन्वयार्थ : [यथाकथञ्जिज्ञन] जिस तरह थोड़ी भी [विहिता] की गई [भक्तिः] भक्ति [विनताय मनीषितानि] नम्र मनुष्य को इच्छित वस्तु [वितरति] देती है। [पुनः] फिर [त्वयि नुति-विषया] आपके विषय में की गई स्तुति / भक्ति तो [विशेषाद्] विशेष रूप से [सुखानि यशो 'धनंजयं' च] सुख, कीर्ति, धन-संपत्ति और जय [दिशति] देती है ॥४०॥



विषापहारस्तोत्र



रचयिता 'महाकवि धनञ्जय'

हिन्दी रूपांतरण कविश्री शांतिदास

दोहा

नमौं नाभिनंदन बली, तत्त्व-प्रकाशनहार
चतुर्थकाल की आदि में, भये प्रथम-अवतार ॥

निज-आतम में लीन ज्ञानकरि व्यापत सारे
जानत सब व्यापार संग नहिं कछु तिहारे
बहुत काल के हो पुनि जरा न देह तिहारी
ऐसे पुरुष पुरान करहु रक्षा जु हमारी ॥१॥

पर करि के जु अचिंत्य भार जग को अति भारो
सो एकाकी भयो वृषभ कीनों निसतारो
करि न सके जोगिंद्र स्तवन मैं करिहों ताको
भानु प्रकाश न करै दीप तम हरै गुफा को ॥२॥

स्तवन करन को गर्व तज्यो सक्री बहुज्ञानी
मैं नहिं तजौं कदापि स्वल्प ज्ञानी शुभध्यानी
अधिक अर्थ का कहूँ यथाविधि बैठि झरोके
जालांतर धरि अक्ष भूमिधर को जु विलोके ॥३॥

सकल जगत् को देखत अर सबके तुम ज्ञायक
तुमको देखत नाहिं नाहिं जानत सुखदायक
हो किसाक तुम नाथ और कितनाक बखानें
तातें थुति नहिं बने असक्ती भये सयाने ॥४॥

बालकवत निज दोष थकी इहलोक दुःखी अति
रोगरहित तुम कियो कृपाकरि देव भुवनपति
हित अनहित की समझ नाहिं हैं मंदमती हम
सब प्राणिन के हेत नाथ तुम बाल-वैद सम ॥५॥

दाता हरता नाहिं भानु सबको बहकावत
आज-कल के छल करि नितप्रति दिवस गुमावत
हे अच्युत! जो भक्त नमें तुम चरन कमल को
छिनक एक में आप देत मनवाँछित फल को ॥६॥

तुम सों सन्मुख रहै भक्ति सों सो सुख पावे

जो सुभावतें विमुख आपते दुःखहि बढ़ावै
सदा नाथ अवदात एक दयुतिरूप गुसाँई
इन दोन्यों के हेत स्वच्छ दरपणवत् झाँई ॥७॥

है अगाध जलनिधी समुद्र जल है जितनो ही
मेरु तुंग सुभाव सिखरलों उच्च भन्यो ही
वसुधा अर सुरलोक एहु इस भाँति सई है
तेरी प्रभुता देव भुवन कूं लंघि गई है ॥८॥

है अनवस्था धर्म परम सो तत्त्व तुमारे
कह्यो न आवागमन प्रभू मत माँहिं तिहारे
इष्ट पदारथ छाँडि आप इच्छति अदृष्ट कौं
विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सृष्ट कौं ॥९॥

कामदेव को किया भस्म जगत्राता थे ही
लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही
सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हार्यो
तुम को काम न गहे आप घट सदा उजार्यो ॥१०

पापवान वा पुन्यवान सो देव बतावे
तिनके औगुन कहे नाहिं तू गुणी कहावे
निज सुभावतैं अंबु-राशि निज महिमा पावे
स्तोक सरोवर कहे कहा उपमा बढ़ि जावे ॥११॥

कर्मन की थिति जंतु अनेक करै दुःखकारी
सो थिति बहु परकार करै जीवनकी ख्वारी
भवसमुद्र के माँहिं देव दोन्यों के साखी
नाविक नाव समान आप वाणी में भाखी ॥१२॥

सुख को तो दुःख कहे गुणनिकूं दोष विचारे
धर्म करन के हेत पाप हिरदे विच धारे

तेल निकासन काज धूलि को पेलै घानी
तेरे मत सों बाह्य ऐसे ही जीव अज्ञानी ॥१३॥

विष मोचै ततकाल रोग को हरै ततच्छन
मणि औषधी रसांण मंत्र जो होय सुलच्छन
ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यों मन धरिहैं
भ्रमत अपरजन वृथा नहीं तुम सुमिरन करिहैं ॥१४॥

किंचित् भी चितमाँहि आप कछु करो न स्वामी
जे राखे चितमाँहिं आपको शुभ-परिणामी
हस्तामलकवत् लखें जगत् की परिणति जेती
तेरे चित के बाह्य तोउ जीवै सुख सेती ॥१५॥

तीन लोक तिरकाल माहिं तुम जानत सारी
स्वामी इनकी संख्या थी तितनी हि निहारी
जो लोकादिक हुते अनंते साहिब मेरा
तेऽपि झलकते आनि ज्ञान का ओर न तेरा ॥१६॥

है अगम्य तव रूप करे सुरपति प्रभु सेवा
ना कछु तुम उपकार हेत देवन के देवा
भक्ति तिहारी नाथ इंद्र के तोषित मन को
ज्यों रवि सन्मुख छत्र करे छाया निज तन को ॥१७॥

वीतरागता कहाँ कहाँ उपदेश सुखाकर
सो इच्छा प्रतिकूल वचन किम होय जिनेसर
प्रतिकूली भी वचन जगत् कूँ प्यारे अति ही
हम कछु जानी नाहिं तिहारी सत्यासति ही ॥१८॥

उच्च प्रकृति तुम नाथ संग किंचित् न धरनितैं
जो प्रापति तुम थकी नाहिं सो धनेसुरनतैं
उच्च प्रकृति जल विना भूमिधर धूनी प्रकासै

जलधि नीरतैं भर्यो नदी ना एक निकासै ॥१९॥

तीन लोक के जीव करो जिनवर की सेवा
नियम थकी कर दंड धर्यो देवन के देवा
प्रातिहार्य तो बनै इंद्र के बनै न तेरे
अथवा तेरे बनै तिहारे निमित परे रे ॥२०॥

तेरे सेवक नाहिं इसे जे पुरुष हीन-धन
धनवानों की ओर लखत वे नाहिं लखत पन
जैसैं तम-थिति किये लखत परकास-थिती कूँ
तैसैं सूझत नाहिं तमथिती मंदमती कूँ ॥२१॥

निज वृध श्वासोच्छ्वास प्रगट लोचन टमकारा
तिनकों वेदत नाहिं लोकजन मूढ़ विचारा
सकल ज्ञेय ज्ञायक जु अमूरति ज्ञान सुलच्छन
सो किमि जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन ॥२२॥

नाभिराय के पुत्र पिता प्रभु भरत तने हैं
कुलप्रकाशि कैं नाथ तिहारो स्तवन भनै हैं
ते लघु-धी असमान गुनन कों नाहिं भजै हैं
सुवरन आयो हाथ जानि पाषान तजै हैं ॥२३॥

सुरासुरन को जीति मोह ने ढोल बजाया
तीन लोक में किये सकल वशि यों गरभाया
तुम अनंत बलवंत नाहिं ढिंग आवन पाया
करि विरोध तुम थकी मूलतैं नाश कराया ॥२४॥

एक मुक्ति का मार्ग देव तुमने परकास्या
गहन चतुरगति मार्ग अन्य देवन कूँ भास्या
'हम सब देखनहार' इसीविधि भाव सुमिरिकैं
भुज न विलोको नाथ कदाचित् गर्भ जु धरिकैं ॥२५॥

केतु विपक्षी अर्क-तनो पुनि अग्नि तनो जल
अंबुनिधी अरि प्रलय-काल को पवन महाबल
जगत्-माँहिं जे भोग वियोग विपक्षी हैं निति
तेरो उदयो है विपक्ष तैं रहित जगत्-पति ॥२६॥

जाने बिन हूँ नमत आप को जो फल पावे
नमत अन्य को देव जानि सो हाथ न आवे
हरी मणी कूँ काच काच कूँ मणी रटत हैं
ताकी बुधि में भूल मूल्य मणि को न घटत है ॥२७॥

जे विवहारी जीव वचन में कुशल सयाने
ते कषाय-मधि-दग्ध नरन कों देव बखानैं
ज्यों दीपक बुझि जाय ताहि कह 'नंदि' गयो है
भग्न घड़े को कहैं कलस ए मँगलि गयो है ॥२८॥

स्याद्वाद संजुक्त अर्थ को प्रगट बखानत
हितकारी तुम वचन श्रवन करि को नहिं जानत
दोषरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जग-गुरु
जो ज्वर-सेती मुक्त भयो सो कहत सरल सुर ॥२९॥

बिन वांछा ए वचन आपके खिरैं कदाचित्
है नियोग ए कोऽपि जगत् को करत सहज-हित
करै न वाँछा इसी चंद्रमा पूरो जलनिधि
शीत रश्मि कूँ पाय उदधि जल बढै स्वयं सिधि ॥३०॥

तेरे गुण-गंभीर परम पावन जगमाँहीं
बहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न पाहीं
तिन गुण को अंत एक याही विधि दीसै
ते गुण तुझ ही माँहिं और में नाहिं जगीसै ॥३१॥

केवल थुति ही नाहिं भक्तिपूर्वक हम ध्यावत
सुमिरन प्रणमन तथा भजनकर तुम गुण गावत
चितवन पूजन ध्यान नमन करि नित आराधैं
को उपाव करि देव सिद्धि-फल को हम साधैं ॥३२॥

त्रैलोकी-नगराधिदेव नित ज्ञान-प्रकाशी
परम-ज्योति परमात्म-शक्ति अनंती भासी
पुन्य पापतैं रहित पुन्य के कारण स्वामी
नमौं नमौं जगवंद्य अवंद्यक नाथ अकामी ॥३३॥

रस सुपरस अर गंध रूप नहिं शब्द तिहारे
इनि के विषय विचित्र भेद सब जाननहारे
सब जीवन-प्रतिपाल अन्य करि हैं अगम्य जिन
सुमरन-गोचर माहिं करौं जिन तेरो सुमिरन ॥३४॥

तुम अगाध जिनदेव चित्त के गोचर नाहीं
निःकिंचन भी प्रभू धनेश्वर जाचत सोई
भये विश्व के पार दृष्टि सों पार न पावै
जिनपति एम निहारि संत-जन सरनै आवै ॥३५॥

नमौं नमौं जिनदेव जगत्-गुरु शिक्षादायक
निजगुण-सेती भई उन्नती महिमा-लायक
पाहन-खंड पहार पछैं ज्यों होत और गिर
त्यों कुलपर्वत नाहिं सनातन दीर्घ भूमिधर ॥३६॥

स्वयंप्रकाशी देव रैन दिनसों नहिं बाधित
दिवस रात्रि भी छतैं आपकी प्रभा प्रकाशित
लाघव गौरव नाहिं एक-सो रूप तिहारो
काल-कला तैं रहित प्रभू सूँ नमन हमारो ॥३७॥

इहविधि बहु परकार देव तव भक्ति करी हम

जाचूँ कर न कदापि दीन है रागरहित तुम
 छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे है है
 फिर छाया कों जाचत यामें प्रापति कै है ॥३८॥

जो कुछ इच्छा होय देन की तौ उपगारी
 घो बुधि ऐसी करूँ प्रीतिसौं भक्ति तिहारी
 करो कृपा जिनदेव हमारे परि है तोषित
 सनमुख अपनो जानि कौन पंडित नहिं पोषित ॥३९॥

यथा-कथंचित् भक्ति रचै विनयी-जन केर्झ
 तिनकूँ श्रीजिनदेव मनोवाँछित फल देही
 पुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावै
 सो सुख जस 'धन-जय' प्रापति है शिवपद पावै ॥४०॥

श्रावक 'माणिकचंद' सुबुद्धी अर्थ बताया
 सो कवि 'शांतीदास' सुगम करि छंद बनाया
 फिरि-फिरि के ऋषि-रूपचंद ने करी प्रेरणा
 भाषा-स्तोतर की विषापहार पढ़ो भविजना ॥४१॥



अकलंक-स्तोत्र

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोक-मालोकितम्,
 साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं साङ्गुलि ।
 रागद्वेषभया-मयान्तकजरालोलत्व-लोभादयो,
 नालं यत्पद-लंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥१॥

अन्वयार्थ : [येन] जिसने [सांगुलि] अंगुलियों के साथ, [स्वयं करतले] अपने हाथ की हथेली में रहने वाली, [रेखात्रयं] तीनों रेखाओं के [यथा] समान [सालोकम्] अलोकाकाश के साथ [सकलं] समस्त [त्रिकालविषयं] त्रिकालवर्ती [त्रैलोक्यं] तीनों लोकों को [साक्षात्] प्रत्यक्षरूप से [आलोकितम्] देख लिया और जान लिया है और [यत्पदलंघनाय] जिसके पद को उल्लंघन करने के लिए [रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयः] राग-द्वेष, भय, रोग, बुद्धापा, चञ्चलता, लोभ, मोह आदि कोई भी [अलं] समर्थ [न] नहीं [अस्ति] है [स] वहीं [महादेवः] महादेव [मया] मेरे द्वारा [वन्द्यते] वन्दना किया जाता है।

दग्धं येन पुरत्रयं शरभुवा तीव्रार्चिषा वह्निना,
 यो वा नृत्यति मत्तवत् पितृवने यस्यात्मजो वा गुहः ।



सोऽयं किं मम शंकरो भयतृषारोषार्तिमोह-क्षयं, कृत्वा यः स तु सर्ववित्तनुभृतां क्षेमंकरः शंकरः ॥२॥

अन्वयार्थ : [येन] जिसने [शरभूवा] कामरूप बाणों से उत्पन्न हुई [तीव्रार्चिषा] भयंकर ज्वालाओं वाली [वहिना] अग्नि के द्वारा [पुरत्रयं] तीनों नगरों में [दग्धं] जलाया [वा] और [यः] जो [पितृवने] श्मशान में [मत्तवत्] उन्मत्त पुरुष के समान [नृत्यति] नृत्य करता है [वा] और [यस्य] जिसका [आत्मजः] पुत्र [गुहः] गुह [अस्ति] है [किं] क्या [सः] वह [अयम्] यह [मम] मेरा [शंकरः] शंकर [स्यात्] हो सकता है ? [तु] किन्तु [यः] जो [भयतृषारोषार्तिमोहक्षयं] भय, तृष्णा, रोष, क्रोध सम्बंधी पीड़ा और मोह को विनाश करके [सर्ववित्] सर्वज्ञता को प्राप्त कर चुका है, [तनुभृतां क्षेमंकरः सः शंकरः] वही समस्त प्राणीमात्र का कल्याण कर्ता शान्ति विधाता ही शंकर हो सकता है, अन्य नहीं ।

**यत्नाद्येन विदारितं कररुहैः दैत्येन्द्रवक्षःस्थलं,
सारथ्येन-धनञ्जयस्य समरे यो मारयत्कौरवान् ।
नासौ विष्णुरनेककालविषयं यज्ञानमव्याहतं,
विश्वं व्याप्य विजृम्भते स तु महाविष्णुः सदेष्टो मम ॥३॥**

अन्वयार्थ : [येन] जिसने [यत्नात्] बड़े प्रयत्न से [कररुहैः] नाखूनों के द्वारा [दैत्येन्द्रवक्षःस्थलम्] दैत्यराज (हिरण्यकश्यप) के वक्षःस्थल-सीने को [विदारितम्] छिन्न-भिन्न किया और [यः] जिसने [समरे] युद्ध में [धनञ्जयस्य] अर्जुन का [सारथ्येन] सारथी होकर [कौरवान्] कौरवों को [अमारयत्] मरवाया [असौ] वह [विष्णुः] विष्णु [न] नहीं [भवेत्] हो सकता है किन्तु [यज्ञानं] जिसका ज्ञान [अव्याहतं] निरावरण [त्रिकालविषयं] तीनों कालों के समस्त पदार्थों को जानने वाला है [विश्वं] समस्त जगत्त्वय को [व्याप्य] व्याप्त करके [विजृम्भते] वृद्धि को प्राप्त होता है, [सः] वही [महाविष्णुः] महाविष्णु [सदा] सर्वदा-हमेशा [मम] मेरे [इष्टः] इष्ट (मात्य) हैं ।

**उर्वश्या-मुदपादिरागबहुलं चेतो यदीयं पुनः,
पात्रीदण्डकमण्डलु-प्रभृतयो यस्याकृतार्थस्थितिं ।
आविर्भावयितुं भवन्ति सकथं ब्रह्माभवेन्मादशां,
क्षुत्तर्णाश्रमरागरोगरहितो ब्रह्माकृतार्थोऽस्तु नः ॥४॥**

अन्वयार्थ : [यदीयं] जिसके [चेतः] चित्त ने [उर्वश्याम्] उर्वशी नाम की देवांगना में [रागबहुलम्] राग की अधिकता को (कामवासना को) [उपपादि] उत्पन्न किया [पुनः] और [पात्रीदण्डकमण्डलुप्रभृतयः] पात्र, दण्ड, कमण्डलु आदि बाह्य परिग्रहरूप पदार्थ [यस्य] जिसकी [अकृतार्थस्थितिम्] अंतरंग परिग्रह की दशा को [आविर्भावयितुं] प्रकट करने में [भवन्ति] समर्थ हैं, [सः] वह [मादशां] मुझ जैसों का [ब्रह्मा] ब्रह्मा [कथं] कैसे [भवेत्] हो सकता है ? किन्तु [क्षुत्तर्णाश्रमरागरोगरहितः] भूख, प्यास, थकावट, राग व्याधि आदि समस्त दोषों से रहित [कृतार्थ] कृतकृत्य (सब कुछ कर चुका अब जिसे कछ भी करना शेष नहीं रहा) [सः] वही [नः] हमारा [ब्रह्मा] ब्रह्मा [भवेत्] हो सकता [अस्तु] है ।

**यो जग्ध्वा पिसितं समत्यकवलम् जीवं च शून्यं वदन्,
कर्ता कर्मफलं न भुक्तं इति यो वक्ता सबुद्धः कथम् ।
यज्ञानं क्षणवर्तिवस्तुसकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा,
यो जानन्-युगपञ्जगत्त्वयमिदं साक्षात् स बुद्धो मम ॥५॥**

अन्वयार्थ : [यः] जो [समत्यकवलं] मगरमच्छों के ग्रासवाले [पिशितं] मांस को [जग्ध्वा] खाता है [च] और [यः] जो [जीवं] जीव को [शून्यं] शून्यं [वदन्] कहता है। [च] और [यः] जो [कर्ता] कर्म करने वाला [कर्मफलं] कर्मों के फल को [ना] नहीं [भुक्तं] भोगता है [इति] ऐसा [यः] जो [वक्ता] कहता है, और [यज्ञानम्] जिसका ज्ञान [क्षणवर्ति] क्षणिक है अतएव [सकलं वस्तु] समस्त पदार्थसमूह को [ज्ञातुम्] जानने के लिए [क्षणतम्] समर्थ [ना] नहीं है, [सः] वह [बुद्धः] बुद्ध [कथं] कैसे [भवेत्] हो सकता है ? किन्तु [यः] जो [सदा] निरन्तर [युगपत्] एक साथ [इदं] इस [जगत्त्वयः] तीन जगत् को [साक्षात्] प्रत्यक्ष [जानन्] जानता है [सः] वह [मम] मेरा [बुद्धः] बुद्ध है (मेरे द्वारा पूज्य है, मात्य है, उपास्य है) ।

**ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात्,
नाथ किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च ।
आद्राजिः किन्त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं,
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥६॥**

अन्वयार्थ : यदि महादेव [ईशः] ईश है, स्वामी है या परमेश्वर है तो [छिन्नलिंगः] छिन्नलिंग वाला [किं] क्यों है [यदि] यदि [सः] वह [विगतभयः] भयरहित [अस्ति] है [तर्हि] तो [शूलपाणिः] त्रिशूल है हाथ में जिसके अर्थात् त्रिशूलधारी [कथं] कैसे [स्यात्] हो सकता है। यदि वह [नाथः] नाथ है, स्वामी है, [तर्हि] तो [भैक्ष्यचारी] भिक्षाभोजी [किं] क्यों [अस्ति] है [सः] वह [यति] साधु या मुनि [अस्ति] है [तर्हि] तो [सः] वह [सांगनः] अंगना सहित (अर्धांग में स्त्री को धारण करने वाला) [कथं] कैसे

[स्यात्] हो सकता है। यदि [सः] वह [आद्राजः] आद्रा से उत्पन्न हुआ है (आद्र का पुत्र) [तर्हि] तो [अजन्मा] जन्मरहित (जन्म नहीं लेनेवाला) [किं] कैसे [अस्ति] है, यदि [सः] वही [सकलवित्] सर्वज्ञ (सभी पदार्थों को जानेवाला) है [तर्हि] तो [आत्मान्तरायम्] अपनी आत्मा की भीतरी दशा को [किं] क्यों [न] नहीं [वेत्ति] जानता। [संक्षेपात्] संक्षेप रूप से [सम्यक्] भली प्रकार [उक्तम्] कहे गए, [पशुपतिम्] पशुपति की [कः] कौन [धीमान्] बुद्धिमान (सत् और असत्, सच्चे और झूठे को समझने की बुद्धि रखने वाला) [अपशुः] मनुष्य, [अत्र] इस संसार में [उपास्ते] उपासना (आराधना या पूजा) करेगा?

**ब्रह्मा चर्मक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेशविभ्रांतचेताः,
शम्भुः खट्टांगधारी गिरिपतितनया-पांगलीलानुविद्धः ।
विष्णुश्वक्राधियः सन् दुहितरमगमद् गोपनाथस्य मोहार्दर्हन् ।
विध्वस्त-रागोजितसकलभयः कोऽयमेष्वाप्तनाथः ॥७॥**

अन्वयार्थ : [ब्रह्मा] ब्रह्मा [चर्मक्षसूत्री] चमड़ा और अक्षमाला को रखते हैं और साथ ही [सुरयुवतिरसावेशविभ्रांतचेताः] उसका वित्त देवांगना के प्रेम से विपरीत है, [शंकरः] महादेव या शंकर [जटाधारी] चारपाई पर सोने वाले और [गिरिपतितनयापांगलीलानुविद्ध] हिमालय की पुत्री पार्वती को प्रेम भरी टेढ़ी नजरों से परिपीड़ित हैं। [विष्णुः] विष्णु [चक्राधिपः] सुदर्शनचक्र रत्न के स्वामी [सन्] होते हुए भी [गोपनाथस्य] ग्वालों के राजा की [दुरहितम्] पुत्री की [अगमत्] सेवन करने वाले हुए [अर्थात्] श्री कृष्ण भी परस्ती में आसकत हैं। इन सब में [विध्वस्तरागः] राग का विनाश करने वाला (पूर्ण वीतरागी) [जितसकलभयः] और समस्त प्रकार से भय को जीतनेवाला [अयम्] यह [आप्तनाथः] सर्वज्ञ हितोपदेशी तीनलोक का स्वामी [अर्हन्] अरिहन्त परमेष्ठी (आत्मा के अनुजीवी गुणों का घात करने वाले चारों घातिया कर्मों को जीतनेवाले) [कः] कौन [अस्ति] हैं?

**एको नृत्यति विप्रसार्य ककुभां चक्रे सहस्रं,
भुजानेकः शेषभुजंगभोगशयने व्यादाय निद्रायते ।
द्रष्टुं चारुतिलोत्तमामुखमगादेकश्चतुर्वक्ततामेते,
मुक्तिपथं वदन्ति विदुषामित्येतदत्यद्भुतम् ॥८॥**

अन्वयार्थ : [एकः] शिव जी [सहस्रम्] हजार [भुजान्] भुजाओं को [विप्रसार्य] फैला कर [ककुभां] दिशाओं के [चक्रे] मंडल में [नृत्यति] नृत्य करते हैं। [एकः] श्री विष्णु जी [शेषभुजंगभोगशयने] शेषनाग के शरीररूप शश्या पर [व्यादाय] मुख को खोल कर [निद्रायते] सोते हैं। [एकः] ब्रह्मा जी [चारुतिलोत्तमामुखं] सुन्दर तिलोत्तमा नामक देवाप्सरा के मनोहर मुख को [द्रष्टुं] देखने के लिए [चतुर्वक्ततां] चार मुखपना को [अगात्] प्राप्त हुए (चार मुख वाले बने)। [ऐते] ये तीनों शंकर, विष्णु, ब्रह्मा [विदुषाम्] विद्वानों को [मुक्तिपथम्] मोक्षमार्ग को [वदन्ति] कहते हैं (उन्हें मोक्षमार्ग का उपदेश करते हैं)। [इति एतत्] यह [अत्यद्भुतम्] बड़े आश्वर्य की बात है।

**यो विश्वं वेदवेद्यं जननजलनिधे-भृगिनः पारदृश्वा,
पौर्वपर्य-विरुद्धं वचन-मनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तं,
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥९॥**

अन्वयार्थ : [यः] जो [वेद्यम्] जानने योग्य [विश्वं] जगत् को [वेदा] जानता है और जो [भृगिनः] नाना प्रकार के शोक, भय, पीड़ा, चिन्ता, आरति, खेद आदि रूप तरंगों वाले [जननजलनिधे:] संसाररूप समुद्र के [पारदृश्वा] पार को देख चुका है, और [यदीयं] जिसका [पौर्वपर्यविरुद्धं] पूर्वापर विरोध रहित [निष्कलंकम्] निर्दोष [अनुपमम्] उपमा रहित [वचनं] वचन [अस्ति] है [ध्वस्तदोष-द्विषन्तम्] रागादि दोष-रूपी शत्रु के नाशक [सकलगुणनिधिम्]। समस्त गुणों के प्रकाशक [साधुवन्द्यम्] बड़े-बड़े मुनीश्वर द्वारा [वन्द्य] वन्दनीय [तम्] उस महान् परमात्मा की [अहम्] मैं [वन्दे] वन्दना करता हूँ, नमस्कार और स्तुति करता हूँ चाहे वह [बुद्धं] बुद्ध [वा] अथवा [वर्द्धमानं] वर्द्धमान, [शतदलनिलयं] ब्रह्मा, [केशवं] विष्णु [वा] अथवा [शिवं] महादेव कोई भी हो।

**माया नास्ति जटाकपाल-मुकुटं चन्द्रो न मूर्द्धावली,
खट्टांगं च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं मुखं ।
कामो यस्य न कामिनी न च वषो गीतं न नृत्यं पुनः,
सोऽस्मान् पातु निरञ्जनो जिनपतिः सर्वत्रसूक्ष्मः शिवः ॥१०॥**

अन्वयार्थ : [यस्य] जिसके [माया] नाना प्रकार के रूप स्वांग बनाना [न] नहीं [अस्ति] है जटा [कपालमुकुटम्] कपाल-मुकुट [न अस्ति] नहीं है [चन्द्रः] चन्द्रमा [मूर्द्धावली] मूर्द्धावली [न अस्ति] नहीं है; [खट्टांगम्] खट्टांग (भैरव के हाथ का एक अस्त्र) [न अस्ति] नहीं है [वासुकिः] सर्प [न अस्ति] नहीं है [च] और [धनुः धनुषः [न अस्ति]] नहीं है [शूलं] त्रिशूल [न अस्ति] नहीं है [उग्रम्] भयकर क्रोध के कारण भयावना [मुखम्] मुख [न अस्ति] नहीं है [कामः] काम [न अस्ति] नहीं है [च] और [यस्य] जिसके [कामिनी] न अस्ति स्ती नहीं है [च] और [वृष न अस्ति] बैल नहीं है [गीतं न अस्ति] गीत-गाना नहीं है। [नृत्यं न अस्ति] नाचना नहीं है, [सः] वही [निरञ्जनः] कर्ममल रहित [सूक्ष्मः] सूक्ष्म [शिव] शिव [जिनपतिः] जिनेन्द्रदेव [सर्वत्र] सर्व जगह तीनों लोकों में [अस्मान्] हम सबकी [पात्रु] रक्षा करें।

नो ब्रह्मांकितभूतलं न च हरे शम्भोर्न मुद्रांकितं,
 नो चन्द्रार्ककरांकितं सुरपतेर्वज्रांकितं नैव च ।
 षड्वक्तांकितबौद्धदेवहुतभुग्यक्षोरगैर्नांकितं,
 नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितम् ॥११॥

अन्वयार्थ : [वादिनः] (हे ईश्वर के स्वरूप में) विवाद करने वाले वाले महानुभाव! [इदं] इस [जगत्] संसार को [नग्न] दिगम्बर [जैनेन्द्रमुद्रांकितं] (वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी) श्री जिनेन्द्रदेव की मुद्रा से युक्त [पश्यत] देखो [ब्रह्मांकितभूतलं] ब्रह्मा से व्याप्त भूमिवाला [नो] नहीं [पश्यत] देखो [च] और [हरे:] श्रीकृष्ण की [मुद्रांकितं] मुद्रा से व्याप्त [न] नहीं [पश्यति] देखो [शम्भोः] महादेव की [मुद्रांकितं] न पश्यत] मुद्रा से व्याप्त नहीं देखो [चन्द्रार्ककरांकितं] चन्द्रमा और सूर्य की किरणों से व्याप्त [नो] नहीं [पश्यत] देखो [च] और [षड्वक्तांकितबौद्धदेवहुतभुग्यक्षोरगैः] गणेश, बौद्ध, देव, अग्नि, यक्ष और शेषनाग से व्याप्त [नो] पश्यत] नहीं देखो ।

मौञ्जी-दण्ड-कमण्डलुप्रभृतयो नो लाज्जनं ब्रह्मणो,
 रुद्रस्यापि जटाकपालमुकुटं कौपीन-खट्टांगना ।
 विष्णोश्वक्र-गदादि-शंखमतुलं बुद्धस्य रक्ताम्बरं,
 नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितम् ॥१२॥

अन्वयार्थ : [मौञ्जी दण्डकमण्डलुप्रभृतयः] मूँज की बनी हुई रस्सी [कमरबन्ध] दण्ड कमण्डलु, जलपात्र आदि पदार्थ, [ब्रह्मणः कौपीनखट्टांगना] लँगोटी खट्टा-अस्त्र विशेष हथियार, अंगना-स्त्री पार्वती [रुद्रस्य] महादेव के [लाज्जनं] चिन्ह, परिचायक, निशान [नो अस्ति] नहीं है [अतुलं] तुलना-उपमा रहित [चक्रगदादिशंखम्] सुदर्शन-चक्र, गदा और शंख आदि [विष्णोः] विष्णु के [लाञ्छनं] चिन्ह [नः अस्ति] नहीं हैं [रक्ताम्बरं] लाल वस्त्र धारण करना [बुद्धस्य] बुद्ध [लाज्जनम्] चिन्ह [नः अस्ति] नहीं है। किन्तु [जैनेन्द्रमुद्रांकितं] श्री जिनेन्द्रदेव की परमशान्त मुद्रा से चिह्नित [नग्नं] दिगम्बर अवस्था ही (ब्रह्मा, विष्णु, महेश और बुद्ध का) यथार्थ चिन्ह है। अतएव [वादिनः] हे वादियों! आप लोग [इदम्] इस जगत् को (उसी जैनेन्द्र मुद्रा से व्याप्त या चिह्नित) [पश्यत] देखो (अन्य मुद्रा से चिह्नित नहीं) ।

नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणे-केवलम्,
 नैरात्य्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुद्धया मया ।
 राजः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनः,
 बौद्धोघान्सकलान् विजित्यसघटः पादेन विस्फालितः ॥१३॥

अन्वयार्थ : [मया] मुझ अकलंक ने [अहंकारवशीकृतेन] मान के वश में किए गए [मनसा] मन से [ना] नहीं [द्वेषिणा] द्वेष से भरे हुए [मनसा] मन से भी [ना] नहीं, किन्तु [नैरात्य्यम्] आत्मा के शून्यत्व को [प्रतिपद्य] जानकर-स्वीकार करके [जने] मनुष्यों के [नश्यति] मोक्षमार्ग से भ्रष्ट होने पर [कारुण्यबुद्धया] करुणामय बुद्धि से ही [राजः] राजा [श्रीहिमशीतलस्य] हिमशीतल की [सदसि] सभा में [विदग्धात्मनः] मूढ़ अज्ञानी-मोहन्यकार से अन्य [सकलान्] सभी [बौद्धोघान्] बुद्धभक्तों के समुदाय को अर्थात् जिन्हें विद्वत्ता का अभिमान था, जो अपने को अजेय मानते थे, उन सबको [विजित्य] जीत करके [सः] उस [घटः] घड़े को [पादेन] पैर से [विस्फालितः] फोड़ दिया ।

खट्टांगं नैव हस्ते न च हृदि रचिता लम्बते मुण्डमाला,
 भस्मांगं नैव शूलं न च गिरिदुहिता नैव हस्ते कपालं ।
 चन्द्रार्द्धं नैव मूर्धन्यपि वृषगमनं नैव कण्ठे फणीन्द्रः,
 तं वन्दे त्यक्तदोषं भवभयमथनं चेश्वरं देवदेवम् ॥१४॥

अन्वयार्थ : [यस्य] जिसके [हस्ते] हाथ में [खट्टांगं] खट्टांग अस्त्र विशेष-हथियार [न अस्ति] नहीं है [च] और [यस्य] जिसके [हृदि] वक्षस्थल पर [रचिता] गुंथी हुई [मुण्डमाला] मुण्डमाला [न] नहीं [लम्बते] लटक रही है। [यस्य] जिसके [भस्मांगम्] शरीर में राख नहीं है, [च] और [शूलं] शूल या त्रिशूल [न अस्ति] नहीं है। [गिरिदुहिता] हिमालय की पुत्री पार्वती [न अस्ति] नहीं है [हस्ते] हाथ में [कपालं] कपाल नर खोपड़ी [न अस्ति] नहीं है [यस्य] जिसके [मूर्धनि] मस्तक पर [चन्द्रार्द्धम्] अर्धचन्द्र [न अस्ति] नहीं है [अणि] और [वृषगमनं] बैल पर सवारी [न अस्ति] नहीं है [कण्ठे] गले में [फणीन्द्रः नैव अस्ति] सर्प भी नहीं है। ऐसे [तम्] उस [देवदेवम्] देवाधिदेव श्री अर्हतदेव को [अहं] मैं [वन्दे] वंदना या नमस्कार करता हूँ। [यः] जो [त्यक्तदोषं] राग-द्वेष, मोह आदि समस्त दोषों से रहित है [भवभयमथनं] संसार के भय का विनाशक है [ईश्वरम्] तीन लोक का एकमात्र अधीश्वर है ।

कि वाद्योभगवान् मेयमहिमा देवोऽकलंकः कलौ,
 काले यो जनतासुधर्मनिहितो देवोऽकलंको जिनः ।

यस्य स्फारविवेकमुद्रलहरी जाले प्रमेयाकुला, निर्मग्ना तनुतेतरां भगवती ताराशिरः कम्पनम् ॥१५॥

अन्वयार्थ : [यस्य] जिस [भगवान्] भट्टाकलंकदेव के [स्फारविवेकमुद्रलहरी जाले] विशाल ज्ञानरूप समुद्र की तरणों के समूह में [निर्मग्ना] दूबी हुई अतएव [प्रमेय-पदार्थों से आकुल-व्याप्त भरी हुई] [भगवती] भगवती श्रुतदेवी ने [ताराशिरः कम्पनं] तारादेवी के मस्तक के हिलाने की क्रिया को [तनुतेतराम्] विस्तारा और [यः] जिस भट्टाकलंकदेव ने [कलौ कालो] इस कलिकाल (पंचमकाल) में [जनतासुधर्मनिहितः] जनता को उत्तम-श्रेष्ठ जैनधर्म में लगाया [सः] वह [अकलंकः] अकलंक [देवः] देव (मिथ्यात्व आदि कलंक से रहित अतएव) [जिनः] मिथ्यात्व विजेता हैं [यः] जो भगवान् के यथार्थ तत्त्ववेता हैं। [अमेयमहिमा] चारित्रादि महान गुणों की गरिमा से अपार माहात्यवान् हैं। [किं] क्या [वादः] शास्त्रार्थ करने योग्य हैं? (ऐसे लोकोत्तर ज्ञानी के साथ कौन ऐसा है जो शास्त्रार्थ करने की हिम्मत करेगा?)

**सा तारा खलु देवता भगवतीं मन्यापि मन्यामहे,
षण्मासावधि जाङ्घसांख्यमगमद् भट्टाकलंकप्रभोः ।
वाक्कल्लोलपरम्पराभिरमते नूनं मनो मज्जनं,
व्यापारं सहते स्म विस्मितमतिः सन्ताडितेतस्ततः ॥१६॥**

अन्वयार्थ : [भगवतीमन्या] अपने को भगवती सर्वोपरिज्ञान वाली मानने वाली [सा] वही [तारा] तारा नाम की [देवता] देवी [खलु] ऐतिहासिक घटना के अनुसार भगवान् श्री भट्ट अकलंकदेव के साथ [षण्मासानुधि] छः माह तक लगातार शास्त्रार्थ करती रही तथापि [भट्टाकलंकप्रभोः] भगवान् श्री भट्ट अकलंकस्वामी के [वाक्कल्लोलपरम्पराभिः] अकाट्य-युक्तियुक्त तार्किक वचन रचना रूप महातरणों की परम्पराओं से [सन्ताडिता] पराजय को प्राप्त हुई। अतएव [जाङ्घसांख्यम्] वस्तु स्वरूप से सर्वथा अपरिचित अज्ञानियों की गणना को [अगमत] प्राप्त हुई। अज्ञानता से पराजित होने के कारण [विस्मितमतिः] आश्वर्यान्वित हो [नूनं] निश्चय से खिसयानी बिल्ली के समान [अमते] मिथ्यावस्तु स्वरूप को सर्वथा विपरीत प्रतिपादन करने वाले बौद्धों के एकान्त मत में ही [इतस्ततः] इधर-उधर किसी भी प्रकार से [मनो मज्जनं व्यापारं] मन को स्थिर करने की कठिनाईयों को [सहते स्म] सहने लगी [एवं वर्णं मन्यामहे] ऐसा हम मानते हैं।

इति भट्टाकलंकदेवविरचितम् अकलंक-स्तोत्रम्



गणधरवलय-स्तोत्र



१८ ब्रुद्धि-ऋद्धियां
**जिनान् जिताराति-गणान् गरिष्ठान्
देशावधीन् सर्वपरावधींश्च ।
सत्कोष्ठ-बीजादि-पदानुसारीन्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥१॥**

अन्वयार्थ : [जित आराति] (घाति-कर्म रूपी) शत्रुओं को जीतने वाले [जिनान्] जिनेन्द्र-भगवान के [गणान् गरिष्ठान्] गण (संघ) में श्रेष्ठ (गणधर) [देशावधीन्] देशावधि [सर्वी] सर्वावधि और [परावधीश्च] परमावधि ज्ञान धारी [सत्कोष्ठ] कोष्ठ-ऋद्धि, [बीजादि] पदानुसारीन् बीज-ऋद्धि, पदानुसारी आदि ऋद्धि के धारक [गणेशान् अपि] गणधर देव की, [तदा] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ।

**संभिन्नश्रोत्रान्वित-सन्मुनीन्द्रान्
प्रत्येकसम्बोधित-बुद्धधर्मान् ।
स्वयंप्रबुद्धांश्च विमुक्तिमार्गान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥२॥**

अन्वयार्थ : [संभिन्नश्रोत्रान्वित] संभिन्न श्रोतव ऋद्धि-सहित [सन्मुनीन्द्रान्] सम्यग्दृष्टि मुनि [प्रत्येकसम्बोधित बुद्ध] प्रत्येक-बुद्ध, [धर्मान्] धर्म के संबोधन द्वारा बुद्ध (बोधित-बुद्ध) [विमुक्तिमार्गान्] मोक्ष-मार्ग में [स्वयंप्रबुद्धांश्च] स्वयं-बुद्ध (गणेशान् अपि) गणधर देव की, [तदा] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ।

द्विधा-मनःपर्यय चित्-प्रयुक्तान्
द्विपंच-सप्तद्वय-पूर्वसक्तान् ।
अष्टाङ्गनैमित्तिक-शास्त्रदक्षान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥३॥

अन्वयार्थ : [द्विधा-मनःपर्यय चित्-प्रयुक्तान्] दो प्रकार के मनःपर्यय ज्ञान के धारक [द्विपंच] दस पूर्व [सप्तद्वयपूर्वसक्तान्] चौदह पूर्व के धारक [अष्टाङ्गनैमित्तिक-शास्त्रदक्षान्] अष्टांग महानैमित्तिक शास्त्रों में कुशल [गणेशान् अपि] गणधर देव की, [तद्] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ ॥३॥

नौ चारण ऋद्धियां
विकुर्वणाख्यद्विं-महा-प्रभावान्
विद्याधरांश्वारण-ऋद्विं-प्राप्तान् ।
प्रज्ञाश्रितान् नित्य खगामिनश्च
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥४॥

अन्वयार्थ : [महा-प्रभावान्] महा-प्रभावशाली [विकुर्वणाख्यद्विं] विक्रिया नामक ऋद्धि के [विद्याधरान्] विद्या-धारक [चारण-ऋद्धिप्राप्तान्] चारण-ऋद्धि को प्राप्त [प्रज्ञाश्रितान्] प्रज्ञावान् और [नित्य खगामिनश्च] सदा आकाश में गमन करने वाले [गणेशान् अपि] गणधर देव की, [तद्] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ ॥४॥

आठ औषधि ऋद्धियां
आशीर्विषान् दृष्टि-विषान्मुनीन्द्रा
नुग्राति-दीप्तोत्तम-तप्ततप्तान् ।
महातिघोर-प्रतपःप्रसक्तान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥५॥

अन्वयार्थ : [आशीर्विषान्] आशीर्विष ऋद्धि [दृष्टि-विषान्] दृष्टि-विष ऋद्धि [मुनीन्द्रान्] मुनियों में श्रेष्ठ [उग्राति] अति-उग्र [दीप्तोत्तम] उत्तम दीप्त-तप्त ऋद्धि [तप्ततप्तान्] घोर-तप ऋद्धि [महातिघोर-प्रतपःप्रसक्तान्] महा अति-घोर तप के धारक [गणेशान् अपि] गणधर देव की, [तद्] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ ॥५॥

सात तप ऋद्धियाँ
वन्द्यान् सुरै-र्घोर-गुणांश्वलोके
पूज्यान् बुधै-र्घोर-पराक्रमांश्च ।
घोरादि-संसद्-गुण ब्रह्मयुक्तान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥६॥

अन्वयार्थ : [वन्द्यान् सुरैः] देवों द्वारा वन्दित [लोके पूज्यान्] लोक में पूज्य [घोरगुणान्] श्रेष्ठ गुण के धारक [चा और [बुधैः पूज्यान्] ज्ञानियों द्वारा पूज्य [घोरपराक्रमान्] घोर-पराक्रम धारक [घोरादि-संसद्-गुण ब्रह्मयुक्तान्] समीचीन श्रेष्ठ घोर गुण ब्रह्मचर्य आदि से युक्त [गणेशान् अपि] गणधर देव की, [तद्] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ ॥६॥

तीन बल ऋद्धियाँ
आमद्विं-खेलद्विं-प्रजल्ल-विडद्विं
सर्वद्विं-प्राप्तांश्च व्यथादि-हंतृन् ।

मनोवचःकाय-बलोपयुक्तान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥७॥

अन्वयार्थ : [आमर्द्धि-खेलर्द्धि-प्रजल्ल-विडर्द्धि] आमर्ष-औषध ऋद्धि, खेल-ऋद्धि, प्रकृष्ट जल ऋद्धि, विड-ऋद्धि [सर्वर्द्धि-प्राप्तांश्च] और सर्व-ऋद्धि प्राप्त [व्यथादि-हंतन्] पीड़ा आदि को हरने वाले [मनोवचःकाय-बल उपयुक्तान्] मनो-वचन-काल बल ऋद्धि से युक्त [गणेशान् अपि] गणधर देव की, [तदा] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ ॥७॥

छह रस, दो अक्षीण ऋद्धियाँ
सत्क्षीर-सर्पि-मधुरा-मृतर्द्धन्
यतीन् वराक्षीण-महानसांश्च ।
प्रवर्धमानांस्तिजगत्-प्रपूज्यान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥८॥

अन्वयार्थ : [सत्क्षीर-सर्पि-मधुरा-मृतर्द्धन्] समीचीन क्षीर-सावी, सर्पि-सावी, मधुर-सावी, और अमृत-सावी ऋद्धि के धारक [यतीन्] यति [वराक्षीण-महानसांश्च] श्रेष्ठ अक्षीण-संवास और अक्षीण-महानस ऋद्धियों से [प्रवर्धमानान्] सुशोभित [त्रिजगत्-प्रपूज्यान्] तीन-लोक में पूज्य [गणेशान् अपि] गणधर देव की, [तदा] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ ॥८॥

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्
श्रीवर्धमानर्द्धि-विबुद्धि-दक्षान् ।
सर्वान् मुनीन् मुक्तीवरा-नृषीन्द्रान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥९॥

अन्वयार्थ : [सिद्धालयान्] सिद्धालय में विराजमान [श्रीमहतः] श्री अति-महान, अति-वीर [श्रीवर्धमानर्द्धि-विबुद्धि-दक्षान्] श्री वर्द्धमान ऋद्धि और विशिष्ट बुद्धि ऋद्धि में दक्ष, कुशल [सर्वान् मुनीन्] सर्व मुनियों को [मुक्तीवरा] मुक्ति लक्ष्मी को वराने वाले [ऋषि इन्द्रान्] ऋषियों में प्रमुख [गणेशान् अपि] गणधर देव की, [तदा] उनके [तद्गुणाप्त्यै] गुणों की प्राप्ति के लिए, [स्तुवे] स्तुति करता हूँ ॥९॥

नृसुर-खचर-सेव्या विश्व-श्रेष्ठर्द्धि-भूषा
विविध-गुणसमुद्रा मारमातङ्ग-सिंहाः ।
भव-जल-निधि-पोता वन्दिता मे दिशन्तु
मुनि-गण-सकलाः श्रीसिद्धिदाः सदषीन्द्राः ॥१०॥

अन्वयार्थ : [नृसुर-खचर-सेव्या] मनुष्य, देव, विद्याधरों से पूज्य [विश्वश्रेष्ठ ऋद्धि]: भूषा विश्व की श्रेष्ठ ऋद्धियों से विभूषित [विविध-गुणसमुद्रा] अनेक गुणों को धारण करने वाले [मारमातङ्ग-सिंहाः] काम-देव रूपी हाथी को वश में करने के लिए सिंह के समान [भव-जल-निधि-पोता] संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए जहाज के [सदृशा] समान [वन्दिता] वन्दना योग्य [मुनि-गण-सकलाः इन्द्राः] समस्त मुनि समूह/गण के इंद्र [मे श्रीसिद्धिदाः दिशन्तु] मुझे सिद्ध-पद प्रदान करने वाले हो ॥१०॥



मंदालसा-स्तोत्र

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसारमाया परिवर्जितोऽसि ।
शरीरभिन्नस्त्यज सर्व चेष्टां, मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र! ॥१॥

अन्वयार्थ : मन्दालसा अपने पुत्र कुन्दकुन्द को लोरी सुनाती हुई कहती है कि हे पुत्र! तुम सिद्ध हो, तुम बुद्ध हो, केवलज्ञानमय हो, निरंजन अर्थात् सर्व कर्मल से रहित हो, संसार की मोह-माया से रहित हो, इस शरीर से सर्वथा भिन्न हो, अतः सभी चेष्टाओं का परित्याग करो। हे पुत्र! मन्दालसा के वाक्य को सेवन कर अर्थात् हृदय में धारण कर। यहाँ पर कुन्दकुन्द की माँ अपने पुत्र को जन्म से ही लोरी सुनाकर उसे शुद्धात्म द्रव्य का स्मरण कराती है, अतः यह कथन शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा है। जो उपादेय है।



ज्ञाताऽसि दृष्टाऽसि परमात्म-रूपी, अखण्ड-रूपोऽसि । जितेन्द्रियस्त्वं त्यज मानमुद्रां, मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र! ॥२॥

अन्वयार्थ : हे पुत्र! तुम ज्ञाता हो, दृष्टा हो, जो रूप परमात्मा का है तुम भी उसी रूप हो, अखण्ड हो, गुणों के आलय हो अर्थात् अनन्त गुणों से युक्त हो, तुम जितेन्द्रिय हो, अतः तुम मानमुद्रा को छोड़ो, मानव पर्याय की प्राप्ति के समय सर्वप्रथम मान कषाय ही उदय में आती है उस कषाय से युक्त मुद्रा के त्याग के लिए माँ ने उपदेश दिया है। हे पुत्र! मन्दालसा के इन वाक्यों को हृदय में धारण करो।

शान्तोऽसि दान्तोऽसि विनाशहीनः, सिद्धस्वरूपोऽसि कलंकमुक्तः। ज्योतिस्वरूपोऽसि विमुच्च मायां, मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र! ॥३॥

अन्वयार्थ : माँ मन्दालसा अपने पुत्र कुन्दकुन्द को उसके स्वरूप का बोध करती हुई उपदेश करती है कि हे पुत्र! तुम शान्त हो अर्थात् राग-द्वेष से रहित हो, तुम इन्द्रियों का दमन करने वाले हो, आत्म-स्वरूपी होने के कारण अविनाशी हो, सिद्ध स्वरूपी हो, कर्म रूपी कलंक से रहित हो, अखण्ड केवलज्ञान रूपी ज्योति-स्वरूप हो, अतः हे पुत्र! तुम माया को छोड़ो। मन्दालसा के इन वाक्यों को हृदय में धारण करो।

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि, चिद्रुपभावोऽसि चिरंतनोऽसि । अलक्ष्यभावो जहि देहमोहं, मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र! ॥४॥

अन्वयार्थ : माँ मन्दालसा लोरी गाती हुई अपने पुत्र कुन्दकुन्द को कहती है कि हे पुत्र! तुम एक हो, सांसारिक बन्धनों से स्वभावतः मुक्त हो, चैतन्य स्वरूपी हो, चैतन्य स्वभावी आत्मा के स्वभावरूप हो, अनादि अनन्त हो, अलक्ष्यभाव रूप हो, अतः हे पुत्र! शरीर के साथ मोह परिणाम को छोड़ो। हे पुत्र! मन्दालसा के इन वाक्यों को हृदय में धारण करो।

निष्काम-धामासि विकर्मरूपा, रत्नत्रयात्मासि परं पवित्रम् । वेत्तासि चेतोऽसि विमुच्च कामं, मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र! ॥५॥

अन्वयार्थ : जहाँ कोई कामनायें नहीं हैं ऐसे मोक्ष रूपी धाम के निवासी हो, द्रव्यकर्म तजन्य भावकर्म एवं नोकर्म आदि सम्पूर्ण कर्मकाण्ड से रहित हो, रत्नत्रय आत्मा हो, शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञानमय हो, चेतन हो, अतः हे पुत्र! सांसारिक इच्छाओं व एन्द्रियक सुखों को छोड़ो। मन्दालसा के इन वाक्यों को हृदय में धारण करो।

प्रमादमुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि, अनन्तबोधादि-चतुष्योऽसि । ब्रह्मासि रक्ष स्वचिदात्मरूपं, मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र! ॥६॥

अन्वयार्थ : अपने पुत्र को शुद्धात्मा के प्रति इंगित करती हुई कुन्दकुन्द की माँ मन्दालसा लोरी के रूप में फिर कहती है- तुम प्रमाद रहित हो, क्योंकि प्रमाद कषाय जन्य है, सुनिर्मल अर्थात् अशकर्मों से रहित सहजबुद्ध हो, चार घातियाकर्मों के अभाव में होने वाले अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप चतुष्यों से युक्त हो, तुम ब्रह्म तथा शुद्धात्मा हो, अतः हे पुत्र! अपने चैतन्यस्वभावी शुद्ध स्वरूप की रक्षा कर! माँ मन्दालसा के इन वाक्यों को अपने हृदय में सदैव धारण करो।

कैवल्यभावोऽसि निवृत्तयोगी, निरामयी ज्ञात-समस्त-तत्त्वम् । परात्मवृत्तिस्मर चित्स्वरूपं, मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र! ॥७॥

अन्वयार्थ : तुम कैवल्यभाव रूप है, योगों से रहित हो, जन्म-मरण जरा आदि रोगों से रहित होने के कारण निरामय हो, समस्त तत्वों के जाता हो, सर्वश्रेष्ठ निजात्म तत्त्व में विचरण करने वाले हो, हे पुत्र! अपने चैतन्य स्वरूपी आत्मा का स्मरण करो। हे पुत्र! माँ मन्दालसा के इन वाक्यों को सदैव अपने हृदय में धारण करो।

चैतन्यरूपोऽसि विमुक्तभावो भावाविकर्माऽसि समग्रवेदी । ध्यायप्रकामं परमात्मरूपं, मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र! ॥८॥

अन्वयार्थ : माँ मन्दालसा झूले में झूलते हुए पुत्र कुन्दकुन्द को शुद्धात्म स्वरूप की घुट्टी पिलाती हुई लोरी कहती है - हे पुत्र! तुम चैतन्य स्वरूप हो, सभी विभाव-भावों से पूर्णतया मुक्त हो, सभी कर्मों से रहित हो, सम्पूर्ण लोकालोक के ज्ञाता हो, परमोक्षण एक अखण्ड ज्ञान-दर्शनमय सहजशुद्धरूप जो परमात्मा का स्वरूप है वह तुम स्वयं हो, अतः अपने परमात्मस्वरूप का ध्यान करो। हे पुत्र! मन्दालसा के इन वाक्यों को अपने हृदय में धारण करो।

इत्यष्टकैर्या पुरतस्तनूजम्, विबोधनार्थ नरनारिपूज्यम् । प्रावृज्य भीताभवभोगभावात्, स्वकैस्तदाऽसौ सुगतिं प्रपेदे ॥९॥

अन्वयार्थ : इन आठ श्लोकों के द्वारा माँ मन्दालसा ने अपने पुत्र कुन्दकुन्द को सद्बोध प्राप्ति के लिए उपदेश किया है, जिससे वह सांसारिक भोगों से भयभीत होकर समस्त नर-नारियों से पूज्य श्रमण दीक्षा धारण कर सदृति को प्राप्त करे।

इत्यष्टकं पापपराङ्मुखो यो, मन्दालसायाः भणति प्रमोदात् ।
स सद्गतिं श्रीशुभचन्द्रमासि, संप्राप्य निर्वाण गतिं प्रपेदे ॥१०॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार जो भव्य जीव मन्दालसा द्वारा रचित इन आठ श्लोक मय स्तोत्र को पापों से पराडग्मुख होकर व हर्षपूर्वक पढ़ता है वह श्रीशुभचन्द्ररूप सद्गति को प्राप्त होकर क्रमशः मोक्ष को प्राप्त करता है।



श्रीमज्जिनसहस्रनाम-स्तोत्र
स्वयंभूवे नमस्त्युभ्यमुत्पाद्यात्मान मात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोदभूत वृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये ॥१॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! आपने स्वयम् अपने आत्मा को प्रकट किया है, अर्थात् आप अपने आप उत्पन्न हुए हैं, इसलिए आप स्वयंभू कहलाते हैं। आपको आत्मवृत्ति अर्थात् आत्मा में ही लीन अथवा तल्लीन रहने योग्य चारित्र तथा अचिन्त्य महाक्य की प्राप्ति हुई है, इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो।

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोस्तु ते ।
विदावरं नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ॥२॥

अन्वयार्थ : आप जगत के स्वामी हैं, इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो, आप अंतरंग तथा बहिरंग दोनों लक्ष्मी के स्वामी हैं, इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो। आप विद्वानों में और वक्ताओं में भी श्रेष्ठतम है, इसलिये भी आपको मेरा नमस्कार हो।

कर्मशत्रुहणं देव मानमन्ति मनीषिणः।
त्वामानमसुरेण्मौलि-भा-मालाऽभ्यर्चितक्रमम् ॥३॥

अन्वयार्थ : हे देव ! बुद्धिमान आपको कामदेव रूपी शत्रु का नाश करनेवाला मानते हैं, तथा इन्द्र भी अपने मुकुट-मणि के कान्तिपुंज से आपके पाद-कमलों की पूजा करते हैं, (उनके शीष आपके चरणों में झुकाकर आपको नमस्कार करते हैं), इसलिये आपको मेरा भी नमस्कार हो।

ध्यान-द्रुघण-निर्भिन्न-घन-घाति-महातरुः ।
अनन्त-भव-सन्तान-जयादासीदनन्तजित् ॥४॥

अन्वयार्थ : आपने अपने ध्यानरूपी कुठार (कुल्हाड़ी) से बहुत कठोर घातिया कर्मरूपी बडे वृक्ष को काट डाला है तथा अनन्त जन्म-मरणरूप संसार की संतान परंपरा को जीत लिया है इसलिये आप अनन्तजित कहलाते हैं।

त्रैलोक्य-निर्जयाव्याप्त-दुर्दर्पमतिदुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन! मृत्युंजयो भवान् ॥५॥

अन्वयार्थ : हे जिन! तीनों लोकों का जेता होने का जिसे अत्यंत गर्व हुआ है, तथा जो अन्य किसी से भी जीता नहीं जा सकता ऐसे मृत्यु को भी आपने जीत लिया है इसलिए आप ही मृत्युंजय कहलाते हैं।

विधूताशेष - संसार - बन्धनो भव्यबान्धवः ।
त्रिपुराऽरि स्त्वमेवासि जन्म मृत्यु-जरान्तकृत् ॥६॥

अन्वयार्थ : संसार के समस्त बंधनों का नाश करनेवाले आप, भव्य जीवों के बन्धू हैं। जन्म, मृत्यु और वार्धक्य रूपी तीनों अवस्थाओं का नाश करनेवाले भी आप ही हैं, अर्थात् आप ही त्रिपुरारि हैं।

त्रिकाल-विषयाऽशेष तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्वक्षु स्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥७॥

अन्वयार्थ : हे अधीश्वर, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों के समस्त तत्त्वों एवम् उनके तीनों भेदों को जानने योग्य केवलज्ञान रूप नेत्र आप धारण करते हैं, इसलिये आप ही त्रिनेत्र हैं।

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धाऽसुर-मर्दनात् ।
अर्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यतः ॥८॥

अन्वयार्थ : आपने मोहरुपी अन्धासुर का नाश किया है, इसलिए आप अन्धकान्तक कहलाते हैं, आपने आठ में से चार शत्रू (अर्ध न अरि) का नाश किया है, इसलिये आपको अर्धनारीश्वर भी कहते हैं।

शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरिताऽरि हरो हरः ।
शंकर कृतशं लोके शंभवस्त्वं भवन्सुखे ॥९॥

अन्वयार्थ : आप शिवपद अर्थात् मोक्ष-निवासी हैं इसलिये शिव कहे गये, पापों को हरने वाले हैं, इसलिये हर है, जगत का दाह शमनेवाले हैं इसलिए शंकर है और सुख उत्पन्न है, इसलिए शंभव कहे गये हैं।

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरुगुणोदयैः ।
नाभेयो नाभि सम्भूतेरिक्ष्वाकु-कुल्-नन्दनः ॥१०॥

अन्वयार्थ : आप जगत में ज्येष्ठ हैं, इसलिए आप वृषभ हैं, आप संपूर्ण गुणों कि खान होने से पुरु हैं, नाभिपुत्र होने से नाभेय, नाभि के काल में होनेसे नाभिसम्भूत, और इक्ष्वाकू कुल में जन्म लेने कि वजह से आपको इक्ष्वाकू कुल-नन्दन भी कहे जाते हैं।

त्वमेकः पुरुषस्कंध स्त्वं द्वे लोकस्य लोचने ।
त्वं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्ग स्तिज्ञ स्तिज्ञानधारकः ॥११॥

अन्वयार्थ : सब पुरुषों में आप ही एक श्रेष्ठ हैं, लोगों के दो नेत्र होने के कारण आप के दो रूप धारक हैं, तथा मोक्ष के तीन मार्ग के एकत्र को आपने जाना है, आप तीन काल एक साथ देख सकते हैं और रत्नत्रय धारक हैं, इसलिये आप त्रिज्ञ भी कहलाते हैं।

चतुःशरण मांगल्य-मूर्तिस्त्वं चतुरस्रधी ।
पंचब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥

अन्वयार्थ : इस जगत में आप ही चार मांगल्यों का एकरूप हैं और आप चारों दिशाओं के समस्त पदार्थों को एकसाथ जानते हैं, इसलिए आप चतुरस्रधी कहलाते हैं। आप ही पंच-परमेष्ठी स्वरूप हैं, पावन करनेवाले हैं, मुझे भी पवित्र किजिए।

स्वर्गाऽवतारिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः ।
जन्माभिषेक वामाय वामदेव नमोऽस्तुते ॥१३॥

अन्वयार्थ : आप स्वर्गावतारण के समय ही सद्योजात (उसी समय उत्पन्न) कहलाये थे और जन्माभिषेक के समय आप बहुत ही सुंदर दिख रहे थे, इसलिये हे वामदेव आपको नमस्कार हो।

सन्त्रिष्कान्ता वघोराय, पदं परममीयुषे ।
केवलज्ञान-संसिध्दा वीशानाय नमोऽस्तुते ॥१४॥

अन्वयार्थ : दीक्षा-समय में आपने परम शान्त-मुद्रा धारण कि थी, तथा केवलज्ञान के समय आप परमपद धारी होकर ईश्वर कहलाए, इसलिये आपको नमस्कार हो।

पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्त पदभाजिने ।
नमस्तत्पुरुषाऽवस्थां भाविनीं तेऽद्य विभ्रते ॥१५॥

अन्वयार्थ : अब आगे शुद्ध आत्म-स्वरूप के द्वारा मोक्ष को प्राप्त होंगे, तथा सिद्ध-अवस्था धारण करनेवाले हैं, इसलिये हे विभो मेरा आपको नमस्कार है।

ज्ञानावरण-निर्हासा न्नमस्तेऽनन्तचक्षुषे ।
दर्शनावरणोच्छेदा न्नमस्ते विश्वदश्वने ॥१६॥

अन्वयार्थ : ज्ञानावरण कर्म का नाश करने से आप अनन्तज्ञानी कहलाते हैं और दर्शनावरण कर्म के नाशक आप विश्वदश्वा (समस्त विश्व एक साथ देखने वाले) कहलाते हैं, इसलिए हे देव मेरा आपको नमस्कार है।

नमो दर्शनमोहद्धे क्षायिकाऽमलदृष्टये ।
नम श्वारित्रमोहद्धे विरागाय महौजसे ॥१७॥

अन्वयार्थ : आप दर्शन-मोहनीय कर्म का नाश करने से निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन के धारक हैं, चारित्र-मोहनीय कर्म का नाश करने से आप वीतराग एवम् तेजस्वी हैं, इसलिए हे प्रभु मेरा आपको नमस्कार है ।

नमस्तेऽनन्तवीर्याय नमोऽनन्त सुखत्मने ।
नमस्ते अनन्तलोकाय लोकालोकवलोकिने ॥१८॥

अन्वयार्थ : आप अनन्त-वीर्यधारी, अनन्त-सुख में लीन तथा लोकालोक को देखने वाले हो, इसलिए हे अनन्त-प्रकाशरूप मेरा आपको नमस्कार है ।

नमस्तेऽनन्तदानाय नमस्तेऽनन्तलब्धये ।
नमस्तेऽनन्तभोगाय नमोऽनन्तोप भोगिने ॥१९॥

अन्वयार्थ : आपके दानानंतराय-कर्म का नाश हुआ है और अनन्त लब्धियों के धारक है, आपका लाभ, भोग तथा उपभोग के अंतराय कर्म का भी नाश हुआ है इसलिए हे विभो आप अनन्त भोग तथा उपभोग को प्राप्त हैं, मेरा आपको नमस्कार है ।

नमः परमयोगाय नम्स्तुभ्य मयोनये ।
नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥२०॥

अन्वयार्थ : हे परम देव ! आप परम-ध्यानी हैं, आप ८४ लक्ष योनी से रहित हैं, आप परम-पवित्र हैं, आप परम ऋषी हैं, इसलिए मेरा आपको नमस्कार हो ।

नमः परमविद्याय नमः परमतच्छिदे ।
नमः परम तत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥२१॥

अन्वयार्थ : आप केवलज्ञानधारी हो, इसलिए आपको नमस्कार हो । आप सब पर-मतों का नाश करनेवाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो । आप परम-तत्त्वस्वरूप (रत्नत्रय-रूप) हैं तथा आप ही परम आत्मा हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे ।
नमः परम मार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥

अन्वयार्थ : आप अति सुंदर रूप धारी परम तेजस्वी हो, इसलिए आपको नमस्कार हो । आप रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्ग-स्वरूप हैं तथा आप सर्वोच्च-स्थान में रहनेवाले परमेष्ठी हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

परमर्धिजुषे धाम्ने परम ज्योतिषे नमः ।
नमः पारेतमः प्राप्त धाम्ने परतरात्मने ॥२३॥

अन्वयार्थ : आप मोक्षस्थान को सेवन करनेवाले हैं, तथा ज्योति-स्वरूप हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो । आप अज्ञानरूपी तमांधकार के पार अर्थात् परमज्ञानी प्रकाशरूप हैं तथा आप सर्वोक्तृष्ट हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

नमः क्षीण कलंकाय क्षीणबन्ध! नमोऽस्तुते ।
नमस्ते क्षीण मोहाय क्षीणदोषाय ते नमः ॥२४॥

अन्वयार्थ : आप कर्म-रूपी कलंक से रहित है, आप कर्मों के बन्धन से रहित है, आपके मोहनीय-कर्म नष्ट हुए हैं तथा आप सब दोषों से रहित हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

नमः सुगतये तुभ्यं शोभना गतिमियुषे ।
नमस्तेऽतीन्द्रिय ज्ञान् सुखायाऽनिन्द्रियात्मने ॥२५॥

अन्वयार्थ : आप मोक्षगति को प्राप्त हैं, इसलिए आप सुगति है, आप इन्द्रियों से ना जाने जानेवाले ज्ञान-सुख के धारी है तथा स्वयं भी अतिन्द्रिय अगोचर हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

**काय बन्धन निर्मोक्षादकाय नमोऽस्तु ते ।
नमस्तुभ्य मयोगाय योगिना मधियोगिने ॥२६॥**

अन्वयार्थ : शरीर बन्धन नाम-कर्म को नष्ट करने के कारण आप शरीर-रहित कहलाते हैं, आप मन-वच-काय योग से रहित हैं और आप योगियों में भी सर्वोल्कृष्ट हैं, इसलिए हे विभो ! आपको मेरा नमस्कार हो ।

**अवेदाय नमस्तुभ्यम् कषायाय ते नमः ।
नमः परमयोगीन्द्र वन्दिताङ्गद्वयाय ते ॥२७॥**

अन्वयार्थ : तीनों वेदों का नाश आपने दसवें गुणस्थान में ही किया है, इसलिए आप अवेद कहलाते हैं, आपने कषायों का भी नाश किया इसलिए आप अकषाय कहलाते हैं, परम योगीराज भी आपके दोनों चरणकमलों को नमन करते हैं, इसलिए हे प्रभो! मेरा भी आपको नमस्कार हो ।

**नमः परम विज्ञान! नमः परम संयम! ।
नमः परमद्वग्दृष्ट परमार्थ्य ते नमः ॥२८॥**

अन्वयार्थ : हे परम विज्ञान प्रभू! हे उल्कष्ट ज्ञान धारी, हे परम संयमधारी आप परम दृष्टि से परमार्थ को देखते हैं तथा जगत् की रक्षा करनेवाले हैं, इसलिए मेरा आपको नमस्कार हो ।

**नमस्तुभ्य मलेश्याय शुक्ललेश्यां शकस्पृशे ।
नमो भव्येतराऽवस्था व्यतीताय विमोक्षिणे ॥२९॥**

अन्वयार्थ : हे परम देव! आप लेश्याओं से रहित हैं, तथा शुद्ध परमशुक्ल लेश्या के कुछ उत्तम अंश को स्पर्श करनेवाले हैं, आप भव्य-अभव्य दोनों अवस्थाओं से रहित हैं और मुक्तरूप हैं, इसलिए मेरा आपको नमस्कार है ।

**संज्ञय संज्ञि द्वयावस्था व्यतिरिक्ताऽमलात्मने ।
नमस्ते वीत संज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥३०॥**

अन्वयार्थ : आप संज्ञी भी नहीं हैं, असंज्ञी भी नहीं हैं, आप निर्मल शुद्धात्मा धारी हैं, आप आहार, भय, निद्रा तथा मैथुन इन् चारों संज्ञाओं से रहित हैं और आप क्षायिक सम्पदश्ची भी हैं, इसलिए हे करुणानिधान ! मेरा आपको नमस्कार हो ।

**अनाहाराय तृष्णाय नमः परमभाजुषे ।
व्यतीताऽ शोषदोषाय भवाद्ये पारमीयुषे ॥३१॥**

अन्वयार्थ : आप आहार ना लेते हुए भी सदैव तृष्ण रहते हैं, अतिशय कांतियुक्त हैं, समस्त दोषों से मुक्त हैं, तथा संसाररूपी समुद्र के पार हैं, इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो ।

**अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते स्तादजन्मने ।
अमृत्यवे नमस्तुभम् चलायाऽक्षरात्मने ॥३२॥**

अन्वयार्थ : आप जन्म, बुढापा, मृत्यु से रहित हैं, अचल हैं, अक्षरात्मा हैं इसलिये हे तारक, मेरा आपको नमस्कार हो ।

**अलमास्तां गुणस्तोत्रम् नन्तास्तावका गुणा ।
त्वां नामस्मृति मात्रेण पर्युपासि सिषामहे ॥३३॥**

अन्वयार्थ : हे त्रिलोकिनाथ ! आपके अनंतगुण हैं (आपके सब गुणों का वर्णन असंभव है), इसलिये केवल आपके नामों का ही स्मरण करके आपकी उपासना करना चाहते हैं ।

**एवं स्तुत्वा जिनं देव भक्त्या परमया सुधीः ।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पापशान्तये ॥३४॥**

अन्वयार्थ : इस प्रकार जिनेन्द्र देव की उल्कष्ट भक्ति करके सुधीजन आगे आये हुए एक सहस्र (१००८) नामों को निरंतर पढ़ें ।

प्रसिद्धाऽष्ट सहस्रेद्व लक्षणं त्वां गिरांपतिम् । नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥१॥

अन्वयार्थ : हे भगवन्, हे भवतारक! आप समस्त वाणीयों के स्वामी हैं, आपके एक हजार आठ लक्षण प्रसिद्ध हैं, इसलिये हम भी अपनी शुभ और इष्ट सिद्धि के लिये एक हजार आठ नामों से आपकी स्तुति करते हैं।

श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभः शम्भवः शम्भूरात्मभूः । स्वयंप्रभः प्रभु भीक्ता विश्वभूर पुनर्भवः ॥२॥

अन्वयार्थ :

1. आप अनन्त-चतुष्पूर्णी अन्तरंग तथा समवशरण-रूपी बहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित हैं, इसलिए **श्रीमान्** (श्री-युक्त) कहलाते हैं।
2. आप अनेक कारणों से **स्वयंभूः** कहलाते हैं, जैसे आप अपने आप उत्पन्न हुए हैं, आप बिना गुरु के समस्त पदार्थों को जानते हैं, आप अपने ही आत्मा में रहते हैं, आपने अपने आप ही स्वयम् का कल्याण किया है, आप अपने ही गुणों से वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, अथवा आप केवल-ज्ञान-दर्शन द्वारा समस्त लोकालोक में व्याप्त हैं, अथवा आप भव्य जीवों को मोक्ष-लक्ष्मी देनेवाले हैं, अथवा समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों को आप जानते हैं, अथवा आप अनायास ही लोक-शिखर पर जाकर विराजमान होते हैं।
3. आप वृष (धर्म) से भा (सुशोभित) हैं, इसलिये आप **वृषभः** हैं।
4. आपके जन्म से ही सब जीवों को सुख मिलता है, अथवा आप सुख से उत्पन्न हुए हैं, अथवा आप का भव, शं (अत्युक्तष्ट) है, इसलिए आप **शंभवः** (संभव) कहलाते हैं।
5. आप मोक्षरूप परमानंद सुख देने वाले हैं, इसलिए **शंभुः** कहलाते हैं।
6. आप अपने आत्मा के द्वारा कृतकृत्य हुए हैं, अथवा आप शुद्ध-बुद्ध चित् चमत्कार-स्वरूप आत्मा में ही सदैव रहते हैं, अथवा ध्यान के द्वारा योगीयों कि आत्मा में प्रत्यक्ष होते हैं इसलिए आप **आत्मभूः** कहे जाते हैं।
7. आपको देखने के लिये प्रकाश की जरूरत नहीं अर्थात् आप स्वयम् ही प्रकाशमान हैं, आप स्वयम् की प्रभा में दग्धोचर होते हैं, इसलिए आप **स्वयंप्रभः** कहे जाते हैं।
8. आप सबके स्वामी हैं, इसलिए **प्रभुः** हो।
9. परमानंद-स्वरूप सुख का उपभोग करनेवाले हैं इसलिए **भोक्ता** हो।
10. आप समस्त विश्व में व्याप्त हैं, या प्रकट हैं और उसे एक साथ जानते भी हैं, इसलिए **विश्वभूः** हो।
11. आपका जन्म-मरणरूपी संसार शेष नहीं है, अर्थात् आप फिर से जन्म नहीं लेंगे, इसलिए **अपुनर्भवः** भी हैं।

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्वक्षुरक्षरः । विश्वविद् विश्वविद्येशो विश्व योनिरनश्वर ॥३॥

अन्वयार्थ :

12. जैसा कोई अपने आप को जानता हो, वैसे ही आप विश्व को जानते हैं, अथवा आप विश्व अर्थात् केवलज्ञान-स्वरूप हैं, इसलिए आप **विश्वात्मा** कहे जाते हैं।
13. समूचे विश्व के समस्त प्राणीयों के आप स्वामी अर्थात् इश हैं, इसलिए आप **विश्वलोकेशः** के नाम से जाने जाते हैं।
14. आपके केवलज्ञान-रूपी चक्षु समस्त विश्व को देख सकते हैं, इसलिए आप **विश्वतश्वक्षुरः** हैं।
15. आप कभी नाश होनेवाले नहीं हैं, इसलिये आप **अक्षरः** हैं।
16. सम्पूर्ण विश्व आप को विदित है, आप उसे सम्पूर्ण तरह से जानते हैं, इसलिये आप **विश्ववितः** हैं।
17. विश्व की समस्त विद्याएं आपको अवगत हैं, अथवा सकल विद्याओं के आप ईश्वर हैं, अथवा आप सुविद्य गणधरादि के स्वामी हैं, इसलिये आप **विश्वविद्येशः** कहे जाते हैं।
18. सभी पदार्थों का ज्ञान देने वाले हैं, इस अभिप्राय से आप समस्त पदार्थों के जनक हैं, इसलिए **विश्वयोनि** कहे जाते हैं।
19. आपके स्वरूप का कभी विनाश नहीं होगा इसलिए हे दयानिधान! आप **अविनश्वरः** भी कहे जाते हैं।

विश्वदश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः । विश्वव्यापी विधिर्वेधा शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥

अन्वयार्थ :

20. समस्त लोकालोक को देखनेसे आप **विश्वदश्वा** कहलाते हैं।
21. आप केवलज्ञान के द्वारा समस्त जगत् में व्याप्त हैं, तथा आप जीवों को संसार से पार कराने में समर्थ हैं तथा परम् विभुति युक्त हैं, इसलिए आप **विभुः** कहे जाते हैं।
22. करुणाकर होने से आप सब जीवों की रक्षा करते हैं, तथा चतुर्गति के जीवों के लिए परिभ्रमण से मुक्ति दाता हैं, इसलिए आप **धाता** कहे जाते हैं।
23. जगत् के स्वामी होने से आप **विश्वेशः** हैं।
24. आप के उपदेश द्वारा ही सब जीव सुख की प्राप्ति का उपाय अर्थात् मोक्षमार्ग देख पाते हैं, इसलिए आप **विश्वलोचनः** कहे जाते हैं।
25. समुद्रघात के समय आप के आत्म-प्रदेश समस्त लोक को स्पर्श करते हैं, तथा केवलज्ञान से तो आप समस्त विश्व में प्रत्यक्ष रहने से आप **विश्वव्यापी** कहे गये हैं।

26. मोहांधकार को नष्ट करनेवाले हैं, इसलिए ||विधु|| कहे गये हैं।
 27. धर्म के उत्पादक रहने से आप ||वेधा|| कहलाते हैं।
 28. आप नित्य हैं, सदैव हैं, विद्यमान हैं, आप का नाश नहीं हो सकता है, इसलिये शाश्वत कहलाते हैं।
 29. जैसे समवशरण में आपके मुख चारों दिशाओं में दिखते हैं, तथा आपका समवशरण में दर्शनमात्र जीवों के चतुर्गति के नाश का कारण बनता है, अथवा जल (विश्वतोमुख) के समान कर्म-रूपी मल को धोनेवाले हैं, इसलिये आप ||विश्वतोमुख|| कहे जाते हैं।

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमुर्ति जिनेश्वरः । विश्वदृग् विश्व भूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥५॥

अन्वयार्थ :

30. आपके अनुसार कर्म ही संसार अर्थात् विश्व के चलने का कारण है, तथा आपने विश्व को उपजीवीका के लिए छह कर्मों का उपदेश दिया, इसलिए आप ||विश्वकर्मा|| कहे गये।
 31. आप जगत् के समस्त प्राणियों में ज्येष्ठ (ज्ञान से, ज्ञानवृद्ध) हैं, इसलिए ||जगज्ज्येष्ठ|| कहे जाते हैं।
 32. आप में ही समस्त विश्व के ज्ञान की प्रतिमा (मूर्ती) हैं, इसलिए आप ||विश्वमूर्ति|| कहे गये हैं।
 33. समस्त अशुभ-कर्मों का नाश करने की वजह से ४ से १२ गुणस्थान वाले जीवों को जिन कहते हैं आप इन सब जिनों के भी ईश्वर है, इसलिये आप ||जिनेश्वर|| कहे जाते हैं।
 34. समस्त जगत् को एक साथ देखने से ||विश्वदृग्|| हो।
 35. सब भूत (प्राणीयों) के ईश्वर होने से तथा सर्व जगत् कि लक्ष्मी के ईश होने से आप ||विश्वभूतेश|| कहे जाते हो।
 36. जगत्प्रकाशी आप ||विश्वज्योति|| भी कहे जाते हैं।
 37. आप के कोई गुरु तथा स्वामी नहीं हैं, इसलिये आप ||अनीश्वर|| भी कहे जाते हैं।

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः । अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरऽबन्धनः ॥६॥

अन्वयार्थ :

38. आपने कर्म शत्रु तथा कषायों को जीत लिया है, इसलिये आप ||जिन|| हैं।
 39. आप विजयी हैं, इसलिए आप ||जिष्णु|| हैं।
 40. आप के आत्मा कि कोई सीमा नहीं, इसलिये आप ||अमेयात्मा|| भी कहे जाते हैं।
 41. आप समस्त विश्व के आराध्य हैं, इस लिये ||विश्वरीश|| हैं।
 42. जगत् के भी स्वामी हैं, इसलिए ||जगत्पति|| हैं।
 43. मोक्ष मे बाधा लाने वाले अनंत ग्रह पर विजयी होने से, तथा अनंतज्ञान को पाने से, आप ||अनन्तजिता|| भी कहलाते हैं।
 44. आप मे आत्मा का यथार्थ स्वरूप क्या होगा इसकि कल्पना तथा चिंतन करना कि अन्य प्राणियों में नहीं है, इसलिए हे प्रभू, आप ||अचिन्त्यात्मा|| हो।
 45. आप सब जीवों पर बन्धु समान करुणा रखते हैं, इसलिये आप ||भव्यबन्धु|| कहलाते हैं।
 46. मोक्ष जाने से रोकनेवाले घातिया कर्मों से जो इतर प्राणी बंधे हुए हैं, वैसे आप बंधे हुए नहीं हैं, इसलिये आप ||अबन्धन|| भी कहे जाते हैं।

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः शिवः । परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥७॥

अन्वयार्थ :

47. कर्मभूमी मे पुरुषार्थ करना होता है, और आप कर्मभूमी के प्रारंभ अर्थात् उस धारणा से युग के प्रारंभ मे उत्पन्न हुए हैं, इसलिए आप ||युगादिपुरुष|| कहलाते हैं।
 48. आपसे ही यह विश्व बढ़ा है इसलिये आप ||ब्रह्मा|| कहे जाते हैं।
 49. आप अकेले ही पंच-परमेष्ठी स्वरूप हैं, इसलिये आप ||पंचब्रह्म|| कहे जाते हैं।
 50. आप परम शुद्ध हैं, इसलिये ||शिव|| भी कहे जाते हैं।
 51. आप जीवों को संसार के पार, मोक्ष तक, पहुंचाते हैं, इसलिए ||पर|| हैं।
 52. किसी भी धर्मोपदेशक से श्रेष्ठ होने से ||परतर|| कहे जाते हैं।
 53. आप प्रथम चारों ज्ञानों से भी नहीं जाने जा सकते हैं और मात्र केवलज्ञान ही आपके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान दे सकता है, इस वजह से ||सूक्ष्म|| कहलाते हैं।
 54. आप परम स्थान (मोक्ष) मे स्थित हैं, इसलिए ||परमेष्ठी|| भी कहे जाते हैं।
 55. आप चिरंतन नित्य सत्य-स्वरूप हैं, इसलिये ||सनातन|| भी कहे जाते हैं।

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्म योनिरऽयोनिज । मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥८॥

अन्वयार्थ :

56. आपको देखने के लिये प्रकाश की जरूरत नहीं है, क्योंकि आप स्वयं ही प्रकाशरूप हैं, इसलिए [[स्वयंज्योति]] कहे जाते हैं ।
57. आप फिर से उत्पन्न नहीं होंगे, इसलिए [[अज]] कहे जाते हैं ।
58. आप अभी फिर शरीर धारण नहीं करेंगे, इसलिए [[अजन्मा]] कहलाते हैं ।
59. ब्रह्म अर्थात् सत्यक दर्शन ज्ञान चारित्र आप से उत्पन्न होता है, इसलिए [[ब्रह्मयोनि]] कहे जाते हैं ।
60. ८४ लाख योनियों से रहित होकर आप मोक्षालय में उत्पन्न होते हैं, इसलिये [[अयोनिज]] अथवा जब आप सिद्धशिला पर उत्पन्न होंगे, तो आपका जन्म योनि से नहीं अपितु ८४ लाख योनि से रहित होने से वहाँ हुआ है ।
61. सबसे बड़ा शत्रु मोह-कर्म पर विजय पाने से आप [[मोहारिविजयी]] कहे जाते हैं ।
62. आपने कर्मरिपुओं को परास्त कर विजय पायी है, इसलिये आप [[जेता]] कहलाते हैं ।
63. आप जहाँ-जहाँ जाते हैं (विहार करते हैं), धर्मचक्र सदैव आपके सामने चलते रहता है, अर्थात् आप धर्म के चक्र को सब जगह साथ लेकर चलते हैं
इसलिए आप [[धर्मचक्री]] नाम से भी जाने जाते हैं ।
64. आपकी उत्तम धर्म-ध्वजा सब प्राणियों पर दया करने का संदेश देती है, दया भावना सिखाती है, इसलिये आप [[दयाध्वज]] भी कहे जाते हैं ।

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वराऽर्चितः । ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥९॥

अन्वयार्थ :

65. आपके कर्म-शत्रु शांत हुए हैं, इसलिये आप [[प्रशान्तारि]] कहलाते हैं ।
66. आपके आत्मा में अनंत गुण हैं और आपके आत्मा का नाश कभी नहीं होगा, अथवा आपकी आत्मा अनंतकाल तक यथास्थित रहेगी इसलिये आप
[[अनन्तात्मा]] कहे जाते हैं ।
67. योग कर्म के आस्व का कारण है, उस योग का ही आपने निरोध किया है, इसलिए आप [[योगी]] कहलाते हैं ।
68. गणधरादि योगीश्वर भी आपकी पूजा-अर्चना करते हैं, इसलिये आप [[योगीश्वराऽर्चित]] भी कहे जाते हैं ।
69. आत्मा का यथार्थ स्वरूप जानते हैं, इसलिये [[ब्रह्मवित्]] हैं ।
70. ब्रह्म के उत्पत्ती कारण जानकर और कामदेव का नाश करने की वजह से आप [[ब्रह्मतत्वज्ञ]] हैं ।
71. आत्मा के समस्त तत्त्वों को अर्थात् आत्मविद्या जानने के कारण [[ब्रह्मोद्याविद्यती]] हैं ।
72. रत्नत्रय को सिद्ध करने वाले यतियों में भी आप श्रेष्ठ रहने से [[यतीश्वर]] भी कहलाते हैं ।

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः । सिद्धः सिद्धान्तविद्धयेयः सिद्धसाध्यो जगद्वितः ॥१०॥

अन्वयार्थ :

73. जब कषाय नष्ट हो जाने से आप [[शुद्ध]] कहे जाते हैं ।
74. सब जानने से आप [[बुद्ध]] हो ।
75. आत्मा का स्वरूप जानने से [[प्रबुद्धात्मा]] हो ।
76. चारों पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) को सिद्ध करने से अथवा सिद्धत्व (मोक्ष) ही एकमात्र उद्देश होने से, अथवा सात तत्व तथा नौ पदार्थों की सिद्धता करने से तथा रत्नत्रय सिद्ध करने के कारण से आप [[सिद्धार्थ]] कहलाते हैं ।
77. आपका शासन ही एकमात्र एकमेव है यह सिद्ध होने से आप [[सिद्धशासन]] कहलाते हैं ।
78. आप कर्मों का नाश करके [[सिद्ध]] कहलाते हैं ।
79. द्वादशांग सिद्धांतों में पारंगत होने से आप [[सिद्धान्तविद्]] हैं ।
80. योगी लोगों के ध्यान का विषय होने से आप [[ध्येय]] कहे जाते हैं ।
81. आप सिद्ध जाति के देवों द्वारा पूजे जाने से [[सिद्धसाध्य]] कहे जाते हैं ।
82. आप समस्त जगत के हितैषी हैं, उपकारक हैं इसलिये आप [[जगद्विता]] कहलाते हैं।

सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः । प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥

अन्वयार्थ :

83. आपने परिषह समभाव से सहन किये हैं, इसलिये [[सहिष्णु]] कहलाते हैं ।
84. आप आत्म-स्वरूप से अथवा स्वयं लीन रहने से कभी च्युत नहीं होते इसलिये [[अच्युत]] कहलाए गये हैं ।
85. आपके गुण गिने नहीं जाते, अर्थात् आपके गुणों का अंत नहीं इसलिए [[अनन्त]] कहे गये हैं ।

86. आप प्रभावी हैं, शक्तिशाली हैं इसलिए ||प्रभविष्णु|| के नाम से जाने जाते हैं ।
 87. इस जन्म में आप मोक्ष प्राप्त करेंगे अर्थात् आपके सर्व भवों में यह भव उत्कृष्ट है, इसलिए आपको ||भवोद्धव|| कहा जाता है ।
 88. शतेन्द्र के प्रभु होने का आपका स्वभाव है, इसलिए आप ||प्रभूष्णु|| हैं ।
 89. आप अनंतवीर्य हैं, इसलिये आप वृद्ध नहीं होंगे, इसलिये आपको ||अजरा|| कहा गया है ।
 90. आपकि मृत्यु अथवा अंत नहीं होगा इसलिये ||अजर्या|| हो ।
 91. आप करोड़ों सूर्यों के एकत्रित आभा से अधिक कांतिमान हैं, इसलिये ||भाजिष्णु|| हो ।
 92. पूर्ण-ज्ञान के अधिपति होने से ||धीश्वर|| हो ।
 93. आप कभी समाप्त नहीं होते, अर्थात् कम-अधिक भी नहीं होंगे अर्थात् आप का व्यय नहीं होगा इस कारण से आप ||अव्यय|| भी कहे जाते हैं ।

विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः । परमात्मा परंज्योतिस्तिजगत्परमेश्वरः ॥१२॥

अन्वयार्थ :

94. आप कर्म को जलाने वाले तेज से अथवा मौहांधकार को नष्ट करनेवाले सूर्य से अथवा धर्मामृत वर्षा करनेवाले चंद्र से अथवा रागद्वेषरूपी विभाव परिणाम नाश करने से अर्थात् अनेक कारणों से ||विभावसु|| कहे जाते हैं ।
 95. आपके स्वभाव में अब संसार में उत्पन्न होना नहीं है, इसलिये ||असंभूष्णु|| कहलाते हैं ।
 96. आप अपने आप ही प्रकाशीत हुए हैं, अर्थात् प्रकट हुए हैं, इसलिये आप ||स्वयंभूष्णु|| कहे जाते हैं ।
 97. अनदि-सिद्ध होने से ||पुरातन|| हो ।
 98. आत्मा के परमोक्तुष्ट होने से ||परमात्मा|| हो ।
 99. मोक्षमार्ग को प्रकाशित करनेवाले होने से ||परमज्योती|| हो ।
 100. तीनों लोक के स्वामी होने से आप ||त्रिजगत्परमेश्वर|| भी कहे जाते हैं ।

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः । पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वर ॥१॥

अन्वयार्थ :

101. आपके लिए देव भाषा का अतिशय है, इस वजह से आप ||दिव्यभाषापति|| कहलाते हैं ।
 102. मनोहारी तथा स्वयं-प्रकाशित होने से ||दिव्य|| कहे जाते हैं ।
 103. आपके वाणी में कोई भी दोष नहीं है, इससे आप ||पूतवाक्|| हो ।
 104. आपका शासन निर्दोष है, इससे ||पूतशासन|| भी कहे जाते हैं ।
 105. आपका आत्मा पवित्र होने से तथा आप भव्य-जीवों के आत्मा को पवित्र करनेवाले रहने से ||पूतात्मा|| हैं ।
 106. आपका केवलज्ञानरूपी तेज सर्वोक्तुष्ट होने से आप ||परमज्योति|| कहे जाते हैं ।
 107. धर्म के अधिकारी होने से ||धर्माध्यक्ष्या|| कहे जाते हैं ।
 108. इन्द्रियों के निग्रह करने के कारण अथवा इन्द्रियों के दमन करने से आप ||दमीश्वर|| हैं ।

श्रीपतिर्भगवान् अर्हन्त्ररजा विरजाः शुचिः । तीर्थकृत् केवलीशानः पूजार्हस्नातकोऽमलः ॥२॥

अन्वयार्थ :

109. मोक्षादि लक्ष्मी के स्वामी होने से ||श्रीपति|| हो ।
 110. महाज्ञानी होने से ||भगवान्|| हैं ।
 111. सबके आराध्य होने से ||अर्हन्|| हैं ।
 112. कर्मरूपी कलुष-रहित होने से ||अरजा|| हैं ।
 113. आप जीवों का कर्ममल रज दूर करनेवाले होने से ||विरजा|| कहे जाते हैं ।
 114. आप बाह्यंतर ब्रह्म पालन करने से तथा बाह्य मलमूत्र, मोह-रहित होने से ||शुचि|| हैं ।
 115. आप धर्मतीर्थ के प्रवर्तक रहने से ||तीर्थकृत्|| कहलाते हैं ।
 116. आप केवलज्ञानी होने से ||केवली|| हैं ।
 117. सबके ईश्वर होने से ||इशान्|| हो ।
 118. आठ प्रकार की पूजा अर्थात् अर्ध्य के योग्य होने से ||पूजार्ह|| हो ।
 119. सम्पूर्ण ज्ञान के धारक होने ||स्नातक|| हो ।
 120. धातू उपधातू के रहित होने से आप ||अमल|| कहे जाते हैं ।

अनंतदिप्तिज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः । मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३॥

अन्वयार्थ :

121. आपके शरीर तथा ज्ञान दोनों की दिप्ती अनंत है, इसलिए आप [[अनंतदिप्ति]] कहे जाते हैं ।
122. आप शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा के धारी हैं, इसलिये आपको [[ज्ञानात्मा]] कहा जाता है ।
123. आप मोक्षमार्ग में स्वयं ही प्रेरित हुए हैं, अर्थात् आपने गुरु के बगैर ही ज्ञान की प्राप्ति स्वयं चिंतन से की है, इसलिये आप [[स्वयंबुद्ध]] हैं ।
124. आप तीन-लोकों के जीवों को उपदेश देते हैं, तथा तीन-लोक के स्वामी हैं, इसलिये आप [[प्रजापति]] हैं ।
125. आपने घातिया कर्मों से अर्थात् पुनः संसार भ्रमण से मुक्ति पायी है, इस कारण से आप [[मुक्ता]] हैं ।
126. अनंतवीर्य के धारी होने से [[शक्ता]] हैं ।
127. दुःख अथवा कर्म बाधा से रहित होने से [[निराबाध]] हो ।
128. शरीर तो आपका अब मात्र नाम के लिये, अर्थात् कोई भी शरीर के वजह से होनेवाला परिषह आपका नहीं होने से [[निष्कल]] के नाम से अर्थात् जिनका पार्थिव नहीं होता ऐसे भी जाने जाते हैं ।
129. त्रिलोकिनाथ होने से [[भुवनेश्वर]] कहे जाते हैं ।

निरञ्जनो जगज्ज्योति-निरुक्तोक्तिनिरामयः । अचल स्थिति रक्षोभ्यः कूटस्थ स्थाणु रक्षयः ॥४॥

अन्वयार्थ :

130. कर्मस्त्रूपी कलुष अर्थात् अञ्जन के रहित होने से [[निरञ्जन]] हो ।
131. जग के लिये आप ज्ञान की ज्योति हैं, जो समस्त जीवों के लिये मार्ग-प्रकाशक है, इसलिये [[जगज्ज्योति]] हो ।
132. आपके वचनों के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं, कोई उक्ति आपके वचन को परास्त नहीं करती, इसलिये [[निरुक्तोक्ति]] हो ।
133. रोग व कर्म ना होने से [[निरामय]] हो ।
134. आप अनंत काल बीतने पर भी कायम, अचल रहते हैं, आप कालातित हैं इसलिये [[अचलस्थिती]] हैं ।
135. आप क्षीभ-रहित हैं, अर्थात् आपकि शांति अभंग है, आप अनाकुल हैं इसलिए आपको [[अक्षोभ्य]] कहा जाता है ।
136. सदा नित्य रहने से, लोकाग्र में विराजमान रहने से आपको [[कूटस्थ]] कहा जाता है ।
137. आपके गमनागमन का कोई हेतु नहीं, कारण नहीं, आप सदैव स्थिर हैं, इसलिये [[स्थाणु]] हैं ।
138. क्षय-रहित होने से, या हीनाधिक ना होने से आप [[अक्षय]] हैं ।

अग्रणी ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्याय शास्त्रकृत् । शास्ता धर्मपति-र्धम्यो धर्मात्मा धर्म तीर्थकृत् ॥५॥

अन्वयार्थ :

139. आपसे ही तीर्थ शुरू होता है, अर्थात् आप तीनों-लोकों में मुख्य होने से [[अग्रणी]] हो ।
140. गणधरों के मुख्य होने से [[ग्रामणी]] हो ।
141. अग्र में रहकर प्रजा को धर्म मार्ग पर चलाने से [[नेता]] हो ।
142. धर्म-शास्त्र को प्रथम उद्घाटित करने से [[प्रणेता]] कहे जाते हैं ।
143. आप नय तथा प्रमाण से न्याय-शास्त्रों के वक्ता हैं, इसलिए [[न्यायशास्त्रकृत]] हैं ।
144. सबको धर्म का शासन से चलाने का उपदेश देनेवाले [[शास्ता]] हो ।
145. दशविध धर्म के स्वामी तथा व्याख्याता होने से [[धर्मपति]] हो ।
146. स्वयं ही धर्म का साक्षात् स्वरूप होने से [[धर्म्य]] हो ।
147. आप आत्मा-स्वरूप (धर्म-स्वरूप) ही रहने से [[धर्मात्मा]] हैं ।
148. धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक होने से [[धर्मतीर्थकृत]] कहलाते हैं ।

वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः । वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्धवः ॥६॥

अन्वयार्थ :

149. आपके ध्वज पर वृषभ का चिन्ह होने से अथवा आप स्वयं धर्म की ध्वजा के रूप में आकाश में फहराने से [[वृषध्वज]] हो ।
150. धर्म के स्वामी होने से [[वृषाधीश]] हो ।
151. धर्म को तीन-लोक में प्रसिद्ध करने से [[वृषकेतु]] हैं ।
152. कर्म के नाश करने हेतु आपने मात्र धर्म के आयुध धारण किये हैं, इसलिये [[वृषायुध]] हो ।
153. धर्म की वृष्टि करने वाले आप [[वृष]] हो ।

154. धर्म के नायक (स्वामी) होने से [[धर्मपति]] हो ।
 155. सबके स्वामी होने से [[भर्ता]] हो ।
 156. बैल का चिन्ह होने से अथवा बैल आपका लांछन होने से आप [[वृषभांक]] हो ।
 157. माता के स्वप्न में शुभ-चिन्ह वृषभ दिखने से एवं उसके उपरांत आप पैदा हुए हैं, इसलिये आप [[वृषभोद्धव]] हैं ।

हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावनः । प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥७॥

अन्वयार्थ :

158. आप हिरण्यगर्भ थे, नाभिराज के संतति हैं, इसलिये आप [[हिरण्यनाभि]] कहलाते हैं ।
 159. आप अविनाशी हैं, यथार्थ आमरस्वरूप हैं, इसलिए आपको [[भूतात्मा]] कहा जाता है ।
 160. आप समस्त जीवों की रक्षा, बंधू के समान करने से [[भूतभृत]] कहलाते हैं ।
 161. यथार्थ मंगल-स्वरूप भावना के होने से [[भूतभावन]] हैं ।
 162. आपके जन्म से आपके वंश की वृद्धि हुई है, आपका जन्म प्रशंसनीय तथा प्रभावशाली है, इसलिये [[प्रभव]] हो ।
 163. आपके भव समाप्त हुए हैं, अर्थात यह आपका अंतिम भव है, इसलिए [[विभव]] हो ।
 164. आप केवलज्ञान रूप कांति से प्रकाशमान हैं इसलिये [[भास्वान]] हो ।
 165. समय-समय से आप में उत्पाद होता रहता है, इसलिये [[भव]] हो ।
 166. आत्म-स्वभाव में सदैव लीन होने से [[भाव]] हैं ।
 167. समस्त भवों का नाश करनेवाले होने से आपको [[भवान्तक]] कहा जाता है ।

हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूत विभवोद्धवः । स्वयंप्रभु प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८॥

अन्वयार्थ :

168. गर्भवतरण के समय हिरण्य की वृष्टि होने से अथवा आपकी माता को गर्भकाल में कोई भी वेदना तथा दुःख नहीं हुआ इसलिये आपको [[हिरण्यगर्भ]] कहा जाता है ।
 169. आपके गर्भ में होते हुए श्री आदि देवीयाँ आपके माता की सेवा करती थीं अथवा आपके अंतरंग के स्फुरायमान लक्ष्मी विराजमान है, इसलिये [[श्रीगर्भ]] हो ।
 170. भावों का नाश करनेवाले में आप प्रभु है, अथवा आप अनन्त-विभूति के स्वामी हैं इसलिये [[प्रभूतविभव]] हैं ।
 171. अब जन्म-रहित हिं, इसलिये [[अभव]] हैं ।
 172. स्वयं-समर्थ होने से अथवा आप ही खुद आपके स्वामी होने से अथवा आपका कोई स्वामी ना होने से आपको [[स्वयंप्रभु]] भी कहा जाता है ।
 173. केवलज्ञान के द्वारा आप सब आत्माओं में व्याप्त होने से अर्थात जो भी जिसके अंतर में है, आपके जानने से [[प्रभूतात्मा]] हैं ।
 174. समस्त जीवों के नाथ अथवा स्वामी होने से [[भूतनाथ]] हो ।
 175. तीनों-लोक अर्थात् सम्पूर्ण जगत के स्वामी होने से आप [[जगत्पति]] भी कहे जाते हैं ।

सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित् सर्व लोकजित् ॥९॥

अन्वयार्थ :

176. आप सब में प्रथम होने से [[सर्वादि]] हैं ।
 177. केवलज्ञान द्वारा लोकालोक सहज ही देखने से [[सर्वदृक्]] हैं ।
 178. कल्याणकारी हितोपदेश देने से [[सार्व]] हैं ।
 179. सर्व विश्व का सर्व विषय एक साथ जानने से [[सर्वज्ञ]] हैं ।
 180. सर्वर्थ से सम्यग्दर्शन धारी होने से [[सर्वदर्शन]] हैं ।
 181. समस्त जगत के जीवों के प्रिय रहने से [[सर्वात्मा]] हैं ।
 182. समस्त लोक अर्थात् तीन-लोक के स्वामी होने से [[सर्वलोकेश]] हैं ।
 183. आपको सर्व विद् है, अर्थात् ज्ञात है, इसलिये [[सर्वविद्]] हो ।
 184. तीन लोक को जीतने से या अनंतवीर्य होने से आपको [[सर्वलोकजित्]] भी कहा जाता है ।

सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत सुवाक सुरिर्बहुश्रुतः । विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशिर्षः शुचिश्रवाः ॥१०॥

अन्वयार्थ :

185. आपका ज्ञान प्रशंसनीय है, सुगति देनेवाला है, तथा आपकी अगली गति (पंचम गति अर्थात् मोक्ष) है, इसलिए आपको ||सुगति|| कहते हैं ।
186. आपका ज्ञान अत्युत्तम है तथा आपके बारे में सबने सुना है, अर्थात् आप प्रसिद्ध है इसलिये ||सुश्रुतः|| हो ।
187. आप समस्त भक्तों की भावना अच्छे से सुनते हैं इसलिये ||सुश्रुतः|| हैं ।
188. आपकी वाणी हितोपदेशी है तथा सप्त-भंगरूप होने से सम्पूर्ण है इसलिये ||सुवाक्षः|| हैं ।
189. सबके गुरु होने से ||सुरिः|| हो ।
190. शास्त्रों में पारंगत होने से ||बहुश्रुतः|| हो ।
191. आप जगत में प्रसिद्ध हैं तथा कोई भी शास्त्र में आपका यथार्थ वर्णन ना पाया जाने से आप ||विश्रुतः|| हो ।
192. लोक के अग्र में जाकर आप विराजमान होने वाले हैं, इसलिये ||विश्वशिर्षः|| हो ।
193. आप का ज्ञान निर्दोष है, निर्मल है, शुचित है, इसलिये आपको ||शुचिश्रवाः|| भी कहा जाता है ।

सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् । भूतभव्य भवद्वर्ता विश्वविद्या महेश्वरः ॥११॥

अन्वयार्थ :

195. आप के मानो सहस्र शीर्ष है, अर्थात् सहस्र प्रकार के बुद्धि के धारक हैं इसलिए ||सहस्रशीर्षः|| हो ।
196. आप लोकालोक समस्त क्षेत्र के समस्त पदार्थों के समस्त पर्यायों को जानते हैं, या आप समस्त क्षेत्रों में केवलज्ञान द्वारा व्याप्त हैं, इसलिये ||क्षेत्रज्ञः|| हैं ।
197. आप मानो सहस्र नेत्रों से देख रहे हो, अर्थात् आपकी दृष्टि अपार, अथाह है, इसलिये ||सहस्रदर्शीः|| हैं ।
198. अनंतवीर्य होने से आपके बल के बारे में आपको ||सहस्रपात्|| भी कहा जाता है ।
199. वर्तमान, भूत तथा भविष्य तीनों काल के स्वामी तथा तीनों काल के जीवों के बंधु-समान होने से ||भूतभव्यभवद्वर्ता|| हो ।
200. समस्त-विश्व के समस्त श्रेष्ठ विद्याओं में पारंगत होने से तथा आपके समान इन विद्याओं में कोई और पारंगत नहीं है, इसलिये ||विश्वविद्यामहेश्वरः|| भी आपको ही कहा जाता है, यह नाम आपके अलावा किसी और का हो ही नहीं सकता ।

॥इति दिव्यादिशतम्॥

स्थविष्टः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः । स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽ पिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥

अन्वयार्थ :

201. आपने मानों समस्त जीवों को अपने उपदेश द्वारा अवकाश दिया है, अर्थात् कैसे रहना बताया है, ऐसि स्थिर शक्ति होने से आपको ||स्थविष्टः|| कहा जाता है ।
202. अनादि अनंत होने से आप अत्यंत वृद्ध है, इसलिये ||स्थविरः|| भी कहे जाते हैं ।
203. आप सब जीवों में मुख्य हैं, अर्थात् गुण, बल, सुख, ज्ञान से आप सब में मुख्य हैं, इसलिये आप ||ज्येष्ठः|| हो ।
204. सबसे अग्रसर या नेता होने से ||पृष्ठः|| हो ।
205. सब में प्रिय होने से ||प्रेष्ठः|| हो ।
206. अतिशय बुद्धि के धारी होने से ||वरिष्ठधीः|| हो ।
207. अत्यंत स्थिर अर्थात् अविनाशी होने से ||स्थेष्ठः|| हो ।
208. सबके गुरु होने से या सबके महान होने से ||गरिष्ठः|| हो ।
209. आपके दृष्य स्वरूप से परे अनंत स्वरूप होने से अथवा अनन्त गुणों के धारक होने से ||बंहिष्ठः|| हो ।
210. सबसे प्रशंसनीय होने से अथवा सबमें महान होने से ||श्रेष्ठः|| हो ।
211. मात्र केवलज्ञान के गोचर होने से अथवा अतिशय सुक्ष्म होने से ||अनिष्ठः|| हो ।
212. आपकी कल्याणकारी हितोपदेशी वाणी सबको पुज्य होने से आपको ||गरिष्ठगीः|| भी कहा जाता है ।

विश्वभृद् विश्वसृद् विश्वेद् विश्वभृग् विश्वनायकः । विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजित् विजितान्तकः ॥२॥

अन्वयार्थ :

213. चतुर्गीति विश्व अर्थात् संसार का नाश करने से आप ||विश्वभृद्|| हो ।
214. विश्व के विधि-विधान के सर्जन होने से ||विश्वसृद्|| हो ।
215. तीन लोकों में श्रेष्ठ होने से या तीन लोक रूपी भुवन के स्वामी होने से ||विश्वेद्|| हो ।
216. विश्व के रक्षक अर्थात् कर्मशत्रु से रक्षा करनेवाला उपदेश देने से ||विश्वसृक्|| हो ।
217. सब विश्व के नाथ होने से अग्रणीय होने से उनका नेता रहने से ||विश्वनायकः|| हो ।
218. समस्त प्राणीयों के विश्वास-योग्य होने से तथा अपने केवलज्ञान से तीन लोक में निवास करने से ||विश्वाशीः|| हो ।
219. सम्पूर्ण विश्व का स्वरूप आपके आत्मा में होने से अथवा केवलज्ञान जो समस्त विश्वरूपी है, जो आपके आत्मा का स्वरूप होने से ||विश्वरूपात्मा|| हो ।
220. आपने सदैव चलने वाले संसार को अपने आत्मस्वरूप से जीत लिया है, अर्थात् आपके समक्ष संसार भी हार जाने से ||विश्वजित्|| हो ।

विभावो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन् । विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥

अन्वयार्थ :

- 222. किसी भी तरह के मनोविकार अर्थात् भाव नहीं रहने से ॥विभाव॥ हो ।
- 223. भय-रहित होने से अर्थात् आपके शत्रु ही नहीं है, तब भय कहाँ से हो अतः ॥विभय॥ हो ।
- 224. अनंतवीर्य होने से ॥वीर॥ हो ।
- 225. शोक अर्थात् दुःख-रहित होने से अर्थात् अनंत-सुख के स्वामी होने से ॥विशोक॥ हो ।
- 226. जरा-रहित अर्थात् आप कदापि जरावस्था को प्राप्त नहीं होंगे इसलिये ॥विजर॥ हो ।
- 227. लेकिन अनादिकालीन होने से ॥जर-बृद्ध॥ हो ।
- 228. राग-रहित होने से ॥विराग॥ हो ।
- 229. विषय-रहित होने से ॥विरत॥ हो ।
- 230. स्व मे रमण रहने से अर्थात् पर का कोई संग नहीं रहने से ॥असंग॥ हो ।
- 231. एकाकि होने से अथवा स्वभाव मे रहने से मात्र स्वयम् का साथ होने से ॥विविक्त॥ हो ।
- 232. किसी से इर्षा, द्वेष, मत्सर ना होने से आप ॥वीतमत्सर॥ भी कहलाते हैं ।

विनेय जनता बंधु विलीना शेष कल्मषः । वियोगो योगविद् विद्वान् विधाता सुविधि सुधीः ॥४॥

अन्वयार्थ :

- 233. जो आपके लिये विनय धारण करते है, आपकी भक्ति करते है, प्रार्थना करते है, ऐसे जनों के बन्धु अर्थात् उनके हितैषी होने से आप ॥विनेयजनताबंधु॥ हो ।
- 234. समस्त कर्मरूपी कालिमा से रहीत होने से ॥विलीनाशेषकल्मष॥ हो ।
- 235. मन, वच, काय से किसी भी पर-पदार्थ के कोई भी योग ना होने से ॥वियोग॥ हो ।
- 236. योग के ज्ञाता होने से ॥योगवित्॥ हो ।
- 237. सम्पूर्ण ज्ञान के धारी होने से ॥विद्वान्॥ हो ।
- 238. धर्म रूपी सृष्टि से कर्ता होने से अथवा सबके गुरु होने से ॥विधाता॥ हो ।
- 239. आपकी समस्त क्रिया अत्यंत प्रशंसनीय होने से ॥सुविधी॥ हो ।
- 240. अतिशय बुद्धिमान होने से ॥सुधी॥ कहलाते हैं ।

क्षान्ति भाक् पृथ्वीमूर्तिः शान्ति भाक् सलिलात्मकः । वायुमूर्ति रसंगात्मा वन्हि मूर्ति धर्मधृक् ॥५॥

अन्वयार्थ :

- 241. उत्तम क्षमा को धारण करनेवाले होने से ॥क्षान्तिभाक्॥ हो ।
- 242. पृथ्वी के समान सहनशीलता होने से ॥पृथ्वीमूर्ति॥ हो ।
- 243. शांत होने से ॥शान्तिभाक्॥ हो ।
- 244. जल के समान निर्मल होने से अथवा जल के समान सब का कर्म-मल धोनेवाले होने से ॥सलीलात्मक॥ हो ।
- 245. वायु समस्त जीवों को स्पर्श करते हुए किसी से संबंध नहीं बनाती ऐसे होने से ॥वायुमूर्ति॥ हो ।
- 246. सम्पूर्ण परिग्रह-रहित होने से (आप बहिरंग तथा अंतरंग लक्ष्मी के स्वामी होते हुए भी) ॥असंगात्मा॥ हो ।
- 247. आपने अग्नि के समान कर्मरूपी इंधन को जलाने से अथवा अग्नि के समान ही उर्ध्वगमन (सिद्धशीला) का स्वभाव होने से ॥वन्हिमूर्ति॥ हो ।
- 248. अधर्म का नाश करने से ॥अधर्मधृक्॥ भी कहे जाते हैं ।

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सूत्राम पूजितः । ऋत्विग्यज्ञ पति र्यज्ञो यज्ञांगम मृतं हविः ॥६॥

अन्वयार्थ :

- 249. जैसे यज्ञ मे सामग्री का होम किया जाता है, वैसे ही आपने कर्मरूपी सामग्री को जलाया है, इसलिये आपको ॥सुयज्वा॥ कहा जाता है ।
- 250. स्वर्यं के आत्मा की ही अथवा स्वभाव भाव की आराधना करने से अथवा भाव-पूजा के कर्ता होने से ॥यजमानात्मा॥ हो ।
- 251. सदैव परमानंद समुद्र में अभिषिक्त रहने से ॥सुत्वा॥ हो ।
- 252. इन्द्र के द्वारा पूजित होने से ॥सूत्रामपूजित॥ हो ।

253. ध्यानरूप अग्नि मे कर्म को भस्म करने से अथवा ज्ञानरूपी यज्ञ के कर्ता होने से [[ऋत्विक]] हो ।
254. ज्ञान यज्ञ के अधिकारी जनों में प्रमुख होने से [[यज्ञपति]] हो ।
255. जैसे यज्ञ किसी पूज्य के लिये किया जाता है, वैसे ही आप सबके पूज्य हैं, इसलिये [[यज्ञ]] हो ।
256. यज्ञ के लिये मुख्य कारण होने से अथवा सबके पूज्य होने से [[यज्ञांग]] हो ।
257. मरण-रहित होने से अथवा संसार तृष्णा को शांत करनेवाला उपदेश देनेवाले होने से [[अमृत]] हो ।
258. स्वात्मालीन रहने से [[हवि]] भी कहलाते हैं ।

व्योम मुर्ति मूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोचलः । सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्ति महाप्रभः ॥७॥

अन्वयार्थ :

259. आकाश के समान निर्मल होने से तथा सर्वत्र व्याप्त होने से [[व्योममूर्ति]] हो ।
260. रूप, रस, गंध व स्पर्श रहित होने से [[अमूर्तात्मा]] हो ।
261. निष्कर्म अथवा कर्मरूपी लेप-रहित होने से [[निर्लेप]] हो ।
262. रागादि अथवा मल-मूत्रादि दोष-रहित होने से [[निर्मल]] हो ।
263. सर्वदा स्थिर अर्थात् सतत होने से [[अचल]] हो ।
264. चंद्रमा के समान शीतलता प्रदान करने वाले होने से [[सोममूर्ति]] हो ।
265. अत्यंत सौम्य होने से [[सुसौम्यात्मा]] हो ।
266. सूर्य के समान आभा तथा कांतिमान होने से [[सूर्यमूर्ति]] हो ।
267. अत्यंत तेजोमय होने से अथवा प्रभावशाली होने से [[महाप्रभ]] कहलाते हैं ।

मन्त्रविन् मन्त्रकृन् मन्त्री मन्त्रमूर्ति रनन्तगः । स्वतन्त्र स्तन्त्र कृत्स्वन्तः कृतान्तान्तः कृतान्त कृत् ॥८॥

अन्वयार्थ :

268. सकल मंत्रों के ज्ञाता होने से [[मन्त्रविन्]] हो ।
269. आपने जो चार अनुयोग बताये हैं, वे मन्त्र के समान जप करने योग्य होने से आप को [[मन्त्रकृन्]] हो ।
270. स्वात्मा की मंत्राणा करने से अथवा प्रमुख रहने से अथवा लोक के रक्षक होने से आप [[मन्त्री]] हो ।
271. स्वयं भी आप जप अथवा चिंतन करने योग्य होने से [[मन्त्रमूर्ति]] हो ।
272. अनंतज्ञान धारी होने से [[अनंतग]] हो ।
273. आपका सिद्धांत आत्मा ही होने से [[स्वतन्त्र]] हो ।
274. आगम अथवा धर्मतंत्र के प्रणेता होने से [[तन्त्रकृत]] हो ।
275. शुद्ध अंतकरण होने से [[स्वंत]] हो ।
276. यम का अर्थात् मरण का नाश करने से [[कृतान्तान्त]] हो ।
277. पुण्य-वृद्धी का कारण होने से अथवा धर्म का कारण होने से [[कृतान्तकृत]] भी कहे जाते हैं ।

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः । नित्यो मृत्युञ्जयो मृत्युर मृतात्माऽमृतोद्भवः ॥९॥

अन्वयार्थ :

278. मोक्ष-मार्ग मे पारंगत अथवा प्रवीण होने से अथवा हरिहरादि से पूजित होने से [[कृती]] हो ।
279. मोक्षरूप अंतीम साध्य पानेवाले होने से [[कृतार्थ]] हो ।
280. जो पुरुषार्थ आपने मोक्षमार्ग के लिये किया वह अत्यंत प्रशंसनीय होने से [[सत्कृत्य]] हो ।
281. आपने मोक्ष पाने तक के सब कार्य कर लिये हैं, अर्थात् आपके करनेयोग्य अब कोई कार्य नहीं रहनेसे आप संतुष्ट हैं, [[कृतकृत्य]] हैं ।
282. ध्यान से आपने कर्म, नोकर्म को भस्म किया है, ज्ञानरूपी यज्ञ भी सम्पूर्ण किया है तथा आपकी तत्त्वचर्या का यज्ञ तक सफल समाप्त होने से [[कृतक्रतु]] हो ।
283. आप सदैव हैं, इससे आपको [[नित्य]] भी कहा जाता है ।
284. मृत्यु को परास्त करने से [[मृत्युञ्जय]] हो ।
285. आप की आत्मा अमर है तथा आप अभी मृत्यु को कभी प्राप्त नहीं होंगे इसलिये [[अमृत्यु]] हैं ।
286. अविनाशी आत्मा मात्र रहने से आप [[अमृतात्मा]] हो ।
287. आपके अमृतमय मोक्षमार्ग के उपदेश से समस्त जीवों को अमर होने का मार्ग ज्ञात होने से [[अमृतोद्भव]] हैं ।

ब्रह्मनिष्ठ परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभवः । महाब्रह्म पतिर्ब्रह्मेऽ महाब्रह्म पदेश्वर ॥१०॥

अन्वयार्थ :

- 288. आत्मब्रह्म मे लीन रहने से ||ब्रह्मनिष्ठ|| हो ।
- 289. सर्व ज्ञान मे उक्षुष्ट ज्ञान -केवलज्ञान आत्मा मे धारण करने से ||परंब्रह्म|| हो ।
- 290. आपके आत्मा का केवलज्ञान स्वरूप होने से ||ब्रह्मात्मा|| हो ।
- 291. आपसे केवल ज्ञान की उत्पत्ति होती है, तथा शुद्धात्मा की प्राप्ति होति है, इसलिये ||ब्रह्मसंभव|| हो ।
- 292. चार ज्ञान के धारी गणधरादि के स्वामी, पूज्य होने से ||महाब्रह्मपति|| हो ।
- 293. समस्त केवली मे प्रधान होने से ||ब्रह्मेऽ|| हो ।
- 294. मोक्षपद के अर्थात् महा-ब्रह्मपद के अधिकारी होने से आपको ||महाब्रह्मपदेश्वर|| कहा जाता है ।

सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्म दमप्रभु । प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराण पुरुषोत्तमः ॥११॥

अन्वयार्थ :

- 295. स्वात्मनुभूति के आनंद मे लीन रहने से तथा सदैव प्रसन्न रहकर भक्तों को देनेवाले होने से ||सुप्रसन्न|| हो ।
- 296. आपके आत्मा मे कोई मल नहीं, अर्थात् वह भी प्रसन्न है इसलिये ||प्रसन्नात्मा|| हो ।
- 297. केवलज्ञान, दशविध धर्म तथा इंद्रिय-निग्रह के स्वामी होने से ||ज्ञानधर्मदमप्रभु|| हो ।
- 298. क्रोधादि कषायों को शमन की हुई आत्मा होने से ||प्रशमात्मा|| हो ।
- 299. आपका दर्शन भी परम शान्ति प्रदान करता है, आपकी आत्मा भी परमशान्त है, तथा आपक उपदेश भी परम-शान्ति देनेवाला पद का मार्ग दिखाता है, इसलिये हे विभी आपको ||प्रशान्तात्मा|| कहा है ।
- 300. अनादि काल से जितने भी पुरुष हुए हैं, उन सबमें आप उक्षुष्ट रहने से आप ||पुराणपुरुषोत्तम|| हो ।

इति स्थविष्णादिशतम् ॥३॥

महाऽशोक ध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्मविष्ट्रः । पद्मेश पद्मसम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥१॥

अन्वयार्थ :

- 301. आपके ऐष प्रतिहार्यों में महा अशोकवृक्ष है, इसलिए आपको ||महाऽशोकध्वजा|| कहा जाता है ।
- 302. आपने शोक को नष्ट किया है इसलिये ||अशोक|| है ।
- 303. सबसे सुख देने वाले या सब में ज्येष्ठ होने से ||कः|| हो ।
- 304. मोक्षमार्ग की शुरुवात करने से ||स्रष्टा|| हो ।
- 305. आप कमलासन पर विराजमान हैं, जो की देवकृत है, इसलिये ||पद्मविष्ट्र|| है ।
- 306. अंतरंग लक्ष्मी (अनंत सुख, वीर्य, ज्ञान, दर्शन) तथा बहिरंग लक्ष्मी (समवशरण, प्रातिहार्य, अतिशय) होने से ||पद्मेश|| हो ।
- 307. समवशरण के उपरांत जब भी आप विहार करते हो, तब आपके चरणों के नीचे देवकृत अतिशय से कमलों की रचना होती है, यद्यपि आप उन्हे स्पर्श करे बगैर ही अधर में चलते हैं, तो उस कमल रचना से ||पद्मसम्भूतिः|| कहे जाते हो ।
- 308. कमल के समान नेत्र-सुखद नाभी होने से ||पद्मनाभ|| हो ।
- 309. आपके समान कोई और नहीं है, ना होगा इस् कारण से आपको ||अनुत्तर|| नाम से भी सम्बोधा जाता है ।

पद्मयोनि र्जगद्यो निरित्यः स्तुत्यः स्तुतिश्वरः । स्तवनाहर्त्त्वा हृषीकेशो जितजेय कृतक्रियः ॥२॥

अन्वयार्थ :

- 310. आपके अंतरंग से और उस निमित्त से बहिरंग लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है, इसलिये आप ||पद्मयोनि|| हो अर्थात् लक्ष्मी को जन्म देनेवाले कहा जाता है ।
- 311. जगत् की उत्पत्ती के भी कारण आप हैं, क्योंकि आपने ही जगत् के प्राणीयों को जीने की राह दी है, इसलिये ||जगतयोनि|| हो ।
- 312. आपके होने का ज्ञान होने से अथवा आप जो जानना चाहें उसका ज्ञान होने से आपको ||इत्या|| नाम कहा जाता है (यहाँ यह बताये की येशु को भी इत्य नाम से जाना जाता है, जो है = इत्य) ।
- 313. सबके द्वारा प्रशंसनीय होने से स्तुति-योग्य होने से ||स्तुत्या|| हो ।
- 314. समस्त स्तुतियों में आपकी स्तुति श्रेष्ठ होने से ||स्तुतिश्वरा|| हो ।
- 315. ऐसि उक्षुष्ट स्तुतियों के पात्र होने से या ऐसी स्तुति के लिये श्रेष्ठ होने से ||स्तवनाहर्त्त्वा|| हो ।

316. आपने इन्द्रियों पर विजय पाकर उन्हे दास बनाया, अपने वश में किया है, इसलिये आप हृषिक + इश = [[हृषीकेश]] कहलाते हैं।
 317. जिन पर विजय पानी चाहिये अर्थात् जो जेय हैं, उन्हे जीतने के कारण आप [[जितजेय]] हैं।
 318. शुद्धात्मा की प्राप्ति के पुरुषार्थ के लिये आपने सारे कृत्य पूर्ण किये इस लिये आप [[कृतक्रिया]] हैं।

गणाधिपो गणज्येष्टो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः । गुणाकारो गुणाम्बोधि गुणज्ञो गुणनायकः ॥३॥

अन्वयार्थ :

319. बारह प्रकार की सभाएं आपके स्वामित्व में समवशरण होती हैं, इसलिए [[गणाधिप]] हो ।
 320. समस्त चतुर्विध संघ में मुख्य होने से [[गणज्येष्ट]] हो ।
 321. आपके केवल ज्ञानोपदेश में जन ऐसे आनंदित होते हैं, जैसे दिव्य उपवन में विहर रहे हो, इसलिये आपको [[गण्य]] कहते हैं ।
 322. आप स्वयं ही पुण्यरूप हैं, इसलिये [[पुण्य]] हो ।
 323. सब जन, गण के अग्रणी होने से [[गणाग्रणी]] हो ।
 324. गुणों के खान, भंडार होने से तथा गुणों कि वृद्धि करने वाला उपदेश देने से [[गुणाकर]] हो ।
 325. जितने समुद्र में रक्ष हैं, उतने आपके गुण हैं, अतः [[गुणाम्बोधि]] हो ।
 326. समस्त गुण, उनकी उत्पत्ती, उनके धारण करने से आनेवाली विशुद्धी को जानने से आप [[गुणज्ञ]] हो ।
 327. इन सब गुणों के नेता होने से आपको [[गुणनायक]] भी कहा जाता है ।

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुण पुण्यगीर्गुणः । शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥४॥

अन्वयार्थ :

328. आप मात्र गुणों के धारक ही नहीं, गुणों का सम्मान भी करते हैं, इसलिए [[गुणादरी]] हो ।
 329. अवगुणों का नाश करने से अथवा इंद्रिय इच्छाओं का दमन करने से [[गुणोच्छेदी]] हो ।
 330. विशेष आकार रहित होने से या विभाव नाश करने से अथवा गुण होनेवाले किसी भी वस्तु का आपका संबंध का अभाव होने से आपको [[निर्गुण]] कहा जाता है ।
 331. आपकी वाणी को सुनना पुण्यार्जन करानेवाला है, इसलिये आप [[पुण्यगी]] हो ।
 332. आप स्वयं ही शुद्ध गुण-स्वरूप हैं, [[गुण]] हैं ।
 333. जिसे शरण जाया जाये ऐसे एकमात्र होने से [[शरण्यभूत]] हो ।
 334. जैसा आपका उपदेश पुण्यरूप है, वैसे ही आपके वचन मात्र सुनने से पुण्य प्राप्त होता है, आपके वचन सुनने मात्र से पुण्य प्राप्त होता है, इसलिये [[पुण्यवाक]] हो ।
 335. पूजित, पूज्य, पुण्यस्वरूप होने से [[पूत]] हो ।
 336. आप सर्वोपरी होने से, सबमें श्रेष्ठ होने से [[वरेण्य]] हो ।
 337. पुण्य के स्वामी होने से आपको [[पुण्यनायक]] कहा जाता है ।

अगण्यः पुण्यधीर्गुणः पुण्यकृत्पुण्यशासनः । धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्य निरोधकः ॥५॥

अन्वयार्थ :

338. आप संसार के जनों में अब गिने नहीं जायेंगे अथवा आपके गुण अनंत होने से आप [[अगण्य]] हैं ।
 339. आपका ज्ञान यथार्थ होने से साथ पूण्यकारक हैं, इसलिये [[पुण्यधी]] हैं ।
 340. जिनके लिये समवशरण की दिव्य रचना होती है, उनमें आप [[गण्य]] हैं ।
 341. पुण्य के कर्ता है इसलिये [[पुण्यकृत]] हैं ।
 342. आपने उपदेशित धर्मशासन पुण्यरूप है, इसलिये [[पुण्यशासन]] हैं ।
 343. धर्म, सत्य, गुण तथा ज्ञान के समुह के धारक होने से [[धर्माराम]] हैं ।
 344. आप [[गुणग्राम]] हैं ।
 345. मोक्ष के लिये आपने पाप और पुण्य दोनों का निरोध किया है, क्योंकि मात्र पाप का नाश मोक्ष प्राप्ति के लिये पर्याप्त नहीं है इसलिये [[पुण्यापुण्यनिरोधक]] भी कहे जाते हैं ।

पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः । निर्द्विद्वो निर्मद]] शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥

अन्वयार्थ :

346. आप [[पापापेता]] हैं ।
 347. [[विपापात्मा]] हैं ।
 348. [[विपात्मा]] हैं ।
 349. कर्मल रहित विशुद्ध होने से आप [[वीतकलमष]] हैं ।
 350. स्व और पर का द्वंद्व समाप्त करने से [[निर्द्वंद्व]] हैं ।
 351. अहंकार, मान, मद रहित होने से [[निर्मदा]] हैं ।
 352. आपके भाव मृदु / शान्त होने से [[शान्त]] हैं ।
 353. मोह, इच्छा आदि रहित होने से [[निर्मोह]] हैं ।
 354. आपसे किसी को भी उपद्रव नहीं होता, आपके चलने से (अधर), बैठने से (अधर) वचन से (ओष्ठ ना हिलने से) किसी को भी कोई भी उपद्रव अथवा आक्रमण नहीं होता इसलिये [[निरुपद्रव]] कहा जाता है ।

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः । निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निरास्तवः ॥७॥

अन्वयार्थ :

355. आपके परिषह जयी होने से आप पलक नहीं झापकते अर्थात् आपकी दृष्टि अपलक इसलिये आपको [[निर्निमेष]] कहते हैं ।
 356. आपको द्रव्याहार की जरूरत नहीं हैं, आपको द्रव्य वर्गण से आहार प्राप्त होता है, अर्थात् आप [[निराहार]] हो ।
 357. आपने सब क्रियाएं बंद करी हैं, अथवा आपके कोई भी क्रिया से हलन-चलन से कोई हिंसा नहीं होती, इसलिये आप [[निष्क्रिय]] हैं ।
 358. आपने सारे कर्मरूपी संकटों का नाश किया अथवा आप संकट-रहित हैं, अथवा आपके सानिध्य में संकट नहीं आ सकता इसलिये आप [[निरुपप्लव]] हो ।
 359. सर्व कर्म-मैल हट जाने से, अथवा आपके आत्मा में कलुषितता का अभाव होने से [[निष्कलंक]] हो ।
 360. पाप को, पुण्य को, कर्म को अर्थात् मोक्ष के मार्ग में अटकाव करनेवाले सबको आपने परास्त किया है, इसलिये आप [[निरस्तैना]] हो ।
 361. अपने स्वयं से चिपके हुए सब मैल को आपने धो दिया है, अपनी आत्मा को परमशुक्ल बनाया है, इसलिये आपको [[निर्धूतांग]] कहा है ।
 362. आपके कर्म आस्र बंद होने से, रुकने से, फिर कभी ना आ पाने से आपको [[निरास्तव]] भी कहा जाता है ।

विशालो विपुल ज्योतिरतिलोऽ चिन्त्यवैभवः । सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभूत् सुनय तत्त्ववित् ॥८॥

अन्वयार्थ :

363. आप बृहद् हैं, महान है इसलिये [[विशाल]] हैं ।
 364. केवलज्ञान रूप अपार, अखण्ड ज्योति के धारक [[विपुलज्योति]] हैं ।
 365. आप अनुपम हैं, आपकी तुलना किसी से भी नहीं हो सकती अथवा किसी भी वस्तु के साथ आपको तोला नहीं जा सकता इस लिये [[अतुल]] हैं ।
 366. आपका केवलज्ञानरूपी अंतरंग वैभव कल्पना से परे है, अथवा आपके विभुति का कोई भी यथार्थ समुचित चिंतवन नहीं कर सकता इतनी आपकी विभुति अगम्य है, आप [[अचिन्त्यवैभव]] हैं ।
 367. आपके सर्व ओर ज्ञानी गणधर विराजमान रहते हैं, अर्थात् आप सुजनों से घिरे हुए रहते हैं, अथवा सुजन सदैव आपके आसपास आकर रुके रहते हैं, इसलिये [[सुसंवृत]] हो ।
 368. अभी आपकी आत्मा किसी भी कर्मस्वरूप को दृगोचर नहीं होती, उनके लिये वह गुप्त हो गयी है, इसलिये [[सुगुप्तात्मा]] हो ।
 369. आप उत्तम ज्ञाता होने से अथवा आप का होना उत्तम होने से अथवा आप सर्वोत्तम होने से आप [[सुभूत]] हैं ।
 370. सप्तनयों को यथार्थ में जानने से, अथवा सब वस्तु तथा घटनाओं को सप्तनयों से समझाने से आपको [[सुनयतत्त्ववित्]] भी कहा जाता है ।

एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः । धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः ॥९॥

अन्वयार्थ :

371. एक ज्ञान के धारी [[एकविद्या]] हो ।
 372. अनेक विद्याओं के ज्ञान तथा पारंगत होने से [[महाविद्या]] हो ।
 373. प्रत्यक्ष ज्ञान के धारी होने से [[मुनि]] हो ।
 374. तपस्वीयों के भी ज्ञान वृद्ध होने से [[परिवृढ]] हो ।
 375. जगत्-रक्षक होने से [[पति]] हो ।
 376. बुद्धी आपकी दासी है इसलिये [[धीश]] हो ।
 377. सागर में जितना जल है, उससे भी ज्यादा आपका ज्ञान होने से अथवा ज्ञान के सागर होने से [[विद्यानिधी]] है ।
 378. त्रैलोक्य में घटने वाली घटना आपको ऐसे झलकती है, जैसे आप वहाँ हो, इस तरह से हर घटना के आप [[साक्षी]] हो ।
 379. मात्र मोक्षमार्ग कथन करने में ही दृढ़ रहने से [[विनेता]] हो ।
 380. मृत्यु का नाश करनेसे आपको [[विहतान्तक]] भी कहा जाता है ।

पिता पितामहं पाता पवित्रः पावनो गतिः । त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥ १० ॥

अन्वयार्थः :

- 381. एक [[पिता]] के समान आप भव्यों को नरकादि गतियों से बचने का उपदेश देते हैं अथवा बचाते हैं ।
- 382. सबके गुरु होने से सब में ज्येष्ठ होने से आप [[पितामह]] हैं ।
- 383. सबको रास्ता दिखाने से अथवा सब ही जीव आगे आपके ही मार्ग पर चलने से जैसे आपके वंशज हैं, इसलिये आप [[पाता]] हो ।
- 384. आप स्वयं पवित्र हो तथा समस्त जनों के लिये भी [[पवित्र]] हो ।
- 385. दुरितों को पवित्र करने से आप [[पावन]] हो ।
- 386. आप ज्ञान-स्वरूप अर्थात् [[गति]] हो ।
- 387. भव-तारक होने से आप [[त्राता]] हो ।
- 388. जैसे उत्तम वैद्य का नाम लेते ही अनेक रोग दूर हो जाते हैं, तत्सम आपका नाम-मात्र भी जन्म, जरा, मरणरूपी रोगों से मुक्ति दिलानेवाला है इसलिये आप उत्तम वैद्य अर्थात् [[भिषग्वर]] कहलाते हो ।
- 389. आप सबमें श्रेष्ठ होने से [[वर्य]] हो ।
- 390. मोक्ष का वरदान देने से [[वरद]] हो तथा आप समस्त जनों को वरदान से प्राप्त हुए हैं, इसलिये भी [[वरद]] कहलाते हैं ।
- 391. इच्छा पुर्ण करने वाले आप [[परम]] हो ।
- 392. आप स्वयं की आत्मा को तथा भक्तों को पवित्र करनेवाले होने से [[पुमान]] हो ।

कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः । प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुभूवनैकपितामहः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः :

- 393. अनेक दृष्टियों से, उपमाओं से धर्मधर्म का निरूपण किया करते हैं, इसलिये आप [[कवि]] हो ।
- 394. आप अनादिकालीन हो तथा सर्व पुराणों में आपकी चर्चा पायी जाती हैं, इसलिए [[पुराणपुरुष]] हो ।
- 395. आप इतने वृद्ध हो, कि आपका जन्म किसी ने देखा नहीं है, इसलिये [[वर्षीयान्]] हो ।
- 396. अनंतवीर्य होने से [[वृषभ]] हो ।
- 397. आप सबसे अग्रगामी हैं, महाजनों में श्रेष्ठ हैं, इसलिये [[पुरु]] हैं ।
- 398. आपके भक्ति, सेवा करनेवालों को अनायास ही प्रतिष्ठा प्राप्ति हो जाती है, अथवा स्वैर्य आपसे उत्पन्न हुआ है इसलिये [[प्रतिष्ठाप्रसव]] हो ।
- 399. मोक्ष के कारण आप [[हेतु]] हो ।
- 400. तीनों लोकों में मात्र एक आप ही ऐसे हों जो सबका कल्याण करनेवाला, मोक्षमार्ग बतानेवाला हितोपदेश देते हैं, इसलिये हे विभो आपको [[भूवनैकपितामह]] भी कहा जाता है ।

इति महाऽशोकाऽदिव्यजम् !!

श्रीवृक्षलक्षणं श्लक्षणो लक्षण्यः शुभलक्षणः । निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥ १ ॥

अन्वयार्थः :

- 401. आपके अष्ट-प्राअतिहार्यों में से एक अशोक अर्थात् श्रीवृक्ष है, इसलिये आप को [[श्रीवृक्षलक्षण]] कहते हैं ।
- 402. आपका शरीर अत्यंत मृदू होने से, लक्ष्मी के द्वारा आलिंगित होने से अथवा सुक्ष्म होने से [[श्लक्षण]] हो ।
- 403. लक्षण-सहित होने से [[लक्षण्य]] हो ।
- 404. १००८ शुभ-लक्षण होने से [[शुभलक्षण]] हो ।
- 405. इंद्रीय-रहीत होने से [[निरक्ष]] हो ।
- 406. कमल-नयन होने से [[पुण्डरीकाक्ष]] हो ।
- 407. सम्पूर्ण होने से [[पुष्कल]] हो ।
- 408. कमलदल के समान दीर्घ नेत्र होने से [[पुष्करेक्षण]] हो ।

सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः । बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महद्विकः ॥ २ ॥

अन्वयार्थः :

- 409. मोक्षरूप सिद्धिदायक होने से [[सिद्धिद]] हो ।

410. जो भी जनों के संकल्प / इच्छा है, उन्हें सफल करनेवाले होने से ||सिद्धसंकल्प|| हो ।
 411. पूर्ण स्वानंद रूप आत्मलीन होने से ||सिद्धात्मा|| हो ।
 412. मोक्षमार्ग रूप साधन होने से ||सिद्धसाधन|| हो ।
 413. बुद्धिमान अथवा विशेष ज्ञानीयों द्वारा जानने-योग्य होने से ||बुध्यबोध्य|| हो ।
 414. केवलज्ञानी होने से ||महाबोधी|| हो ।
 415. आपके सर्वत्र पूज्य होने से तथा आपकी पुजनीयता सतत वृद्धीमान होने से ||वर्द्धमान|| हो ।
 416. आपकी विभूति विशेष होने से, ऋद्धियाँ अपने आप आपको अवगत होने से ||महर्दिक|| कहे जाते हो ।

**वेदांगो वेदविद् वेद्यो जातरूपो विदांवरः ।
वेदवेदः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥**

अन्वयार्थ :

417. चार अनुयोगरूपी वेद के कारण आप ||वेदांग|| हैं ।
 418. आप आत्मा का यथार्थ स्वरूप जानते हैं, इसलिये ||वेदविद्|| हैं ।
 419. आप आगम अर्थात् अनुयोगों द्वारा जानने के योग्य होने से ||वेद्य|| हैं ।
 420. जन्म लेते समय जो दिगंबर अवस्था तथा विकार-रहित अवस्था होती हैं, वैसे होने से ||जातरूप|| हैं ।
 421. आप सब विद्वानों में श्रेष्ठ हैं अर्थात् ||विदांवर|| हैं ।
 422. केवलज्ञान के द्वारा भी आपको जाना जा सकता है, अर्थात् आप ||वेदवेद्य|| हो ।
 423. आत्मानुभव से ही आपको जाना जा सकता है, इसलिये ||स्वसंवेद्य|| हो ।
 424. जो अनागम है उसे भी आप जानते हो इसलिए ||विवेद|| हो ।
 425. वक्ताओं में, उपदेशकर्ताओं में आप सर्व-श्रेष्ठ हैं इसलिये आप ||वदतांवर|| हैं ।

**अनादि निधनोऽ व्यक्तो व्यक्तवाग् व्यक्तशासनः ।
युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४॥**

अन्वयार्थ :

426. आपके जन्म तथा अन्त-रहित होने से ||अनादिनिधन|| हो ।
 427. आपका वर्णन किसी के लिये सभव नहीं इसलिये ||अव्यक्ता|| हो ।
 428. आपका उपदेश सब प्राणियों को समझने वाला है इसलिये ||व्यक्तवाक्|| हो ।
 429. आपने कथित किया हुआ शासन ही एक मात्र सम्प्यक शासन होने से अथवा आपके व्यक्तव्य का कोई विरोध नहीं, सब संसार में वह प्रसिद्ध है
 इसलिये भी ||व्यक्तशासन|| हो ।
 430. कर्म-युग के आरंभकर्ता होने से ||युगादिकृता|| हो ।
 431. युग के पालक, अथवा त्राता होने से ||युगाधारा|| हो ।
 432. आप युग के प्रारंभ से हैं, अर्थात् ||युगादि|| हैं ।
 433. आप कर्म-भूमि के आरंभ में उत्पन्न हुए इसलिये आपको ||जगदादिज|| भी कहा जाता है ।

**अतीन्द्रोऽतिन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतिन्द्रियार्थ दृक् ।
अनिन्द्रियो अहमिन्द्राचर्यो महेन्द्र महितो महान् ॥५॥**

अन्वयार्थ :

434. आप इन्द्र-नरेन्द्रों के भी विशेष होने से ||अतीन्द्रा|| हो ।
 435. आपका यथार्थ स्वरूप अर्थात् विशुद्धात्मा इन्द्रियों को गोचर ना होने से ||अतिन्द्रिय|| हो ।
 436. बुद्धि के नाथ होने से अथवा आप शुक्ल-ध्यान के द्वारा परमात्म-स्वरूप प्राप्त करनेवाले होने से ||धीन्द्र|| हो ।
 437. इन्द्रों में महान होने से अथवा पूजा के अधिपति होने से ||महेन्द्र|| हो ।
 438. जो पदार्थ इन्द्रिय और मन के अगोचर हैं, उन्हे भी आप जानते हो इसलिये ||अतिन्द्रियार्थदृक्|| हो ।
 439. इन्द्रिय-रहित होने से ||अनिन्द्रिय|| हो ।
 440. अहमिन्द्रों द्वारा पूजनीय, पूजित और पूज्य होने से ||अहमिन्द्राचर्य|| हो ।
 441. इन्द्र भी आपकी महिमा गाते हैं, आप उनके भी पुज्य हैं, इसलिये ||महेन्द्रमहित|| हो ।
 442. समस्त जीवों के बडे और पूज्य होने से आप ||महान्|| कहे जाते हैं ।

**उद्धवः कारणं कर्ता पारगो भक्तारकः ।
अगाह्यो गहनं गुह्यं पराधर्यः परमेश्वरः ॥६॥**

अन्वयार्थ :

446. यह आपका अंतिम भव होने से आप [[उद्धव]] हैं ।
 447. मोक्ष के, मोक्ष-मार्ग के आप [[कारण]] हैं ।
 448. शुद्ध भाव आप से ही उपजते हैं इसलिये [[कर्ता]] हैं ।
 449. संसार-समुद्र के पारगामी होने से [[पारग]] हौं ।
 450. समस्त जीवों को पार लगानेवाले होने से [[भवतारक]] हों ।
 451. इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किये जा सकते इसलिये [[अग्राह्य]] हों ।
 452. आपका स्वरूप अत्यंत गृह होने से आप [[ग्रहन]] हैं ।
 453. आप रहस्यमय होने से अर्थात् गुप्तरूप होने से अर्थात् आपका यथार्थ स्वरूप जो आता है, वह अगोचर होने से [[गुद्या]] हों ।
 454. औरों के द्वारा अर्ध देने के योग्य होने से अथवा उक्त विभूति के धारक होने से [[परार्थ]] हों ।
 455. सबके स्वामी होने से अथवा परमपद मोक्ष के स्वामी होने से आप [[परमेश्वर]] भी कहे जाते हैं ।

अनन्तद्विंश्च मेयद्विंश्च चिन्त्यद्विंश्च समग्रधीः । प्राग्रयः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रयोऽग्रिमोग्रज ॥७॥

अन्वयार्थ :

453. आप अनंत ऋद्धियों के धारी होने से [[अनन्तद्विंश्च]] हैं ।
 454. अनगिनत अमित ऐश्वर्य को धारण करने से [[अमेयद्विंश्च]] हो ।
 455. चिंतन से परे आपका ऐश्वर्य, ऋद्धी, बल, ज्ञान होने से [[अचिन्त्यद्विंश्च]] हो ।
 456. जगत के समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों का सम्पूर्ण ज्ञान होने से [[समग्रधीः]] हो ।
 457. सब के मुख्य होने से [[प्राग्रयः]] हो ।
 458. सब में श्रेष्ठ होने से [[प्राग्रहरा]] हो ।
 459. श्रेष्ठमें श्रेष्ठ होने से [[अभ्यग्र]] हो ।
 460. लोक के अग्र में ही आपकी रुचि होने से [[प्रत्यग्र]] हो ।
 461. सबके नेता, मोक्षमार्ग की दिशा में ले जाने वाले अग्रणी होने से [[अग्र्या]] हो ।
 462. सबके आगे होने से [[अग्रिम]] हो ।
 463. सबके ज्येष्ठ होने से [[अग्रजा]] कहे जाते हैं ।

महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः । महायशा महाधामा महासत्वो महाधृतिः ॥८॥

अन्वयार्थ :

464. कठिन तप करनेवाले आप [[महातपा]] हैं ।
 465. अत्यंत तेजस्वी होने से [[महातेजा]] हैं ।
 466. आपने तप से केवलज्ञान की प्राप्ति की है, इसलिए [[महोदर्क]] हैं ।
 467. समस्त जन को सुदैवी होनेका आनंद होनेका भाव आपसे होता है इसलिये [[महोदय]] हैं ।
 468. आपका मोक्ष प्राप्त करने का यश महान है इसलिये [[महायशा]] हैं ।
 469. आप प्रकाशरूप हैं, आपका ज्ञान प्रकाशरूप है इसलिये [[महाधामा]] हैं ।
 470. आप महान विभुति है अथवा आपका होना ही महान है इसलिये [[महासत्वा]] हैं ।
 471. आप वीर हैं, महान धैर्यधर हैं, इसलिये आपको [[महाधृतिः]] भी कहा जाता है ।

महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन् महाबलः । महाशक्तिं र्महाज्योतिं र्महाभूतिं र्महाद्युतिः ॥९॥

अन्वयार्थ :

472. व्यग्र अथवा चिंतित ना होनेवाले होने से [[महाधैर्य]] हो ।
 473. अतिशय सामर्थ्यवान होने से [[महावीर्य]] हो ।
 474. महान संपदा के धनी होने से (समवशरण) [[महासंपत्तः]] हो ।
 475. अतिशय बलवान होने से [[महाबल]] हो ।
 476. अनंत बलशाली होने से [[महाशक्तिः]] हो ।
 477. असामान्य अद्वितीय कांतिमान होने से अथवा केवलज्ञान रूपी महान प्रकाशमान होने से [[महाज्योतिः]] हो ।
 478. पंचकल्याणक जैसी विभुति के कांत होने से [[महाभूतिः]] हो ।
 479. अतिशय दिव्य शोभायमान होने से [[महाद्युतिः]] भी कहलाते हैं ।

महामति-महानिति-महाक्षान्ति-महोदयः । महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥

अन्वयार्थः :

480. अतिशय बुद्धिमान होने से ॥महामति॥ हो ।
481. न्याय में पारंगत होने से अथवा न्यायवान होने से ॥महानिति॥ हो ।
482. अतिशय क्षमावान होने से ॥महाक्षान्ति॥ हो ।
483. अत्यंत दयालु अथवा दयावान होने से ॥महादय॥ हो ।
484. अत्यंत प्रवीण होने से ॥महाप्राज्ञ॥ हो ।
485. आप स्वयं भी महाभाग्यशाली हो, तथा सब के लिये भी अत्यंत भाग्यकारी हो इसलिये ॥महाभाग॥ हो ।
486. स्वयं आत्मानंद में लीन होने से तथा सबके लिये आनंदकारी होने से ॥महानन्द॥ हो ।
487. शास्त्रों के चर्चिता होने से आप ॥महाकवि॥ इत्यादि नामों से प्रसिद्ध हैं ।

महामहा महाकिर्ति महाकान्ति महावपुः । महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥

अन्वयार्थः :

488. महान लोगों में महान होने से ॥महामहा॥ हो ।
489. आपकी कीर्तीं सर्व जगत में / त्रिलोक में व्याप्त होने से ॥महाकीर्ती॥ हो ।
490. अत्यंत तेजोमय कांतिमान होने से ॥महाकांती॥ हो ।
491. महान काय होने से ॥महावपु॥ हो ।
492. आपने मोक्षमार्ग के उपदेश का, जगत में कैसे जीवन जीने का यह ज्ञान समस्त जीवों को दिया है, इसलिये आप ॥महादान॥ हो ।
493. एक मात्र ज्ञान जिसके रहते ना कोई ज्ञान रहता है, ना कोई और ज्ञान की आवश्यकता होती है, ऐसा केवलज्ञान धारण करने से ॥महाज्ञान॥ हो ।
494. नियोग करने से ॥महायोग॥ हो ।
495. लोक के कल्याणकारी गुणधारक होने से आप को ॥महागुण॥ भी कहा जाता है ।

महा महपतिः प्राप्त महाकल्याण पञ्चकः । महाप्रभू महा प्रातिहार्योर्धीशो महेश्वर ॥१२॥

अन्वयार्थः :

496. पंच-कल्याणरूपी महापूजाओं को प्राप्त कर आपने यह सिद्ध किया की आप ॥महामहपति॥ हो ।
497. गर्भ से मोक्ष तक के पांच कल्याणक होने से आप ॥प्राप्तमहाकल्याणपञ्चक॥ हो ।
498. आप सब में महान हो, सबके स्वामि हो, सब में श्रेष्ठ हो, सबके कल्याणकारी हो इसलिये आप ॥महाप्रभु॥ हो ।
499. अशोक वृक्ष, सिंहासन, भार्मंडल, छत्र, चंचर, पुष्पवृष्टी, देवदुर्दुभि, दिव्यधनी यह आठ प्रातिहार्य आपके समीप सदैव रहने से, आप उनके स्वामी रहने से ॥महाप्रातिहार्यधीश॥ हो ।
500. इन्द्र तथा गणधर व जिनके अधीश्वर होने से आपको ॥महेश्वर॥ भी कहा जाता है ।

इति श्रीवृक्षादिशतम् ।

महामुनि महामौनी महाध्यानी महादमः । महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥

अन्वयार्थः :

501. मुनियों में महान होने से ॥महामुनि॥ है ।
502. ओष्ठ द्वारा आप कुछ भी नहीं कहते इसलिये ॥महामौनी॥ है ।
503. परम शुक्ल-ध्यान करने से ॥महाध्यानी॥ हो ।
504. महान शत्रु अर्थात् विषय कषाय को दमन करने से अथवा महान शक्ती व वीर्य के धारक होने से ॥महादम॥ हो ।
505. आप क्षमाशील हैं, महान क्षमांकर हैं इसलिये ॥महाक्षम॥ हो ।
506. आपका ब्रह्म सम्पूर्ण है, अत्युच्च है, इसलिये ॥महाशील॥ है ।
507. आपने स्वभाव की अग्नि में विभाव परिणामों की आहुति देकर अथवा तप के द्वारा इंद्रिय विषय-कषाय की आहुति देकर उत्तम यज्ञ का उदाहरण प्रस्तुत किया है इसलिये ॥महायज्ञ॥ हो ।
508. अतिशय पूज्य होने से अथवा सकल पूज्यों में महान होने से आप को ॥महामख॥ भी कहा जाता है ।

महाव्रत पतिर्मह्यो महाकान्ति धरोऽधिपः । महामैत्री महामेयो महोपायो महोमयः ॥२॥

अन्वयार्थ :

509. पञ्चमहाव्रत के स्वामी अथवा पालक अथवा प्रणेता होने से [[महाव्रतपत्ति]] हो ।
510. जगत्युज्य होने से [[मह्य]] हो ।
511. अत्यंत तेज धारण करने से अथवा केवलज्ञान रूपी प्रकाश-ज्योत के धारक होने से [[महाकांतिधर]] हैं ।
512. सबके पालक, रक्षक, स्वामी, अधिपति होने से [[अधिप]] हो ।
513. आपकी सकल जीवों से मैत्री है, इसलिये [[महामैत्रीमय]] हो ।
514. आपकी सीमा कोई नहीं नाप सकता इसलिये [[अमेय]] हो ।
515. मोक्ष के लिये उत्तम मार्ग बताने से [[महोपाय]] हो ।
516. मंगलमय, तेजोमय, ज्ञानमय होने से [[महोमय]] भी कहलाते हैं ।

महाकारुणिको मन्त्रा महामन्त्रो महायतिः । महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥३॥

अन्वयार्थ :

517. आप करुणाकर हैं, करुणानिधान हैं, सब जीवों के प्रति दया धारण करते हैं, इसलिये आप [[महाकारुणिक]] हैं ।
518. सबके मन में चल रहे विचारों को आप जानते हो, इसलिये आप [[मन्त्रा]] हो ।
519. अनेक मन्त्रों के आप स्वामी हो, आप का नाम मात्र ही सबके लिये सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है, इसलिये [[महामन्त्र]] हो ।
520. आप सब में श्रेष्ठ इदियि निग्रही हो, आप सब में श्रेष्ठ साधु हो, इसलिये [[महायति]] हो ।
521. आप दिव्य-धनी ओष्ठव्य ना होकर नादमयी है, कल्याणकारी है, इसलिये [[महानादा]] हो ।
522. धर्म का घोष करनेवाली महान वाणी से [[महाघोष]] हो ।
523. पूज्यों के पुज्य होने से अथवा महान यज्ञकर्ता होने से [[महेज्य]] हो ।
524. महा-लक्ष्मी, महा-सरस्वती, बहिरंग तथा अंतरंग सम्पत्ती के स्वामी होने से [[महासाम्पत्ति]] कहे जाते हैं ।

महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् । महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥४॥

अन्वयार्थ :

525. अहिंसादि महाव्रतों के धारक आप [[महाध्वरधर]] हो ।
526. आप वीर हो, शूर हो, धुरंधर हो [[धुर्यो]] हो ।
527. आपने उदार होकर स्वयं ही मोक्ष का मार्ग सबको जतलाया हैं, इसलिये [[महौदार्यो]] हो ।
528. आपकी वाणी महान है, इष्ट है, कल्याणकारी है इसलिये [[महेष्ठवाको]] हो ।
529. सर्व जगत में आपकी आत्मा पूज्य है, परम-शुक्ल है, परम-विशुद्ध है इसलिये [[महात्मा]] हो ।
530. आप ही समस्त लोक के प्रकाशक हो, आपके पास केवलज्ञान की तेज ज्योति है, आपका तेज अपार है इसलिये [[महसांधाम]] हो ।
531. चौसठ ऋद्धीयाँ आपको तप के बल से अनायास ही प्राप्त हुई है इसलिये [[महर्षि]] हो ।
532. सबके पुज्य होने से, उदय से ही पूज्य होने से [[महितोदयो]] कहलाते हैं ।

महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः । महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधारिपुवशी ॥५॥

अन्वयार्थ :

533. विष्य-कषायादि महान क्लेषों पर आपने अंकुश रखा है, अथवा तप रूपी महा-क्लेश करने से [[महाक्लेशांकुशो]] हो ।
534. कर्मारि आदि महान शत्रूओं पर विजय पाने से [[शूरो]] हो ।
535. गणधर आदि विद्वान लोगों के स्वामी होने से अथवा इन्द्रादि चक्रवर्णों जैसे महान व्यक्तियों से पुजीत होने से [[महाभूतपति]] हो ।
536. सबको क्षेमंकर उपदेश देकर सही मार्ग का प्रतिपादन करने से [[गुरु]] हो ।
537. आपका कर्मों को जीतने से अथवा ज्ञान-शक्ति अद्भुत होने से आपने [[महापराक्रम]] सिद्ध किया है ।
538. आप अन्त-रहित हैं, आप का नाम सदैव रहेगा तथा आप सिद्धशिला पर अनंतानंत काल विराजमान रहेंगे इसलिये आप [[अनंत]] हैं ।
539. क्रोध के सबसे बड़े शत्रु आप होने से अर्थात् आप [[महाक्रोधारिपु]] हैं ।
540. आप इन्द्रियों को वश करने वाले [[वशी]] हैं ।

महाभवाद्विं संतारी महामोहाऽद्रि सूदनः । महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥

अन्वयार्थः :

541. संसार-सागर को पार करनेवाले होने से [[महाभवाद्विंसंतारी]] हो ।
542. मोहरूपी महाशत्रु का भेदन करने से अथवा महा-मोहांधकार का नाश करने से [[महामोहाऽद्रिसूदन]] हो ।
543. आपके गुण अनंत हैं, आप अनेक महान गुणों के धारक हैं, इसलिये [[महागुणाकर]] हो ।
544. कषाय-रहित होने से, क्षमावान होने से [[क्षान्ता]] हो ।
545. योग में पारंगत होने से अथवा नियोग धारण कर मोक्ष प्राप्त करनेवाले होने से अथवा गणधरों जैसे महायोगीयों के स्वामी होने से [[महायोगीश्वर]] हो ।
|
546. समस्त कर्मों का क्षय कर आपने महान शांतता पायी है, सुख पाया है, इसलिये आप [[शमी]] हैं ।

महाध्यानपति ध्यति महाधर्मा महाव्रतः । महाकर्मारि हाऽऽत्मजो महादेवो महेशिता ॥७॥

अन्वयार्थः :

547. परम शुक्ल-ध्यान के धारक आप [[महाध्यानपति]] हो ।
548. आपने महान धर्म अहिंसा का ही ध्यान कर उसे यथार्थ समझकर समस्त जीवों को समझाया है आप [[ध्यातमहाधर्म]] हो ।
549. पंच महाव्रतों को भी आपने सहजता से धारण किया है, इसलिये [[महाव्रत]] हो ।
550. महान शत्रु, कर्म को ध्वस्त करने से आप [[महाकर्मारिहा]] हो ।
551. आप स्वयं आत्म-स्वरूप हैं अथवा आत्मा का यथार्थ स्वरूप का ज्ञान रखते हैं, इसलिये [[आत्मज]] हो ।
552. समस्त देवों के भी आप पूज्य हैं, उनके लिये भी आप महान हैं, इसलिये [[महादेव]] हो ।
553. विलक्षण ऐश्वर्य के स्वामी होने से [[महेशिता]] भी कहे जाते हैं ।

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः । असंख्येयोऽ प्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥

अन्वयार्थः :

554. शारीरिक और मानसिक क्लेष दूर करने वाले आप [[सर्वक्लेशापह]] हैं ।
555. आपने रक्त्रय सिद्ध किया इसलिये [[साधु]] हो ।
556. समस्त जनों के सर्व दोष आपके नाम मात्र से दूर होते हैं अथवा आप दोष हरने वाले होने से [[सर्वदोषहर]] हैं ।
557. अनेक जन्मों के पाप को हराने वाले आप [[हर]] हैं, अथवा आपके उपदेश पर चलनेवालों के अनेक जन्मों के पाप भी नष्ट होते हैं, इसलिये [[हर]] हैं ।
|
558. आप असंख्यात गुणों के धारक हैं, आप के गुणों की संख्या करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है, इसलिये [[असंख्येय]] हो ।
559. आप किसी से भी यथार्थ रूप में जाने नहीं जा सकते, अथवा कोई भी आपको सम्पूर्ण जानने का सामर्थ्य नहीं रखता इसलिये आप [[अप्रमेयात्मा]] हैं ।
|
560. आप दोषों का, दुःखों का शमन करनेवाले होने से [[शमात्मा]] हो ।
561. आप स्वयं भी शांत-मूर्ती होने से [[प्रशमात्मा]] कहलाते हो ।

सर्वयोगी श्वरोऽ चिन्त्यः श्रुतात्मा विष्ट्रश्रवाः । दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥

अन्वयार्थः :

562. समस्त योगीयों के पूज्य हैं, स्वामी हैं, ईश्वर हैं, आप [[सर्वयोगीश्वर]] हैं ।
563. चितवन की सीमा से परे हैं, इसलिये [[अचिन्त्य]] हैं ।
564. आप की आत्मा सर्व शास्त्रों का रहस्यरूप है, अथवा आप भाव-श्रुतज्ञान-रूप हैं, इसलिये [[श्रुतात्मा]] हैं ।
565. समस्त विश्व का समस्त ज्ञान आप में समाविष्ट होने से अथवा तीनों लोकों के समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों के जाननेवाले आप [[विष्ट्रश्रवा]] हो ।
566. सबको आत्मा के स्वरूप को पाने कि शिक्षा देने से [[दान्तात्मा]] हो ।
567. ईद्रिय दमन के तीर्थ के स्वामी होने से अथवा योग के दम के प्रवीण होने से [[दमतीर्थेश]] हो ।
568. योग स्वरूप होने से अथवा आत्मा से ही आपका योग होने से [[योगात्मा]] हो ।
569. केवलज्ञान के द्वारा सर्वत्र व्याप्त होने से [[ज्ञानसर्वग]] भी कहे जाते हैं ।

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः । प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत् क्षेमशासनः ॥१०॥

अन्वयार्थः :

570. एकाग्रता आत्मा का ध्यान चिंतन करने से [[प्रधान]] हो ।
571. आपका अब केवलज्ञन के अलावा कोई स्वरूप नहीं, अर्थात् आप ही [[आत्मा]] हो, आत्मरूप हो ।
572. आप कृति-प्रशंसनीय हैं अथवा आप ही [[प्रकृति]] हो ।
573. श्रेष्ठ होने से, ज्येष्ठ होने से, पूज्य होने से, महान् यती तथा इन्द्रों द्वारा भी पूजित होने से आप [[परम]] हो, परमात्मा हो ।
574. आपके उदित होने मात्र से कल्याण होता है इसलिए [[परमोदय]] हो ।
575. आपके कर्म-बंध क्षीण होते-होते गल गये हैं इसलिये आप [[प्रक्षीणबन्ध]] हो ।
576. आपने कामदेव का विनाश किया है, इसलिए आप [[कामारि]] हो ।
577. आप सबका कल्याण करनेवाले [[क्षेमकृत्]] हो ।
578. आपने चलाया हुआ शासन भी कल्याणकारी होने से [[क्षेमशासन]] हो ।

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः । प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽधर्युरध्वरः ॥११॥

अन्वयार्थः :

579. ध्वनी-स्वरूप होने से, ऊँकाररूप होने से [[प्रणव]] हो ।
580. सबके नेता होने से अथवा मित्र होने से अथवा प्रिय होने से [[प्रणय]] हो ।
581. आप सबके लिये जीवनदायी हो, इसलिये [[प्राण]] कहे जाते हो ।
582. दयालु होकर प्राणदान करने से अथवा प्राण का ज्ञान देनेसे [[प्राणद]] हो ।
583. जो भी आपको प्रणाम करते हैं, जैसे इन्द्रादिक तथा समस्त जीव, उनका पालन करनेवाले होने से [[प्रणतेश्वर]] हो ।
584. आप लोकों में, देह से, ज्ञान से तथा सम्यकदर्शन से [[प्रमाण]] हैं ।
585. सबके मर्मज्ञ होने से अथवा योगीयों द्वारा गुप्त (आत्मा में) चिंतन के योग्य होने से [[प्रणिधि]] हो ।
586. आप मोक्ष के कारण के लिये [[दक्ष]] हैं ।
587. सरल स्वभाव होने से [[दक्षिण]] हो ।
588. जैसे यज्ञ के पुरोहित तज्ज होते हैं, वैसे ही कर्मों के यज्ञ में आप श्रेष्ठ हो इस लिये [[अधर्यु]] हो ।
589. सरल, सन्मार्ग की प्रवृत्ति करनेवाले होने से [[अध्वर]] भी कहलाते हैं ।

आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽ निन्द्योऽ भिनन्दनः । कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिङ्गयः ॥१२॥

अन्वयार्थः :

590. सदैव संतुष्ट हैं, आत्म-सुख में लीन है इसलिये आपको [[आनन्द]] कहा जाता है ।
591. सबको आनन्ददायक सुखकारक होने से [[नन्दन]] हो ।
592. आप स्वयं भी सुख-स्वभावी हैं, [[नन्द]] हैं ।
593. आप स्तुत्य हैं, पूज्य हैं, [[वंद्य]] हैं ।
594. आप अठारह दोषों से रहित हैं, कोई भी ऐसा कारण नहीं जिससे आपकी निन्दा हो सके अर्थात् निन्दा के अयोग्य होने से [[अनिन्द्य]] हो ।
595. आपके निकट में भय का कोई भी कारण नहीं होता है, तथा आप जहाँ भी विहार करते हैं, वहा आनन्द मात्र ही चहुँ-ओर होता है, इसलिए आपको [[अभिनन्दन]] भी कहा जाता है ।
596. कामदेव को हरानेसे [[कामह]] हो ।
597. कामना पूर्णी करनेवाले होने से [[कामद]] हो ।
598. आपकी आपके स्वरूप की प्राप्ति की चाह भक्तों को भव्य-जीवों को सदैव रहती है, इसलिये आप [[काम्य]] हो ।
599. इच्छित-फल को देनेवाले आप को [[कामधेनु]] कहते हैं ।
600. समस्त शत्रुओं पर विजयी होने से आपको [[अरिंजय]] भी कहा जाता है ।

इति महामुन्यादिशतम् ।

असंस्कृत सुसंस्कारः अप्राकृतो वैकृतान्तकृत् । अन्तकृत् कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिर भीष्टदः ॥१॥

अन्वयार्थः :

601. आप स्वभाव से ही अर्थात बिना किसी संस्कारों से ही सुसंस्कारी हैं, इसलिये आप [[असंस्कृतसुसंस्कार]] हैं ।
602. आपके स्वरूप का किसी भी प्रकृति से उत्पन्न अथवा कृत ना होने से आप [[अप्राकृत]] हो ।
603. सब विकृतियों का नाश करनेवाले आप [[वैकृतान्तकृत]] हो ।
604. संसार के अंत को अर्थात मोक्ष को सुगम करने से [[अन्तकृत]] हो ।
605. आपकी वाणी सुन्दर है, आपकी प्रभा अथवा आभा सुन्दर है, इसलिये [[कान्तगु]] हो ।
606. शोभायुक्त (समवशरण की अगणित शोभा) होने से [[कान्ता]] हो ।
607. इच्छित फल देने वाले हो, जैसे चिंतामणि रत्न मन की इच्छा जानकर उसे पूर्ण करता है, इसलिये [[चिन्तामणि]] हो ।
608. शुभ फल देनेवाले अथवा भव्य जीवों के लिये इष्ट फल देनेवाले होने से [[अभिष्टद]] भी कहे जाते हैं ।

अजितो जितकामारि रमितोऽ मितशासनः । जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ॥२॥

अन्वयार्थ :

609. कामक्रोधादि शत्रु आपको जीत नहीं पाये, इसलिये आप [[अजित]] हो ।
610. आपने कामक्रोधादि शत्रुओं पर विजयी होकर उन्हे ध्वस्त-परास्त कर दिया है, इसलिये [[जितकामारि]] हो ।
611. आपके ज्ञान कि, शक्ति की, सुख की कोई मर्यादा नहीं है, इसलिये [[अमित]] हो ।
612. आपके बताये हुआ मार्ग, अर्थात शासन का भी कोई अंत नहीं, अर्थात आपका बताया हुआ मार्ग ही सदैव एकमेव सम्यक मोक्षमार्ग होगा इसलिये [[अमितशासन]] हो ।
613. क्रोध को जीतने से अर्थात आप परम-क्षमारूप होने से [[जितक्रोध]] हो ।
614. अमित्र (कर्म शत्रु) पर विजयी होने से [[जितामित्र]] हो ।
615. समस्त क्लेशों पर मात करने से [[जितक्लेश]] हो ।
616. अंत को अर्थात यम को जीतने से, मोक्ष को प्राप्त करने से [[जितान्तक]] भी कहे जाते हैं ।

जिनेन्द्र परमानन्दो मुनिन्द्रो दुन्दुभिस्वनः । महेन्द्र वन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥

अन्वयार्थ :

617. गणधर आदि जिनके आप आद्य, वंद्य, पूज्य इन्द्र होने से [[जिनेन्द्र]] हो ।
618. उक्तृष्ट आनंद स्वरूप होने से अथवा आप का रूप आनंदकारी होने से अथवा आप सदैव आत्मा के आनंद में लीन रहनेवाले होने से [[परमानन्द]] हो ।
619. मुनियों के इन्द्र, ज्येष्ठ, नेता होने से [[मुनीन्द्र]] हो ।
620. आपकी धनी दुन्दुभियों के समान शुभ, कण्ठिप्रिय, आनंदकारी, सुखदायक और शुभसूचक है, इसलिए [[दुन्दुभिस्वन]] हो ।
621. शत इन्द्र, महेन्द्र के भी आप पूज्य हैं, इसलिये [[महेन्द्रवन्द्य]] हो ।
622. योगी, तप करनेवाले, मुनि आदियों के इन्द्र होने से [[योगीन्द्र]] हो ।
623. ऋषीयों के, यतीयों के भी आप इन्द्र हैं, इसलिए आपको [[यतीन्द्र]] भी कहा जाता है ।
624. नाभिराय के पुत्र होने से या आप स्वयं किसी का भी अभिनन्दन करनेवाले नहीं होने से [[नाभिनन्दन]] हैं ।

नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः । अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वान धिकोऽधिगुरुः सुगीः ॥४॥

अन्वयार्थ :

625. नाभि के पुत्र [[नाभेय]] हो ।
626. नाभि कुल में जन्म लेने से [[नाभिज]] हो ।
627. अब फिर से उत्पन्न नहीं होंगे इसलिये [[अजात]] हो ।
628. अहिंसादि अनेक उत्तम-व्रतों के धारक [[सुव्रत]] हो ।
629. कर्मभूमि की रचना करने से [[मनु]] हो ।
630. श्रेष्ठ होने से [[उत्तम]] हो ।
631. आपको कर्म शत्रु तो क्या कोई भी भेद नहीं सकता इसलिये [[अभेद्य]] हो ।
632. आपका विनाश कभी नहीं होगा, इसलिये [[अनत्यय]] हो ।
633. अनशनादि तप करने से [[अनाश्वान]] हो ।
634. सबसे आप अधिक हैं अथवा आप धिक्कार-योग्य नहीं हैं, इसलिये [[अधिक]] हो ।
635. सबसे उत्तम अर्थात मोक्षमार्ग का उपदेश देने से अथवा गुरुओं में प्रथम होने से [[अधिगुरु]] हो ।
636. आपकी वाणी अथवा दिव्य-धनी कल्याणकारी होने से आप [[सुगी]] कहलाते हैं ।

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः । विशिष्ट शिष्टभुक शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५॥

अन्वयार्थ :

637. आपकी बुद्धी सर्व श्रेष्ठ होने से अथवा आप का ज्ञान श्रेष्ठ (केवलज्ञान) होने से [[सुमेधा]] हो ।
638. पहाड़ों जैसे कर्मारि को पराक्रम से नाश करने से अथवा जन्म-मृत्यु के क्रम से मुक्त होने से [[विक्रमी]] हो ।
639. आप तीनों जगत के अधिपति होने से या मुक्ति-लक्ष्मी को प्राप्त करने से [[स्वामी]] हो ।
640. कोई भी आपको निवार नहीं सकता आप [[दुराधर्ष]] हो ।
641. आपने सब जान लिया है, इसलिए अब आप [[निरुत्सुक]] हो ।
642. शिष्टों में श्रेष्ठ होने से [[विशिष्ट]] हो ।
643. शिष्टों का पालन करने से [[शिष्टभुक]] हो ।
644. स्वयं भी राग-द्वेष-मोहादि दोषों से दुर रहने से [[शिष्टः]] हो ।
645. ज्ञान-स्वरूप होने से अथवा विश्वासरूप होने से अथवा स्वयं प्रमाण होने से [[प्रत्यय]] हो ।
646. सबके इच्छेय होने से अथवा कामना के योग्य होने से अथवा काम का नाश करनेवाले होने से [[कामन]] हो ।
647. पाप-रहित होने से [[अनघ]] नाम से प्रसिद्ध हैं ।

क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षयः क्षेमधर्मपतिः क्षमी । अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तर ॥६॥

अन्वयार्थ :

648. आप सफल हो, अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर आपने महान सफलता पायी है, इसलिये [[क्षेमी]] हो ।
649. सबका कल्याण करने वाले होने से [[क्षेमंकरा]] हो ।
650. आप कभी भी क्षय नहीं होने से [[अक्षया]] हो ।
651. मोक्षमार्ग बतानेवाला, अथवा कल्याण करनेवाले धर्म के (जैन धर्म के) प्रवर्तक होने से [[क्षेमधर्मपति]] हो ।
652. क्षमावान होने से [[क्षमी]] हो ।
653. इन्द्रियों के द्वारा आपका यथार्थ रूप ग्रहण नहीं किया जा सकता इसलिये [[अग्राह्य]] हो ।
654. अपितु निश्चय रक्त्रय में अभेद से आपको समझा जा सकता हैं, इसलिये [[ज्ञाननिग्राह्य]] हो ।
655. ध्यान के द्वारा शुद्धोपयोग में भी आपको जाना जा सकता हैं, इसलिये [[ध्यानगम्य]] हो ।
656. आपसे बेहतर कोई नहीं, अर्थात उक्षेष्टा की सीढ़ी में आप से ऊपर (उत्तर अथवा उर्ध्व दिशा में) कोई नहीं हैं, इसलिये आप को [[निरुत्तर]] नाम से भी जाना जाता है ।

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनय श्वतुराननः । श्रीनिवास श्वतुर्वक्त्वं श्वतुरास्य श्वतुर्मुखः ॥७॥

अन्वयार्थ :

657. पुण्य के धारक होने से [[सुकृती]] हो अर्थात आपने अनंत पुण्य करने से आप का यह रूप प्रकट हुआ है ।
658. शब्दों के धनी, खान या भंडार होने से [[धातु]] हो ।
659. पूज्य अथवा पूजा के योग्य होने से [[इज्यार्ह]] हो ।
660. नय को आपसे अच्छा कौन जानता है? इसलिये [[सुनय]] हो ।
661. समवशरण में विद्यमान आपके चार दिशाओं में चार मुख दिखने से [[चतुरानन]] हो ।
662. बहिरंग और अंतरंग लक्ष्मी का निवास-स्थान होने से [[श्रीनिवास]] हो ।
663. एक मुख होकर भी चार दिखने से [[चतुर्वक्त्व]] हो ।
664. [[चतुरास्य]] हो ।
665. [[चतुर्मुख]] के नाम से भी जाने जाते हैं ।

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः । सत्याशी सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥

अन्वयार्थ :

666. आप ही सत्य-स्वरूप अर्थात आत्म-स्वरूप हैं, इसलिये [[सत्यात्मा]] हो ।
667. आपका ज्ञान सम्पूर्ण सत्याधिकृत है, इसलिये [[सत्यविज्ञान]] हो ।
668. आपकी वाणी पदार्थों का यथार्थ स्वरूप प्रकट करती है, आपके वचन सदैव सत्य-स्वरूप होने से [[सत्यवाक]] हो ।
669. आपने बताया हुआ मार्ग अर्थात शासन यथार्थ है, मोक्ष प्राप्त करनेवाला है इसलिये [[सत्यशासन]] हो ।

670. सत्य को आपने यथार्थ में प्राप्त किया है, इसलिये [[सत्याशी]] हो ।
 671. आपने सत्य के सदैव ही वाणी से जोड़ के रखा है, आपके वचन सत्य ही रहते हैं, इसलिये [[सत्यसन्धान]] हो ।
 672. आप स्वयं आपके परम शुक्ल-लेष्ठा युक्त विशुद्ध-आत्मा से शुद्ध मोक्ष स्वरूप ही हैं, [[सत्य]] ही है ।
 673. आप सदैव सत्य और सत्य-मात्र का आधार लेने से [[सत्यपरायण]] भी कहे जाते हैं ।

स्थेयान् स्थवीयान्नेदीयान् दर्वीयान् दूरदर्शनः । अणोरणियान् अनणु गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥

अन्वयार्थ :

674. आप स्थिर हैं, अविचल हैं, अथवा आप उर्जा हैं; इसलिये [[स्थेयान]] हैं ।
 675. आप स्थूल हो, भरपूर हो, या आपका प्रभाव तीर्णों लोक में पापा जाता है, इसलिये आप [[नेदीयान]] हो ।
 676. आप दूर हो, अर्थात् सर्व प्रकार के सर्व पापों से दूर हो, इसलिये [[दर्वीयान्]] हो ।
 677. आप के दर्शन कहीं से भी हो जाते हैं, अर्थात् जो भी आपकी प्रतिमा मन में रखते हैं, वे कहीं भी हो, आपके दर्शन पाते हैं, इसलिये [[दूरदर्शन]] हो ।
 678. परमाणु से भी सुक्ष्म हो, अर्थात् आप का यथार्थ रूप मात्र आपको ही दग्धोचर हैं, आप [[अणोरणीयान]] (अणोः अणीयान = अणु में भी अणुरूप) हो ।
 679. आप अनंतज्ञान राशी स्वरूप हो, इसलिये [[अनणु]] हो ।
 680. गुरुओं में आद्य अथवा प्रथम अथवा ज्येष्ठ होने से [[आद्यगुरु]] हो ।
 681. गुरुओं में गुरु हो यह श्लोक विलक्षण है, इसमें भगवान को स्थूल, सुक्ष्म, सर्वव्यापक, अनंतरूप, ज्येष्ठ, आद्य, गुरु, तथा सर्वत्रदर्श कहा गया है ।

सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः । सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥

अन्वयार्थ :

682. सदैव योग-स्वरूप होने से [[सदायोग]] हो ।
 683. अनंतवीर्य के भोक्ता होने से [[सदाभोग]] हो ।
 684. कोई कामना ना रहने से [[सदातृप्त]] हो ।
 685. सदा मोक्ष-स्वरूप होने से [[सदाशिव]] हो ।
 686. शाश्वत लक्ष्य रहने से [[सदागति]] हो ।
 687. अनंत-सुख के धारी होने से [[सदासुख]] हो ।
 688. सदा ज्ञान-स्वरूप हैं, अर्थात् केवलज्ञान रूप होने से अथवा सदैव विद्यमान रहने से [[सदाविद्य]] हो ।
 689. सदैव उदित होनेवाले भानु-सम ज्ञान-प्रकाश से अज्ञान नष्ट करनेवाले होने से [[सदोदय]] भी कहलाते हैं ।

सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृतः । सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

अन्वयार्थ :

690. शब्द या वाणी सुंदर होने से [[सुघोष]] हो ।
 691. सुंदर वदन के कारण [[सुमुख]] हो ।
 692. शांत रहने से [[सौम्य]] हो ।
 693. सुखकारक होने से [[सुखद]] हो ।
 694. सम्यक हित का ही उपदेश देने से [[सुहित]] हो ।
 695. आप सबके मित्र हैं, उनके कल्याणकारी हैं, उनको पार लगानेवाले हैं, [[सुहृत]] हैं ।
 696. मिथ्यादृष्टियों को, अभव्य जीवों को आपका स्वरूप दिखता नहीं, अथवा उनसे [[सुगुप्त]] रहता है ।
 697. तीनों गुप्तियों का सदैव पालन करने से [[गुप्तिभृत]] हो ।
 698. पापों से आत्मा की अथवा समस्त जीवों के रक्षक होने से [[गोप्ता]] हो ।
 699. तीनों लोकों को प्रत्यक्ष देखनेसे [[लोकाध्यक्ष]] हो ।
 700. इन्द्रीय इच्छा, कामना, वासना का तप के द्वारा दमन करने से [[दमीश्वर]] भी कहलाते हैं ।

इति असंस्कृतादिशतम् ।

बृहन् बृहस्पती र्वग्मी वाचस्पती रुदारधीः । मनीषी धिषणो धीमान् शेमुषीशो गिरांपतिः ॥१॥

अन्वयार्थ :

701. देवों के गुरु बृहस्पती के भी गुरु या श्रेष्ठ होने से [[बृहद बृहस्पती]] हो ।
702. आपकी वाणी अतुलनीय, नय और प्रमाण से युक्त है, आप विलक्षण वक्ता अर्थात् [[वामी]] हो ।
703. आपका वाणी पर प्रभुत्व है, आपसे विवाद या तर्क में कोई जीत नहीं सकता, अथवा आपकी वाणी सदैव सत्य होती है इसलिये [[वाचस्पती]] हो ।
704. आपकी बुद्धी उदार है, आप समानता से उदारता से सबके लिए उपदेश देते हैं, इसलिये [[उदारधी]] हैं ।
705. बुद्धीमान होने से अथवा सबके हृदय में वांछित रहने से [[मनीषी]] हैं ।
706. केवलज्ञान धारण करनेवाली आपकी बुद्धी अपार होने से [[धीषण]] हैं ।
707. इसी कारण से आप [[धीमान]] भी हैं ।
708. इसी कारण से आप [[शेमुमीश]] भी हो ।
709. सब मुख्य तथा गौण भाषाओं के स्वामी होने से [[गिरांपति]] के नाम से भी जाने जाते हैं ।

नैकरूपो नयोत्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत् । अविज्ञेयोऽ प्रतकर्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥

अन्वयार्थ :

710. अनेकांत के व्याख्याता होने से अथवा जन्म, भाषा, पुरुषार्थ, बुद्धी, चारित्र, ज्ञान, गुण, सुख के परिवेक्ष में आपका हरकिसी के मन में अनेक रूप होने से [[नैकरूप]] हो ।
711. नयों का उल्कृष्ट स्वरूप कहकर द्रव्य को परिभाषित करने से [[नयोत्तुंग]] हो ।
712. आपके आत्मा में अनेक गुण हैं, सुख है, बल है, ज्ञान है, शांति है इसलिये [[नैकात्मा]] हो ।
713. पदार्थ का अनेकांत से अनेक धर्म बतानेसे [[नैकधर्मकृत]] हो ।
714. साधारण जनों के ज्ञान के अपार होने से [[अविज्ञय]] हो ।
715. आपके स्वरूप में, वाणी में, वचन में कोई वितर्क नहीं चल सकता अर्थात् आप तर्क से परे हो, इसलिये [[अप्रतकर्यात्मा]] हो ।
716. आप ज्ञानकृत हो, विशाल हृदय हो, सर्वव्यापी हो, इसलिये [[कृतज्ञ]] हो ।
717. एक हजार आठ सुलक्षणों से युक्त होने से [[कृतलक्षण]] भी कहलाते हैं ।

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः । पद्मगर्भो जगद्रभो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥

अन्वयार्थ :

718. अंतरंग में अर्थात् आत्मा में ज्ञान होने से अथवा गर्भ से ही तीन ज्ञान के धारी होने से [[ज्ञानगर्भ]] हो ।
719. दयालु होने से, करुणामय होने से अथवा गर्भ में आप माता को पीड़ा ना हो इसलिये हलन-चलन नहीं करते थे इसलिये [[दयागर्भ]] हो ।
720. रत्नत्रय रूपी आत्मा होने से, आपके गर्भ में आते ही, आपके पिता के अंगन में रत्नवर्षा होने से [[रत्नगर्भ]] हो ।
721. आपकी वाणी प्रभावी है, कल्याणकारी है, इसलिये [[प्रभास्वर]] हो ।
722. गर्भ से लक्ष्मी प्राप्त होने से अथवा आपके गर्भ में आते ही, माता पिता का वैभव बढ़ने से [[पद्मगर्भ]] हो ।
723. आपके ज्ञान में समस्त जगत् समाहित हैं, अथवा आपने जगत् के कल्याण के लिये ही मानों जन्म लिया है, इसलिये [[जगद् गर्भ]] हो ।
724. हिरण्यगर्भ (जिसके कोई बाह्य लक्षण नहीं दिखते) होने से आप [[हेमगर्भ]] हो ।
725. आपका दर्शन सुंदर है, अथवा आपने सम्यक पथ दर्शाया है, इसलिये [[सुदर्शन]] भी कहे गये हैं ।

लक्ष्मीवान्स्त्री दशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता । मनोहारो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीरशासनः ॥४॥

अन्वयार्थ :

726. समवशराणादि तथा केवलज्ञान रूप लक्ष्मी के अधिपती होने से [[लक्ष्मीवान]] हो ।
727. तेरह प्रकार के उत्तम चारित्र के धारी होने से अथवा तीनों दशाओं में (बाल-युवा-वृद्ध) एक समान दिखने से, लगने से, होने से [[त्रिदशाध्यक्ष]] हो ।
728. दृढ़ होने से [[दृढीयान]] हो ।
729. सबके स्वामी होने से [[इन]] हो ।
730. महान होने से, जेता होने से, स्वामी होने से [[ईशिता]] हो ।
731. भव्य जीवों के अंतःकरण को हरनेवाले [[मनोहर]] हो ।
732. आपक समचतुरस्त संस्थान है, आपके अंगोपाग मनोहर हैं, आपने मन को हरनेवाले ज्ञान की, अंगों की रचना की हैं, इसलिए [[मनोज्ञांग]] हो ।
733. बुद्धी को प्रेरित कर भव्य जीवों को सुबुद्धी बनानेवाले होने से अथवा आपकी वाणी सम्मोहित करनेवाली होने से [[धीर]] हो ।
734. आपका शासन सखोल तथा सशक्त होने से [[गम्भीरशासन]] के नाम से भी आपको जाना जाता है ।

धर्मयुपो दयायागो धर्मनेमी मुनीश्वरः । धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥

अन्वयार्थ :

- 735. धर्म के आधार-स्तंभ होने से अथवा धर्म की विजय की यशोगाथा कहनेवाला कीर्ति-स्तंभ होने से [[धर्मयुप]] हो ।
- 736. जीवों पर दया करना ही आपका याग अथवा यज्ञ है, इसलिये [[दयायाग]] हो ।
- 737. धर्मरथ की धुरा अथवा परिधी होने से [[धर्मनेमी]] हो ।
- 738. मुनीयों के पूज्य ईश्वर होने से [[मुनीश्वर]] हो ।
- 739. धर्म का चक्र तथा धर्म का चलना ही आपका शस्त्र है, इसलिये [[धर्मचक्रायुध]] हो ।
- 740. परमानंद में लीन होने से अथवा आत्मा के स्वभाव में ही क्रीडा करने से [[देव]] हो ।
- 741. कर्मों के नाशक [[कर्महा]] हो ।
- 742. धर्म का उपदेश देने से अथवा धर्म के उन्नयन की घोषणा करने से [[धर्मघोषण]] भी कहे जाते हैं ।

अमोघवाग मोघाज्ञो निर्मलोऽ मोघशासनः । सुरुपः सुभगस्त्यागी समयज्ञ समाहितः ॥६॥

अन्वयार्थ :

- 743. यथार्थ का बोध करानेवाली वाणी होने से अथवा निर्दोष, सफल, लक्ष्य तक पहुंचानेवाली वाणी होने से [[अमोघवाक]] हो ।
- 744. कभी व्यर्थ ना होनेवाली आज्ञा होने से [[अमोघाज्ञ]] हो ।
- 745. मल-रहित होने से [[निर्मल]] हो ।
- 746. कभी व्यर्थ ना होनेवाला, अंतिम लक्ष्य [[मोक्ष]] तक ले जाने वाला आपका शासन होने से [[अमोघशासन]] हो ।
- 747. आप का रूप सौख्यदायी, अनंदकारी, कल्याणप्रद होने से [[सुरुप]] हो ।
- 748. शुभकर होने से अथवा ज्ञान का अतिशय माहात्म्य होने से [[सुभग]] हो ।
- 749. आपके पादमूल में समस्त जीव प्राणों का अभ्य तथा ज्ञान पाते हैं, अर्थात् आप अभयदान तथा ज्ञानदान करने से आप को [[त्यागी]] भी कहा जाता है ।
- 750. समय अर्थात् आत्मा का और समय अर्थात् काल का यथार्थ सकल ज्ञान होने से [[समयज्ञ]] हो ।
- 751. अपने ज्ञान से समस्त जीवों के जीवन के सदैव वर्तमान रहने से अथवा सर्वसमावेशक होने से अथवा समस्त प्राणीयों का समान हित चाहने से [[समाहित]] भी आपको ही कहा जाता है ।

सुस्थित स्वास्थ्यभाक् स्वस्थो निरजस्को निरुद्धवः । अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥

अन्वयार्थ :

- 752. अनंत-सुख के धारी अथवा निश्चल रहने से आप सदैव [[सुस्थित]] हो ।
- 753. आप स्वयं की, आत्मा की ही निश्चलता को सेवन करते हो, आपको संसारी भोजन की आवश्यकता नहीं इसलिये [[स्वास्थ्यभाक्]] हो ।
- 754. स्व में स्थित हो इसलिये अथवा आपको कोई रोग, व्याधी नहीं होती इसलिये [[स्वस्थ]] हो ।
- 755. कर्म-रज रहित होने से अथवा धाति-कर्म को नहीं धारण करने से [[निरजस्क]] हो ।
- 756. आपने सब कर्म तथा कषायों को निरुद्ध किया, उनपर अंकुश रखा है, इसलिये अथवा आपका कोई स्वामी ना होने से [[निरुद्धव]] हो ।
- 757. आपके आत्मा पर कोई लेप नहीं, सब कर्म झट्ट गये हैं, आप [[अलेपा]] हो ।
- 758. आपके आत्मा पर कोई कलुष नहीं हैं, वह निर्मल शुद्ध, परम-शुक्र है, इसलिये [[निष्कलंकात्मा]] हो ।
- 759. आप रागादि अठारह दोष-रहित हैं, इसलिये [[वीतराग]] हैं ।
- 760. आपकी सारी इच्छाएं, कांक्षाएं खत्म हो गयी हैं, आप इच्छा-रहित हैं इसलिये [[गतस्पृह]] नाम से भी पूज्य हैं ।

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसप्त्रो जितेन्द्रियः । प्रशान्तोऽ नन्तधामर्षि मंगलं मलहानघः ॥८॥

अन्वयार्थ :

- 761. इन्द्रियों के वश करने से [[वश्येन्द्रिय]] हो ।
- 762. संसार-बन्धन से आपकी आत्मा रहित होने से [[विमुक्तात्मा]] हो ।
- 763. आपके अब कोई शत्रु नहीं है, अथवा दुष्ट भाव से रहित निष्कंटक होकर [[निःसप्त्र]] हो ।
- 764. इन्द्रियों को जीतकर [[जितेन्द्रिय]] हो ।
- 765. शान्त होने से अथवा राग-द्वेष समाप्त होने से [[प्रशान्त]] हो ।
- 766. आपके ज्ञान का तेज अनन्त होने से अथवा अनंत-वीर्यधारी आप भी तेजःपुंज होने से आप [[अनंतधामर्षि]] हो ।

767. पाप को गलानेवाले होने से (मं+गल) तथा शुभ लाने वाले होने से [[मंगल]] हो ।
 768. पाप मल को दूर करनेवाले होने से [[मलह]] हो ।
 769. पाप-रहीत होने से [[अनघ]] भी कहलाते हो ।

अनीद्युपमाभूतो दिष्टिर्देव मगोचरः । अमूर्तो मुर्तिमानेको नैको नानैक तत्त्वदृक् ॥९॥

अन्वयार्थ :

770. आपके समान कोई और कही नहीं दिखता इसलिये [[अनिद्य]] हो ।
 771. आपके लिये अब कोई और उपमा नहीं रह गयी है अथवा सबके लिये उपमा के योग्य होने से [[उपमाभूत]] हो ।
 772. देनेवाले अथवा दातार होने से, शुभ-फल दाता होने से [[दिशी]] हो ।
 773. प्रबल होने से या स्तुति के योग्य होने से या स्वयं प्रकाशित होने से [[दैव]] हो ।
 774. इन्द्रियों से ज्ञान में ना आनेसे [[अगोचर]] हो ।
 775. शरीर रहितता के कारण अथवा मात्र भावों का और भक्ति का विषय होने से [[अमूर्त]] हो ।
 776. पुरुषाकार होने से अथवा निश्चल रूप होने से [[मुर्तिमान]] हो ।
 777. अद्वितीय होने से अथवा एक आम्बस्वरूप होने से [[एक]] हो ।
 778. अनेक रूपों से भव्य जीवों के सहायक होने से [[अनेक]] हो ।
 779. आत्मा के अलावा किसी भी और तत्त्व पर दृष्टि ना रखने से अथवा अन्य तत्त्वों में रुची ना होने से [[नानैकतत्त्वदृक्]] भी कहलाये जाते हैं ।

अध्यात्म गम्योऽ गम्यात्मा योगविद्योगि वन्दितः । सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकाल विषयार्थदृक् ॥१०॥

अन्वयार्थ :

780. आपको केवल अध्यात्म के द्वारा ही जाना जा सकता है, इसलिये [[अध्यात्मगम्य]] हो ।
 781. संसारी जीवों को आपका यथार्थ स्वरूप समझना अशक्य है, इसलिये [[अगम्यात्मा]] हो ।
 782. योग के सर्वोच्च ज्ञानी होने से [[योगविद्]] हो ।
 783. योगीयों द्वारा अर्थात् मोक्षमार्ग पर साधना करनेवाले गणधरादि मुनियों के वंदनीय होने से [[योगीवन्दित]] हो ।
 784. आप केवलज्ञान द्वारा सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं - ज्ञान के द्वारा सर्वत्र पहुंच सकते हैं, इसलिये [[सर्वत्रग]] हो ।
 785. सदैव विद्यमान रहने से अथवा सद्वाव-युक्त ही होने से अथवा किसी भी सत्ता का अभाव होने से [[सदाभावी]] हो ।
 786. त्रिकाल संबंधी समस्त पदार्थ की समस्त पर्यायों के देखने से [[त्रिकालविषयार्थदृक्]] कहलाते हों ।

शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः । अधिपः परमानन्दः परात्मजः परात्परः ॥११॥

अन्वयार्थ :

787. सबको वरदान (मोक्ष-मार्ग का) देनेवाले अथवा संसार-दाह का शमन करनेवाले होने से [[शंकर]] हो ।
 788. यथार्थ सुख के वक्ता, व्याख्याता होने से [[शंवद]] हो ।
 789. मन को वश करनेवाले होने से [[दान्त]] हो ।
 790. इन्द्रियों को, कर्मों को दमन् करनेवाले [[दमी]] हो ।
 791. क्षमा करने में तत्पर तथा क्षमा भाव ही सदैव धारण करने से [[क्षान्तिपरायण]] हो ।
 792. जगत् के अधिषिति होने से अथवा जगत् पर आपका ही शासन चलने से [[अधिप]] हो ।
 793. आत्मा में रममाण होने का आनंद सदैव ही लेने से अथवा अनंत-सुख के धारी होने से [[परमानन्द]] हो ।
 794. निज और पर के ज्ञाता होने से अथवा विशुद्ध-आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानने से [[परात्मज]] हो ।
 795. श्रेष्ठों में श्रेष्ठ होने से [[परात्पर]] कहा जाता है ।

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्थ स्तिजगन्मंगलोदयः । त्रिजगत्पतिष्पुज्याडिङ्ग्र स्तिलोकाग्र शिखामणिः ॥१२॥

अन्वयार्थ :

796. तीनों-लोक में आप प्रिय हो इसलिये [[त्रिजगद्वल्लभ]] हो ।
 797. सबके पूज्य तथा प्रथम या अग्रार्चना योग्य होने से [[अभ्यर्थी]] हो ।
 798. तीनों लोकों का मंगल करनेवाले [[त्रिजगन्मंगलोदय]] हो ।
 799. आपके चरणद्वय तीनों-लोकों के इन्द्रों द्वारा पूज्य है, इसलिये [[त्रिजगत्पतिष्पुज्याडिङ्ग्र]] हो ।

इति बृहदादिशतम् ।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः । सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैक सारधिः ॥१॥

अन्वयार्थ :

- 801. भूत-भविष्य-वर्तमान को प्रत्यक्ष और एक साथ देखने से ||त्रिकालदर्शी|| हो ।
- 802. तीनों लोक के प्रभु होने से ||लोकेश|| हो ।
- 803. समस्त प्राणियों के रक्षक होने से ||लोकधाता|| हो ।
- 804. स्वीकृत चारित्र्य को निश्चल, सम्यक रखने से अथवा पंच-महाव्रतोंका दृढता से पालन करने से ||दृढव्रत|| भी कहा जाता है ।
- 805. प्राणीयों में भी आप तीनों लोकों में श्रेष्ठ होने से आप ||त्रिलोकातिगः|| हो ।
- 806. पूजा के योग्य होने से ||पूज्यः|| हो ।
- 807. समस्त प्राणीयों को, भव्य जनों को मुख्यतः मोक्ष-मार्ग का स्वरूप उपदेश करने से ||सर्वलोकैकसारधिः|| भी कहे जाते हों ।

पुराणः पुरुषः पुर्वः कृतपुर्वागविस्तरः । आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥

अन्वयार्थ :

- 808. सबसे प्राचीन होकर मुक्ती-पर्यंत शरीर में विश्राम करने से ||पुराणः|| हो ।
- 809. विश्वात्मक होने से या निराकार होने से अथवा सबसे बड़े होने से अथवा समवशरण की लक्ष्मी ने वरण किया हो, इसलिये ||पुरुषः|| हो ।
- 810. सबसे अग्रीम होने से अथवा सबसे ज्येष्ठ होने से ||पुर्वः|| हो ।
- 811. ग्यारह-अंग, चौदह-पूर्व का विस्तार का उल्कृष्ट निरूपण करने से ||कृतपुर्वागविस्तरः|| हो ।
- 812. सब देवों में मुख्य, प्रथम होने से ||आदिदेवः|| हो ।
- 813. सब पुराणों में प्रथम होने से ||पुराणाद्यः|| हो ।
- 814. इन्द्रादि देवों से मुख्यतः आराधित होने से अथवा सबके ईश्वर होने से ||पुरुदेवः|| हो ।
- 815. देवों के देव अथवा देवों के अधिष्ठाता देव होने से ||अधिदेवता|| इन नामों से भी आपको पुकारा जाता है ।

युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः । कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥

अन्वयार्थ :

- 816. इस अवसर्पिणी-काल में मुख्य होने से अथवा इस काल के प्रथम तीर्थकर होने से आप ||युगमुख्यो|| हो ।
- 817. इस युग में सबसे बड़े या प्रथम होने से ||युगज्येष्ठो|| हो ।
- 818. विदेह क्षेत्र की रचना अवधिज्ञान से जानकर इस युग के प्रारंभ में कर्मभूमि की रचना करने से अथवा उस समय की स्थिती का आंकलन सामान्य जनों को कराने से ||युगादिस्थितिदेशकः|| हो ।
- 819. तप्त-सुवर्ण के समान शरीर की कांति होने से अथवा पवित्र करनेवाले होने से ||कल्याणवर्णः|| हो ।
- 820. स्वयं मंगल होने से, पवित्र होने से ||कल्याणः|| हो ।
- 821. सबका कल्याण करनेवाली आपकी वाणी, आपका उपदेश, आपका शासन रहने से ||कल्यः|| हो ।
- 822. मंगल-स्वरूप होकर आप कल्याण रूप लक्षण धारण करते हैं, अथवा आपके सानिध्य में अष्ट-मंगल होते हैं इसलिये आपको ||कल्याणलक्षणः|| भी कहा जाता है ।

कल्याणप्रकृति दीप्तकल्याणात्मा विकल्मषः । विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥

अन्वयार्थ :

- 826. हो । आप कल्याण करने के स्वभावी होने से अथवा केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद आपका उपयोग मात्र कल्याण के लिये ही होने से ||कल्याणप्रकृतिः||
- 827. जिसमें स्वयं प्रकाश हो, जो आत्मा प्रकाश स्वरूप हो ऐसी आत्मा के धारक आप चारों-ओर कल्याणरूपी प्रकाश फैलाते हो, इसलिये आपको ||दीप्तकल्याणात्मा|| भी कहा जाता है ।
- 828. कोई पाप, दोष, कषाय ना होने से आपको ||विकल्मषः|| हो ।
- 829. कलंक, कलुष रहित होने से, विशुद्धात्मा होने से ||विकलंकः|| हो ।

830. शरीर-रहित होने से अथवा सर्व कलाओं के पार होने से [[कलातीत]] हो ।
 831. कलील (पाप) का नाश करनेवाले [[कलीलग्र]] हो ।
 832. अनेक कलाओं के धारी [[कलाधर]] भी आप जाने जाते हैं ।

देवदेवो जगन्नाथो जगद्वन्धु र्जगद्विभुः । जगद्वितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥

अन्वयार्थ :

830. इन्द्रादि सब चतुःनिकाय देवों के देव होने से [[देवदेव]] हो ।
 831. जगत् के स्वामी [[जगन्नाथ]] हो ।
 832. जगत के कल्याणकारी होने से [[जगद्वन्धु]] हो ।
 833. समस्त जगत् के प्रभु [[जगद्विभु]] हो ।
 834. जगत हित की कामना करनेवाले होने से [[जगद्वितैषी]] हो ।
 835. तीनों लोक को जानने से अथवा तीनों लोकों का सम्पूर्ण ज्ञान धारण करने से [[लोकज्ञ]] हो ।
 836. केवलज्ञान द्वारा सब जगह में व्याप्त होने से [[सर्वग]] हो ।
 837. समस्त जगत् में श्रेष्ठ होने से [[जगदग्रज]] ऐसे नामों से भी आपको जाना जाता है ।

चराचरगुरु गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः । सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वल ज्वलनसप्रभः ॥६॥

अन्वयार्थ :

838. समस्त चराचर को ज्ञान, उपदेश देने से तथा मार्ग दिखाने से [[चराचरगुरु]] हो ।
 839. हृदय में स्थापित कर यत्न से जतन करने योग्य होने से [[गोप्य]] हो ।
 840. आपकी आत्मा स्वरूप गूढ हैं, अर्थात् आपके अलावा कोई नहीं जानता इसलिये [[गूढात्मा]] हो ।
 841. गूढ पदार्थ जैसे जीवादि को जाननेसे [[गूढगोचर]] हो ।
 842. आप सदा ही नवीन जान पड़ते हैं, अर्थात् निय नये गुण प्रकट होते रहने से [[सद्योजात]] हो ।
 843. प्रकाश स्वरूप होने से अथवा समस्त जनों को आत्मा के बारे में उपदेश देनेसे अथवा कर्म झड़ी हुई आपकी आत्मा परम-शुक्ल प्रकाशरूप होने से [[प्रकाशात्मा]] हो ।
 844. जलती हुइ अग्नि के समान दैदिष्यमान होने से [[ज्वलज्वलनसप्रभ]] भी आपके ही नाम हैं ।

आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः । सुवर्णवर्णो रुक्माभ सूर्यकोटिसमप्रभः ॥७॥

अन्वयार्थ :

845. उदित होते हुए सूर्य के समान आभा होने से [[आदित्यवर्ण]] हो ।
 846. सुवर्ण के समान कांति-युक्त होने से [[भर्माभ]] हो ।
 847. आनन्द-दायक सुन्दर कान्ति होने से [[सुप्रभ]] हो ।
 848. सुवर्ण के समान कांति-युक्त होने से [[कनकप्रभ]] हो ।
 849. इसीलिए [[सुवर्णवर्ण]] भी हो ।
 850. और इसीलिए [[रुक्माभ]] भी हो ।
 851. करोड़ी सूर्यों के समान प्रभा होने से [[सूर्यकोटीसमप्रभ]] यह आपके ही नाम हैं ।

तपनीयनिभ स्तुंगो बालाकर्भोऽ नलप्रभः । सन्ध्याभ्रबभुर्हमाभ स्तप्त चामिकरच्छविः ॥८॥

अन्वयार्थ :

852. तप्त सुवर्ण के समान वर्ण होने से [[तपनीयनिभ]] हो ।
 853. उँचे शरीर धारी [[तुंग]] हो ।
 854. उदय होते हुए सूर्य के समान वर्ण से [[बालाकर्भ]] हो ।
 855. अग्नि के समान वर्ण होने से [[अनलप्रभ]] हो ।
 856. संध्या के समय छाये हुए मेघ से दगोचर सूर्य के सुवर्ण-रक्त-वर्ण के समान होने से [[सन्ध्याभ्रबभु]] हो ।
 857. सुवर्ण-वर्ण होने से [[हेमाभ]] हो ।
 858. तपाये हुए सुवर्ण के समान कांति होने से आप को [[तप्तचामीकरप्रभ]] भी कहा जाता है ।

निष्पत्त कनकच्छायः कनकांचन संनिभः । हिरण्यवर्णः स्वर्णभः शातकुम्म निभप्रभः ॥९॥

अन्वयार्थ : सुवर्ण के समान उज्ज्वल और कांतियुक्त होने से -

- 859. आप [[निष्पत्तकनकच्छाय]] हो ।
- 860. [[कनकांचनसंनिभ]] हो ।
- 861. [[हिरण्यवर्ण]] हो ।
- 862. [[स्वर्णभ]] हो ।
- 863. [[शातकुम्मनिभप्रभ]] इन नाम से भी जाना जाता है ।

दयुम्नाभो जातरुपाभ स्तप्तजाम्बुददयुतिः । सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकदयुतिः ॥१०॥

अन्वयार्थ :

- 864. स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से [[दयुम्नाभ]] तथा
[[जातरुपाभ]] तथा
- 866. [[तप्तजाम्बुददयुति]] कहलाते हो ।
- 867. तप्त सुवर्ण से मल निकल जाने के बाद निर्मल हुए स्वर्ण जैसे होने से [[सुधौतकलधौतश्री]] हो ।
- 868. दैदिप्यमान होने से [[प्रदीप्ता]] भी आपको ही कहा जाता है ।
- 869. आप को [[हाटकदयुती]] भी कहा जाता है ।

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः । शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता प्रभूः ॥११॥

अन्वयार्थ :

- 870. शिष्ट अर्थात् उत्तम पुरुषों के प्रिय अथवा इष्ट होने से आपको [[शिष्टेष्ट]] हो ।
- 871. ऐश्वर्य तथा आरोग्यदायी होने से [[पुष्टिद]] हो ।
- 872. महा-बलवान् अर्थात् अनंत-वीर्य होने से [[पुष्ट]] हो ।
- 873. सबको प्रकट दिखायी देने से, आप सब में विशेष होने से अनंत लोगों में भी अलग दिखायी देने से [[स्पष्ट]] हो ।
- 874. आपकी वाणी शुद्ध, स्पष्ट, अनंददायी होने से [[स्पष्टाक्षर]] हो ।
- 875. समर्थ होने से अथवा धीर होने से अथवा क्षमाशील होने से [[क्षम]] हो ।
- 876. कर्म-शत्रु के नाशक [[शत्रुघ्न]] हो ।
- 877. क्रोध-रहित क्षमावान रहने से [[अप्रतिघ]] हो ।
- 878. सफल मार्ग के दर्शक होने से [[अमोघ]] हो ।
- 879. सन्मार्ग दर्शक होने से अथवा प्रशस्त शासन का उपदेश देने से [[प्रशास्ता]] हो ।
- 880. समस्त जनों के संसार-मार्ग के रक्षक होने से [[शासिता]] हो ।
- 881. अपने आप उत्तम होने से, स्वयं ही स्वयं के स्वामी होने से [[स्वभू]] ऐसे भी आपके रूप हैं, आपके नाम हैं ।

शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्टः शिवतातिः शिवप्रदः । शान्तिदः शान्ति कृच्छान्तिः कान्तिमान् कामितप्रदः ॥१२॥

अन्वयार्थ :

- 882. शान्ति मे ही रुचि रहने से अथवा सदैव शांत ही रहने से [[शांतिनिष्ठ]] आप हो ।
- 883. मुनियों में श्रेष्ठ होने से अथवा आप ही इस काल के प्रथम मुनि होने से अथवा इस काल में मुनि-धर्म की शुरुवात करने से [[मुनिज्येष्ट]] भी आप हो ।
- 884. सुख की परंपरा होने से अथवा आनंद का स्रोत होने से [[शिवताति�]] हो ।
- 885. कल्याण के, मोक्ष के दाता होने से [[शिवप्रद]] हो ।
- 886. शान्तिदायक आप [[शांतिद]] हो ।
- 887. समस्त उपद्रव शामक होने से [[शांतिकृत]] हो ।
- 888. कर्मों का शमन करके क्षय करने से [[शान्ति]] हो ।
- 889. कान्ति-युक्त होने से [[कान्तिमान]] हो ।
- 890. मनोवांछित फल देनेवाले वरद होने से [[कामितप्रद]] भी आपको ही पुकारा जाता है ।

श्रेयोनिधी रधिष्ठान मप्रतिष्ठः प्रतिष्ठीतः । सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

अन्वयार्थ :

- 891. आप, भगवन्, कल्याण का सागर हो, [श्रेयोनिधी] हो ।
- 892. धर्म का आधार अथवा धर्म का मूल कारण होने से [अधिष्ठान] हो ।
- 893. आपको किसी ने ईश्वर नहीं बनाया, आप स्वयं ही स्वयं के पुरुषार्थ से ईश्वर बन गये हो, इसलिये आप [अप्रतिष्ठा] हो ।
- 894. लेकिन ईश्वर बनने के बाद आप सर्वत्र [प्रतिष्ठिता] हो गये हो ।
- 895. आप अतिशय स्थिर हो, अर्थात् स्वयं में हो, इसलिये आप [सुस्थिर] हो ।
- 896. आप ईश्वर होकर विहार-रहीत हो, आप पृथ्वी पर चले बगैर ही, सर्वत्र पहुँच जाते हो, इसलिये [स्थावर] हो ।
- 897. निश्चल हो, स्वयं में स्थिर हो, निज में रमते हो, इसलिये [स्थाणु] हो ।
- 898. आप ज्ञान के द्वारा विस्तृत हो, इसलिये [प्रथीयान] हो ।
- 899. प्रसिद्ध हो, लोगों के चर्चा का विषय हो इसलिये [प्रथित] हो ।
- 900. आप बहुत बड़े हो, ज्येष्ठ हो, श्रेष्ठ हो, विश्ववंद्य हो, इसलिये आपको [पृथु] भी कहा जाता है ।

इति त्रिकालदशर्यादिशतम् ।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः । निष्किञ्चनो निराशांसो ज्ञानचक्षुर मोमुहः ॥१॥

अन्वयार्थ :

- 901. दश दिशा ही आपके वस्त्र हैं, अर्थात् आप कोई भी वस्त्र का उपयोग नहीं करते इसलिये [दिग्वासा] हो ।
- 902. आप कोई भी करधनी (कमरगोफ) का प्रयोग नहीं करते मानो वायु ही जो आपकी परिक्रमा करता है, वह आपकी करधनी है, इसलिये [वातरशन] हो ।
- 903. निग्रथ मुनि जो आपका ही वेष धारण करते हैं, उनमे श्रेष्ठ होने से [निग्रथेश] हो ।
- 904. आप कोई भी आवरण का प्रयोग ना करनेसे [निरंबरा] हो ।
- 905. अकिञ्चन होने से अथवा तुष्मात्र भी परिग्रह ना होने से [निष्किञ्चन] हो ।
- 906. इच्छा या कांक्षा ना होने से [निराशासा] हो ।
- 907. ज्ञान रूपी नेत्रों को धारण करने से, आपके ज्ञान में समस्त जगत की वृष्टि में जो पदार्थ हैं, वह रहने से [ज्ञानचक्षु] हो ।
- 908. अत्यंत निर्माही होने से अथवा मोहांधकार का नाश करनेसे [अमोमुह] भी आपको ही कहा जाता है ।

तेजोराशी रनंतौजा ज्ञानाद्विः शीलसागरः । तेजोमयोऽमितज्योति ज्योतिर्मूर्तिं स्तमोपहः ॥२॥

अन्वयार्थ :

- 909. समवशरण में स्थित आपका तेज अनंतगुणे दश्य होने से अथवा तेज के समूह होने से [तेजोराशी] हो ।
- 910. अत्यंत पराक्रमी होने से अथवा अनंत-शक्त होने से [अनंतौजा] हो ।
- 911. ज्ञान के सागर होने से [ज्ञानाद्विः] हो ।
- 912. आपके १८००० शील गुण प्रकट होने से, शील के सागर होने से, स्वभाव में विशालता होने से [शीलसागर] हो ।
- 913. आपका स्वयं का तेज और समवशरण में देवकृत अतिशय तथा प्रातिहार्य से आप तेज से अंकित अर्थात् [तेजोमय] हो ।
- 914. आपके ज्ञान-ज्योती का प्रकाश अमित है अथवा कोई भी मिती आपके ज्ञान को सीमा में नहीं बांध सकती, आप ऐसे ज्ञान का उपदेश देते हैं, जो राह में प्रकाश के समान सदैव साथ दे इसलिये [अमितज्योती] हो ।
- 915. तेज-स्वरूप, प्रकाशरूप, ज्ञान-ज्योतीरूप होने से [ज्योतिर्मूर्तिः] हो ।
- 916. अज्ञानांधकार अथवा मोहांधकार का नाश करनेवाले होने से [तमोपह] भी आपका ही नाम है ।

जगच्छुडामणि दीप्तः शंवान विघ्नविनायकः । कलिघ्नं कर्मशत्रुघ्नो लोकालोक प्रकाशकः ॥३॥

अन्वयार्थ :

- 917. तीन लोकों में मस्तक के रत्न होने से अथवा तिन लोक के मस्तक मुकुट अर्थात् सिद्धशिला पर विराजमान होनेवाले होने से [जगच्छुडामणी] हो ।
- 918. तेजस्वी अथवा प्रकाशमान होने से अथवा स्वयं के प्राप्त केवलज्ञान से बोधित होने से [दीप्तः] हो ।
- 919. सदैव सुख में साता में शांत रहने से [शंवान] हो ।
- 920. विघ्न अर्थात् अंतराय-कर्म के नाशक होने से [विघ्नविनायक] हो ।

921. दोषों को दुर करने अथवा कषायों का नाश करने से [[कलिघ्न]] हो ।
 922. कर्म-शत्रुओं का नाश करने से [[कर्मशत्रूघ्न]] हो ।
 923. लोक तथा अलोक को प्रकाशित करनेवाले होने से [[लोकालोकप्रकाशक]] नाम से भी आपको जाना जाता है ।

अनिद्रालुरतन्द्रालु-जगिरूकः प्रभामयः । लक्ष्मीपति-जगज्ज्योति-र्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥

अन्वयार्थ :

924. आपके कोई परिषह नहीं होते अर्थात् निद्रा भी नहीं हैं, इसलिये आपको [[अनिद्रालु]] हो ।
 925. निद्रा और जागरुकता के बीच मे जो तंद्रा होती है वह स्थिती भी आपकी नहीं होती, अर्थात् आप सदैव जागरुक होते हैं, इसलिये [[अतंद्रालु]] हो ।
 926. अपने स्वरूप के सिद्धीके लिये आप सदैव तत्पर रहते हैं, आप [[जागरुक]] हो ।
 927. ज्ञान स्वरूप होने से अथवा भामंडल सहित होने से [[प्रभामय]] हो ।
 928. मोक्ष-लक्ष्मी के अधिपती आप [[लक्ष्मीपती]] भी कहलाते हैं ।
 929. जगत् को प्रकाशित करनेवाला ज्ञान धारण करने से अथवा जगत् में आप जैसा कोई ना ज्ञानी होने से [[जगज्ज्योति]] हो ।
 930. धर्म के स्वामी होने से अथवा, आपने राज्य-त्याग करके धर्म को ही अपना राज्य माना हैं, इसलिये [[धर्मराज]] हो ।
 931. प्रजा के हितैषी होने से तथा आप ही प्रजा के लिये उसका हित हो, इसलिये आपको [[प्रजाहित]] भी कहा है ।

मुमुक्षुर्बन्ध मोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः । प्रशान्तरसशैलुषो भव्यपेटकनायकः ॥५॥

अन्वयार्थ :

932. मोक्ष में ही रुचि रखने से आप [[मुमुक्षु]] हैं ।
 933. बन्ध और मोक्ष का स्वरूप जानने से [[बन्धमोक्षज्ञ]] हो ।
 934. इन्द्रिय-विजयी होने से अथवा इन्द्रियेच्छा ना होने से या शांत होने से [[जीताक्ष]] हो ।
 935. काम पर विजय पाने से [[जितमन्मथ]] हो ।
 936. गंधर्व जैसे रस पान करके मस्त होकर नृत्य करते हैं, वैसे ही आप शांतरस में ही नर्तन करने से [[प्रशान्तरसशैलुष]] कहे जाते हैं ।
 937. समस्त लोक के भव्य जीवों के नायक होने से [[भव्यपेटकनायक]] भी आप कहलाते हैं ।

मूलकर्ता॑खिलज्योति-र्मलघ्नो मूलकारणः । आप्तो वागीश्वरः श्रेयान श्रायसुक्ति-र्निरुक्तिवाक् ॥६॥

अन्वयार्थ :

938. कर्म-भूमि के कर्ता होने से अथवा धर्म के मूल होने से [[मूलकर्ता]] हो ।
 939. अनंत-ज्ञान-ज्योति स्वरूप होने से [[अखिलज्योती]] हो ।
 940. राग-द्वेषादि मल का नाश करने से अथवा आत्मा के ऊपर चिपके हुए कर्म-मल का नाश करने से [[मलघ्न]] हो ।
 941. मोक्ष के मूल कारण होने से अथवा मोक्ष की इच्छा आपको देखकर उत्पन्न होने से [[मूलकारण]] हो ।
 942. समस्त लोक में आप ही एक विश्वसनीय (मोक्षमार्ग के) होने से अथवा आपकी वाणी यथार्थ मोक्षमार्ग प्रकाशक होने से [[आप्त]] हो ।
 943. अमोघ वाणी के वक्ता होने से [[वागीश्वर]] हो ।
 944. कल्याण स्वरूप अथवा इष्ट रूप होने से अथवा मंगल कर्ता होने से [[श्रेयान]] हो ।
 945. आपकी वाणी भी कल्याणकारी होने से अथवा मंगल होने से [[श्रायसुक्ति]] हो ।
 946. निःसंदेह वाणी होने से अथवा आजतक आपके जैसी वाणी किसी ने भी नहीं प्रकट की हुई होने से आपको [[निरुक्तवाक्]] इत्यादि नामों से भी जाना जाता है ।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजित् विश्वभाववित् । सुतनु स्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥७॥

अन्वयार्थ :

947. सबसे श्रेष्ठ वक्ता होने से [[प्रवक्ता]] हो ।
 948. आपकी वाणी में सर्व प्रकार के वचन शामिल होने से [[वचसामीश]] हो ।
 949. कामदेव को जीतने से अथवा मार पर विजयी होने से [[मारजित्]] हो ।
 950. समस्त प्राणीयों के अभिप्राय जानने से अथवा विश्व व्यापक भाव धारण करने से [[विश्वभाववित्]] हो ।
 951. आप जरा नष्ट होने से आप सुकोमल या सुंदर तनु के स्वामी हैं, इसलिये [[सुतनु]] हो ।
 952. शरीर तो आपका नाममात्र है, अर्थात् संसारी शरीर को जो व्याप रहता है, वह आपका नहीं होता इसलिये आप [[तनुनिर्मुक्त]] हो ।

953. मोक्ष-गति प्राप्त करनेवाले होने से अथवा आत्मा में जाकर विश्राम करने से अथवा श्रेष्ठ ज्ञान धारी होने से [[सुगत]] हो ।
954. मिथ्यादृष्टीयों के खोटे नयों का नाश करनेवाले होने से आपको [[हतदुर्नय]] भी कहा जाता है ।

श्रीशःश्रीश्रितपादाब्जो वीतभी रभयंकरः । उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥८॥

अन्वयार्थ :

955. अंतरंग केवलज्ञान रूपी और बहिरंग समवशरण रूपी लक्ष्मी के स्वामी होने से आप को [[श्रीश]] हो ।
956. लक्ष्मी आप की दासी होकर आपके चरणों में रहती है अथवा आप के चरण कमल जहाँ भी पड़ते हैं, वहाँ पदा, श्री अर्थात् कमलों की रचना होने से [[श्रीश्रितपादाब्ज]] हो ।
957. भय को जीतने से [[वीतभी]] हो ।
958. स्वयं भी भयमुक्त होकर समस्त जनों को भी भय-मुक्त करने से [[अभयंकर]] हो ।
959. दोषों का नाश करने से [[उत्सन्नदोष]] हो ।
960. विघ्न-रहित होने से अथवा विघ्नों का नाश करने से अथवा उपर्सा-मुक्त होने से [[निर्विघ्न]] हो ।
961. स्थिर, निर्विकार, निरामय होने से [[निश्चल]] हो ।
962. लोगों के प्रिय होने से अथवा आप लोगों के प्रति वात्सल्य-सहित होने से [[लोकवत्सल]] कहे जाते हैं ।

लोकोत्तरो लोकपति लोकचक्षुर पारधीः । धीरधी बुद्धसन्मार्ग शुद्धः सुनृत-पूतवाक् ॥९॥

अन्वयार्थ :

963. समस्त लोकों में उत्कृष्ट होने से अथवा लोक में आपसे श्रेष्ठ कोई ना होने से [[लोकोत्तर]] हो ।
964. तीनों लोक के नेता होने से [[लोकपति]] हो ।
965. जैसे आपके ज्ञान के द्वारा तीनों-लोक देखे जा सकते हैं, इसलिये [[लोकचक्षु]] हो ।
966. अनंत-ज्ञान के धारक होने से अथवा आपके ज्ञान का पार ना होने से [[अपारधी]] हो ।
967. ज्ञान सदा स्थिर रहने से, आपका ज्ञान यथार्थ होने से किसी भी काल में नहीं बदलेगा इसलिये [[धीरधी]] हो ।
968. सबसे अच्छे मार्ग को अर्थात् मोक्ष-मार्ग को यथार्थ जानने से [[बुद्धसन्मार्ग]] हो ।
969. स्वरूप परम-विशुद्ध होने से [[शुद्ध]] हो ।
970. आपके वचन पवित्र, पतित-पावन तथा यथार्थ होने से आप [[सुनृतपूतवाक्]] भी कहे जात हैं ।

प्रज्ञा-पारमितः प्राज्ञो यति नियमितेन्द्रियः । भदन्तो भद्रकृत् भद्र कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥

अन्वयार्थ :

971. आपके प्रज्ञा का पार नहीं किसी भी मिती में, अथवा बुद्धी के पारगामी होने से आपको [[प्रज्ञापारमीत]] हो ।
972. प्रज्ञा के धनी होने से [[प्राज्ञा]] हो ।
973. आपने मोक्ष के अलावा किसी और चीज को पाने का यत्न ना किया अथवा मन को जीतने से [[यती]] हो ।
974. इन्द्रीयों को आपके नियम पर चलने के लिये बाध्य करने से [[नियमितेन्द्रिय]] हो ।
975. पूज्य अथवा प्रबुद्ध होने से [[भदन्त]] हो ।
976. आपने सदैव जनों का कल्याण ही चाहा और किया हुआ होने से [[भद्रकृत]] हो ।
977. मंगल, शुभ, कल्याणकारी, निष्कपट होने से [[भद्र]] हो ।
978. इच्छित पदार्थों के दाता होने से [[कल्पवृक्ष]] हो ।
979. उनकी प्राप्ति करनेवाले होने से [[वरप्रद]] कहलाते हैं ।

समुन्मूलीत-कर्मारिः कर्मकाष्टाऽशुशुक्षणिः । कर्मण्य कर्मठः प्रान्शु हेयादेय-विचक्षणः ॥११॥

अन्वयार्थ :

980. कर्मरूप शत्रूओं को जड़ से उखाड़ फेंकने से [[समुन्मूलितकर्मारि]] हो ।
981. लकड़ी के समान धीर-धीर या थोड़े-थोड़े जलनेवाले कर्मों को जलानेवाले अग्नी होने से [[कर्मकाष्टशुशुक्षणी]] हो ।
982. चारित्र्य के नितान्त कुशल होने से [[कर्मण्य]] हो ।
983. आचरण-निष्ठ होने से [[कर्मठ]] हो ।
984. सबसे उँचे, प्रकाशमान, उत्कृष्ट होने से [[प्रान्शु]] हो ।

अनन्तशक्ति रच्छेद्य स्त्रिपुरारि स्त्रिलोचनः । त्रिनेत्र स्त्र्यम्बक स्त्र्यक्ष केवलज्ञान-वीक्षणः ॥१२॥

अन्वयार्थ :

- 986. अंतराय-कर्म का नाश करके आप ने अनंत-वीर्य पाया हैं, इसलिए आप [[अनंतशक्ती]] हो ।
- 987. आपका छेदन या भेदन ना कर सकने से [[अच्छेद्य]] हो ।
- 988. जन्म-जरा-मृत्यु का नाश करने से तथा स्वर्ग, मध्य-लोक, अधो-लोक में पुनः जन्म लेकर इन तीनों पुरों का स्वयं के जीव की अपेक्षा में नाश करने से [[त्रिपुरारि]] हो ।
- 989. रत्नप्र-रुपी तीन नेत्र होने से अथवा तीनों-लोक के तीनों-काल के समस्त पदार्थों को एक साथ देखने की क्षमता होने से [[त्रिलोचन]] हो ।
- 990. जन्म से तीन-ज्ञान के धारी होने से [[त्रिनेत्र]] हो ।
- 991. [[त्र्यम्बक]] हो ।
- 992. [[त्र्यक्ष]] हो ।
- 993. केवलज्ञान ही आपके नेत्र होने से अर्थात् द्रव्येन्द्रिय चक्षु का उपयोग आपको केवलज्ञान के वजह से जरुरी ना होने से [[केवलज्ञानवीक्षण]] भी आप ही हो ।

समन्तभद्र शान्तारि धर्माचार्यो दयानिधीः । सूक्ष्मदर्शी जितानंग कृपालू धर्मदेशकः ॥१३॥

अन्वयार्थ :

- 994. सर्व-जन के लिये सर्व-मंगल होने से [[समन्तभद्र]] हो ।
- 995. कर्मशत्रुओं को शान्त कर देने से अथवा कोई जन्मजात शत्रु भी (जैसे सांप और नेवला अथवा हरिणी और सिंह) आपके सानिध्य में वैरभाव भूलकर शांत हो जाने से [[शान्तारि]] हो ।
- 996. धर्म को सिखानेवाले होने से [[धर्माचार्य]] हो ।
- 997. दया का सागर होने से, दया का भाँडार होने से [[दयानिधी]] हो ।
- 998. सूक्ष्मासूक्ष्म पदार्थ देखने से (जैसे अणु) अथवा जनों को उसके बारेमें अवगत कराने से [[सूक्ष्मदर्शी]] हो ।
- 999. कामदेव पर विजय पाने से [[जितानंग]] हो ।
- 1000. दयावान होने से [[कृपालू]] हो ।
- 1001. धर्म के यथार्थ उपदेश ही देशना के रूप में देने वाले होने से [[धर्मदेशक]] भी आपको कहा जाता है ।

शुभंयु सुखसाद्भूतः पुण्यराशी रनामयः । धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

अन्वयार्थ :

- 1002. मोक्ष रूप शुभ को प्राप्त करने से [[शुभंयु]] हो ।
- 1003. अनंत-सुख को आपने आधीन करने से अथवा अद्भुत-सुख के साथ रहने से [[सुखसाद्भूत]] हो ।
- 1004. आप का नाम, गुण, स्मरण, भक्ती, अर्चना, पूजा, वंदना पुण्य-कारक होने से [[पुण्यराशी]] हो ।
- 1005. रोग-रहित होने से [[नामय]] हो ।
- 1006. धर्म की रक्षा करने से अथवा धर्म को शुरू करने वाले तीर्थकर होने से [[धर्मपाल]] हो ।
- 1007. जगत् को जीने का उपदेश देकर उनका पालन करने से [[जगत्पाल]] हो ।
- 1008. धर्म रुपी साम्राज्य के स्वामी, उपदेशक, अधीश्वर होने से [[धर्म-साम्राज्यनायक]] भी कहा जाता है ।

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ।

धाम्नापते तवामुनि नामान्यागम कोविदैः । समुच्चिता-न्यनुध्यायन् पुमान् पूतस्मृति-भवित् ॥१॥

अन्वयार्थ : हे महातेजस्वी जिनेन्द्रदेव ! इन्द्र जैसे विद्वान् लोगों ने आपके उपरोक्त १००८ नामों का जो आपकी स्तुत्यर्थ हैं, संचय किया हैं । जो पुरुष इन नामों का स्मरण करता है, उसकी स्मरण-शक्ती अत्यंत तीव्र हो जाती है ।

गोचरोऽपि गिरामासां त्वम् वाग्गोचरो मतः । स्तोता तथ्याप्य संदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत् ॥२॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो ! यह १००८ नाम आपका वर्णन तथा स्तुति हेतु कहे गये हैं, तथापि किसी में भी इतनी प्रतिभा नहीं, की आपका यथार्थ वर्णन कर सके। यद्यपि आप वाणी के अगोचर हैं, तथापि इन् नामों से आपके वर्णन की चेष्टा करनेवाला पुरुष निःसंदेह ही अपने इष्ट-फल की प्राप्ति करता है।

**त्वमतोऽसि जगद्बूँधू स्त्वमतोऽसि जगद्विषक ।
त्वमतोऽसि जगद्वाता त्वमतोऽसि जगद्वितः ॥३॥**

अन्वयार्थ : हे विभो ! इस संसार में आप ही सबके बंधु, वैद्य, रक्षक तथा हितैशी हैं।

**त्वमेकं जगतां ज्योति स्त्वं द्विरुपोपयोग भाक् ।
त्वं त्रिरूपैक मुक्त्यंगः स्वोत्थानन्त चतुष्टयः ॥४॥**

अन्वयार्थ : केवलज्ञान रूपसे जगत प्रकाशक होने से [[एक]] हैं; सम्यक दर्शन तथा ज्ञान का उपयोग धारण करने से आप [[दो]] हैं; आप ही सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य की एकता (मोक्ष-स्वरूप) होने से आप [[तीन]] हैं और अनंत-चतुष्टय (अनंत-दर्शन, ज्ञान, वीर्य और सुख) धारण करने से आप [[चार]] हैं।

**त्वं पंचब्रह्मतत्त्वात्मा पंचकल्याणनायकः ।
षड् भेदभाव तत्त्वज्ञ स्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥**

अन्वयार्थ : पंच-परमेष्ठी-स्वरूप अथवा पंच-कल्याणक के (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष) स्वामी होने से आप [[पाँच]] हैं; छह तत्त्वों का (द्रव्यों का - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) योग्य निरुपण करने से आप [[छः]] रूप हैं; सात प्रकार के नय सें युक्त होने से [[सप्त]] रूप भी कहे जाते हैं।

**दिव्याष्ट गुण मूर्तिस्त्वं नवकेवल लब्धिकः ।
दशावतार निर्धार्यो मां पाहि परमेश्वरः ॥६॥**

अन्वयार्थ : अष्ट गुण धारक (अनंतचतुष्टय, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अव्याबधत्व) होने से [[अष्ट]] रूप हैं; नौ केवल-लब्धियों को धारण करने से [[नौ]] रूप हैं, महाबलादि दश-पर्याय धारण करने से [[दश]] रूप हैं अतः हे परमेश्वर आप मेरी रक्षा करो।

**युष्मन्नामावली दृष्ट्य विलसस्तोत्र मालया ।
भवन्तं वरिवस्यामः प्रसीदानु गृहाण नः ॥७॥**

अन्वयार्थ : हे वरद ! आपके १००८ नाम-रूप पुष्टों की स्तोत्रमाला से हम आपकी आराधना-भक्ति करते हैं; आप हम पर प्रसन्न होकर और कृपा किजिए।

**इदं स्तोत्र मनुस्मृत्य पूतो भवति भावितकः ।
यः संपाठ्य पठत्येनं स स्यात्कल्याण भाजनम् ॥८॥**

अन्वयार्थ : इस स्तोत्र के स्मरण-मात्र से भक्त पवित्र हो जाते हैं, तथा जो इसका पाठ नित्य पढ़ता है, उसे सब प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं, अर्थात परंपरा से उसे भी मोक्ष मिल जाता है।

**ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः ।
पौरुहुतिं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥९॥**

अन्वयार्थ : इसलिये जो पुरुष पुण्य को प्राप्त करना चाहते हैं, अथवा इन्द्रादि परम-विभुति पद को प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसे बुद्धीमान पुरुषों को इस स्तोत्र का पाठ नित्य करना चाहिए।

**स्तुत्वेति मघवा देवं चराचर जगद्गुरुम् ।
ततस्तीर्थ विहारस्य व्यधात्रप्रस्तावना मिमाम् ॥१०॥**

अन्वयार्थ : इस प्रकारसे (उपरोक्त) इन्द्र ने चराचर स्वरूप उस् जगतुरु देवाधिदेव जिनेंद्र भगवान की स्तुति की और फिर इन्हे उपदेश और जन-कल्याणहेतु तीर्थ विहार करने हेतु निम्न प्रार्थना की।

**स्तुतिः पुण्यगुणोल्किर्तिः स्तोता भव्य प्रसन्नधीः ।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम् ॥११॥**

अन्वयार्थ : प्रसन्न बुद्धीवाला जीव स्तुति करनेवाला होता है; और स्तुति का अर्थ किसी के पवित्र गुणों को प्रशंसापूर्वक कथन करना होता है। आपने समस्त पुरुषार्थ समाप्त करके मोक्षरूप लक्ष्मी को प्राप्त किया है, इसलिये आप स्तुत्य हैं और आपकी स्तुति का फल भी मोक्ष ही है।

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित् ।
धेयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ॥
यो नेन्तृन् नयते नमस्कृतिमलम् नन्तव्यपक्षेक्षणः ।
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरु पावनः ॥१२॥

अन्वयार्थ : जो स्त्युत्य हैं, स्तावक नहीं, जो ध्यान करने-योग्य हैं, ध्यायक नहीं; जो अपने अनुयायी श्रेष्ठ पुरुषों को भी नमस्कार के योग्य बनाता है; जो अंतरंग (अनंत चतुष्टय) और बहिरंग (समवशरण) लक्ष्मी से युक्त हैं, सब में श्रेष्ठ हैं, प्रधान हैं, पवित्र हैं, ऐसे देवाधिदेव भगवान अरिहंत-देव को ही तीन-लोक का गुरु समझना चाहिये ।

तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तरं ।
प्रोत्यानन्तच्चुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जिनीनामिनम् ॥
मानस्तम्भविलोकनानन्तजगन्मान्यं त्रीलोकीपतिं ।
प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे ॥१३॥

अन्वयार्थ : जिसके चरणों की पूजा इन्द्र करते हैं, जिनके घातिया-कर्म (दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय और अंतराय) नष्ट हो जाने के बाद अनंत-चतुष्टय (अनंत-दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य) प्रकट हुए हैं; जो भव्य-जन रूपी कमलों को प्रफुल्लित करनेवाला है; मान-संभ देखने से ही नत हुए समस्त जगत् द्वारा पूज्य है; जिनको समवशरण रूपी अचिन्त्य बाह्य-लक्ष्मी भी अनायास प्राप्त हो चुकी है और जो सब प्रकार के पापों से रहित है; ऐसे तीन-लोक के अधीश्वर भगवान जिनदेव को हम भक्ति-पूर्वक नमस्कार करते हैं ।

शुभंयु सुखसाद्भूतः पुण्यराशी रनामयः ।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

अन्वयार्थ : इति श्रीभगवज्जिन सहस्रनाम स्तोत्रं समाप्तम् ।

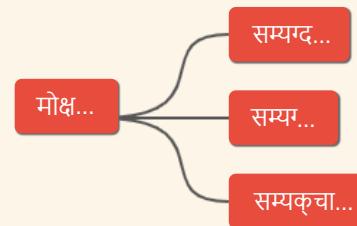


तत्त्वार्थसूत्र

मोक्ष का उपाय

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग हैं ॥१॥



सम्यग्दर्शन का लक्षण

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥

अन्वयार्थ : अपने अपने स्वरूप के अनुसार पदार्थों का जो श्रद्धान होता है वह सम्यग्दर्शन है ॥२॥

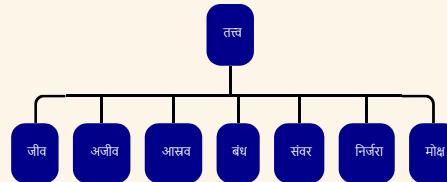
तत्त्विसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥

अन्वयार्थ : वह (सम्यगदर्शन) निसर्ग से और अधिगम से उत्पन्न होता है ॥३॥



सात तत्त्व जीवाजीवास्त्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥

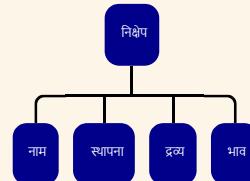
अन्वयार्थ : जीव, अजीव, आसव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं ॥४॥



निक्षेपों का कथन

नामस्थापनाद्रव्यभाव तस्तन्यासः ॥५॥

अन्वयार्थ : नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप से उनका अर्थात् सम्यगदर्शन आदि और जीव आदि का न्यास (निक्षेप) होता है ॥५॥



तत्त्वों को जानने का उपाय

प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥

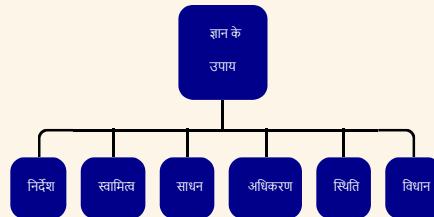
अन्वयार्थ : प्रमाण और नयों से पदार्थों का ज्ञान होता है ॥६॥



तत्त्वों को जानने का अन्य उपाय

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥७॥

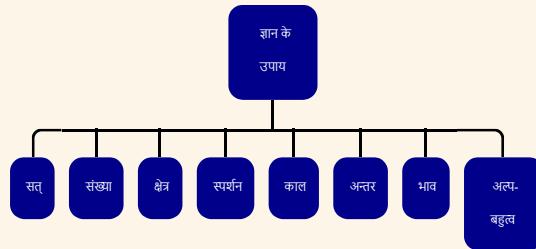
अन्वयार्थ : निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से सम्यगदर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है ॥७॥



जीव आदि को जानने के और भी उपाय

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावात्पबहुत्वैश्च ॥८॥

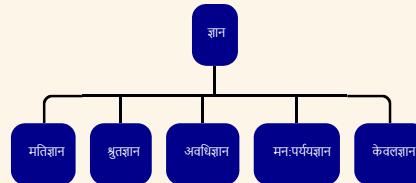
अन्वयार्थ : सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व से भी सम्प्रदर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है ॥८॥



ज्ञान के भेद

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥

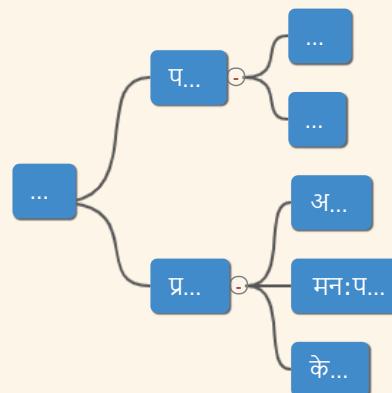
अन्वयार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं ॥९॥



ज्ञान ही प्रमाण है

तत्प्रमाणे ॥१०॥

अन्वयार्थ : वह पाँचों प्रकार का ज्ञान दो प्रमाणरूप है ॥१०॥



आद्ये परोक्षम् ॥11॥

अन्वयार्थ : प्रथम दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं ॥११॥

प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान
प्रत्यक्षमन्यत् ॥12॥

अन्वयार्थ : शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ॥१२॥

परोक्ष प्रमाण के संबंध में विशेष कथन

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थन्तरम् ॥13॥

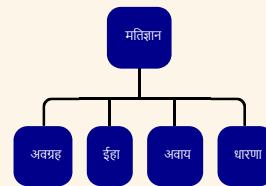
अन्वयार्थ : मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध ये पर्यायवाची नाम हैं ॥१३॥

मतिज्ञान किससे उत्पन्न होता है
तदिन्द्रयानिन्द्रिय निमित्तम् ॥14॥

अन्वयार्थ : वह(मतिज्ञान) इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है ॥१४॥

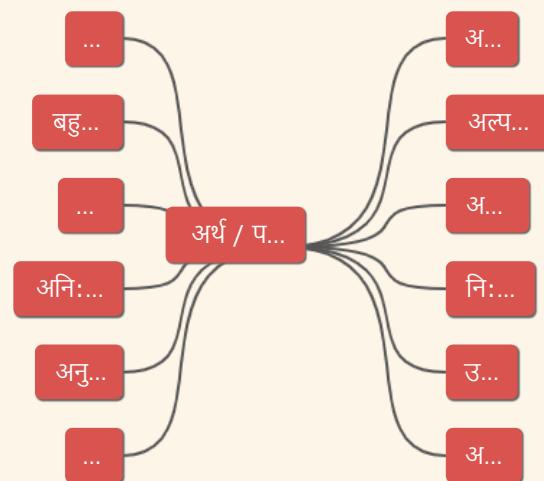
मतिज्ञान के भेद
अवग्रहेहावाय धारणाः ॥15॥

अन्वयार्थ : अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये मतिज्ञान के चार भेद हैं ॥१५॥



अवग्रह आदि ज्ञानों के और भेद
बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥16॥

अन्वयार्थ : सेतर (प्रतिपक्षसहित) बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणारूप मतिज्ञान होते हैं ॥१६॥



बहु बहुविध आदि किसके विशेषण हैं
अर्थस्य ॥17॥

अन्वयार्थ : अर्थ के (वस्तु के) अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान होते हैं ॥१७॥

अवग्रह आदि ज्ञान का नियम
व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥

अन्वयार्थ : व्यंजन का अवग्रह ही होता है ॥१८॥

व्यञ्जनावग्रह सभी इन्द्रियों से नहीं होता
न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥

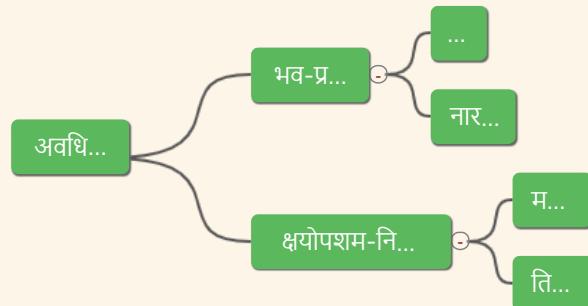
अन्वयार्थ : चक्षु और मन से व्यञ्जनावग्रह नहीं होता ॥१९॥

श्रुतज्ञान का स्वरूप
श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥

अन्वयार्थ : श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। वह दो प्रकार का, अनेक प्रकार का और बारह प्रकार का है ॥२०॥

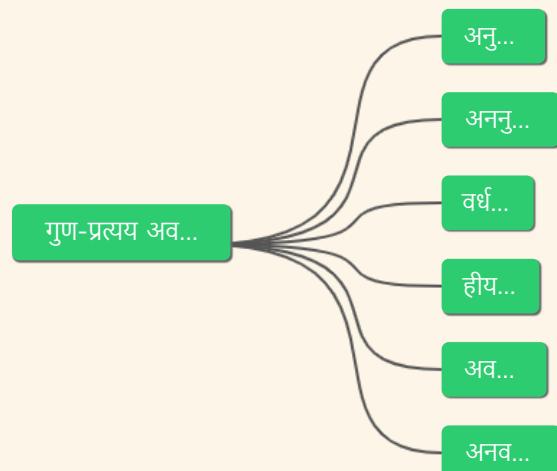
अवधिज्ञान के भेद
भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥

अन्वयार्थ : भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है ॥२१॥



अवधिज्ञान के स्वामी
क्ष्योपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

अन्वयार्थ : क्ष्योपशमनिमित्तक अवधिज्ञान छह प्रकार का है, जो शेष अर्थात् तिर्यचों और मनुष्यों के होता है ॥२२॥



मनःपर्यय के भेद

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥

अन्वयार्थ : ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है ॥२३॥



मनःपर्यय के दोनों भेदों में विशेषता

विशुद्धयप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥

अन्वयार्थ : विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा इन दोनों में अन्तर है ॥२४॥

अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान में अन्तर

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥२५॥

अन्वयार्थ : विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में भेद है ॥२५॥

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय

मतिश्रुतयोर्निर्बन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्ययेषु ॥२६॥

अन्वयार्थ : मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है ॥२६॥

अवधिज्ञान का विषय

रूपिष्ववधेः ॥२७॥

अन्वयार्थ : अवधिज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों में होती है ॥२७॥

मनःपर्यय ज्ञान का विषय

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥

अन्वयार्थ : मनःपर्ययज्ञान की प्रवृत्ति अवधिज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग में होती है ॥२८॥

केवल ज्ञान का विषय

सर्वद्रव्यपर्ययेषु केवलस्य ॥२९॥

अन्वयार्थ : केवलज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों में होती है ॥२९॥

एक साथ कितने ज्ञान संभव?

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

अन्वयार्थ : एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर चार ज्ञान तक भजना से होते हैं ॥३०॥

कौन-कौन से ज्ञान मिथ्या भी होते हैं?

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

अन्वयार्थ : मति, श्रुत और अवधि ये तीन विपर्यय भी हैं ॥३१॥

मिथ्यादृषि का ज्ञान मिथ्या क्यों?

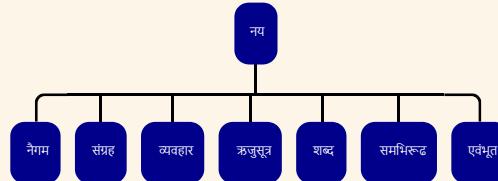
सदसतोरविशेषाद्यद्वच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥

अन्वयार्थ : वास्तविक और अवास्तविक के अन्तर के बिना यद्वच्छोपलब्धि (जब जैसा जी में आया उस रूप ग्रहण होने) के कारण उन्मत्त की तरह ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है ॥३२॥

नय के भेद

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥३३॥

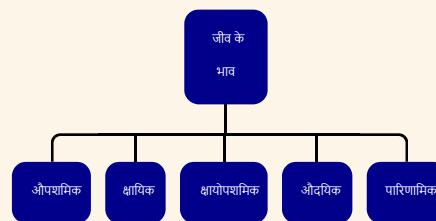
अन्वयार्थ : नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ये सात नय हैं ॥३३॥



जीव के परिणामों (भावों) के प्रकार

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥

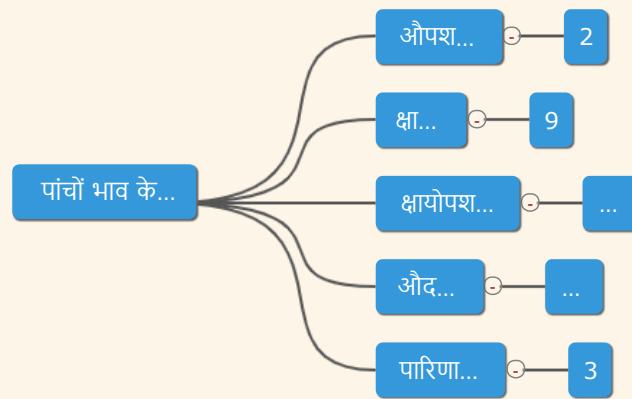
अन्वयार्थ : औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक ये जीव के स्वतत्त्व हैं ॥१॥



परिणामों (भावों) के उत्तर-भेद

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

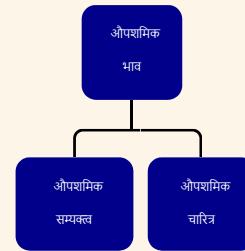
अन्वयार्थ : उक्त पाँच भावों के क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं ॥२॥



औपशमिकभाव के भेद

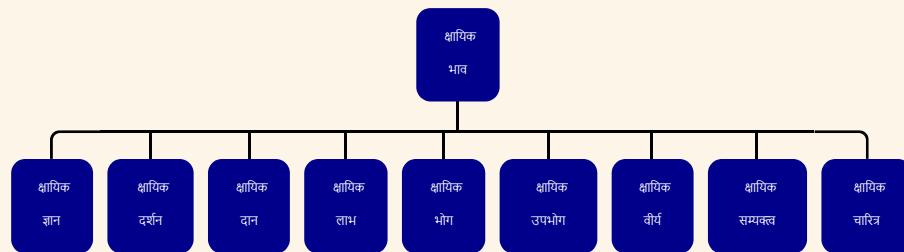
सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

अन्वयार्थ : औपशमिक भाव के दो भेद हैं - औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ॥३॥



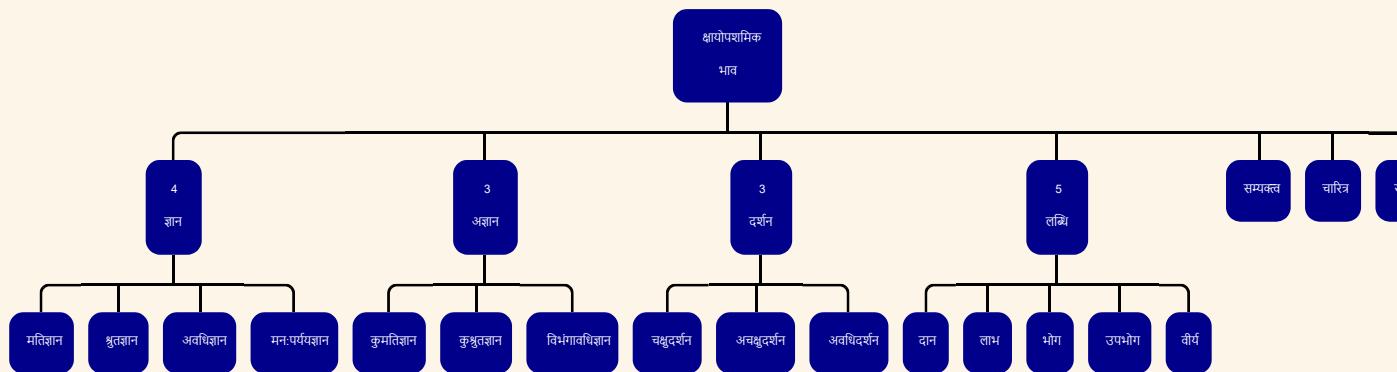
क्षायिक भाव के भेद ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥

अन्वयार्थ : क्षायिक भाव के नौ भेद हैं - क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ॥४॥



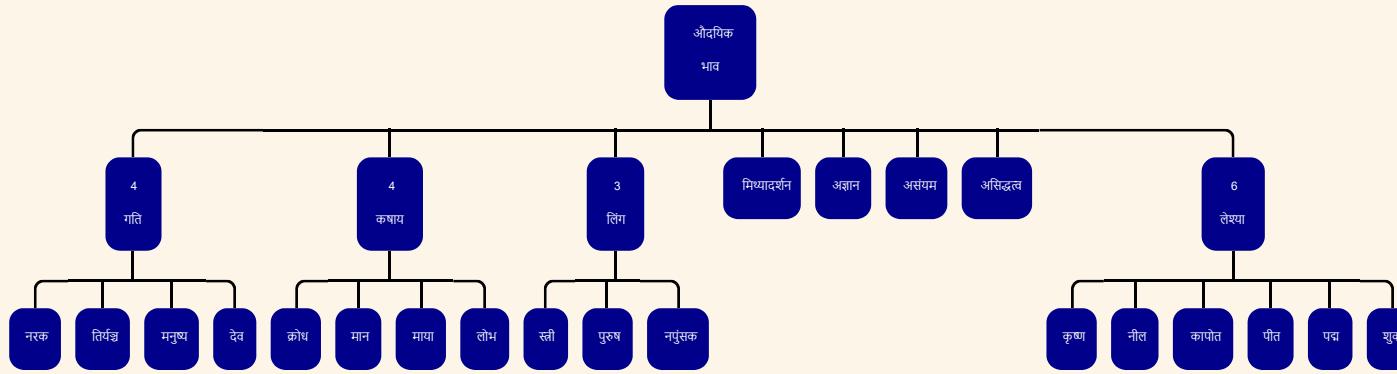
क्षायोपशमिक भाव के भेद ज्ञानाज्ञानदर्शन लब्ध्यश्चतुस्त्रित्रि पञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाश्च ॥५॥

अन्वयार्थ : क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं - चार ज्ञान, तीन अज्ञान, पाँच दानादि लब्धियाँ, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम ॥५॥



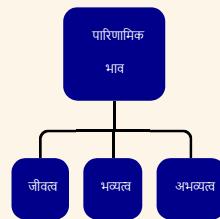
औदयिक भाव के भेद गतिकषायलिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुस्त्रैकैकैकैक-षड्भेदाः ॥६॥

अन्वयार्थ : औदयिक भाव के इक्कीस भेद हैं - चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, एक मिथ्यादर्शन, एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्ध भाव और छह लेश्याएँ ॥६॥



पारिणामिक भाव के भेद जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥

अन्वयार्थ : पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं - जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ॥७॥

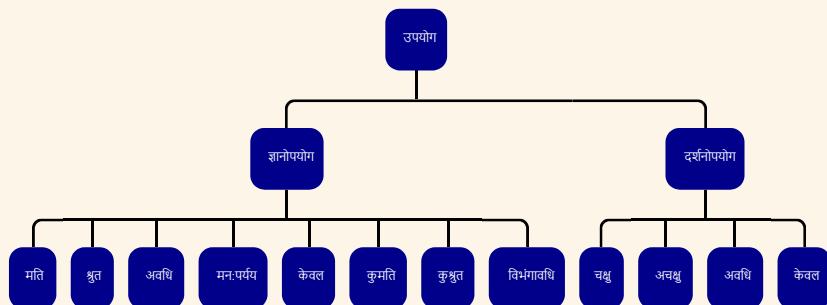


जीव का लक्षण उपयोगो लक्षणम् ॥८॥

अन्वयार्थ : उपयोग जीव का लक्षण है ॥८॥

उपयोग के भेद स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥९॥

अन्वयार्थ : वह उपयोग दो प्रकार का है - ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है ॥९॥



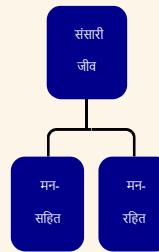
जीव के भेद संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥

अन्वयार्थ : जीव दो प्रकार के हैं - संसारी और मुक्त ॥१०॥



संसारी जीवों के भेद
समनस्काऽमनस्काः ॥११॥

अन्वयार्थ : मनवाले और मनरहित ऐसे संसारी जीव हैं ॥११॥



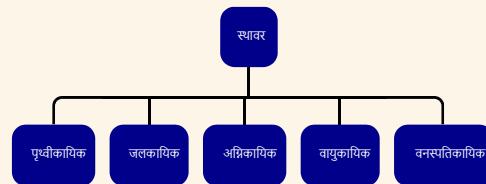
संसारी जीवों के और भी भेद
संसारिणस्तस्थावराः ॥१२॥

अन्वयार्थ : तथा संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार हैं ॥१२॥



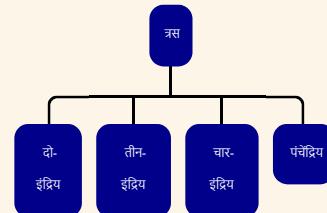
स्थावर जीवों के भेद
पृथिव्यप्तेजो वायु-वनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

अन्वयार्थ : पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच स्थावर हैं ॥१३॥



त्रस जीवों के भेद
द्वीन्द्रियादयस्तसाः ॥१४॥

अन्वयार्थ : दो इन्द्रिय आदि त्रस हैं ॥१४॥

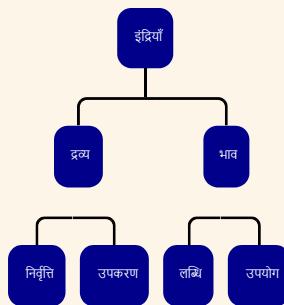


इन्द्रियों की संख्या
पंचेन्द्रियाणि ॥१५॥

अन्वयार्थ : इन्द्रियाँ पाँच हैं ॥१५॥

इन्द्रियों के प्रकार द्विविधानि ॥16॥

अन्वयार्थ : वे प्रत्येक दो-दो प्रकार की हैं ॥१६॥



द्रव्य-इन्द्रियों का स्वरूप निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥17॥

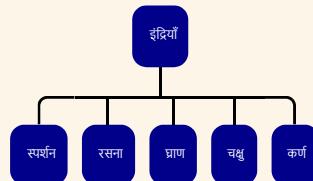
अन्वयार्थ : निर्वृति और उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय है ॥१७॥

भाव-इन्द्रियों का स्वरूप लब्ध्युपयोगो भावेन्द्रियम् ॥18॥

अन्वयार्थ : लब्धि और उपयोगरूप भावेन्द्रिय है ॥१८॥

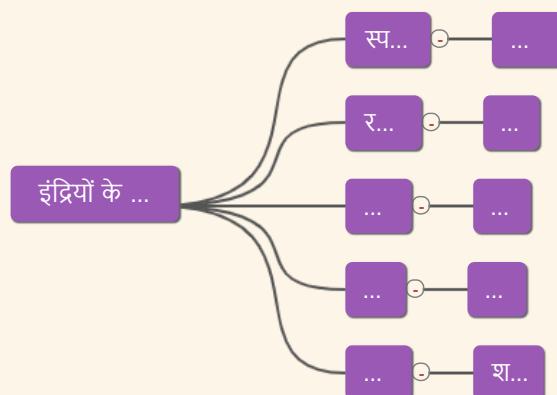
इन्द्रियों के प्रकार स्पर्शन-रसन-ग्राण-चक्षुःश्रोत्राणि ॥19॥

अन्वयार्थ : स्पर्शन, रसना, ग्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ हैं ॥१९॥



इन्द्रियों के विषय स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थः ॥20॥

अन्वयार्थ : स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द ये क्रम से उन इन्द्रियों के विषय हैं ॥२०॥



मन के विषय
श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥

अन्वयार्थ : श्रुत मन का विषय है ॥२१॥

स्पर्शन इन्द्रिय के स्वामी
वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥

अन्वयार्थ : वनस्पतिकायिक तक के जीवों के एक अर्थात् प्रथम इन्द्रिय होती है ॥२२॥

शेष इन्द्रियों के स्वामी
कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

अन्वयार्थ : कृमि, पिपीलिका, भ्रमर और मनुष्य आदि के क्रम से एक-एक इन्द्रिय अधिक होती है ॥२३॥

संज्ञी जीव का स्वरूप
संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥

अन्वयार्थ : मनवाले जीव संज्ञी जीव होते हैं ॥२४॥

विग्रह गति में योग
विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥

अन्वयार्थ : विग्रहगति में कार्मणकाय योग होता है ॥२५॥

विग्रह गति में गमन
अनुश्रेणिः गतिः ॥२६॥

अन्वयार्थ : गति श्रेणी के अनुसार होती है ॥२६॥

मुक्त जीव का गमन
अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥

अन्वयार्थ : मुक्त जीव की गति विग्रहरहित होती है ॥२७॥

विग्रह गति का काल
विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥

अन्वयार्थ : संसारी जीव की गति विग्रहरहित और विग्रहवाली होती है। उसमें विग्रहवाली गति चार समय से पहले अर्थात् तीन समय तक होती है ॥२८॥

ऋजु-गति का काल
एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥

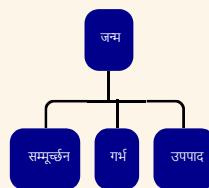
अन्वयार्थ : एक समयवाली गति विग्रहरहित होती है ॥२९॥

विग्रह-गति में अनाहारक
एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥

अन्वयार्थ : एक, दो या तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है ॥३०॥

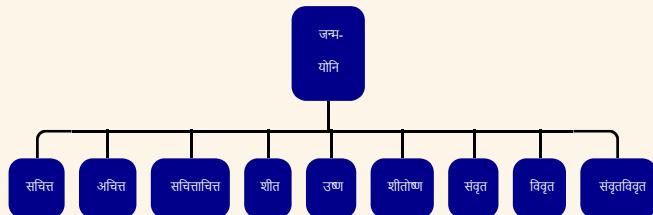
जन्म के प्रकार
सम्मूर्छ्न-गर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

अन्वयार्थ : समूच्छन, गर्भ और उपपाद ये (तीन) जन्म हैं ॥३१॥



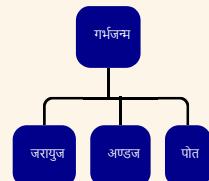
जन्म-योनि के प्रकार सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

अन्वयार्थ : सचित, शीत और संवृत तथा इनकी प्रतिपक्षभूत अचित, उष्ण और विवृत तथा मिश्र अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत ये उसकी अर्थात् जन्म की योनियाँ हैं ॥३२॥



गर्भ-जन्म के स्वामी जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥

अन्वयार्थ : जरायुज, अण्डज और पोत जीवों का गर्भजन्म होता है ॥३३॥



उपपाद-जन्म के स्वामी देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥

अन्वयार्थ : देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है ॥३४॥

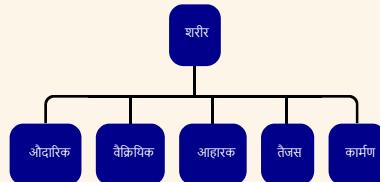
समूच्छन-जन्म के स्वामी शेषाणां समूच्छनं ॥३५॥

अन्वयार्थ : शेष सब जीवों का समूच्छन जन्म होता है ॥३५॥

शरीर के प्रकार

औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥३६॥

अन्वयार्थ : औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं ॥३६॥



शरीरों में स्थूलता-सूक्ष्मता
परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥

अन्वयार्थ : आगे-आगे का शरीर सूक्ष्म है ॥३७॥

शरीरों के प्रदेश
प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥

अन्वयार्थ : तैजस से पूर्व तीन शरीरों में आगे-आगे का शरीर प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणा है ॥३८॥

तैजस-कार्मण शरीरों के प्रदेश
अनन्तगुणे परे ॥३९॥

अन्वयार्थ : परवर्ती दो शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हैं ॥३९॥

तैजस-कार्मण शरीरों में सूक्ष्मता
अप्रतीघाते ॥४०॥

अन्वयार्थ : प्रतीघात रहित हैं ॥४०॥

तैजस-कार्मण का जीव के साथ सम्बन्ध
अनादिसंबन्धे च ॥४१॥

अन्वयार्थ : आत्मा के साथ अनादि सम्बन्धवाले हैं ॥४१॥

दोनों शरीरों के स्वामी
सर्वस्य ॥४२॥

अन्वयार्थ : तथा सब संसारी जीवों के होते हैं ॥४२॥

एक जीव के कितने शरीर सम्भव हैं?
तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

अन्वयार्थ : एक साथ एक जीव के तैजस और कार्मण से लेकर चार शरीर तक विकल्प से होते हैं ॥४३॥

कार्मण शरीर के बारे में विशेष
निरूपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

अन्वयार्थ : अन्तिम शरीर उपभोग-रहित है ॥४४॥

गर्भज और सम्मूर्छनज का शरीर
गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥४५॥

अन्वयार्थ : पहला शरीर गर्भ और संमूर्छन जन्म से पैदा होता है ॥४५॥

उपपाद जन्म के साथ शरीर
औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

अन्वयार्थ : वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्म से पैदा होता है ॥४६॥

वैक्रियिक शरीर के अन्य स्वामी
लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

अन्वयार्थ : तथा लब्धि से भी पैदा होता है ॥४७॥

तैजस शरीर की विशेषता
तैजसमपि ॥48॥

अन्वयार्थ : तैजस शरीर भी लब्धि से पैदा होता है ॥४८॥

आहारक शरीर का स्वरूप

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥49॥

अन्वयार्थ : आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याघात रहित है और वह प्रमत्तसंयत के ही होता है ॥४९॥

नारक और संमूच्छिन में लिंग

नारकसंमूच्छिनो नपुंसकानि ॥50॥

अन्वयार्थ : नारक और संमूच्छिन नपुंसक होते हैं ॥५०॥

देवों में लिंग
न देवाः ॥51॥

अन्वयार्थ : देव नपुंसक नहीं होते ॥५१॥

मनुष्य-तिर्यन्तों में लिंग

शेषास्त्रिवेदाः ॥52॥

अन्वयार्थ : शेष जीवों के यथासंभव तीनों वेद होते हैं ॥५२॥

आयु का अनपवर्तन सम्बन्धी नियम

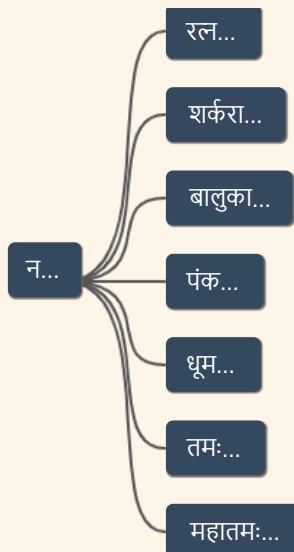
औपपादिक चरमोत्तम-देहाऽसंख्ये-वर्षायुषोऽनपवत्यायुषः ॥53॥

अन्वयार्थ : उपपाद जन्मवाले (देव / नारकी), चरमोत्तम देहवाले (तद्द्रव-मोक्षगामी) और असंख्यात वर्ष की आयुवाले (भोग-भूमिज) जीव परिपूर्ण आयु वाले होते हैं ॥५३॥

सात पृथ्वियां

रल-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो-महात्मः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः
सप्ताऽधोऽधः ॥1॥

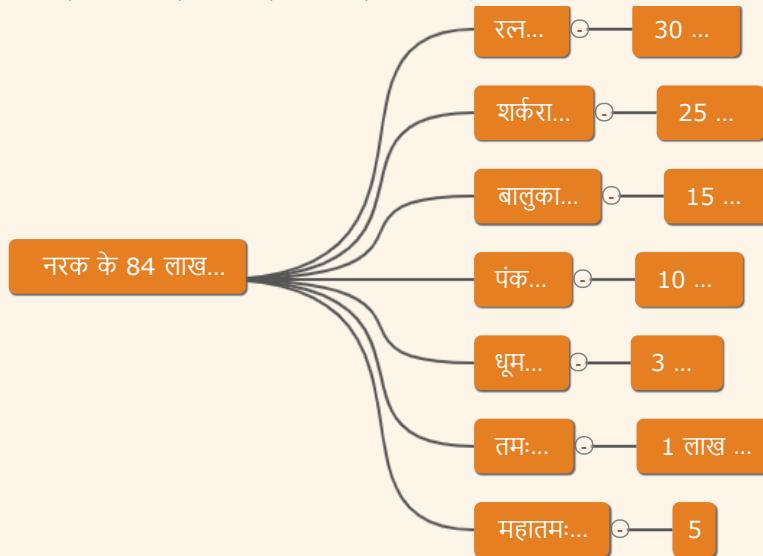
अन्वयार्थ : रलप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महात्मःप्रभा ये सात भूमियाँ घनाम्बु, वात और आकाश के सहरे स्थित हैं तथा क्रम से नीचे-नीचे हैं ॥१॥



सात पृथ्वियों में नरकों की संख्या

तासु त्रिंशत्पंचविंशति पंचदशदश-त्रि-पंचोनैक-नरक-शतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥२॥

अन्वयार्थ : उन भूमियों में क्रम से तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच नरक हैं ॥२॥



नारकीयों की लेश्यादि दुःख

नारका नित्याऽशुभतर-लेश्या-परिणामदेह-वेदना-विक्रियाः ॥३॥

अन्वयार्थ : नारकी निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रियावाले हैं ॥३॥

पारस्परिक दुःख

परस्परोदीरित-दुःखाः ॥४ ॥

अन्वयार्थ : तथा वे परस्पर उत्पन्न किये गये दुःखवाले होते हैं ॥४॥

देव-कृत दुःख

संक्लिष्टासुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्यः ॥५॥

अन्वयार्थ : और चौथी भूमि से पहले तक वे संक्लिष्ट असुरों के द्वारा उत्थन किये गये दुःखवाले भी होते हैं ॥५॥

नरकों में उत्कृष्ट आयु

तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्तिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥

अन्वयार्थ : उन नरकों में जीवों की उल्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तैनीस सागरोपम है ॥६॥

12	4/5 सागर	9/10 सागर
13	9/10 सागर	1 सा

मध्य-लोक में द्वीप समुद्र

जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-समुद्रा ॥७ ॥

अन्वयार्थ : जम्बूद्वीप आदि शुभ नामवाले द्वीप और लवणोद आदि शुभ नामवाले समुद्र हैं ॥७ ॥

द्वीप-समुद्र का आकार

द्विद्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८ ॥

अन्वयार्थ : वे सभी द्वीप और समुद्र दूने-दूने व्यासवाले, पूर्व-पूर्व द्वीप और समुद्र को बेशित करने वाले और चूड़ी के आकार वाले हैं ॥८ ॥

जम्बू-द्वीप

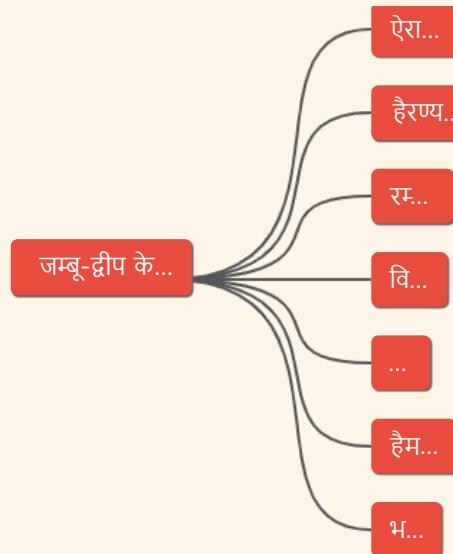
तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९ ॥

अन्वयार्थ : उन सबके बीच में गोल और एक लाख योजन विष्कम्भवाला जम्बूद्वीप है। जिसके मध्य में नाभि के समान मेरु पर्वत है ॥९ ॥

सात क्षेत्र

भरतहैमवत-हरि-विदेह-रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१० ॥

अन्वयार्थ : भरतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतवर्ष और ऐरावतवर्ष ये सात क्षेत्र हैं ॥१० ॥

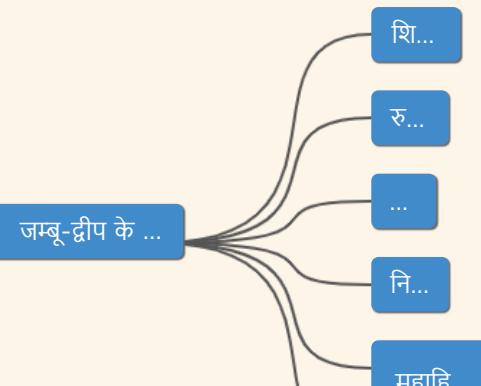


छह पर्वत

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः ॥११ ॥

अन्वयार्थ : उन क्षेत्रों को विभाजित करनेवाले और पूर्व-पश्चिम लम्बे ऐसे हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह वर्षधर पर्वत हैं ॥

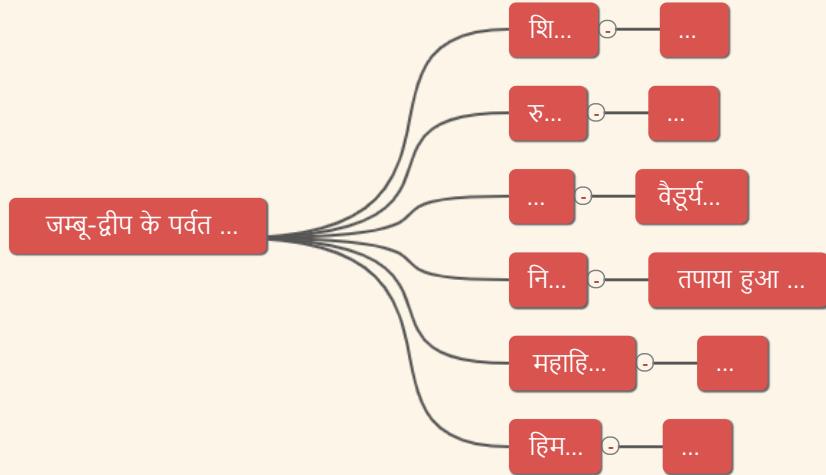
११ ॥



पर्वतों के रंग

हेमार्जुन-तपनीय वैद्युर्य-रजत हेममया: ||12||

अन्वयार्थ : ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चाँदी, तपाया हुआ सोना, वैद्युर्यमणि, चाँदी और सोना इनके समान रंगवाले हैं ॥१२॥



पर्वतों का आकार

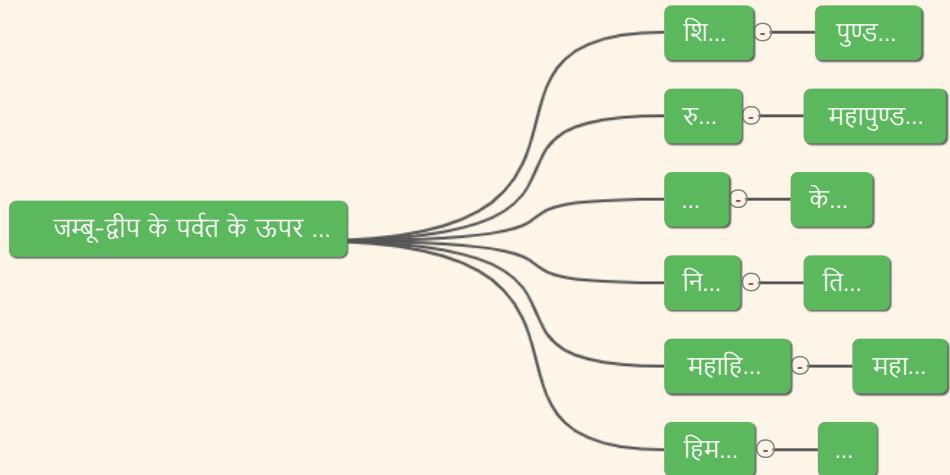
मणि-विचित्र-पाश्व उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ||13||

अन्वयार्थ : इनके पाश्व मणियों से चित्र-विचित्र हैं तथा वे ऊपर, मध्य और मूल में समान विस्तारवाले हैं ॥१३॥

पर्वतों पर तालाब

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरि महापुण्डरीकपुण्डरीका-हृदास्तेषामुपरि ||14||

अन्वयार्थ : इन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केशरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये तालाब हैं ॥१४॥



तालाब की लम्बाई-चौड़ाई

प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदद्विष्कम्भो हृदः । ||15||

अन्वयार्थ : पहला तालाब एक हजार योजन लम्बा और इससे आधा चौड़ा है ॥१५॥

तालाब की गहराई
दशयोजनावगाहः ॥१६॥

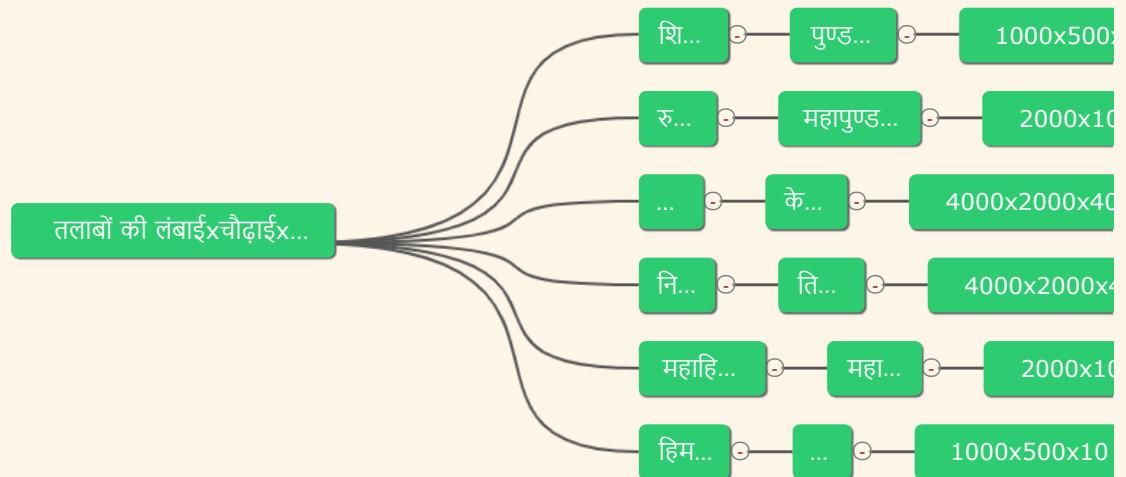
अन्वयार्थ : तथा दस योजन गहरा है ॥१६॥

तालाब के बीच में कमल
तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

अन्वयार्थ : इसके बीच में एक योजन का कमल है ॥१७॥

बाकी तालाबों के आकार
तद् द्विगुण-द्विगुणा हृदाः पुष्कराणि च ॥१८॥

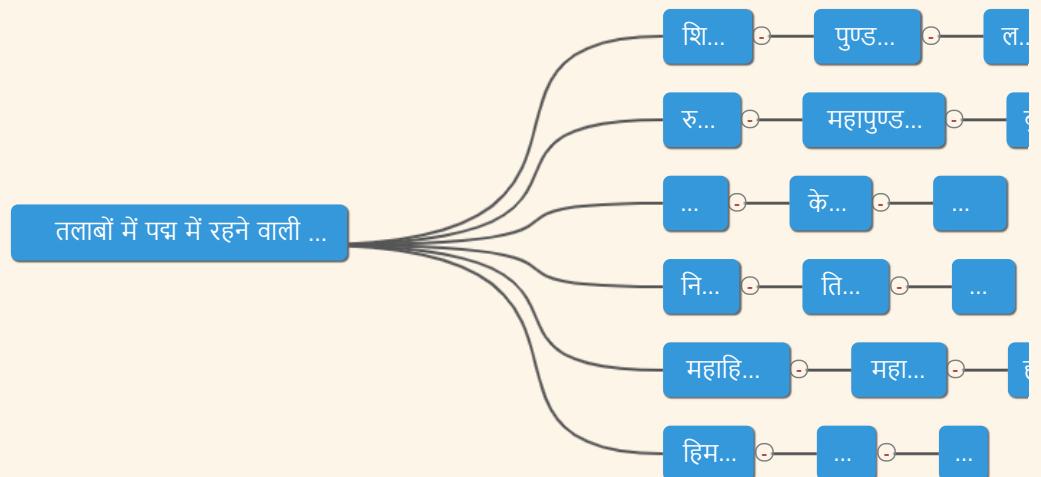
अन्वयार्थ : आगे के तालाब और कमल दूने-दूने हैं ॥१८॥



तालाबों में देवियों का निवास

तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ही-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक परिषत्का: ॥
19॥

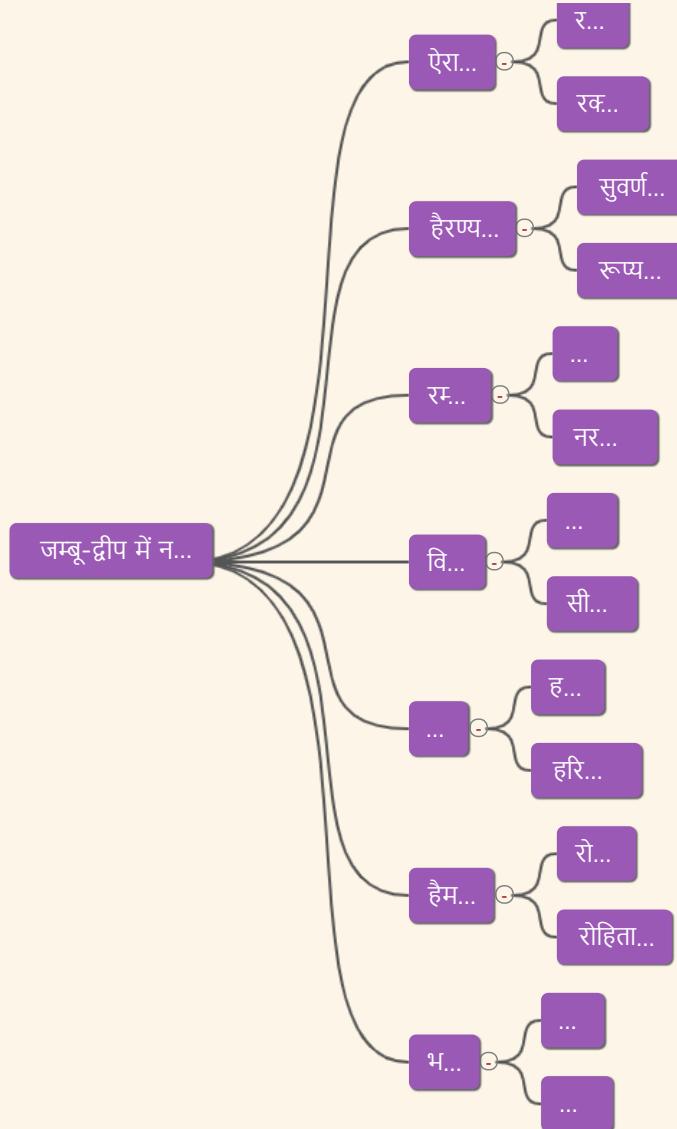
अन्वयार्थ : इनमें श्री, ही, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये देवियाँ सामानिक और परिषद् देवों के साथ निवास करती हैं। तथा इनकी आयु एक पल्योपम है ॥१९॥



क्षेत्रों की नदियाँ

गंगासिन्धु रोहिद्रोहितास्या-हरिद्वरिकान्ता सीतासीतोदा-नारीनरकान्ता सुवर्णस्त्वप्यकूला रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥

अन्वयार्थ : इन भरत आदि क्षेत्रों में-से गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा नदियाँ बही हैं ॥२०॥



नदियों की दिशा द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥

अन्वयार्थ : दो-दो नदियों में-से पहली-पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती है ॥२१॥

तीसरी नदी की दिशा शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥

अन्वयार्थ : किन्तु शेष नदियाँ पश्चिम समुद्र को जाती हैं ॥२२॥

परिवार नदियाँ

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्धादयो नद्यः ॥२३॥

अन्वयार्थ : गंगा और सिन्धु आदि नदियों की चौदह-चौदह हजार परिवार नदियाँ हैं ॥२३॥

भरतः षड्विंशति-पंचयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा-योजनस्य ॥२४॥

अन्वयार्थ : भरत क्षेत्र का विस्तार पाँच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस योजन है ॥२४॥

बाकी क्षेत्रों का विस्तार

तद् द्विगुण द्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥

अन्वयार्थ : विदेह पर्यन्त पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार भरत क्षेत्र के विस्तार से दूना-दूना है ॥२५॥

उत्तर-दक्षिण में समानता

उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ॥२६॥

अन्वयार्थ : उत्तर के क्षेत्र और पर्वतों का विस्तार दक्षिण के क्षेत्र और पर्वतों के समान है ॥२६॥

भरत-एरावत क्षेत्र में काल परिवर्तन

भरतैरावतयोर्वृद्धिहासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥

अन्वयार्थ : भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह समयों की अपेक्षा वृद्धि और हास होता रहता है ॥२७॥

बाकी क्षेत्रों में काल परिवर्तन

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥

अन्वयार्थ : भरत और ऐरावत के सिवा शेष भूमियाँ अवस्थित हैं ॥२८॥

मनुष्यों की आयु

एकद्वित्रिपल्योपम-स्थितयो हैमवतक हारिवर्षक दैवकुरुवकाः ॥२९॥

अन्वयार्थ : हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के मनुष्यों की स्थिति क्रम से एक, दो और तीन पल्योपम प्रमाण है ॥२९॥

उत्तर-दक्षिण में आयु में समानता

तथोत्तराः ॥३०॥

अन्वयार्थ : दक्षिण के समान उत्तर में है ॥३०॥

विदेह क्षेत्र में आयु

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥

अन्वयार्थ : विदेहों में संख्यात वर्ष की आयुवाले मनुष्य हैं ॥३१॥

भरत क्षेत्र का विस्तार

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥

अन्वयार्थ : भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बेवाँ भाग है ॥३२॥

धातकीखण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत

द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥

अन्वयार्थ : धातकीखण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत आदि जम्बूद्वीप से दूने हैं ॥३३॥

पुष्करार्द्ध द्वीप में क्षेत्र और पर्वत

पुष्करार्द्धं च ॥३४॥

अन्वयार्थ : पुष्करार्द्ध में उतने ही क्षेत्र और पर्वत हैं ॥३४॥

मनुष्यों का गमन

प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

अन्वयार्थ : मानुषोत्तर पर्वत के पहले तक ही मनुष्य हैं ॥३५॥

मनुष्यों के प्रकार आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥

अन्वयार्थ : मनुष्य दो प्रकार के हैं-आर्य और म्लेच्छ ॥३६॥

कर्म-भूमि

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

अन्वयार्थ : देवकुरु और उत्तरकुरु के सिवा भरत, ऐरावत और विदेह ये सब कर्मभूमियाँ हैं ॥३७॥

मनुष्यों की उल्कष्ट और जघन्य स्थिति

नृस्थितीपरावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥

अन्वयार्थ : मनुष्यों की उल्कष्ट स्थिति तीन पल्योपम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ॥३८॥

तिर्यचों की स्थिति

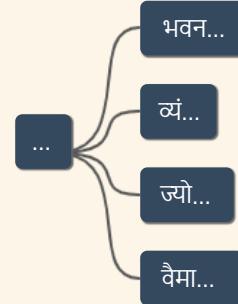
तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

अन्वयार्थ : तिर्यचों की स्थिति भी उतनी ही है ॥३९॥

देवों के प्रकार

देवाश्वतुर्णिकायाः ॥१॥

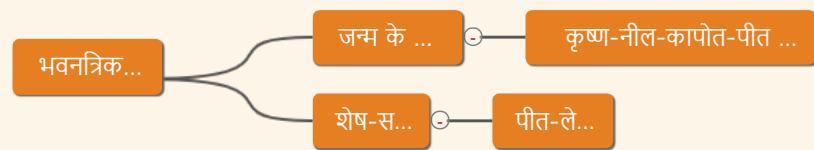
अन्वयार्थ : देव चार निकाय वाले हैं ॥१॥



भवनत्रिक-देवों में लेश्या

आदितस्तिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥

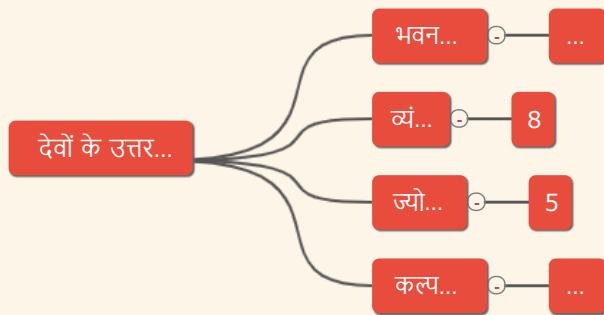
अन्वयार्थ : आदि के तीन निकायों में पीत पर्यन्त चार लेश्याएँ हैं ॥२॥



देवों के उत्तर भेद

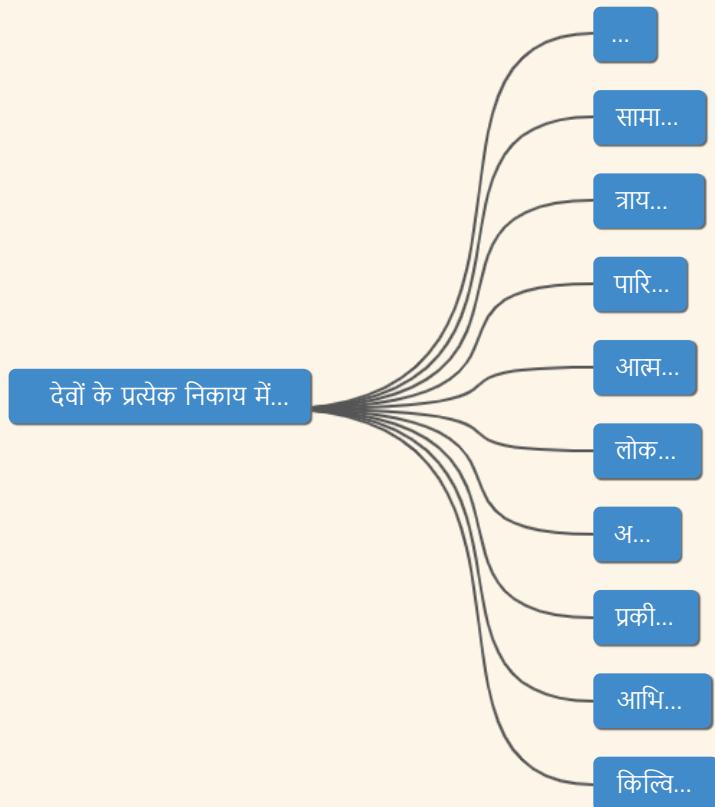
दशष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पा कल्पोपपत्रं पर्यन्ताः ॥३॥

अन्वयार्थ : वे कल्पोपपन् देव तक के चार निकाय के देव क्रम से दस, आठ, पांच और बारह भेद वाले हैं ॥३॥



दस भेद
इंद्र-सामानिक-त्रायस्तिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्वैकशः
॥4॥

अन्वयार्थ : उक्त दस आदि भेदों में-से प्रत्येक इन्द्र, सामानिक, त्रायस्तिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक रूप हैं ॥४॥



भेदों में अपवाद
त्रायस्तिंश-लोकपाल-वर्ज्या व्यंतरज्योतिष्का: ॥५॥

अन्वयार्थ : किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देव त्रायस्तिंश और लोकपाल इन दो भेदों से रहित है ॥५॥

भवनवासी और व्यंतर में इन्द्र
पूर्वयोद्धीन्द्राः ॥६॥

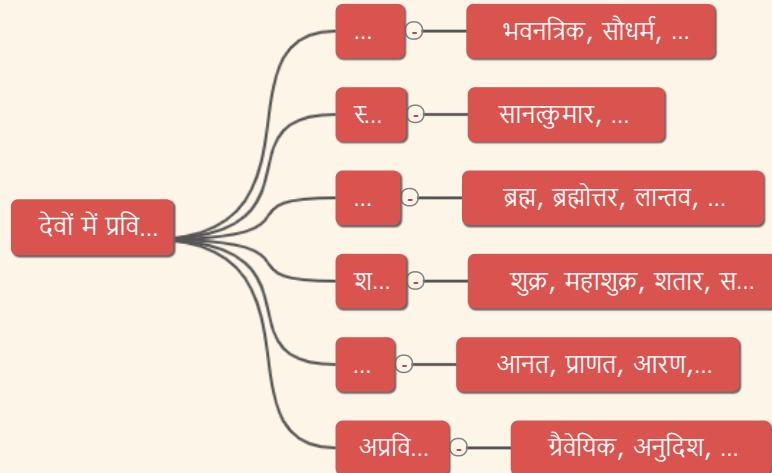
अन्वयार्थ : प्रथम दो निकायों (भवनवासी / व्यंतर) में दो-दो इन्द्र हैं ॥६॥

काय-प्रविचार कहाँ तक?
काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

अन्वयार्थ : ऐशान तक के देव कायप्रवीचार अर्थात् शरीर से विषय सुख भोगने वाले होते हैं ॥७॥

स्पर्श, रूप और शब्द प्रविचार
शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रवीचाराः ॥८॥

अन्वयार्थ : शेष देव स्पर्श, रूप, शब्द और मन से विषय सुख भोगने वाले होते हैं ॥८॥

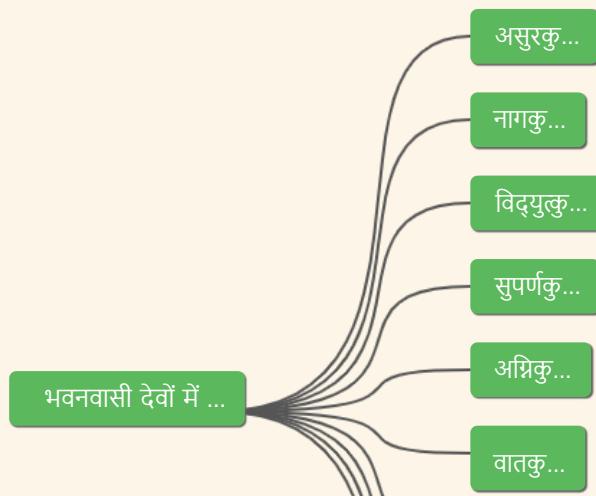


प्रविचार रहित देव
परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

अन्वयार्थ : बाकी के सब देव विषय सुख से रहित होते हैं ॥९॥

भवनवासी देवों के प्रकार
भवन-वासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपणिग्निवातस्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ॥१०॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देव दस प्रकार के हैं - असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ॥१०॥

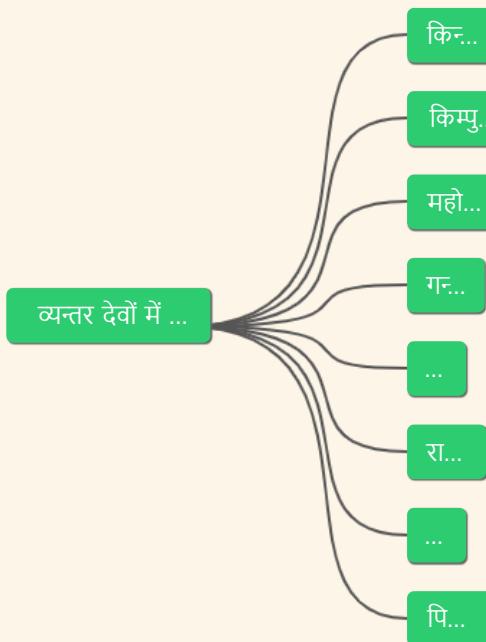




व्यन्तर देवों के प्रकार

व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचः ॥11॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर देव आठ प्रकार के हैं- किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ॥११॥



ज्योतिषी देवों के प्रकार

ज्योतिष्का: सूर्यचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्व ॥12॥

अन्वयार्थ : ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं - सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ॥१२॥



ज्योतिषी देवों में गति

मेरु-प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥13॥

अन्वयार्थ : ज्योतिषी देव मनुष्यलोक में मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं और निरन्तर गतिशील हैं ॥१३॥

ज्योतिषी-विमान द्वारा काल-की गणना

तत्कृतः काल विभागः ॥14॥

अन्वयार्थ : उन (ज्योतिष्क देवों) के द्वारा काल-विभाग होता है।

ज्योतिष्क देव में स्थिरता

बहिरवस्थिताः ॥15॥

अन्वयार्थ : मनुष्य लोक के बाहर ज्योतिष्क देव स्थिर हैं, गमन नहीं करते।

वैमानिक देवों का वर्णन
वैमानिकाः ॥16॥

अन्वयार्थ : अब वैमानिक देवों का वर्णन करते हैं।

वैमानिक देवों के प्रकार

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥17॥

अन्वयार्थ : वे दो प्रकार के हैं -- कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

कल्पादि का स्थान-क्रम
उपर्युपरि ॥18॥

अन्वयार्थ : ये कल्पादि क्रमशः ऊपर ऊपर हैं।

स्वर्गों के नाम

सौधर्मेशान-सानकुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार- सहस्ररेष्वानतप्राणत-योरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त जयन्तापराजितेषु सर्वार्थ- सिद्धौ च ॥19॥

अन्वयार्थ : सौधर्म-ऐशान, सानकुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत आठ स्वर्गों के युगलों में देवों के निवास-स्थान विमान हैं तथा नौ ग्रैवेयक, (नवसु) नौ अनुदिश, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित और सर्वार्थसिद्धि अनुत्तर-विमानों में अहमिन्द्र कल्पातीत-देव रहते हैं।

ऊपर के देवों में वृद्धि

स्थिति-प्रभाव-सुख-दयुति-लेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि-विषय-तोऽधिकाः ॥20॥

अन्वयार्थ : ऊपर-ऊपर के देवों की आयु, प्रभाव, सुख, कांति, लेश्या, विशुद्धि, इन्द्रिय-विषय और अवधिज्ञान के विषय क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धिगत होते हैं।

ऊपर के देवों में हीनता

गति-शरीर-परिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥21॥

अन्वयार्थ : नीचे के स्वर्गों से ऊपर-ऊपर के स्वर्गों के देवों में गति, शरीर, परिग्रह, अभिमान क्रमशः हीन-हीन होता है।

वैमानिक देवों में लेश्या

पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषु ॥22॥

अन्वयार्थ : प्रथम दो युगलों में, तीन युगलों में और शेष समस्त विमानों में देवों की क्रमशः पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याएं होती हैं।

कल्पवासी देव

प्राग्नैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥23॥

अन्वयार्थ : ग्रैवेयकों से पहिले अर्थात् १६वें स्वर्ग तक कल्प कहते हैं क्योंकि वहीं तक के देवों में इन्द्रादिक दस-भेदों की कल्पना है।

लौकांतिक देव

ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ॥24॥

अन्वयार्थ : ब्रह्म-लोक (पांचवे स्वर्ग) के निवासी देव लौकांतिक देव कहलाते हैं।

लौकांतिक देवों के भेद

सारस्वतादित्य वहन्यरुण-गर्दतोय-तुषिताव्या-बाधारिष्टाश्च ॥25॥

अन्वयार्थ : लौकांतिक देवों के सारस्वत, आदित्य, वहिन, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट आठ भेद नाम हैं। यहाँ च से सूचित होता है कि प्रत्येक के बीच २-२ लौकांतिक देव और हैं।

दो भवधारी देव

विजयादिषु द्वि-चरमाः ॥26॥

अन्वयार्थ : नव अनुदिश के नौ और ४ अनुत्तरों; विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित के देव उल्कृष्टता से दो भवधारी होते हैं।

तिर्यच-योनी

औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥27॥

अन्वयार्थ : उपपाद जन्म वाले देवों, नारकियों और मनुष्यों के अतिरिक्त सभी तिर्यच-योनी के जीव हैं।

भवनवासी देवों में उल्कृष्ट आयु

स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीपशेषाणां-सागरोपम-त्रिपत्योपमाद्विहीन-मिताः ॥28॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देवों में असुरकुमार की आयु १ सागर, नाग कुमार की ३ पल्य, सुपर्ण कुमार की २.५ पल्य, द्वीप कुमार की २ पल्य तथा शेष छ देवों (विद्युतकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनिक कुमार, उदधि कुमार और दिक्कुमार) की १.५ पल्य है।

सौधर्म-ऐशान स्वर्गों में उल्कृष्ट आयु

सौधर्मेशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥29॥

अन्वयार्थ : सौधर्म और ऐशान स्वर्गों के देवों की उल्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक है।

सानकुमार-माहेन्द्र स्वर्गों में उल्कृष्ट आयु

सानकुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ॥30॥

अन्वयार्थ : सानकुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में देवों की उल्कृष्ट-आयु सात सागर है।

१४वें स्वर्ग तक देवों की उल्कृष्ट आयु

त्रिसप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु ॥31॥

अन्वयार्थ : तीसरे युगल, (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर) में १० सागर चौथे युगल (लांतव-कापिष्ठ) में १४ सागर, पांचवे युगल (शुक्र-महाशुक्र) में १६ सागर, छठे युगल (शतार-सहस्रार) में १८ सागर, सातवें युगल (आणत-प्राणत) में २० सागर और आठवे युगल (आरण-अच्युत) में देवों की उल्कृष्टायु आयु २२ सागर है।

कल्पातीत देवों में उल्कृष्ट आयु

आरणाच्युता-दूर्धमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥32॥

अन्वयार्थ : आरण और अच्युत स्वर्गों के आठवें युगल से ऊपर नव-अनुदिश ,और विजयादि चार अनुत्तरों और सर्वार्थसिद्धि में देवों की उक्षष्ट आयु क्रमश १-१ सागर वृद्धिगत है ।

सौधर्म-ऐशान में जघन्य आयु
अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥

अन्वयार्थ : सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में देवों की जघन्यायु एक पल्य है ।

स्वर्ग युगलों में आयु सम्बन्धित नियम
परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥३४॥

अन्वयार्थ : स्वर्गों में अगले स्वर्ग युगल के देवों की जघन्यायु पहिले-पहिले स्वर्ग युगल के देवों के उक्षष्टायु से एक समय अधिक है ।

नरकों में आयु सम्बन्धित नियम
नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥

अन्वयार्थ : द्वितीय आदि नरकों में नारकियों की जघन्य स्थिति पूर्व-पूर्व के नारकियों की उक्षष्ट स्थिति के समान है ।

प्रथम नरक में जघन्य आयु
दश-वर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥

अन्वयार्थ : प्रथम नरक में नारकी की जघन्यायु दस हजार वर्ष है ।

भवनवासी देवों की जघन्य आयु
भवनेषु च ॥३७॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देवों की जघन्यायु भी १० हजार वर्ष है ।

व्यन्तर देवों की जघन्य आयु
व्यन्तराणां च ॥३८॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर देवों की भी दस हजार वर्ष जघन्यायु है ।

व्यन्तर-देवों की उक्षष्ट आयु
परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर-देवों की उक्षष्टायु पल्य से कुछ अधिक है ।

ज्योतिष्क देवों की उक्षष्ट आयु
ज्योतिष्काणां च ॥४०॥

अन्वयार्थ : ज्योतिष्क देवों की भी उक्षष्टायु १ पल्य से कुछ अधिक होती है ।

ज्योतिष्क देवों में जघन्य आयु
तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥

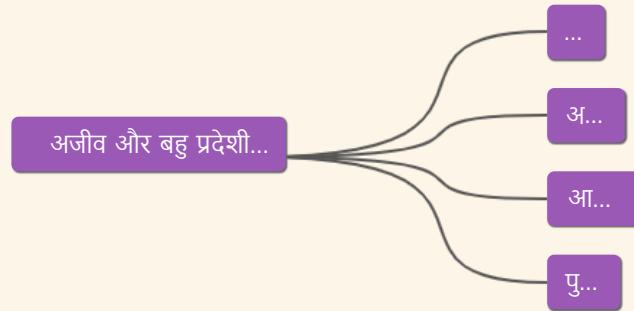
अन्वयार्थ : ज्योतिष्क देवों में जघन्यायु एक पल्य का आठवा भाग है ।

लौकांतिक देवों की आयु
लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

अन्वयार्थ : लौकांतिक देवों की एक समान जघन्यायु और उक्षष्टायु ८ सागर प्रमाण ही है ।

अजीव-काया-धर्माधर्मकाश-पुद्गलः ॥1॥

अन्वयार्थ : धर्म, अधर्म, आकाश, और पुद्गल अजीव (चेतना रहित) और कायावान (बहु प्रदेशी) हैं।



इनकी संज्ञा द्रव्याणि ॥2॥

अन्वयार्थ : यह (धर्म, अधर्म, आकाश, और पुद्गल) द्रव्य हैं।

जीव भी द्रव्य जीवान्ति ॥3॥

अन्वयार्थ : जीव भी द्रव्य है।

द्रव्यों के बारे में विशेष नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥4॥

अन्वयार्थ : (ऊपर कहे हुए सभी द्रव्य) नित्य (अविनाशी) है, अवस्थित (संख्या निश्चित है), अन्यरूपाणि (चक्षु इन्द्रिय से देखे नहीं जा सकते / अरूपी) हैं।

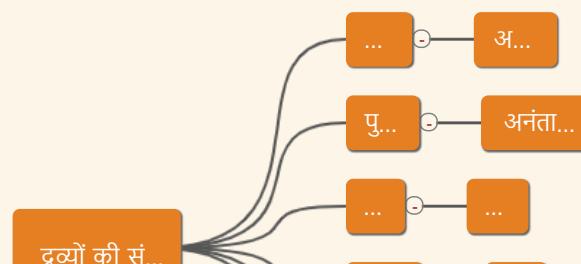


रूपी द्रव्य रूपिणः पुद्गलाः ॥5॥

अन्वयार्थ : पुद्गल द्रव्य रूपी (मूर्तिक) है।

द्रव्यों में संख्या आ आकाशादेक-द्रव्याणि ॥6॥

अन्वयार्थ : आकाशपर्यन्त सभी द्रव्य (धर्म, अधर्म और आकाश) १-१ हैं।



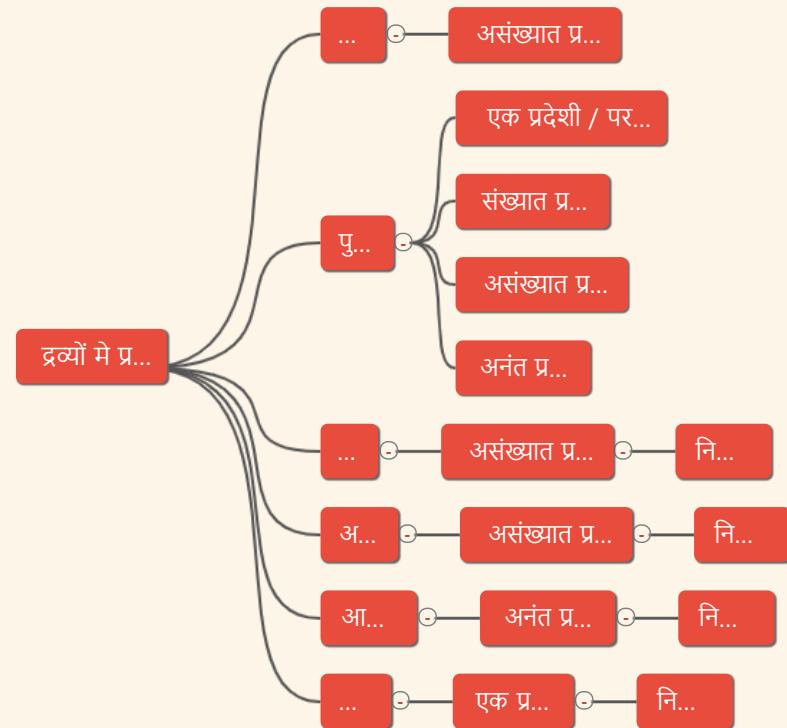


क्रिया निष्क्रियाणि च ॥७॥

अन्वयार्थ : और (धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य) निष्क्रिय (क्रियारहित) हैं।

प्रदेश असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

अन्वयार्थ : धर्म, अधर्म और एक जीवद्रव्य के असंख्यात-असंख्यात प्रदेश होते हैं।



आकाश के प्रदेश आकाशस्यानन्तः ॥९॥

अन्वयार्थ : आकाश के अनंत प्रदेश हैं।

पुद्गल के प्रदेश संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ : पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं।

परमाणु के प्रदेश नाणोः ॥११॥

अन्वयार्थ : पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी ही है ।

आधार

लोकाकाशेऽवगाहः ॥12॥

अन्वयार्थ : इन द्रव्यों का अवगाहन लोकाकाश में है ।

उदाहरण

धर्मधर्मयोः कृत्स्ने ॥13॥

अन्वयार्थ : धर्म और अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश में तिल में तेल के समान व्याप्त है ।

पुद्गलों का अवगाह

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥14॥

अन्वयार्थ : पुद्गलों का अवगाह लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प से होता है ॥१४॥

जीवों का अवगाह

असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ॥15॥

अन्वयार्थ : लोकाकाश के असंख्यातरे भाग आदि में जीवों का अवगाह है ॥१५॥

जीव के अवगाह का नियम

प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥16॥

अन्वयार्थ : क्योंकि प्रदीप के समान जीव के प्रदेशों का संकोच और विस्तार होने के कारण लोकाकाश के असंख्येयभागादिक में जीवों का अवगाह बन जाता है ॥१६॥

धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार

गति-स्थित्युपग्रहौ धर्मधर्मयोरुपकारः ॥17॥

अन्वयार्थ : गति और स्थिति में निमित्त होना यह क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है ॥१७॥

आकाश द्रव्य का उपकार

आकाशस्या-वगाहः ॥18॥

अन्वयार्थ : आवगाहन देना आकाश द्रव्य का उपकार है ॥१८॥

पुद्गल द्रव्य का उपकार

शरीरवाङ्मनः-प्राणापाना पुद्गलानाम् ॥19॥

अन्वयार्थ : शरीर, वचन, मन और प्राणापान -- यह पुद्गलों का उपकार है ॥१९॥

पुद्गल का अन्य उपकार

सुख-दुःख-जीवितमरणोपग्रहाश्च ॥20॥

अन्वयार्थ : सुख, दुःख जीवित और मरण ये भी पुद्गलों के उपकार हैं ॥२०॥

श...

व...

...

पुद्गल का जीव पर उ...

प्राणा...

...

दु...

जी...

म...

जीव द्रव्य का उपकार

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥

अन्वयार्थ : परस्पर निमित्त होना यह जीवों का उपकार है ॥२१॥

काल द्रव्य के उपकार

वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥

अन्वयार्थ : वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल के उपकार हैं ॥२२॥

काल द्रव्य का उ...

व...

परि...

...

प...

अप...

पुद्गल के गुण

स्पर्श-रस-गंध-वर्णविन्तः पुद्गलाः ॥२३॥

अन्वयार्थ : स्पर्श, रस, गंध और वर्णवाले पुद्गल होते हैं ॥२३॥

पुद्गल के ...

...

...

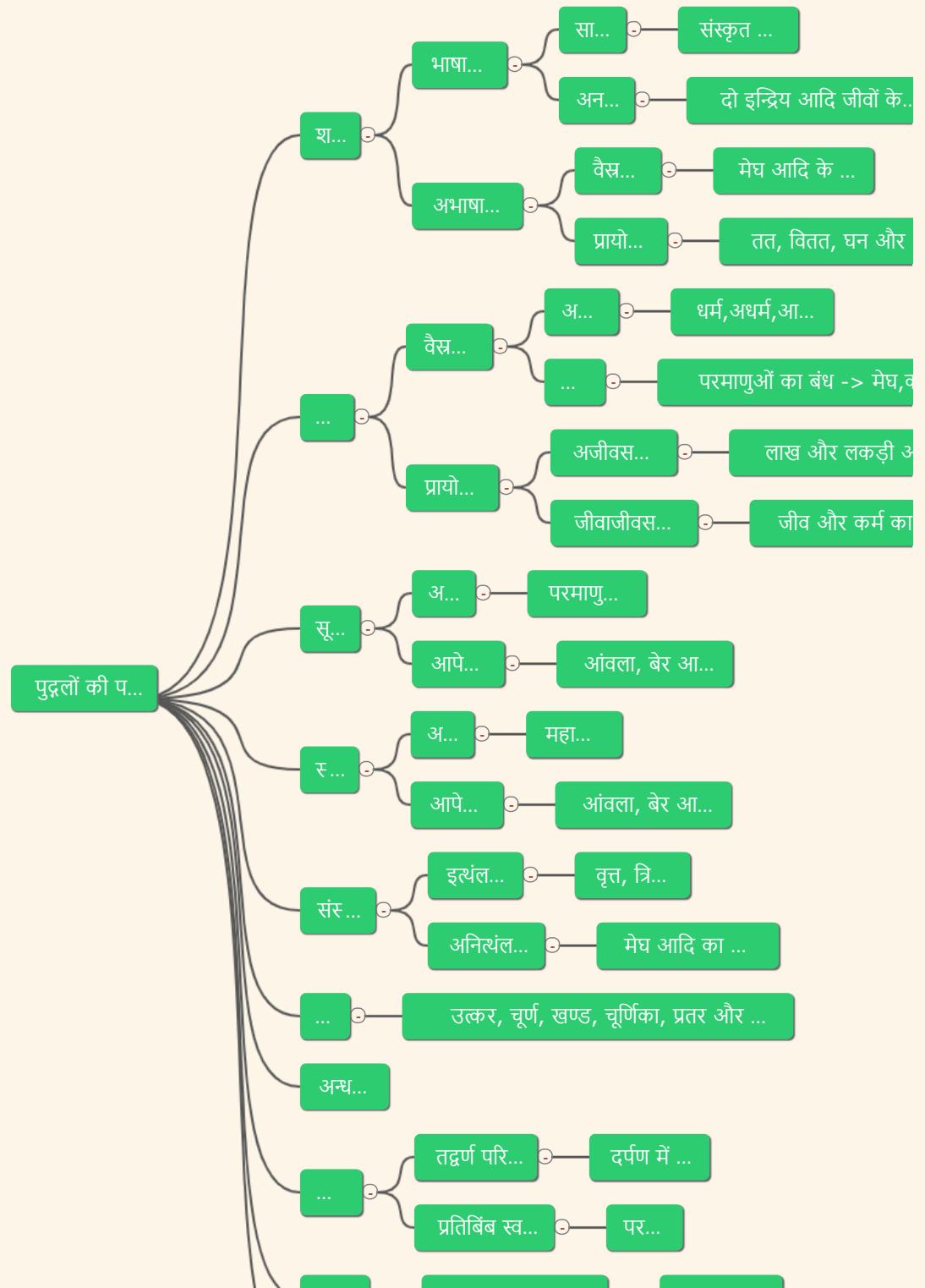
...

...

पुद्गल की पर्याय

शब्द-बंध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥24॥

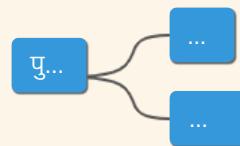
अन्वयार्थ : तथा वे शब्द, बन्ध, सौक्ष्मत्व, स्थौलत्व, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत वाले होते हैं ॥२४॥





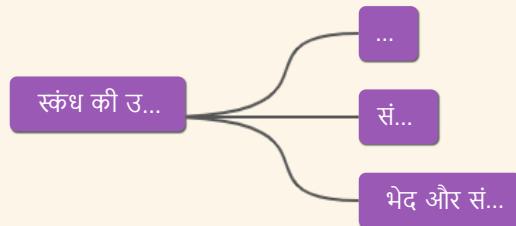
पुद्गल के भेद
अणवः स्कन्धाश्व ॥२५॥

अन्वयार्थ : पुद्गल के दो भेद हैं - अणु और स्कन्ध ॥२५॥



स्कन्ध की उत्पत्ति
भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥

अन्वयार्थ : भेद से, संघात से तथा भेद और संघात दोनों से स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ॥२६॥



अणु की उत्पत्ति
भेदादणुः ॥२७॥

अन्वयार्थ : भेद से अणु उत्पन्न होता है ॥२७॥

स्कन्ध की उत्पत्ति का विशेष
भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥

अन्वयार्थ : भेद और संघात से चाक्षुष स्कन्ध बनता है ॥२८॥

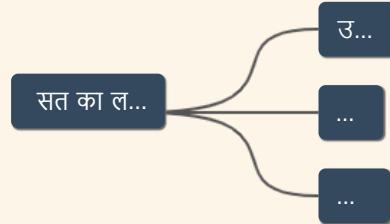
सद् द्रव्य-लक्षणम् ॥२९॥

अन्वयार्थ : द्रव्य का लक्षण सत् है ॥२९॥

सत् का लक्षण

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् ॥३०॥

अन्वयार्थ : जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों से युक्त अर्थात् इन तीनों रूप है वह सत् है ॥३०॥



नित्य का स्वरूप

तद्वावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥

अन्वयार्थ : उसके भाव से (अपनी जाति से) च्युत न होना नित्य है ॥३१॥

विरोधी धर्म एक साथ कैसे?

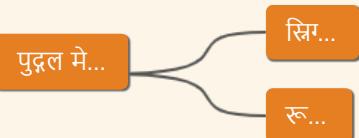
अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥

अन्वयार्थ : मुख्यता और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु में विरोधी मालूम पड़ने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है ॥३२॥

पुद्गल में बंध

स्त्रिग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः ॥३३॥

अन्वयार्थ : स्त्रिग्धत्व और रूक्षत्व से बन्ध होता है ॥३३॥



बन्ध न होने का नियम

न जघन्य-गुणानाम् ॥३४॥

अन्वयार्थ : जघन्य गुणवाले पुद्गलों का बन्ध नहीं होता ॥३४॥

और भी

गुणसाम्ये सदशानाम् ॥३५॥

अन्वयार्थ : गुणों की समानता होने पर तुल्य जातिवालों का बन्ध नहीं होता ॥३५॥

बन्ध का नियम

द्वयधिकादि गुणानां तु ॥३६॥

अन्वयार्थ : दो अधिक आदि शक्त्यंशवालों का तो बन्ध होता है ॥३६॥

परिणमन का नियम
बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥

अन्वयार्थ : बन्ध होते समय दो अधिक गुणवाला परिणमन करानेवाला होता है ॥३७॥

द्रव्य का और लक्षण
गुण-पर्यायवद् द्रव्यम् ॥३८॥

अन्वयार्थ : गुण और पर्यायवाला द्रव्य है ॥३८॥

काल द्रव्य
कालश्च ॥३९॥

अन्वयार्थ : काल भी द्रव्य है ॥३९॥

व्यवहार काल का प्रमाण
सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

अन्वयार्थ : वह अनन्त समयवाला है ॥४०॥

गुण का लक्षण
द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥

अन्वयार्थ : जो निरन्तर द्रव्य में रहते हैं और गुणरहित हैं वे गुण हैं ॥४१॥

परिणाम
तद्भावः परिणामः ॥४२॥

अन्वयार्थ : उसका होना अर्थात् प्रति समय बदलते रहना परिणाम है ॥४२॥

योग
काय-वाञ्छनः कर्म-योगः ॥१॥

अन्वयार्थ : काय, वचन और मन की क्रिया योग है ॥१॥



आस्रव
स आस्रवः ॥२॥

अन्वयार्थ : वही आस्रव है ॥२॥

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥

अन्वयार्थ : शुभयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है ॥३॥



आस्रव के कर्ता की अपेक्षा भेद

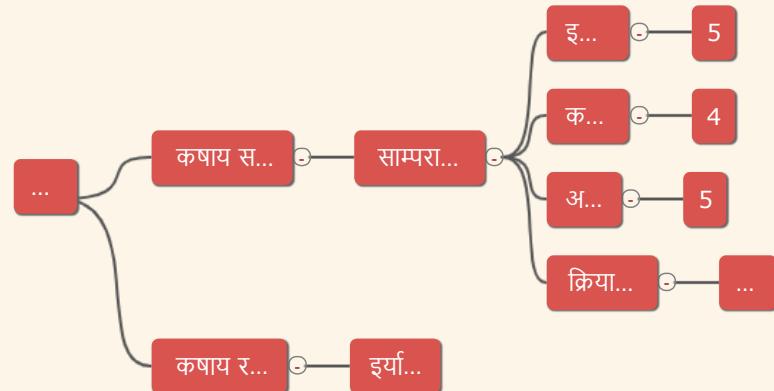
सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यपिथयोः ॥४॥

अन्वयार्थ : कषायसहित और कषायरहित आत्मा का योग क्रम से साम्परायिक और ईर्यापिथ कर्म के आस्रवरूप है ॥४॥

साम्परायिक आस्रव के भेद

इन्द्रिय-कषायाक्रत-क्रियाः पंच-चतुः-पंच-पंचविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥

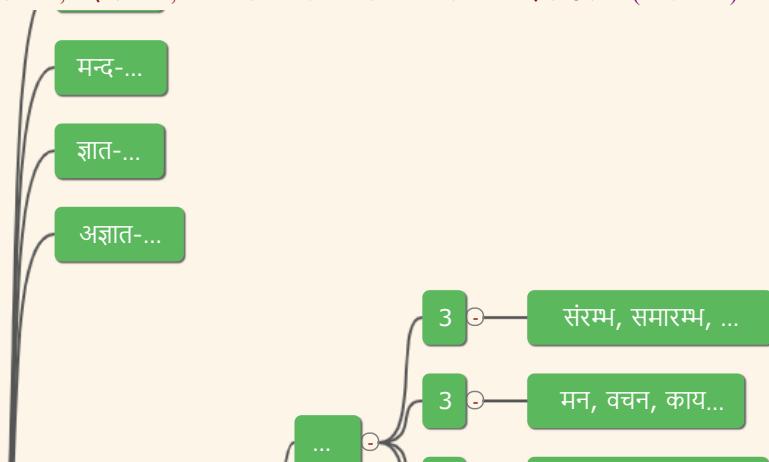
अन्वयार्थ : पूर्व के अर्थात् साम्परायिक कर्मस्त्रव के इन्द्रिय, कषाय, अक्रत और क्रियारूप भेद हैं जो क्रम से पाँच, चार, पाँच और पच्चीस हैं ॥५॥

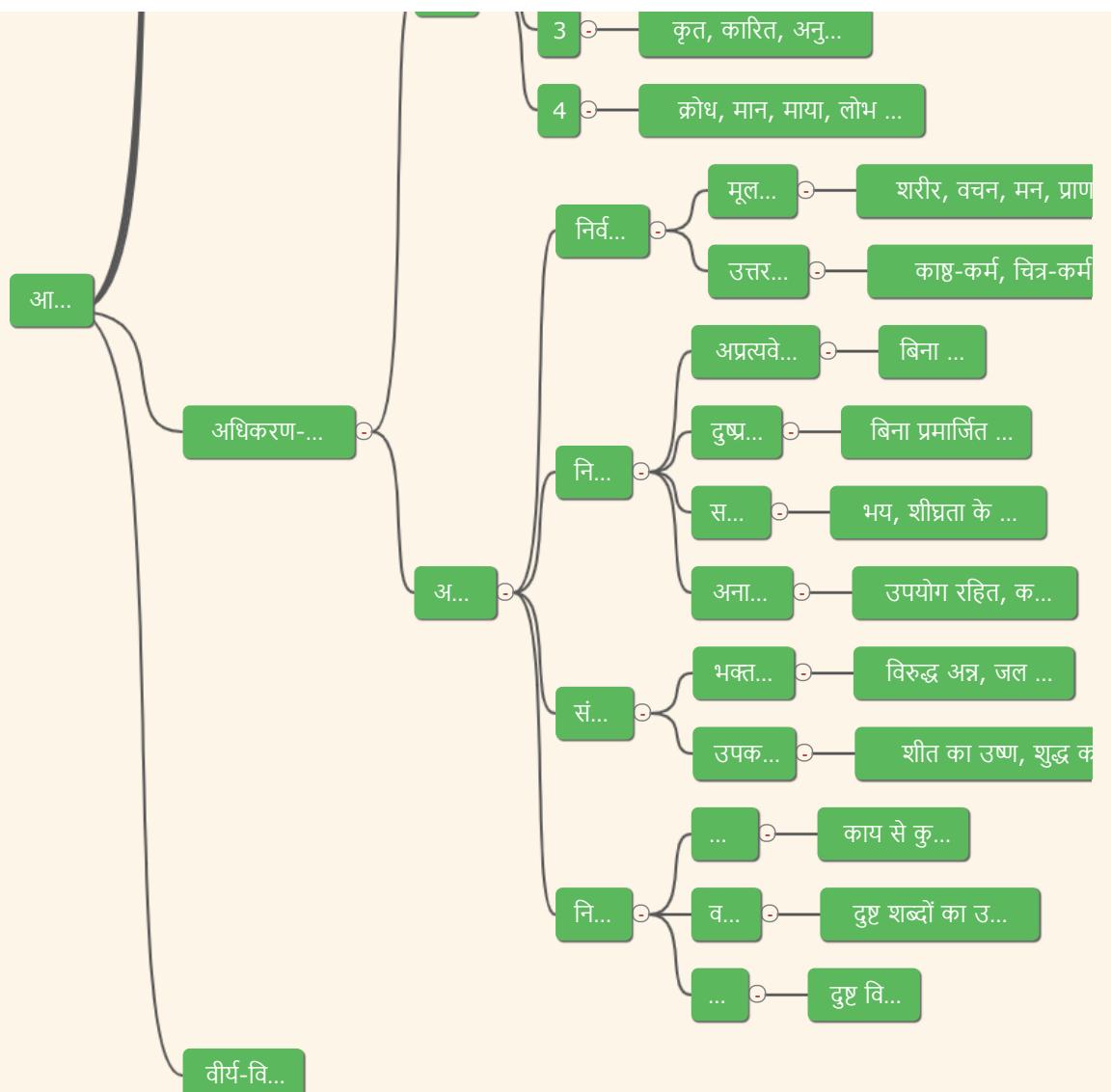


आस्रव में विशेषता

तीव्र-मन्द-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥

अन्वयार्थ : तीव्र-भाव, मन्द-भाव, ज्ञात-भाव, अज्ञात-भाव, अधिकरण-विशेष और वीर्य-विशेष के भेद से उसकी (आस्रव की) विशेषता होती है ॥६॥





आस्त्र का अधिकरण अधिकरणं जीवाजीवः ॥७॥

अन्वयार्थ : अधिकरण जीव और अजीवरूप हैं ॥७॥

जीवाधिकरण

आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भयोग कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्तिस्तिस्ति-श्वतुश्वैकशः ॥८॥

अन्वयार्थ : पहला जीवाधिकरण संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के भेद से तीन प्रकार का, योगों के भेद से तीन प्रकार का; कृत, कारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार का तथा कषायों के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलाने से एक सौ आठ प्रकार का है ॥८॥

अजीवाधिकरण

निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्विचतुर्द्विः-त्रिभेदाः परम् ॥९॥

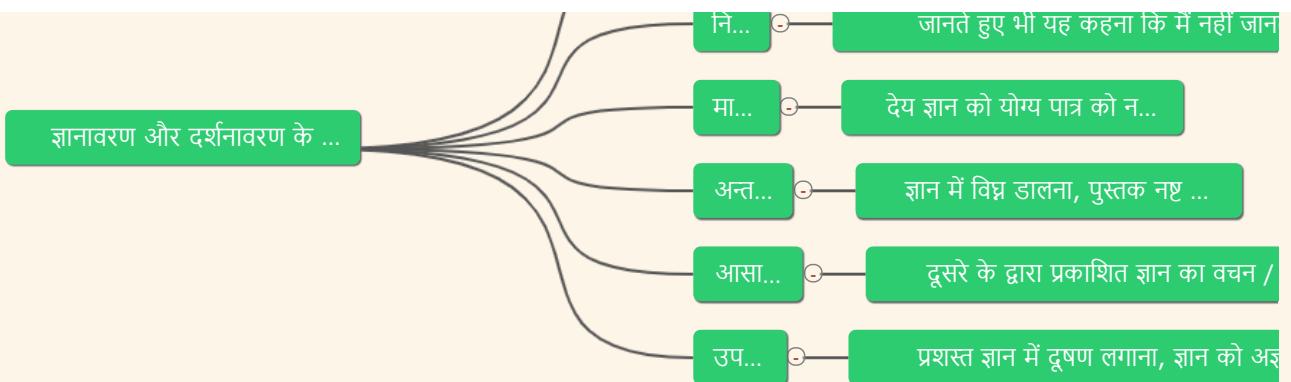
अन्वयार्थ : पर अर्थात् अजीवाधिकरण क्रम से दो, चार, दो और तीन भेदवाले निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्गरूप है ॥९॥

ज्ञान-दर्शनावरण के आस्त्र

तत्प्रदोष-निह्वव-मात्सर्यन्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयोः ॥१०॥

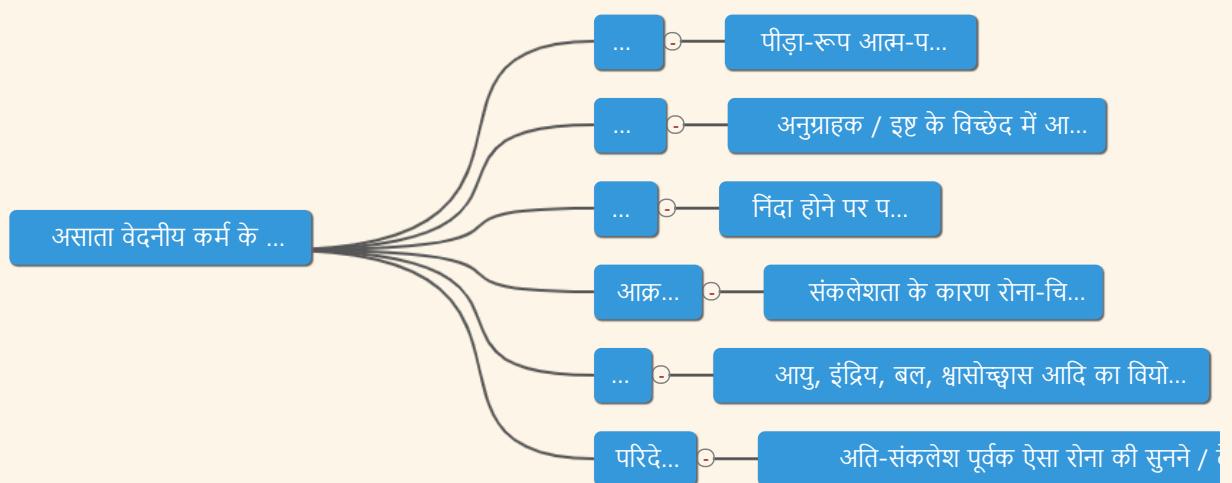
अन्वयार्थ : ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्वव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्त्र हैं ॥१०॥

ज्ञानधारी की प्रशंसा सुनकर ईर्ष्यावश मुख



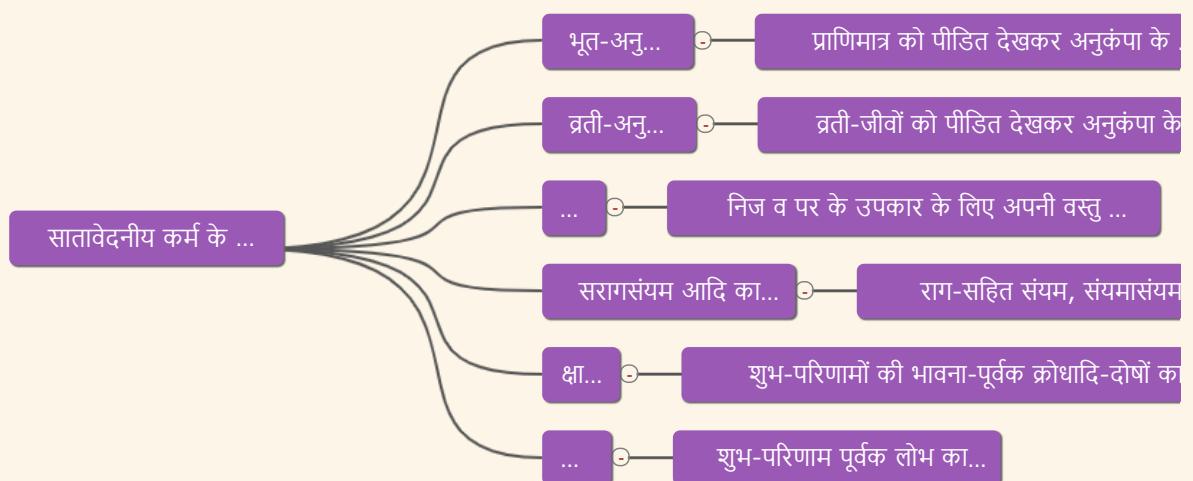
असाता वेदनीय कर्म के आस्रव दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥11॥

अन्वयार्थ : अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं ॥ ११ ॥



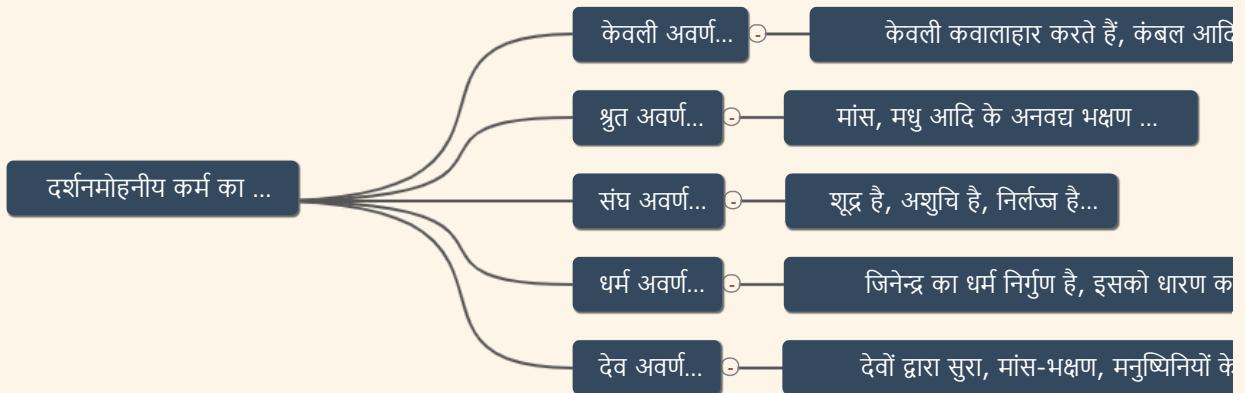
सातावेदनीय कर्म के आस्रव भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सराग-संयमादि-योगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥12॥

अन्वयार्थ : भूत-अनुकम्पा, व्रती-अनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच ये सातावेदनीय कर्म के आस्रव हैं ॥ १२ ॥



केवलि-श्रुत-संघ-धर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥

अन्वयार्थ : केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है ॥१३॥



चारित्रमोहनीय का आस्रव कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्वारित्र-मोहस्य ॥१४॥

अन्वयार्थ : कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्मपरिणाम चारित्रमोहनीय का आस्रव है ॥१४॥

नारकायु का आस्रव बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥

अन्वयार्थ : बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रहपने का भाव नारकायु का आस्रव है ॥१५॥

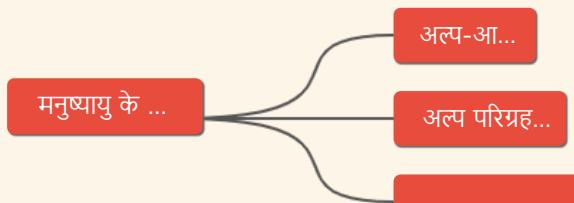


माया तिर्यचायु का आस्रव माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥

अन्वयार्थ : माया तिर्यचायु का आस्रव है ॥१६॥

मनुष्यायु का आस्रव अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥

अन्वयार्थ : अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रहपने का भाव मनुष्यायु के आस्रव है ॥१७॥



मनुष्यायु का और भी आस्रव
स्वभाव-मार्दवं च ॥१८॥

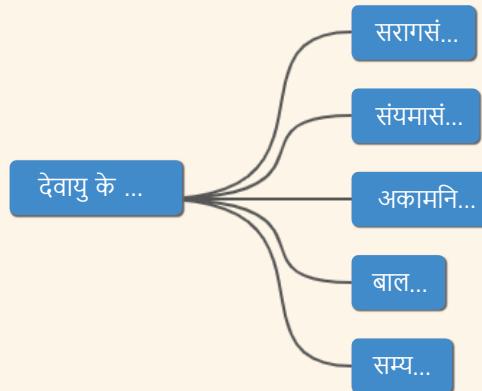
अन्वयार्थ : स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का आस्रव है ॥१८॥

सब आयुओं का आस्रव
निःशील-व्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥

अन्वयार्थ : शीलरहित और व्रतरहित होना सब आयुओं का आस्रव है ॥१९॥

देवायु के आस्रव
सरागसंयम-संयमा-संयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥

अन्वयार्थ : सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप ये देवायु के आस्रव हैं ॥२०॥



देवायु का और भी आस्रव
सम्यक्त्वं च ॥२१॥

अन्वयार्थ : सम्यक्त्व भी देवायु का आस्रव है ॥२१॥

अशुभ नाम कर्म के आस्रव
योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नामः ॥२२॥

अन्वयार्थ : योगवक्रता और विसंवाद ये अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं ॥२२॥



तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥

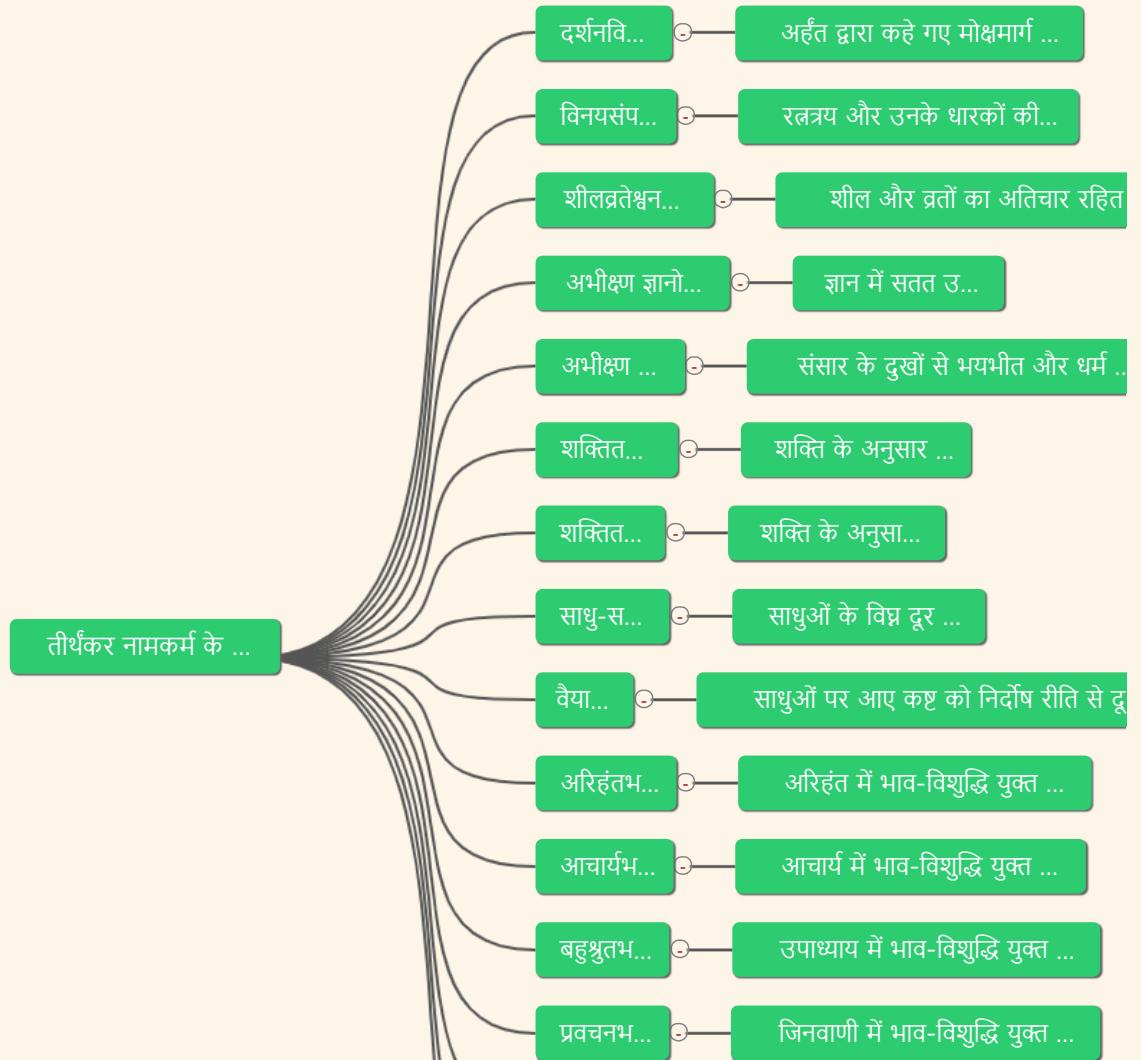
अन्वयार्थ : उससे विपरीत अर्थात् योग की सरलता और अविसंवाद ये शुभनामकर्म के आस्रव हैं ॥२३॥



तीर्थकर नामकर्म के आस्रव

**दर्शनविशुद्धिर्विन्यसम्पन्नता-शील-व्रतेष्वनतीचारोऽभीक्षण-ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्याग-
तपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्य-करणमर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग-
प्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥**

अन्वयार्थ : दर्शनविशुद्धि, विन्यसंपन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्य करना, अरिहंतभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचनवात्सत्य ये तीर्थकर नामकर्म के आस्रव हैं ॥२४॥





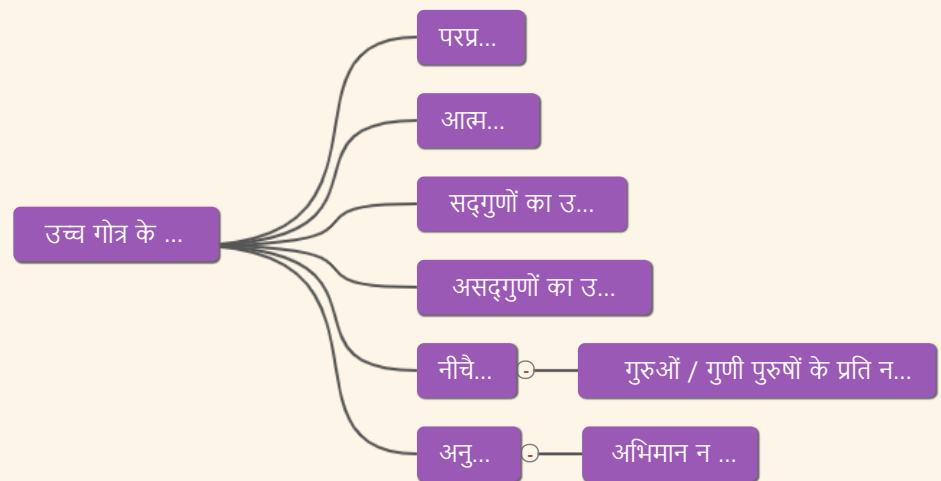
नीचगोत्र के आस्त्रव
परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद् गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥

अन्वयार्थ : परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सदगुणों का उच्छादन और असदगुणों का उद्धावन ये नीचगोत्र के आस्त्रव हैं ॥२५॥



उच्च गोत्र के आस्त्रव
तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥

अन्वयार्थ : उनका विपर्यय अर्थात् परप्रशंसा, आत्मनिन्दा, सदगुणों का उच्छादन और असदगुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गोत्र के आस्त्रव हैं ॥२६॥



अन्तराय कर्म का आस्त्रव
विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

अन्वयार्थ : दानादिक में विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्त्रव है ॥२७॥

हिंसाऽनृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्वतम् ॥1॥

अन्वयार्थ : हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से विरत होना व्रत है ॥१॥



देश सर्वतोऽणु-महती ॥2॥

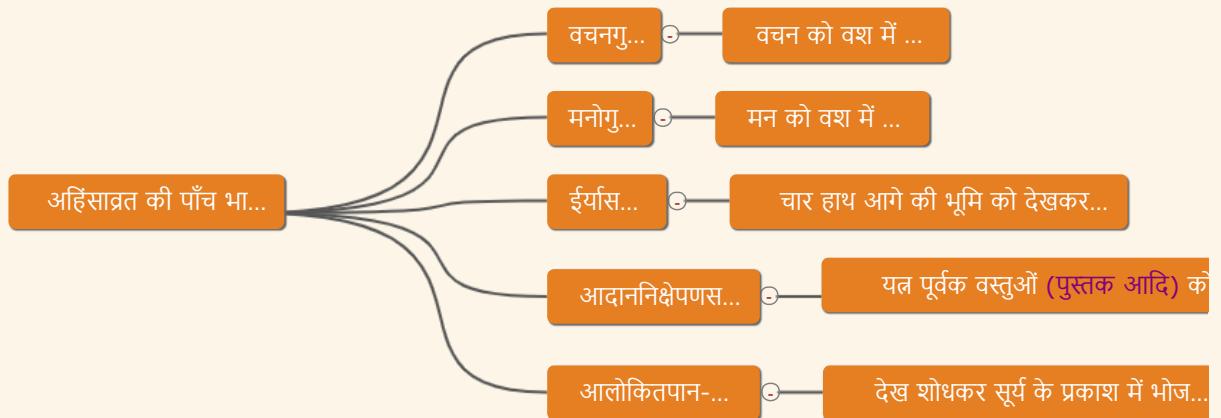
अन्वयार्थ : हिंसादिक से एकदेश निवृत्त होना अणुव्रत है और सब प्रकार से निवृत्त होना महाव्रत है ॥२॥

प्रत्येक व्रत की भावनाएँ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च-पञ्च ॥३॥

अन्वयार्थ : उन व्रतों को स्थिर करने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच पाँच भावनाएँ हैं ॥३॥

अहिंसाव्रत की भावनाएँ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकित-पान-भोजनानि पञ्च ॥४॥

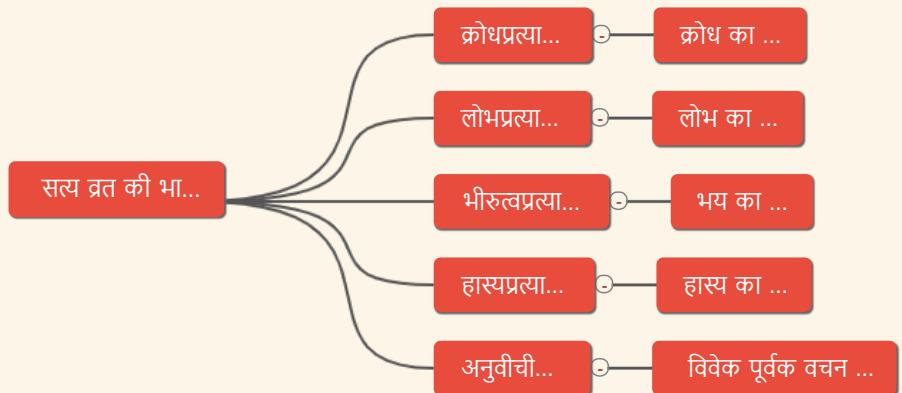
अन्वयार्थ : वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपान-भोजन ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥४॥



सत्य व्रत की भावनाएँ

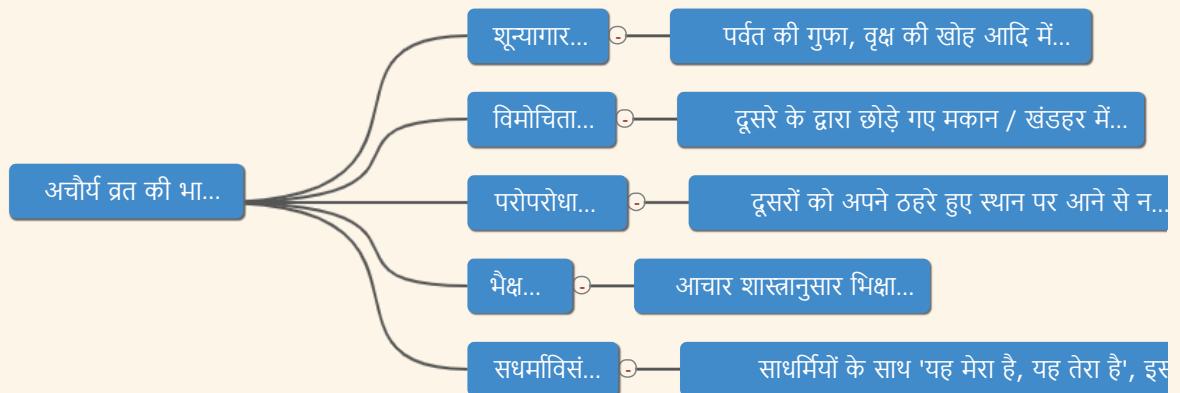
क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च ॥५॥

अन्वयार्थ : क्रोधप्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, भीरुत्वप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान और अनुवीचीभाषण ये सत्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥५॥



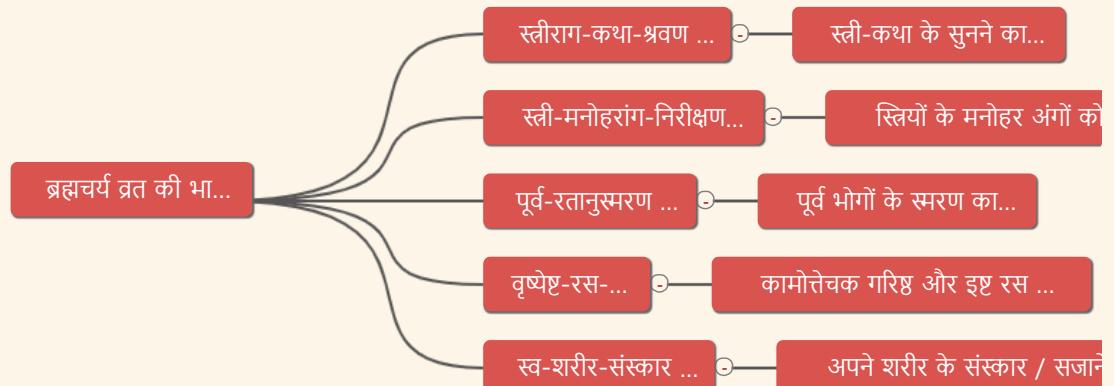
अचौर्य व्रत की भावनाएँ
शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि-सधमावि-संवादाः पञ्च ॥6॥

अन्वयार्थ : शून्यागारवास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि और सधमाविसंवाद ये अचौर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥६॥



ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ
स्त्रीरागकथा श्रवण-तन्मनोहरांग निरीक्षण पूर्व-रतानुस्मरण-वृष्टेष्टरस-स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥7॥

अन्वयार्थ : स्त्रियों में राग को पैदा करने वाली कथा के सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पूर्व भोगों के स्मरण का त्याग, गरिष्ठ और इष्ट रस का त्याग तथा अपने शरीर के संस्कार का त्याग ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥७॥



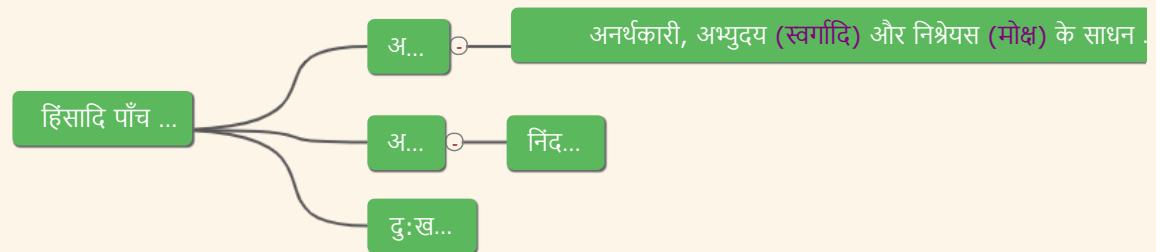
अपरिग्रह व्रत की भावनाएँ

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष वर्जनानि पञ्च ॥८॥

अन्वयार्थ : पांचों इन्द्रियों के मनोज्ञ (प्रिय) और अमनोज्ञ (अप्रिय) विषयों में क्रम से राग और द्वेष का त्याग करना ये अपरिग्रहव्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥८॥

पाप से विमुखता के लिए भावनाएं
हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥

अन्वयार्थ : हिंसादिक पाँच दोषों में ऐहिक और पारलौकिक अपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है ॥९॥



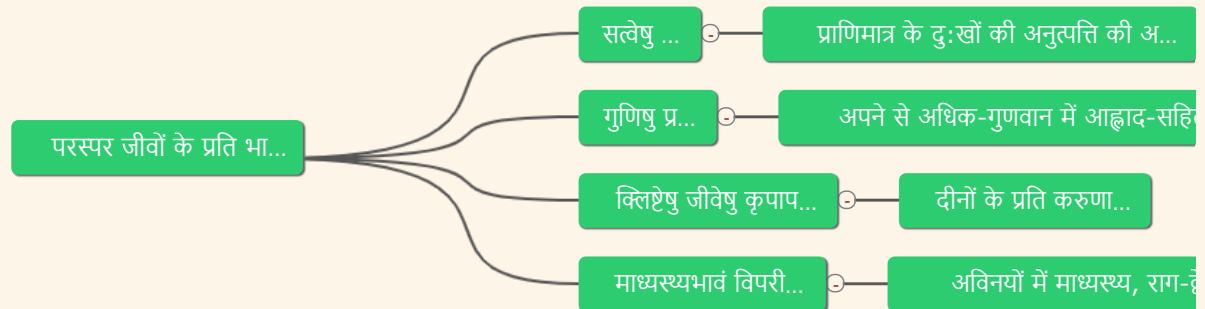
और भी
दुःखमेव वा ॥१०॥

अन्वयार्थ : अथवा हिंसादिक दुःख ही है ऐसी भावना करनी चाहिए ॥१०॥

परस्पर जीवों के साथ भावनाएं

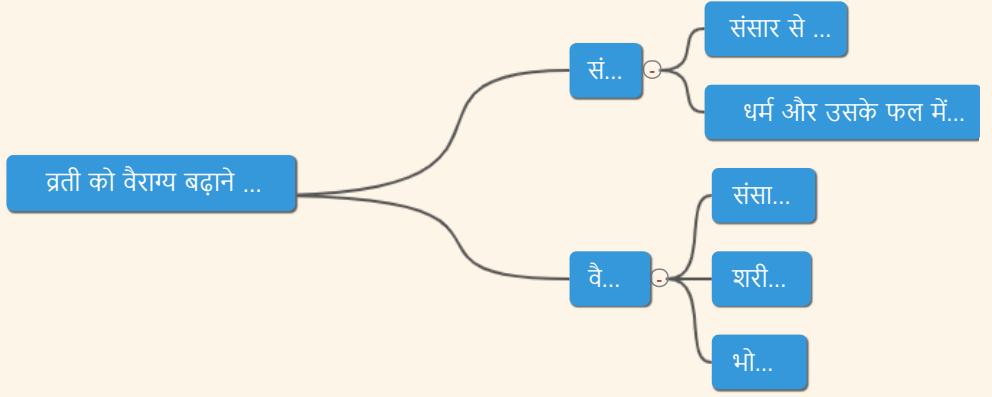
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाविनयेषु ॥११॥

अन्वयार्थ : प्राणीमात्र में मैत्री, गुणाधिकों में प्रमोद, क्लिश्यमानों में करुणा वृत्ति और अविनयों में माध्यस्थ्य भावना करनी चाहिए ॥११॥



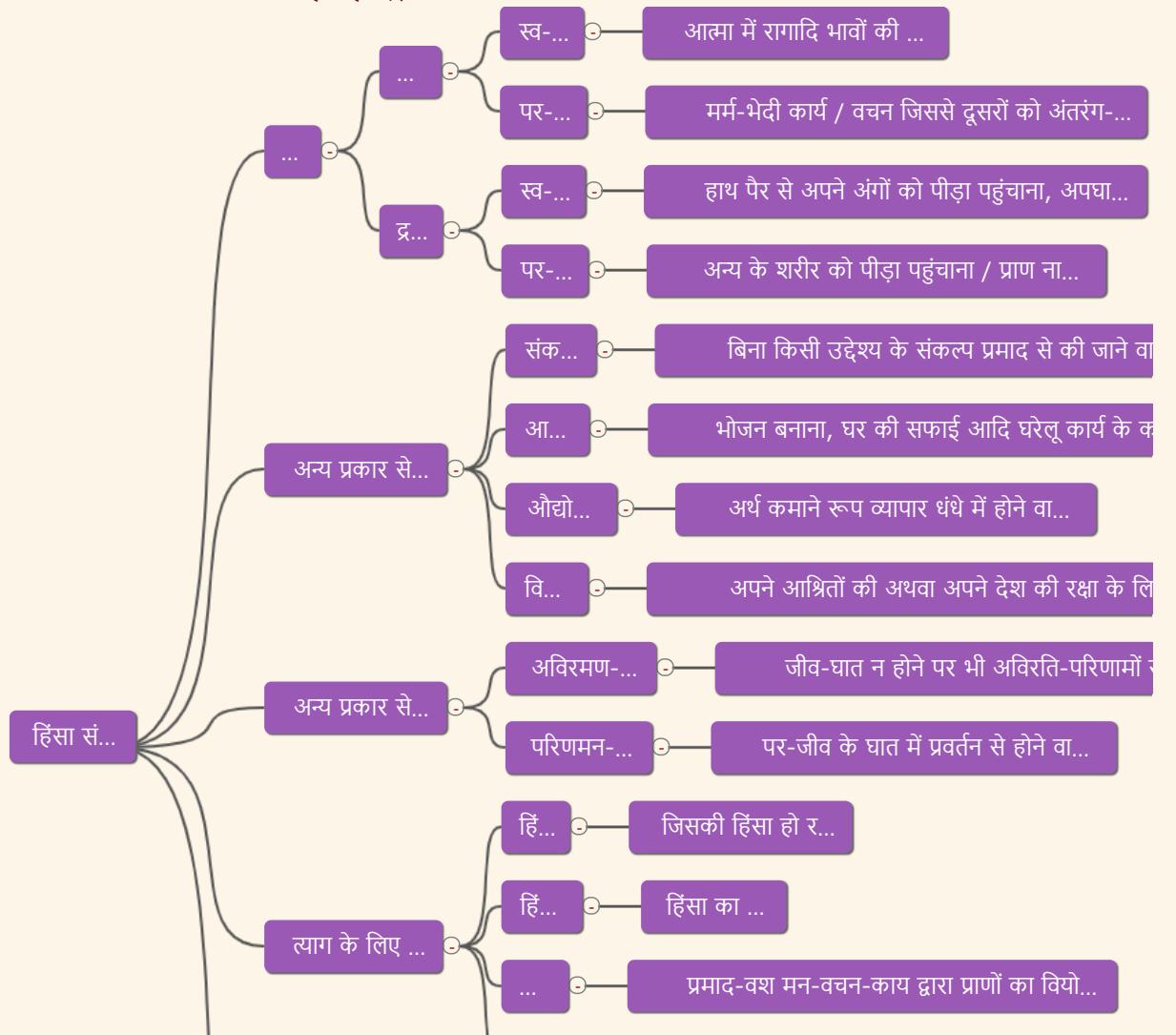
संसार और शरीर के लिए भावना
जगत्काय-स्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥

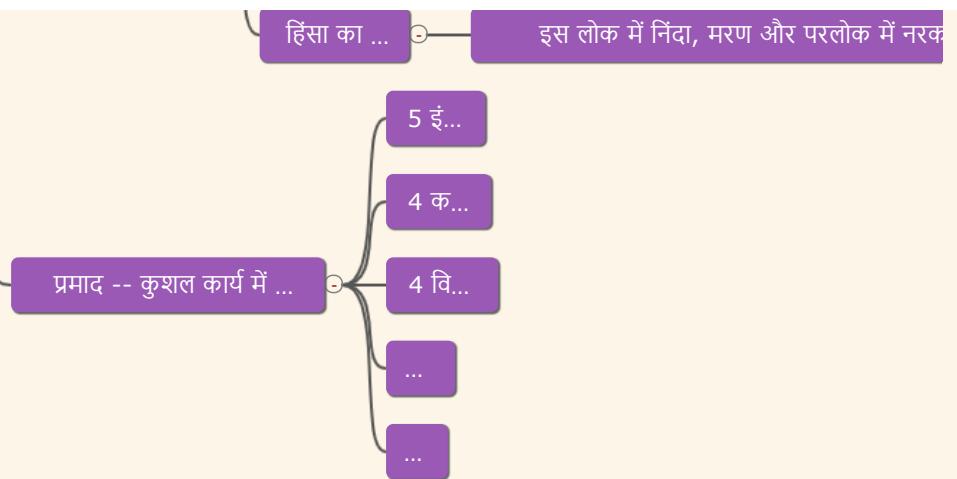
अन्वयार्थ : संवेग और वैराग्य के लिए जगत् के स्वभाव और शरीर के स्वभाव की भावना करनी चाहिए ॥१२॥



हिंसा का लक्षण प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥

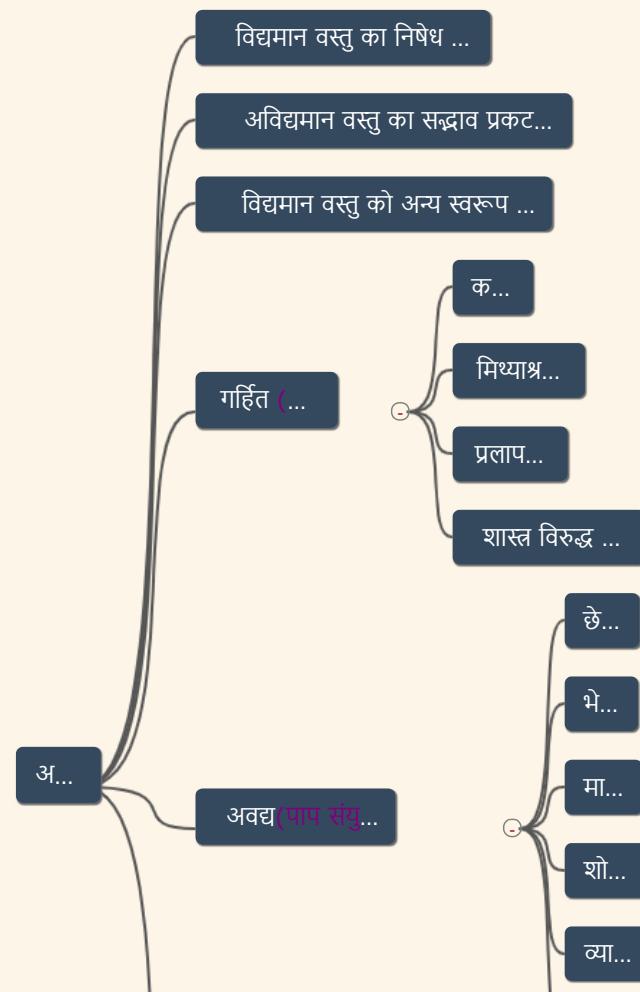
अन्वयार्थ : प्रमत्तयोग से प्राणों का वियोग करना हिंसा है ॥१३॥

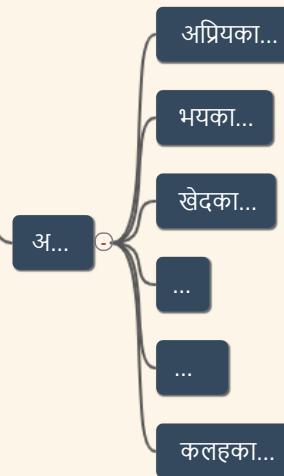




झूठ का लक्षण
असदभिधानमनृतम् ॥14॥

अन्वयार्थ : अप्रशस्त बोलना अनृत है ॥१४॥





चोरी का लक्षण

अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥

अन्वयार्थ : बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण स्तेय है ॥१५॥

कुशील का लक्षण

मैथुनम-ब्रह्म ॥१६॥

अन्वयार्थ : मैथुन कर्म अब्रह्म है ॥१६॥

परिग्रह का लक्षण

मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥

अन्वयार्थ : मूर्च्छा परिग्रह है ॥१७॥

व्रती का लक्षण

निःशल्यो व्रती ॥१८॥

अन्वयार्थ : जो शल्यरहित है वह व्रती है ॥१८॥

व्रती के भेद

अगार्यनगारश्च ॥१९॥

अन्वयार्थ : उसके अगारी और अनागार ये दो भेद हैं ॥१९॥



व्रतों के ...

अना...

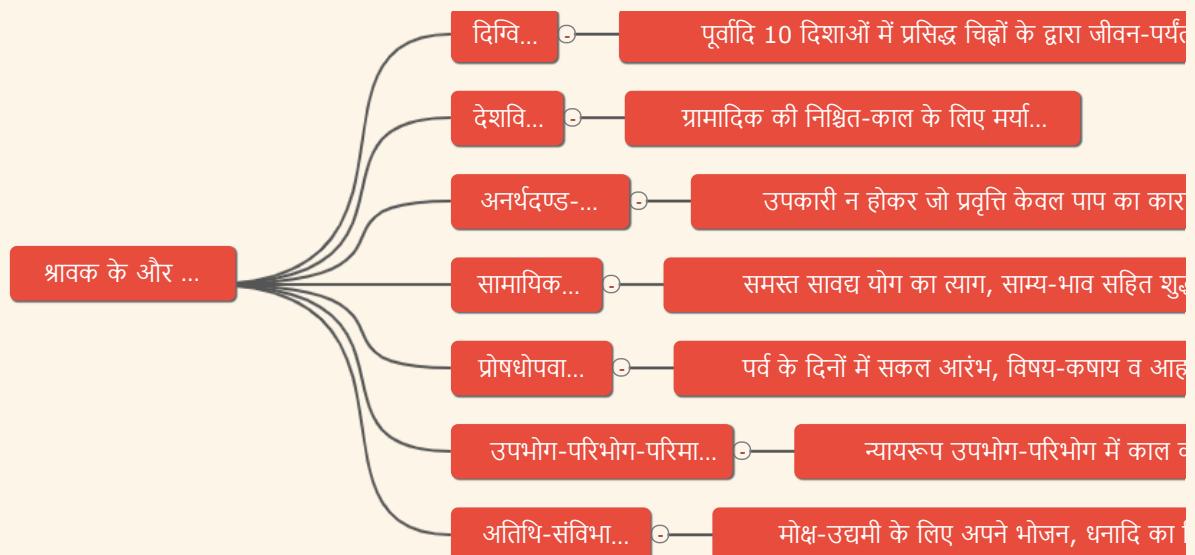
श्रावक अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥

अन्वयार्थ : अणुव्रतों का धारी अगारी है ॥२०॥

श्रावक के और भी व्रत

दिग्देशानर्थदण्ड-विरति-सामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-परिमाणातिथि- संविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥

अन्वयार्थ : वह दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिकव्रत, प्रोषधोपवासव्रत, उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत और अतिथिसंविभागव्रत इन व्रतों से भी सम्पन्न होता है ॥२१॥



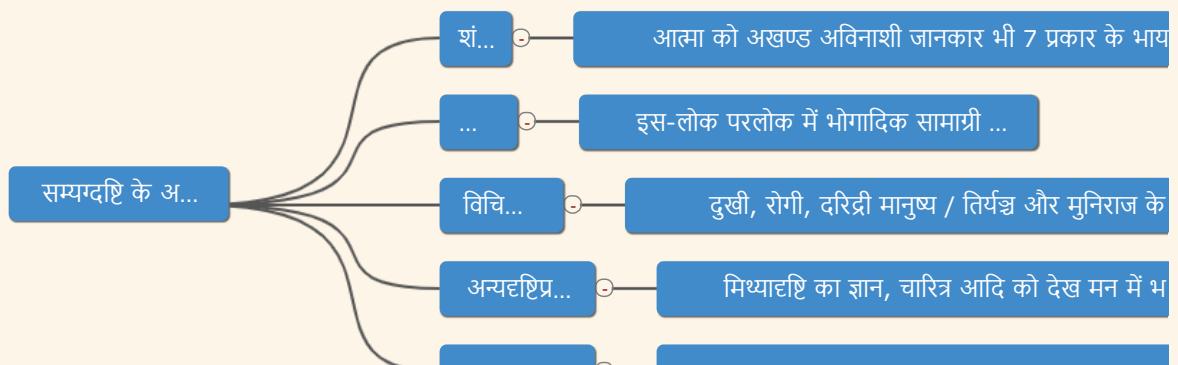
सल्लेखना मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥

अन्वयार्थ : तथा वह मारणान्तिक सल्लेखना का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है ॥२२॥

सम्यक्त्व के पाँच अतिचार

शंका-कांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसा-संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरती-चाराः ॥२३॥

अन्वयार्थ : शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव ये सम्यग्दृष्टि के पाँच अतिचार हैं ॥२३॥



ब्रत और शील के अतिचार

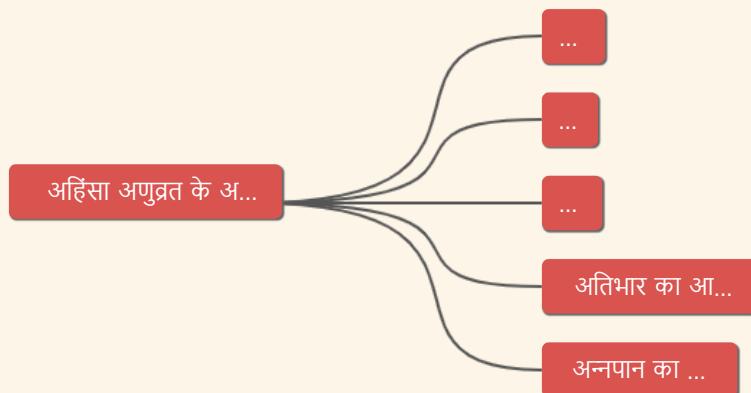
ब्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥

अन्वयार्थ : ब्रतों और शीलों में पाँच पाँच अतिचार हैं जो क्रम से इस प्रकार हैं ॥२४॥

अहिंसा अणुव्रत के अतिचार

बंधवध-च्छेदाति-भारारोपणान्नपान-निरोधाः ॥२५॥

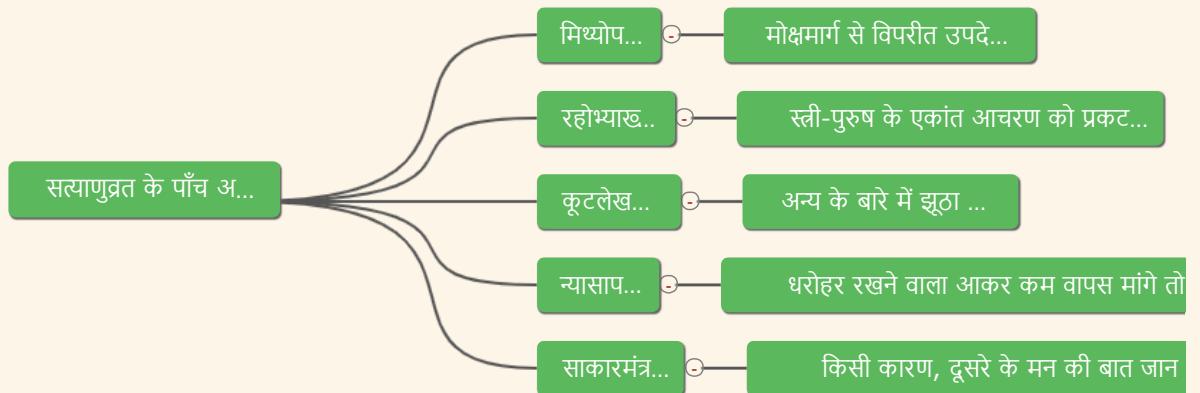
अन्वयार्थ : बन्ध, वध, छेद, अतिभार का आरोपण और अन्नपान का निरोध ये अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२५॥



सत्याणुव्रत के अतिचार

मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥

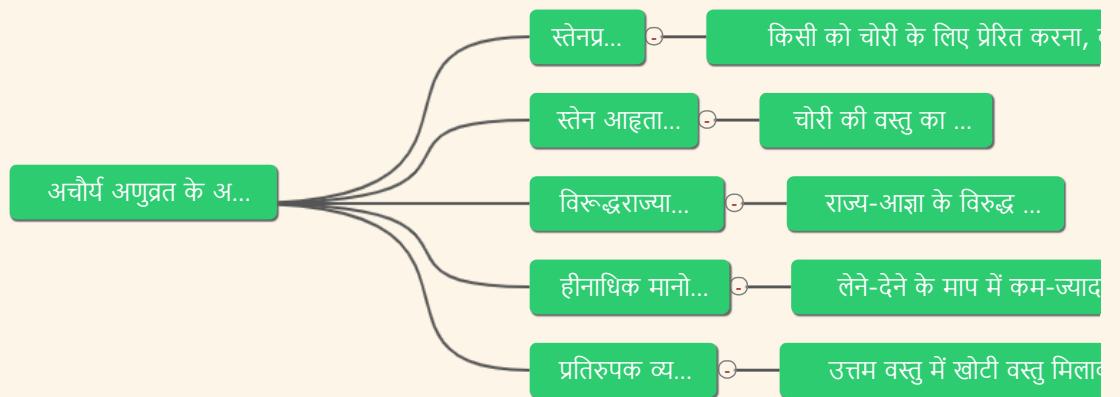
अन्वयार्थ : मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२६॥



अचौर्य अणुव्रत के अतिचार

स्तेनप्रयोग-तदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपक-व्यवहाराः ॥२७॥

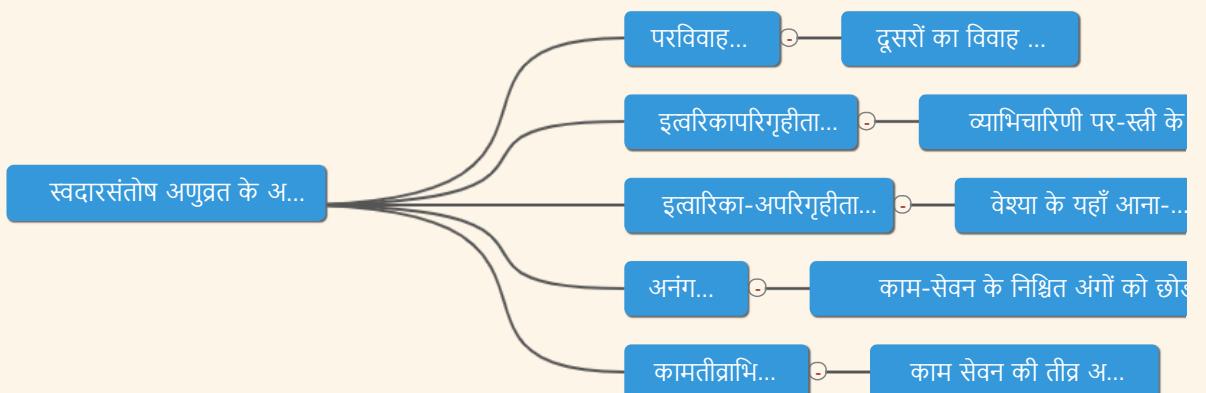
अन्वयार्थ : स्तेनप्रयोग, स्तेन आहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान और प्रतिरूपक व्यवहार ये अचौर्य अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२७॥



स्वदारसंतोष अणुव्रत के अतिचार

परविवाह करणेत्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानङ्गक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशः ॥२८॥

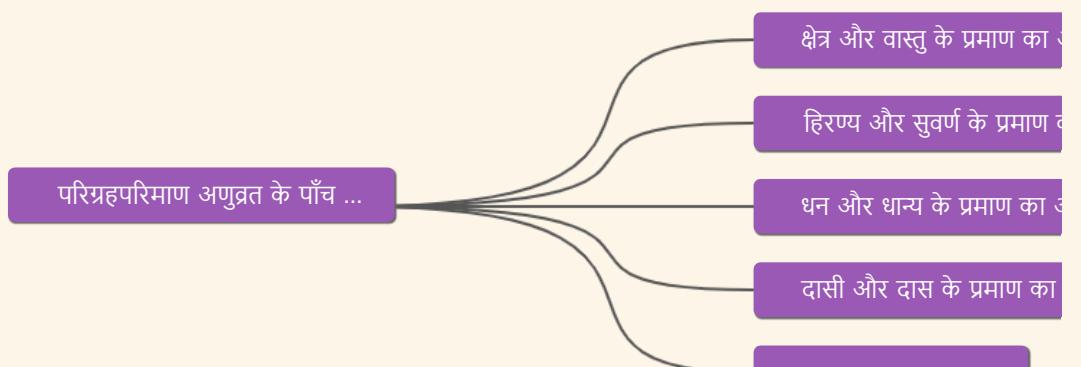
अन्वयार्थ : परविवाहकरण, इत्वरिकापरिगृहीतागमन, इत्वारिका-अपरिगृहीतागमन, अनंगक्रीडा और कामतीव्राभिनिवेश ये स्वदारसंतोष अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२८॥



परिग्रहपरिमाण अणुव्रत के अतिचार

क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धन-धान्य-दासीदास-कुप्य-प्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥

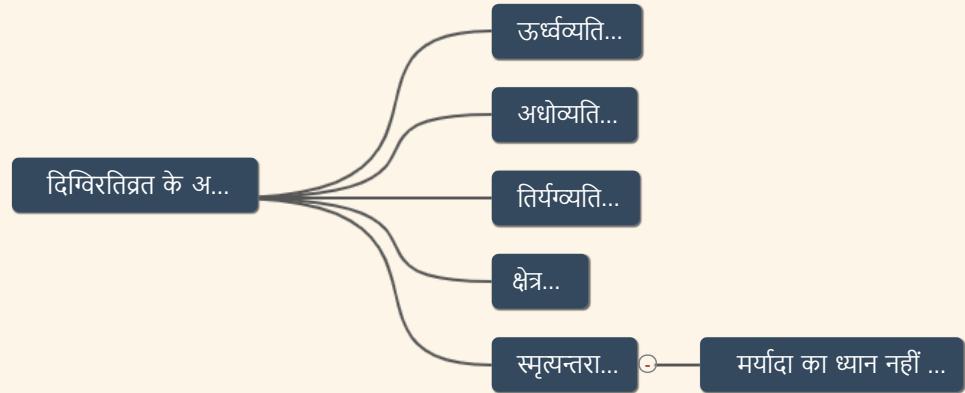
अन्वयार्थ : क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण का अतिक्रम, हिरण्य और सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम, धन और धान्य के प्रमाण का अतिक्रम, दासी और दास के प्रमाण का अतिक्रम तथा कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम ये परिग्रहपरिमाण अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२९॥



दिग्विरतिव्रत के अतिचार

ऊर्ध्वधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यंतराधानानि ॥३०॥

अन्वयार्थ : ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तराधान ये दिग्विरतिव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३०॥



देशविरति के अतिचार

आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्दरूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः ॥३१॥

अन्वयार्थ : आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप ये देशविरति के पाँच अतिचार हैं ॥३१॥

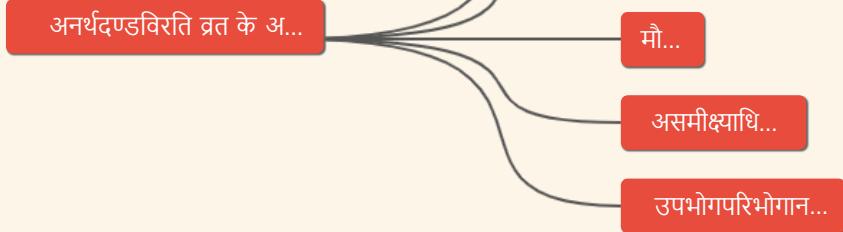


अनर्थदण्डविरति के अतिचार

कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधि-करणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥

अन्वयार्थ : कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोगपरिभोगानर्थक्य ये अनर्थदण्डविरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३२॥



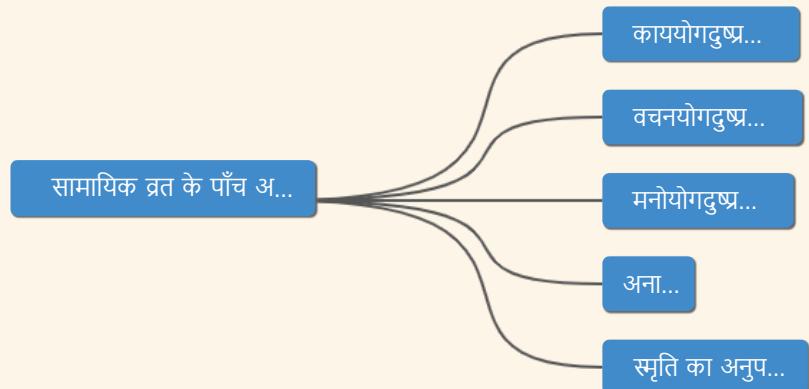


सामायिक व्रत के अतिचार

योग दुःप्रणिधानानादर-स्मृत्यनु-पस्थानानि ॥33॥

अन्वयार्थ : काययोगदुष्प्रणिधान, वचनयोगदुष्प्रणिधान, मनोयोगदुष्प्रणिधान, अनादर और सृति का अनुपस्थान ये सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥

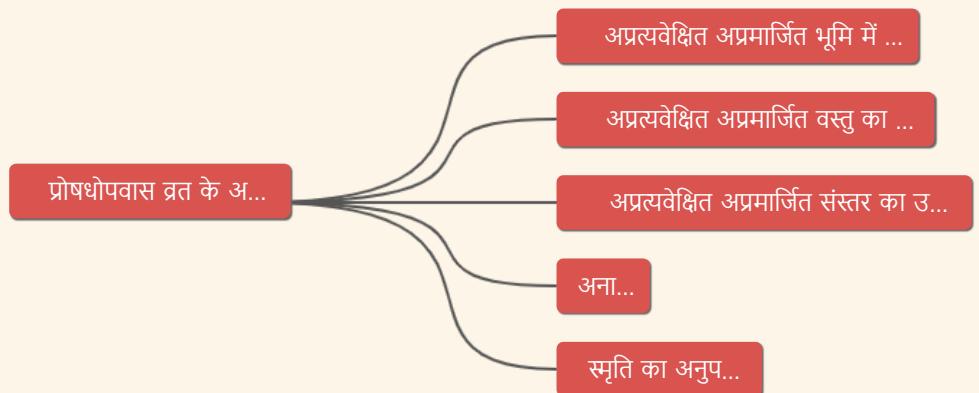
३३॥



प्रोषधोपवास के अतिचार

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणा-नादरस्मृत्यनुप-स्थानानि ॥34॥

अन्वयार्थ : अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित भूमि में उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित वस्तु का आदान, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तर का उपक्रमण, अनादर और सृति का अनुपस्थान ये प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३४॥



सचित्त-संबंधसम्मिश्रा-भिषवदुःपक्षाहारः ॥३५॥

अन्वयार्थ : सचित्ताहार, सम्बन्धाहार, सम्मिश्राहार, अभिषवाहार और दुःपक्षाहार ये उपभोग-परिभोग-परिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३५॥

उपभोग-परिभोग-परिमाण व्रत के पाँच ...

सचित्ता...

सम्बन्धा...

सम्मिश्रा...

अभिषवा...

दुःपक्षा...

अतिथिसंविभाग व्रत के अतिचार

सचित्त-निक्षेपापिधानपरव्यपदेश-मात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥

अन्वयार्थ : सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम ये अतिथिसंविभाग व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३६॥

अतिथिसंविभाग व्रत के पाँच अ...

सचित्तनि...

सचित्तापि...

परव्यप...

माट...

कालाति...

सल्लेखना के अतिचार

जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबंध-निदानानि ॥३७॥

अन्वयार्थ : जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबंध और निदान ये सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं ॥३७॥

सल्लेखना के अ...

जीविता...

मरणा...

मित्रानु...

सुखानु...

दान

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥

अन्वयार्थ : अनुग्रह के लिए अपनी वस्तुका त्याग करना दान है ॥३८॥

दान में विशेषता

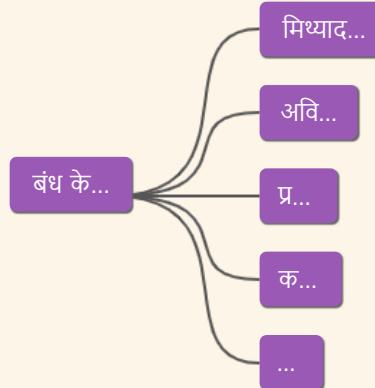
विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

अन्वयार्थ : विधि, देय वस्तु, दाता और पात्र की विशेषता से उसकी विशेषता है ॥३९॥

बंध के हेतु

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥१॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के हेतु हैं ॥१॥



बन्ध

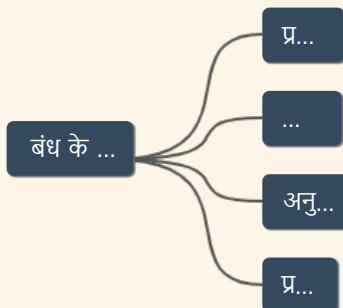
सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥२॥

अन्वयार्थ : कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है वह बन्ध है ॥२॥

बंध के भेद

प्रकृति स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥

अन्वयार्थ : उसके प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश ये चार भेद हैं ॥३॥



प्रकृतिबन्ध के रूप

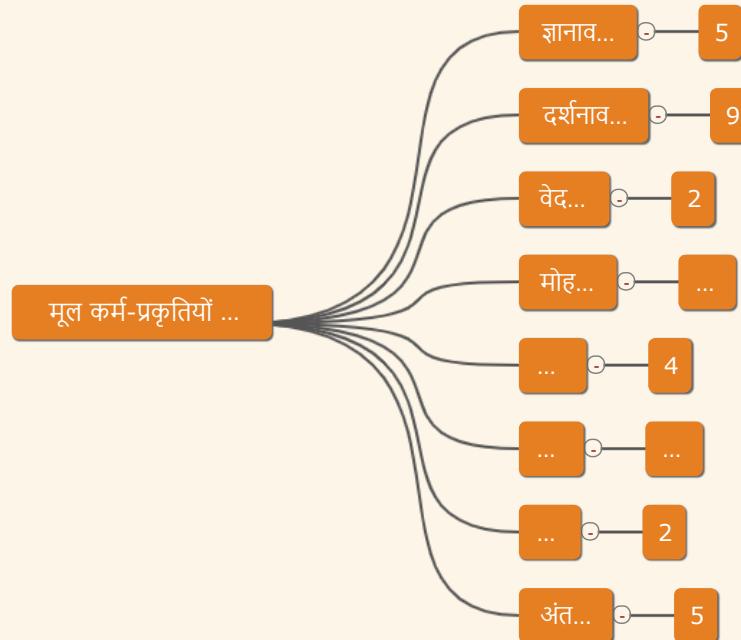
आद्यो ज्ञान-दर्शनावरणवेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥४॥

अन्वयार्थ : पहला अर्थात् प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायरूप है ॥४॥

मूल कर्म प्रकृतियों के भेद

पञ्च-नव-द्वयष्टाविंशति-चतुर-द्विचत्वारिंशत्-द्वि-पञ्च-भेदा-यथाक्रमम् ॥५॥

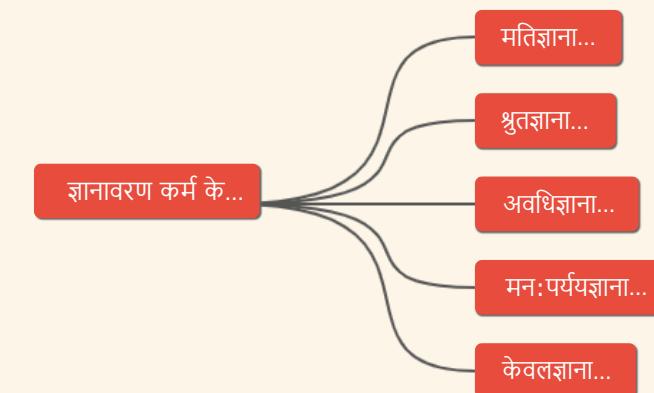
अन्वयार्थ : आठ मूल प्रकृतियों के अनुक्रम से पाँच, नौ, दो, अट्टाइस, चार, ब्यालीस, दो और पाँच भेद हैं ॥५॥



ज्ञानावरण कर्म के भेद

मतिश्रुतावधि-मनःपर्यय केवलानाम् ॥६॥

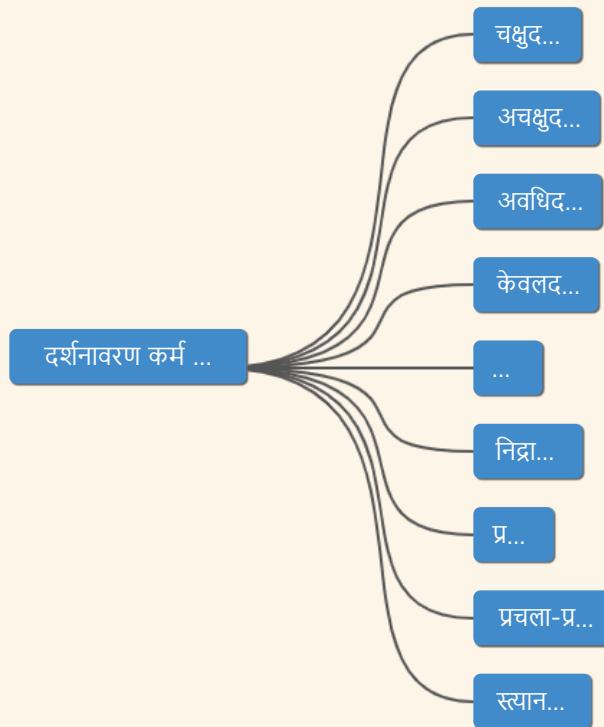
अन्वयार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान इनको आवरण करने वाले कर्म पाँच ज्ञानावरण हैं ॥६॥



दर्शनावरण कर्म के भेद

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥

अन्वयार्थ : चक्षुरदर्शन, अचक्षुरदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन चारों के चार आवरण तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पाँच निद्राद्रिक ऐसे नौ दर्शनावरण हैं ॥७॥



वेदनीय कर्म के भेद

सदसद्वेद्ये ॥८॥

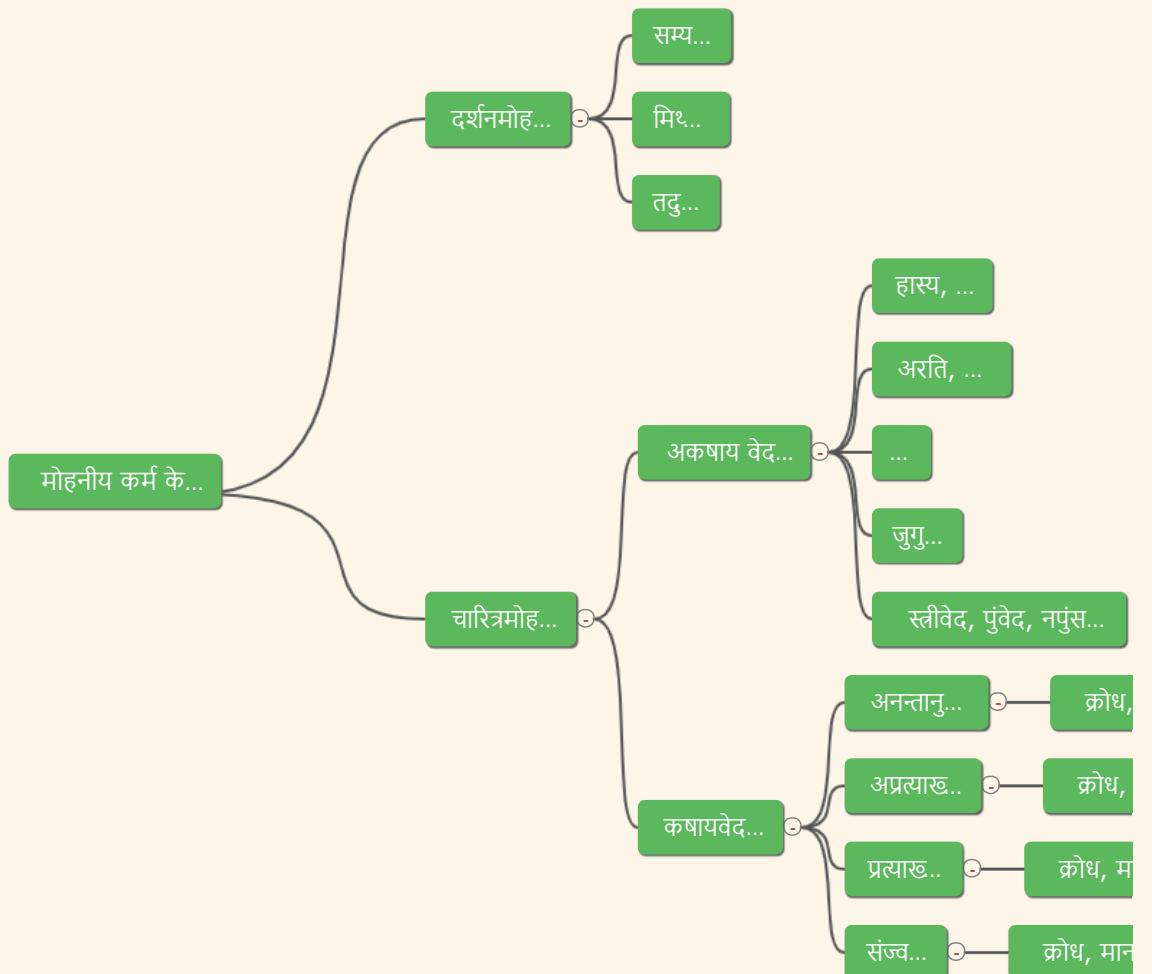
अन्वयार्थ : सद्वेद्य और असद्वेद्य ये दो वेदनीय हैं ॥८॥



मोहनीय कर्म के भेद

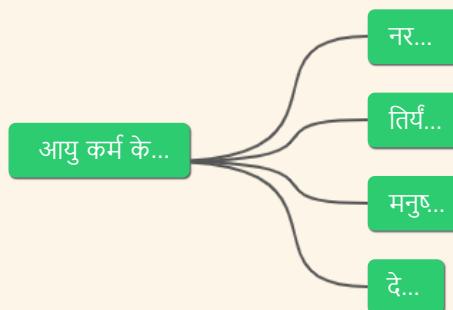
दर्शनचारित्र-मोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्यरत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक-वेदा अनन्तानुबंध्य-प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्रैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः ॥९॥

अन्वयार्थ : दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अकषायवेदनीय और कषाय वेदनीय इनके क्रम से तीन, दो, नौ और सोलह भेद हैं। सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और तदुभय ये तीन दर्शनमोहनीय हैं। अकषाय वेदनीय और कषायवेदनीय ये दो चारित्र-मोहनीय हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुन्नपुंसक और नपुंसकवेद ये नौ अकषायवेदनीय हैं। तथा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन ये प्रत्येक क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से सोलह कषायवेदनीय हैं ॥९॥



आयु कर्म के भेद नारकतैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥10॥

अन्वयार्थ : नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु ये चार आयु हैं ॥१०॥



नामकर्म के भेद

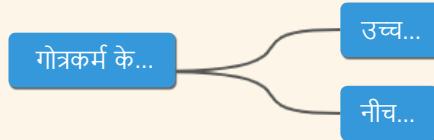
गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बंधन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गंध-वर्णनुपूर्व्यगुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छास-विहायोगतयः प्रत्येक-शरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय यशः कीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥11॥

अन्वयार्थ : गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघू, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छवास, और विहायोगति तथा प्रतिपक्षभूत प्रकृतियों के साथ अर्थात् साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दुःस्वर और सुस्वर,

अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म, अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय, अयशःकीर्ति और यशःकीर्ति एवं तीर्थकरत्व ये व्यालीस नामकर्म के भेद हैं ॥११॥

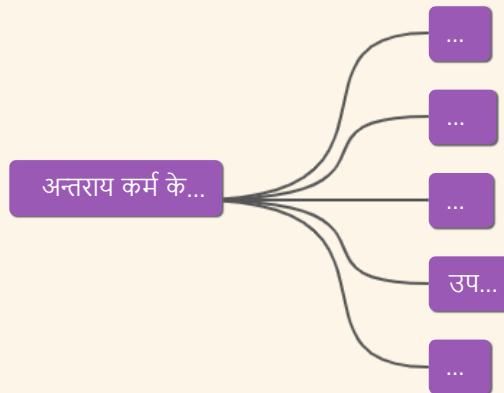
गोत्रकर्म के भेद उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥

अन्वयार्थ : उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म हैं ॥१२॥



अन्तराय कर्म के भेद दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥१३॥

अन्वयार्थ : दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इनके पाँच अन्तराय हैं ॥१३॥



मूल कर्मों में उल्कृष्ट स्थिति आदितस्तिसुणा-मंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥

अन्वयार्थ : आदि की तीन प्रकृतियाँ अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन चार की उल्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है ॥

१४॥





सप्तति-मर्महनीयस्य ॥१५॥

अन्वयार्थ : मोहनीय की उल्कष्ट स्थिति सल्लर कोटाकोटि सागरोपम है ॥१५॥

विंशतिनाम-गोत्रयोः ॥१६॥

अन्वयार्थ : नाम और गोत्र की उल्कष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम है ॥१६॥

त्रयस्तिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥

अन्वयार्थ : आयु की उल्कष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम है ॥१७॥

मूल कर्मों में जघन्य स्थिति

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥

अन्वयार्थ : वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है ॥१८॥

मूल प्रकृतियों की जघन्य ...



नाम-गोत्रयोरष्टौ ॥१९॥

अन्वयार्थ : नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है ॥१९॥

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥

अन्वयार्थ : बाकी के पाँच कर्मों की जग्न्य स्थिति अन्तमुहूर्त है ॥२०॥

विपाक विपाकोऽनुभवः ॥२१॥

अन्वयार्थ : विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है ॥२१॥

विपाक का स्वभाव स यथानाम् ॥२२॥

अन्वयार्थ : वह जिस कर्म का जैसा नाम है उसके अनुरूप होता है ॥२२॥

निर्जरा ततश्च निर्जरा ॥२३॥

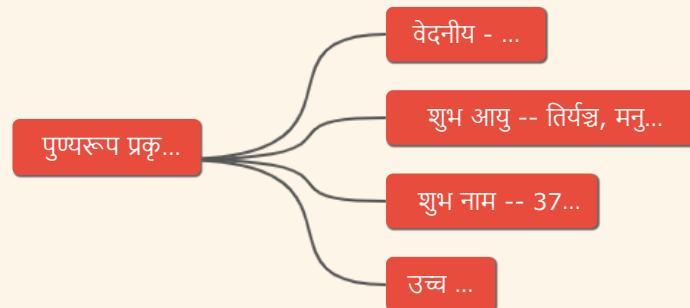
अन्वयार्थ : इसके बाद निर्जरा होती है ॥२३॥

प्रदेश बन्ध नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात्-सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाह-स्थिताः सर्वात्म-प्रदेशोष्वनन्तानन्त-प्रदेशाः ॥२४॥

अन्वयार्थ : कर्म प्रकृतियों के कारणभूत प्रतिसमय योगविशेष से सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही और स्थित अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु सब आत्मप्रदेशों में (सम्बन्ध को प्राप्त) होते हैं ॥२४॥

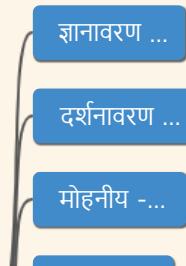
पुण्य प्रकृतियाँ सद्वेद्यशुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥

अन्वयार्थ : साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये प्रकृतियाँ पुण्यरूप हैं ॥२५॥



पाप प्रकृतियाँ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

अन्वयार्थ : इनके सिवा शेष सब प्रकृतियाँ पापरूप हैं ॥२६॥



पापरूप प्रकृ...

82 प्र...

अन्तराय ...

नाम - ...

वेदनीय - अ...

आयु -- न...

गोत्र -- ...

संवर

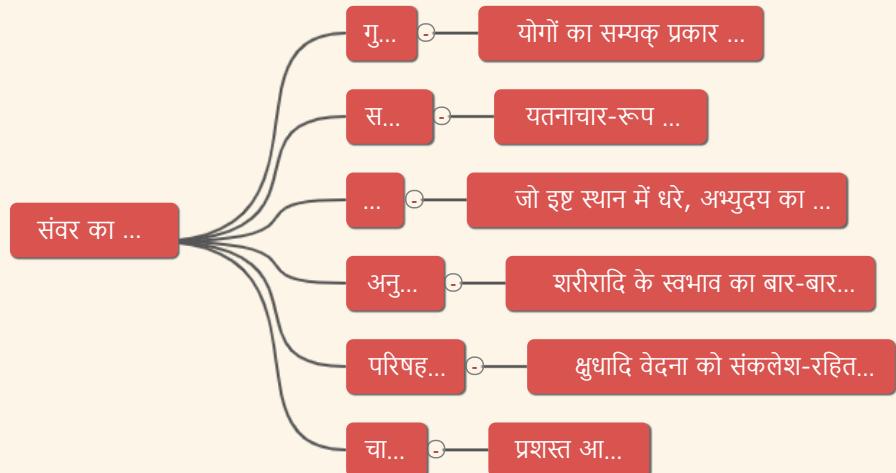
आस्त्रव-निरोधः संवरः ॥1॥

अन्वयार्थ : आस्त्रव का निरोध संवर है ॥१॥

संवर का कारण

स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः ॥२॥

अन्वयार्थ : वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र से होता है ॥२॥



तपसा निर्जरा च ॥३॥

अन्वयार्थ : तप से निर्जरा होती है और संवर भी होता है ॥३॥

गुप्ति सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥

अन्वयार्थ : योगों का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है ॥४॥

समिति ईर्याभाषैषणा-दाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥

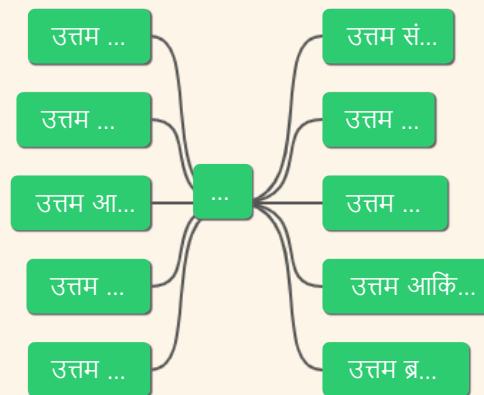
अन्वयार्थ : ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं ॥५॥



धर्म

उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥

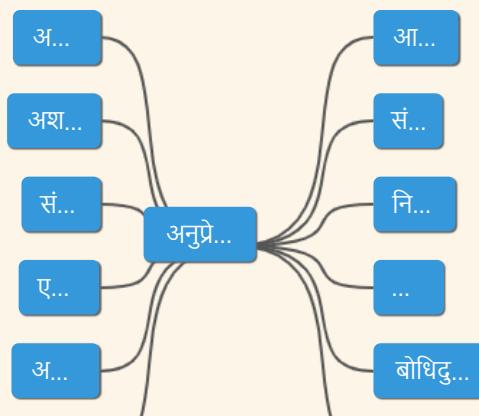
अन्वयार्थ : उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म है ॥६॥



अनुप्रेक्षा

अनित्याशरण-संसारैकत्वान्य-त्वाशुच्यास्वसंवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्म-स्वाख्यातत्त्वानु-चिन्तन-मनुप्रेक्षा: ॥७॥

अन्वयार्थ : अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्व, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मस्वाख्यातत्त्व का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षाएँ हैं ॥७॥



परीषह जय का उद्देश्य

मार्गच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥

अन्वयार्थ : मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मों की निर्जरा करने के लिए जो सहन करने योग्य हों वे परीषह हैं ॥८॥

परीषह के प्रकार

क्षुत्पिपासा-शीतोष्णादंशमशक-नाश्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शश्याक्रोशवधयाचनालाभ-रोग- तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥९॥

अन्वयार्थ : क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्रता, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शश्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन इन नाम वाले परीषह हैं ॥९॥

दसवें से बारहवें गुणस्थान में परीषह

सूक्ष्मसाम्पराय-छद्मस्थवीत-रागयोश्वतुर्दश ॥१०॥

अन्वयार्थ : सूक्ष्मसाम्पराय (दसवें) और छद्मस्थ-वीतराग (ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान) में चौदह परीषह होती हैं ॥१०॥

सयोग केवली के परीषह

एकादश जिने ॥११॥

अन्वयार्थ : जिन में ग्यारह परीषह सम्भव हैं ॥११॥

बादर साम्पराय गुणस्थान तक परीषह

बादर-साम्पराये सर्वे ॥१२॥

अन्वयार्थ : बादर साम्पराय गुणस्थान तक सभी परीषह सम्भव हैं ॥१२॥

ज्ञानावरण से परीषह

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥

अन्वयार्थ : ज्ञानावरण के सन्द्राव में प्रज्ञा और अज्ञान, दो परीषह होती हैं ॥१३॥

दर्शनमोह और अन्तराय से परीषह

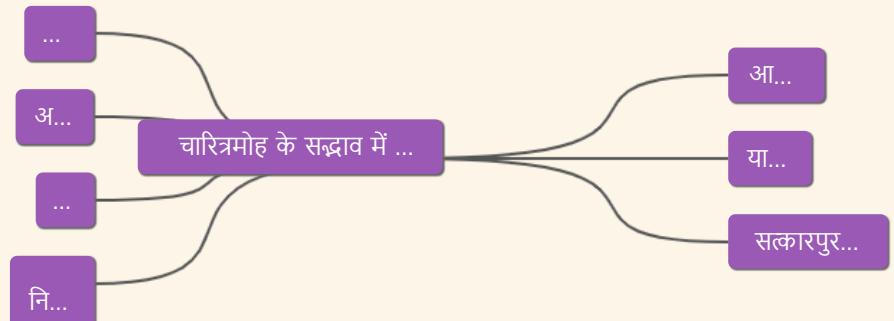
दर्शन-मोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥

अन्वयार्थ : दर्शनमोह और अन्तराय के सन्द्राव में क्रम से अदर्शन और अलाभ परीषह होते हैं ॥१४॥

चारित्रमोह से परीषह

चारित्रमोहे नाश्यारति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः ॥१५॥

अन्वयार्थ : चारित्रमोह के सन्द्राव में नाश्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कारपुरस्कार परीषह होते हैं ॥१५॥



वेदनीय से परीषह
वेदनीये शेषाः ॥१६॥

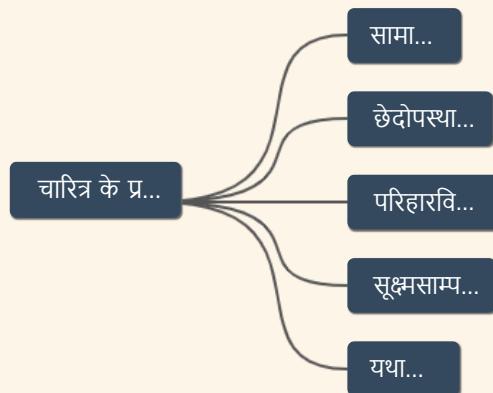
अन्वयार्थ : बाकी के सब परीषह वेदनीय के सन्द्वाव में होते हैं ॥१६॥

एक साथ एक जीव के परीषह
एकादयो भाज्या युगपदेक-स्मिन्नैकोनविंशते: ॥१७॥

अन्वयार्थ : एक साथ एक जीव के उन्नीस परीषह तक होती हैं ॥१७॥

चारित्र के प्रकार
सामायिक-छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात-मितिचारित्रम् ॥१८॥

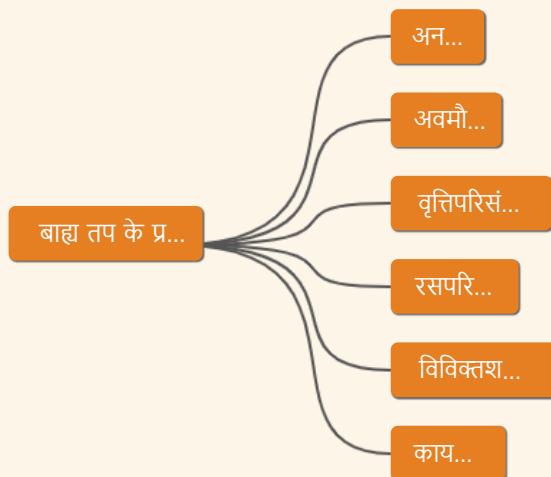
अन्वयार्थ : सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात यह पाँच प्रकार का चारित्र है ॥१८॥



तप के प्रकार

अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस-परित्याग-विविक्तशश्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥

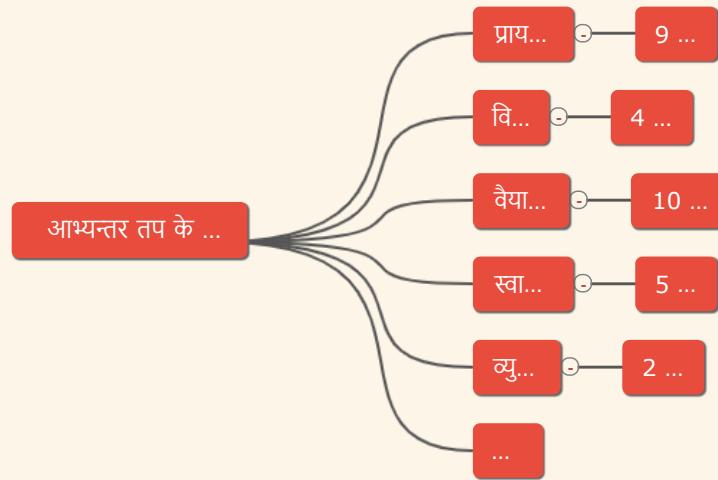
अन्वयार्थ : अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशश्यासन और कायक्लेश यह छह प्रकार का बाह्य तप है ॥१९॥



आभ्यन्तर तप

प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥

अन्वयार्थ : प्रायश्चित्त, विनय, वैयाकृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह प्रकार का आभ्यन्तर तप है ॥२०॥

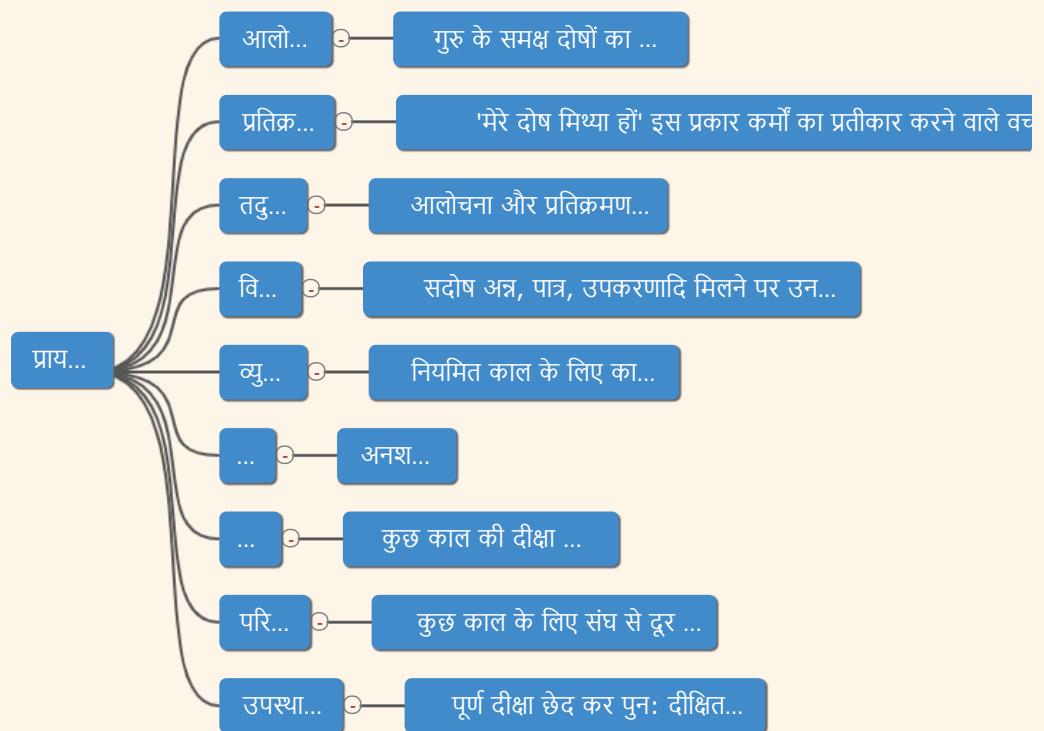


आभ्यन्तर तपों के उपभेद नवचतुर्दश-पञ्च द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥

अन्वयार्थ : ध्यान से पूर्व के आभ्यन्तर तपों के अनुक्रम से नौ, चार, दश, पांच और दो भेद हैं ॥२१॥

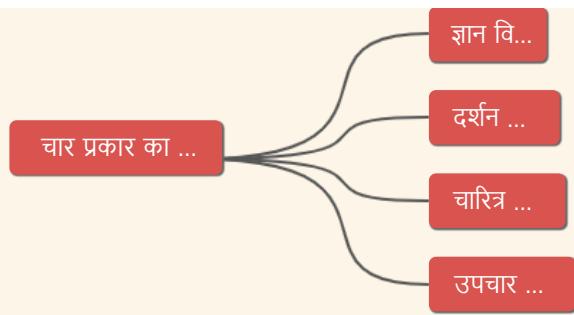
प्रायश्चित्त के प्रकार आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेदपरिहारो-पस्थापनाः ॥२२॥

अन्वयार्थ : आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना यह नव प्रकार का प्रायश्चित्त है ॥२२॥



विनय के प्रकार ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥२३॥

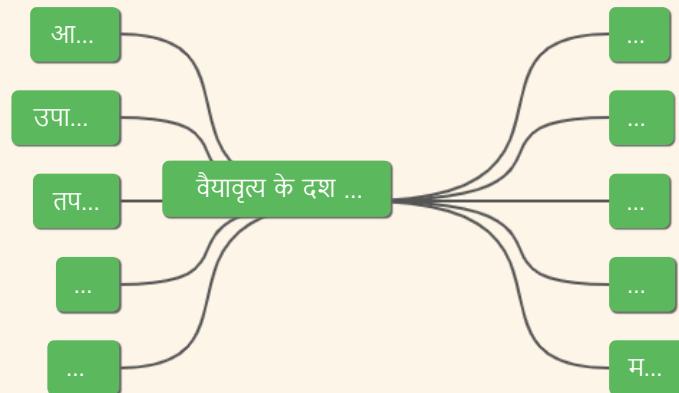
अन्वयार्थ : ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय और उपचार विनय यह चार प्रकार का विनय है ॥२३॥



वैयावृत्य के प्रकार

आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल-संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥24॥

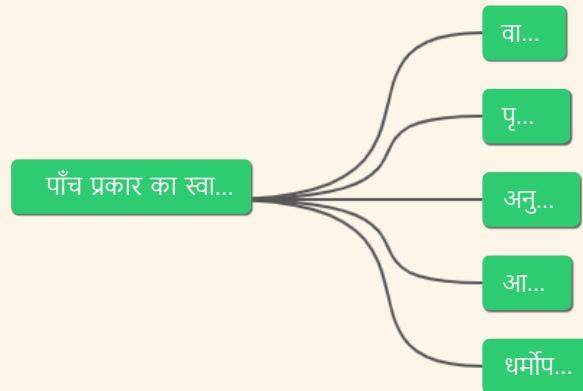
अन्वयार्थ : आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्य के भेद से वैयावृत्य दश प्रकार का है ॥२४॥



स्वाध्याय के प्रकार

वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशाः ॥25॥

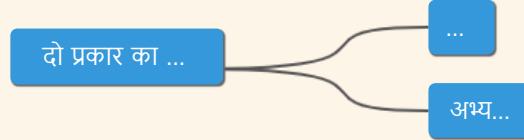
अन्वयार्थ : वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय है ॥२५॥



ब्रुत्सर्ग के प्रकार

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥26॥

अन्वयार्थ : बाह्य और अभ्यन्तर उपधि का त्याग यह दो प्रकार का व्युत्सर्ग है ॥२६॥



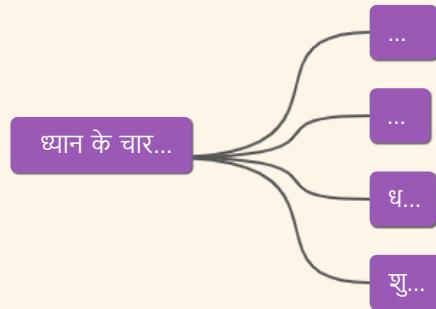
ध्यान के स्वामी और काल

उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो ध्यानमान्त-मुहूर्तात् ॥२७॥

अन्वयार्थ : उत्तम संहनन वाले का एक विषय में वित्तवृत्ति का रोकना ध्यान है जो अन्तमुहूर्त काल तक होता है ॥२७॥

ध्यान के प्रकार आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ॥२८॥

अन्वयार्थ : आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ये ध्यान के चार भेद हैं ॥२८॥



मोक्ष के हेतु ध्यान

परे मोक्षहेतु ॥२९॥

अन्वयार्थ : उनमें से पर अर्थात् अन्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं ॥२९॥

अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः ॥३०॥

अन्वयार्थ : अमनोज्ञ पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए विन्तासात्त्व का होना प्रथम आर्तध्यान है ॥३०॥

इष्ट वियोगज आर्तध्यान विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥

अन्वयार्थ : मनोज्ञ वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत विन्ता करना दूसरा आर्तध्यान है ॥३१॥

पीड़ा वितन आर्तध्यान वेदनायाश्च ॥३२॥

अन्वयार्थ : वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत विन्ता करना तीसरा आर्तध्यान है ॥३२॥

निदान आर्तध्यान निदानं च ॥३३॥

अन्वयार्थ : निदान नाम का चौथा आर्तध्यान है ॥३३॥

आर्तध्यान के स्वामी
तदविरतदेशविरतप्रमत्संयतानां ॥३४॥

अन्वयार्थ : यह आर्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्संयत जीवों के होता है ॥३४॥

रौद्रध्यान और उसके स्वामी
हिंसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ॥३५॥

अन्वयार्थ : हिंसा, असत्य, चोरी और विषयसंरक्षण के लिए सतत चिन्तन करना रौद्रध्यान है। वह अविरत और देशविरत के होता है ॥३५॥

धर्म-ध्यान
आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥३६॥

अन्वयार्थ : आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान इनकी विचारणा के निमित्त मन को एकाग्र करना धर्म्यध्यान है ॥३६॥

प्रथम दो शुक्लध्यान के स्वामी
शुक्ले चाद्ये पूर्व-विदः ॥३७॥

अन्वयार्थ : आदि के दो शुक्लध्यान पूर्वविद् के होते हैं ॥३७॥

शेष दो शुक्लध्यान के स्वामी
परे केवलिनः ॥३८॥

अन्वयार्थ : शेष के दो शुक्लध्यान केवली के होते हैं ॥३८॥

शुक्लध्यान के प्रकार
पृथक्त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति-व्युपरत-क्रियानिवर्तीनि ॥३९॥

अन्वयार्थ : पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये चार शुक्लध्यान हैं ॥३९॥



शुक्ल-ध्यान का योग-आलंबन
त्र्येकयोग-काययोगायोगानाम् ॥४०॥

अन्वयार्थ : वे चार ध्यान क्रम से तीन योगवाले, एक योगवाले, काययोगवाले और अयोग के होते हैं ॥४०॥

प्रथम दो शुक्ल-ध्यान की विशेषता
एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥

अन्वयार्थ : पहले के दो ध्यान एक आश्रय वाले, सवितर्क और सवीचार होते हैं ॥४१॥

अपवाद
अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥

अन्वयार्थ : दूसरा ध्यान अवीचार है ॥४२॥

वितर्क का लक्षण
वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥

अन्वयार्थ : वितर्क का अर्थ श्रुत है ॥४३॥

वीचार का लक्षण
वीचारोऽर्थव्यंजन-योगसंक्रान्तिः ॥४४॥

अन्वयार्थ : अर्थ, व्यञ्जन और योग की संक्रान्ति वीचार है ॥४४॥

सम्यग्वृष्टियों में निर्जरा का क्रम

**सम्यग्वृष्टि-श्रावक-विरता-नन्तवियोजक-दर्शनमोह-क्षपकोपशम-कोपशांत-मोहक्षपक-क्षीणमोह-
जिनाः क्रमशोऽसंख्येय-गुण-निर्जराः ॥४५॥**

अन्वयार्थ : सम्यग्वृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धिवियोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से
असंख्यगुण निर्जरावाले होते हैं ॥४५॥

निर्ग्रन्थ के भेद

पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रथाः ॥४६॥

अन्वयार्थ : पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच निर्ग्रन्थ हैं ॥४६॥



पुलाक आदि मुनियों की विशेषता

संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थलिङ्गं-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः ॥४७॥

अन्वयार्थ : संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान के भेद से इन निर्ग्रन्थों का व्याख्यान करना चाहिए ॥४७॥

केवलज्ञान की उत्पत्ति

मोहक्षयाज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥१॥

अन्वयार्थ : मोह का क्षय होने से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है ॥१॥

मोक्ष का लक्षण और कारण

बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥

अन्वयार्थ : बन्ध-हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्मनिक क्षय होना ही मोक्ष है ॥२॥

किन भावों के नाश से मोक्ष?
औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥३॥

अन्वयार्थ : तथा औपशमिक आदि भावों और भव्यत्व भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है ॥३॥

किन भावों का मोक्ष में सन्द्राव है?
अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥४॥

अन्वयार्थ : पर केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान और सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता ॥४॥

मुक्त जीव का निवास
तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या-लोकान्तात् ॥५॥

अन्वयार्थ : तदनन्तर मुक्त जीव लोक के अन्त तक ऊपर जाता है ॥५॥

ऊर्ध्वगमन का कारण

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्-बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥

अन्वयार्थ : पूर्वप्रयोग से, संग का अभाव होने से, बन्धन के टूटने से और वैसा गमन करना स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है ॥६॥

प्रत्येक कारण का उदाहरण

आविद्धकुलालचक्रवद्-व्यपगतलेपालाबुद्धदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥

अन्वयार्थ : घुमाये गये कुम्हार के चक्र के समान, लेप से मुक्त हुई तूमड़ी के समान, एरण्ड के बीज के समान और अग्नि की शिखा के समान ॥७॥

मुक्त जीव लोकान्त में क्यों ठहरते हैं?

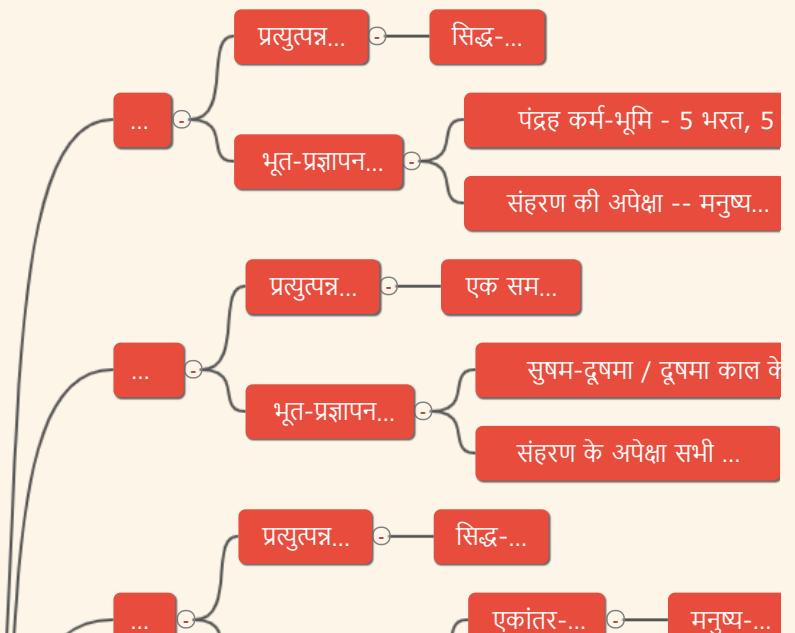
धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥

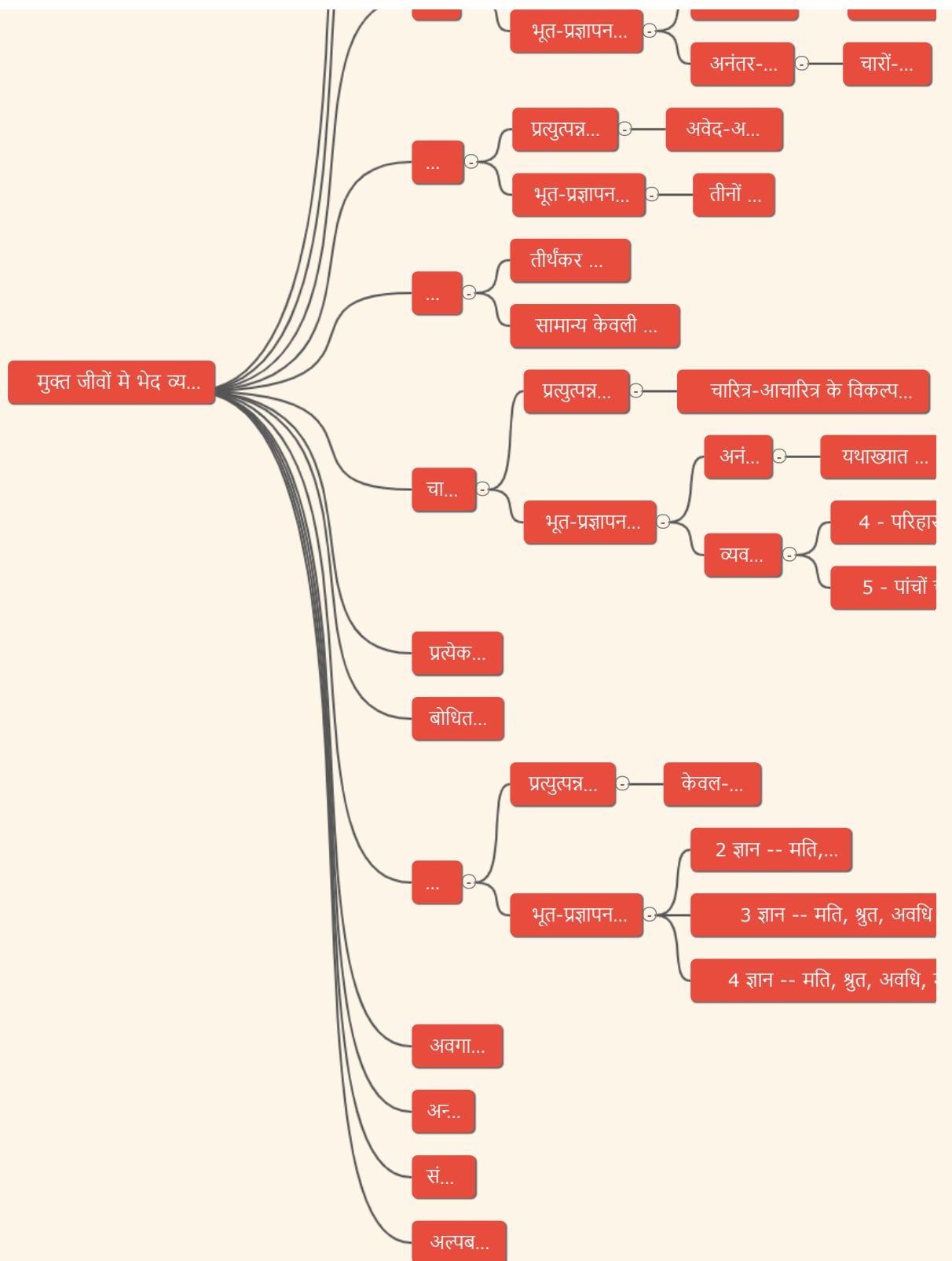
अन्वयार्थ : धर्मास्तिकाय का अभाव होने से मुक्त जीव लोकान्त से और ऊपर नहीं जाता ॥८॥

मुक्त जीवों में भेद-व्यवहार

क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थचारित्र-प्रत्येकबुद्धबोधित-ज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

अन्वयार्थ : क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं ॥९॥





पंच-परमेष्ठी-आरती



यह विधि मंगल आरती कीजै, पंच परम पद भज सुख लीजै ।

प्रथम आरती श्री जिनराजा, भवदधि पार उतार जिहाजा ॥१॥

दूजी आरती सिद्धन केरी, सुमरत करत मिटे भव फेरी ॥२॥

तीजी आरती सूर मुनिंदा, जनम-मरण दुःख दूर करिंदा ॥३॥

चौथी आरती श्री उवझाया, दर्शन करत पाप पलाया ॥४॥

पाँचवीं आरती साधु तुम्हारी, कुमति विनाशन शिव अधिकारी ॥५॥

छठी ग्यारह प्रतिमा धारी, श्रावक बंदू आनंद कारी ॥६॥

सातवीं आरती श्री जिनवाणी, 'द्यानत' स्वर्ग मुक्ति सुखदानी ॥७॥



भगवान-चंदाप्रभु-आरती

ॐ जय चंदाप्रभु देवा, स्वामी जय चंदाप्रभु देवा ।
तुम हो विघ्न विनाशक स्वामी, पार करो देवा ॥टेक॥



मात सुलक्षणा पिता तुम्हारे, महासेन देवा
चन्द्र-पुरी में जनम लियो है स्वामी, देवों के देवा ॥१॥

जन्मोत्सव पर प्रभु तिहारे, सुर नर हर्षाये
रूप तिहारा महा-मनोहर सब ही को भाये ॥२॥

बाल्यकाल में ही प्रभु तुमने, दीक्षा ली प्यारी
भेष दिगंबर धारा तुमने, महिमा हैं न्यारी ॥३॥

फाल्गुन वदि सप्तमी को, केवल ज्ञान हुआ
खुद जियो और जीने दो का, सबको सन्देश दिया ॥४॥

अलवर प्रान्त में नगर तिजारा, देहरे में प्रगटे
मूर्ति तिहारी अपने अपने नैनन, निरख निरख हर्षे ॥५॥

हम प्रभु दास तिहारे, निश दिन गुण गावें
पाप तिमिर को दूर करो, प्रभु सुख शांति लावें ॥६॥



भगवान-पार्श्वनाथ-आरती
ऊँ जय पारस देवा, स्वामी जय पारस देवा
सुर नर मुनिजन तुम चरणन की, करते नित सेवा ।



पौष वदी ग्यारस काशी में, आनंद अतिभारी,
अश्वसेन वामा माता उर, लीनों अवतारी ॥ऊँ..१॥

श्यामवरण नवहस्त काय पग, उरग लखन सोहैं,
सुरकृत अति अनुपम पा भूषण सबका मन मोहैं ॥ऊँ..२॥

जलते देख नाग नागिन को, मंत्र नवकार दिया,
हरा कमठ का मान, ज्ञान का, भानु प्रकाश किया ॥ऊँ..३॥

मात पिता तुम स्वामी मेरे, आस करूँ किसकी,
तुम बिन दाता और न कोई, शरण गहूँ मैं जिसकी ॥ऊँ..४॥

तुम परमात्म तुम अध्यात्म, तुम अंतर्यामी,
स्वर्ग-मोक्ष के दाता तुम हो, त्रिभुवन के स्वामी ॥ऊँ..५॥

दीनबंधु दुःखहरण जिनेश्वर, तुम ही हो मेरे,
दो शिवधाम को वास दास, हम द्वार खड़े तेरे ॥५..६॥

विपद्-विकार मिटाओ मन का, अर्ज सुनो दाता,
सेवक द्वै-कर जोड़ प्रभु के, चरणों चित लाता ॥६..७॥



भगवान-महावीर-आरती

ॐ जय महावीर प्रभो, स्वामी जय महावीर प्रभो
कुण्डलपुर अवतारी, त्रिशलानन्द विभो ॥

सिद्धारथ घर जन्मे, वैभव था भारी
बाल ब्रह्मचारी व्रत पाल्यौ तपधारी ॥१॥

आत्म ज्ञान विरागी, सम दृष्टि धारी
माया मोह विनाशक, ज्ञान ज्योति जारी ॥२॥

जग में पाठ अहिंसा, आप ही विस्तार्यो
हिंसा पाप मिटाकर, सुधर्म परिचार्यो ॥३॥

इह विधि चाँदनपुर में, अतिशय दरशायो
ग्वाल मनोरथ पुर्यो दूध गाय पायो ॥४॥

अमर चन्द को सपना, तुमने प्रभु दीना
मन्दिर तीन शिखर का निर्मित है कीना ॥५॥

जयपुर नृप भी तेरे, अतिशय के सेवी
एक ग्राम तिन दीनों, सेवा हित यह भी ॥६॥

जो कोई तेरे दर पर, इच्छा कर आवे

होय मनोरथ पूरण, संकट मिट जावे ॥७॥

निशि दिन प्रभु मन्दिर में, जगमग ज्योति जरै
हम सब चरणों में, आनन्द मोद भरै ॥८॥



भगवान-बाहुबली-आरती

श्री बाहुबली की आरती, उतारो मिल के
उतारो मिल के, छवि निहारो मिल के ॥



ऋषभदेव पितु मात सुनंदा, भ्रात भरत दो सूरज-चन्दा
प्रेम की वर्षा दिन-रैन करते थे चारों के चारों मिल के ॥१॥

सवा पंच शत धनु की काया जिसमें जग का तेज समाया
बाहुबली जी की इस मोहनी मूरत पे तन-मन वारो मिल के ॥२॥

शस्त्र शास्त्र विद्या घर वीणा दो सुत को पितु नृप कर दीना
आदीश्वर बोले मैं वन चला पुत्रों तुम राज संभारो मिल के
तुम्ही सम्हारो मिल के ॥३॥

चक्रवर्ती पर जय जब पाई, कर्म विजय की मन तब आई
नश्वर माया को पाकर भी क्या होगा ये तनिक विचारों मिल के ॥४॥

वृक्ष जान तन चढ़ गई बेलें, सर्पादिक चरणों में खेलें
ध्यान में डूबे हैं ५
प्रभु ध्यान में डूबे हैं, इन्हें पुकारो मिल के ॥५॥

धीर वीर बाहुबली स्वामी, पित के पूर्व भए शिवगामी
ऐसे त्यागी का ५
ऐसे महायोगी का नाम उचारो मिल के ॥६॥



श्री श्रुतस्कन्ध यन्त्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्ञायाणं
णमो लोए सब्वसाहूणं

